JÑĀNAPĪTHA MURTIDEVĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ
SANSKRIT GRANTHA, No 24

PADAMA PURĀṆA

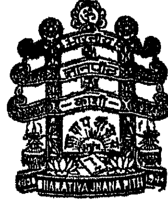
[VOL.II]

of

RAVISENACĀRYA

WITH

HINDI TRANSLATION



EDITER

Pandit. PANNALAL JAN SAAITYACHARYA

Published by

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA KĀSHĪ

First Edition
1100 Copies

MAGHA VIRA SAMVAT 2485
V. S. 2015
FEBRUARY 1959

Price
Rs 10/-

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA Kashi

FOUNDED BY

SAHU SHĀNTI PRASĀD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTI DEVĪ

BHĀRATĪYA JNĀNA-PĪTHA MŪRTI DEVĪ JAIN GRANTHAMĀLĀ

SANSKRIT GRANTHA NO. 24

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAIN ĀGAMIC PHILOSOPHICAL, PAURAṆIC, LITERARY HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRĀKRIT, SANSKRIT APABHRANSHA, HINDI, KANNADA, TAMIL ETC, WILL BE PUBLISHED IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES

AND

CATALOGUES OF JAIN BHANDARĀS INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR JAIN LITERATURE WILL ALSO BE PUBLISHED

General Editors

Dr Hiralal Jain, M A, D Litt

Dr. A. N. Upadhye, M. A, D. Litt.

Publisher

Ayodhya Prasad Goyaliya

Secy, Bharatiya Jnanapitha

Durgakund Road, Varanasi

Founded on

Phalguna krishna 9,

Vira Sam. 2470

Vikrama Samvat 2000

18 Febr. 1944.

विषयानुक्रमणिका

छब्बीसवाँ पर्व

सत्ताईसवाँ पर्व

अट्ठाईसवाँ पर्व

परजनक मिथिलामे वापिस आये। मिथिलामे स्वयवर हुआ और रामने धनुष चढाकर सीताकी रत्नमाला प्राप्त की। लक्ष्मणने भी दूसरा धनुष चढाकर अठारह कन्याएँ प्राप्त कीं। भरतका राजा जनकके भाई कनककी पुत्री लोक-सुन्दरीके साथ विवाह हुआ। ३०–४४

उनतीसवॉ पर्व

आषाढी अष्टाह्निकामे राजा दशरथने भगवान्‌का अभिषेक कर गन्धोदक, सब रानियोके पास भेजा। सुप्रभा रानीके पास एक वृद्ध कञ्चुकी ले गया इसलिए वह देरसे पहुँचा। अन्य रानियोंके पास तरुण दासियाँ ले गई थीं इसलिए जल्दी पहुँच गया। सुप्रभाने इसे अपना अपमान समझ प्राणघात करनेके लिए विष मँगाया। ४५–४७

कञ्चुकी विष लेकर सुप्रभाके पास पहुँचा ही था कि उसी समय राजा दशरथ उसके पास पहुँच गये। राजा तथा अन्य रानियाँ जब तक उसे समझाती है तब तक वृद्ध कञ्चुकी गन्धोदक लेकर आ पहुँचा। ४७–४८

प्रसन्न होकर सुप्रभाने गन्धोदक शिर पर धारण किया। राजा दशरथने कञ्चुकीसे विलम्ब का कारण पूछा तो उसने अपनी वृद्ध अवस्थाको ही उसका कारण बतलाया। उसकी जर्जर अवस्था देख राजाको वैराग्य उत्पन्न हो आया। उसी समय अयोध्याके महेन्द्रोदय उद्यानमे सर्वभूतहित नामक मुनिराजका आगमन हुआ। ४८–५३

तीसवॉ पर्व

विद्याधरोंने यथार्थ बात भामण्डलसे छिपा रक्खी थी इसलिए वह सीताके मिलनेमे विलम्ब देख विह्वल हो उठा। निदान, एक दिन लज्जा छोड उसने पिताके समक्ष ही अपने मित्र वसन्तध्वजको उपालम्भ दिया। तब विद्याधरोंने सब बात स्पष्ट कर दी। भामण्डल उत्तेजित हो उठा और सीताहरणकी भावनासे सेना लेकर अयोध्याकी ओर चला। विदग्ध नामक देशके मनोहर नगर पर जब उसकी दृष्टि पडी तब उसे पूर्वभवका स्मरण हो आया जिससे मूर्च्छित हो गया। सचेत होनेपर अपने कुविचारोके प्रति उसे बहुत घृणा हुई। उसने चन्द्रयान विद्याधरको बताया कि मै पूर्वभवमे यहॉका राजा कुण्डलमण्डित था। धर्मके प्रभावसे राजा जनकका पुत्र हुआ। उत्पन्न होते ही मेरा हरण हुआ। और आपके यहॉ पलकर मै पुष्ट हुआ। जिस सीताके व्यामोहसे मै उन्मत्त हो रहा था वह तो मेरी सगी बहिन है। अन्तमे भामण्डल सब लोगोंके साथ अयोध्याके महेन्द्रोदय उद्यानमे स्थित सर्वभूतहित मुनिराजके पास जाता है। चन्द्रयान विद्याधर दीक्षा लेनेका भाव प्रकट करता है। भामण्डलका विरदगान होता है जिसे सुनकर सीता जागती है। सर्वभूतहित मुनिके पास सबका मिलन होता है। सीता अपने भाईसे मिलती है। दशरथ राजा जनकको खबर देते है। राजा जनक सपरिवार आकर अपने जन्महृत पुत्रसे मिलकर परम आनन्दका अनुभव करते हैं। राजा जनक अपना राज्य अपने भाई कनकको सौंपकर भामण्डलके साथ विजयार्ध चले जाते है। ५४–६६

इकतीसवॉं पर्व

सर्वभूतहित मुनिराजके द्वारा दशरथके पूर्व भवोका वर्णन। ६५–७२

पूर्वभवोंका वर्णन सुन राजा दशरथका विरक्त हृदय और भी अधिक विरक्त हो जाता है। वे मन्त्रियोंके समक्ष अपना अहार्य निश्चय प्रकट कर रामके राज्याभिषेककी घोषणा करते है। समय पाकर भरतकी मॉ केकया, अपना पूर्वस्वीकृत वर मॉगकर भरतके लिए राज्य मॉगती है। राजा दथरथ असमञ्जसमें पड जाते हैं। रामके समक्ष वे अपनी इस दुरवस्थाको प्रकट

बत्तीसवाँ पर्व

तैंतीसवाँ पर्व

चौंतीसवाँ पर्व

राम वनमे विराजमान है और लक्ष्मण पानी लेनेके लिए एक सरोवरके किनारे जाते है। वहाँ हाथी पर चढा एक युवराज अपने सेवकोंके द्वारा लक्ष्मणको बुलाकर उसके प्रति प्रेम प्रकट करता है। लक्ष्मणके यह कहने पर कि प्रथम मुझे अपने भाईके पास भोजन सामग्री भेजना है। यह सुन उस युवराजने अपने पास उत्तमोत्तम भोजन सामग्री बुलाकर प्रधान द्वारपाल द्वारा राम और सीताको अपने मण्डपमें बुलाया। लक्ष्मण वहाँ विद्यमान था ही सीता और राम भी वहाँ पहुँच गये। सबका आतिथ्य सत्कार करनेके बाद युवराजने अपना असली रूप प्रकट किया। वह कन्या होने पर भी अबतक कुमारके वेषमे रह रहा था। पूछने पर उसने इसकी आद्यन्तकथा कह सुनाई। मेरा पिता बालिखिल्य मेरे जन्मके पूर्वसे ही म्लेच्छ राजाके यहाँ कैद है। उनके अभावमे मैं कुमारका वेष रख राज्यका पालन कर रही हूँ मेरा नाम कल्याणमाला है। राम लक्ष्मण सीताने उसे सान्त्वना दी। तदनन्तर आगे चलकर उन्होंने म्लेच्छ राजाको आज्ञाकारी बनाकर बालिखिल्यको बन्धन मुक्त कराया। १२५-१३२

पैंतीसवाँ पर्व

वन विहार करते-करते सीता थक जाती है। प्याससे उसका मुख सूख जाता है। जिस किसी तरह सान्त्वना देकर राम लक्ष्मण उसे समीपवर्ती गाँवमे ले जाते है और सब क्रमप्राप्त कपिल ब्राह्मणकी यज्ञशालामे ठहर जाते है। ब्राह्मणीके द्वारा दिया ठण्डा पानी पीकर सीताका हृदय शान्त हो जाता है परन्तु उसी समय लकडियोंका भार शिर पर रखे हुए कपिल ब्राह्मण आता है और इन्हें अपनी यज्ञशालामे ठहरा देख ब्राह्मणीके प्रति रोषसे उबल उठता है। वह सबका तिरस्कार कर उन्हे घरसे निकलनेके लिए बाध्य करता है। उत्तेजित लक्ष्मणको शान्त कर राम और सीता वनमे एक वट वृक्षके नीचे पहुँच कर विश्राम करते है। आकाशमे घनघटा उमड आती है। जोरदार वर्षा होने लगती है तथा राम लक्ष्मण सीता असहायकी तरह पानीसे भींगने लगते है। यक्षपति अपने अवधिज्ञानसे उन्हें बलभद्र और नारायण जानकर नगरीकी रचना करता है और उसमें सबको ठहराता है। अचानक कपिल ब्राह्मण उस नगरीके पास जाकर जैन धर्म धारण करता है और रामकी दान-वीरतासे प्रलुब्ध चित्त हो ब्राह्मणीके साथ उनके दरबारमें जाता है। वहाँ लक्ष्मणको देख भयसे भागनेका प्रयत्न करता है पर सान्त्वना मिलने पर धीरजसे बैठकर रामका स्तवन करता है। राम उसे अपरिमित धनधान्य-सम्पदासे परिपूर्ण करते है। अपकारके बदले उपकारका अनुभव कर ब्राह्मण लज्जासे नतमस्तक हो गया। अन्तमे ब्राह्मणने गृहस्थीका भार स्त्रीके लिए सौंप जिन-दीक्षा धारण कर ली। १३३-१४६

छत्तीसवाँ पर्व

वर्षाकाल बीतने पर जब राम उस यक्ष निर्मित रामपुरीसे चलने लगे तब यक्षराजने उनसे क्षमा माँगी। महावनको पारकर राम, वैजयन्तपुरके समीपवर्ती मैदानमें पहुँचे। रात्रिके समय एक वृक्षके नीचे ठहर गये। वैजयन्तपुरके राजा पृथिवीधर और रानी इन्द्राणीकी वनमाला नामक पुत्री प्रारम्भसे लक्ष्मणको चाहती थी पर उनके वन भ्रमणका समाचार सुन राजा पृथिवीधर उसका अन्य कुमारके साथ विवाह करनेके लिए उद्यत हुआ। यह देख, वनमाला आत्मघातकी भावना लेकर रात्रिके समय अपनी सखियोंके साथ वनदेवीकी पूजाका बहाना कर वनमे गई और साथके सब लोगोके सो जाने पर वह उत्तरीय वस्त्रकी फाँसी बना मरनेके लिए तैयार हुई। लक्ष्मणने छिपे छिपे उसके पास पहुँच कर उसकी प्राण-रक्षा की।

सैंतीसवाँ पर्व

अडतीसवाँ पर्व

उनतालीसवाँ पर्व

चालीसवाँ पर्व

इकतालीसवाँ पर्व

बयालीसवाँ पर्व

तैंतालीसवाँ पर्व

चवालीसवाँ पर्व

पैंतालीसवाँ पर्व

छियालीसवाँ पर्व

सैंतालीसवाँ पर्व

अड़तालीसवाँ पर्व

उनचासवाँ पर्व

पचासवाँ पर्व

इक्यावनवाँ पर्व

बावनवाँ पर्व

त्रेपनवाँ पर्व

चौवनवाँ पर्व

पचपनवाँ पर्व

छप्पनवाँ पर्व

सत्तावनवाँ पर्व

अट्ठावनवाँ पर्व

उनसठवाँ पर्व

साठवाँ पर्व

इकसठवाँ पर्व

बासठवाँ पर्व

तिरसठवाँ पर्व

चौसठवाँ पर्व

पैंसठवाँ पर्व



श्रीमद्रविषेणाचार्यकृतम्

पद्मचरितापरनामधेयं

पद्मपुराणम्

षड्विंशतितमं पर्व

अतो जनकसम्बन्धं शृणु श्रेणिक ते परम्। निवेदयामि यद्वृत्तं भवावहितमानसः[1] ॥१॥

भामिनी जनकस्यासीद् विदेहा नाम सुन्दरी। गर्भनिर्वेदनं तस्याः प्रत्यैक्षत[2] चिरं सुरः ॥२॥

जगाद श्रेणिको नाथ तं गर्भं केन हेतुना। देवो ररक्ष विज्ञातुमेतदिच्छामि[3] शिष्यताम् ॥३॥

उवाच गौतमो राजा नाम्ना चक्रध्वजोऽभवत्। स्थाने चक्रपुराभिख्ये भार्या तस्य मनस्विनी ॥४॥

तयोश्चित्तोत्सवापत्यं कन्या गुरुगृहे च सा। रराज सितमृल्लेशैर्लेखनी वर्णपूरिका ॥५॥

[4]राज्ञः पुरोहितस्यास्य धूमकेशस्य पिङ्गलः। स्वाहाकुक्षिभवोऽधीते सुतस्तत्रैव पाठके ॥६॥

विद्यालाभस्तयोर्नासीदन्योन्यहृतचेतसोः। विद्याधर्मावगाहश्च जायतेऽवहितात्मनाम् ॥७॥

पुरा संसक्ततः प्रीतिः प्राणिनामुपजायते। प्रीतितोऽभिरतिप्राप्ती रतेर्विश्रम्भसंभवः ॥८॥

सद्भावात् प्रणयोत्पत्तिः प्रेमैव पञ्चहेतुकम्। दुर्मोचं बध्यते कर्म पातकैरिव पञ्चभिः ॥९॥

अथानन्तर गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक! अब राजा जनकका वृत्तान्त कहता हूँ सो तुम सावधान चित्त होकर सुनो ॥१॥ राजा जनककी विदेहा नामकी सुन्दरी स्त्री थी। उसके गर्भ रहा सो एक देव चिरकालसे उसके गर्भकी प्रतीक्षा करने लगा ॥२॥ यह सुन राजा श्रेणिकने कहा कि नाथ! वह देव किस कारणसे विदेहाके गर्भकी रक्षा करता था? यह मै जानना चाहता हूँ सो कहिए ॥३॥ इसके उत्तरमे गौतमस्वामीने कहा कि चक्रपुरनामा नगरमे एक चक्रध्वज नामका राजा था। उसकी स्त्रीका नाम मनस्विनी था ॥४॥ उन दोनोके चित्तोत्सवा नामकी कन्या उत्पन्न हुई। वह कन्या गुरुके घर अर्थात् चाटशालामें खड़िया मिट्टीके टुकड़ोंसे वर्णमाला लिखती हुई सुशोभित होती थी ॥५॥ उसी गुरुके घर राजाके पुरोहित धूमकेशकी स्वाहा नामकी स्त्रीसे उत्पन्न पिङ्गल नामका पुत्र भी अध्ययन करता था ॥६॥ चित्तोत्सवा और पिङ्गल इन दोनोंका चित्त परस्परमे हरा गया इसलिए उन्हें विद्याकी प्राप्ति नहीं हो पाई। सो ठीक ही है क्योंकि विद्या और धर्मकी प्राप्ति स्थिर-चित्तवालोंको ही होती है ॥७॥ आचार्य कहते हैं कि पहले स्त्री पुरुषका संसर्ग अर्थात् मेल होता है फिर प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीतिसे रति उत्पन्न होती है, रतिसे विश्वास उत्पन्न होता है और तदनन्तर विश्वाससे प्रणय उत्पन्न होता है। इस तरह प्रेम पूर्वोक्त पाँच कारणोंसे उत्पन्न होता है। जिस प्रकार हिंसादि पाँच पापोंसे जो छूट न सके ऐसे कर्मका बन्ध होता है उसी प्रकार पूर्वोक्त पाँच कारणोंसे प्राणियोंके गाढ़ प्रेम उत्पन्न होता है ॥८-९॥

---

१. मानस म० । २. प्रत्यैक्षित म० । ररक्ष । ३. -मेतमिच्छामि म०, ज०, ख० । ४. राज्ञां म०

अथासौ ज्ञातसद्भावा तेन चित्तोत्सवा रहः । ह्रियतेस्म महारूपा कीर्तिर्दुर्यशसा यथा ॥१०॥
दूरं देशं [1]यदानायि तदाज्ञायि सुबन्धुभिः । हृता प्रमाददोषेण मोहेन सुगतिर्यथा ॥११॥
कन्यया मुदितश्चौरः पिङ्गलो धनवर्जितः । न विभाति यथा लोभी तृष्णया धर्मवर्जितः ॥१२॥
विदग्धनगरं चाप दुर्गमं परराष्ट्रिणाम् । बहिः कृत्वा कुटीं तत्र तस्थौ निःस्वकपाटके[2] ॥१३॥
ज्ञानविज्ञानरहितस्तृणकाष्ठादिविक्रयात् । अनुरक्षति तां पत्नीं मग्नो दारिद्र्यसागरे ॥१४॥
पुत्रः प्रकाशसिंहस्य परराष्ट्रभयंकरः । जातोऽत्र प्रवरावल्यां राजा कुण्डलमण्डितः ॥१५॥
तेन दृष्टान्यदा बाला निर्यातेन कथञ्चन । हृतश्च पञ्चभिर्बाणैर्मारस्याभूत् सुदुःखितः ॥१६॥
प्रच्छन्नं प्रेषिता दूती तया रात्रौ नृपालयम् । यथासीत् कमलामेला सुमुखस्य प्रवेशिता ॥१७॥
तया सह सुखं रेमे प्रीतः कुण्डलमण्डितः । उर्वश्या सह सरक्तो यथासीन्नलकूबरः ॥१८॥
ततः स पिङ्गलाख्योऽपि श्रान्तः स्वगृहमागमत् । तामपश्यन् विशालाक्षीं मग्नो वैधुर्यसागरे ॥१९॥
विस्तीर्णेन किमुक्तेन सोऽयं विरहदुःखितः । न क्वचिल्लभते सौख्यं चक्रारूढ इवाकुलः ॥२०॥
हृतभार्यो द्विजो दीनस्तं राजानमुपागमत् । ऊचे चान्विष्य मे राजन् पत्नी केनापि चोरिता ॥२१॥
भीषितानां दरिद्राणामार्तानां च विशेषतः । नारीणां पुरुषाणां च सर्वेषां शरणं नृपः ॥२२॥

अथानन्तर जब पिङ्गलको चित्तोत्सवाके अभिप्रायका पूर्ण ज्ञान हो गया तब वह उस रूपवतीको एकान्त पाकर हर ले गया। जिस प्रकार अपयशके द्वारा कीर्तिका अपहरण होता है उसी प्रकार पिङ्गलके द्वारा चित्तोत्सवाका हरण हुआ ॥१०॥ जब वह उसे बहुत दूर देशमें ले गया तब बन्धुजनोंको उसका पता चला। जिस प्रकार मोहके द्वारा उत्तम गतिका हरण होता है उसी प्रकार प्रमादके द्वारा उस कन्याका हरण हुआ था ॥११॥ इधर कन्याको चुरानेवाला पिङ्गल कन्या पाकर प्रसन्न था, पर निर्धन होनेके कारण वह उससे उस प्रकार सुशोभित नहीं हो रहा था जिस प्रकारकी धर्महीन लोभी मनुष्य तृष्णासे सुशोभित नहीं होता है ॥१२॥ पिङ्गल कन्याको लेकर जहाँ दूसरे देशके लोगोंका प्रवेश नहीं हो सकता था ऐसे विदग्ध नगरमें पहुँचा और वहाँ नगरके बाहर जहाँ अन्य दरिद्र मनुष्य रहते थे वहीं कुटी बनाकर रहने लगा ॥१३॥ वह ज्ञान-विज्ञानसे रहित था साथ ही दरिद्रतारूपी सागरमें भी निमग्न था इसलिए तृण, काष्ठ आदि बेचकर अपनी उस पत्नीकी रक्षा करता था ॥१४॥

उसी नगरमें राजा प्रकाशसिंह और प्रवरावली रानीका पुत्र राजा कुण्डलमण्डित रहता था जो कि शत्रुओंके देशको भय उत्पन्न करनेवाला था ॥१५॥ एक दिन वह नगरके बाहर गया था सो वहाँ चित्तोत्सवा उसकी दृष्टिमें आई। देखते ही वह कामके पाँचों बाणोंसे ताड़ित होकर अत्यन्त दुःखी हो गया ॥१६॥ उसने गुप्तरूपसे चित्तोत्सवाके पास दूती भेजी सो उस दूतीने उसे रात्रिके समय राजमहलमें उस तरह प्रविष्ट करा दिया जिस प्रकार कि पहले राजा सुमुखकी दूतीने कमलामेलाको उसके महलमें प्रविष्ट कराया था ॥१७॥ जिस प्रकार अनुरागसे भरा नलकूबर उर्वशीके साथ रमण करता था उसी प्रकार प्रीतिसे भरा कुण्डलमण्डित उस चित्तोत्सवाके साथ रमण करने लगा ॥१८॥

तदनन्तर जब वह पिङ्गल थका-माँदा अपने घर आया तो उस विशाल लोचनाको न देखकर दुःखरूपी सागरमें निमग्न हो गया ॥१९॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि अधिक कहनेसे क्या? उसके विरहसे दुःखी हुआ वह चक्रारूढ़की तरह आकुल होता हुआ किसी भी जगह सुख प्राप्त नहीं करता था ॥२०॥ तदनन्तर जिसकी भार्या हरी गई थी ऐसा वह दीनहीन ब्राह्मण राजाके पास गया और जिस किसी तरह राजाका पता चलाकर बोला कि हे राजन्! किसीने मेरी स्त्री चुरा ली है ॥२१॥ राजा ही सबका शरण है और खासकर जो स्त्री-पुरुष भयभीत, दरिद्र

---

१. यथानायि म० । २. निस्वकपाटकः म० ।

अमात्यं धूर्तमाहूय समायं पार्थिवोऽब्रवीत् । चिराय मा कृथा माम जायास्यान्विष्यतामिति ॥२३॥
जगादेति च तत्रैकः सविकारेण चक्षुषा । सा दृष्टा पथिकैर्देव पौदनस्थानवर्त्मनि ॥२४॥
क्षान्त्यार्यावृन्दमध्यस्था[2] तपः कर्तुं समुद्यता[3] । विनिवर्तय तां क्षिप्रं किं विरौषि व्रज द्विज ॥२५॥
को वा प्रावृज्यकालोऽस्या दधत्यास्तरुणीं तनुम् । वरस्त्रीगुणपूर्णाया हरन्त्यास्तरुणं जनम् ॥२६॥
इत्युक्ते द्विज उत्थाय बद्ध्वा परिकरं दृढम् । दधाव रहसा विद्धो भ्रष्टाश्वतरको यथा ॥२७॥
पौदने नगरेऽन्विष्य चैत्येषूपवनेषु च । अदृष्ट्वा पुनरागच्छद् विदग्धनगरं द्रुतम् ॥२८॥
नृपाज्ञया नरैः क्रूरैर्गलघातैः स तर्जनैः । यष्टिलोष्टप्रहारैश्च दूरं निर्वासितो भृशम् ॥२९॥
स्थानभ्रंशं परिक्लेशमवमानं वधं तथा । अनुभूय परं दीर्घमध्वानं स प्रपन्नवान् ॥३०॥
रतिं न लभते क्वापि रहितः प्रियया तया । शुष्यत्यहनि रात्रौ च पतितोऽग्नाविवोरगः ॥३१॥
विशालपङ्कजवनं दावाग्निमिव पश्यति । सरोऽपि [4]गाहमानोऽसौ दह्यते विरहाग्निना ॥३२॥
एवं सुदुःखितमतिः पर्यटन् पृथिवीतले । नगरस्य स्थितं द्वारे[5] ददर्श [6]गगनाम्बरम् ॥३३॥
आचार्यमार्यगुप्तं[7] च समेत्य रचिताञ्जलिः । प्रणम्य शिरसा हृष्टो धर्मं शुश्राव तत्त्वतः ॥३४॥
श्रुत्वा धर्मं मुनेः प्राप्तः स वैराग्यमनुत्तमम् । प्रशशंस जिनेन्द्राणां शासनं शान्तमानसः ॥३५॥
अहो परममाहात्म्यो मार्गोऽयं जिनदेशितः । ममान्धकारयातस्य यो भास्कर इवोदितः ॥३६॥

तथा दुःखी होते हैं उनका राजा ही शरण होता है ॥२२॥ यह सुन राजाने एक धूर्तमन्त्रीको बुलाकर मायासहित कहा कि विलम्ब मत करो, शीघ्र ही इसकी स्त्रीका पता चलाओ ॥२३॥ तब एक मन्त्रीने विकारसहित नेत्र चलाकर कहा कि हे राजन् ! उस स्त्रीको तो पथिकोंने पोदनपुरके मार्गमें देखा था ॥२४॥ वह आर्यिकाओंके समूहके बीचमें स्थित थी तथा शान्तिपूर्वक तप करनेके लिए तत्पर जान पड़ती थी। अरे ब्राह्मण ! जल्दी जाकर उसे लौटा ला । इधर क्यों रो रहा है ? ॥२५॥ जब कि वह यौवनपूर्ण शरीरको धारण कर रही है, उत्तम स्त्रियोंके गुणोंसे परिपूर्ण है तथा तरुण जनोंको हरनेवाली है तब उसका यह तप करनेका समय ही कौन-सा है ? ॥२६॥ मन्त्रीके ऐसा कहते ही वह ब्राह्मण उठा और अच्छी तरह कमर कसकर वेगसे इस प्रकार दौड़ा जिस प्रकार कि बन्धनसे छूटा घोड़ा दौड़ता है ॥२७॥ वहाँ जाकर उसने पोदनपुरके मन्दिरों तथा उपवनोंमें अपनी स्त्रीकी बहुत खोज की। जब नहीं दिखी तब वह पुनः शीघ्र ही विदग्धनगरमें वापिस आ गया ॥२८॥ राजाकी आज्ञासे दुष्ट मनुष्योंने उसे गलेमें धिक्का देकर नाना प्रकारकी डाँट दिखाकर तथा लाठी और पत्थरोंसे मारकर बहुत दूर भगा दिया ॥२९॥ स्थान भ्रंश, अत्यन्त क्लेश, अपमान और मारका अनुभव कर उसने लम्बा रास्ता पकड़ लिया अर्थात् वह बहुत दूर चला गया ॥३०॥ स्त्रीके बिना वह कहीं भी रतिको प्राप्त नहीं होता था। वह अग्निमें पड़े हुए साँपके समान रात-दिन सूखता जाता था ॥३१॥ वह कमलोंके विशाल वनको दावानलके समान देखता था और सरोवरमें प्रवेश करते समय विरहाग्निसे जलने लगता था ॥३२॥ इस प्रकार दुःखित हृदय होकर वह पृथिवीपर घूमता रहा। एक दिन उसने नगरके द्वारपर स्थित आर्यगुप्त नामक दिगम्बर आचार्यको देखा। उनके पास जाकर उसने हाथ जोड़कर शिरसे प्रणाम किया तथा हर्षित हो धर्मका यथार्थ स्वरूप सुना ॥३३-३४॥ मुनिराजसे धर्म श्रवणकर वह परम वैराग्यको प्राप्त हुआ तथा शान्त-चित्त होकर इस प्रकार जिन-शासनकी प्रशंसा करने लगा ॥३५॥ कि अहो ! जिन भगवान्‌के द्वारा प्रदर्शित यह मार्ग उत्कृष्ट प्रभावसे सहित है। मैं अन्धकारमें पड़ा था सो यह मार्ग मेरे लिए मानो सूर्यके समान ही-

१. मायासहितं यथा स्यात्तथा । २. मध्यस्था म० । ३. समुद्यता म० । ४. ग्राहमानो म० । ५. दूरे ज०, क०, ख० । दूरं म० । ६. दिगम्बरमुनिम् । ७. -मर्यगुप्तिं च म० ।

प्रपद्येऽहं जिनेन्द्राणां शासनं पापनाशनम् । देहं निर्वापयाम्यद्य दग्धं विरहवह्निना ॥३७॥
ततः संवेगमापद्य [1]गुरुणाभ्यनुमोदितः । कृत्वा परिग्रहत्यागं दीक्षां [2]दैगम्बरीमितः ॥३८॥
तथापि विहरन् क्षोणीं सर्वसङ्गविवर्जितः । [3]चित्तोत्सवासमुत्कण्ठा जातुचित्प्रत्यपद्यत[4] ॥३९॥
सरित्पर्वतदुर्गेषु श्मशानेष्वटवीषु च । वसन् स परमं चक्रे तपो विग्रहशोषणम् ॥४०॥
न यस्य [5]जलदध्वान्ते काले खेदं गतं मनः । हेमन्ते हिमपङ्केन वपुर्यस्य न कम्पितम् ॥४१॥
[6]पूष्णो यस्य करैरुग्रैस्तापोऽणुरपि नो कृतः । स्मृत्वासीदत् सतां जातु स्नेहस्य किमु दुष्करम् ॥४२॥
दह्यमानं तथाप्येष शरीरं विरहाग्निना । पुनर्विध्यापयज्जैनवचनो[7]दकसीकरैः ॥४३॥
अर्धदग्धतरुच्छायं तत्तस्य वपुरागतम् । रमणीस्मरणेनोग्रतपसा च निरन्तरम् ॥४४॥
आस्तां तावदिदं वक्ष्ये [8]मण्डितस्याधुनेहितम्[9] । कथा ह्यन्तरयोगेन स्थिता रत्नावली यथा ॥४५॥
अनरण्ये च राज्यस्थे वृत्तमेतन्निबुध्यताम् । कथानुक्रमयोगेन कथ्यमानमतः शृणु ॥४६॥
स्थानं दुर्गं समाश्रित्य मण्डितेन वसुन्धरा । [10]विराधितानरण्यस्य कुशीलेन यथा स्थितिः[11] ॥४७॥
देशा उद्वासिता तेन दुर्जनेन गुणा यथा । विरोधिताश्च सामन्ताः कषाया[12] इव योगिना ॥४८॥
नाशक्नोदनरण्यस्तं गृहीतुं क्षुद्रमप्यलम् । [13]आखोर्गिरिबिलस्थस्य किं करोतु[14] मृगाधिपः ॥४९॥

उदित हुआ है ॥३६॥ मैं पापको नष्ट करनेवाले जिनशासनको प्राप्त होता हूँ और विरहरूपी अग्निसे जले हुए इस शरीरको आज शान्त करता हूँ ॥३७॥ तदनन्तर संवेगको प्राप्त हो तथा गुरुकी आज्ञा लेकर उसने परिग्रहका त्याग कर दिया और दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली ॥३८॥ यद्यपि वह समस्त परिग्रहसे रहित हो पृथिवीपर विहार करता था तथापि जब कभी भी चित्तोत्सवाके विषयमें उत्कण्ठित हो जाता था ॥३९॥ नदी, पर्वत, दुर्ग, श्मशान और अटवियोंमे निवास करता हुआ वह शरीरको सुखानेवाला परम तपश्चरण करता था ॥४०॥ मेघोंसे अन्धकारपूर्ण वर्षाकालमे उसका मन खेदको प्राप्त नहीं होता था और न हेमन्त ऋतुमे हिमके पङ्कसे उसका शरीर कम्पित होता था ॥४१॥ सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंसे उसे थोड़ा भी सन्ताप नहीं होता था। वह सदा सत्पुरुषोंका स्मरण करता रहता था सो ठीक ही है क्योंकि स्नेहके लिए कौन-सा कार्य दुष्कर अर्थात् कठिन है ? ॥४२॥ यह सब था तो भी उसका शरीर विरहाग्निसे जलता रहता था जिसे वह जिनेन्द्र भगवान्‌के वचनरूपी जलके छींटोंसे पुन:-पुन: शान्त करता था ॥४३॥ इस प्रकार निरन्तर होनेवाले स्त्रीके स्मरण तथा उग्र तपश्चरणसे उसका वह शरीर अधजले वृक्षके समान काला हो गया था ॥४४॥

अथानन्तर गौतमस्वामी कहते है कि अब यह कथा रहने दो। इसके बाद कुण्डलमण्डित की कथा कहता हूँ सो सुनो। यथार्थमे जिस प्रकार रत्नावली बीच-बीचमे दूसरे रत्नोंके अन्तरसे निर्मित होती है उसी प्रकार कथा भी बीच-बीचमें दूसरी-दूसरी कथाओंके अन्तरसे निर्मित होती है ॥४५॥ जिस समय राजा अनरण्य राज्यमें स्थित थे अर्थात् राज्य करते थे उस समय की यह कथा है सो कथाके अनुक्रमसे कही जानेवाली इस अवान्तर कथाको सुनो ॥४६॥ कुण्डलमण्डित दुर्गम गढ़का अवलम्बन कर सदा अनरण्यकी भूमिको उस तरह विराधित करता रहता था जिस प्रकार कि कुशील मनुष्य कुलकी मर्यादाको विराधित करता रहता है ॥४७॥ जिस प्रकार दुर्जन गुणोंको उजाड़ देता है उसी प्रकार उसने अनरण्यके बहुतसे देश उजाड़ दिये और जिस प्रकार योगी कषायोंका अवरोध करते हैं उसी प्रकार उसने बहुतसे सामन्तोंका अवरोध कर दिया ॥४८॥ यद्यपि वह क्षुद्र था तो भी अनरण्य उसे पकड़नेके लिए समर्थ नहीं हो

---

१. गुरुणात्यनुमोदितः म० । २. प्राप्तः । ३. चित्तोत्सवा समुत्कण्ठा म० । ४. प्रतिपद्यत म० । ५. जलधेर्ध्वान्ते म० । ६. पूष्णोर्यस्य म० । ७. वचनोत्कर -म० । ८. कुण्डलमण्डितस्य । ९. हितः ख० । १०. विरोधितानरण्यस्य । ११. स्थितेः म० । १२. कषाय इव म० । १३. मूषकस्य । १४. करोति म० ।

नक्तंदिवमशुष्यत् स [1]तत्पराजयचिन्तया । अनादरेण शारीरमपि कर्म प्रपन्नवान् ॥५०॥
ततोऽसौ बालचन्द्रेण सेनान्या जात्वभाष्यत । उद्विग्न इव कस्मात्त्वं सततं नाथ लक्ष्यसे ॥५१॥
उद्वेगकारणं भद्र मम मण्डितकः परम् । इत्युक्ते बालचन्द्रेण प्रतिज्ञेयं समाश्रिता ॥५२॥
[2]राजन्नसाधयित्वा तं [3]पापं मण्डितकं तव । सकाशं नागमिष्यामि व्रतमेतन्मया कृतम् ॥५३॥
इति राज्ञः पुरः कृत्वा सगरं रोषमुद्वहन् । बलेन चतुरङ्गेण सेनानीर्गन्तुमुद्यतः ॥५४॥
चित्तोत्सवा समायुक्तचित्तो मुक्तान्यचेष्टितः । प्रमादबहुलो भिन्नमूलभृत्यपक्षतायतिः ॥५५॥
अज्ञातलोकवृत्तान्तो मण्डितः खण्डितोद्यमः । हेलया बालचन्द्रेण गत्वा बद्धो मृगो यथा ॥५६॥
गृहीतबलराज्यं तं निर्वास्य [4]विषयात् कृती । बालचन्द्रोऽनरण्यस्य समीपं पुनरागमत् ॥५७॥
ततस्तेन सुभृत्येन कृतसुस्थवसुन्धरः । परं प्रमोदमापन्नोऽनरण्यः सुखमन्वभूत् ॥५८॥
शरीरमात्रधारी तु मण्डितः पादचारकः । पर्यटन् धरणीं दुःखी पश्चात्तापसमाहतः ॥५९॥
परिप्राप्याश्रमपदं श्रमणानां महात्मनाम् । नत्वा च शिरसाचार्यं धर्मं पप्रच्छ भावतः ॥६०॥
दुःखितानां दरिद्राणां वर्जितानां च बान्धवैः । व्याधिसंपीडितानां च प्रायो भवति धर्मधीः ॥६१॥
प्राव्रज्ये यस्य भगवन् शक्तिर्जन्तोर्न विद्यते । परिग्रहपरस्यास्य धर्मः कश्चिन्न विद्यते ॥६२॥

सका। सो ठीक ही है क्योंकि पहाड़के बिलमें स्थित चूहेका सिंह क्या कर सकता है ? ॥४९॥ वह रात-दिन उसीके पराजयकी चिन्तासे सूखता जाता था। भोजन, पान आदि शरीर-सम्बन्धी कार्य भी वह अनादरसे करता था ॥५०॥

तदनन्तर किसी दिन उसके बालचन्द्र नामा सेनापतिने उससे कहा कि हे नाथ ! आप सदा उद्विग्न-से क्यों दिखाई देते हैं ? ॥५१॥ इसके उत्तरमें राजा अनरण्यने कहा कि हे भद्र ! मेरे उद्वेगका परम कारण कुण्डलमण्डित है। राजाके यह कहनेपर बालचन्द्र सेनापतिने यह प्रतिज्ञा की कि हे राजन् ! 'पापी कुण्डलमण्डितको वश किये बिना मैं आपके समीप नहीं आऊँगा' मैंने यह व्रत लिया है ॥५२-५३॥ इस प्रकार राजाके सामने प्रतिज्ञा कर क्रोध धारण करता हुआ सेनापति चतुरङ्ग सेनाके साथ जानेके लिए उद्यत हुआ ॥५४॥

उधर चित्तोत्सवामें जिसका चित्त लग रहा था ऐसा कुण्डलमण्डित अन्य सब चेष्टाएँ छोड़कर प्रमादसे परिपूर्ण था। उसके मन्त्री आदि मूल पक्षके सभी लोग उससे भिन्न हो चुके थे। लोकमें कहाँ क्या हो रहा है ? इसका उसे कुछ भी पता नहीं था। सब प्रकारका उद्यम छोड़कर वह एक स्त्रीमें ही आसक्त हो रहा था। सो अनरण्यके सेनापति बालचन्द्रने जाकर उसे मृगकी भाँति अनायास ही बाँध लिया ॥५५-५६॥ चतुर बालचन्द्र उसकी सेना और राज्य पर अपना अधिकार कर तथा उसे देशसे निकालकर अनरण्यके समीप वापिस आ गया ॥५७॥ इस प्रकार उस उत्तम सेवकके द्वारा जिसकी वसुधामें पुनः सुख-शान्ति स्थापित की गई थी ऐसा अनरण्य परम हर्षको प्राप्त होता हुआ सुखका अनुभव करने लगा ॥५८॥

कुण्डलमण्डितका सब राज्य छिन गया था, शरीर मात्र ही उसके पास बचा था। ऐसी दशामें वह पैदल ही पृथिवी पर भ्रमण करता था। सदा दुःखी रहता था और पश्चात्ताप करता रहता था ॥५९॥ एक दिन वह भ्रमण करता दिगम्बर मुनियोंके तपोवनमें पहुँचा। वहाँ आचार्य महाराजको शिरसे नमस्कार कर उसने भावपूर्वक धर्मका स्वरूप पूछा ॥६०॥ सो ठीक ही है क्योंकि दुःखी, दरिद्री, भाई-बन्धुओंसे रहित और रोगसे पीड़ित मनुष्योंकी बुद्धि प्रायः धर्ममें लगती ही है ॥६१॥ उसने पूछा कि हे भगवन् ! जिसकी मुनिदीक्षा लेनेकी शक्ति नहीं है उस

१. तत्परो जय म० । २. हे राजन् ! असाधयित्वा = तं स्ववशमकृत्वा । ३. पापमहितक ख० । ४. देशात् ।

कथ वा मुच्यते पापैश्चतु सञ्ज्ञापरायण । एतदिच्छामि विज्ञातु प्रसीद व्याकुरुष्व मे ।।६३।।
गुरु प्रोवाच वचन धर्म प्राणिदया स्मृता । मुच्यन्ते देहिन' पापैरात्मनिन्दाविगर्हणै. ।।६४।।
हिसाया कारण घोर शुक्रशोणितसभवम् । पिशित मा भक्षय त्व शुद्ध चेद्धर्ममिच्छसि[1] ।।६५।।
प्राणिनां मृत्युभीरूणां मासैश्चर्मप्रसेविकाम्[2] । पूरयित्वा ध्रुव याति नरक पापमानव. ।।६६।।
शिरसो मुण्डनै स्नानैर्विलिङ्ग[3]ग्रहणादिभि । नास्ति सधारण जन्तोर्मांसभक्षणकारिण ।।६७।।
तीर्थस्नानानि दानानि सोपवासानि देहिन । नरकान्न परित्राण कुर्वन्ति पिशिताशिन' ।।६८।।
सर्वजातिगता जीवा बान्धवा पूर्वजन्मसु । स्युरमी भक्षितास्तेन मांसभक्षणकारिणा ।।६९।।
पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति [4]परिपन्थ च तिष्ठति । यो नरोऽस्मादपि [5]क्रूरां मधुमांसाद् गतिं व्रजेत् ।।७०।।
न वृक्षाज्जायते मास नोद्भिद्य धरणीतलम् । नाम्भसः पद्मवच्चापि सद्द्रव्येभ्यो यथौषधम् ।।७१।।
पक्षिमत्स्यमृगान् हत्वा वराकान् प्रियजीवितान् । क्रूरैरुत्पाद्यते मांस तन्नाश्नन्ति दयापरा. ।।७२।।
[6]स्तन्येन वर्धित [7]यस्या शरीर ता मृतां सतीम् । महिषी मातर कष्ट भक्षयन्ति नराधमा. ।।७३।।
माता पिता च पुत्रश्च मित्राणि च सहोदरा. । भक्षितास्तेन यो मास भक्षयत्यधमो नरः ।।७४।।
इतः क्ष्मापटल मेरोरधस्तात् सप्तक स्मृतम् । तत्र रत्नप्रभाभिख्ये देवा भवनवासिन ।।७५।।
सकषाय तप. कृत्वा जायन्ते तत्र देहिन । देवानामधमास्ते तु दुष्टकर्मसमन्विता. ।।७६।।

परिग्रही मनुष्यके लिए क्या कोई धर्म नही है ? ।।६२।। अथवा चारो संज्ञाओमे तत्पर रहनेवाला गृहस्थ पापोंसे किस प्रकार छूट सकता है ? मै यह जानना चाहता हूँ सो आप प्रसन्न होकर मेरे लिए यह सब बताइये ।।६३।।

तदनन्तर मुनिराजने निम्नाङ्कित वचन कहे कि जीवदया धर्म है तथा अपनी निन्दा गर्हा आदि करनेसे मनुष्य पापोंसे छूट जाते है ।।६४।। यदि तू शुद्ध अर्थात् निर्दोष धर्म धारण करना चाहता है तो हिसाका भयंकर कारण तथा शुक्र और शोणितसे उत्पन्न मांसका कभी भक्षण नहीं कर ।।६५।। जो पापी पुरुष मृत्युसे डरनेवाले प्राणियोके माससे अपना पेट भरता है वह अवश्य ही नरक जाता है ।।६६।। शिर मुँडाना, स्नान करना तथा नाना प्रकारके वेष धारण करना आदि कार्योंसे मांसभक्षी मनुष्यकी रक्षा नहीं हो सकती ।।६७।। तीर्थक्षेत्रोंमें स्नान करना, दान देना तथा उपवास करना आदि कार्य मासभोजी मनुष्यको नरकसे बचानेमें समर्थ नही है ।।६८।। समस्त जातियोके जीव इस प्राणीके पूर्वभवोमे बन्धु रह चुके हैं। अत' मांसभक्षण करने वाला मनुष्य अपने इन्हीं भाई-बन्धुओंको खाता है यह समझना चाहिए ।।६९।। जो मनुष्य पक्षी, मत्स्य और मृगोको मारता है तथा इनके विरुद्ध आचरण करता है वह मधु-मांसभक्षी मनुष्य इन पक्षी आदिसे भी अधिक क्रूर गतिको प्राप्त होता है ।।७०।। मांस न वृक्षसे उत्पन्न होता है, न पृथिवीतलको भेदन कर निकलता है, न कमलकी तरह पानीसे उत्पन्न होता है और न ओषधिके समान किन्हीं उत्तम द्रव्योंसे उत्पन्न होता है। किन्तु जिन्हें अपना जीवन प्यारा है ऐसे पक्षी, मत्स्य, मृग आदि दीन-हीन प्राणियोंको मारकर दुष्ट मनुष्य मांस उत्पन्न करते हैं। इसलिए दयालु मनुष्य उसे कभी नहीं खाते ।।७१-७२।। जिसके दूधसे शरीर पुष्ट होता है तथा जो माताके समान है ऐसी भैंसके मरने पर नीच मनुष्य उसे खा जाता है यह कितने कष्टकी बात है ? ।।७३।। जो नीच मनुष्य मांस खाता है उसने माता, पिता, पुत्र, मित्र और भाइयोका ही भक्षण किया है ।।७४।। यहाँसे मेरु पर्वतके नीचे सात पृथिवियाँ हैं उनमें से रत्नप्रभानामक पृथिवीमें भवनवासी देव रहते है । जो मनुष्य कषायसहित तप करते हैं। वे उनमे उत्पन्न होते हैं। भवनवासी देव सब देवोंमे नीच देव कहलाते

१. -मृच्छसि म० । २. उदरदरीम् । ३. विविधलिङ्गधारणैः । ४. अमार्गं प्रतिकूलप्रवृत्तिमिति यावत् । ५. क्रूरान् म० । ६. शुन्येन म० । ७. यस्या म० ।

अधस्तस्या क्षितेरन्या दारुण षट् च भूमय । नारका यासु पापस्य भुञ्जन्ते कर्मणः फलम् ॥७७॥
कुरूपा दारुणारावा दु स्पर्शा ध्वान्तपूरिता । उपमोज्झितदु खाना कारणीभूतविग्रहा ॥७८॥
कुम्भीपाकाख्यमाख्यात नरक भीमदर्शनम् । नदी वैतरणी घोरा [1]शाल्मली क्रूरकण्टका ॥७९॥
असिपत्रवनच्छन्ना क्षुरधाराश्च पर्वता । ज्वलदग्निनिभास्तीक्ष्णलोहकीला निरन्तरा ॥८०॥
तेषु ते तीव्रदु खानि प्राप्नुवन्ति निरन्तरम् । प्राणिनो मधुमांसादा[2] घातकाश्चासुधारिणाम् ॥८१॥
नास्त्यर्धाङ्गुलमात्रोऽपि प्रदेशस्तत्र दु खितै । क्रियते नारकैर्यत्र निमेषमपि विश्रम ॥८२॥
प्रच्छन्नमिह तिष्ठाम इति ध्यात्वा पलायिता । हन्यन्ते निर्दयैरन्यैर्नारकैरमरैश्च ते ॥८३॥
ज्वलदङ्गारकुटिले दग्धा मत्स्या इवानिले । विरस विहिताक्रन्दा विनि सृत्य कथञ्चन ॥८४॥
नारकाग्निभयग्रस्ता· प्राप्ता वैतरणीजलम् । [3]चण्डक्षारोर्मिभिर्भूयो दह्यन्ते वह्नितोऽधिकम् ॥८५॥
असिपत्रवन यातश्छायाप्रत्याशया द्रुतम् । पतद्भिस्तत्र दार्यन्ते चक्रखड्गगदादिभिः ॥८६॥
विच्छिन्ननासिकाकर्णस्कन्धजङ्घादिविग्रहाः । कुम्भीपाके[4] नियुज्यन्ते [5]वान्तशोणितवर्षिण ॥८७॥
प्रपीड्यन्ते च यन्त्रेषु क्रूरारावेषु विह्वला । पुन शैलेषु भिद्यन्ते तीक्ष्णेषु विरसस्वरा ॥८८॥
उल्लङ्घ्यन्तेऽतितुङ्गेषु पादपेष्वन्धकारिषु । ताड्यन्ते मुद्गराघातैर्महद्भिर्मस्तके तथा ॥८९॥
जल प्रार्थयमानाना तृष्णार्त्तानां प्रदीयते । ताम्रादिकलल तेन दग्धदेहाः सुदु खिता. ॥९०॥

है तथा ये दुष्ट कार्य करने वाले होते है ॥७५–७६॥ रत्नप्रभा पृथिवीके नीचे छह भयंकर पृथिवियाँ और हैं जिनमे नारकी जीव पाप कर्मका फल भोगते है ॥७७॥ वे नारकी कुरूप होते है, उनके शब्द अत्यन्त दारुण होते है, वे अन्धकारसे परिपूर्ण रहते है तथा उनके शरीर उपमातीत दुःखोके कारण है ॥७८॥ उन पृथिवियोंमे कुम्भीपाक नामका भयकर नरक है, भय उत्पन्न करने वाली वैतरणी नदी है, तथा तीक्ष्ण काँटोसे युक्त शाल्मली वृक्ष है॥७९॥ असिपत्र वनसे आच्छादित तथा छुरोकी धारके समान तीक्ष्ण पर्वत है और जलती हुई अग्निके समान निरन्तर लोहेकी तीक्ष्ण कीले वहाँ व्याप्त है ॥८०॥ मधु मांस खानेवाले तथा प्राणियोका घात करनेवाले जीव उन नरकोमे निरन्तर तीव्र दु ख पाते रहते है ॥८१॥ वहाँ अर्ध-अङ्गुल प्रमाण भी ऐसा प्रदेश नहीं है जहाँ दुःखी नारकी निमेषमात्रके लिए भी विश्राम कर सके ॥८२॥ 'हम यहाँ छिपकर रहेंगे' ऐसा सोचकर नारकी भागकर जाते है पर वहीं पर दयाहीन अन्य नारकी और दुष्ट देव उनका घात करने लगते है ॥८३॥ जिस प्रकार जलते हुए अंगारोंसे कुटिल अग्निमे जलते हुए मच्छ विरस शब्द करते हैं उसी प्रकार नारकी भी अग्निमे पड़ कर विरस शब्द करते हैं। यदि अग्निके भयसे भयभीत हो किसी तरह निकलकर वैतरणी नदीके जलमें पहुँचते हैं तो अत्यन्त खारी तरङ्गोके द्वारा अग्निसे भी अधिक जलने लगते है ॥८४–८५॥ यदि छायाकी इच्छासे शीघ्र ही भागकर असिपत्र वनमे पहुँचते है तो वहाँ पडते हुए चक्र, खड्ग, गदा आदि शस्त्रोसे उनके खण्ड-खण्ड हो जाते है ॥८६॥ जिनके नाक, कान, स्कन्ध तथा जङ्घा आदि अवयव काट लिये गये हैं तथा जो निकलते हुए खूनकी मानो वर्षा करते है ऐसे उन नारकियोको कुम्भीपाकमें डाला जाता है अर्थात् किसी घड़े आदिमे भर कर उन्हें पकाया जाता है ॥८७॥ जिनसे क्रूर शब्द निकल रहा है ऐसे कोल्हुओमें उन विह्वल नारकियोको पेल दिया जाता है फिर तीक्ष्ण नुकीले पर्वतों पर गिराकर उनके टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं जिससे वे विरस शब्द करते हैं ॥८८॥ अन्धा कर देने वाले बहुत ऊँचे वृक्षों पर उन्हें चढ़ाया जाता है तथा बड़े-बड़े मुद्गरों की चोटसे उनका मस्तक पीटा जाता है ॥८९॥ जो नारकी प्याससे पीड़ित होकर पानी माँगते

१. शाल्मली क्रूरकण्टका क०। २. मासादिघातका म०। ३. चन्द्र म०। तीव्र ब०। ४. पाकेन युज्यन्ते। ५. वान्त म०। वात ब०।

ब्रुवते नास्ति तृष्णा न इत्यतोऽपि बलाद्‌मी । पाय्यन्ते तदतिक्रूरैः सदंशव्यावृताननाः[1,2] ॥९१॥
प्रपात्य[3] भूतले भूयो वक्षस्याक्रम्य[4] दीयते । पादः क्रूरवचोभिस्तैस्तेषा कल्मषकर्मणाम्[5] ॥९२॥
तेषा निर्दग्धकण्ठाना दह्यते हृदय पुन. । निष्क्रामन्ति पुरीतन्ति[6] निर्भिद्य जठर सह ॥९३॥
परस्परकृत दु ख तथा भवनवासिभि । नरका यत्प्रपद्यन्ते कस्तद्वर्णयितु क्षम ॥९४॥
इति ज्ञात्वा महादु ख नरके मांससंभवम् । वर्जनीय प्रयत्नेन विदुषा मासभक्षणम् ॥९५॥
अत्रान्तरे जगादैव कुण्डलस्त्रस्तमानस' । नाथाणुव्रतयुक्ताना का गतिर्दृश्यते वद ॥९६॥
गुरुरूचे न यो मास खादत्यतिदृढव्रत ।[7] तस्य वक्ष्यामि यत्पुण्य सम्यग्दृष्टेर्विशेषत. ॥९७॥
उपवासादिहीनस्य दरिद्रस्यापि धीमत: । मांसभुक्तेर्निवृत्तस्य सुगतिर्हस्तवर्तिनी ॥९८॥
य पुन शीलसम्पन्नो जिनशासनभावित. । सोऽणुव्रतधर प्राणी सौधर्मादिषु जायते ॥९९॥
अहिंसा प्रवर मूल धर्मस्य परिकीर्तितम् । सा च मासान्निवृत्तस्य जायतेऽत्यन्तनिर्मला ॥१००॥
दयावान् सङ्गवान् योऽपि म्लेच्छश्चाण्डाल एव वा । मधुमासान्निवृत्त सन् सोऽपि पापेन मुच्यते ॥१०१॥
मुक्तमात्र' स पापेन पुण्य गृह्णाति मानव । जायते पुण्यबन्धेन सुरः सन्मनुजोऽथवा[7] ॥१०२॥
सम्यग्दृष्टि. पुनर्जन्तु कृत्वाणुव्रतधारणम् । लभते परमान्भोगान् ध्रुव[8] स्वर्गनिवासिनाम् ॥१०३॥

है उनके लिए तामा आदि धातुओका कलल (पिघलाया हुआ रस) दिया जाता है जिससे उनका शरीर जल जाता है तथा अत्पन्न दु खी हो जाते है ॥९०॥ यद्यपि वे कहते है कि हमे प्यास नही लगी है तो भी जबर्दस्ती सडाशीसे मुँह फाड़ कर उन्हें वह कलल पिलाया जाता है ॥९१॥ पाप करने वाले उन नारकियोको ज़मीन पर गिराकर तथा उनकी छाती पर चढ़कर दुष्ट वचन बोलते हुए बलवान् नारकी उन्हे पैरोसे रूँदते है ॥९२॥ पूर्वोक्त कललपानसे उन नारकियोके कण्ठ जल जाते है तथा हृदय जलने लगते हैं । यही नहीं पेट फोड़ कर उनकी ऑते भी बाहर निकल आती है ॥९३॥ इसके सिवाय भवनवासी देव उन्हें परस्पर लड़ाकर जो दु.ख प्राप्त कराते है उसका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥९४॥ इस तरह मास खानेसे नरकमे महादुःख भोगना पड़ता है ऐसा जानकर समझदार पुरुषको प्रयत्नपूर्वक मांसभक्षणका त्याग करना चाहिए ॥९५॥

इसी बीचमे जिसका मन अत्यन्त भयभीत हो रहा था ऐसे कुण्डलमण्डितने कहा कि हे नाथ ! अणुव्रतसे युक्त मनुष्योकी क्या गति होती है सो कहिये ॥९६॥ इसके उत्तरमे गुरु महाराजने कहा कि जो मांस नहीं खाता है तथा अत्यन्त दृढ़तासे व्रत पालन करता है उसे तथा खासकर सम्यग्दृष्टि मनुष्यको जो पुण्य होता है उसे कहता हूँ ॥९७॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य मास-भक्षणसे दूर रहता है भले ही वह उपवासादिसे रहित हो तथा दरिद्र हो तो भी उत्तम गति उसके हाथमे रहती है ॥९८॥ और जो शीलसे सम्पन्न तथा जिनशासनकी भावनासे युक्त होता हुआ अणुव्रत धारण करता है वह सौधर्मादि स्वर्गोमे उत्पन्न होता है ॥९९॥ धर्मका उत्तम मूल कारण अहिंसा कही गई है । जो मनुष्य मांस-भक्षणसे निवृत्त रहता है उसीके अत्यन्त निर्मल अहिसा-धर्म पलता है ॥१००॥ जो परिग्रही म्लेच्छ अथवा चाण्डाल भी क्यो न हो यदि दयालु है और मधु-मांस-भक्षणसे दूर रहता है तो वह भी पापसे मुक्त हो जाता है ॥१०१॥ ऐसा जीव पापसे मुक्त होते ही पुण्य-बन्ध करने लगता है और पुण्य-बन्धके प्रभावसे वह देव अथवा उत्तम मनुष्य होता है ॥१०२॥ यदि सम्यग्दृष्टि मनुष्य अणुव्रत धारण करता है तो वह

१. अस्माकम् । २. व्यावृतानन' म० । ३. प्रयात्य म० । ४. वक्षस्याक्रम म० । ५. ९२–९३ श्लोकयोरयं पाठः 'ब' पुस्तकसंमतः । पुस्तकान्तरेषु त्वित्थं पाठोऽस्ति 'प्रपात्य भूतले भूयो वक्षस्याक्रमदीयते । तेषा निर्दग्धकण्ठानां दह्यते हृदय पुनः॥९२॥ निष्क्रामन्ति पुरीतन्ति निर्भिद्य जठर सह । ज्वलता कललेनाशु तेषा कलुषकर्मणाम् ॥९३॥ ६. अंत्राणि । ७. यथा म० । ८. विभुः क०, ख०, ग० ।

इत्याचार्यस्य वचनं श्रुत्वा कुण्डलमण्डितः । मन्दभाग्यतया शक्त्या रहितोऽणुव्रतेष्वपि ॥१०४॥
प्रणिपत्य गुरुं मूर्ध्ना मधुमांसविवर्जनम् । जग्राह शरणोपेतं समीचीनं च दर्शनम् ॥१०५॥
कृत्वा चैत्ये[1] नमस्कारं गुरोर्दिग्वाससा तथा । निष्क्रान्तः स[2] ततो देशादिति चिन्तामुपागतः ॥१०६॥
मातुः सहोदरो भ्राता कृतान्तसमविक्रमः । ध्रुवं मे सीदतः सोऽयं भविष्यत्यवलम्बनम् ॥१०७॥
राजा भूत्वा पुनः शत्रुं जेष्यामीति सुनिश्चितः । आशां वहन् प्रवृत्तोऽसावातुरो दक्षिणापथम् ॥१०८॥
श्रमादिदुःखपूर्णस्य व्रजतोऽस्य शनैः शनैः । उदीयुर्व्याधयो देहे पापैरन्यभवार्जितैः ॥१०९॥
सन्धिषु च्छिद्यमानेषु भिद्यमानेषु मर्मसु । सर्वस्य जगतोऽत्राणं[3] मरणं तस्य ढौकितम् ॥११०॥
मुञ्चते समये [4]यस्मिन् जीवं कुण्डलमण्डितः । तत्रैव च्यवते देवः[5] शेषपुण्याद्दिवश्च्युतः ॥१११॥
गर्भे च[6] तौ विदेहाया विधिना परियोजितौ । [7]पश्य कर्मानुभावस्य विचित्रमिति चेष्टितम् ॥११२॥
एतस्मिन्नन्तरे साधुः कालं कृत्वा स पिङ्गलः । तपोबलान्महातेजा महाकालोऽसुरोऽभवत् ॥११३॥
भवनेऽवधिना स्मृत्वा धर्मस्य च फलोदयम् । दध्यौ चित्तोत्सवा क्वेति तावज्ज्ञे यथाविधि ॥११४॥
दुष्टया किं तया कृत्यं क्वासौ कुण्डलमण्डितः । येनाहं प्रापितोऽवस्थां विधुरां विरहार्णवे ॥११५॥
पत्न्या जनकराजस्य गर्भमाश्रित्य मण्डितः । साकमन्येन जीवेन विवेद स्थित इत्यसौ ॥११६॥
सूता तावदियं देवी युगलं किं ममानया । गर्भद्वितययोगिन्या मृतयास्ति प्रयोजनम् ॥११७॥

निश्चित ही देवोंके उत्कृष्ट भोग प्राप्त करता है ॥१०३॥ इस प्रकार आचार्यके वचन सुनकर कुण्डलमण्डित मन्द भाग्य होनेसे अणुव्रत धारण करनेके लिए भी समर्थ नहीं हो सका ॥१०४॥ अतः उसने शिरसे गुरुको नमस्कार कर मधुमांसका परित्याग किया और शरणभूत सम्यग्दर्शन धारण किया ॥१०५॥

तदनन्तर जिन-प्रतिमा और दिगम्बराचार्यको नमस्कार कर वह ऐसा विचार करता हुआ उस देशसे बाहर निकला कि मेरी माताका सगा भाई यमराजके समान पराक्रमका धारी है सो वह विपत्तिमें पड़े हुए मेरी अवश्य ही सहायता करेगा। मैं फिरसे राजा होकर निश्चित ही शत्रुको जीतूँगा। ऐसी आशा रखता हुआ वह कुण्डलमण्डित दुःखी हो दक्षिण दिशाकी ओर चला ॥१०६–१०८॥ वह थकावट आदि दुःखोंसे परिपूर्ण होनेके कारण धीरे-धीरे चलता था। बीचमें पूर्वभवमें संचित पाप कर्मके उदयसे उसके शरीरमें अनेक रोग प्रकट हो गये ॥१०९॥ उसकी सन्धियाँ छिन्न होने लगीं और मर्म स्थानोंमें भयंकर पीड़ा होने लगी। अन्तमें समस्त संसार जिससे नहीं बचा सकता ऐसा उसका मरण आ पहुँचा ॥११०॥ जिस समय कुण्डलमण्डितने प्राण छोड़े उसी समय चित्तोत्सवाका जीव जो स्वर्गमें देव हुआ था शेष पुण्यके प्रभावसे स्वर्गसे च्युत हुआ ॥१११॥ भाग्यवश वे दोनों ही जीव राजा जनककी रानी विदेहाके गर्भमें उत्पन्न हुए। गौतमस्वामी कहते हैं कि अहो श्रेणिक! कर्मोदयकी यह विचित्र चेष्टा देखो ॥११२॥ इसी बीचमें वह पिङ्गल ब्राह्मण अच्छी तरह मरण कर तपके प्रभावसे महातेजस्वी महाकाल नामका असुर हुआ ॥११३॥ उसने उत्पन्न होते ही अवधिज्ञानसे धर्मके फलका विचार किया और साथ ही इस बातका ध्यान किया कि चित्तोत्सवा कहाँ उत्पन्न हुई है? वह अपने अवधिज्ञानसे इन सब बातोंको अच्छी तरहसे जान गया ॥११४॥ फिर कुछ देर बाद उसने विचार किया कि मुझे उस दुष्टासे क्या प्रयोजन है? वह कुण्डलमण्डित कहाँ है जिसने मुझे विरहरूपी सागरमें गिराकर दुःखपूर्ण अवस्था प्राप्त कराई थी ॥११५॥ उसने अवधिज्ञानसे यह जान लिया कि कुण्डलमण्डित राजा जनककी पत्नीके गर्भमें चित्तोत्सवाके जीवके साथ विद्यमान है ॥११६॥ उसने विचार किया कि यदि गर्भमें ही इसे मारता हूँ तो रानी विदेहा

१. चैत्यनमस्कारं ब० । २. सततं ख० । ३. न विद्यते त्राणं यस्मात्तत्, ब० पुस्तके टिप्पणम् । ४. तस्मिन् म० । ५. देवी शेषपुण्याद्दिवः सती ब० । ६. चित्तौ म० । ७. यस्य म० ।

ततो निर्लुठित सन्त पाप मण्डितक ध्रुवम् । नेष्यामि यदह दु ख तत्तमेव दुरीहितम् ॥११८॥
इति सचिन्तयन् क्रुद्ध पूर्वकर्मानुबन्धत । देवो रक्षति त गर्भं समृदन्पाणिना करम् ॥११९॥
इति ज्ञात्वा क्षम कर्तुं दु ख जन्तोर्न कस्यचित् । कालव्यवहित तद्धि कृतमात्मन एव हि ॥१२०॥
कालेनाथ सुत देवी प्रसूता युगल शुभम् । सुत दुहितर चान्ते जहार पृथुक[1] सुर ॥१२१॥
आस्फाल्य मारयाम्येन शिलाया पूर्वमण्डितम् । इति ध्यात पुरा तेन पुनरेवमचिन्तयत् ॥१२२॥
धिड्मया चिन्तित सर्वं ससारपरिवर्धनम् । जायते कर्मणा येन तत्कुर्वीत कथ बुध ॥१२३॥
तृणस्यापि पुरा दु ख [2]श्रामण्ये न कृत मया । सर्वारम्भनिवृत्तेन [3]तपोवीवधवाहिना ॥१२४॥
गुरोस्तस्य प्रसादेन कृत्वा धर्मं सुनिर्मलम् । ईदृशीं द्युतिमाप्तोऽस्मि करोमि दुरित कथम् ॥१२५॥
स्वल्पमप्यर्जित पाप व्रजत्युपचय परम् । निमग्नो येन ससारे चिर दु खेन दह्यते ॥१२६॥
निर्दोषभावनो यस्तु दयावान् सुसमाहित । स्थितं करतले तस्य रत्न सुगतिसज्ञकम् ॥१२७॥
घृणावान् सप्रधार्येद तमलङ्कृत्य बालकम् । कुण्डले कर्णयोरस्य चक्रे दीप्तांशुमण्डले ॥१२८॥
पर्णलघ्वी ततो विद्या सक्रमय्य शिशौ सुर । सुखदेशे विमुच्यैन गतो धाम मनीषितम् ॥१२९॥

मरणको प्राप्त होगी इसलिए यह युगल सन्तानको उत्पन्न करे पीछे देखा जायगा । दो गर्भको धारण करनेवाली इस रानीके मारनेसे मुझे क्या प्रयोजन है ? गर्भसे निकलते ही इस पापी कुण्डलमण्डितको अवश्य ही भारी दुःख प्राप्त कराऊँगा ॥११७-११८॥ ऐसा विचार करता हुआ वह असुर पूर्वकर्मके प्रभावसे अत्यन्त क्रुद्ध रहने लगा तथा हाथसे हाथको मसलता हुआ उस गर्भकी रक्षा करने लगा ॥११९॥ गौतमस्वामी कहते है कि राजन् ! ऐसा जानकर कभी किसीको दुःख पहुँचाना उचित नही है क्योकि कालान्तरमे वह दुःख अपने आपको भी प्राप्त होता है ॥१२०॥

अथानन्तर समय आनेपर रानी विदेहाने एक पुत्र और एक पुत्री इस प्रकार युगल सन्तान उत्पन्न की । सो उत्पन्न होते ही असुरने पुत्रका अपहरण कर लिया ॥१२१॥ उसने पहले तो विचार किया कि इस कुण्डलमण्डितके जीवको मै शिलापर पछाड़कर मार डालूँ । फिर कुछ देर बाद वह वह विचार करने लगा ॥१२२॥ कि मैने जो विचार किया है उसे धिक्कार है । जिस कार्यके करनेसे संसार (जन्म-मरण) की वृद्धि होती है उस कार्यको बुद्धिमान् मनुष्य कैसे कर सकता है ? ॥१२३॥ पूर्वभवमे मुनि अवस्थामे जब मै सब प्रकारके आरम्भसे रहित था तथा तपरूपी कॉवरको धारण करता था तब मैने तृणको भी दुःख नहीं पहुँचाया था ॥१२४॥ उन गुरुके प्रसाद से अत्यन्त निर्मल धर्म धारण कर मै ऐसी कान्तिको प्राप्त हुआ हूँ । अतः अब ऐसा पाप कैसे कर सकता हूँ ॥१२५॥ संचित किया हुआ थोड़ा पाप भी परम वृद्धिको प्राप्त हो जाता है जिससे संसार-सागरमे निमग्न हुआ यह जीव चिरकाल तक दुःखसे जलता रहता है ॥१२६॥ परन्तु जिसकी भावना निर्दोष है जो दयालु है और जो अपने परिणामोको ठीक रखता है सुगतिरूपी रत्न उसके करतलमें स्थित रहता है ॥१२७॥ ऐसा विचार करके हृदयमें दया उत्पन्न हो गई जिससे उसने उस बालकको मारनेका विचार छोड़ दिया तथा उसके कानोमे देदीप्यमान किरणोके धारक कुण्डल पहिनाकर उसे अलंकृत कर दिया ॥१२८॥ तदनन्तर वह देव उस बालकमें पर्णलघ्वी विद्याका प्रवेश कराकर तथा उसे सुखकर स्थानमे छोड़कर इच्छित स्थानपर चला गया ॥१२९॥

१. बालक 'पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः' इत्यमर. । २. श्रामण्येन म० । ३. तपो विविध-म० ।

नक्तं शक्त्या स्थितेनासावुद्याने नभसः पतन् । विद्याभृतेन्दुगतिना ददृशे सुखभाजनम् ॥१३०॥
उडुपातः किमेष स्याद् विद्युत्खण्डोऽथवा च्युतः । वितर्क्येति समुत्पत्य ददृशे पृथुकः शुभम् ॥१३१॥
गृहीत्वा च प्रमोदेन देव्याः पुष्पवतीश्रुतेः । वरशय्याप्रसुप्तायाः[1] जङ्घादेशे चकार सः ॥१३२॥
ऊचे[2] चैतां[3] द्रुतस्वानः उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुन्दरि । किं शेषे बालकं पश्य सम्प्रसूतासि शोभनम्[4] ॥१३३॥
ततः कान्तकरस्पर्शसौख्यसंपत्प्रबोधिता । शय्यातः सहसोत्तस्थौ सा विघूर्णितलोचना ॥१३४॥
अर्भकं च ददर्शातिसुन्दरं सुन्दरानना । तस्यास्तदंशुजालेन निद्राशेषो निराकृतः ॥१३५॥
परं च विस्मयं प्राप्ता पप्रच्छ प्रियदर्शना । कयायं जनितो नाथ पुण्यवत्या स्त्रिया शिशुः ॥१३६॥
सोऽवोचद्दयिते जातस्तवायं प्रवरः सुतः । प्रतीहि संशयं मा गास्त्वत्तो धन्या परा तु का ॥१३७॥
सावोचत्प्रिय वन्ध्यास्मि कुतो मे सुतसंभवः । प्रतारितास्मि दैवेन किं मे[5] भूयः प्रतार्यते ॥१३८॥
सोऽवोचद्देवि मा शङ्कां कार्षीः कर्मनियोगतः । प्रच्छन्नोऽपि हि नारीणां जायते गर्भसंभवः ॥१३९॥
सावोचदस्तु नामैवं कुण्डले त्वतिचारुणी[6] । ईदृशी मर्त्यलोकेऽस्मिन् कुतो रत्ने भवतः कुतः ॥१४०॥
सोऽवोचद्देवि नानेन विचारेण प्रयोजनम् । शृणु तथ्यं पतन्नेष गगनादाहृतो मया ॥१४१॥
[7]मयानुमोदितस्तेऽयं सुतः सुकुलसंभवः । लक्षणानि वदन्त्यस्य महापुरुषभूमिकम् ॥१४२॥
श्रमं कृत्वापि भूयांसं भारमूढ्वा च गर्भजम् । फलं तनयलाभोऽत्र तत्ते जातं सुखं प्रिये ॥१४३॥

तदनन्तर चन्द्रगति विद्याधर रात्रिके समय अपने उद्यानमें स्थित था सो उसने आकाशसे पड़ते हुए सुखके पात्रस्वरूप उस बालकको देखा ॥१३०॥ क्या यह नक्षत्रपात हो रहा है ? अथवा कोई बिजलीका टुकड़ा नीचे गिर रहा है ऐसा संशय कर वह चन्द्रगति विद्याधर ज्योंही आकाशमें उड़ा त्योंही उसने उस शुभ बालकको देखा ॥१३१॥ देखते ही उसने बड़े हर्षसे उस बालकको बीचमें ही ले लिया और उत्तम शय्यापर शयन करनेवाली पुष्पवती रानी की जाँघों के बीचमें रख दिया ॥१३२॥ यही नहीं, ऊँची आवाजसे वह रानीसे बोला भी कि हे सुन्दरि ! उठो, क्यों सो रही हो ? देखो तुमने सुन्दर बालक उत्पन्न किया है ॥१३३॥ तदनन्तर पतिके हस्त-स्पर्शसे उत्पन्न सुखरूपी सम्पत्तिसे जाग्रत हो रानी शय्यासे सहसा उठ खड़ी हुई और इधर-उधर नेत्र चलाने लगी ॥१३४॥ ज्योंही उस सुन्दरमुखीने अत्यन्त सुन्दर बालक देखा, त्योंही उसकी किरणोंके समूहसे उसकी अवशिष्ट निद्रा दूर हो गई ॥१३५॥ उस सुन्दरीने परम आश्चर्यको प्राप्त होकर पूछा कि यह बालक किस पुण्यवती स्त्रीने उत्पन्न किया है ? ॥१३६॥ इसके उत्तरमें चन्द्रगतिने कहा कि हे प्रिये ! यह तुम्हारे ही पुत्र उत्पन्न हुआ है । विश्वास रक्खो, संशय मत करो, तुमसे बढ़ कर और दूसरी धन्य स्त्री कौन हो सकती है ? ॥१३७॥ उसने कहा कि हे प्रिय ! मैं तो बन्ध्या हूँ, मेरे पुत्र कैसे हो सकता है ? मैं दैवके द्वारा ही प्रतारित हूँ—ठगी गई हूँ अब आप और क्यों प्रतारित कर रहे हैं ? ॥१३८॥ उसने कहा कि हे देवि ! शङ्का मत करो, क्योंकि कदाचित् कर्मयोगसे स्त्रियोंके प्रच्छन्न गर्भ भी तो होता है ॥१३९॥ रानीने कहा कि अच्छा ऐसा ही सही पर यह तो बताओ कि इसके कुण्डल लोकोत्तर क्यों हैं ? मनुष्य लोकमें ऐसे उत्तम रत्न कहाँसे आये ? ॥१४०॥ इसके उत्तरमें चन्द्रगतिने कहा कि हे देवि ! इस विचारसे क्या प्रयोजन है ? जो सत्य बात है सो सुनो । यह बालक आकाशसे नीचे गिर रहा था सो बीचमें ही मैंने प्राप्त किया है ॥१४१॥ मैं जिसकी अनुमोदना कर रहा हूँ ऐसा यह तुम्हारा पुत्र उच्चकुलमें उत्पन्न हुआ है क्योंकि इसके लक्षण इसे महापुरुषसे उत्पन्न सूचित करते हैं ॥१४२॥ बहुत भारी श्रम कर तथा गर्भका भार धारण कर जो फल प्राप्त होता है वह पुत्रलाभ रूप ही होता है । सो हे प्रिये ! तुम्हें यह फल

---

१. प्रसुप्ताया म० । २. चैता क० म० । ३. द्रुतस्वान म० । ४. शोभिनम् म० । ५. भूप म० । ६. त्वतिचारिणी म० । ७. मया तु मोदित म० ।

कुक्षिजातोऽपि पुत्रस्य यः कृत्यं कुरुते न ना[1]। अपुत्र एव कान्तेऽसौ जायते रिपुरेव वा ॥१४४॥
तव सोऽयमपुत्रायाः सति पुत्रो भविष्यति । [2]अन्तर्यानेन किं कृत्यमत्र वस्तुनि शोभने ॥१४५॥
एवमस्त्विति संभाष्य देवी सूतिगृहं गता । प्रभाते सुतजन्मास्यास्तुष्टया लोके प्रकाशितम् ॥१४६॥
ततो जन्मोत्सवस्तस्य पुरेऽस्मिन् रथनूपुरे । सम्प्रवृत्तः समागच्छद् विस्मिताशेषबान्धवः ॥१४७॥
रत्नकुण्डलभानूनां मण्डलेन यतो वृतः । प्रभामण्डलनामास्य पितृभ्यां निर्मितं ततः ॥१४८॥
अर्पितः पोषणायासौ धात्र्या लीलामनोहरः । सर्वान्तःपुरलोकस्य करपद्ममधुव्रतः ॥१४९॥
विदेहा तु हृते पुत्रे कुररीवत्कृतस्वना । बन्धूनपातयत् सर्वान् गम्भीरे शोकसागरे ॥१५०॥
परिदेवनमेवं च चक्रे चक्राहतेव सा । हा वत्स केन नीतोऽसि मम दुष्करकारिणा ॥१५१॥
विघृणस्य कथं तस्य पापस्य प्रसृतौ करौ । अज्ञानं जातमात्रं त्वां गृहीतुं ग्रावचेतसः ॥१५२॥
पश्चिमाया इवाशाया सन्ध्येवेयं सुता मम । स्थिता स तु परिप्राप्तो मन्दाया पूर्ववत्सुतः ॥१५३॥
ध्रुवं भवान्तरे कोऽपि मया बालो वियोजितः । तदेव फलितं कर्म न कार्यं बीजवर्जितम् ॥१५४॥
मारितास्मि न किं तेन पुत्रचोरणकारिणा । पुरुं प्रापितास्मि यद्दुःखं समागत्यार्द्धवैशसम्[4] ॥१५५॥
इति तां कुर्वतीमुच्चैर्विह्वला परिदेवनम् । समाश्वासयदागत्य जनको निगदन्निदम् ॥१५६॥
प्रिये मा गाः परं शोकं जीवत्येव शरीरजः[5] । हृतः केनाप्यसौ जीवन् द्रक्ष्यसे ध्रुवमेव हि ॥१५७॥

अनायास ही प्राप्त हो गया है ॥१४३॥ जो मनुष्य कुक्षिसे उत्पन्न होकर भी पुत्रका कार्य नहीं करता है हे प्रिये! वह अपुत्र ही है अथवा शत्रु ही है ॥१४४॥ हे पतिव्रते! तुम्हारे पुत्र नही है सो यह तुम्हारा पुत्र हो जायगा। इस उत्तम वस्तुके भीतर जानेसे क्या प्रयोजन है? ॥१४५॥

तदनन्तर ऐसा ही हो इस प्रकार कहकर रानी प्रसूतिकागृहमे चली गई और प्रातःकाल होते ही इसके पुत्र-जन्मका समाचार लोकमें बड़े हर्षसे प्रकाशित कर दिया गया ॥१४६॥ तदनन्तर रथनूपुर नगरमे पुत्रका जन्मोत्सव किया गया। इस उत्सवमे आश्चर्यचकित होते हुए समस्त भाई-बन्धु-रिश्तेदार सम्मिलित हुए ॥१४७॥ चूँकि वह बालक रत्नमय कुण्डलोकी किरणोंके समूहसे घिरा हुआ था इसलिए माता-पिताने उसका भामण्डल नाम रक्खा ॥१४८॥ अपनी लीलाओंसे मनको हरनेवाला तथा समस्त अन्तःपुरके करकमलोंमे भ्रमरके समान संचार करनेवाला वह बालक पोषण करनेके लिए धायको सौंपा गया ॥१४९॥

इधर पुत्रके हरे जानेपर कुररीके समान विलाप करती हुई रानी विदेहाने समस्त बन्धुओं को शोकरूपी सागरमें गिरा दिया ॥१५०॥ चक्रसे ताड़ित हुईके समान वह इस प्रकार विलाप कर रही थी कि हाय वत्स! कठोर कार्य करनेवाला कौन पुरुष तुझे हर ले गया है? ॥१५१॥ जिसे उत्पन्न होते देर नही थी ऐसे तुझ अबोध बालकको उठानेके लिए उस निर्दय पापीके हाथ कैसे पसरे होंगे? जान पड़ता है कि उसका हृदय पत्थरका बना होगा ॥१५२॥ जिस प्रकार पश्चिम दिशामे आकर सूर्य तो अस्त हो जाता है और सन्ध्या रह जाती है उसी प्रकार मुझ अभागिनीका पुत्र तो अस्त हो गया और संध्याकी भाँति यह पुत्री स्थित रह गई ॥१५३॥ निश्चित ही भवान्तरमें मैंने किसी बालकका वियोग किया होगा सो उसी कर्मने अपना फल दिखाया है क्योंकि बिना बीज के कोई कार्य नही होता ॥१५४॥ पुत्रकी चोरी करनेवाले उस दुष्टने मुझे मार ही क्यों नहीं डाला। जब कि अधमरी करके उसने मुझे बहुत भारी दुःख प्राप्त कराया है ॥१५५॥ इस प्रकार विह्वल होकर जोर-जोरसे विलाप करती हुई रानीके पास जाकर राजा जनक यह कहते हुए उसे समझाने लगे कि हे प्रिये! अत्यधिक शोक मत करो, तुम्हारा पुत्र जीवित ही है; कोई उसे हरकर ले गया

१. जनः ब० । २. अन्तयानेन म० ज० । ३. पाषाणहृदयस्य । ४. अर्धमरणम् । ५. शरीरजे म० ।

दृश्यते नेक्ष्यते भूयः पुनर्जावलोक्यते । पूर्वकर्मानुभावेन जाये रोदिषि किं वृथा ॥१५८॥
व्रज स्वास्थ्यमिमं लेखं सुहृदो [1]नाययाम्यहम् । वार्तां दशरथस्येमां परिवेदयितुं प्रिये ॥१५९॥
स चाहं च सुतस्याशु करिष्यामि गवेषणम् । प्रच्छाद्य धरणीं सर्वां चरैः कुशलचेष्टितैः ॥१६०॥
दयितां सान्त्वयित्वैव लेखं मित्राय दत्तवान् । तं प्रवाच्य सशोकेन पूरितोऽतिगरीयसा ॥१६१॥
मह्यामन्वेषितस्ताभ्यां नासौ दृष्टो यदार्भकः । मन्दीकृत्य तदा शोकमस्थुः कृच्छ्रेण बान्धवाः ॥१६२॥
नासावासीज्जनस्तत्र पुरुषः प्रमदाथवा । यो न बाष्पपरीताक्षस्तच्छोकेन वशीकृतः ॥१६३॥
शोकविस्मरणे हेतुर्बभूव सुमनोहरा । जानकी बन्धुलोकस्य शुभशैशवचेष्टिता ॥१६४॥

मालिनीवृत्तम्

प्रमदमुपगतानां योषितामङ्कदेशे
पृथतनुभवकान्त्या लिम्पती दिक्समूहम् ।
विपुलकमलयाता[2] श्रीरिवासौ सुकण्ठा
शुचिहसितसितास्या वर्धताम्भोजनेत्रा ॥१६५॥
प्रभवति गुणसस्यं येन तस्यां समृद्धं
भजदखिलजनानां सौख्यसंभारदानम् ।
तदतिशयमनोज्ञा चारुलक्ष्मान्विताङ्गा
जगति निगदितासौ भूमिसाम्येन सीता ॥१६६॥
वदनजितशशाङ्का पल्लवच्छायपाणि
[3]शितिमणिसमतेजः[4]केशसंघातरम्या ।

है और निश्चित ही तुम उसे जीवित देखोगी ॥१५६–१५७॥ इष्ट वस्तु पूर्व कर्मके प्रभावसे अभी दिखती है फिर नहीं दिखती, तदनन्तर फिर कभी दिखाई देने लगती है । इसलिए हे प्रिये ! व्यर्थ ही क्यों रोती हो ? ॥१५८॥ तुम स्वस्थताको प्राप्त होओ । हे प्रिये ! मैं यह समाचार बतलानेके लिए मित्र राजा दशरथके पास पत्र भेजता हूँ ॥१५९॥ वह और मैं दोनों ही चतुर गुप्तचरोंसे समस्त पृथिवीको आच्छादित कर शीघ्र ही तेरे पुत्रकी खोज करेंगे ॥१६०॥ इस प्रकार स्त्रीको सान्त्वना देकर उसने मित्रके लिए पत्र दिया । उस पत्रको बाँचकर राजा दशरथ अत्यधिक शोकसे व्याप्त हो गये ॥१६१॥ उन दोनोंने पृथिवीपर पुत्रकी खोज की । पर जब कहीं पुत्र नहीं दिखा तब सब बन्धुजन शोकको मन्दकर बड़े कष्टसे चुप बैठ रहे ॥१६२॥ उस समय न कोई ऐसा पुरुष था और न कोई ऐसी स्त्री ही थी जिसके नेत्र पुत्र सम्बन्धी शोकके कारण अश्रुओंसे व्याप्त नहीं हुए हों ॥१६३॥ उस समय बन्धुजनोंका शोक भुलानेका कारण यदि कुछ था तो अत्यन्त मनोहर और शुभ बालचेष्टाओंको धारण करनेवाली जानकी ही थी ॥१६४॥

वह जानकी हर्षको प्राप्त होने वाली स्त्रियोंकी गोदमें निरन्तर वृद्धिङ्गत हो रही थी । वह अपने शरीरकी विशाल कान्तिसे दिशाओंके समूहको लिप्त करती थी । वह विपुल कमलोंको प्राप्त लक्ष्मीके समान-सी जान पड़ती थी, उसका कण्ठ सुन्दर था, पवित्र हास्यसे उसका मुख शुक्ल हो रहा था और कमलके समान उसके नेत्र थे ॥१६५॥ समस्त भक्तजनोंके लिए सुखका समूह प्रदान करने वाला गुणरूपी धान्य, चूँकि उस जानकीमें अत्यन्त समृद्धिके साथ उत्पन्न होता था, अतः अत्यन्त मनोहर और उत्तम लक्षणोंसे युक्त उस जानकी को लोग भूमिकी समानता रखनेके कारण सीता भी कहते थे ॥१६६॥ उसने अपने मुखसे चन्द्रमाको जीत लिया था, उसके हाथ पल्लवके समान लाल कान्तिके धारक थे, वह नील मणिके समान कान्तिके

१. नीययाम्यहम् म० । २. पाता म० । ३. सितमणि म० । ४. शितमणिसमतेजाः ब० ।

जितसमदनहसनीगति सुन्दरभ्रू-
बकुलसुरभिवक्त्रामोदबद्धालिवृन्दा ॥१६७॥
अतिमृदुभुजमाला शक्रशस्त्रानुमध्या[1]
प्रवरसरसरम्भास्तम्भसाम्यस्थितोरु ।
स्थलकमलसमानोत्तुङ्गपृष्ठोज्ज्वलाङ्घ्रि
प्रभवदतिविशालच्छायवक्षोजयुग्मा ॥१६८॥
प्रवरभवनकुक्षिष्वत्युदारेषु कान्त्या
विविधविहितमार्गा लब्धवर्णा पर सा ।
सततमुपगतान्त सप्तकन्याशताना-
मतिशय रमणीय शास्त्रमार्गेण रेमे ॥१६९॥
अपि दिनकरदीप्ति· कौमुदी चन्द्रकान्तिः
सुरपतिमहिषी वा कापि वा सा सुभद्रा ।
यदि भजति तदीयासङ्गशोभा कथ चि-
न्नियतमतिमनोज्ञास्तास्ततो वेदनीया· ॥१७०॥
विधिरिव रतिदेवी कामदेवस्य बुद्धया
दशरथतनयस्याकल्पयत्पूर्वजस्य ।
जनकनरपतिस्तां सर्वविज्ञानयुक्तां
ननु रविकरसङ्गस्योचिता पद्मलक्ष्मीः ॥१७१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते सीताभामण्डलोत्पत्त्यभिधान नाम षड्विंशतितम पर्व ॥२६॥

धारक केशोंके समूहसे मनोहर थी, उसने कामोन्मत्त हंसिनी चालको जीत लिया था, उसकी भौंहें सुन्दर थीं तथा मौलिश्रीके समान सुगन्धित उसकी मुखके सुवाससे उसके पास भौंरोंके समूह मँडराते रहते थे ॥१६७॥ उसकी भुजाएँ अत्यन्त सुकुमार थी, उसकी कमर वज्रके समान पतली थी, उसकी जाँघे उत्तम सरस केलेके स्तम्भके समान सुन्दर थीं, उसके पैर स्थल-कमलके समान उन्नत पृष्ठभागसे सुशोभित थे और उसके उठते हुए स्तनयुगल अत्यधिक कान्तिसे युक्त थे ॥१६८॥ वह विदुषी जानकी उत्तमोत्तम राजमहलोके विशाल कोष्ठोमे अपनी कान्तिसे विविध मार्ग बनाती हुई सात सौ कन्याओंके मध्यमें स्थित हो बड़ी सुन्दरताके साथ शास्त्रानुसार क्रीड़ा करती थी ॥१६९॥ यदि सूर्यकी प्रभा, चन्द्रमाकी चाँदनी, इन्द्रकी इन्द्राणी, और चक्रवर्तीकी पट्टरानी सुभद्रा किसी तरह जानकीके शरीरकी शोभा प्राप्त कर सकती तो वे निश्चित ही अपने पूर्वरूपकी अपेक्षा अधिक सुन्दर होतीं ॥१७०॥ जिस प्रकार विधाताने रतिको कामदेवकी पत्नी निश्चित किया था उसी प्रकार राजा जनकने सर्व प्रकारके विज्ञानसे युक्त सीताको राजा दशरथके प्रथम पुत्र रामकी पत्नी निश्चित किया था सो ठीक ही है क्योंकि कमलोंकी लक्ष्मी सूर्यकी किरणोंके साथ सपर्क करने योग्य ही है ॥१७१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यके द्वारा प्रोक्त पद्मचरितमें सीता और भामण्डलकी उत्पत्तिका कथन करने वाला छब्बीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२६॥

---

१. वज्रवन्मध्या ।

सप्तविंशतितमं पर्व

ततो मगधराजेन्द्रश्चारुवृत्तान्तविस्मितः। पप्रच्छ गणिनामग्र्य [1]नूतनप्रश्रयान्वित ॥१॥
किं पुनस्तस्य माहात्म्य दृष्ट जनकभूभृता। रामस्य येन सा तस्मै तेन बुद्धया निरूपिता ॥२॥
तत करतलासङ्गद्विगुणीभूतदन्तभा। जगौ गणधरो वाक्य चित्तप्रह्लादनावहम् ॥३॥
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि रामस्याक्लिष्टकर्मण। यत प्रकल्पिता कन्या जनकेन सुबुद्धिना ॥४॥
दक्षिणे विजयार्द्धस्य कैलासाद्रेस्तथोत्तरे। अन्तरेऽत्यन्तबहव सन्ति देशा सहान्तरा ॥५॥
[2]तत्रार्धवर्वरो देशो नि संयमनमस्कृतिः। निर्विदग्धजनो घोरम्लेच्छलोकसमाकुल ॥६॥
मयूरमालनगरे[3] कृतान्तनगरोपमे। [4]आन्तरङ्गतमो नामेत्यर्द्धवर्वरचारिणाम् ॥७॥
पूर्वापरायतक्षोण्या यावन्तो म्लेच्छसभवा। कपोतशुककाम्बोजमङ्क[5]नाद्या सहस्रश ॥८॥
गुप्ता बहुविधै सैन्यैर्भीषणैर्विविधायुधै। आन्तरङ्गतम प्रीत्या परिवार्य ससाधना ॥९॥
आर्यानेताञ्जनपदान् प्रचण्डान्तररहस। उद्वासयन्त आजग्मुरिति कारुण्यवर्जिता ॥१०॥
देश जनकराजस्य ततो व्याप्तु समुद्यता। शलभा इव नि शेषमुपप्लवविधायिन ॥११॥
जनकेन च साकेता युवानः प्रेषिता[6] द्रुतम्। [7]आन्तरङ्गतम [8]प्राप्तमूचुर्दशरथस्य ते ॥१२॥
विज्ञापयति देव त्वां जनको जनवत्सलः। पौलिन्द[9]परचक्रेण समाक्रान्त महीतलम् ॥१३॥

अथानन्तर भामण्डलके सुन्दर वृत्तान्तसे आश्चर्यचकित हुए राजा श्रेणिकने नूतन विनयसे युक्त हो अर्थात् पुन नमस्कार कर गौतम गणधरसे पूछा कि हे भगवन्! राजा जनकने रामका ऐसा कौनसा माहात्म्य देखा कि जिससे उसने रामके लिए बुद्धिपूर्वक अपनी कन्या देनेका निश्चय किया? ॥१-२॥ तदनन्तर करतलके आसङ्गसे जिनके दाँतोंकी कान्ति दूनी हो गई थी ऐसे गौतम गणधर चित्तको आह्लादित करनेवाले वचन बोले ॥३॥ उन्होंने कहा कि हे राजन्! सुनो, संक्लेशहीन कार्यको करनेवाले रामचन्द्रके लिए अत्यन्त बुद्धिमान् जनकने जिस कारण अपनी कन्या देना निश्चित किया था वह मै कहता हूँ ॥४॥ विजयार्द्ध पर्वतके दक्षिण और कैलास पर्वतके उत्तरकी ओर बीच-बीचमे अन्तर देकर बहुतसे देश स्थित है ॥५॥ उन देशोंमे एक अर्धवर्वर नामका देश है जो असंयमी जनोंके द्वारा मान्य है, धूर्तजनोंका जिसमे निवास है तथा जो अत्यन्त भयंकर म्लेच्छ लोगोसे व्याप्त है ॥६॥ उस देशमे यमराजके नगरके समान एक मयूरमाल नामका नगर है। उसमे आन्तरङ्गतम नामका राजा राज्य करता था ॥७॥ पूर्वसे लेकर पश्चिम तककी लम्बी भूमिमे कपोत, शुक, काम्बोज, मङ्कन आदि जितने हजारों म्लेच्छ रहते थे वे अनेक प्रकारके शस्त्र तथा नाना प्रकारके भीषण अस्त्रोसे युक्त हो अपने सब साधनोंके साथ प्रीतिपूर्वक आन्तरङ्गतम राजाकी उपासना करते थे ॥८-९॥ जिनका गमन बीच-बीचमें अत्यन्त वेगसे होता था तथा जो दयासे रहित थे ऐसे वे म्लेच्छ इन आर्य देशोंको उजाड़ते हुए यहाँ आये ॥१०॥ तदनन्तर टिड्डियोंके समान उपद्रव करनेवाले वे म्लेच्छ राजा जनकके देशको व्याप्त करनेके लिए उद्यत हुए ॥११॥ राजा जनकने शीघ्र ही अपने योद्धा अयोध्या भेजे। उन्होंने जाकर राजा दशरथसे आन्तरङ्गतमके आनेकी खबर दी ॥१२॥ उन्होंने कहा कि हे राजन्! प्रजा-

---

१. नूतनप्रवयान्वितः क०, ख०। २. तत्रार्धवर्वरीदेशे ब०। ३. मयूरमालानगरे क०, ख०। ४. आन्तरङ्गतमे क०, ख०। ५. मङ्क्न्याद्याः ब०। ६. प्रेक्षिता क०, ख०, ब०। ७. आतासन्तजना तेन दूतस्तेन वदन्त वै (?) क०, ख०। ८. प्रासु ब०। ९. पौलिंग्य म०।

आर्यदेशा परिध्वस्ता म्लेच्छैरुद्वासितं जगत् । एकवर्णा प्रजा सर्वा पापा कर्तुं समुद्यताः ॥१४॥
प्रजासु विप्रनष्टासु जीवाम किं प्रयोजना[1] । चिन्त्यतामिति किं कुर्मो व्रजामो वा कमाश्रयम् ॥१५॥
किं वा दुर्गं समाश्रित्य तिष्ठाम ससुहृज्जनाः । [2]नदीकालिन्दभागान् वा गिरिं वा विपुलाह्वयम् ॥१६॥
अथवा सर्वसैन्येन निकुञ्जगिरिमाश्रिताः । संनिरुध्म[3] समागच्छत् परसैन्यं भयानकम् ॥१७॥
साधुगोश्रावकाकीर्णां प्रजामेतां सुविह्वलाम् । सम्यक् संतारयिष्यामस्त्यक्त्वा जीवं सुदुस्सहम् ॥१८॥
अतो ब्रवीमि राजस्त्वा[4] यस्त्वया पाल्यते मही । तव राज्यं महाभाग त्वमेव हि जगत्पतिः ॥१९॥
यजन्ते[5] भावतः सन्तो यावन्तः श्रावकादयः । पञ्चयज्ञान् विधानेन[6] व्रीह्याद्यैर्यदबीजकैः[7] ॥२०॥
[8]मुक्तिक्षान्तिगुणैर्युक्ता यच्च ध्यानपरायणाः । तप्यन्ते सुतपो मोक्षसाधनं गगनाम्बराः ॥२१॥
महान्तश्च पुरस्कारा यच्चैत्यभवनादिषु । विधीयन्तेऽभिषेकाश्च जिनानां क्षीणकर्मणाम् ॥२२॥
[9]प्रजासु रक्षितास्वेतत्सर्वं भवति रक्षितम् । ततश्च धर्मकामार्था प्रेत्य चेह च भूभृताम् ॥२३॥
बहुकोषो नरेशो यः प्रीतः पालयति क्षितिम् । परचक्राभिभूतश्च नावसादं[10] समश्नुते ॥२४॥
हिंसाधर्मविहीनानां यच्छतां यागदक्षिणाम् । कुरुते पालनं यश्च तस्य भोगाः[11] पुनर्भुवः ॥२५॥
धर्मार्थकाममोक्षाणामधिकारा महीतले । जनानां राजगुप्तानां जायन्ते तेऽन्यथा कुतः ॥२६॥
नृपबाहुबलच्छायां समाश्रित्य सुखं प्रजाः । ध्यायन्त्यात्मानमव्यग्रास्तथैवाश्रमिणो बुधाः ॥२७॥

वत्सल राजा जनक आपसे निवेदन करते हैं कि समस्त पृथिवीतल म्लेच्छ राजाकी सेनासे आक्रान्त हो चुका है ॥१३॥ उन म्लेच्छोंने आर्य देश नष्ट-भ्रष्ट कर दिये हैं तथा समस्त जगत्को उजाड़ दिया है। वे पापी समस्त प्रजाको एक वर्णकी करनेके लिए उद्यत हुए हैं ॥१४॥ जब प्रजा नष्ट हो रही है तब हम किसलिए जीवित रह रहे हैं ? विचार कीजिए कि इस दशामें हम क्या करें ? अथवा किसकी शरणमें जावें ? ॥१५॥ हम मित्रजनोंके साथ किस दुर्गका आश्रय लेकर रहें अथवा नन्दी, कलिन्द या विपुलगिरि इन पर्वतोंका आश्रय लें ? ॥१६॥ अथवा सब सेनाके साथ निकुञ्जगिरिमें जाकर शत्रुकी आती हुई भयंकर सेनाको रोकें ॥१७॥ अथवा यह कठिन दिखता है कि हम अपना जीवन देकर भी साधु, गौ तथा श्रावकोंसे व्याप्त इस विह्वल प्रजाकी रक्षा कर सकेंगे ॥१८॥ इसलिए हे राजन् ! मैं आपसे कहता हूँ कि चूँकि आप ही पृथिवीकी रक्षा करते रहे, अतः यह राज्य आपका ही है और हे महाभाग ! आप ही जगत्के स्वामी हैं ॥१९॥ जितने श्रावक आदि सत्पुरुष हैं वे भावपूर्वक पूजा करते हैं। अङ्कुर उत्पन्न होनेकी शक्तिसे रहित पुराने धान आदिके द्वारा विधिपूर्वक पाँच प्रकारके यज्ञ करते हैं ॥२०॥ निर्ग्रन्थ मुनि मुक्ति क्षान्ति आदि गुणोंसे युक्त होकर ध्यानमें तत्पर रहते हैं तथा मोक्षका साधनभूत उत्तम तप तपते हैं ॥२१॥ जिनमन्दिर आदि स्थलोंमें कर्मोंको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्की बड़ी-बड़ी पूजाएँ तथा अभिषेक होते हैं ॥२२॥ प्रजाकी रक्षा रहने पर ही इन सबकी रक्षा हो सकती है और इन सबकी रक्षा होने पर ही इस लोक तथा परलोकमें राजाओंके धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्ग सिद्ध हो सकते हैं ॥२३॥ बहुत बड़े खजानेका स्वामी होकर जो राजा प्रसन्नतासे पृथिवीकी रक्षा करता है और परचक्रके द्वारा अभिभूत होने पर भी जो विनाशको प्राप्त नहीं होता तथा हिंसाधर्मसे रहित एवं यज्ञ आदिमें दक्षिणा देनेवाले लोगोंकी जो रक्षा करता है उस राजाको भोग पुनः प्राप्त होते हैं ॥२४-२५॥ पृथिवीतलपर मनुष्योंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका अधिकार है सो राजाओंके द्वारा सुरक्षित मनुष्योंको ही ये अधिकार प्राप्त होते हैं अन्यथा किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं ? ॥२६॥ राजाके बाहुबलकी छायाका आश्रय

---

१. किं प्रयोजनम् म० । २. नदीकीलीन्द्रभागान्वा म० । ३. सन्निरुद्धाः म० । ४. राजस्त्वम् म० । ५. जयन्ते क०, ख० । ६. प्रधानेन म० । निधानेन ब० । ७. यवबीजकैः ब० । ८. मुक्तिः म० । ९. प्रजाः सुरक्षितास्त्वेतत् म० । १०. समश्नुतम् म० । ११. पुनरपि प्राप्या भवन्ति ।

यस्य देशं समाश्रित्य साधवः कुर्वते तपः । षष्ठमंशं नृपस्तस्य लभते परिपालनात् ॥२८॥
अथैवमिति तत्सर्वमुपश्रुत्य[1] नराधिपः । द्रुतं रामं समाहूय [2]राज्यं दातुं समुद्यतः ॥२९॥
मुदितैः किङ्करैर्भेरीघनानन्दा समाहता[3] । आजग्मुः सचिवाः सर्वे गजवाजिसमाकुलाः ॥३०॥
जाम्बूनदमयान् कुम्भान् गृहीत्वा वारिपूरितान् । बद्ध्वा परिकरं शूरा भासमानाः समागताः ॥३१॥
चारुनूपुरनिस्वाना दधाना वेषमर्चितम् । वस्त्रालङ्कारमादाय पटलेष्वागताः[4] स्त्रियः ॥३२॥
आटोपमीदृशं दृष्ट्वा किमेतदिति शब्दितम् । रामं दशरथोऽवोचत् पालयेमां सुत क्षितिम् ॥३३॥
रिपुचक्रमिहायातं यद्देवैरपि दुर्जयम् । विजेष्ये तदहं गत्वा प्रजानां हितकाम्यया ॥३४॥
ततो राजीवनयनो राघवो नृपमब्रवीत् । किमर्थं तात संरम्भमस्थाने प्रतिपद्यसे ॥३५॥
किं कार्यं पशुभिस्तैस्तैरसभाषैर्दुरात्मभिः । येषामभिमुखीभावं प्रयासि रणकाङ्क्षया ॥३६॥
न ह्याखूनां विरोधेन क्षुभ्यन्ति वरवारणाः । न चापि तूलदाहार्थं [5]सन्नह्यति विभावसुः ॥३७॥
तत्र प्रयातुमस्माकं युज्यते यच्छ शासनम् । इत्युक्ते हर्षिताङ्गस्तं परिष्वज्य पिताब्रवीत् ॥३८॥
त्वं बालः सुकुमाराङ्गः पद्म[6] पद्मनिभेक्षण । कथं तान् सहसे जेतुं न [7]प्रत्येम्यहमर्भक[8] ॥३९॥
सोऽवोचत् सद्य[9] उत्पन्नो भृशमल्पोऽपि पावकः । कथं दहति विस्तीर्णं महद्भिः किं प्रयोजनम् ॥४०॥
बालः सूर्यस्तमो घोरं द्युतीर्ऋक्षगणस्य च । एको नाशयति क्षिप्रं भूतिभिः किं प्रयोजनम् ॥४१॥

लेकर प्रजा सुखसे आत्माका ध्यान करती है तथा आश्रमवासी विद्वान् निराकुल रहते हैं ॥२७॥ जिस देशका आश्रय पाकर साधुजन तपश्चरण करते हैं उन सबकी रक्षाके कारण राजा तपका छठवाँ भाग प्राप्त करता है ॥२८॥

अथानन्तर यह सब सुनकर राजा दशरथ शीघ्र ही रामको बुलाकर राज्य देनेके लिए उद्यत हो गये ॥२९॥ किङ्करोंने प्रसन्न होकर बहुत भारी आनन्द देनेवाली भेरी बजाई। हाथी और घोड़ोंसे व्याकुल समस्त मन्त्री लोग आ पहुँचे ॥३०॥ देदीप्यमान शूरवीर जलसे भरे हुए सुवर्ण-कलश लेकर तथा कमर कसकर आ गये ॥३१॥ जिनके नूपुरोंसे सुन्दर शब्द हो रहा था तथा जो उत्तमोत्तम वेष धारण कर रही थीं ऐसी स्त्रियाँ पिटारोंमें वस्त्रालंकार ले लेकर आ गईं ॥३२॥ यह सब तैयारी देखकर रामने पूछा कि यह क्या है? तब राजा दशरथने कहा कि हे पुत्र! तुम इस पृथिवीका पालन करो ॥३३॥ यहाँ ऐसा शत्रुदल आ पहुँचा है जो देवोंके द्वारा भी दुर्जेय है। मैं प्रजाके हितकी वाँच्छासे जाकर उसे जीतूँगा ॥३४॥ तदनन्तर कमललोचन रामने राजा दशरथसे कहा कि हे तात! अस्थानमें क्रोध क्यों करते हो? ॥३५॥ आप रणकी इच्छासे जिनके सम्मुख जा रहे हैं, उन पशुस्वरूप भाषाहीन दुष्ट मनुष्योंसे क्या कार्य हो सकता है? ॥३६॥ चूहोंके विरोध करनेसे उत्तम गजराज क्षोभको प्राप्त नहीं होते और न सूर्य रुईको जलानेके लिए तत्पर होता है ॥३७॥ वहाँ जानेके लिए तो मुझे आज्ञा देना उचित है सो दीजिए। ऐसा कहनेपर हर्षित शरीरके धारी पिताने रामका आलिङ्गन कर कहा ॥३८॥ कि हे पद्म! अभी तुम बालक हो, तुम्हारा शरीर सुकुमार है, तथा नेत्र कमलके समान है, इसलिए हे बालक! तुम उन्हें किस तरह जीत सकोगे इसका मुझे प्रत्यय नहीं है ॥३९॥ रामने उत्तर दिया कि तत्काल उत्पन्न हुई थोड़ी-सी अग्नि बड़े विस्तृत वनको जला देती है इसलिए बड़ोंसे क्या प्रयोजन है? ॥४०॥ बालसूर्य अकेला ही घोर अन्धकारको तथा नक्षत्र समूहकी कान्तिको नष्ट कर देता है इसलिए विभूतिसे क्या प्रयोजन है? ॥४१॥

---

१. -मुपश्रित्य ज०, ब०, क०, ख० । २. दातुं राज्यम् म० । ३. समाहता. म० । ४ पटलेष्वागताः म० । ५. तत्परो भवति । ६ हे राम । ७ प्रत्ययं करोमि । ८. अर्भकः म० । ९. सद्यमुत्पन्नो क०, ख०, म० ।

तत सहृष्टरोमाङ्गो नृपो दशरथ पुन । प्रमोद परम प्राप्तो विषाद च सबाष्पदृक् ॥४२॥
सत्त्वत्यागादिवृत्तीनां क्षत्रियाणामियं स्थिति । उत्सहन्ते प्रयातु यद्विहातुमपि जीवितम् ॥४३॥
अथवा क्षयमप्राप्ते जन्तुरायुषि नाश्नुते । मरण गहन प्राप्तः पर यद्यपि जायते ॥४४॥
इति चिन्तयतस्तस्य कुमारौ रामलक्ष्मणौ । पितु पादाब्जयुगल प्रणम्योपगतौ बहि. ॥४५॥
ततः सर्वास्त्रकुशलौ सर्वशास्त्रविशारदौ । सर्वलक्षणसपूर्णौ सर्वस्य प्रियदर्शनौ ॥४६॥
चतुरङ्गबलोपेतौ पूर्यमाणौ विभूतिभि । सप्रयातौ रथारूढौ दीप्यमानौ स्वतेजसा ॥४७॥
पूर्वमेव तु निर्यातो जनक सोदरान्वित । अन्तर योजने द्वे च परसैन्यस्य तस्य च ॥४८॥
शत्रुशब्दमसृष्यन्तो[1] जनकस्य महारथा । विविशुर्म्लेच्छसघात मेघवृन्दमिव ग्रहा ॥४९॥
प्रवृत्तश्च महाभीम. सग्रामो रोमहर्षण. । बृहत्प्रहरणाटोप आर्यम्लेच्छभटाकुल ॥५०॥
जनक कनक दृष्ट्वा पर गहनमागतम् । अचोदयदतिक्रुद्धो दुर्वारकरिणा घटाम् ॥५१॥
वर्वरैस्तु महासैन्यैर्भग्नैर्भग्नैः पुन पुन । भीमैर्जनकराजोऽपि दिक्षु सर्वासु वेष्टित ॥५२॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः पद्म. सौमित्रिणा सह । अपार गहन सैन्यमपश्यच्चारुलोचन. ॥५३॥
दृष्ट्वा तस्य सितच्छत्र विशीर्णा शत्रुवाहिनी । तमसां सन्तति स्फीता पौर्णमासीविधु यथा ॥५४॥
आश्वासितश्च बाणौघैर्जनको [2]ध्वस्तकङ्कट । तेन जन्तुर्यथा दु.खी धर्मेण जगदायुषा ॥५५॥

तदनन्तर जिनका शरीर रोमाञ्चित हो रहा था ऐसे राजा दशरथ पुन परम प्रमोद और विषादको प्राप्त हुए। उनके नेत्रोसे आँसू निकल पडे ॥४२॥ सत्त्व त्याग आदि करना जिनकी वृत्ति है ऐसे क्षत्रियोका यही स्वभाव है कि वे युद्धमे प्रस्थान करनेके लिए अथवा जीवनका भी त्याग करनेके लिए सदा उत्साहित रहते है ॥४३॥ उन्होने विचार किया कि जब तक आयु क्षीण नहीं होती है तब तक यह जीव परम कष्टको पाकर भी मरणको प्राप्त नहीं होता ॥४४॥ इस प्रकार राजा दशरथ विचार ही करते रहे और राम लक्ष्मण दोनो कुमार उनके चरण-कमलको नमस्कार कर बाहर चले गये ॥४५॥

तदनन्तर जो सर्व शस्त्र चलानेमे कुशल थे, सर्व शास्त्रोमे निपुण थे, सर्व लक्षणोसे परिपूर्ण थे, जिनका दर्शन सबके लिए प्रिय था, जो चतुरङ्ग सेनासे सहित थे, विभूतियोसे परिपूर्ण थे तथा आत्मतेजसे देदीप्यमान हो रहे थे ऐसे दोनो कुमार रथपर आरूढ होकर चले ॥४६–४७॥ राजा जनक अपने भाईके साथ पहले ही निकल पड़ा था। जनक और शत्रुसेनाके बीचमे दो योजनका ही अन्तर रह गया था ॥४८॥ जिस प्रकार सूर्य चन्द्रमा आदि ग्रह मेघसमूहके बीच मे प्रवेश करते हैं उसी प्रकार राजा जनकके महारथी योद्धा शत्रुके शब्दको सहन नहीं करते हुए म्लेच्छसमूहके भीतर प्रविष्ट हो गये ॥४९॥ दोनो ही सेनाओके बीच जिसमे बड़े-बड़े शस्त्रो का विस्तार फैला हुआ था, और जो आर्य तथा म्लेच्छ योद्धाओसे व्याप्त था, ऐसा रोमहर्षित करनेवाला महाभयंकर युद्ध हुआ ॥५०॥ राजा जनकने देखा कि भाई कनक संकटमे पड़ गया है तब उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर दुर्वार हाथियोंकी घटाको प्रेरित कर आगे बढ़ाया ॥५१॥ म्लेच्छोंकी सेना बहुत बड़ी तथा भयंकर थी इसलिए उसने बार-बार भग्न होनेपर भी भी राजा जनकको सब दिशाओमे घेर लिया ॥५२॥ इसी बीचमे सुन्दर नेत्रोंको धारण करनेवाले राम लक्ष्मणके साथ वहाँ जा पहुँचे। पहुँचते ही उन्होने शत्रुकी अपार तथा भयंकर सेना देखी ॥५३॥ रामके सफेद छत्रको देखकर शत्रुकी सेना इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट हो गई जिस प्रकार कि अन्धकारकी सन्तति पूर्णिमाके चन्द्रमाको देख कर नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है ॥५४॥ बाणोके समूहसे जिसका कवच टूट गया था ऐसे जनकको रामने उसी तरह आश्वासन

१. -मसृक्षन्तो म० । २. ध्वस्तकवचः ।

रावणो रथमारूढो युक्त चपलवाजिभि· । कवचोद्योतितवपु हारकुण्डलमण्डित ॥५६॥
धनुरायतमास्थाय शरपाणिर्हरिध्वजः । प्रकीर्णकोल्वणच्छत्रो धरणीधीरमानस ॥५७॥
प्रविशन् विपुल सैन्य लीलया लोकवत्सल । सुभटै पूर्यमाण· सन् भात्यर्क इव रश्मिभि ॥५८॥
सरचय जनक प्रीत कनक च यथाविधि । बल व्यध्वसयच्छत्रोरिभवत् कदलीवनम् ॥५९॥
तथैव लक्ष्मणस्तत्र बाणानाकर्णसहतान् । ववर्ष वायुना नुन्न सागरे जलदो यथा ॥६०॥
निशितानि च चक्राणि शक्तीश्च कनकानि च । शूल[1]क्रकचनिर्घातान्येवमाद्यान्यचिक्षिपत् ॥६१॥
सौमित्रिभुजनिर्मुक्तैस्तै· पतद्भिरितस्तत । म्लेच्छदेहा[2] न्यकृत्यन्त द्रुमा परशुभिर्यथा ॥६२॥
भटा शबरसैन्येऽस्मिन् बाणैर्निर्भिन्नवक्षस· । केचिच्छिन्नभुजग्रीवा निपतन्ति[3] सहस्रश· ॥६३॥
तत पराङ्मुखीभूता लोककण्टकवाहिनी । तथापि लक्ष्मणस्तेषामनुधावति पृष्ठत ॥६४॥
अनिवार्य समालोक्य त सौमित्रि मृगाधिपम् । अपरे म्लेच्छशार्दूला समन्तात् क्षोभमागता· ॥६५॥
बृहद्वादित्रनिर्घोषै· कुर्वाणा भैरव रवम् । चापासिचक्रबहुलाः कृतसघातपङ्क्तय· ॥६६॥
रक्तवस्त्रशिरस्त्राणा· केचिद्वर्वरधारिण । असिधेनुकरा क्रूरा नानावर्णाङ्गधारिण ॥६७॥
केचिद्भिन्नाञ्जनच्छाया·[4] शुकपत्रत्विषोऽपरे । केचित्कर्दमसकाशाः केचित्ताम्रसमत्विष ॥६८॥
कटिसूत्रमणिप्राया पत्रचीवरधारिण । नानाधातुविलिप्ताङ्गा मञ्जरीकृतशेखरा ॥६९॥

दिया—धैर्य बँधाया जिस प्रकार कि जगत्के प्राणस्वरूप धर्मके द्वारा दु·खी प्राणीको आश्वासन दिया जाता है ॥५५॥ रामचन्द्र चञ्चल घोड़ोसे जुते हुए रथ पर सवार थे, उनका शरीर कवचसे प्रकाशमान हो रहा था, हार और कुण्डल उनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥५६॥ वे एक हाथमे लम्बा धनुष और दूसरे हाथमे बाण लिये हुए थे। उनकी ध्वजामे सिंहका चिह्न था, शिर पर विशाल छत्र फिर रहा था तथा उनका मन पृथिवीके समान धीर था ॥५७॥ जिनके साथ अनेक सुभट थे ऐसे लोकवत्सल राम, लीलापूर्वक विशाल सेनाके बीच प्रवेश करते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो किरणोसे सहित सूर्य ही हो ॥५८॥ प्रसन्नतासे भरे रामने जनक और कनक दोनो भाइयोकी विधिपूर्वक रक्षा कर शत्रुसेनाको उस तरह नष्ट कर दिया जिस प्रकार कि हाथी केलाके वनको नष्ट कर देता है ॥५९॥ जिस प्रकार वायुसे प्रेरित मेघ समुद्र पर जल वर्षा करता है उसी प्रकार लक्ष्मणने शत्रुदल पर कान तक खिंचे हुए बाण बरसाये ॥६०॥ वह अत्यन्त तीक्ष्ण चक्र, शक्ति, कनक, शूल, क्रकच और वज्रदण्ड आदि शस्त्रोंकी खूब वर्षा कर रहा था ॥६१॥ जिस प्रकार पड़ते हुए कुल्हाड़ोसे वृक्ष कट जाते है उसी प्रकार लक्ष्मणकी भुजासे छूटकर जहाँ-तहाँ पड़ते हुए पूर्वोक्त शस्त्रोसे म्लेच्छोके शरीर कट रहे थे ॥६२॥ म्लेच्छोकी इस सेनामें बाणोसे कितने ही योद्धाओंका वक्ष·स्थल छिन्न-भिन्न हो गया था, और हजारो योद्धा भुजा तथा गरदन कट जानेसे नीचे गिर गये थे ॥६३॥ यद्यपि लोकके शत्रुओकी वह सेना लक्ष्मणसे पराङ्मुख हो गई थी तो भी वह उनके पीछे दौड़ता ही गया ॥६४॥ जिसे कोई रोक नहीं सकता था ऐसे लक्ष्मणरूपी मृगराजको देखकर म्लेच्छरूपी तिदुए सब ओरसे क्षोभको प्राप्त हो गये ॥६५॥ उस समय वे म्लेच्छ बड़े भारी बाजोंके शब्दसे भयंकर शब्द कर रहे थे, धनुष, कृपाण तथा चक्र आदि शस्त्र बहुलतासे लिये थे और झुण्डके-झुण्ड बनाकर पङ्क्तिरूपमे खड़े थे ॥६६॥ कितने ही म्लेच्छ लाल वस्त्रका साफा बाँधे हुए थे, कोई छुरी हाथमे लिये थे और नाना रङ्गके शरीर धारण कर रहे थे ॥६७॥ कोई मसले हुए अञ्जनके समान काले थे, कोई सूखे पत्तोके समान कान्ति वाले थे, कोई कीचड़के समान थे और कोई लाल रङ्गके थे ॥६८॥ अधिकतर वे कटिसूत्रमें मणि बाँधे हुए थे, पत्तोके वस्त्र पहिने हुए थे, नाना धातुओसे उनके शरीर लिप्त थे, फूलकी

१. शूल क्रकच म० । २. म्लेच्छदेहानि कृत्यन्ते म० । ३. न्यपत्यन्त । ४. शुष्क म०, ज० ।

वराटकाभदशना विशालपिठरोदराः । विरेजुः सैन्यमध्ये[1] तु कुटजा इव पुष्पिता ॥७०॥
अपरे शबरा रेजुर्भीषणायुधपाणयः । पीनजङ्घाभुजस्कन्धा असुरा इव दर्पिता ॥७१॥
निर्दया पशुमांसादो मूढा प्राणिवधोद्यता । आरम्भ जन्मन. पापा [2]सहसारम्भकारिण ॥७२॥
वराहमहिषव्याघ्रवृकक कङ्कादिकेतव । नानायानच्छदच्छत्रास्तत्सामन्ता सुभीषणा ॥७३॥
नानायुद्धकृतध्वान्ता महावेगपदातय । सागरोर्मिनिभाश्चण्डा[3] नानाभीषणनिस्वना ॥७४॥
लक्ष्मणक्ष्माधर वव्रु. क्षुब्धा [4]शबरनीरदा. । निजसामन्तवातेन प्रेरिता पुरुरहस ॥७५॥
अधावल्लक्ष्मणस्तेषां निपाताय समुद्यत । [5]यथानड्डुत्समूहाना महावेगो गजाधिप ॥७६॥
मृद्यमाना निपेतुस्ते स्वैरेव वसुधातले । विदुद्रुवुरसख्याश्च भीत्या विक्षतमूर्तय[6] ॥७७॥
तत [7]सधारयन् सैन्य[8]मान्तरङ्गतमो नृप । सम सकलसैन्येन लक्ष्मणाभिमुख स्थित ॥७८॥
तेनाभ्यागतमात्रेण प्रवृत्ते भैरवे मृधे । लक्ष्मणस्य धनुश्छिन्न बाणै सततवर्षिभिः ॥७९॥
कृपाण यावदादत्ते लक्ष्मणो.विरथीकृत । [9]समीरणजवं तावत्पद्मो रथमचोदयत् ॥८०॥
लक्ष्मणस्योपनीतश्च रथोऽन्य क्षेपवर्जित । अपारमदहत् सैन्य राम कक्षमिवानल ॥८१॥
कांश्चिच्चिच्छेद बाणौघैः कांश्चित्कनकतोमरै. । चक्रै शिरांसि केषांचित्कुक्षितौष्ठान्यपातयत् ॥८२॥

मञ्जरियोसे उन्होने सेहरा बना रक्खा था ॥६९॥ कौड़ियोके समान उनके दाँत थे, बडे मटकाके समान उनके पेट थे और सेनाके बीच वे फूले हुए कुटज वृक्षके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७०॥ जिनके हाथोमे भयंकर शस्त्र थे, और जिनकी जाँघे, भुजाएँ और स्कन्ध अत्यन्त स्थूल थे ऐसे कितने ही म्लेच्छ गर्वीले असुरोके समान जान पड़ते थे ॥७१॥ वे अत्यन्त निर्दय थे, पशुओका मांस खाने वाले थे, मूढ थे, पापी थे और सहसा अर्थात् बिना विचार किये काम करने वाले थे ॥७२॥ वराह, महिष, व्याघ्र, वृक और कङ्क आदिके चिह्न उनकी पताकाओमे थे, उनके सामन्त भी अत्यन्त भयंकर थे तथा नाना प्रकारके वाहन, चद्दर और छत्र आदिसे सहित थे ॥७३॥ नाना युद्धोमे जिन्होने अन्धकार उत्पन्न किया था, जो समुद्रकी लहरोंके समान प्रचण्ड थे, और नाना प्रकारका भयंकर शब्द कर रहे थे ऐसे महावेगशाली पैदल योद्धा उनके साथ थे ॥७४॥ अपने सामन्तरूपी वायुसे प्रेरित होनेके कारण जिनका वेग बढ़ रहा था ऐसे उन क्षोभको प्राप्त हुए म्लेच्छरूपी मेघोने लक्ष्मणरूपी पर्वतको घेर लिया ॥७५॥ जिस प्रकार बैलोके समूहको नष्ट करनेके लिए महावेगशाली हाथी दौड़ता है उसीप्रकार उन सबको नष्ट करनेके लिए उद्यत लक्ष्मण दौड़ा ॥७६॥ लक्ष्मणके दौड़ते ही उनमे भगदड मच गई जिससे वे अपने ही लोगोसे कुचले जाकर पृथिवीपर गिर पड़े। तथा भयसे जिनके शरीर खण्डित हो रहे थे ऐसे अनेक योद्धा इधर-उधर भाग गये ॥७७॥

तदनन्तर आन्तरङ्गतम राजा सेनाको रोकता हुआ सब सेनाके साथ लक्ष्मणके सन्मुख खड़ा हुआ ॥७८॥ उसने आते ही भयंकर युद्ध किया और निरन्तर बरसते हुए बाणोंसे लक्ष्मणका धनुष तोड़ डाला ॥७९॥ लक्ष्मण जब तक तलवार उठाता है तब तक उसने उसे रथ-रहित कर दिया अर्थात् उसका रथ तोड़ डाला। यह देख रामने वायुके समान वेगवाला अपना रथ आगे बढ़ाया ॥८०॥ लक्ष्मणके लिए शीघ्र ही दूसरा रथ लाया गया और जिस प्रकार अग्नि वनको जलाती है, उसी प्रकार रामने शत्रुकी सेनाको जला दिया ॥८१॥ उन्होंने कितने ही लोगोंको बाणोंके समूहसे छेद डाला, कितने ही लोगोको कनक और तोमर नामक शस्त्रोंसे

१. सैन्यमध्य म० । २. सहसारभ्यकारिणः म० । ३. चन्द्रा म० । ४. शरदनीरदाः म० । ५. यथा नदत्समूहाना म० । ६. विकृतमूर्तयः म० । ७ साधरयन् म० । ८. आन्तरङ्गतमः एतन्नामा म्लेच्छनृपः । ९. समीरणजवात्तावत् म० ।

ननाश भयपूर्णा च [1]यथाश म्लेच्छवाहिनी । विध्वस्तचामरच्छत्रध्वजचापसमाकुला ॥८३॥
निमिषान्तरमात्रेण रामेणाक्लिष्टकर्मणा । म्लेच्छा निराकृता सर्वे कषाया इव साधुना ॥८४॥
आगतो यश्च सैन्येन निष्पारेणोदधिर्यथा । भीतोऽश्वैर्दशभि सोऽय म्लेच्छराजो विनि.सृत [2] ॥८५॥
पराङ्मुखीकृतै क्लीबै किमेभिर्निहतैरिति । सौमित्रिणा सम राम. कृती निववृते सुखम् ॥८६॥
अमी भयाकुला म्लेच्छा विहाय विजिगीषुताम् । आश्रित्य सह्यविन्ध्याद्रीन् समयेनावतस्थिरे ॥८७॥
कन्दमूलफलाहारास्तत्यजू रौद्रकर्मताम् । राघवाद् भयमापन्ना वैनतेयादिवोरगा ॥८८॥
[3]सानुज [4]सानुज पद्मो [5]विग्रहे शान्तविग्रह. । विसर्ज्य [6]जनक हृष्ट [7]जनकाभिमुखोऽगमत् ॥८९॥
प्रजात्तपरमानन्दा [8] रेमे विस्मितमानसा । रराज पृथिवी सर्वा भूत्या कृतयुगे यथा ॥९०॥
धर्मार्थकामसंसक्तै. पुरुषैर्भूषितं जगत् । व्यतीतहिमसरोधैर्नक्षत्रैरम्बर यथा ॥९१॥
माहात्म्यादमुतो राजन् दुहिता लोकसुन्दरी । जनकेन प्रसन्नेन राघवस्य प्रकल्पिता ॥९२॥

काट डाला तथा जिनके ओठ टेढ़े हो रहे थे ऐसे कितने ही लोगोंके शिर चक्ररत्नसे नीचे गिरा दिये ॥८२॥ टूटे-फूटे चमर छत्र ध्वजा और धनुषोसे व्याप्त म्लेच्छोकी वह सेना भयभीत होकर इच्छानुसार नष्ट हो गई—इधर-उधर भाग गई ॥८३॥ जिस प्रकार साधु कषायोंको क्षण भरमे नष्ट कर देते है उसी प्रकार क्लेशरहित कार्य करनेवाले रामने निमेष मात्रमे ही समस्त म्लेच्छोको नष्ट कर दिया ॥८४॥ जो म्लेच्छ राजा समुद्रके समान अपार सेनाके साथ आया था वह भयभीत होकर केवल दश घोड़ोंके साथ बाहर निकला था ॥८५॥ इन विमुख नपुंसकोको मारनेसे क्या प्रयोजन है ऐसा विचार कर कृतकृत्य राम लक्ष्मणके साथ सुख पूर्वक युद्धसे लौट गये ॥८६॥ भयसे घबड़ाये हुए म्लेच्छ विजयकी इच्छा छोड़ सन्धि कर सह्य और विन्ध्य पर्वतोपर रहने लगे ॥८७॥ जिस प्रकार सॉप गरुड़से भयभीत रहते है उसी प्रकार म्लेच्छ भी रामसे भयभीत रहने लगे । वे कन्द मूल फल आदि खाकर अपना निर्वाह करने लगे तथा उन्होने सब दुष्टता छोड़ दी ॥८८॥

तदनन्तर युद्धमें जिनका शरीर शान्त रहा था ऐसे सानुज अर्थात् छोटे भाई लक्ष्मणसहित राम, सानुज अर्थात् छोटे भाई कनकसहित हर्षित जनकको छोड़कर जनक अर्थात् पिताके सन्मुख चले गये ॥८९॥ तदनन्तर जिसे परम आनन्द उत्पन्न हुआ था और जिसका मन आश्चर्यसे विस्मित हो रहा था ऐसी समस्त प्रजा आनन्दसे क्रीड़ा करने लगी और समस्त पृथिवी कृतयुगके समान वैभवसे सुशोभित होने लगी ॥९०॥ जिस प्रकार हिमके आवरणसे रहित नक्षत्रोसे आकाश सुशोभित होता है उसी प्रकार धर्म अर्थ काममे आसक्त पुरुषोंसे संसार सुशोभित होता है ॥९१॥ गौतमस्वामी श्रेणिकसे कहते है कि हे राजन् ! राजा जनकने इसी माहात्म्य से प्रसन्न होकर अपनी लोक-सुन्दरी पुत्री जानकी रामके लिए देना निश्चित की थी ॥९२॥

१. यथावाञ्छम् यथासम्लेच्छ म० । २. विनि.स्मृत. म० । ३. सलक्ष्मणः । ४. अनुजसहित कनक सहितमिति यावत् । ५. पद्मोऽविग्रहः ब० । ६. मिथिलाधिपम् । ७. पित्रभिमुखम् । ८. रोमविस्मित- म० ।

उपजातिवृत्तम्

कि वात्र कृत्य बहुभाषितेन श्रीश्रेणिक स्व ननु कर्म पुसाम् ।
[1]समागमे गच्छति हेतुभाव वियोजने वा सुजनेन साकम् ॥६३॥
सोऽह महात्मा भुवने समस्ते गत प्रताप परम सुभाग्यः ।
गुणैरनन्यप्रमितैरुपेतो रविर्यथोद्भाति[2] परो मयूखै ॥६४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्य प्रोक्ते पद्मचरिते म्लेच्छपराजयसकीर्तन नाम सप्तविंशतितम पर्व ॥२७॥



इस विषयमे बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? हे श्रेणिक ! यह निश्चित बात है कि मनुष्योंका अपना किया कर्म ही उत्तम पुरुषोंके साथ सयोग अथवा वियोग होनेमे कारणभावको प्राप्त होता है ॥६३॥ परम प्रतापको प्राप्त भाग्यशाली एव असाधारण गुणोसे युक्त महात्मा रामचन्द्र समस्त संसारमे इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि किरणोसे युक्त सूर्य सुशोभित होता है ॥६४॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमे म्लेच्छोके पराजयका वर्णन करनेवाला सत्ताईसवॉ पर्व समाप्त हुआ ॥२७॥

---

१. समागते म० । २. यथोद्भूतपरो म०

अष्टाविंशतितमं पर्व

ईदृक्पराक्रमाकृष्टो नारदः पुरुविस्मयः । धृतिं न लभते क्वापि रामस्कथया विना ॥१॥
श्रुतश्च तेन वृत्तान्तो रामस्य किल मैथिली । पिता दातुमभीष्टेति प्रकटा सर्वविष्टपे ॥२॥
अचिन्तयच्च पश्यामि कन्या तामद्य कीदृशीम् । शोभनैर्लक्षणैर्येन रामस्य परिकल्पिता ॥३॥
पद्मगर्भदलं यस्मिन् कृत्वा स्तनतटे रहः । मत्कान्त्या सदृशं नेदमिति बुद्ध्यावलोकते ॥४॥
समये नारदस्तस्मिन् सीतालोकनलालसः । विशुद्धहृदयः प्रापदारुरोह च तद्गृहम् ॥५॥
ततो दर्पणसंक्रान्तं जटामुकुटभीषणम् । नारदीयं वपुर्वीक्ष्य कन्या त्राससमाकुला ॥६॥
हा मातः कोऽयमत्रेति कृत्वा प्रस्खलितं स्वनम् । विवेश गर्भभवनं वेपमानशरीरिका ॥७॥
नारदोऽनुपदं तस्या विशन्नतिकुतूहलः । नारीभिर्द्वारपालीभिः सावष्टम्भमरुध्यत ॥८॥
यावत्तस्य च तासां च कलहो वर्तते महान् । तावच्छब्देन सम्प्रापुर्नराः खड्गधनुर्धराः ॥९॥
गृह्यतां गृह्यतां कोऽयं कोऽयमित्युद्धतस्वनाः । कुञ्चितौष्ठान्नरान् दृष्ट्वा सशस्त्रान् हन्तुमुद्यतान् ॥१०॥
नारदः परमं बिभ्रद्भयमुत्कटवेपथुः । ऊर्ध्वरोमा खमुत्पत्य विश्रान्तोऽष्टापदाचले ॥११॥
अचिन्तयच्च हा कष्टं प्राप्तोऽस्मि जननं पुनः । निष्क्रान्तोऽस्मि महादावात् पक्षी ज्वालाहतो यथा ॥१२॥

अथानन्तर जो इस प्रकारके पराक्रमसे आकर्षित था तथा बहुत भारी आश्चर्यसे युक्त था ऐसा नारद युद्धकी चर्चाके बिना कहीं भी सन्तोषको प्राप्त नहीं होता था ॥१॥ उसने समाचार सुना कि समस्त संसारमें प्रसिद्ध अपनी सीता नामकी पुत्री उसके पिता राजा जनकने रामचन्द्रके लिए देनेकी इच्छा की है ॥२॥ समाचार सुनते ही उसने विचार किया कि उस कन्याको देखूँ तो सही कि वह शुभ लक्षणोंसे कैसी है जिससे रामचन्द्रके लिए उसका देना निश्चित किया गया है ॥३॥ ऐसा विचार कर नारद उस समय सीताके महलमें पहुँचा जब कि वह एकान्त स्थानमें पद्मगर्भ मणिका एक खण्ड अपने स्तन तटके समीप करके इस बुद्धिसे उसे देख रही थी कि यह मेरी कान्तिके समान है या नहीं ॥४॥ जिसे सीताके देखनेकी लालसा थी तथा जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध अर्थात् निर्विकार था ऐसा नारद उस समय सीताके महलमें ऊपर जा चढ़ा ॥५॥ तदनन्तर जिसका दर्पणमें प्रतिबिम्ब पड़ रहा था और जो जटारूपी मुकुटसे भीषण था ऐसा नारदका शरीर देखकर सीता भयसे व्याकुल हो गई ॥६॥ हा मातः ! यह यहाँ कौन आ रहा है ? इस प्रकार अर्धोच्चारित शब्द कर वह महलके भीतर घुस गई । उस समय उसका शरीर कम्पित हो रहा था ॥७॥ अत्यन्त कुतूहलसे भरा नारद भी उसीके पीछे महलमें भीतर प्रवेश करने लगा तो द्वारकी रक्षा करनेवाली स्त्रियोंने उसे बलपूर्वक रोक लिया ॥८॥ जब तक नारद तथा उन स्त्रियोंके बीच बड़ा कलह होता है तब तक उनका शब्द सुनकर तलवार और धनुषको धारण करनेवाले पुरुष वहाँ आ पहुँचे ॥९॥ वे पुरुष पकड़ो-पकड़ो कौन है ? कौन है ? इस प्रकारका जोरदार शब्द कर रहे थे । जो ओंठ चाब रहे थे, शस्त्रोंसे युक्त थे तथा मारनेके लिए उद्यत थे ऐसे उन पुरुषोंको देखकर नारद अत्यन्त भयभीत हो उठा । उसके शरीरसे अत्यधिक कँप-कँपी छूट रही थी, और रोमाञ्च खड़े हो गये थे । खैर, जिस किसी तरह वह आकाशमें उड़कर कैलास पर्वत पर पहुँचा और वहीं विश्राम करने लगा ॥१०-११॥ वह विचारने लगा कि हाय ! मैं बड़े कष्टमें पड़ गया था । बचकर क्या आया मानो दूसरा जन्म ही मैंने प्राप्त किया है । जिस प्रकार ज्वालाओंसे झुलसा पक्षी किसी बड़े दावानलसे बाहर निकलता

---

१. प्रस्खलितं स्वनं म० ।

शनैः शनैस्ततः कम्पं तद्दिग्न्यस्तेक्षणोऽमुचत् । ममार्ज च ललाटस्थान् स्वेदबिन्दून् स्थवीयसः ॥१३॥
समादधे स्खलत्पाणिर्जटाभारं समाकुलम् । मुहुः स्मृतां च निःश्वासान्मुमुचे दीर्घवेगिनः ॥१४॥
ततः स्वैरं भयाद् भ्रष्टो दध्यावेवं प्रकोपवान् । [1]निश्चलस्थितशेषाङ्गो मूर्धानं कम्पयन् मनाक् ॥१५॥
अदुष्टमानसः पश्यन् यातो रूपदिदृक्षया । रामानुरागतः प्रापमवस्थां मृत्युगोचराम् ॥१६॥
अहो प्रौढकुमार्यास्तच्चेष्टितं दुष्टविभ्रमम् । गृहीतोऽस्मि नयेनैष कृतान्तसदृशैर्नरैः ॥१७॥
क्व मे पापाधुना याति व्यसने पातयामि ताम् । नृत्याम्यातोद्यमुक्तोऽपि किमुतातोद्यसंयुतः ॥१८॥
विचिन्त्यैवं द्रुतं गत्वा नगरं रथनूपुरम् । सीतारूपं पटे न्यस्य प्रत्यक्षमिव सुन्दरम् ॥१९॥
चकारोपवने चन्द्रगते [2] क्रीडनसद्मनि । उत्सृज्य च बहिस्तस्थौ पुरस्याप्रकटात्मकः ॥२०॥
अन्यदाथ तमुद्देशं कुमारैर्बहुभिः समम् । भामण्डलकुमारोऽसौ रममाणः समाययौ ॥२१॥
तत्राज्ञानात् समालोक्य स्वसारं चित्रगोचराम् । ह्रीश्रुतिस्मृतिमुक्तात्मा द्राक् प्रभामण्डलोऽभवत् ॥२२॥
ततः शोचति निश्वासान्मुञ्चतेऽत्यन्तमायतान् । शुष्यति क्षिपति स्वस्तं गात्रं यत्र क्वचिद् द्रुतम् ॥२३॥
न रात्रौ न दिवा निद्रां लभते ध्यानतत्परः । उपचारेण [3]कान्तेन न जातु सुखमश्नुते ॥२४॥
पुष्पाणि गन्धमाहारं द्वेष्टि क्ष्वेडं [4] यथा भृशम् । करोति लोठनं भूयः संतापी जलकुट्टिमे ॥२५॥

है उसी प्रकार मैं भी उस कष्टसे बाहर निकला हूँ ॥१२॥ उस समय भी उसके नेत्र उसी दिशामें लग रहे थे। तदनन्तर धीरे-धीरे उसने शरीरकी कँपकँपी छोड़ी और ललाटपर स्थित पसीनेकी बड़ी-बड़ी बूँदें पोंछीं ॥१३॥ उसने काँपते हुए हाथसे अपनी बिखरी हुई जटाएँ ठीक कीं। यह करते हुए जब उसे बार-बार पिछली घटनाका स्मरण हो आता था तब वह लम्बी-लम्बी साँसें छोड़ने लगता था ॥१४॥ तत्पश्चात् जब भय दूर हुआ तो क्रोधमें आकर वह इस प्रकार विचार करने लगा। विचार करते समय उसके समस्त अङ्ग निश्चित रूपसे स्थिर थे केवल वह मस्तकको कुछ-कुछ हिला रहा था ॥१५॥ वह विचारने लगा कि देखो मेरे मनमें कोई दोष नहीं था मैं केवल रामचन्द्रके अनुरागसे सीताका रूप देखनेकी इच्छासे ही वहाँ गया था परन्तु ऐसी दशाको प्राप्त हो गया जिसमें मृत्यु तककी आशङ्का हो गई ॥१६॥ आश्चर्य है कि उस प्रौढ़ कुमारीकी वह चेष्टा कितनी दुष्टतासे भरी थी कि जिसके कारण मैं यमराजकी समानता करनेवाले मनुष्योंके द्वारा पकड़ लिया गया ॥१७॥ वह पापिनी अब जावेगी कहाँ ? मैं उसे अवश्य ही संकटमें डालूँगा। मैं तो बाजेके बिना ही नाचता हूँ फिर यदि बाजे मिल जावें तो कहना ही क्या है ? ॥१८॥ ऐसा विचार कर उसने एक पटपर प्रत्यक्षके समान सीताका सुन्दर चित्र बनाया और उसे लेकर वह शीघ्र ही रथनूपुर नगर गया ॥१९॥ वहाँ जाकर उसने उपवनमें जो अत्यन्त उत्तुङ्ग क्रीड़ा भवन था उसमें वह चित्रपट रख दिया और स्वयं अप्रकट रहकर नगरके बाहर रहने लगा ॥२०॥

अथानन्तर किसी दिन अनेक कुमारोंके साथ क्रीडा करता हुआ भामण्डल कुमार वहाँ आया ॥२१॥ सो चित्रमें अङ्कित बहिन सीताको देखकर वह अज्ञानवश शीघ्र ही लज्जा, शास्त्र, ज्ञान तथा स्मृतिसे रहित हो गया अर्थात् सीताके चित्रको देखकर इतना कामाकुलित हुआ कि लज्जा, शास्त्र तथा स्मृति आदि सबको भूल गया ॥२२॥ वह निरन्तर शोक करने लगा, अत्यन्त लम्बे श्वासोच्छ्वास छोड़ने लगा, उसका शरीर सूख गया तथा शिथिल शरीरको वह चाहे जहाँ उपेक्षासे डालने लगा अर्थात् चाहे जहाँ उठने बैठने लगा ॥२३॥ उसे न रात्रिमें नींद आती थी न दिनमें चैन पड़ता था। वह रात-दिन उसीके ध्यानमें निमग्न रहता था। सुन्दर उपचारोंसे उसे कभी भी सुख नहीं मिलता था ॥२४॥ वह पुष्प, सुगन्धित पदार्थ तथा आहारसे ऐसा द्वेष

१. निश्चितस्थित म० । २. चन्द्रगत. ज० । ३. रम्येण । ४. विषनिर्मितम् ।

मौनमाचरति स्मित्वा करोति च कथा मुहु । सहसोत्तिष्ठति व्यर्थं याति भूयो निवर्तते ॥२६॥
ततो ग्रहगृहीतस्य सदृशैस्तैर्विचेष्टितैः । ज्ञात तदातुरत्वस्य कारण मतिशालिभि ॥२७॥
जगदुश्चैवमन्योन्य कन्येय केन चित्रिता । पटोऽत्र निहितो गेहे स्याद् वा नारदचेष्टितम् ॥२८॥
तत श्रुत्वा कुमार तमाकुल स्वेन कर्मणा । नारदस्तस्य बन्धूना विस्रब्धो दर्शन ददौ ॥२९॥
आदरेण च तै पृष्ट. कृतपूजानमस्कृति । मुने कथय कन्येय दृष्टा क्व भवतेदृशी ॥३०॥
महोरगाङ्गना किं स्याद् भवेत् कि वा विमानजा । मर्त्यलोक समायाता त्वया दृष्टा कथचन ॥३१॥
[1]अवद्धारस्ततोऽवोचद् विनय परम वहन्[2] । भूयो भूय स्मय गच्छन्[3] विस्मय कम्पयन् शिर. ॥३२॥
अस्त्यत्र मिथिला नाम पुरी परमसुन्दरी । इन्द्रकेतो सुतस्तत्र[4] जनको नाम पार्थिव ॥३३॥
विदेहेति प्रिया तस्य मनोबन्धनकारिणी । गोत्रसर्वस्वभूतेय सीतेति दुहिता तयो. ॥३४॥
निवेद्यैवमसौ तेभ्य॰ कुमार पुनरुक्तवान् । बाल मा या विषाद त्व तवेय सुलभैव हि ॥३५॥
रूपमात्रेण यातोऽसि किमस्या भावमीदृशम् । ये तस्या विभ्रमा भद्र कृतान्[5] वर्णयितु क्षम. ॥३६॥
तया चित्त समाकृष्ट तवेति किमिहाद्भुतम् । धर्मध्याने दृढ बद्ध मुनीनामपि सा हरेत् ॥३७॥
आकारमात्रमत्रैतत्तस्या न्यस्त मया पटे । लावण्य यत्तु तत्तस्यास्तस्यामेवैतदीदृशम् ॥३८॥
नवयौवनसभूतकान्तिसागरवीचिषु । सा तिष्ठति तरन्तीव ससक्ता स्तनकुम्भयो ॥३९॥

करता था मानो उन्हें विषमय ही समझता हो। वह संतापसे युक्त होकर बार-बार जलसे सींचे हुए फर्शपर लोटता था ॥२५॥ वह मौन बैठा रहता था, कभी हँसकर बार-बार चर्चा करने लगता था, कभी सहसा उठकर व्यर्थ ही चलने लगता था और फिर लौट आता था ॥२६॥ उसकी समस्त चेष्टाएँ ऐसी हो गईं मानो उसे भूत लग गया हो। तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुषोंने उसकी आतुरताके कारणोंका पता लगाया ॥२७॥ वे परस्परमें इस प्रकार कहने लगे कि यह कन्या किसने चित्रित की है? इस महलमें यह चित्रपट किसने रक्खा है? जान पड़ता है कि यह सब नारदकी चेष्टा है ॥२८॥

तदनन्तर जब नारदने सुना कि हमारे कार्यसे भामण्डल कुमार अत्यन्त आकुल हो रहा है तब उसने निःशङ्क होकर उसके बन्धुओंके लिए दर्शन दिया ॥२९॥ उन सबने बड़े आदरसे नारदकी पूजा कर नमस्कार किया तथा पूछा कि हे मुने! कहो आपने यह ऐसी कन्या कहाँ देखी है? ॥३०॥ यह कोई नागकुमार देवकी अङ्गना है या पृथिवी पर आई हुई किसी कल्पवासी देवकी स्त्री आपने किसी तरह देखी है? ॥३१॥ तदनन्तर परम विनयको धारण करता तथा स्वयं ही आश्चर्यको प्राप्त हो बार-बार शिर हिलाता हुआ नारद कहने लगा ॥३२॥ कि इसी मध्यमलोकमें अत्यन्त मनोहर मिथिला नामकी नगरी है उसमें इन्द्रकेतुसे प्रशंसाको प्राप्त हुआ जनक नामका राजा रहता है ॥३३॥ उसके मनको बाँधने वाली विदेहा नामकी प्रिया है। उन दोनोंकी ही यह सीता नामकी कन्या है। यह कन्या उन दोनोंके गोत्रका मानो सर्वस्व ही है ॥३४॥ भामण्डलके भाई-बन्धुओंसे ऐसा कहकर उसने भामण्डलसे कहा कि हे बालक! तू विषादको प्राप्त मत हो। यह कन्या तुझे सुलभ ही है ॥३५॥ तू इसके रूपमात्रसे ही ऐसी अवस्थाको प्राप्त हो रहा है फिर इसके जो हाव-भाव विभ्रम हैं उनका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है? ॥३६॥ उसने तुम्हारा चित्त आकृष्ट कर लिया इसमें आश्चर्य ही क्या है? वह तो धर्मध्यानमें सुदृढ़रूपसे निबद्ध मुनियोंके चित्तको भी आकृष्ट कर सकती है ॥३७॥ मैंने चित्रपटमें उसका यह केवल आकारमात्र ही अङ्कित किया है। उसका जो लावण्य है वह तो उसीमें है अन्यत्र सुलभ नहीं है ॥३८॥ वह नव यौवनसे उत्पन्न कान्तिरूपी समुद्रकी तरङ्गोंमें ऐसी जान पड़ती

१. नारदः। अवद्धारः म०। २. महत् म०। ३. गच्छद्विस्मय म०। ४. इन्द्रकेतोः स्तुतः म०। ५. ता म०।

तस्या श्रोणी वरारोहा कान्तिसप्लाविताशुका । वीक्षितोन्मूलयेत्[1] स्वान्त समूलमपि योगिनाम् ॥४०॥
युक्त्वा भवन्तमन्यस्य सेय कस्योचिता भवेत् । यत्न वस्तुनि कुर्वेञ्चा[2] जायता योग्यसगमः[3] ॥४१॥
इत्युक्त्वा चरितार्थं सन्नारदोऽगान्मनीषितम् । दध्यौ भामण्डलोऽप्येव स्मरसायकताडित. ॥४२॥
[4]क्षेपिष्ठ प्रमदारत्न न लभेय यदीदृशम् । न जीवेय तदावश्य स्मराकुलितमानस· ॥४३॥
धारयन्ती परा कान्तिमिय मे [5]हृदयस्थिता । कथ न[6] कुरुते तापमग्निज्वालेव सुन्दरी ॥४४॥
दहति त्वचमेवार्को बहिरन्तश्च मन्मथ. । अन्तर्द्धिरस्ति सूर्यस्य मन्मथस्य न विद्यते ॥४५॥
द्वयमेव ध्रुव मन्ये प्राप्तव्यमधुना मया । तया वा सगम साक मरण वा स्मरेषुभि ॥४६॥
अनारतमिति[7] ध्यायन्नशने शयने न च । न प्रासादे न चोद्याने धृतिं भामण्डलोऽगमत् ॥४७॥
स्त्रियोऽथ नारद मत्वा कुमारासुखकारणम् । ससभ्रम समुद्विग्ना[8] पितुरस्य न्यवेदयन्[9] ॥४८॥
नाथानर्थसमुद्गेन[10] नारदेनाहृता पटे । चित्रीकृत्याङ्गना कापि[11] रूपातिशययोगिनी ॥४९॥
समालोक्य कुमारस्तां विह्वलीभूतमानस· । धृतिं न लभते क्वापि त्रपया दूरमुज्झित ॥५०॥
मुहुस्तामीक्षते कन्यां सीताशब्द समुच्चरन् । करोति विविधा चेष्टा वायुनेव वशीकृतः ॥५१॥
उपायश्चिन्त्यतामाशु तस्योत्पादयितु धृतिम् । यावन्न मुच्यते प्राणैर्भोजनादिपराङ्मुख. ॥५२॥

है मानो स्तनरूपी कलशोंके सहारे तैर ही रही हो ॥३९॥ कान्तिसे वस्त्रको तिरोहित करने वाले उसके नितम्ब यदि देखनेमे आ जावें तो निश्चित ही वह योगियोके मनको भी समूल उखाड़ कर फेंक दे ॥४०॥ आपको छोड़कर और यह किसके योग्य हो सकती है ? इस कार्यमे यत्न करो जिससे योग्य समागम प्राप्त हो सके ॥४१॥ इतना कहकर नारद तो कृतकृत्य हो इच्छित स्थान पर चला गया पर इधर भामण्डल कामके बाणोंसे ताड़ित हो इस प्रकार विचार करने लगा कि ॥४२॥ चूँकि मेरा मन कामसे इतना आकुल हो रहा है कि यदि मै शीघ्र ही इस स्त्रीरत्नको नहीं पाता हूँ तो अवश्य ही जीवित नही रह सकूँगा ॥४३॥ परम कान्तिको धारण करने वाली यह सुन्दरी प्रमदा मेरे हृदयमे स्थित है फिर अग्निकी ज्वालाके समान सन्ताप क्यों कर रही है ॥४४॥ सूर्य सिर्फ बाहरी चमडेको जलाता है पर काम भीतरी भागको जलाता है। इतने पर भी सूर्य अस्त हो जाता है पर काम कभी अस्त नही होता ॥४५॥ इस समय तो ऐसा जान पड़ता है कि मेरे द्वारा दो ही वस्तुएँ प्राप्त करने योग्य हैं। एक तो उस स्त्री रत्नके साथ समागम और दूसरा कामके बाणोंसे मारा जाना ॥४६॥ इस प्रकार निरन्तर उसीका ध्यान करता हुआ भामण्डल न भोजनमें, न शयनमे, न महलमे और न उद्यानमें—कहीं भी धैर्यको प्राप्त हो रहा था ॥४७॥

अथानन्तर जब स्त्रियोंको पता चला कि कुमारके दुःखका कारण नारद है तब उन्होंने उद्विग्न होकर शीघ्र ही कुमारके पितासे यह समाचार कहा ॥४८॥ कि इस समस्त अनर्थका पिटारा नारद ही है। वही कहींकी एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीको चित्रपट पर अङ्कित करके लाया था ॥४९॥ उसे देखकर जिसका मन अत्यन्त विह्वल हो गया है ऐसा कुमार किसी भी वस्तुमें धैर्यको प्राप्त नहीं हो रहा है। लज्जाने उसे दूरसे ही छोड़ दिया है ॥५०॥ वह सीता शब्दका उच्चारण करता हुआ बार-बार उसी कन्याको देखता रहता है तथा वायुके वशीभूत हुए के समान नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करता रहता है ॥५१॥ वह भोजनादि समस्त कार्योंसे विमुख हो गया है अर्थात् उसने खाना-पीना सब छोड़ दिया है। इसलिए जब तक प्राण इसे नहीं छोड़ते है तब तक

१. -न्मूलयत् म० । २. पुमान् । ३. योग्यसमागमसहितः । ४. शीघ्रम् । ५. हृदयं स्थिता म०, ज० । ६. च म० । ७. -मतिध्यायन् म० । ८. समुद्विग्ना म० । ९. न्यवेदयत् म० । १०. तथानर्थसमुद्गेन म०, नार्थानर्थ- ब० । अनर्थसमुद्गेन = अनर्थकरण्डकेन । ११. क्वापि म० ।

ततश्चन्द्रगतिः श्रुत्वा वार्तामेतां समाकुलः । आगत्य कान्तया साकं सुतमेवमभाषत ॥५३॥
भज सर्वाः क्रियाः पुत्र सुचेता भोजनादिकाः । अयं वृणोमि तां कन्यां भवतो मनसि स्थिताम् ॥५४॥
[1]परिसान्त्व्य सुतं कान्तां रहश्चन्द्रायणोऽवदत् [2]। प्रमोदं च विषादं च विस्मयं च वहन्निदम् ॥५५॥
आर्ये विद्याभृतां कन्याः सत्यज्य प्रतिमोज्झिताः । भूगोचराभिसम्बन्धः कथमस्मासु युज्यते ॥५६॥
क्ष्मागोचरस्य निलयं गन्तुं वा युज्यते कथम् । यदा वा तेन नो दत्ता मुखच्छाया तदा तु का ॥५७॥
तस्मात् केनाप्युपायेन कन्याया पितरं प्रियम् । इहैव [3]नाययाम्याशु नान्यः पन्था विराजते ॥५८॥
नाथ युक्तमयुक्तं वा त्वमेव ननु मन्यसे[4] । तथापि तावकं वाक्यं ममापि हृदयङ्गमम् ॥५९॥
ततश्चपलवेगाख्यं भृत्यमाहूय सादरम् । कर्णजापेन विज्ञातवृत्तान्तमकरोन्नृपः ॥६०॥
आज्ञादानेन तुष्टोऽसौ मिथिलां त्वरितो ययौ । हृष्टहंसयुवामोदसूचितामिव पद्मिनीम् ॥६१॥
अवतीर्याम्बराच्चारुसौ[5]श्लिवेषमुपाश्रितः । वित्रासयितुमुद्युक्तो गोमहिष्य[6]श्ववारणान् ॥६२॥
[7]देशघाते यथा जातः समाक्रन्दस्ततदापरः । शुश्राव च जनौघेभ्यो जनकस्तद्विचेष्टितम् ॥६३॥
निर्ययौ च पुराद्युक्तः प्रमोदोद्वेगकौतुकैः । ईक्षाञ्चक्रे च तं सप्ति नवयौवनसंगतम् ॥६४॥
[8]उद्दामानं मनोवेगं[9] भास्वत्प्रवरलक्षणम् । प्रदक्षिणमहावर्तं तनुवक्त्रोदरं चलम्[10] ॥६५॥

उसके पहले ही इसे धैर्य उत्पन्न करानेके लिए कोई उपाय सोचा जाय ॥५२॥ तदनन्तर चन्द्रगति विद्याधर इस समाचारको सुनकर घबड़ाया हुआ स्त्रीके साथ आकर पुत्रसे इस प्रकार बोला कि हे पुत्र! स्वस्थचित्त होकर भोजनादि समस्त क्रियाएँ करो। मै तुम्हारे मनमे स्थित उस कन्याको वरता हूँ अर्थात् तेरे लिए स्वीकार करता हूँ ॥५३-५४॥ इस प्रकार पुत्रको सान्त्वना देकर चन्द्रगति विद्याधर हर्ष, विषाद और विस्मयको धारण करता हुआ एकान्तमे अपनी स्त्रीसे बोला कि ॥५५॥ हे आर्ये! विद्याधरोकी अनुपम कन्याएँ छोड़कर हम लोगोका भूमिगोचरियोके साथ सम्बन्ध करना कैसे ठीक हो सकता है? ॥५६॥ इसके सिवाय एक बात यह है कि भूमिगोचरीके घर जाना कैसे ठीक हो सकता है? याचना करने पर भी यदि उसने कन्या नहीं दी तो उस समय मुखकी क्या कान्ति होगी? ॥५७॥ इसलिए कन्याके प्रिय पिताको किसी उपायसे शीघ्र ही यहीं बुलाता हूँ। इस विषयमे कोई दूसरा मार्ग शोभा नहीं देता ॥५८॥ स्त्रीने उत्तर दिया कि हे नाथ! उचित और अनुचित तो आप ही जानते है पर इतना अवश्य कहती हूँ कि आपकी बात मुझे भी अच्छी लगती है ॥५९॥

तदनन्तर राजाने चपलवेग नामक भृत्यको आदरपूर्वक बुलाकर उसके कानमे सब वृत्तान्त सूचित कर दिया ॥६०॥ तत्पश्चात् स्वामीकी आज्ञासे सन्तुष्ट हुआ चपलवेग शीघ्र ही उस प्रकार मिथिलाकी ओर चला जिस प्रकार कि हर्षसे भरा तरुण हंस सुगन्धिसे सूचित कमलिनीकी ओर चलता है ॥६१॥ उसने आकाशसे उतरकर सुन्दर घोड़ेका रूप बनाया और वह गाय, भैसा, अश्व तथा हाथी आदि पशुओको भयभीत करनेके लिए उद्यत हुआ ॥६२॥ वह जिस देशके घात करनेमे प्रवृत्त होता था उसी ओरसे रोनेका प्रबल शब्द उठ खड़ा होता था। राजा जनकने भी जनसमूहसे उस घोड़ेकी चेष्टाएँ सुनीं ॥६३॥ सुनीं ही नहीं, वह हर्ष, उद्वेग और कौतुकसे युक्त हो उस घोड़ेकी चेष्टाएँ देखनेके लिए नगरसे बाहर भी आया और उसने नव यौवनसे युक्त उस घोडेको देखा ॥६४॥ वह घोड़ा अत्यन्त ऊँचा था, मनको अपनी ओर खींचनेवाला था, उसके शरीरमे अच्छे-अच्छे लक्षण देदीप्यमान हो रहे थे, दक्षिण अङ्गमें महान्

---

१ परिशान्त्य म० । २. चन्द्रगतिः । ३. नययाम्याशु म० । ४. मन्यते म० । ५. हयवेषम् । ६. महिषाश्व क०, ख० । ७. देशघातो ख० । ८. उदमान म० । उद्मान ज० । ९. मनोयोग म० । १०. बलम् म०, ज० ।

सुशफाग्रैर्मृदङ्गाना कुर्वाणमिव ताडनम् । पृथग्जनैर्दुरारोह दधत [1]प्रोथवेपथुम् ॥६६॥
तत [2]शुद्धप्रमोद सन् जगाद जनको मुहु । ज्ञायतामेष कस्याश्वः प्राप्तो निर्दामतामिति ॥६७॥
ततो द्विजगणा ऊचु प्रियोद्योद्यतचेतस [3] । राजन्नस्य न [4] नाकेऽपि तुरङ्गो विद्यते सम ॥६८॥
कैव वार्ता पृथिव्या नु [5] राज्ञामीदृग् भवेदिति । अथवा किं न कालेन नृप दृष्टस्त्वयेयता ॥६९॥
रथे दिवाकरस्यापि श्रुतिविभ्रमगोचर. । विद्यते नेति जानीम [6]स्थूरीपृष्ठोऽमुना सम' ॥७०॥
नून भवन्तमुद्दिश्य कृतवन्त पर तप' । सृष्टोऽय विधिना सप्तिरत स्वीक्रियता प्रभो ॥७१॥
ततोऽसौ [7]विनयी निन्ये प्रग्रहद्वयसयुत । [8]मन्दुरा कुङ्कुमार्द्राङ्ग प्रचलच्चारुचामर ॥७२॥
[9]सवृत्तो माससमात्रोऽस्य ययौ कालो गृहीतित [10] । उपचारैरलयोग्यै सेव्यमानस्य सन्ततम् ॥७३॥
पाशकोऽत्रान्तरे नत्वा जनकाय न्यवेदयत् । नाथ नागस्य [11]सद्देशे ग्रहण दृश्यतामिति ॥७४॥
ततोऽसौ मुदितस्तुङ्गमारुह्य वरवारणम् । उद्दिष्टपादविस्तेन विवेश सुमहद्वनम् ॥७५॥
दूरे च सरसो दुर्गे स्थित दृष्ट्वा वर द्विपम् । जगादानय तत्क्षिप्र कश्चिदश्व महाजवम् ॥७६॥
ढौकितश्च स मायाश्व सद्य स्फुरितविग्रह. । आरुरोह स त यातश्चोत्पत्य तुरगो नभ ॥७७॥
हाहाकार नृपा कृत्वा वहन्त. शोकमुद्धतम् । निवृत्ता सहसा भीता विस्मयव्याप्तमानसा ॥७८॥

आवर्त थी, उसका मुख तथा उदर कृश था, वह अत्यन्त बलवान् था, टापोके अग्रभागसे वह पृथिवीको ताडित कर रहा था । उससे ऐसा जान पडता था मानो मृदङ्ग ही बजा रहा हो । साधारण व्यक्ति उसपर चढ़नेमे असमर्थ थे तथा उसका नथना कम्पित हो रहा था ॥६५–६६॥ तदनन्तर विशुद्ध हर्षको धारण करनेवाले राजा जनकने बार-बार उपस्थित लोगोसे कहा कि मालूम किया जाय कि यह किसका घोड़ा बन्धनमुक्त हो गया है ? ॥६७॥ तत्पश्चात् प्रिय वचन कहनेमे जिनका चित्त उत्कण्ठित हो रहा था ऐसे ब्राह्मणोने कहा कि हे राजन् ! इस घोड़ेके समान कोई दूसरा घोड़ा नहीं है ॥६८॥ यहाँ की बात जाने दीजिए समस्त पृथिवीमे जितने राजा हैं उनमे किसीके ऐसा घोडा नहीं होगा । अथवा हे राजन् ! आपने भी इतने समय तक क्या कभी ऐसा घोड़ा देखा ? ॥६९॥ हम तो समझते है कि सूर्यके रथमें भी इस घोड़ेकी समानता करनेवाला घोड़ा नही होगा ॥७०॥ ऐसा जान पड़ता है कि परम तपस्या करनेवाले आपको लक्ष्य कर ही विधाताने यह घोड़ा बनाया है सो हे प्रभो ! इसे आप स्वीकार करो ॥७१॥

तदनन्तर उस विनयवान् घोड़ेको दुहरी रस्सीसे बाँधकर घुंड़शालमें ले जाया गया । उस समय उसका शरीर केशरके विलेपनसे गीला हो रहा था और उसपर सुन्दर चमर हिल रहे थे ॥७२॥ घुड़शालमे निरन्तर योग्य उपचारोंसे इसकी सेवा होती थी । इस तरह जिस दिनसे घोड़ा पकड़कर लाया गया था उस दिनसे एक मासका समय व्यतीत हो गया ॥७३॥ इस बीचमे वनके एक कर्मचारीने नमस्कार कर राजा जनकसे निवेदन किया कि हे नाथ ! अपने देशमे हाथी कैसे पकड़ा जाता है यह देखिए ? ॥७४॥ तदनन्तर प्रसन्नतासे भरे राजा जनक उत्तुङ्ग गजराज पर सवार होकर चले । वनका कर्मचारी उन्हें मार्ग बताता जाता था । इस तरह राजा जनक किसी बड़े वनमे प्रविष्ट हुए ॥७५॥ वहाँ उन्होंने सरोवरके दूसरी ओर दुर्गम स्थानमे खड़े हुए उत्तम हाथीको देखकर सारथीसे कहा कि शीघ्र ही किसी वेगशाली घोड़ेको लाओ ॥७६॥ कहनेकी देर थी कि जिसका शरीर फड़क रहा था ऐसा वह मायामय घोड़ा लाकर राजा जनकके समीप खडा कर दिया गया । राजा जनक उसपर सवार हुए नहीं कि वह घोड़ा उन्हे लेकर आकाशमें उड़ गया ॥७७॥ यह देख जो सहसा भयभीत हो गये थे तथा जिनके चित्त आश्चर्यसे व्याप्त

१. प्रोथु म० । २. शुद्धः प्रमोदः ब०, म० । ३. प्रियभाषणपरमानसा. । ४. न ना कोऽपि म० । ५. तु म० । ६. अश्वः स्थूलीपृष्ठोऽ ज० । ७. विनयैर्निन्ये ब० । ८ मन्दुराकुङ्कुमार्द्राङ्गप्रचलच्चारुचामरः म० । ९. सवृत्तो म० । १०. गृहीततः ब० । ११. सदेशे म०, क० । सदेशे ख० ।

ततो [1]नदीगिरीन् देशानरण्यानि च भूरिशः । प्रयाति लङ्घयन् सप्तिः मनोवदनिवारणः ॥७९॥
नातिदूरे ततो दृष्ट्वा [2]प्रासादं तुङ्गमुज्ज्वलम् । ह्रियमाणः स शाखायां दृढं लग्नो महातरोः ॥८०॥
अवतीर्य ततो वृक्षाद् विश्रम्य च सविस्मयः । चरणाभ्यां परिक्रामन् प्रययौ स्तोकमन्तरम् ॥८१॥
ददर्श च महातुङ्गं शालं चामीकरात्मकम् । गोपुरं च सुरत्नेन तोरणेनातिशोभिनम् ॥८२॥
नानाजातींश्च वृक्षाणां लताजालकयोगिनाम् । फलपुष्पसमृद्धानां नानाविहगशोभिनाम् ॥८३॥
सध्याभ्रकूट सकाशान् प्रासादान् मण्डलस्थितान् । सेवां प्रासादराजस्य [3]कुर्वाणानिव [4]तत्परान् ॥८४॥
ततोऽसौ खड्गमालम्ब्य दक्षिणो दक्षिणे करे । केसरीवातिनिःशङ्कः प्रविवेश स गोपुरम् ॥८५॥
अपश्यच्च परिस्फीतां पुष्पजातीर्बहुविधः । मणिकाञ्चनसोपाना वापीश्च [5]स्फटिकाम्भसः ॥८६॥
रमणांश्च महामोदान् विशालान् कुन्दमण्डपान् । चलत्पल्लवसघातान् कृतसगीतषट्पदान् ॥८७॥
ततश्च माधवीतुङ्गजालकान्तरयोगिना । विस्फारितप्रसन्नेन चक्षुषा चारुकान्तिना ॥८८॥
रत्नवातायनैर्युक्तं मुक्ताजालकशोभितैः । शातकौम्भमहास्तम्भसहस्रकृतधारणम् ॥८९॥
नानारूपसमाकीर्णं मेरुश्रृङ्गसमप्रभम् । वज्रबद्धमहापीठमद्राक्षीद् भवनं नृपः ॥९०॥
अचिन्तयच्च [7]किं न्वेतद्विमानं पतितं खतः [8] । वासवस्य हृतं किं वा दैत्यैः क्रीडागृहं भवेत् ॥९१॥

हो रहे थे ऐसे अन्य राजा लोग हाहाकार करके बहुत भारी शोकको धारण करते हुए वापिस लौट आये ॥७८॥

अथानन्तर मनके समान जिसका कोई निवारण नही कर सकता था ऐसा वह घोड़ा अनेक नदी, पहाड, देश और पर्वतोको लॉघता हुआ आगे बढता गया ॥७९॥ तदनन्तर पास ही में एक ऊँचा उज्ज्वल भवन देखकर राजा जनक एक महावृक्षकी शाखामे मजबूतीसे झूम गये ॥८०॥ तदनन्तर वृक्षसे नीचे उतरकर उन्होंने आश्चर्यचकित हो कुछ देर तक विश्राम किया फिर पैरोसे पैदल चलते हुए कुछ दूर गये ॥८१॥ वहाँ उन्होंने अत्यन्त ऊँचा सुवर्णमयकोट और उत्तमोत्तम रत्नोसे युक्त तोरणसे समुद्भासित गोपुर देखा ॥८२॥ लताओंके समूहसे युक्त, फल और फूलोसे समृद्ध, तथा नाना प्रकारके पक्षियोसे सुशोभित वृक्षोंकी नाना जातियाँ देखीं ॥८३॥ जिनके शिखर सध्याके बादलोके समान सुशोभित थे, जो गोलाकारमे स्थित थे तथा जो भवनोके राजा अर्थात् राजभवनकी बड़ी तत्परतासे सेवा करते हुए के समान जान पड़ते थे ऐसे महलोको भी उन्होंने देखा ॥८४॥ तदनन्तर अतिशय चतुर राजा जनकने दाहिने हाथमे तलवार लेकर सिहके समान निःशङ्क हो गोपुरमे प्रवेश किया ॥८५॥ वहाँ जाकर उन्होंने जहाँ-तहाँ फैले हुए रङ्ग-बिरङ्गे अनेक प्रकारके फूल देखे। जिनकी सीढ़ियाँ मणि और स्वर्णकी बनी हुई थी तथा जिनमे स्फटिकके समान स्वच्छ जल भरा था ऐसी बावडियाँ देखीं ॥८६॥ जिन्हें देखकर आनन्द उत्पन्न होता था, जिनकी बहुत भारी सुगन्धि दूर-दूर तक फैल रही थी, जिनके पल्लवोंके समूह हिल रहे थे, और जहाँ भ्रमर सगीत कर रहे थे ऐसे कुन्द पुष्पोंके विशाल मण्डप भी उन्होंने देखे ॥८७॥ तदनन्तर राजा जनकने खुले हुए अत्यन्त सुन्दर स्वच्छ नेत्रसे माधवी लताओंकी ऊँची जालीके बीच झाँककर एक ऐसा सुन्दर मन्दिर देखा जो मोतियोंकी जालीसे सुशोभित रत्नमय झरोखोसे युक्त था, जो सुवर्णनिर्मित हजारो बड़े-बड़े खम्भे धारण कर रहा था, नाना प्रकारके रूपसे व्याप्त था, मेरुकी शिखरके समान जिसकी प्रभा थी, और जिसकी महापीठ (भूमिका) वज्रनिबद्धके समान अत्यन्त मजबूत थी ॥८८-९०॥ उसे देखकर वे विचार करने लगे कि क्या यह आकाशसे गिरा हुआ विमान है अथवा दैत्योके द्वारा हरण किया हुआ

१. नदीगिरेर्देशान् म० । २. प्रसाद तुङ्गमुच्चलम् म० । ३. कुर्वाणामिव ब० । ४. तत्परम् ब०, ज० । ५. वापी च म० । ६. पीत म० । ७. किंत्वेतद्विमान म० । ८. आकाशात् ।

पातालादुत्थित किं वा नागेन्द्रस्याथमालय । कुतोऽपि कारणात् सूर्यमरीचिकृतखण्डन ॥९२॥
अहो मे ययुना[1] तेन भद्रेणोपकृत परम् । अदृष्टपूर्वमेतद् यत् साधु वेश्मावलोकितम् ॥९३॥
विवेश चिन्तयन्नेव भवन तन्मनोहरम् । सस्फुल्लवदनाम्भोजो ददर्श च जिनाधिपम् ॥९४॥
हुताशनशिखागौर पूर्णचन्द्रनिभाननम् । पद्मासनस्थित तुङ्ग[2] जटामुकुटधारिणम् ॥९५॥
प्रातिहार्यसमायुक्त हेमतामरसार्चितम्[3] । चित्ररत्नकृतच्छाय तुङ्गसिंहासनस्थितम् ॥९६॥
ततोऽञ्जलिपुट मूर्ध्नि कृत्वा हृष्टतनूरुह । प्रणाम प्रयत कुर्वन् भक्त्या मूर्च्छामुपागत ॥९७॥
क्षणेन प्राप्य सज्ञा च स्तुति कृत्वा सुसस्कृताम् । विस्रब्ध जनकस्तस्थौ विस्मय परमुद्वहन् ॥९८॥
कृती चपलवेगश्च माया सहृत्य सत्वर । खङ्गविद्याधरो भूत्वा सप्राप रथनूपुरम् ॥९९॥
स्वामिने चावदन्नत्वा तुष्टो जनकमाहृतम् । [4]रम्यकाननसवीते स्थापित जिनवेश्मनि १००॥
आगत जनक ज्ञात्वा पर हर्षमुपागमत् । आप्तवर्गेण सयुक्तश्चन्द्रयानो महामना ॥१०१॥
गृहीत्वा च परा पूजा नानावाहनसंकुल । मनोरथरथारूढो ययौ जिनवरालयम् ॥१०२॥
दृष्ट्वा तत्सु[5]महत्सैन्यमागच्छत्परमोज्ज्वलम् । तूर्यशङ्खमहानादमाविग्नो जनकोऽभवत् ॥१०३॥
ततो हरिगजद्वीपिनागहसादिवाहिनाम् । पुरुषाणामिद मध्ये विमान स व्यलोकयत् ॥१०४॥

इन्द्रका क्रीडागृह है ? ॥९१॥ अथवा किसी कारणवश सूर्यकी किरणोंसे जिसके खण्ड हो गये थे ऐसा पातालसे निकला हुआ नागेन्द्रका भवन है ? ॥९२॥ अहो ! उस भले घोड़ेने मेरा बड़ा उपकार किया जिससे मै इस अदृष्टपूर्व सुन्दर मन्दिरको देख सका ॥९३॥ ऐसा विचार करते हुए राजा जनकने उस मनोहर मन्दिरमे प्रवेश किया और वहाँ जाकर जिनेन्द्रभगवान्‌के दर्शन किये। जिनदर्शनके प्रभावसे उनका मुखकमल खिल उठा था ॥९४॥ मन्दिरमे विराजमान जिनेन्द्रदेव अग्निकी शिखाके समान गौर वर्ण थे, उनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, वे पद्मासनसे विराजमान थे, बहुत ऊँचे थे, जटारूपी मुकुटको धारण किये हुए थे, आठ प्रातिहार्यों से युक्त थे, स्वर्ण कमलोसे उनकी पूजा की गई थी, नाना प्रकारके रत्नोसे उनकी कान्ति बढ़ रही थी, और वे ऊँचे सिंहासनपर विराजमान थे ॥९५–९६॥

तदनन्तर जिसके शरीरमे रोमाञ्च उठ रहे थे ऐसे राजा जनकने हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये और बड़ी सावधानीसे जिनेन्द्रदेवको नमस्कार किया। नमस्कार करते-करते उसकी भक्ति इतनी अधिक बढ़ी कि वह उसके अतिरेकसे मूर्च्छित हो गया ॥९७॥ क्षण भरके बाद पुन. चेतना प्राप्त कर उसने सुन्दर सुसंस्कृत स्तुति की। तदनन्तर वह परम आश्चर्यको धारण करता हुआ नि.शङ्क हो वहीं बैठ गया ॥९८॥

इधर चपलवेग नामका विद्याधर जो घोड़ेका रूप धरकर जनकको हर ले गया था अपने कार्यमें सफल हो बड़ा प्रसन्न हुआ तथा शीघ्रतासे सब माया समेटकर तथा खड्गधारी विद्याधर बनकर रथनूपुर नगर पहुँचा ॥९९॥ उसने संतुष्ट होकर अपने स्वामीके लिए नमस्कार कर कहा कि राजा जनक यहाँ लाये जा चुके है तथा सुन्दर वनसे वेष्टित जिनमन्दिरमे उन्हें ठहरा दिया गया है ॥१००॥ राजा जनकको आया जानकर चन्द्रगति परम हर्षको प्राप्त हुआ। तदनन्तर उदार चित्तको धारण करनेवाला एवं नाना वाहनोंसे युक्त चन्द्रगति आप्तवर्गके साथ पूजाकी उत्तमोत्तम सामग्री लेकर मनोरथरूपी रथपर सवार हो जिनमन्दिर गया ॥१०१–१०२॥ जिसमें तुरही और शङ्खोंका विशाल शब्द हो रहा था ऐसी उस देदीप्यमान बड़ी भारी सेनाको आती देख जनक कुछ भयभीत हुआ ॥१०३॥ तदनन्तर उसमे सिंह, हाथी, शार्दूल, नाग तथा हंस

१. अश्वेन। २. तुङ्गजटा-ज०, क०, ख०। ३. सुवर्णकमलपूजितम्। ४. मनोहरोद्यानवेष्टिते। ५. सुमहासैन्य ब०।

अचिन्तयच्च ते नूनमेते विद्याभृतो[1] जना । विजयार्द्धगिरेरूर्ध्वं ये वसन्तीति मे श्रुतम् ॥१०५॥
[2]मध्येऽयमस्य सैन्यस्य स्वविमानकृतस्थिति । शोभते परमो दीप्त्या कोऽपि विद्याधराधिप· ॥१०६॥
एव चिन्तापरे तस्मिन्नृपतौ दैत्यपुङ्गव । सम्प्रापच्चैत्यभवन सम्मदी[3] [4]नतविग्रह ॥१०७॥
दृष्ट्वा दैत्याधिप प्राप्त भीमसौम्यपरिग्रहम् । जनक किमपि ध्यायस्तस्थौ सिंहासनान्तरे ॥१०८॥
भक्त्या शशाङ्कयानोऽपि कृत्वा पूजामनुत्तमाम् । प्रणम्य विधिना चक्रे जिनाना परमस्तुतिम् ॥१०९॥
[5]विपञ्ची च विधायाङ्के सुखरूपा प्रियामिव । महाभावनया युक्तो जगौ जिनगुणात्मकम् ॥११०॥

चतुष्पदिकावृत्तम्

त्रिभुवनवरदमभिष्टुतमतिशयपूजाविधानविनिहितचित्तै ।
प्रणत सुरवृषभगणै प्रणमत नाथ जिनेन्द्रमक्षयसौख्यम् ॥१११॥
ऋषभ सतत परम वरद मनसा वचसा शिरसा सुजना ।
भजत प्रवर विलय प्रगत विहित सकल दुरितं भवति ॥११२॥
अतिशयपरम विनिहत दुरित परमगतिगत नमत जिनवरम् ।
सर्वसुरासुरपूजित पाद क्रोधमहारिपुनिर्मितमङ्गम् ॥११३॥
उत्तमलक्षणलक्षितदेह नौमि जिनेन्द्रमह प्रयतात्मा ।
भक्त्या विनमितसर्वजनौघ नतिमात्रविनाशितभक्तभयम् ॥११४॥

आदि नाना वाहनोपर स्थित पुरुषोके मध्यमे एक विमान देखा ॥१०४॥ उसे देखकर वह विचार करने लगा कि निश्चय ही वे विद्याधर है जो कि विजयार्द्ध पर्वतपर वास करते है ॥१०५॥ इस सेनाके बीचमे अपने विमानमें बैठा हुआ जो कान्तिमान् पुरुष शोभित हो रहा है वह विद्याधरो का राजा है ॥१०६॥ राजा जनक इस प्रकारकी चिन्तामे तत्पर थे ही कि हर्षसे भरा तथा नम्रीभूत शरीरको धारण करनेवाला वह चन्द्रगति जिनमन्दिरमे आ पहुँचा ॥१०७॥ जिसका परिग्रह कुछ तो भीम अर्थात् भय उत्पन्न करनेवाला था और कुछ सौम्य अर्थात् शान्ति उत्पन्न करनेवाला ऐसे दैत्यराजको आया देख कुछ ध्यान करता हुआ राजा जनक जिनराजके सिंहासन के नीचे बैठ गया ॥१०८॥ राजा चन्द्रगतिने भी भक्तिवश उत्तम पूजा कर तथा विधिपूर्वक प्रणाम कर जिनेन्द्रदेवकी उत्तम स्तुति की ॥१०९॥ और प्रियाके समान जिसका स्वर अत्यन्त सुख-कारी था ऐसी वीणाको गोदमें रख बड़ी भावनासे युक्त हो जिनराजका गुणगान करने लगा ॥११०॥

गुणगान करते समय उसने कहा कि जो तीनों लोकोंके लिए वर देनेवाले है, अतिशय पूर्ण पूजाके करनेमे चित्त धारण करनेवाले मनुष्य जिनकी सदा स्तुति करते है, इन्द्रादि श्रेष्ठ देव जिन्हें नमस्कार करते है, तथा जो अक्षय—अविनाशी सुखके धारक है, ऐसे जिनेन्द्रदेवको हे भव्यजन ! सदा प्रणाम करो ॥१११॥ हे सत्पुरुषो ! तुम उन ऋषभदेव भगवान्को मनसे, वचनसे शिर झुकाकर सदा नमस्कार करो जो कि उत्कृष्ट लक्ष्मीसे युक्त है, वर देनेवाले हैं, श्रेष्ठ है, अविनाशी है और उत्तम ज्ञानसे युक्त है तथा जिन्हें नमस्कार करनेसे समस्त पाप विनष्ट हो जाते है ॥११२॥ तुम उन जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार करो जो कि अतिशयोंसे उत्कृष्ट हैं, जिन्होंने पापको नष्ट कर दिया है, जो परमगति—सिद्ध गतिको प्राप्त हो चुके है, समस्त सुर और असुर जिनके चरणोकी पूजा करते है, तथा जिन्होंने क्रोधरूपी महाशत्रुको पराजित कर दिया है ॥११३॥ मै भक्तिपूर्वक बड़ी सावधानीसे उन जिनेन्द्रभगवान्की स्तुति करता हूँ कि जिनका शरीर उत्तम लक्षणोंसे युक्त है, जिन्होंने समस्त मनुष्योंके समूहको नम्रीभूत कर

१. विद्याधरा म० । २. मध्ये + अयम् + अस्य । ३. हर्षयुक्तः । ४. नम्रशरीर· । ५. वीणाम् ।

अनुपमगुणधरमनुपमकाय विनिहतभवभयसकलकुचेष्टम् ।
कलिमलघनपटविनयनदक्ष प्रणमत जिनवरमतिशयपूतम् ॥११५॥
इति गायति दैत्येन्द्रे जिनसिंहासनान्तरात् । निर्ययौ भयमुत्सृज्य जनको नाम[1] शोभनः ॥११६॥
ततश्चन्द्रायणोऽवोचदीषच्चलितमानसः । को भवान् विजने देशे वसत्यत्र जिनालये ॥११७॥
उरगाणां पति किं स्यात् किं वा विद्याधराधिप । सखे वद कुत प्राप्तो भवान् किं सञ्ज्ञकोऽपि वा ॥११८॥
मिथिलानगरीतोऽहं प्राप्तो जनकसञ्ज्ञक । हृतो मायातुरङ्गेण नभश्चरमहीपते ॥११९॥
इत्युक्ते जनकेनैतावन्योन्य [2]प्रीतमानसो । इच्छाकाराञ्जलिं[3] कृत्वा सुखासीनो बभूवतु ॥१२०॥
क्षण स्थित्वा च वृत्तान्तैरन्योन्यविनिवेदितै । जनितान्योन्यसन्मानौ तौ विश्रम्भ समीयतु ॥१२१॥
ततश्चन्द्रायणोऽवोचद्धीमान् कृत्वा कथान्तरम् । पुण्यवानस्मि येन त्व मिथिलापतिरीक्षित. ॥१२२॥
अस्ति ते दुहिता राजन् लक्षणैरन्विता शुभै । कर्णगोचरमायाता मम भूरिजनाननात् ॥१२३॥
सा भामण्डलसञ्ज्ञाय मत्पुत्राय प्रदीयताम् । त्वया विहितसम्बन्ध मन्ये स्व परमोदयम् ॥१२४॥
सोऽवोचत् सर्वमेतत्स्यात् कृत विद्याधराधिप । किन्तु [4]दाशरथेर्बाला ज्येष्ठस्य परिकल्पिता ॥१२५॥
सुहृच्चन्द्रगतिरूचे सा कस्मात्तस्यकल्पिता । सोऽवोचच्छ्रूयतामस्ति भवतां चेत् कुतूहलम् ॥१२६॥

दिया है और जिन्हें नमस्कार करने मात्रसे भक्तोका भय नष्ट हो जाता है ॥११४॥ हे भव्य-जन ! तुम उन जिनेन्द्रदेवको प्रणाम करो कि जो अनुपम गुणोको धारण करनेवाले है, जिनका शरीर उपमारहित है, जिन्होने ससाररूपी समस्त कुचेष्टाओको नष्ट कर दिया है, जो कलिकालके पापरूपी सघन पटको दूर करनेमे समर्थ है तथा जो अतिशयोसे पवित्र है अथवा अत्यन्त पवित्र है ॥११५॥

तदनन्तर दैत्यराजके इस प्रकार गानेपर सुन्दर शरीरको धारण करनेवाला राजा जनक भय छोड़ जिनेन्द्रदेवके सिहासनके नीचेसे बाहर निकल आया ॥११६॥ उसे देख जिसका मन कुछ विचलित हो गया था ऐसा चन्द्रगति बोला कि आप कौन है ? जो इस निर्जन स्थान में जिनालयके बीच रहते हैं ॥११७॥ आप नागकुमार देवोके स्वामी है ? या विद्याधरोके अधि-पति है ? अथवा किस नामको धारण करनेवाले है ? और यहाँ कहाँसे आये है ? हे मित्र ! यह सब मुझसे कहो ॥११८॥ इसके उत्तरमे राजाने कहा कि विद्याधरराज ! मैं मिथिला नगरीसे आया हूँ। जनक मेरा नाम है और एक मायामयी घोडा मुझे हरकर लाया है ॥११९॥ जनकके इतना कहनेपर दोनोके हृदय परस्पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और दोनो ही एक दूसरेके लिए हाथ जोड़कर सुखसे बैठ गये ॥१२०॥ क्षणभर ठहरकर दोनोने एक दूसरेके लिए अपना वृत्तान्त सुनाया और परस्पर एक दूसरेका सम्मान किया। इस तरह वे परस्पर विश्वासको प्राप्त हुए ॥१२१॥ तदनन्तर बीचमे ही बात काटकर चन्द्रगतिने कहा कि अहो ! मै बड़ा पुण्यवान् हूँ कि जिसने आप मिथिलाके राजाका दर्शन किया ॥१२२॥ हे राजन् ! मैने अनेक लोगोंके मुखसे सुना है कि आपके शुभ लक्षणोसे युक्त कन्या है ॥१२३॥ सो वह कन्या मेरे भामण्डल नामक पुत्रके लिए दीजिए। आपके साथ सम्बन्ध स्थापित कर मै अपने-आपको परम भाग्यशाली समझूँगा ॥१२४॥ इसके उत्तरमें राजा जनकने कहा कि हे विद्याधरराज ! यह सब हो सकता था परन्तु वह कन्या राजा दशरथके ज्येष्ठ पुत्र रामके लिए निश्चित की जा चुकी है; अतः विवशता है ॥१२५॥ मित्र चन्द्रगतिने कहा कि वह कन्या रामके लिए किस कारण निश्चित की गई है ? इसके उत्तरमे जनकने कहा कि यदि आपको कौतूहल है तो सुनिए ॥१२६॥

---

१ नागशोभनः ज० । २ प्रीतिमानसौ ज० । प्रतिमानसौ म० । ३. -ञ्जली कृत्वा म० । ४. दशरथ-सुतस्य रामचन्द्रस्य ।

धनगोरत्नसंपूर्णा मदीया मिथिलापुरी । अर्द्धबर्बरकैर्म्लेच्छैरबाध्यत सुदारुणैः ॥१२७॥
अपीड्यन्त प्रजाः सर्वाः स्वह्रियन्त धनोत्कराः । धर्मयज्ञा न्यवर्तन्त श्रावकाणां महात्मनाम् ॥१२८॥
ततो महाहवे जाते रक्षित्वा मां सहानुजम् । पद्मेन[1] विजिता म्लेच्छा ये सुरैरपि दुर्जयाः ॥१२९॥
लक्ष्मणश्चानुजस्तस्य शक्रोपमपराक्रमः । कुरुते शासनं नित्यं महाविनयसंयुतः ॥१३०॥
यदि नाम न तत्सैन्यं ताभ्यां स्याद् विजितं द्विषाम् । म्लेच्छलोकेन संपूर्णा ततः स्यादखिला मही ॥१३१॥
विवेकरहितास्ते हि लोकपीडामया इव । महोत्पाता इवात्यन्तभीषणा विषदारुणाः ॥१३२॥
प्राप्य तौ गुणसंपूर्णौ सुपुत्रौ लोकवत्सलौ । इन्द्रवद्भवने राज्यं सुखं दशरथोऽभजत् ॥१३३॥
तस्य राज्येऽधुना जाते नयशौर्यविलासिनः । वातोऽपि नाहरत् किंचित् प्रजानां पुरुसम्पदाम्[2] ॥१३४॥
ततः प्रत्युपकारं कं करोमीति समाकुलः । न रात्रौ न दिवा निद्रां सम्प्राप्तोऽस्मि विचिन्तयन् ॥१३५॥
रक्षिता येन मे प्राणास्तस्य रामस्य नो समः । कश्चित् प्रत्युपकारोऽस्ति किमुताधिक्यगोचरः ॥१३६॥
हतं महोपकारेण प्रतीकारविवर्जितम् । मन्ये तृणमिवात्मानं भोगप्रीति[3]पराङ्मुखः ॥१३७॥
नवयौवनसंपूर्णां दृष्ट्वा दुहितरं शुभाम् । गतो विरलतां शोकः शोकस्थानेऽपि मे ततः ॥१३८॥
तया कल्पितया तस्मै रामस्य पुरुतेजसः । नावेव शोकजलधेस्तारितोऽहं सुजातया ॥१३९॥
ततो नभश्चरा ऊचुरन्धकारीकृताननाः । अहो मानुषमात्रस्य बुद्धिस्तव न शोभना ॥१४०॥

अर्ध-राक्षसोंके समान अत्यन्त दुष्ट म्लेच्छोंने मेरी धन, धान्य, गाय, भैंस तथा अनेक रत्नोंसे परिपूर्ण मिथिला नगरीको बाधा पहुँचाना शुरू किया ॥१२७॥ समस्त प्रजा पीडित होने लगी, धन-धान्यके समूह चुराये जाने लगे, और महानुभाव श्रावकोंके धार्मिक पूजा-विधान आदि अनुष्ठान नष्ट किये जाने लगे ॥१२८॥ तदनन्तर उनके साथ मेरा महायुद्ध हुआ। सो उस महायुद्धमें रामने मेरी तथा मेरे छोटे भाईकी रक्षा कर देवोंसे भी दुर्जय उन समस्त म्लेच्छोंको पराजित किया ॥१२९॥ रामका छोटा भाई लक्ष्मण भी इन्द्रके समान महापराक्रमी तथा महाविनयसे सहित है। वह सदा रामकी आज्ञाका पालन करता है ॥१३०॥ यदि उन दोनों भाइयोंके द्वारा म्लेच्छोंकी वह सेना नहीं जीती जाती तो निश्चित था कि यह समस्त पृथिवी म्लेच्छोंसे भर जाती ॥१३१॥ वे म्लेच्छ विवेकसे रहित तथा लोगोंको पीड़ा पहुँचानेके लिए रोगोंके समान थे अथवा महा उत्पातके समान अत्यन्त भयंकर और विषके समान दारुण थे ॥१३२॥ गुणोंसे सम्पूर्ण तथा लोगोंसे स्नेह करनेवाले उन दोनों पुत्रोंको पाकर राजा दशरथ अपने भवनमें इन्द्रके समान राज्यसुखका उपभोग करते हैं ॥१३३॥ नय और शूरवीरतासे सुशोभित राजा दशरथके राज्यमें इस समय हवा भी सम्पत्तिशाली प्रजाका कुछ हरण नहीं कर पाती है फिर अन्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥१३४॥ इस उपकारके बदले मैं उनका क्या उपकार करूँ इसी बातकी आकुलतासे चिन्ता करते हुए मुझे न रातमें नींद आती है न दिनमें ही ॥१३५॥ रामने मेरे प्राणोंकी जो रक्षा की है उस समान भी कोई प्रत्युपकार नहीं है फिर अधिककी तो चर्चा ही क्या है ? ॥१३६॥ जो महान् उपकारसे दबा हुआ है तथा स्वयं कुछ भी प्रत्युपकार करनेमें असमर्थ है, ऐसे अपने आपको मैं तृणके समान तुच्छ समझता हूँ। मैं केवल भोगोंके भयसे पराङ्मुख हो रहा हूँ ॥१३७॥ तदनन्तर जब मेरी दृष्टि नवयौवनसे सम्पूर्ण अपनी शुभ पुत्री पर पड़ी तब शोकके स्थानमें भी मेरा शोक विरलताको प्राप्त हो गया ॥१३८॥ मैंने अतिशय प्रतापी रामचन्द्रजीके लिए उसको देना संकल्पित कर लिया और नावकी भाँति इस पुत्रीने मुझे शोकरूपी सागरसे पार कर दिया ॥१३९॥

तदनन्तर जिनके मुखोंपर अन्धकार छा रहा था ऐसे विद्याधर बोले कि अहो ! तुम एक

१ रामेण । २ पुरसम्पदाम् ख० । ३. भोगभीति म० ।

म्लेच्छै किं ग्रहणं क्षुद्रैर्यदि तेषां पराजये । [1]प्रशंससि परां शक्ति भूमिगोचरिणो[2] बुध ॥१४१॥
म्लेच्छनिर्घाटनात् स्तोत्रं त्वया पद्मस्य कुर्वता । कृता प्रत्युत निन्देयमहो हास्यमिदं परम् ॥१४२॥
शिशोर्विषफले प्रीतिर्निः स्वस्य[3] बदरादिषु । ध्वाङ्क्षस्य पादपे शुष्के स्वभावः खलु दुस्त्यजः ॥१४३॥
कुसम्बन्धं परित्यज्य क्षितिगो[4]चरिणां मतम् । कुरु विद्याधरेन्द्रेण सम्बन्धमधुना सह ॥१४४॥
क्व महासम्पदो देवैः सदृशो व्योमचारिणः । क्व भूमिगोचराः क्षुद्राः सर्वथैवातिदुःखिताः ॥१४५॥
जनकोऽवोचदत्यन्तविपुलः [5]क्षारसागरः । न तत्करोति यद्वाप्यः स्तोकस्वादुपयोभृतः ॥१४६॥
अत्यन्तघनबन्धेन तमसा भूयसापि किम् । अल्पेन तु प्रदीपेन जन्यते लोकचेष्टितम् ॥१४७॥
असंख्या अपि मातङ्गा मदिनः कुर्वते न तत् । केशरी यत्किशोरः सन्[6]चन्द्रनिर्मलकेसरः ॥१४८॥
इत्युक्ते [7]कोऽपि नोऽत्यर्थं समं कृतमहारवाः । भूमिचेष्टाः समारब्धा निन्दितुं गगनायना[8] ॥१४९॥
विद्यामाहात्म्यनिर्मुक्ता नित्यं स्वेदसमन्विताः । शौर्यसम्पत्परित्यक्ताः शोचनीया धराचराः ॥१५०॥
वद तेषां पशूनां च को भेदो जनक त्वया । दृष्टो येन त्रपां त्यक्त्वा दुर्बुद्धिस्तान् विकत्थसे ॥१५१॥
उवाच जनको धीरः हा कष्टं किं श्रुतं मया । वसुधाराजरत्नानां निन्दितं पापकर्मणा ॥१५२॥
कथं त्रिभुवनख्यातो वंशो नाभेयसंभवः । कर्णगोचरमेतेषां न प्राप्तो लोकपावनः ॥१५३॥

साधारण मनुष्य हो, तुम्हारी बुद्धि ठीक नहीं है ॥१४०॥ रामने म्लेच्छोंको पकड़ा है इससे क्या हुआ ? उनको परास्त तो क्षुद्र मनुष्य भी कर सकते है फिर क्यों तुम बुद्धिमान् होकर भूमिगोचरियोंकी परम शक्तिकी प्रशंसा कर रहे हो ॥१४१॥ म्लेच्छोंको निकालने मात्रसे ही तुम रामकी स्तुति कर रहे हो सो यह उनकी स्तुति नहीं किन्तु निन्दा है । अहो ! यह बड़ी हँसीकी बात है ॥१४२॥ बालककी विषफलमे, दरिद्रकी बैर आदि तुच्छ फलोमे और कौएकी सूखे वृक्षमे प्रीति होती है । सो कहना पडता है कि प्राणीका स्वभाव कठिनाईसे छूटता है ॥१४३॥ इसलिए तुम भूमिगोचरियोका खोटा सम्बन्ध छोडकर इस समय विद्याधरोंके राजाके साथ सम्बन्ध करो ॥१४४॥ महासम्पत्तिमान् तथा देवोंके समान आकाशमे चलनेवाले विद्याधर कहाँ ? और सर्वप्रकारसे अत्यन्त दु:खी क्षुद्र भूमिगोचरी कहाँ ? ॥१४५॥

तदनन्तर जनकने उत्तर दिया कि अत्यन्त विस्तृत लवणसमुद्र वह काम नही करता जो कि थोड़ेसे मधुर जलको धारण करनेवाली वापिकाएँ कर लेती हैं ॥१४६॥ अत्यन्त सघन अन्धकार बहुत भारी होता है तो भी उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है जब कि छोटेसे दीपकके द्वारा लोककी चेष्टा उत्पन्न होती है अर्थात् सब काम सिद्ध होते है ॥१४७॥ मदको झरानेवाले असंख्य हाथी भी वह काम नही कर पाते जो कि चन्द्रबिम्बके समान उज्ज्वल जटाओंको धारण करनेवाला सिंहका एक बच्चा कर लेता है ॥१४८॥ ऐसा कहनेपर कितने ही विद्याधर 'ऐसा नहीं है' इस प्रकार जोरसे एक साथ बड़ा शब्द करते हुए भूमिगोचरियोंकी निन्दा करने लगे ॥१४९॥ वे कहने लगे कि भूमिगोचरी विद्याके माहात्म्यसे रहित है, निरन्तर पसीनासे युक्त रहते है, शूरवीरता और सम्पत्तिसे रहित हैं तथा अतिशय शोचनीय हैं ॥१५०॥ अरे जनक ! बता तूने उनमें और पशुओंमें क्या भेद देखा है ? जिससे दुर्बुद्धि हो तथा लज्जा छोडकर उनकी इस तरह प्रशंसा किये जा रहा है ? ॥१५१॥

तदनन्तर धीरवीर जनकने कहा कि हाय ! बड़े कष्टकी बात है कि मुझ पापीको भूमिगोचरी उत्तमोत्तम राजाओंकी निन्दा सुननी पड़ी ॥१५२॥ क्या त्रिजगत्में प्रसिद्ध तथा लोकको

१. प्रशशंस म० । २. गोचरिणोर्बुध: म०, गोचरिणो बुधैः ब० । ३. दरिद्रस्य । निःश्वस्य म० । ४. गोचरिणामतः म० । ५. लवणसागरः । ६. चन्द्रमण्डल म० । ७. केऽपि नोत्यर्थं (?) । ८. विद्याधराः ।

अर्हन्तस्त्रिजगत्पूज्याश्चक्रिणो हरयो बलाः । उत्पद्यन्ते नरा यस्यां सा कथं निन्दिता मही ॥१५४॥
पञ्चकल्याणसम्प्राप्तिं पुंसां वदत खेचराः । स्वप्नेऽपि जातु किं दृष्टा भवद्भिः खेचरावनौ ॥१५५॥
इक्ष्वाकुवंशसंभूता गोष्पदीकृतविष्टपाः । अनीक्षितपरच्छत्रा महारत्नसमृद्धयः ॥१५६॥
सुरेन्द्रकीर्तितोदारकीर्तयो गुणसागराः । व्यतीता बहवो भूमौ कृतकृत्या नरोत्तमाः ॥१५७॥
पुत्रोऽनरण्यराजस्य तत्र वंशे महात्मनः । जातः सुमङ्गलाकुक्षौ नृपो दशरथोऽभवत् ॥१५८॥
यो लोकहितमुद्दिश्य विरहेदपि जीवितम् । मूर्ध्ना वहति यस्याज्ञां शेषामिव जनोऽखिलः ॥१५९॥
चतस्रो यस्य सम्पन्नाः सर्वशोभागुणोज्ज्वलाः । आशा इव महादेव्यः सुभावाः सुप्रसाधिताः ॥१६०॥
शतानि वरनारीणां पञ्च यस्य सुचेतसः । वक्त्रनिर्जितचन्द्राणां हरन्ति चरितैर्मनः ॥१६१॥
पद्मो नाम सुतो यस्य पद्मालिङ्गितविग्रहः । दीप्तिनिर्जिततिग्मांशुः कीर्त्तिनिर्जितशीतगुः ॥१६२॥
स्थैर्यनिर्जितशैलेन्द्रः शोभाजितपुरन्दरः । शौर्येण यो महापद्मं जयेदपि सुविभ्रमः ॥१६३॥
अनुजो लक्ष्मणो यस्य लक्ष्मीनिलयविग्रहः । द्रवन्ति शत्रवो भीता दृष्ट्वा यस्य शरासनम् ॥१६४॥
वायसा अपि गच्छन्ति नभसा तेन किं भवेत् । गुणेष्वत्र मनः कृत्यमिन्द्रजालेन[1] को गुणः ॥१६५॥
ग्रहणं वा भवद्भिः किं यत्र देवाधिपा अपि । क्रियन्ते भूमिसंभूतैर्नमन्तः क्षितिमस्तकाः ॥१६६॥
इत्युक्ते रहसि स्थित्वा सन्मन्त्र्य गगनायनाः । ऊचुर्न वेत्सि कार्याणि [2]जनकैकाग्रमानसाः ॥१६७॥

पवित्र करनेवाला भगवान् ऋषभदेवका वंश इनके कर्णगोचर नहीं हुआ ॥१५३॥ त्रिजगत्के द्वारा पूजनीय तीर्थंकर चक्रवर्ती, नारायण और बलभद्र जैसे महापुरुष जिसमें उत्पन्न होते हैं वह भूमि निन्दनीय कैसे हो सकती है ? ॥१५४॥ हे विद्याधरो ! कहो, विद्याधरोंकी भूमिमें पुरुषोंको पञ्च कल्याणकोंकी प्राप्ति होना क्या कभी आप लोगोंने स्वप्नमें भी देखी है ? ॥१५५॥ जिनकी उत्पत्ति इक्ष्वाकु वंशमें हुई थी, जिन्होंने संसारको गोष्पदके समान तुच्छ कर दिखाया, जिन्होंने कभी दूसरेका छत्र नहीं देखा, महारत्नोंकी समृद्धि जिनके पास थी, इन्द्र जिनकी उदार कीर्तिका वर्णन करता था, और जो गुणोंके सागर थे ऐसे अनेक कृतकृत्य राजा पृथिवी पर हो चुके हैं ॥१५६-१५७॥ उसी इक्ष्वाकु वंशमें महानुभाव राजा अनरण्यकी सुमङ्गला रानीकी कुक्षिसे राजा दशरथ उत्पन्न हुए हैं ॥१५८॥ जो लोकहितके लिए अपना जीवन भी छोड़ सकते हैं, समस्त लोग जिनकी आज्ञाको शेषाक्षतके समान शिरसे धारण करते हैं ॥१५९॥ जिसके सर्व प्रकारकी शोभा और गुणोंसे उज्ज्वल, उत्तम अभिप्रायकी धारक तथा उत्तम अलङ्कारोंसे युक्त चार दिशाओंके समान चार महादेवियाँ हैं ॥१६०॥ यही नहीं, अपने मुखसे चन्द्रमाको जीतनेवाली पाँच सौ स्त्रियाँ और भी अपनी चेष्टाओंसे जिसके मनको हरती रहती हैं ॥१६१॥ जिसके पद्म (राम) नामका ऐसा पुत्र है कि लक्ष्मी जिसके शरीरका आलिङ्गन करती है, जिसने अपनी दीप्तिसे सूर्यको, कीर्तिसे चन्द्रमाको, धीरतासे सुमेरुको और शोभासे इन्द्रको जीत लिया है, जो शूरवीरतासे महापद्म नामक चक्रवर्तीको भी जीत सकता है तथा उत्तम विभ्रमको धारण करनेवाला है ॥१६२-१६३॥ जिसका शरीर लक्ष्मीका निवासस्थल है और जिसके धनुषको देखकर शत्रु भयभीत होकर भाग जाते हैं ऐसा लक्ष्मण उस रामका छोटा भाई है ॥१६४॥ विद्याधर आकाशमें चलते हैं यह कहा सो आकाशमें तो कौए भी चलते हैं। इससे उनमें क्या विशेषता हो जाती है ? यहाँ गुणोंमें मन लगाना चाहिए अर्थात् गुणोंका विचार करना चाहिए। इन्द्रजालमें क्या सार है ? ॥१६५॥ अथवा आप लोगोंकी तो बात ही क्या है ? जबकि भूमिमें उत्पन्न हुए मनुष्य इन्द्रोंको भी नम्रीभूत कर देते हैं और नमस्कार करते समय उन्हें अपने मस्तक पृथिवीपर रगड़ने पड़ते हैं ॥१६६॥

अथानन्तर जनकके ऐसा कहनेपर विद्याधरोंने एकान्तमें बैठकर पहले सलाह की फिर

१. जालेषु म० । २. जानकैकाग्रमानसः क०, ख० ।

पद्मो लक्ष्मण इत्युच्चैर्गर्जितं वहसे वृथा । अथ विप्रत्यय कश्चित्ततोऽस्माद्व्रज निश्चयम् ॥१६८॥
समय शृणु भूनाथ वज्रावर्तमिद धनु । इद च सागरावर्तममरैः कृतरक्षणम् ॥१६९॥
इमे बाणासने कर्तुमधिज्ये यदि तौ क्षमौ । अनेनैव तयोः शक्तिं ज्ञास्याम किं बहूदितैः ॥१७०॥
वज्रावर्तं समारोप्य पद्मो गृह्णातु कन्यकाम् । अस्माभि प्रसभ पश्य तामानीतामिहान्यथा ॥१७१॥
तत परममित्युक्त्वा धनुषी वीक्ष्य दुर्ग्रहे । [2]मनकाद् व्याकुलीभाव जनको मनसागमत् ॥१७२॥
ततः कृत्वा जिनेन्द्राणा पूजा स्तोत्र तु भावत । गदासीरादिसयुक्ते पूजा नीते शरासने ॥१७३॥
उपादाय च ते शूरा जनक च नभश्चरा । मिथिलाभिमुख जग्मुश्चन्द्रोऽपि रथनूपुरम् ॥१७४॥
तत कृतमहाशोभ समङ्गलमहाजनम् । विवेश जनको वेश्म पौरलोकावलोकित. ॥१७५॥
विधायायुधशाला च समावृत्य नभश्चरा । वहन्तः परम गर्वं नगरस्य बहि स्थिता ॥१७६॥
जनकस्तु सखेदाङ्ग कृत्वा किञ्चित्स भोजनम् । चिन्तयाकुलितो भेजे तल्पमुत्साहवर्जित ॥१७७॥
तत्र चोत्तमनारीभिर्विनीताभिः सुविभ्रमम् । चन्द्रांशुचयसकाशैश्चामरैरभिवीजित ॥१७८॥
उष्णदीर्घातिनि श्वासान् विमुञ्चन् विषमानलम् । दधत्या विविध भावमभाष्यत विदेहया[3] ॥१७९॥
का क कामिस्त्वया दृष्टा नारी [4]यातेन लक्षिता । तद्वियोगकथामेतामवस्थामसि सश्रित ॥१८०॥

कहा कि हे जनक ! तुम कार्य करना नहीं जानते, तुम्हारा मन सिर्फ एक ही ओर लग रहा है ॥१६७॥ 'राम और लक्ष्मण उत्कृष्ट हैं' इस गर्जनाको तुम व्यर्थ ही धारण कर रहे हो यदि मेरे इस कहनेमें कुछ सशय हो तो इससे उसका निश्चय कर लो ॥१६८॥ हे राजन् ! हमारी शर्त सुनो। यह वज्रावर्त्त नामका धनुष है, और यह सागरावर्त्त नामका धनुष है। देव लोग इन दोनो की रक्षा करते है ॥१६९॥ यदि राम और लक्ष्मण इन धनुषोंको डोरीसहित करनेमें समर्थ हो जावेंगे तो इसीसे हम उनकी शक्ति जान लेंगे। अधिक कहनेसे क्या लाभ है ? ॥१७०॥ राम वज्रावर्त्त धनुषको चढ़ाकर कन्या ग्रहण कर सकते है यदि वे उक्त धनुष नही चढ़ा सकेंगे तो आप देखना कि हम लोग उसे यहाँ जबरदस्ती ले आवेंगे ॥१७१॥

तदनन्तर 'ठीक है' ऐसा कहकर जनकने विद्याधरोंकी शर्त स्वीकार तो कर ली परन्तु उन दुर्ग्राह्य धनुषोंको देखकर चित्तमें वह कुछ आकुलताको प्राप्त हुआ ॥१७२॥ तदनन्तर भावपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्की पूजा और स्तुति कर चुकनेके बाद गदा. हल आदि शस्त्रोंसे युक्त उन दोनों धनुषोंकी भी पूजा की गई ॥१७३॥ वे शूरवीर विद्याधर उन धनुषों तथा राजा जनकको लेकर मिथिलाकी ओर चल पडे और चन्द्रगति विद्याधर भी रथनूपुरकी ओर चल दिया ॥१७४॥ तदनन्तर जिसकी बहुत बड़ी सजावट की गई थी, और जिसमें महाजन लोग मङ्गलाचारसे सहित थे, ऐसे अपने भवनमें राजा जनकने प्रवेश किया। प्रवेश करते समय नागरिकजनोंने जनकके अच्छी तरह दर्शन किये थे ॥१७५॥ बहुत भारी गर्वको धारण करनेवाले विद्याधर नगरके बाहर आयुधशाला बनाकर तथा उसीको घेरकर ठहर गये ॥१७६॥ जिसका शरीर खेद-खिन्न था ऐसे जनकने कुछ थोड़ासा भोजन किया और इसके बाद वह चिन्तासे व्याकुल हो शय्यापर पड़ रहा। उत्साह तो उसे था ही नही ॥१७७॥ यद्यपि वहाँ विनयसे भरी उत्तम स्त्रियाँ, हाव भाव दिखाती हुई, चन्द्रमाकी किरणोंके समान चमरोंसे उसे हवा कर रही थी तथापि वह अत्यन्त विषम, उष्ण और लम्बे-लम्बे अत्यधिक श्वास छोड़ रहा था। उसकी यह दशा देख विविध प्रकारके भावको धारण करती हुई रानी विदेहाने कहा ॥१७८-१७९॥ कि हे कामिन् ! आप कहाँ गये थे और वहाँ ऐसी कौन-सी कामिनी आपने देखी है जिसके वियोगसे इस

१. विरोधः । २ मनकाघ्याकुली -म० । ३. एतन्नाम्न्या जनकपत्न्या । ४ या तेन लक्षितः म० ।

[1]प्राकृता कापि सा नारी कामिनीगुणरिक्तिका । इति या स्मरसतप्त[2] भवन्त नानुकम्पते ॥१८१॥
नाथ वेदय मे स्थान येन तामानयामि ते । भवद्दु खेन मे दु ख जनस्य सकलस्य वा ॥१८२॥
उदारे सति सौभाग्ये कथमिष्टोऽसि नो तया । [3]ग्रावमानसया येन धृति न लभसे भृशम् ॥१८३॥
उत्तिष्ठ भज नि शेषा क्रिया राजजनोचिता । शरीरे सति कामिन्यो भविष्यन्ति मनीषिताः[4] ॥१८४॥
इत्युक्ते पार्थिवोऽवोचत् कान्ता प्राणगरीयसीम् । अन्यथा खेदितस्यास्य कि मे चित्तस्य खेद्यते ॥१८५॥
शृणु देवि यतोऽवस्थामीदृशीमहमागत । अपरिज्ञातवृत्तान्ता किमर्थमिति भाषसे ॥१८६॥
तेन मायातुरङ्गेण नीतोऽह विजयाचलम्[5] । समयेनामुना तत्र मुक्त पत्या खगामिनाम् ॥१८७॥
वज्रावर्तमधिज्य चेद्धनु पद्म[6] करिष्यति । तत स्यात्तस्य कन्येय तनयस्य ममान्यथा ॥१८८॥
कर्मानुभावतस्तच्च मया साध्वसतोऽपि वा । प्रतिपन्न[7]मभाग्येन बन्धावस्थामुपेयुषा ॥१८९॥
समुद्रावर्तसज्ञेन[8] तच्चापेन समन्वितम् । आनीत खेचरैरुग्रैर्बहि स्थानस्य तिष्ठति ॥१९०॥
मन्ये तस्य सुरेशोऽपि न शक्तोऽधिज्यताकृतौ । वज्रज्वलन[9]तुल्यस्य दुर्निरीक्ष्यस्य तेजसा ॥१९१॥
[10]कृतान्तमेव निक्रुद्धमनाकृष्टमपि स्वनत् । अनधिज्यमपि स्वैर भीष्म तिष्ठत्यनारतम् ॥१९२॥
[11]अधिज्ये न कृते तस्मिन् पद्मेन [12]मदिय ध्रुवम् । हरिष्यते खगै कन्या मासपेशीव जम्बुकात् ॥१९३॥
विंशतिर्वासराणा च वस्तुन्यत्र कृतोऽवधि । बलान्नीता वराकीय भूयोऽस्माभि. क्व वीक्षिता ॥१९४॥

अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥१८०॥ जान पडता है कि वह कोई पामरी स्त्री है अथवा स्त्रीके योग्य गुणोसे रिक्त है जो इस तरह कामसे संतप्त हुए आप पर दया नही करती है ॥१८१॥ हे नाथ ! आप वह स्थान बतलाइये जिससे मै उसे ले आऊँ क्योकि आपके दुःखसे मुझे तथा समस्त लोगोको दु ख हो रहा है ॥१८२॥ उत्कृष्ट सौभाग्यके रहते हुए भी उस पाषाणहृदयाने आपको क्यो नही चाहा है जिससे कि आप अत्यन्त अधीर हो रहे है ॥१८३॥ उठिए और राजाओंके योग्य समस्त क्रियाओंका सेवन कीजिए। यदि शरीर है तो अनेक इच्छित स्त्रियॉ हो जावेगी ॥१८४॥

विदेहाके ऐसा कहनेपर राजाने प्राणोसे भी अधिक प्रिय वल्लभासे कहा कि मेरा चित्त दूसरे ही कारणसे खिन्न हो रहा है। उसे इस तरह खेद क्यो पहुँचा रही हो ? ॥१८५॥ हे देवि ! सुनो, मै जिस कारणसे ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुआ हूँ। तुम वृत्तान्तको जाने बिना इस प्रकार क्यो बोल रही हो ? ॥१८६॥ मै उस मायामय अश्वके द्वारा विजयार्ध पर्वतपर ले जाया गया था वहॉ विद्याधरोंके राजाने मुझे इस शर्तपर छोड़ा है कि यदि राम वज्रावर्त धनुषको डोरी-सहित कर देंगे तो यह कन्या उनकी होगी अन्यथा मेरे पुत्रकी होगी ॥१८७–१८८॥ कर्मके प्रभावसे समझो अथवा भयसे समझो बन्धन अवस्थाको प्राप्त हुए मुझ मन्दभाग्यने उसकी वह शर्त स्वीकार कर ली ॥१८९॥ समुद्रावर्त नामक दूसरे धनुषके साथ उस धनुषको उग्र विद्याधर ले आये है और वह नगरके बाहर स्थित है ॥१९०॥ वह धनुप वज्राग्निके समान है तथा तेजके कारण उसकी ओर देखना भी कठिन है। इसलिए मै तो समझता हूँ कि उसे डोरी-सहित करनेमें इन्द्र भी समर्थ नही हो सकेगा ॥१९१॥ वह ऐसा जान पड़ता है मानो अत्यन्त क्रुद्ध यमराज ही हो। बिना खींचे भी वह शब्द करता है और बिना डोरीके भी वह अत्यन्त भयंकर है ॥१९२॥ यदि राम उस धनुषको डोरीसहित नहीं कर सके तो मेरी इस कन्याको विद्याधर लोग अवश्य ही उसी तरह हर कर ले जावेगे जिस तरह कि पक्षी किसी शृगालके मुखसे मांसकी डलीको हर ले जाते है ॥१९३॥ इस कार्यके लिए बीस दिनकी अवधि निश्चित की

१ पामरी। २. स्मरससक्तं म०। ३. पाषाणवत्कठोरचेतसा। ४. इष्टाः। ५. विजयार्धगिरिम्। ६. रामः। ७. स्वीकृतम्। ८. सख्येन म०। ९. दिग्ज्वालानल- ज०, ख०, क०। १०. कृतान्तायैव तत्क्रुद्ध- म०, ख०। ११. अधिज्येन च्युते यस्मिन् म०। १२. मत् मत्सकाशात्।

एवमुक्तेऽस्रसंपूर्णलोचना सहसाभवत् । विदेहापहृत बालमस्मरच्च प्रसङ्गत ॥१९५॥
अतीतागामिशोकाभ्याममभित पीडितेव सा । चकार वारिनेत्राभ्या कुररीव कृतस्वना ॥१९६॥
परिदेवनमेव च चक्रे विह्वलमानसा । कुर्वती परिवर्गस्य द्रवण[1] चेतसामलम् ॥१९७॥
कीदृग्वाम मया नाथ दैवस्यापकृत भवेत् । पुत्रेण यन्न सतुष्ट हर्तुं कन्या समुद्यतम् ॥१९८॥
स्नेहालम्बनमेकैव बालिकेय सुचेष्टिता । मम ते बान्धवाना च प्रेमभावो जनस्य च ॥१९९॥
दु.खस्य यावदेकस्य[2] नान्त गच्छामि पापिनी । द्वितीय तावदेतन्मे[3] कृतसन्निधि वर्तते ॥२००॥
शोकावर्तनिमग्ना ता करुण रुदतीमिति । नियम्यास्रु[4] प्रियोवोचदत शोकसमाकुल ॥२०१॥
अल कान्ते रुदित्वा ते ननु कर्मार्जित पुरा । नर्तयत्यखिल लोक नृत्ताचार्यो ह्यसौ पर ॥२०२॥
अथवा मयि विश्वस्ते हृतो दुष्टेन बालक । अप्रमत्तस्य बाला तु हर्तुं शक्तोऽस्ति को मम ॥२०३॥
आप्तप्रधारणन्यायमपरित्यजता मया । पृष्टासि दयिते वस्तु जानाम्येतत् सुखावहम् ॥२०४॥
सारैरेवविधैर्वाक्यै. कान्तेन कृतसान्त्वना[5] । विदेहा विरलीकृत्य शोक कृच्छ्रादवस्थिता ॥२०५॥
ततो धनुर्गृहप्रान्ते विशाला रचितावनि । स्वयवरार्थमाहूता पार्थिवा सकला क्षितौ ॥२०६॥
प्रेषित कोशला दूत [6]पद्माद्या समुपागता । [7]मातापित्रादिसयुक्ता जनकेनाभिपूजिता ॥२०७॥

गई है। इसके बाद यह कन्या जबर्दस्ती ले जाई जावेगी। फिर इस बेचारीको हम कहाँ देख सकेंगे ? ॥१९४॥

जनकके ऐसा कहते ही विदेहाके नेत्र सहसा आँसुओंसे भर गये और इस प्रसङ्गसे उसे अपने अपहृत बालकका स्मरण हो आया ॥१९५॥ वह अतीत और आगामी शोकके द्वारा दोनों ओरसे पीडित हो रही थी। इसलिए कुररीकी तरह शब्द करती हुई नेत्रोंसे जल बरसाने लगी ॥१९६॥ विह्वल चित्तकी धारक विदेहा परिजनोंके चित्तको अत्यन्त द्रवीभूत करती हुई इस प्रकार विलाप करने लगी कि हे नाथ ! मैने दैवका कैसा उलटा अपकार किया होगा कि जिससे वह पुत्रके द्वारा सन्तुष्ट नहीं हुआ अब कन्याको हरनेके लिए उद्यत हुआ है ॥१९७–१९८॥ उत्तम चेष्टाको धारण करनेवाली यही एक बालिका मेरे और आपके स्नेहका आलम्बन है तथा भाई-बान्धव एवं परिवारके लोगोका प्रेमभाजन है ॥१९९॥ मै पापिनी जब तक एक दु खका अन्त नही प्राप्त कर पाती हूँ तब तक दूसरा दु ख आकर उपस्थित हो जाता है ॥२००॥ राजा जनक स्वयं शोकसे आकुल था पर जब उसने देखा कि विदेहा शोकरूपी आवर्तमे फँसकर करुण रोदन कर रही है तब उसने जिस किसी तरह अपने आँसू रोककर कहा कि हे प्रिये ! तुम्हारा रोना व्यर्थ है। निश्चयसे पूर्व जन्ममे अर्जित कर्म ही समस्त लोकको नचा रहा है। यही सबसे बड़ा नर्तकाचार्य है ॥२०१–२०२॥ अथवा मेरे निश्चित असावधान रहनेपर किसी दुष्टके द्वारा बालक हरा गया था पर अब तो मै सावधान हूँ। देखूँ मेरी कन्याको हरनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२०३॥ हे प्रिये ! 'आप्तजनोंके साथ कार्यका विचार करना चाहिए' इस न्यायको न छोड़ते हुए ही मैंने तुमसे पूछा था। मै तो जानता हूँ कि यह वस्तु सुखको धारण करनेवाली ही होगी ॥२०४॥ पतिके इस प्रकार सारपूर्ण वचनोंसे जिसे सान्त्वना दी गई थी ऐसी विदेहा बड़े कष्टसे शोकको हलका कर चुप हो रही ॥२०५॥

तदनन्तर जहाँ धनुष रक्खा था उसके समीप ही विशाल भूमि बनाई गई और उसमें स्वयंवरके लिए समस्त राजा बुलाये गये ॥२०६॥ अयोध्याको भी दूत भेजा गया जिससे राम आदि चारों भाई माता पिता आदिके साथ आये और राजा जनकने उन सबका सम्मान किया

१. द्रविण म० । २. -देतस्य म० । ३. तावदेवन्मे म० । ४ नियम्याश्रु म० । ५. सान्त्वया ज० । ६. रामाद्याः । ७. मातृपित्रा–ज०, क०, ख०, ब० ।

ततो हर्म्यतले कान्ते स्थिता परमसुन्दरी । कन्यासप्तशतान्तस्था सीता शूरभटावृता ॥२०८॥
प्रान्तेषु सर्वसामन्ता वेश्मनोऽस्यावतस्थिरे । कुर्वाणा विविधा लीला महाविभववर्तिन ॥२०९॥
तत स्थित्वा पुरस्तस्य कञ्चुकी सुबहुश्रुत । जगाद तारशब्देन हेमवेत्रलताकर ॥२१०॥
राजपुत्रि परीक्षस्व पद्मोऽसौ पद्मलोचन । अयोध्याधिपतेराद्य पुत्रो दशरथश्रुते ॥२११॥
लक्ष्मीमान् लक्ष्मणश्चायमनुजोऽस्य महाद्युति । भरतोऽय महाबाहु शत्रुघ्नोऽय सुचेष्टित ॥२१२॥
सुतैर्दशरथोऽमीभिर्गुणसागरमानसै । वसुधा शास्ति निर्दग्धभयाङ्कुरसमुद्भवाम् ॥२१३॥
हरिवाहननामाय धीमानेष घनप्रभ । अय चित्ररथ कान्तो दुर्मुखोऽय प्रभाववान् ॥२१४॥
श्रीसञ्जयो जयो भानु सुप्रभो मन्दरो बुध । विशाल. श्रीधरो वीरो बन्धुर्भद्रबल शिखी ॥२१५॥
एतेऽन्ये च महासत्त्वा महाशोभासमन्विता । विशुद्धवशसम्भूताश्चन्द्रनिर्मलकान्तय ॥२१६॥
कुमारा परमोत्साहा गुणभूषणधारिण । महाविभवसम्पन्ना भूरिविज्ञानकोविदा ॥२१७॥
गजोऽयमस्य शैलाभस्तुरङ्गोऽस्यायमुन्नत । रथोऽस्याय महाभोगो[1] भटोऽस्याय कृताद्भुत ॥२१८॥
साकाश्यपुरनाथोऽयमय[2] रन्ध्रपुराधिप । [3]गवीधुमद्धीशोऽयमय नन्दनिकाधिप. ॥२१९॥
विभु सूरपुरस्यायमेष कुण्डपुराधिप । अय मगधराजेन्द्र काम्पिल्यविभुरेष च ॥२२०॥
अयमिक्ष्वाकुसम्भूतो नृपोऽय हरिवंशज । अय कुरुकुलानन्दो भोजोऽय वसुधापति ॥२२१॥
इत्यादिवर्णनायुक्ता श्रूयन्तेऽमी महागुणा । इद त्वदर्थमेतेषा समारब्ध परीक्षणम् ॥२२२॥

॥२०७॥ तदनन्तर परम सुन्दरी सीता सात सौ अन्य कन्याओके साथ महलकी सुन्दर छतपर बैठी । शूरवीर योद्धा उसे घेरे हुए थे ॥२०८॥ उस महलके चारो ओर नाना प्रकारकी लीला को करते हुए समस्त सामन्त बडे ठाट-बाटसे अवस्थित थे ॥२०९॥

तदनन्तर अनेक शास्त्रोको जाननेवाला तथा हाथमे सुवर्णकी छडी धारण करनेवाला कञ्चुकी सीताके सामने खडा होकर उच्च स्वरसे बोला कि हे राजपुत्रि ! देखो यह कमल-लोचन, अयोध्याके अधिपति राजा दशरथका आद्य पुत्र पद्म (राम) है ॥२१०–२११॥ यह लक्ष्मीवान् तथा विशाल कान्तिको धारण करनेवाला इसका छोटा भाई लक्ष्मण है । यह बडी बड़ी भुजाओ को धारण करनेवाला भरत है और यह सुन्दर चेष्टाओको धारण करनेवाला शत्रुघ्न है ॥२१२॥ जिनके हृदय गुणोके सागर हैं ऐसे इन पुत्रोके द्वारा राजा दशरथ पृथिवीका पालन करते है । इनकी पृथिवीमे भयके समस्त अङ्कुरोकी उत्पत्ति भस्म कर दी गई है ॥२१३॥ यह अत्यधिक कान्तिको धारण करनेवाला बुद्धिमान् हरिवाहन है, यह सुन्दर चित्ररथ है, यह प्रभावशाली दुर्मुख है ॥२१४॥ यह श्रीसञ्जय है, यह जय है, यह भानु है, यह सुप्रभ है, यह मन्दर है, यह बुध है, यह विशाल है, यह श्रीधर है, यह वीर है, यह बन्धु है, यह भद्रबल है और यह शिखी अर्थात् मयूरकुमार है ॥२१५॥ ये तथा इनके सिवाय और भी राजकुमार यहाँ उपस्थित हैं । ये सभी महा पराक्रमी, महा शोभासे युक्त, विशुद्ध कुलमे उत्पन्न, चन्द्रमाके समान निर्मल कान्तिके धारक, परमोत्साही, गुणरूपी आभूषणोके धारक, महा विभवसे सम्पन्न तथा अत्यधिक विज्ञानमे निपुण है ॥२१६–२१७॥ यह पर्वतके समान आभावाला इसका हाथी है, यह इसका ऊँचा घोड़ा है, यह इसका विस्तृत रथ है और यह आश्चर्यजनक कार्य करनेवाला इसका सुभट—योद्धा है ॥२१८॥ यह साङ्काश्यपुरका स्वामी है, यह रन्ध्रपुरका अधिपति है यह गवीधुमद् देशका अधीश है, यह नन्दनिकाका नाथ है ॥२१९॥ यह सूरपुरका विभु है । यह कुण्डपुरका अधिप है, यह मगध देशका राजा है, और काम्पिल्यपुरका स्वामी है ॥२२०॥ यह राजा इक्ष्वाकुवंशमे उत्पन्न हुआ है, यह हरिवंशमे उद्भूत हुआ है, यह कुरुकुलका आनन्द दायक है और यह राजा भोज है ॥२२१॥ ये सभी राजा इत्यादि वर्णनासे युक्त तथा महा

१. महाभागो म० । २. रन्ध्रपुराभिधः म० । ३ गवीकमद ज० । गवाग्रुमद म० ।

वज्रावर्तमिदं चापमारोपयति यो नरः । कुमारि वरणीयोऽसौ भवत्या पुरुषोत्तमः ॥२२३॥
क्रमेण मानिनस्ते च कुर्वाणाः स्वविकत्थनम् । वज्रावर्तधनुस्तेन ढौकिताश्चारुविभ्रमाः[1] ॥२२४॥
आसीत्तेषु कुमारेषु धनुर्मुञ्चति पावकम् । विद्युत्सटासमाकारं निश्वसद्भीषणोरगम् ॥२२५॥
चक्षुस्तत्र [2]द्रुतं केचिद्धनुर्ज्वालासमाहतम् । त्रस्ताः पिधाय पाणिभ्यां पराचीनत्वमाश्रिताः[3] ॥२२६॥
तस्थुर्दूरत एवान्ये दृष्ट्वा स्फुरितपन्नगान् । कम्पमानसमस्ताङ्गा निमीलितविलोचनाः ॥२२७॥
[4]केचिज्ज्वराकुलाः पेतुः क्षितावन्ये [5]गिरोज्झिताः । द्रुतं पलायिताः केचिदेके मूर्च्छामुपागताः ॥२२८॥
केचित्पन्नगवातेन क्षिप्ता मर्मरपत्रवत् । अपरे स्तम्भमायाताः स्थिताः शान्तर्द्धयोऽपरे ॥२२९॥
केचिदूचुर्यदि स्थानं गमिष्यामो निजं ततः । जीवदानानि दास्यामश्चरणौ देहि [6]देवते ॥२३०॥
[7]ऊचुरन्येऽन्यनारीभिः सेवां मानसवासिनः[8] । म्रियमाणाः करिष्यामो रूपिण्यापि किमेतया ॥२३१॥
अन्ये जगुरियं नूनं केनापि क्रूरचेतसा । प्रयुक्ता परमा माया वधार्थं पृथिवीक्षिताम् ॥२३२॥
अन्ये जगुः किमस्माकं कामेनास्ति प्रयोजनम् । ब्रह्मचर्येण नेष्यामः समयं साधवो यथा ॥२३३॥
ततः पद्मः समुत्तस्थौ वरकार्मुकलालसः । ढुढौके च [9]महानागमन्थरां गतिमुद्वहन् ॥२३४॥
आसीदतिशुभे तस्मिन् रूपं भेजे धनुर्निजम् । सुचारुपरमं सौम्यमन्तेवासी[10] गुराविव ॥२३५॥

गुणवान् सुने जाते हैं। तुम्हारे लिए इन सबका यह परीक्षण प्रारम्भ किया गया है ॥२२२॥ हे कुमारि! जो पुरुष इस वज्रावर्त धनुषको चढ़ा देगा वही पुरुषोत्तम तुम्हारे द्वारा वरा जाना है ॥२२३॥

तदनन्तर जो मानसे सहित थे, अपनी प्रशंसा अपनेआप कर रहे थे, और सुन्दर विलाससे सहित थे ऐसे उन सब राजाओंको वह कञ्चुकी वज्रावर्त धनुषके पास ले गया ॥२२४॥ जिसका आकार बिजलीकी छटाके समान था तथा जिसमें भयङ्कर साँप फुँकार रहे थे ऐसा वह धनुष राजकुमारोंके पास आते ही अग्नि छोड़ने लगा ॥२२५॥ कितने ही राजकुमार भयभीत हो धनुषकी ज्वालाओंसे ताडित चक्षुको दोनों हाथोंसे ढँककर शीघ्र ही वापिस लौट गये ॥२२६॥ जिनके समस्त अङ्ग कम्पित हो रहे थे तथा नेत्र बन्द हो गये थे ऐसे कितने ही लोग चलते हुए साँपोंको देखकर दूर ही खड़े रह गये थे ॥२२७॥ कितने ही लोग ज्वरसे आकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़े, कितने ही लोगोंकी बोलती बन्द हो गई, कितने ही शीघ्र भाग गये और कितने ही मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥२२८॥ कितने ही लोग साँपोंकी वायुसे सूखे पत्रके समान उड़ गये, कितने ही अकड़ गये और कितने ही लोगोंको ऋद्धि शान्त हो गई अर्थात् वे शोभारहित हो गये ॥२२९॥ कितने ही लोग कहने लगे कि यदि हम अपने स्थानपर वापिस जा सकेंगे तो जीवोंको दान देवेंगे। हे देवते! मुझे दो चरण दो अर्थात् वापिस भागनेकी पैरोंमें शक्ति प्रदान करो ॥२३०॥ कितने ही लोग बोले कि यदि हम जीवित रहेंगे तो अन्य स्त्रियोंसे कामकी सेवा कर लेंगे। भले ही यह रूपवती हो पर इससे क्या प्रयोजन है? ॥२३१॥ कुछ लोग कहने लगे कि निश्चित ही किसी दुष्ट चित्तने राजाओंके वधके लिए इस मायाका प्रयोग किया है ॥२३२॥ और कुछ लोग कहने लगे कि हमें कामसे क्या प्रयोजन? हम तो साधुओंके समान ब्रह्मचर्यसे समय बिता देवेंगे ॥२३३॥

तदनन्तर जिन्हें उस उत्कृष्ट धनुषकी लालसा उत्पन्न हो रही थी ऐसे राम मदोन्मत्त गजराजके समान मन्थर गतिको धारण करते हुए उसके पास पहुँचे ॥२३४॥ पुण्यशाली रामके

१. चारुविभ्रमा म० । २. शीघ्रम् । ३ पराङ्मुखत्वम् । ४. केचिद्वराकुला म०, केचित्त्वराकुला ज० । ५. वाण्या रहिता । ६. देवि ज० । ७. ऊचुरन्येन नारीभिः म० । ८. कामस्य । ९ महागजमन्थरा । १०. छात्रः ।

तती विस्रब्धमादाय धनुरुद्वेष्ट्य चांशुकम् । समारोपयदभ्युच्चैर्ध्वनित विपुलप्रभम् ॥२३६॥
महाजलधरध्वानशङ्किभि. शिखिभि कृतम् । मुक्तकेकारवैर्नृत्य बद्धविस्तीर्णमण्डलैः ॥२३७॥
अलातचक्रसकाशः सजातो दिवसाधिप । सुवर्णरजसाच्छन्ना इवासन् व्योमबाहव[1] ॥२३८॥
साधु साध्विति देवाना बभूव नभसि स्वन । ननृतुर्व्यन्तरा. केचिन्मुञ्चन्त' पुष्पसहती ॥२३९॥
ततोऽटनिजटङ्कारबधिरीकृतविष्टपम् । आचकर्ष धनु. पद्म सम्प्राप्त चक्रताविव ॥२४०॥
विकलीभूतनिश्शेषहृषीक सकलो जन. । तदावर्तमिव प्राप्तो भ्राम्यति त्रस्तमानस ॥२४१॥
प्रवातघूर्णिताम्भोजपलाशाधिककान्तिना । चक्षुषा स्मरचापेन सीता राम निरैक्षत ॥२४२॥
रोमाञ्चार्चितसर्वांगा दधती परमस्रजम् । प्रीता राम ढुढौके सा व्रीडाविनमितानना ॥२४३॥
पार्श्वस्थया तया रेजे स तथा सुन्दरो[2] यथा । यथायमिति दृष्टान्त यो गदेत् स गतत्रपः ॥२४४॥
अवतारितमौर्वीक स कृत्वा सायकासनम् । तस्थौ विनयसम्पन्नः स्वासने सीतया सह ॥२४५॥
सकम्पहृदया सीता रामाननदिदृक्षया । भाव कमपि सम्प्राप्ता नवसङ्गमसाध्वसा ॥२४६॥
क्षुब्धाकूपारनिस्वान सागरावर्तकार्मुकम् । तावच्च लक्ष्मणोऽधिज्य कृत्वास्फालयदुन्नतम् ॥२४७॥
शरे निहितदृष्टि त समालोक्य नभश्चरा । वदन्तो देव मा मेति मुमुचु. कुसुमोत्करान् ॥२४८॥
आकृष्य कार्मुक क्रूर मौर्वीसरावमूजित[3] । अवतार्य च पद्मस्य पार्श्वे सुविनयस्थित ॥२४९॥

समीप आते ही धनुष अपने असली स्वरूपको उसीतरह प्राप्त हो गया जिस तरह कि गुरुके समीप आते ही विद्यार्थी अत्यन्त सुन्दर एवं सौभाग्यरूपको प्राप्त हो जाता है ॥२३५॥ तदनन्तर रामने वस्त्र ऊपर चढ़ाकर नि.शङ्क हो धनुष उठा लिया और उसे चढ़ाकर जोरसे विपुल गर्जना की ॥२३६॥ मयूर उस गर्जनाको मेघोकी महागर्जना समझ हर्षसे केकाध्वनि छोड़ने लगे और अपनी पिच्छोका मण्डल फैला कर नृत्य करने लगे ॥२३७॥ सूर्य अलातचक्रके समान हो गया और दिशाएँ सुवर्णकी परागसे ही मानो व्याप्त हो गई ॥२३८॥ आकाशमे 'साधु' 'साधु'—'ठीक-ठीक' इस प्रकार देवोका शब्द होने लगा और फूलोके समूहकी वर्षा करते हुए कितने ही व्यन्तर नृत्य करने लगे ॥२३९॥

तदनन्तर अटनीकी टङ्कारसे जिसने समस्त विश्वको बहिरा कर दिया था तथा जो चक्राकारताको मानो व्याप्त हो रहा था ऐसे धनुषको रामने खींचा ॥२४०॥ जिनकी समस्त इन्द्रियॉ विकल हो गई थीं तथा मन भयभीत हो रहा था ऐसे सब लोग भॅवरमे पड़े हुएके समान घूमने लगे ॥२४१॥ वायुसे हिलते हुए कमलदलसे भी अधिक जिसकी कान्ति थी, तथा जो कामदेवके धनुषके समान जान पड़ता था, ऐसे नेत्रसे सीताने रामको देखा ॥२४२॥ जिसका समस्त शरीर रोमाञ्चोंसे सुशोभित हो रहा था, जो उत्कृष्ट माला धारण कर रही थी, तथा लज्जासे जिसका मुख नीचेकी ओर झुक रहा था ऐसी सीता प्रसन्न हो रामके समीप पहुँची ॥२४३॥ पासमें खड़ी सीतासे सुन्दर राम इस तरह सुशोभित हो रहे थे कि उनकी उपमामें 'वे इस तरह सुशोभित थे' ऐसा जो कहता था वह निर्लज्ज जान पड़ता था अर्थात् वे अनुपम थे ॥२४४॥

तदनन्तर धनुषकी डोरी उतारकर वे विनयवान् राम सीताके साथ अपने आसनपर बैठ गये ॥२४५॥ जो नव समागमके कारण भयभीत हो रही थी तथा जिसके हृदयमें कम्पन उत्पन्न हो रहा था ऐसी सीता रामका मुख देखनेकी इच्छासे किसी अद्भुत भावको प्राप्त हो रही थी ॥२४६॥ इतनेमे ही क्षुभित समुद्रके समान जिसका शब्द हो रहा था ऐसे सागरावर्त्त नामक धनुषको लक्ष्मणने प्रत्यञ्चासहित कर जोरसे उसकी टङ्कार छोड़ी ॥२४७॥ तदनन्तर बाणपर दृष्टि लगाये हुए लक्ष्मणको देख 'हे देव नहीं, नहीं' ऐसा कहते हुए विद्याधरोने फूलोंके समूह छोड़े अर्थात् पुष्प वर्षा की ॥२४८॥ तदनन्तर जिसकी डोरीसे विशाल शब्द हो रहा था ऐसे

१. दिशा. । २. सुन्दरा म० । ३. बलवान् ।

विक्रान्ताय तथा तस्मै विद्याभृच्चन्द्रवर्धन । अष्टादश ददौ कन्या धियैवाप्रौढिका इति ॥२५०॥
विद्याधरै समागत्य परम भयपूरितै । वृत्तान्ते कथिते तस्मिंश्चन्द्रश्चिन्तापर. स्थित. ॥२५१॥
वृत्तान्तमिममालोक्य भरत पुरुविस्मय । अशोचदेवमात्मान मनसा सम्प्रबुद्धवान् ॥२५२॥
कुलमेक पिताप्येक एतयोर्मम चेदृशम् । प्राप्तमद्भुतमेताभ्यां न मया मन्दकर्मणा ॥२५३॥
अथवा किं मनो व्यर्थं परलक्ष्म्याभितप्यसे । पुरा चारूणि कर्माणि न कृतानि ध्रुव त्वया ॥२५४॥
पद्मगर्भदलच्छाया साक्षाल्लक्ष्मीरिवोज्ज्वला । ईदृशी पुरुपुण्यस्य पुसो भवति भामिनी ॥२५५॥
कलाकलापनिष्णाता विज्ञाना केकया तत । विज्ञाय तनयाकूत कर्णे प्रियमभाषत ॥२५६॥
भरतस्य मया नाथ शोकवल्लक्षित मन । तथा कुरु यथा नाय निर्वेद परमृच्छति ॥२५७॥
अस्त्यत्र कनको नाम जनकस्यानुजो नृप । सुप्रभाया ततो जाता सुकन्या लोकसुन्दरी ॥२५८॥
स्वयवराभिव भूय. समुद्घोष्य नियोज्यताम् । तथाय यावदायाति नान्य त भावनान्तरम् ॥२५९॥
तत परममित्युक्त्वा वार्ता दशरथेन सा । कर्णगोचरमानीता कनकस्य सुचेतस ॥२६०॥
यदाज्ञापयतीत्युक्त्वा कनकेनान्यवासरे । समाहूता नृपाः क्षिप्र गता ये निलय निजम् ॥२६१॥
ततो यथोचितस्थानस्थितभूनाथमध्यगम् । [1]नक्षत्रगणमध्यस्थशर्वरीवर[2]विभ्रमम् ॥२६२॥
उपात्तसुमनोदामा [3]कानकी कनकप्रभा । सुप्रभा भरत वव्रे सुभद्रा भरत यथा ॥२६३॥

धनुषको खींचकर और फिर उतारकर बलवान् लक्ष्मण रामके समीप ही बड़ी विनयसे आ बैठा ॥२४९॥ इस प्रकार शूरवीरता दिखानेवाले लक्ष्मणके लिए चन्द्रवर्धन विद्याधरने अत्यन्त बुद्धिमती अठारह कन्याएँ दीं ॥२५०॥ भयसे अतिशय भरे हुए विद्याधरोने वापिस आकर जब यह समाचार कहा तब चन्द्रगति विद्याधर चिन्तामे निमग्न हो गया ॥२५१॥

अथानन्तर यह वृत्तान्त देखकर जिसे बड़ा आश्चर्य प्राप्त हो रहा था तथा जिसे मनमे प्रबोध उत्पन्न हुआ था ऐसा भरत अपने आपके विषयमे इस प्रकार शोक करने लगा ॥२५२॥ कि देखो हम दोनोंका एक कुल है, एक पिता है। पर इन दोनो अर्थात् राम लक्ष्मणने ऐसा आश्चर्य प्राप्त किया और पुण्यकी मन्दतासे मै ऐसा आश्चर्य प्राप्त नहीं कर सका ॥२५३॥ अथवा दूसरेकी लक्ष्मीसे मनको व्यर्थ ही क्यों संतप्त किया जाय ? निश्चित ही तूने पूर्वभवमे अच्छे कार्य नहीं किये ॥२५४॥ कमलके भीतरी दलके समान जिसकी कान्ति है ऐसी साक्षात् लक्ष्मीके समान उज्ज्वल स्त्री अत्यधिक पुण्यके धारक पुरुषको ही प्राप्त हो सकती है ॥२५५॥

तदनन्तर कलाओंके समूहमे निष्णात एवं विशिष्ट ज्ञानको धारण करनेवाली केकयाने पुत्रकी चेष्टा जानकर कानमे हृदयवल्लभ राजा दशरथसे कहा कि हे नाथ ! मुझे भरतका मन शोकयुक्त दिखाई देता है। इसलिए ऐसा करो कि जिससे यह वैराग्यको प्राप्त न हो जाय ॥२५६–२५७॥ यहाँ जनकका छोटा भाई कनक है उसकी सुप्रभा रानीसे उत्पन्न हुई लोक-सुन्दरी नामा कन्या है ॥२५८॥ सो स्वयंवर विधिकी पुन घोषणा कर उसे भरतके लिए उसी तरह स्वीकृत कराओ जिस तरह कि वह किसी दूसरी भावनाको प्राप्त नहीं हो सके ॥२५९॥ तदनन्तर 'बहुत ठीक है' ऐसा कहकर राजा दशरथने यह बात विचारवान् राजा कनकके कान तक पहुँचाई ॥२६०॥ राजा कनकने भी 'जो आज्ञा' कहकर दूसरे दिन जो राजा अपने घर चले गये थे उन्हें शीघ्र ही बुलाया ॥२६१॥

तदनन्तर जो यथायोग्य स्थानोंपर बैठे हुए राजाओके मध्यमे स्थित था और नक्षत्रोंके समूहके मध्यमें स्थित चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ऐसे भरतको पुष्पमाला धारण करनेवाली एवं सुवर्णके समान कान्तिसे संयुक्त, राजा कनककी पुत्री लोकसुन्दरीने उस तरह

१. नक्षत्र गणमध्यस्थं म० । २. चन्द्र० । ३. कनकस्यापत्य स्त्री कानकी ।

अत्यन्तविषमीभावं पश्य श्रेणिक कर्मणाम् । यतोऽसौ सम्प्रबुद्धः सन् कन्यया मोहितः पुनः ॥२६४॥
विलक्षा पार्थिवाः सर्वे जग्मुः स्थानं यथायथम् । अस्थुश्च विकथाशक्त्या बन्धुवर्गसमागमे ॥२६५॥
यादृक् येन कृतं कर्म भुङ्क्ते तादृक् स तत्फलम् । नह्युप्तान् कोद्रवान् कश्चिदश्नुते शालिसंपदम् ॥२६६॥
केतुतोरणमालाभिर्मण्डितायां महाद्युतौ । [1]आगुल्फकुसुमापूर्णविशालापणवर्त्मनि ॥२६७॥
सशङ्खतूर्यनिस्वानपूरिताखिलवेश्मनि । मिथिलायां तयोश्चक्रे विवाहः परमोत्सवः ॥२६८॥

[2]द्रविणेन तथा लोकः सकलो परिपूरितः ।
महाप्रलयमायातं देहीति ध्वनितं यथा ॥२६९॥

ये विवाहोत्सवं द्रष्टुं स्थिता भूपाः सुचेतसः ।
परमं प्राप्य सन्मानं ययुस्ते स्वं स्वमालयम् ॥२७०॥

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

सकलविष्टपनिर्गतकीर्तयः परमरूपपयोनिधिवर्तिनः ।
पितृजनार्पितसमदसम्पदः परमरत्नविभूषितविग्रहाः ॥२७१॥

विविधयानसमाकुलसैनिका जलनिधिस्वनतूर्यनिनादिताः ।
विविशुरभ्युदयेन सुकोशला दशरथस्य सुता वधुके [3]तथा ॥२७२॥

समवलोकितुमुत्तमविग्रहे पुरि तदा वधुके सकलो जनः ।
रहितसामिकृतस्वमनःक्रियः श्रयति राजपथं भृशमाकुलः ॥२७३॥

वरा जिस तरह कि उत्तम कान्तिको धारण करनेवाली सुभद्राने पहले भरत चक्रवर्तीको वरा था ॥२६२–२६३॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! कर्मोंकी अत्यन्त विषमता देखो कि प्रबोधको प्राप्त हुआ भरत कन्याके द्वारा पुनः मोहित हो गया ॥२६४॥ सब राजा लोग लज्जित होते हुए यथायोग्य स्थानोंपर चले गये और अपने बन्धुवर्गके बीचमें विकथा करते हुए रहने लगे ॥२६५॥ कितने ही कहने लगे कि जिस जीवने जैसा कार्य किया है वह वैसा ही फल भोगता है । क्योंकि जिसने कोदों बोये हैं वह धान्य प्राप्त नहीं कर सकता ॥२६६॥

तदनन्तर जो पताका तोरण और मालाओंसे सजाई गई थी, जो महाकान्तिको धारण कर रही थी, जिसके बाजारके लम्बे-चौड़े मार्ग घुटनों तक फूलोंसे व्याप्त किये गये थे और जिसके समस्त घर शङ्ख एवं तुरहीके मधुर शब्दोंसे भर रहे थे ऐसी मिथिला नगरीमें दोनोंका बड़े उत्सवके साथ विवाह किया गया ॥२६७–२६८॥ उस समय धनसे सब लोक इस तरह भर दिया गया था कि जिससे 'देहि अर्थात् देओ' यह शब्द महाप्रलयको प्राप्त हो गया था अर्थात् बिलकुल ही नष्ट हो गया था ॥२६९॥ उत्तम चित्तको धारण करनेवाले जो राजा विवाहोत्सव देखनेके लिए रह गये थे वे परम सन्मानको प्राप्त हो अपने-अपने घर गये ॥२७०॥

अथानन्तर जिनकी कीर्ति समस्त संसारमें फैल रही थी, जो परम सौन्दर्यरूपी सागरमें निमग्न थे, जिन्होंने माता-पिताके लिए हर्षरूप सम्पदा समर्पित की थी, जिनके शरीर उत्कृष्ट रत्नोंसे अलंकृत थे, जिनके सैनिक नाना प्रकारकी सवारियोंसे व्यग्र थे, और जिनके आगे समुद्रके समान विशाल शब्द करनेवाली तुरही बज रही थी ऐसे दशरथके पुत्रों तथा बहुओंने बड़े वैभवके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया ॥२७१–२७२॥ उस समय उत्तम शरीरको धारण करनेवाली बहुओंको देखनेके लिए समस्त नगरवासी लोग अपना आधा किया कार्य छोड़ बड़ी

१. अगुल्फकुसुमापूर्णाविशालापण्यवर्त्मनि म० । २. धनेन । ३. वध्वौ एव वधुके स्वार्थे क० ।

कृतसमस्तजनप्रतिमानना पुरुगुणस्तवसन्नतमूर्तय ।
स्वनिलयेषु महासुखभोगिनो दशरथस्य सुता· सुधिय स्थिता· ॥२७४॥
समवगम्य जना शुभकर्मण· फलमुदारमशोभनतोऽन्यथा ।
कुरुत कर्म बुधैरभिनन्दित भवत येन रवेरधिकप्रभा· ॥२७५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते रामलक्ष्मणरत्नमालाभिधानं नामाष्टाविंशतितम पर्व ॥२८॥



व्यग्रतासे राजमार्गमे आ गये ॥२७३॥ जिन्होने सब लोगोका सत्कार किया था तथा अपने विशाल गुणोके स्तवनसे जिनका शरीर विनम्र हो रहा था अर्थात् लज्जाके भारसे झुक रहा था ऐसे दशरथके बुद्धिमान् पुत्र महासुख भोगते हुए अपने महलोमे रहने लगे ॥२७४॥ गौतम-स्वामी कहते है कि हे भव्यजनो ! 'शुभ कर्मका फल अच्छा होता है और अशुभ कर्मका फल अशुभ होता है' ऐसा जानकर विद्वज्जनोके द्वारा प्रशंसनीय वह कार्य करो जिससे कि सूर्यसे भी अधिक कान्तिके धारक होओ ॥२७५॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यके द्वारा कथित पद्मचरितमें रामलक्ष्मणको स्वयवरमे रत्नमालाकी प्राप्ति होनेका वर्णन करनेवाला अट्ठाईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२८॥

एकोनत्रिंशत्तमं पर्व

आषाढधवलाष्टम्या प्रभृत्यथ नराधिप. । महिमान जिनेन्द्राणां प्रवृत कर्तुमुद्यत ॥१॥
सर्वा प्रियास्तदा तस्य तनया बान्धवस्तथा । विधातु जिनबिम्बानामिति कर्तव्यमुद्यता ॥२॥
पिनष्टि पञ्चवर्णानि कश्चिच्चूर्णानि सादर । कश्चिद् ग्रथ्नाति माल्यानि [1]लब्धवर्ण. सुभक्तिषु ॥३॥
वासयत्युदक कश्चिद्द्रवयत्यपर. क्षितिम् । पिनष्टि परमान् गन्धान् कश्चिद्बहुविधच्छवीन् ॥४॥
द्वारशोभा करोत्यन्यो [2]वासोभिरतिभासुरै । नानाधातुरसै कश्चित्कुरुते भित्तिमण्डनम् ॥५॥
एव जन परा भक्ति वहन् प्रमदपूरित. । जिनपूजासमाधानात् [3]पुण्यमार्जयदुत्तमम् ॥६॥
तत सर्वसमृद्धीना कृतसम्भारसन्निधि । चकार स्नपन राजा जिनाना तूर्यनादितम् ॥७॥
अष्टाहोपोषित कृत्वाभिषेक परम नृप । चकार महती पूजा पुष्पै. सहजकृत्रिमै ॥८॥
यथा नन्दीश्वरे द्वीपे शक्र सुरसमन्वित. । जिनेन्द्रमहिमानन्द कुरुते तद्वदेव स ॥९॥
तत सदनयाताना महिषीणा नराधिप. । [4]प्रजिघाय महापूत [5]शान्तिगन्धोदक कृती ॥१०॥
तिसृणां तरुणीस्त्रीभिर्नीत शान्त्युदक द्रुतम् । प्रतीता मस्तके चक्रुस्ततो दुरितनोदनम् ॥११॥
वृद्धकञ्चुकिनो हस्ते दत्त जिनवरोदकम् । अप्राप्य सुप्रभा कोप शोक च परम गता ॥१२॥
अचिंतयच्च नो साध्वी बुद्धिरेषा महीभृत । यदेता मानिता नाह शान्तिवारिविसर्जनात् ॥१३॥

अथानन्तर आषाढ़ शुक्ल अष्टमीसे आष्टाह्निक महापर्व आया। सो राजा दशरथ जिनेन्द्र भगवान्की महिमा करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१॥ उस समय उसकी समस्त स्त्रियाँ, पुत्र तथा बान्धवजन जिन-प्रतिमाओके विषयमे निम्नाङ्कित कार्य करनेके लिए तत्पर हुए ॥२॥ कोई मण्डल बनानेके लिए बड़े आदरसे पाँच रङ्गके चूर्ण पीसने लगा, तो नाना प्रकारकी रचना करनेमे निपुण कोई मालाएँ गूँथने लगा ॥३॥ कोई जलको सुगन्धित करने लगा, कोई पृथिवीको सींचने लगा, कोई नाना प्रकारके उत्कृष्ट सुगन्धित पदार्थ पीसने लगा ॥४॥ कोई अत्यन्त सुन्दर वस्त्रोंसे जिनमन्दिरके द्वारकी शोभा करने लगा और कोई नाना धातुओके रससे दीवालोंको अलंकृत करने लगा ॥५॥ इस प्रकार उत्कृष्ट भक्तिको धारण करनेवाले एवं आनन्दसे परिपूर्ण भक्तजनोंने जिनेन्द्रदेवकी पूजा कर उत्तम पुण्यका संचय किया ॥६॥

तदनन्तर सब प्रकारकी उत्तमोत्तम सामग्रियोको एकत्र कर राजा दशरथने जिसमें तुरहीका विशाल शब्द हो रहा था ऐसा जिनेन्द्र भगवान्का अभिषेक किया ॥७॥ आठ दिनका उपवास कर उत्कृष्ट अभिषेक किया तथा सहज अर्थात् स्वाभाविक और कृत्रिम अर्थात् स्वर्ण रजत आदिसे बनाये हुए पुष्पोंसे महापूजा की ॥८॥ जिस प्रकार इन्द्र देवोंके साथ नन्दीश्वर द्वीपमे जिनेन्द्रपूजा करता है उसी प्रकार राजा दशरथने भी सब परिवारके साथ जिनेन्द्रपूजा की ॥९॥ तदनन्तर जब रानियाँ घर पहुँच गईं तब बुद्धिमान राजा दशरथने सबके लिए महा पवित्र, शान्तिकारक गन्धोदक पहुँचाया ॥१०॥ सो तीन रानियोंके लिए तो वह गन्धोदक तरुण स्त्रियाँ ले गईं इसलिए जल्दी पहुँच गया और उन्होंने पापको नष्ट करनेवाला वह गन्धोदक शीघ्र ही बड़ी श्रद्धासे मस्तकपर धारण कर लिया ॥११॥ परन्तु सुप्रभाके लिए वृद्ध कञ्चुकीके हाथ भेजा था इसलिए उसे शीघ्र नहीं मिला अतः वह अत्यधिक क्रोध और शोकको प्राप्त हुई ॥१२॥ वह विचार करने लगी कि राजाकी यह बुद्धि ठीक नहीं है जिससे उन्होंने मुझे

---

१. विचक्षणः, चतुरः इत्यर्थः । २. वस्त्रैः । ३. पुण्यमर्जय म० । ४. प्रेषयामास । ५. शान्त म० ।

को वात्र नृपतेर्दोषः प्रायः पुण्यं पुरा मया । नार्जितं येन सम्प्राप्ता [1]निकारमिदमीदृशम् ॥१४॥
पुण्यवत्य इमाः श्लाघ्या महासौभाग्यसंयुताः । पूतं यासां जिनेन्द्राम्बु प्रीत्या प्रहितमुत्तमम् ॥१५॥
अपमानेन दग्धस्य हृदयस्यास्य मेऽधुना । शरणं मरणं मन्ये तापः शाम्यति नान्यथा ॥१६॥
[2]विशाखसञ्ज्ञमाहूय भाण्डागारिकमेककम् । जगाद भद्र नाख्येयं त्वयेदं वस्तु कस्यचित् ॥१७॥
विषेणात्यन्तपरमं मम जातं प्रयोजनम् । तदानय द्रुतं भक्तिर्मयि चेत्तव विद्यते ॥१८॥
गत्वा स यावदन्विष्यन्निरयत्यतिशङ्कितः । तावत्तल्पगृहं गत्वा सातिष्ठत् स्रस्तगात्रिका ॥१९॥
नृपतिश्चागतो वीक्ष्य प्रियास्तिस्रस्तया विना । समन्विष्यागमत्तस्याः समीपं त्वरितक्रमः ॥२०॥
अपश्यच्च मनश्चौरीमंशुकच्छन्नविग्रहाम् । अनादरेण सत्तल्पे शक्रयष्टिमिव स्थिताम् ॥२१॥
गृहाण तदिदं[3] देवि क्ष्वेडमित्यवदच्च सः । प्रेष्यो दशरथश्चैतं देशं प्राप्याशृणोद् ध्वनिम् ॥२२॥
हा देवि किमिदं मुग्धे प्रारब्धमिति च ब्रुवन् । स निराकरोद्[4] भुजिष्यन्तं तत्तल्पे चोपविष्टवान् ॥२३॥
राजानमागतं ज्ञात्वा सहसा सत्रपोत्थिता । क्षितावुपविविक्षन्ती कान्तेनाङ्के निवेशिता ॥२४॥
अवाचि च प्रिये कस्मात् कोपं प्राप्ता त्वमीदृशम् । सर्वतो दयिते येन जीवितेऽप्यसि निस्पृहा ॥२५॥
सर्वतो मरणं दुःखमन्यस्माद् दुःखतः परम् । प्रतिकारस्तु यद्यस्य तद्दुःखं वद कीदृशम् ॥२६॥
त्वं मे हृदयसर्वस्वं दयिते वद कारणम् । क्षणेनापनयं[5] यस्य करिष्यामि वरानने ॥२७॥
श्रुतं वेत्सि जिनेन्द्राणां सदसद्गतिकारणम् । तथापि मतमीदृक् ते धिक्कोपं ध्वान्तमुत्तमम् ॥२८॥

गन्धोदक भेजकर सम्मानित नहीं किया ॥१३॥ अथवा इसमें राजाका क्या दोष है ? प्रायः-कर मैंने पूर्व भवमें पुण्यका संचय नहीं किया होगा जिससे मैं ऐसे तिरस्कारको प्राप्त हुई हूँ ॥१४॥ ये तीनों पुण्यवती तथा महा सौभाग्यसे सम्पन्न हैं जिनके लिए राजाने प्रेमपूर्वक पवित्र एवं उत्तम गन्धोदक भेजा है ॥१५॥ अपमानसे जले हुए मेरे इस हृदयके लिए इस समय मरण ही शरण हो सकता है ऐसा मैं मानती हूँ। अन्य प्रकारसे मेरा सन्ताप शान्त नहीं हो सकता ॥१६॥ यह विचार कर उसने विशाख नामक एक भाण्डागीसे कहा कि हे भद्र ! तुम यह बात किसीसे कहना नहीं ॥१७॥ मुझे विषकी अत्यन्त आवश्यकता आ पड़ी है। इसलिए यदि तेरी मुझमें भक्ति है तो शीघ्र ही ला दे ॥१८॥ विषके नामसे अत्यन्त शङ्कित होता हुआ भाण्डारी उसे खोजता हुआ जब तक कुछ विलम्ब करता है तबतक वह शयनगृहमें जाकर तथा शरीर को शिथिल कर पड़ रही ॥१९॥ इतनेमें ही राजा आ गये और उसके बिना तीन प्रियाओंको देखकर खोज करते हुए शीघ्र ही उसके समीप जा पहुँचे ॥२०॥ उन्होंने देखा कि मनको चुराने-वाली सुप्रभा वस्त्रसे शरीर ढँककर शय्यापर अनादरसे इन्द्रधनुषके समान पड़ी है ॥२१॥ इसी समय उस भाण्डारीने आकर कहा कि हे देवि ! यह विष लो। भाण्डारीके इस शब्दको वहाँ जाकर राजाने सुन लिया ॥२२॥ सुनते ही राजाने कहा कि हे देवि ! यह क्या है ? मूर्खे ! यह क्या प्रारम्भ कर रक्खा है ? ऐसा कहते हुए राजाने उस भाण्डारीको वहाँसे दूर हटाया और स्वयं सुप्रभाकी शय्यापर बैठ गये ॥२३॥ राजाको आया जान वह लजाती हुई सहसा उठी और पृथिवीपर बैठना चाहती थी कि उन्होंने उसे गोदमें बैठा लिया ॥२४॥ राजाने कहा कि प्रिये ! तुम इस प्रकारके क्रोधको क्यों प्राप्त हुई हो जिससे कि सबसे अधिक प्रिय अपने जीवनसे भी निःस्पृह हो रही हो ॥२५॥ मरणका दुःख सब दुःखोंसे अधिक दुःख है। सो जिस अन्य दुःखसे दुःखी होकर तुमने मरणको उसका प्रतिकार बनाया है वह दुःख कैसा है यह तो बताओ ॥२६॥ हे दयिते ! तुम मेरे हृदयकी सर्वस्व हो, अतः हे सुमुखि ! शीघ्र ही वह कारण बताओ जिससे मैं उसका प्रतिकार कर सकूँ ॥२७॥ सुगति और दुर्गतिके कारणोंका निरूपण करने-

---

१. तिरस्कारम् । २. विशार- म० । ३. विषम् । ४. सेवकं तं । ५. दूरीभावं ।

प्रसीद देवि कोऽद्यापि कोपस्यावसरस्तव । प्रसादध्वनिपर्यन्तप्रकोपा हि महास्त्रियः ॥२९॥
तयोक्तं नाथ कः कोपस्त्वयि मे दुःखमीदृशम् । समुत्पन्नं न यद्याति शान्तिं पञ्चतया[1] विना ॥३०॥
देवि तत्कतरद्दुःखमित्युक्तैवमभाषत । शान्त्यम्बुदानमन्यासां मम नेति कुतो वद ॥३१॥
दृष्टेन केन कार्येण हीनाहं विदिता त्वया । यदवञ्चितपूर्वास्मि वञ्चिता पण्डिताधुना ॥३२॥
यावदेव वदत्येषा तावदायाति कञ्चुकी । देवि जैनाम्बु नाथेन तुभ्यं दत्तमिति ब्रुवन् ॥३३॥
अत्रान्तरे प्रियाः प्राप्ता इतरास्तामिदं जगुः । अयि मुग्धे प्रसादस्य स्थाने प्राप्तासि किं रुषा ॥३४॥
पश्यास्माकं जुगुप्साभिर्दासीभिर्जलमाहृतम् । वरिष्ठेन पवित्रेण तव कञ्चुकिनामुना ॥३५॥
ईदृशी नाम नाथस्य सम्प्रीतिर्भवती प्रति । यतोऽयं जनितो भेदः किमकाण्डे[2] प्रकुप्यसि ॥३६॥
प्रसीद दयितस्यास्य लग्नस्यैव प्रयत्नतः । प्रणयादपराधेऽपि ननु तुष्यन्ति योषितः ॥३७॥
दयिते क्रियते यावत्कोपो दारुणमानसे । तावत्संसारसौख्यस्य विघ्नं जानीहि शोभने ॥३८॥
विषादयितुमस्माकमात्मानमुचितं ननु । किंत्वत्र जिनचन्द्राणां [3]वारिणा नः प्रयोजनम् ॥३९॥
सपत्नीभिरपि प्रीतमिति सान्त्विततया तया । चक्रे शान्त्युदकं मूर्ध्नि रोमाञ्चाञ्चितगात्रया ॥४०॥
ततः प्रकुपितोऽवोचद् राजा कञ्चुकिनं तकम् । व्याक्षेपः क्व नु ते जातो वदापसद[4] कञ्चुकिन् ॥४१॥
ततो भयाद्विशेषेण कम्पिताखिलविग्रहः । कञ्चुकी कथमप्यूचे चितिजानुशिराञ्जलिः ॥४२॥

वाले जिनशास्त्रको तुम जानती हो फिर भी तुम्हारी ऐसी बुद्धि क्यों हो गई ? इस प्रगाढ़ अन्धकारस्वरूप क्रोधको धिक्कार हो ॥२८॥ हे देवि ! प्रसन्न होओ। इस समय भी क्या तुम्हारे क्रोधका कोई अवसर है क्योंकि जो महास्त्रियाँ होती हैं उनका क्रोध प्रसाद शब्द सुनने तक ही रहता है ॥२९॥

सुप्रभाने कहा कि हे नाथ ! आप पर मेरा क्या क्रोध हो सकता है ? पर मुझे ऐसा दुःख उत्पन्न हुआ है कि जो मरणके बिना शान्त नहीं हो सकता ॥३०॥ राजाने पूछा कि हे देवि ! वह कौन-सा दुःख है ? इसके उत्तरमें सुप्रभाने कहा कि आपने अन्य रानियोंके लिए तो गन्धोदक भेजा पर मुझे क्यों नहीं भेजा सो कहिए ? ॥३१॥ आपने ऐसा कौन सा कार्य देखा है जिससे मुझे हीन समझ लिया है। हे सुविज्ञ ! जिसे पहले कभी धोखा नहीं दिया उसे आज क्यों धोखा दिया गया ? ॥३२॥ सुप्रभा जब तक यह सब कह रही थी कि तब तक वृद्ध कञ्चुकी आकर यह कहने लगा कि हे देवि ! राजाने तुम्हें यह गन्धोदक दिया है ॥३३॥ इसी बीचमें दूसरी रानियाँ आकर उससे कहने लगीं कि अरी भोली ! तू प्रसन्नताके स्थानको प्राप्त है फिर क्या कह रही है ? ॥३४॥ देख, हम लोगोंके लिए तो निन्दनीय दासियाँ गन्धोदक लाई है पर तेरे लिए यह श्रेष्ठ एवं पवित्र कञ्चुकी लाया है ॥३५॥ तेरे प्रति स्वामी की ऐसी उत्तम प्रीति है इसीसे यह भेद हुआ है फिर असमयमें क्यों कुपित हो रही है ? ॥३६॥ फिर स्वामी तेरे पीछे बड़े प्रयत्नसे लग रहे है। अतः इनपर प्रसन्न हो क्योंकि स्नेहके कारण स्त्रियाँ अपराध होनेपर भी सन्तुष्ट ही रहती है ॥३७॥ हे कठोरहृदये ! जब तक पतिपर क्रोध किया जाता है तब तक हे शोभने ! सांसारिक सुखमें विघ्न ही जानना चाहिए ॥३८॥ वास्तवमें तो हमलोगोंका मरना उचित था पर हमें तो गन्धोदकसे प्रयोजन था। इसलिए सब अपमान सहन कर लिया ॥३९॥ इस प्रकार सपत्नियोंने भी जब उसे सान्त्वना दी तब उसका शरीर रोमाञ्चसे सुशोभित हो गया और उसने गन्धोदक मस्तकपर धारण किया ॥४०॥

तदनन्तर राजाने कुपित होकर उस कंचुकीसे कहा कि हे नीच कंचुकी ! बता तुझे यह विलम्ब कहाँ हुआ ? ॥४१॥ भयसे जिसका समस्त शरीर विशेषकर काँपने लगा था ऐसा

---

१. पञ्चयता म० । २. अनवसरे । ३. वारिणां म० (?) । ४. अधम ।

[1]हृदये स्थापिता' कृच्छ्रादानीता वक्त्रगोचरम् । ओष्ठे प्रणिहिता वर्णा व्यलीन्तेऽस्य भूरिशः ॥४३॥
[2]सखत्कारं मुहुः कुर्वन् स्फुरयन्नधरौ[3] मुहुः । हृदयं संस्पृशन् कृच्छ्रादुपनीतेन पाणिना ॥४४॥
पश्चान्मस्तकभागस्थश्चन्द्रांशुसितमूर्द्धजः । मन्दवाताहतश्वेतचामरोपमकूर्चकः ॥४५॥
मक्षिकाच्छदनच्छातत्वक्तिरोहितकीकसः । धवलभ्रूवलिच्छन्नशोणप्रभनिरीक्षणः ॥४६॥
अभिलक्ष्यशिराजालसंवेष्टितचलत्तनुः । असम्पूरितपुस्ताभः कृच्छ्राद्वासोऽपि धारयन् ॥४७॥
हिमाहत इवात्यर्थं कपोलौ कम्पयन् श्लथौ । विवक्षया मुहुर्जिह्वा स्थानानि स्खलिता नयन् ॥४८॥
अप्येकाक्षरनिष्पत्तिं मन्यमानो महोत्सवम् । वर्णान्तराभिसंधानाद् वर्णमन्यं समुच्चरन् ॥४९॥
संधानवर्जितान् वर्णान् परमश्रमकारिणः । कण्टकानिव कृच्छ्रेण मुमोच परिजर्जरान् ॥५०॥
जराधीनस्य मे नाथ किमागो भृत्यवत्सल । सम्प्राप्तोऽसि यतः कोपं देव विज्ञानभूषण ॥५१॥
पुरा करिकराकारभुजं कर्कशमुन्नतम् । पीनोत्तुङ्गं महोरस्कमालानसदृशोरुकम् ॥५२॥
आसीन् मम वपुः शैलराजकूटसमाकृति । कर्मणामिति चित्राणां कारणं परमोदयम् ॥५३॥
अभूतां चूर्णने देव शक्तौ [4]हस्तिकपाटयोः । करौ पार्ष्णिप्रहारश्च पर्वतस्यापि भेदकः ॥५४॥
उच्चावचां क्षितिं वेगात् पुराहं परिलङ्घयन् । राजहंस इवावाप्तं नाथ स्थानमभीप्सितम् ॥५५॥
आसीत् दृष्टेरवष्टम्भस्तादृशो मम पार्थिव । आमन्येऽपि क्षितेरीश यादृशेन तृणोपमम् ॥५६॥

कञ्चुकी पृथिवीपर घुटने और शिरपर अञ्जलि रखकर किसी तरह बोला ॥४२॥ उसके हृदय में जो अक्षर थे वे मुख तक बड़ी कठिनाईसे आये और जो ओठोंपर रखे गये थे वे बार-बार वहीं के वहीं विलीन हो गये ॥४३॥ वह बार-बार खकारता था, बार-बार ओठ चलाता था, और बड़ी कठिनाईसे उठाकर पास ले जाये गये हाथसे हृदयका स्पर्श करता था ॥४४॥ उसके मस्तकके पिछले भागमे चन्द्रमाकी किरणोके समान सफ़ेद बाल स्थित थे तथा सफेद चमरके समान उसकी दाढ़ीके बाल मन्द-मन्द वायुसे हिल रहे थे ॥४५॥ मक्खीके पङ्खके समान पतली त्वचासे उसकी हड्डियाँ ढँकी हुई थीं, उसके लाल-लाल नेत्र सफेद-सफेद भ्रकुटियोकी वलिसे आच्छादित थे ॥४६॥ उसका चञ्चल शरीर स्पष्ट दिखाई देनेवाली नसोके समूहसे वेष्टित था, मिट्टीके अधबने खिलौनेके समान उसकी आभा थी। वह वस्त्र भी बड़ी कठिनाईसे धारण कर रहा था, हिमसे ताड़ित हुएके समान दोनो शिथिल कपोलोंको कम्पित कर रहा था, बोलनेकी इच्छासे लड़खड़ाती जिह्वाको तालु आदि स्थानोंपर बड़ी कठिनाईसे ले जा रहा था, यदि एक अक्षरका भी उच्चारण कर लेता था तो उसे महान् उत्सव मानता था। कुछ वर्ण बोलना चाहता था पर उसके बदले कुछ दूसरे ही वर्ण बोल जाता था, जिनके बोलनेका विचार ही नहीं था ऐसे बहुत भारी श्रमको करनेवाले टूटे-फूटे वर्णोंको वह जीर्ण-शीर्ण काँटेके समान बड़ी कठिनाईसे छोड़ता था अर्थात् उसका उच्चारण करता था ॥४७-५०॥ हे भृत्यवत्सल, स्वामिन्! मुझ बुड्ढेका क्या अपराध है? जिससे कि विज्ञानरूपी आभूषणको धारण करनेवाले हे देव! आप क्रोधको प्राप्त हुए हो ॥५१॥ पहले मेरे शरीरकी भुजाएँ हाथीकी सूँड़के समान थीं, शरीर अत्यन्त कठोर और ऊँचा था। सीना विशाल था, जङ्घाएँ आलान अर्थात् हाथी बाँधनेके खम्भेके समान थीं, मेरा यह शरीर सुमेरुके शिखरके समान आकृतिवाला था, तथा अनेक अद्भुत कार्योंका सशक्त कारण था ॥५२-५३॥ हे देव! हमारे ये हाथ पहले सुदृढ किवाड़ोंके चूर्ण करनेमे समर्थ थे, हमारे पैरकी ठोकर पर्वतके भी टुकड़े कर डालती थी, ऊँची-नीची भूमिको मैं वेगसे लाँघ जाता था, हे स्वामिन्! मैं राजहंस पक्षीके समान मनचाहे स्थानको शीघ्र ही प्राप्त हो जाता था ॥५४-५५॥ हे राजन्! मेरी दृष्टिमें इतना बल था कि

१. हृदयस्थापिता म०। २. खलत्कार ख०। ३. -न्नधरं म०। ४. हस्तकपाटयोः म०।

अङ्गनालनदृष्टीनां मनसा स महास्थिरम् । आलानमेतदासीन्मे शरीर चारुविभ्रमम् ॥५७॥
लालितं परमैर्भोगै प्रसादेन पितुस्तव । विसघटितमेतन्मे कुमित्रमिव साम्प्रतम् ॥५८॥
अधत्त य' पुरा शक्ति रिपुदारणकारिणीम् । करेण यष्टिमालम्ब्य तेन भ्राम्यामि साम्प्रतम् ॥५९॥
• विक्रान्तपुरुषाकृष्टशरासनसम मम । पृष्ठास्थि स्थितमाक्रान्ते मूर्ध्नि मृत्योरिवाङ्घ्रिणा ॥६०॥
दन्तस्थानभवा वर्णाश्चिर क्वापि गता मम । ऊष्मवर्णोष्मणा तापमशक्ता इव सेवितुम् ॥६१॥
आलम्बे यदि नो यष्टिमेता प्राणगरीयसीम् । क्षितौ पतेत्तत पक्वमिद हतशरीरकम् ॥६२॥
वलीना वर्तते वृद्धिरुत्साहस्य परिक्षय' । राजन् श्वसिमि देहेन यदेतेन तदद्भुतम् ॥६३॥
[1]अद्यश्वीनममु काय जरया जर्जरीकृतम् । नाथ धर्तुं न शक्नोमि बाह्ये वस्तुनि का कथा ॥६४॥
नितान्तपटुताभाञ्जि हृषीकाणि पुरा मम । सम्प्रत्युद्देशमात्रेण स्थितानि जडचेतस ॥६५॥
पदमन्यत्र यच्छामि पतत्यन्यत्र दुर्घटम् । श्याममेवाखिल दृष्ट्या पश्यामि धरणीतलम् ॥६६॥
गोत्रक्रमसमायातमिदं राजकुल मम । यत शक्नोमि न त्यक्तुमपि प्राप्येदृशी दशाम् ॥६७॥
पक्व फलमिवैतन्मे शरीर क्वापि वासरे । नेष्यत्याहारतां मृत्युर्मर्मरच्छदनोपमाम् ॥६८॥
न तथासन्नमृत्योर्मे स्वामिन् सजायते भयम् । भवच्चरणससेवाविरहाद् भाविनो यथा ॥६९॥
व्याक्षेपो मे कुत कश्चिद्दधतस्तनुमीदृशीम् । भवदाज्ञा प्रतीक्ष्यैव यस्य जीवितकारणम् ॥७०॥

जिससे मै राजाको भी तृणके समान तुच्छ समझता था ॥५६॥ अत्यन्त स्थविर और सुन्दर विलाससे युक्त मेरा यह शरीर स्त्रीजनोकी दृष्टि और मनको बाँधनेके लिए आलानके समान था ॥५७॥ आपके पिताके प्रसादसे मैने इस शरीरका उत्तमोत्तम भोगोसे लाड-प्यार किया था पर इस समय कुमित्रके समान यह विघट गया है ॥५८॥ मेरा जो हाथ पहले शत्रुओको विदारण करनेकी शक्ति रखता था अब उसी हाथसे लाठी पकड़कर चलता हूँ॥५९॥ मेरी पीठकी हड्डी शूरवीर मनुष्यके द्वारा खींचे हुए धनुषके समान झुक गई है और मेरा शिर यमराजके पैरसे आक्रान्त हुएके समान नम्र हो गया है ॥६०॥ दाँतोंके स्थानसे उच्चरित होनेवाले मेरे वर्ण (लृ तवर्ग ल और स) कहीं चले गये है सो ऐसा जान पड़ता है मानो ऊष्मवर्णों (श ष स ह) की ऊष्मा अर्थात् गरमीसे उत्पन्न सन्तापको सहनेमे असमर्थ होकर ही कही चले गये हैं ॥६१॥ यदि मै प्राणोसे भी अधिक प्यारी इस लाठीका सहारा न लेऊँ तो यह पका हुआ अधम शरीर पृथ्वीपर गिर जावे ॥६२॥ शरीरमे बलि अर्थात् सिकुड़नोकी वृद्धि हो रही है और उत्साहका ह्रास हो रहा है। हे राजन्! इस शरीरसे मै साँस ले रहा हूँ यही आश्चर्यकी बात है ॥६३॥ हे नाथ! आज-कलमे नष्ट हो जानेवाले इस जराजर्जरित शरीरको ही धारण करनेके लिए मैं समर्थ नहीं हूँ फिर दूसरी बाह्य वस्तुकी तो कथा ही क्या है ? ॥६४॥ पहले मेरी इन्द्रियाँ अत्यन्त सामर्थ्यको प्राप्त थी पर इस समय नाममात्रको ही स्थित है मेरा मन भी जड़रूप हो गया है ॥६५॥ पैर अन्य स्थानपर रखता हूँ पर सम्भल नही सकनेके कारण अन्य स्थानपर जा पड़ता है। मैं समस्त पृथ्वीतलको अपनी दृष्टिसे काला-ही-काला देखता हूँ ॥६६॥ चूँकि यह राजकुल मेरी वंश परम्परासे चला आ रहा है इसलिए ऐसी दशाको प्राप्त होकर भी इसे छोड़नेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥६७॥ मेरा यह शरीर पके हुए फलके समान है सो यमराज सूखे पत्रके समान इसे अपना आहार बना लेगा ॥६८॥ हे स्वामिन्! मुझे निकटवर्ती मृत्युसे वैसा भय नहीं उत्पन्न होता है जैसा कि भविष्यमे होनेवाली आपके चरणोकी सेवाके अभावसे हो रहा है ॥६९॥ आपकी सम्माननीय आज्ञा ही जिसके जीवित रहनेका कारण है ऐसे इस शरीरको धारण करते हुए मुझे विलम्ब अथवा कार्यान्तरमे

---

१. अद्य श्वो भवम् अद्यश्वीनं भङ्गुरमित्यर्थः ।

स त्वं नाथ जराधीनं मम ज्ञात्वा शरीरकम् । कोपमर्हसि नो कर्तुं धीर वस्त्व प्रसन्नताम् ॥७१॥
निशम्य तद्वचो राजा गण्डं कुण्डलमण्डितम् । वामे करतले न्यस्य चिन्तामेवमुपागमत् ॥७२॥
जलबुद्बुदनिरसारं कष्टमेतच्छरीरकम् । सन्ध्याप्रकाशसंकाशं यौवनं बहुविभ्रमम् ॥७३॥
सौदामिनीत्वरस्यास्य कृते देहस्य मानवाः । आरम्भन्ते न किं कृत्यं नितान्तं दुःखसाधनम् ॥७४॥
अतिमत्ताङ्गनापाङ्गभङ्गतुल्याः प्रतारकाः । भोगिभोगसमाभोगास्तापोपचयकारिणः ॥७५॥
विषयेषु यदायत्तं दुष्प्रापेषु विनाशिषु । दुःखमेतद्विमूढानां सुखत्वेनावभासते ॥७६॥
आपातरमणीयानि सुखानि विषयादयः । किंपाकफलतुल्यानि चित्रं प्रार्थयते जनः ॥७७॥
पुण्यवन्तो महोत्साहाः प्रबोधं परमं गताः । विषवद् विषयान् दृष्ट्वा ये तपस्यन्ति सज्जनाः ॥७८॥
कदा नु विषयास्त्यक्त्वा निर्गतः स्नेहचारकात्[1] । आचरिष्यामि[2] जैनेन्द्रं तपो निर्वृतिकारणम् ॥७९॥
सुखेन पालिता क्षोणी भुक्ता भोगा यथोचिताः । विक्रान्ता जनिताः पुत्राः किमद्यापि प्रतीक्ष्यते[3] ॥८०॥
अन्वयव्रतमस्माकमिदं यत्सूनवे श्रियम् । दत्वा संवेगिनो धीराः प्रविशन्ति तपोवनम् ॥८१॥
चिन्तयित्वाप्यसावेवं राजा कर्मानुभावतः । भोगेषु शिथिलासक्तिर्गृह एव रतिं ययौ ॥८२॥
यत्प्राप्तव्यं यदा येन यत्र यावद्यतोऽपि वा । तत्प्राप्यते तदा तेन तत्र तावत्ततो ध्रुवम् ॥८३॥
कियत्यपि ततोऽतीते काले मगधसुन्दर । पर्यटन् विधिना क्षोणीसङ्घेन महता वृतः ॥८४॥

आसङ्ग कैसे हो सकता है ? ॥७०॥ इसलिए हे नाथ ! मेरे शरीरको जराके आधीन जानकर आप क्रोध करनेके योग्य नहीं है । हे धीर ! प्रसन्नताको धारण करो ॥७१॥

कञ्चुकीके वचन सुनकर राजा कुण्डलसे सुशोभित कपोलको वाम करतलपर रखकर इस प्रकार विचार करने लगे ॥७२॥ कि अहो बड़े कष्टकी बात है कि यह अधम शरीर पानीके बबूलेके समान निःसार है और अनेक विभ्रमों—विलासोसे भरा यह यौवन सन्ध्याके प्रकाशके समान भङ्गुर है ॥७३॥ बिजलीके समान नष्ट हो जानेवाले इस शरीरके पीछे मनुष्य न जाने अत्यन्त दुःखके कारणभूत क्या-क्या कार्य प्रारम्भ नहीं करते है ? ॥७४॥ ये भोग अत्यन्त मत्त स्त्रीके कटाक्षोंके समान ठगनेवाले है, सॉपके फनके समान भयङ्कर है और सन्तापकी वृद्धि करने वाले है ॥७५॥ कठिनाईसे प्राप्त होने योग्य विनाशी विषयोमे जो दुःख प्राप्त होता है वह मूर्ख प्राणियोके लिए सुख जान पड़ता है ॥७६॥ ये जो विषयादिक है वे प्रारम्भमे ही मनोहर सुख रूप जान पड़ते है फिर भी आश्चर्य है कि लोग किम्पाक फलके समान इन सुखोंकी चाह रखते हैं ॥७७॥ जो सज्जन इन विषयोको विषके समान देखकर तपस्या करते हैं वे पुण्यात्मा महोत्साहवान् तथा परम प्रबोधको प्राप्त हैं ऐसा समझना चाहिए ॥७८॥ मै कब इन विषयोको छोड कर तथा स्नेह रूपी कारागृहसे छूटकर मोक्षके कारणभूत जिनेन्द्र-प्रोक्त तपका आचरण करूँगा ॥७९॥ सुखसे पृथिवीका पालन किया, यथायोग्य भोग भोगे, और शूरवीर पुत्र उत्पन्न किये फिर अब किस बातकी प्रतीक्षा की जा रही है ॥८०॥ यह हमारा वंशपरम्परागत व्रत है कि हमारे धीर वीर वंशज विरक्त हो पुत्रके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तपोवनमे प्रवेश कर जाते हैं ॥८१॥ राजा दशरथने इस प्रकार विचार भी किया और भोगोमें आसक्ति कुछ शिथिल भी हुई तो भी कर्मोंके प्रभावसे वे घरमे ही प्रीतिको प्राप्त होते रहे अर्थात् गृहत्याग करनेके लिए समर्थ नहीं हो सके ॥८२॥ सो ठीक ही है क्योंकि जिस समय जहाँ जिससे जो और जितना कार्य होना होता है उस समय वहाँ उससे वह और उतना ही कार्य प्राप्त होता है इसमे संशय नहीं है ॥८३॥

अथानन्तर गौतमस्वामी कहते है कि हे मगध देशके आभूषण ! कितना ही काल

१ रागकारागृहात् । २ आवरिष्यामि म० । ३. प्रतीक्ष्यसे म० ।

सर्वभूतहितो नाम सर्वभूतहितो मुनि । नगरी ता समायासीन्मन पर्ययवेदक ॥८५॥
[1]सरय्वाश्च तटे काल श्रान्त सङ्घमतिष्ठिपत् । पितेव पालयन् न्यस्तकायवाङ्मानसक्रिय ॥८६॥
प्राग्भागेषु[2] स्थिता केचिद् गुहास्वन्ये तपस्विन । केचिद् विविक्तगेहेषु केचिज्जैनेन्द्रवेश्मसु ॥८७॥
नगाना कोटरेष्वन्ये यथाशक्तिसमुद्यता । तपांसि चक्रुराचार्यादधिगम्यानुमोदनाम् ॥८८॥
आचार्यस्तु विविक्तैषी पुर्या उत्तरपश्चिमाम् । [3]तप समुचितक्षेत्र विशालमतिसुन्दरम् ॥८९॥
उद्यान सुमहावृक्ष सयूथ इव वारण । प्रविवेशात्मदशमो महेन्द्रोदयकीर्तनम्[4] ॥९०॥
तस्मिन् शिलातले रम्ये विपुले निर्मले समे । पशूनामङ्गनाना च पण्डुकाना[5] च दुर्गमे ॥९१॥
द्वेषिलोकविमुक्तेऽसौ सूक्ष्मप्राणिविवर्जिते । दूरावष्टम्भिशालस्य स्थितो नागतरोरधः ॥९२॥
मार्तण्डमण्डलच्छायो[6] गम्भीर प्रियदर्शनः । वर्षा क्षपयितु तस्थौ कर्माणि च महामना ॥९३॥
सम्प्राप्तश्च महाकाल प्रवासिजनभैरव । प्रस्फुरद्विद्युदुग्रोऽष्ट[7]क्रूरधाराधरध्वनि ॥९४॥
तर्जयन्निव लोकस्य कृतताप दिवाकरम् । भयात् पलायित क्वापि स्थूलधारान्धकारत ॥९५॥
जातमुर्वीतल सम्यक् कञ्चुकेन कृतावृति । वर्द्धन्ते सुमहानद्यो वीचिपातितरोधस ॥९६॥
जायते प्राप्तकम्पाना चित्तोद्भ्रान्ति प्रवासिनाम् । असिधाराव्रत जैनो जनोऽसक्त निषेवते ॥९७॥

व्यतीत होनेपर बडे भारी संघसे आवृत, सर्व प्राणियोका हित करनेवाले, तथा मन पर्यय ज्ञानके धारक सर्वभूतहित नामा मुनि, विधिपूर्वक पृथिवीमे विहार करते हुए अयोध्या नगरीमे आये ॥८४–८५॥ जिनके मन वचन कायकी चेष्टा समीचीन थी और जो पिताकी तरह संघका पालन करते थे ऐसे उन मुनिराजने अपने थके हुए सघको सरयू नदीके किनारे ठहराया ॥८६॥ संघके कितने ही मुनि, आचार्य महाराजकी आज्ञा प्राप्त कर वनके सघन प्रदेशोमे, कितने ही गुफाओमे, कितने ही शून्य गृहोमे, कितने ही जिनमन्दिरोमे और कितने ही वृक्षोकी कोटरोमे ठहरकर यथाशक्ति तपश्चरण करने लगे ॥८७–८८॥ तथा आचार्य एकान्त स्थानके अभिलाषी थे इसलिए उन्होने नगरीकी उत्तर पश्चिम दिशा अर्थात् वायव्य कोणमे जो महेन्द्रोदय नामका उद्यान था उसमे यूथसहित गजराजके समान प्रवेश किया। उस महेन्द्रोदय नामा उद्यानमे तपके योग्य अनेक स्थान थे, तथा वह विशाल, अत्यन्त सुन्दर और अनेक बड़े-बड़े वृक्षोसे सहित था। आचार्यके साथ अधिक भीड़ नहीं थी। अपने आपको मिलाकर कुल दश ही मुनिराज थे। वह उद्यान पशुओं, स्त्रियो और नपुंसकोंके लिए दुर्गम था, द्वेषी मनुष्योसे रहित था तथा सूक्ष्म जन्तुओसे शून्य था। ऐसे उस उद्यानमे जिसकी शाखाएँ दूर दूर तक फैल रही थी ऐसे एक नाग वृक्षके नीचे सुन्दर, विशाल, निर्मल एवं समान शिलातल पर विराजमान हुए ॥८९–९२॥ आचार्य महाराज सूर्यबिम्बके समान देदीप्यमान, गम्भीर, प्रियदर्शन और उदारहृदय थे तथा कर्मोंका क्षय करनेके लिए वर्षायोग लेकर वहाँ विराजमान हुए थे ॥९३॥

तदनन्तर जो विदेशमे जाने वाले मनुष्योको भय उत्पन्न करने वाला था, चमकती हुई बिजलीसे उग्र था तथा जिसमे आठो दिशाओके मेघोंकी कठोर गर्जना हो रही थी ऐसा वर्षाकाल आ पहुँचा। वह वर्षाकाल ऐसा जान पड़ता था मानो लोगोको संताप पहुँचाने वाले सूर्यको डाँट ही रहा हो और बड़ी मोटी धाराओंके अन्धकारसे भयभीत हो कहीं भाग गया हो ॥९४–९५॥ पृथिवीतल ऐसा दिखाई देने लगा मानो उसने अच्छी तरह कञ्चुक ही धारण कर रक्खी हो। तरङ्गोंसे तटोंको गिरानेवाली बड़ी-बड़ी नदियाँ बढ़ने लगीं ॥९६॥ और जिन्हें कँप-कँपी छूट रही थी ऐसे प्रवासी मनुष्योके चित्तमे भ्रान्ति उत्पन्न होने लगी। ऐसे वर्षाकालमें जैनी लोग निरन्तर

---

१ सरयूनद्याः। सरस्याश्च म०। २ प्राग्भावेषु म०। ३ तपःसमुचितं क्षेत्रं म०, क०। ४. कीर्तित ज०। ५. नपुसकानाम्। ६. मण्डलोच्छाया गभीरप्रिय ख०। ७. दुर्गोष्ट म०।

भूरिशोऽवग्रहाश्चक्रुर्मुनय क्षितिगोचरा । खयानलब्धयश्चैते पान्तु त्वा मगधाधिप ॥९८॥
अथ भेरीनिनादेन शङ्खनिस्वनशोभिना । दोषान्ते[1] कोशलानाथो विबुद्धो[2] भास्करो यथा ॥९९॥
ताम्रचूडा खर रेणुर्दम्पतीनां[3] वियोजका । सारसाश्चक्रवाकाश्च सरसीषु नदीषु च ॥१००॥
भेरीपणववीणाद्यैर्गीतैश्च सुमनोहरैः । व्यावृतश्चैत्यगेहेषु जायते विपुलो जन' ॥१०१॥
विघूर्णमाननयन. सकलारुणलोचनैः । विमुञ्चते जनो निद्रां प्रियामिव ह्रियान्वितः ॥१०२॥
प्रदीपा पाण्डुरा जाता शशाङ्कश्च गतप्रभ । विकास यान्ति पद्मानि कुमुदानि निमीलनम् ॥१०३॥
ध्वस्ता ग्रहादय. सर्वे दिवाकरमरीचिभि. । जिनप्रवचनज्ञस्य वचनैर्वादिनो यथा ॥१०४॥
एव प्रभातसमये सपन्नेऽत्यन्तनिर्मले । कृत्वा प्रत्यङ्गकर्माणि नमस्कृत्यार्चित जिनम् ॥१०५॥
आरुह्य वाँसिता[4] भद्रा कुथापटविराजिताम् । शतैरवनिनाथानां सेव्यमानोऽमरत्विषाम् ॥१०६॥
देशे देशे नमस्कुर्वन् मुनीश्चैत्यालयास्तथा । महेन्द्रोदयमुर्वीशो ययौ छत्रोपशोभित ॥१०७॥
विष्टपानन्दजननीविभूतिस्तस्य भूभृत । राजन् सवत्सरेणापि शक्य कथयितु न सा ॥१०८॥
मुनिरायातमात्र सन् गुणरत्नपयोनिधि. । श्रोत्रयोर्गोचर तस्य सप्राप्तस्तत्र मण्डले ॥१०९॥
करेणोरवतीर्यासौ राजामितपरिच्छद. । महाप्रमोदसपूर्णो विवेशोद्यानमेदिनीम् ॥११०॥
विन्यस्य भक्तिसम्पन्न पादयो' कुसुमाञ्जलिम् । सर्वभूतहिताचार्यं शिरसा स नमोऽकरोत्[5] ॥१११॥

खड्गधाराके समान कठोर व्रत धारण करते है ॥९७॥ जो पृथिवी पर विहार करते थे तथा जिन्हें आकाशमे चलनेकी ऋद्धि प्राप्त हुई थी ऐसे मुनिराज उस समय अनेक प्रकारके नियम धारण करते थे। गौतमस्वामी कहते है कि हे मगधेश्वर ! ये सब मुनिराज तुम्हारी रक्षा करे ॥९८॥

अथानन्तर प्रात'काल होने पर शङ्खके शब्दसे सुशोभित भेरीके नादसे राजा दशरथ सूर्यके समान जागृत हुए ॥९९॥ स्त्रीपुरुषोका वियोग करने वाले मुर्गे तथा सरोवर और नादियोमे विद्यमान सारस और चक्रवाक पक्षी जोर-जोरसे शब्द करने लगे ॥१००॥ भेरी, पणव तथा वीणा आदिके मनोहर गीतोसे आकर्षित हो बहुतसे मनुष्य जिनमन्दिरोमे उपस्थित होने लगे ॥१०१॥ जिस प्रकार लज्जासे युक्त मनुष्य प्रियाको छोड़ता है इसी प्रकार जिसके नेत्र घूम रहे थे तथा समस्त नेत्र लाल लाल हो रहे थे ऐसा मनुष्य निद्राको छोड़ रहा था ॥१०२॥ दीपक पाण्डुवर्ण हो गये थे और चन्द्रमा फीका पड़ गया। कमल विकासको प्राप्त हुए और कुमुद निमीलित हो गये ॥१०३॥ जिस प्रकार जिनशास्त्रके ज्ञाता मनुष्यसे वादी परास्त हो जाते है उसी प्रकार सूर्यकी किरणोसे समस्त ग्रह परास्त हो गये अर्थात् छिप गये ॥१०४॥ इस प्रकार अत्यन्त निर्मल प्रभात काल होनेपर राजा दशरथने शरीर-सम्बन्धी कार्य कर पूजनीय जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार किया। तदनन्तर मनोहर झूलसे सुशोभित हस्तिनीपर सवार हो वह मुनिराजकी वन्दनाके लिए चला। देवोके समान कान्तिको धारण करनेवाले हजार राजा उसकी सेवा कर रहे थे ॥१०५-१०६॥ इस प्रकार छत्रसे सुशोभित राजा दशरथ जगह-जगह मुनियो और जिनचैत्यालयोको नमस्कार करता हुआ महेन्द्रोदय नामा उद्यानमे पहुँचा ॥१०७॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन्! उस समय राजा दशरथकी लोकको आनन्दित करनेवाली जो विभूति थी वह एक वर्षमें भी नहीं कही जा सकती है ॥१०८॥ गुणरूपी रत्नोके सागर मुनिराज जब देशमें पधारे थे तभी उसके कानोमे यह समाचार आ पहुँचा था ॥१०९॥ तदनन्तर हस्तिनीसे उतरकर अपरिमित वैभवके धारक एवं महान् हर्षसे परिपूर्ण राजाने उद्यानकी भूमिमे प्रवेश किया ॥११०॥ तत्पश्चात् भक्तिसे युक्त हो चरणोंमें पुष्पाञ्जलि बिखेरकर उसने सर्वभूत आचार्यको शिरसे नमस्कार किया ॥१११॥

---

१. निशान्ते प्रभाते इत्यर्थः । २. विबुद्धो म० । ३. रराण, रेणुतः, रेणुः-शब्द चक्रुः । ४. करिणीम् । ५. नमस्करोत् (?) म० ।

ततः सिद्धान्तसम्बद्धामश्रृणोद् गुरुतः कथाम् । अनुयोगान्यतीतानां भाविनां च महात्मनाम् ॥११२॥
लोकं द्रव्यानुभावांश्च युगानि च यथाविधि । स्थितिं कुलकराणां च वंशांश्च बहुधागतान् ॥११३॥
पदार्थान् सर्वजीवादीन् पुराणानि च सादरम् । श्रुत्वा प्रणम्य संघेशं नगरं पार्थिवोऽविशत् ॥११४॥

मन्दाक्रान्ताच्छन्दः

दत्त्वा स्थानं क्षणमवनिभृन्मन्त्रिणां स क्षितीशां
कृत्वा जैनीं गुणगणकथां [1]विस्मयेनातिपूर्णः ।
अन्तर्गेहं प्रविशति तदा मज्जनादिक्रियाश्च
प्रीतश्चक्रे विपुलविभवं स प्रजापत्यभिख्यः ॥११५॥
सम्पूर्णानां परममहसा चन्द्रकान्ताननानां
चक्षुश्चेतोहरणनिपुणैर्विभ्रमैर्मण्डितानाम् ।
श्रीतुल्यानां परमविनयं बिभ्रतीनां प्रियाणां
पद्मालीनां रविरिव रतिं तत्र कुर्वन् स तस्थौ ॥११६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथवैराग्यसर्वभूतहितागमाभिधानं नाम एकोनत्रिंशत्तमं पर्व ॥२९॥



सिद्धान्तसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनी, अतीत अनागत महापुरुषोंके चरित सुने, लोक, द्रव्य, युग, कुलकरोंकी स्थिति, अनेक वंश, जीवादिक समस्त पदार्थ और पुराणोंको बड़े आदरसे सुना। तदनन्तर संघके स्वामी सर्वभूतहित आचार्यको नमस्कार कर राजाने नगरमे वापिस प्रवेश किया ॥११२-११४॥

तदनन्तर निकटवर्ती मन्त्रियों और राजाओंसे जिनराज सम्बन्धी गुणोंकी कथा कर तथा उन्हें विदाकर आश्चर्यसे भरे हुए राजाने अन्तःपुरमे प्रवेश किया। वहाँ विपुल वैभव तथा प्रजापतिकी शोभा धारण करनेवाले राजाने बड़ी प्रसन्नतासे स्नानादि क्रियाएँ की ॥११५॥ तदनन्तर जो उत्कृष्ट कान्तिसे युक्त थीं, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखोंको धारण कर रहीं थीं, नेत्र और हृदयको हरनेमे निपुण विभ्रमोंसे सुशोभित थी, लक्ष्मीके तुल्य थी और परम विनयको धारण कर रही थीं ऐसी स्त्रियोंको, कमलिनियोंको सूर्यकी भाँति आनन्द उपजाता हुआ वह उसी अन्तःपुरमे ठहर गया ॥११६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमे राजा दशरथके वैराग्य और सर्वभूत आचार्यके आगमनका वर्णन करनेवाला उन्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२९॥



---

१. विस्मय चातिपूर्णः भ० ।

त्रिंशत्तमं पर्व

तत कालो गत क्वापि घनौघडमरो नृप[1] । प्रोद्ययौ पुष्कर धौत[2]मण्डलाग्रसमप्रभम् ॥१॥
पद्मोत्पलादिजलजपुष्पमुन्मादकृद् बभौ । साधूना हृदय यद्वद् बभूव विमल जलम् ॥२॥
शरत्काल परिप्राप्त प्रकट कुमुदैर्हसन् । नष्टमिन्द्रधनुर्जाता धरणी पङ्कवर्जिता ॥३॥
विद्युत्सभावनायोग्यास्तूलराशिसमत्विष । क्षणमात्रमदृश्यन्त घन[3]लेशा क्वचित्क्वचित् ॥४॥
सन्ध्यालोकललामोष्ठी ज्योत्स्नातिविमलाम्बरा । निशानववधूर्भाति चन्द्रचूडामणिस्तदा ॥५॥
चक्रवाककृतच्छाया मत्तसारसनादिता. । वाप्य. पद्मवनभ्राम्यद्राजहसैर्विराजिरे ॥६॥
भामण्डलकुमारस्य सीता चिन्तयतस्तु तत् । ऋतुनार्चितमप्येव जातमग्निसम जगत् ॥७॥
अरत्याकर्षिताङ्गोऽसौ परित्यज्यान्यदा त्रपा । पितु. पुर पर मित्र वसन्तध्वजमब्रवीत् ॥८॥
[4]दीर्घसूत्रो भवानेव परकार्येषु शीतल.[5] । [6]गणरात्रमिद दु ख तस्या मे गतचेतस[7] ॥९॥
उद्वेगविपुलावर्ते प्रत्याशाजलधौ मम । निमज्जन सखे कस्माद्दीयते नावलम्बनम् ॥१०॥
इत्यार्तध्यानयुक्तस्य निशम्य गदित बुधा । सर्वे [9]गतप्रभीभूता विषाद परम ययु ॥११॥
तान् वीक्ष्य शोकसन्तप्तान् वारणानिव शुष्यतः । आवर्जितशिराव्रीडा क्षण भामण्डलोऽगमत् ॥१२॥

अथानन्तर मेघोंके आडम्बरसे युक्त वर्षाकाल कहीं चला गया और आकाश माँजे हुए कृपाणके समान निर्मल प्रभाका धारक हो गया ॥१॥ कमल उत्पल आदि जलमें उत्पन्न होनेवाले पुष्प कामीजनोंको उन्माद करते हुए सुशोभित होने लगे तथा जल साधुओंके हृदयके समान निर्मल हो गया ॥२॥ कुमुदोंके सफेद पुष्पोंसे प्रकट रूपसे हँसता हुआ शरद्काल आ पहुँचा, इन्द्रधनुष नष्ट हो गया और पृथ्वी कीचड़से रहित हो गई ॥३॥ जिनमें बिजली चमकनेकी सम्भावना नहीं थी और जो रूईके समूहके समान सफेद कान्तिके धारक थे ऐसे मेघोंके खण्ड कहीं-कहीं दिखाई देने लगे ॥४॥ सन्ध्याका लाल-लाल प्रकाश जिसका सुन्दर ओठ था, चाँदनी ही जिसका अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्र था और चन्द्रमा ही जिसका चूडामणि था, ऐसी रात्रिरूपी नववधू उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥५॥ चक्रवाक पक्षी जिनकी शोभा बढ़ा रहे थे, और मदोन्मत्त सारस जहाँ शब्द कर रहे थे ऐसी वापिकाएँ कमलवनमें घूमते हुए राजहंसोंसे सुशोभित हो रही थीं ॥६॥ इस तरह यह जगत् यद्यपि शरद्ऋतुसे सुशोभित था तो भी सीताकी चिन्ता करनेवाले भामण्डलके लिए अग्निके समान जान पड़ता था ॥७॥

अथानन्तर अरतिसे जिसका शरीर आकर्षित हो रहा था ऐसा भामण्डल एक दिन लज्जा छोड पिताके आगे अपने परममित्र वसन्तध्वजसे इस प्रकार बोला कि ॥८॥ आप बड़े दीर्घसूत्री हैं—देरसे काम करनेवाले हैं और दूसरेके कार्य करनेमें अत्यन्त मन्द हैं। उस सीतामें जिसका चित्त लग रहा है ऐसे मुझे दु.ख उठाते हुए अनेक रात्रियाँ व्यतीत हो गईं। फिर भी तुझे चिन्ता नहीं है ॥९॥ जिसमें उद्वेगरूपी बड़ी-बड़ी भँवरें उठ रही हैं ऐसे आशारूपी समुद्रमें मैं डूब रहा हूँ। सो हे मित्र ! मुझे सहारा क्यों नहीं दिया जा रहा है ॥१०॥ इस प्रकार आर्तध्यानसे युक्त भामण्डलके वचन सुनकर सभी विद्वान् हतप्रभ होते हुए परम विषादको प्राप्त हुए ॥११॥ तदनन्तर उन सबको शोकसे सन्तप्त तथा हाथियोंके समान सूखते हुए देख भामण्डल शिर नीचा

---

१. नृप. म० । २. उज्ज्वलकृपाणतुल्यप्रभम् । ३. मेघलेशाः, घनलेश्याः म०, ख०, ब० । ४. विलम्बेन कार्यकारी । ५. मन्दः । ६ बहूना रात्रीणा समूहः । ७ गतवेगतः म० । ८ निसर्गतः म० । ९ गतप्रभाभूताः म० ।

बृहत्केतुस्ततोऽवोचत् किमद्याप्युपगुह्यते । निवेद्यता कुमारस्य निराशो येन जायते ॥१३॥
ततस्ते कथयाञ्चक्रुस्तस्मै सर्वं यथाविधि । [1]चन्द्रयान पुरस्कृत्य कथमप्युज्झिताक्षरा ॥१४॥
जनको बाल कन्याया [2]इहैवास्माभिराहृत । याचितश्चातियत्नेन पद्मस्योचे प्रकल्पिताम् ॥१५॥
उक्तप्रत्युक्तमालाभिरस्माभिस्तेन निर्जितै । धनूरत्नावधिश्चक्रे कृतसन्मन्त्रणै किल ॥१६॥
धनूरत्नलता तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मण । शार्दूलस्य क्षुधार्तस्य मांसपेशी यथार्पिता ॥१७॥
कन्या स्वयवरा साध्वी कथा हृदयहारिणी । नवयौवनलावण्यपरिपूरितविग्रहा ॥१८॥
अबालेन्दुमुखा बाला मदनेन [3]समन्विता । वैदेही रामदेवस्य श्रीसमा वनिताभवत् ॥१९॥
न चापे साम्प्रत जाते गदासीरादिसयुते । अमराधिष्ठिते नापि कन्या त्रैलोक्यसुन्दरी ॥२०॥
अपि द्रष्टु न ये शक्ये सुपर्णोरगदानवै । रामलक्ष्मणवीराभ्यामाकृष्टे ते शरासने ॥२१॥
प्रसह्य साधुना हर्तुमशक्या त्रिदशैरपि । किमुतात्यन्तमस्माभिर्निस्सारैर्धनुषी विना ॥२२॥
पूर्वमेव हृता कस्मान्नेति चेन्मन्यते शिशो । यज्जामाता दशास्यस्य जनकस्य सुहृन्मधुः ॥२३॥
अवगम्य कुमारैव विनीत स्वस्थतां भज । शक्नोति न सुरेन्द्रोऽपि विधातु विधिमन्यथा ॥२४॥

कर क्षणभरके लिए लज्जाको प्राप्त हुआ ॥१२॥ तब बृहत्केतु नामा विद्याधर बोला कि अबतक इस बातको क्यो छिपाया जाता है प्रकट कर देना चाहिए जिससे कि कुमार इस विषयमे निराश हो जावे ॥१३॥

तदनन्तर उन सबने चन्द्रयानको आगे कर लडखड़ाते अक्षरोमे सब समाचार भामण्डलसे कह दिया ॥१४॥ उन्होने कहा कि हे कुमार ! हमलोग कन्याके पिताको यहाँ ही ले आये थे और उससे यत्नपूर्वक कन्याकी याचना भी की थी पर उसने कहा था कि मै उस कन्याको रामके लिए देना सङ्कल्पित कर चुका हूँ ॥१५॥ उत्तर-प्रत्युत्तरसे जब उसने हम सबको पराजित कर दिया तब हमने मन्त्रणा कर धनुषरत्नकी अवधि निश्चित की अर्थात् राम और भामण्डलमेसे जो भी धनुष रत्नको चढा देगा वही कन्याका स्वामी होगा ॥१६॥ हम लोगोने धनुपकी शर्त इसलिए रक्खी थी कि राम उसे चढ़ा नही सकेगा अत अगत्या तुम्हें ही कन्याकी प्राप्ति होगी परन्तु वह धनुष-रत्नरूपी लता पुण्याधिकारी रामके लिए ऐसी हुई जैसे भूखसे पीड़ित सिहके लिए मासकी डली अर्पित की गई हो अर्थात् रामने धनुष चढ़ा दिया जिससे वह साध्वी कन्या स्वयवरमे रामकी स्त्री हो गई । वह कन्या अपने वचनोसे हृदयको हरनेवाली थी, नवयौवनसे उत्पन्न लावण्यसे उसका शरीर भर रहा था, तरुण चन्द्रके समान उसका मुख था, लक्ष्मीकी तुलना करनेवाली थी और कामसे सहित थी ॥१७-१९॥ वे सागरावर्त और वज्रावर्त नामा धनुष आजकलके धनुष नही थे किन्तु बहुत प्राचीन थे, गदा, हल आदि शस्त्रोसे सहित थे, देवोसे अधिष्ठित थे तथा सुपर्ण और उरग जातिके दैत्योंके कारण उनकी ओर देखना भी सम्भव नहीं था । फिर भी राम लक्ष्मणने उन्हें चढ़ा दिया और रामने वह त्रिलोकसुन्दरी कन्या प्राप्त कर ली ॥२०-२१॥ इस समय वह कन्या देवोके द्वारा भी जबर्दस्ती नही हरी जा सकती है फिर जो उन धनुषोके निकल जानेसे अत्यन्त सारहीन हो गये हैं ऐसे हम लोगोंकी तो बात ही क्या है ॥२२॥ हे कुमार ! यदि यह कहो कि रामके स्वयंवरके पहले ही उसे क्यों नहीं हर लिया तो उसका उत्तर यह है कि रावणका जमाई राजा मधु जनकका मित्र है सो उसके रहते हम कैसे हर सकते थे ? ॥२३॥ इसलिए यह सब जानकर हे कुमार ! स्वस्थताको प्राप्त होओ, तुम तो अत्यन्त विनीत हो, जो कार्य जैसा होना होता है उसे इन्द्र भी अन्यथा नहीं कर सकता ॥२४॥

---

१. चण्डयानं म० । २ दिहैव म० । ३ समर्पिता म० ।

ततः स्वयंवरोदन्तं श्रुत्वा भामण्डलो ह्रिया । विषादेन च सम्पूर्णः कृच्छ्रं चिन्तान्तरं गतः ॥२५॥
निरर्थकमिदं जन्म विद्याधरतया समम् । यतः प्राकृतवत् कश्चिन्न सम्प्राप्तोऽस्मि तां प्रियाम् ॥२६॥
ईर्ष्याक्रोधपरीतश्च सभामाह हसन्नसौ[1] । का वः खेचरता भीतिं भजतां भूमिगोचरात् ॥२७॥
आनयाम्येष तां कन्यां स्वयं निर्जित्य भूचरान् । न्यासापहारिणां कुर्वे यक्षाणां च विनिग्रहम् ॥२८॥
इत्युक्त्वासौ [2]सुसन्नह्य विमानेन वियदुद्गतः । पुरकाननसम्पूर्णं पृथिवीतलमैक्षत ॥२९॥
ततो दृष्टिर्गता तस्य विदग्धविषये क्रमात् । महीध्रसङ्कटे रम्ये नगरे चात्मसेविते ॥३०॥
दृष्टं मया कदाप्येतदिति चिन्तामुपागतः । जातिस्मरत्वमासाद्य समवाप्य स मूर्च्छनम् ॥३१॥
पितुरन्ते ततो नीतः सचिवैराकुलात्मकैः । चन्दनद्रवसिक्ताङ्गः प्रमदाभिः प्रबोधितः ॥३२॥
अन्योन्यं दत्तनेत्रं च हसित्वा ताभिरौच्यत । कुमार युक्तमेतत्ते कातरत्वमनुत्तमम् ॥३३॥
अदृष्ट्वावनिचर्यार्थं निश्शेषरहितत्रपं[3] । गुरूणामग्रतो मोहं यत्प्राप्तोऽसि विचक्षण[4] ॥३४॥
भज खेचरनाथानां कन्या देव्यधिकप्रभाः । जनजल्पनकं व्यर्थं वृत्तं सुन्दर मा कृथाः ॥३५॥
ततोऽसाब्रवीदेवं व्रीडाशोकनताननः । धिग्मया घनमोहेन विरुद्धं चिन्तितं महत् ॥३६॥
नीचानामपि नात्यन्तमीदृशं कर्म युज्यते । अहो कर्मभिरत्यर्थमशुभैरभिचेष्टितः ॥३७॥
एकस्मिन्नुषितः कुक्षौ क्वापि सार्धमहं तया । दुष्कर्मविगमाज्ज्ञाता कथञ्चित् साधुना मया ॥३८॥
ततस्तं शोकभारेण पीडितं चन्द्रविक्रमः । अङ्कमारोप्य चुम्बित्वा पप्रच्छ पुरुविस्मयः ॥३९॥

तदनन्तर स्वयंवरका वृत्तान्त सुनकर भामण्डल लज्जा और विषादसे युक्त होता हुआ दुःखके साथ यह विचार करने लगा कि ॥२५॥ अहो ! मेरा यह विद्याधरका जन्म निरर्थक है कि जिससे मैं साधारण मनुष्यकी तरह उस प्रियाको प्राप्त नहीं कर सका ॥२६॥ ईर्ष्या और क्रोधसे युक्त होकर उसने हँसते हुए सभासे कहा कि जब आप लोग भूमिगोचरीसे भी भय रखते हो तब आपका विद्याधर होना किस कामका ? ॥२७॥ मैं भूमिगोचरियोंको जीतकर स्वयं ही उस उत्तम कन्याको ले आता हूँ तथा धनुषरूपी धरोहरका अपहरण करनेवाले यक्षोंका निग्रह करता हूँ ॥२८॥ ऐसा कहकर वह तैयार हो विमानमें बैठकर आकाशमें जा उड़ा। वहाँसे उसने पुर और वनसे भरा पृथ्वीतल देखा ॥२९॥ तदनन्तर उसकी दृष्टि अनेक पर्वतोंसे युक्त विदग्धनामक देशमें अपने पूर्वभवके मनोहर नगर पर पड़ी ॥३०॥ यह नगर मैंने कभी देखा है। इस प्रकार चिन्ता करता हुआ वह जातिस्मरणको प्राप्त होकर मूर्छित हो गया ॥३१॥ तदनन्तर घबड़ाये हुए मन्त्री उसे पिताके समीप ले आये। वहाँ स्त्रियोंने चन्दनके द्रवसे उसका शरीर सींचकर उसे सचेत किया ॥३२॥ स्त्रियोंने परस्पर नेत्रका इशारा कर तथा हँसकर उससे कहा कि हे कुमार ! तुम्हारी यह कातरता अच्छी नहीं ॥३३॥ जो तुम बुद्धिमान् होकर भी भूचर्योंका समस्त प्रयोजन बिना देखे ही गुरुजनोंके आगे इस तरह मोहको प्राप्त हुए हो ॥३४॥ देवियोंसे भी अधिक कान्तिको धारण करनेवाली विद्याधर राजाओंकी अनेक कन्याएँ हैं सो उन्हें तुम प्राप्त होओ। हे सुन्दर ! इस तरह व्यर्थ ही लोकापवाद मत करो ॥३५॥

तदनन्तर लज्जा और शोकसे जिसका मुख नीचा हो रहा था ऐसे भामण्डलने इस प्रकार कहा कि मुझे धिक्कार हो, जो मैंने तीव्र मोहमें पड़कर इस प्रकार विरुद्ध चिन्तवन किया ॥३६॥ ऐसा कार्य तो अत्यन्त नीच कुलवालोंको भी करना उचित नहीं है। अहो, मेरे अत्यन्त अशुभ कर्मोंने कैसी चेष्टा दिखाई ? ॥३७॥ मैंने उसके साथ एक ही उदरमें शयन किया है। आज पाप-कर्मका उदय मन्द हुआ इसलिए किसी तरह उसे जान सका हूँ ॥३८॥ तदनन्तर शोकके भारसे पीड़ित भामण्डलको गोदमें रखकर बहुत भारी आश्चर्यसे भरा चन्द्रगति चुम्बन कर पूछने लगा

१ वाचः खेचरता (?) म० । २ तत्परो भूत्वा । ३ रहित नयः म० । ४ विचक्षणः म० ।

वद पुत्रक किन्त्वेतदीदृशं भाषितं त्वया । सोऽवोचत्तात वक्तव्यं चरितं शृणु मामकम् ॥४०॥
पूर्वजन्मनि वास्येऽस्मिन् विदग्धे नगरे नृपः । अभूव परराष्ट्राणां ध्वंसको मण्डितध्वनिः ॥४१॥
सर्वस्यामवनौ ख्यातः सततं विग्रहप्रियः । पालको निजलोकस्य महाविभवसंयुतः ॥४२॥
हृता तत्र मया जाया विप्रस्याशुभकर्मणा । माययाऽपाकृतश्चासौ गतः क्वाप्यतिदुःखितः ॥४३॥
ततोऽनरण्यसेनान्या गमितस्तनुशेषताम्[1] । पर्यटन् धरणीं क्वापि प्राप्तोऽस्मि मुनिसंश्रयम् ॥४४॥
यत्र त्रिलोकपूज्यानां सर्वज्ञानां महात्मनाम् । मतं भगवतां प्राप्तमर्हतां पावनं मया ॥४५॥
तत्र बान्धवभूतस्य गुरोः शासनतो मया । अनामिषं व्रतं शुद्धं गृहीतं क्षुद्रशक्तिना ॥४६॥
शासनस्य जिनेन्द्राणामहो माहात्म्यमुत्तमम् । तथापि यन्महापापो नावतीर्णोऽस्मि दुर्गतिम् ॥४७॥
अनन्यशरणत्वेन व्रतेन नियमेन च । सममन्येन जीवेन विदेहाकुक्षिमागमत् ॥४८॥
सुखेन च प्रसूता सा कन्यया सहितं तुकम्[2] । केनाप्यपहृतश्चायं गृध्रेण पिशितं यथा ॥४९॥
नक्षत्रगोचरातीतं तेन नीतोऽस्मि पुष्करम्[3] । असौ नूनं स यस्यासौ हृता जाया मया पुरा ॥५०॥
मारयामीति तेनोक्त्वा भूयः कृत्वानुकम्पनम् । शनैरस्मि विमुक्तः खात् कुण्डलाभ्यामलङ्कृतम् ॥५१॥
पतन् वीक्ष्य तदा रात्रावुद्याने परमे त्वया । गृहीत्वा तात दत्तोऽस्मि जायायै करुणावता ॥५२॥
सोऽहं भवत्प्रसादेन तदङ्के वृद्धिमागतः । परं विद्याधरत्वं च कृतदुर्ललितक्रियः ॥५३॥
इत्युक्त्वा विररामासौ विस्मयं च जनो गतः । हाकारबहुलं शब्दं कुर्वन् कम्पितमस्तकः ॥५४॥

॥३९॥ कि हे पुत्र ! कह, तूने ऐसा कथन किसलिए किया ? इसके उत्तरमें उसने कहा कि हे तात ! मेरा कहने योग्य चरित सुनिए ॥४०॥

पूर्व जन्ममें मैं इसी देशके विदग्ध नगरमें दूसरे देशोंको लूटनेवाला, समस्त पृथिवीमें प्रसिद्ध, युद्धका प्रेमी, अपनी प्रजाकी रक्षा करनेवाला तथा महाविभवसे संयुक्त कुण्डलमण्डित नामका राजा था ॥४१–४२॥ वहाँ मैंने अशुभ कर्मके उदयसे एक ब्राह्मणकी स्त्री हरी और ब्राह्मणको मायापूर्वक तिरस्कृत किया जिससे वह अत्यन्त दुःखी होकर कहीं चला गया ॥४३॥ तदनन्तर राजा अनरण्यके सेनापतिने मेरी सब सम्पत्ति हरकर मेरे पास केवल मेरा शरीर ही रहने दिया। अन्तमें अत्यन्त दरिद्र हो पृथिवी पर भटकता हुआ मैं कहीं मुनियोंके आश्रममें पहुँचा ॥४४॥ वहाँ मैंने तीनों लोकोंसे पूज्य, सब पदार्थोंको जाननेवाले तथा महान् आत्माके धारक अरहन्त भगवान्का पवित्र धर्म प्राप्त किया ॥४५॥ और समस्त जीवोंके बान्धवभूत श्री गुरुके उपदेशसे निरतिचार मांसत्याग व्रत धारण किया। मैं अत्यन्त क्षुद्र शक्तिका धारक था इसलिए अधिक व्रत धारण नहीं कर सका ॥४६॥ अहो जिन शासनका बड़ा माहात्म्य है जो मैं महापापी होकर भी दुर्गतिको प्राप्त नहीं हुआ ॥४७॥ श्री जिनधर्मकी शरण होनेसे तथा व्रत और नियमके प्रभावसे मेरा जीव किसी अन्य जीवके साथ राजा जनककी विदेहा रानीके उदरमें पहुँचा ॥४८॥ रानी विदेहाने सुखपूर्वक कन्याके साथ एक पुत्र उत्पन्न किया सो जिस प्रकार गीध मांसके टुकड़ेको हर लेता है उसी प्रकार किसीने उस पुत्रको हर लिया ॥४९॥ वह व्यक्ति उस बालकको नक्षत्रोंसे भी अधिक ऊँचे आकाशमें ले गया। यथार्थमें व्यक्ति वही था जिसकी स्त्री पहले मैंने हरी थी ॥५०॥ पहले तो उसने कहा कि मैं इसे मारता हूँ परन्तु फिर दया कर उसने कुण्डलोंसे अलंकृत कर धीरेसे आकाशसे छोड़ दिया ॥५१॥ उस समय तुम परम उपवनमें विद्यमान थे सो रात्रिमें पड़ता देख तुमने मुझे ऊपरसे ही पकड़ लिया और दयालु होकर अपनी रानीके लिए सौंपा ॥५२॥ आपके प्रसादसे रानीकी गोदमें वृद्धि प्राप्त हुआ, उत्कृष्ट विद्याओंका धारक हुआ और बहुत ही लाड़ प्यारसे मेरा पालन हुआ ॥५३॥ यह कहकर भामण्डल चुप हो रहा तथा उपस्थित

---

१. गमितस्तुषशेषतां म० । २. पुत्रं 'तुक् तोकं चात्मजः प्रजा' इत्यमरः । ३. गगनम् ।

इम चन्द्रगति श्रुत्वा वृत्तान्तमतिचित्रितम् । लोकधर्मतरु[1]वन्ध्य विदित्वा भवबन्धनम् ॥५५॥
[2]भूतमात्रमति त्यक्त्वा सुनिश्चित्यात्मकर्मणाम् । पर प्रबोधमायात सवेग च सुदुर्लभम् ॥५६॥
आत्मीय राज्यमाधाय तत्र पुत्रे यथाविधि । सर्वभूतहितस्यागात् पादमूल त्वरान्वित ॥५७॥
भगवान् स हि सर्वत्र विष्टपे प्रथितात्मक. । गुणरश्मिसमूहेन भव्यानन्दविधायिना ॥५८॥
महेन्द्रोदयया[3]त तमभ्यर्च्य प्रणिपत्य च । स्तुत्वा च भावतोऽत्रादीदेव मूर्धाहिताञ्जलि ॥५९॥
भगवस्त्वत्प्रसादेन सप्राप्य जिनदीक्षणम् । तपोविधातुमिच्छामि निर्विण्णो गृहवासत ॥६०॥
एवमस्त्विति तेनोक्ते [4]तार भेर्य[5] समाहिता । भामण्डल पर चक्रे महिमान च भावत ॥६१॥
कल प्रवरनारीभिर्गीत वशस्वना[6]नुगम् । जगर्ज तूर्यसङ्घात करतालसमन्वित. ॥६२॥
श्रीमान् जनकराजस्य तनयो जयतीति च । इत्युच्चैर्वन्दिना नाद. सजज्ञे प्रतिनादवान् ॥६३॥
तेनोद्यानसमुत्थेन नादेन श्रोत्रहारिणा । नक्त कृतो विनीताया कृत्तनिद्रोऽखिलो जन ॥६४॥
ऋषिसम्बन्धमुद्धान श्रुत्वा जैना[7] प्रमोदिन. । जाता जना विषण्णाश्च मिथ्यादर्शनपूरिता ॥६५॥
रोमाञ्चाचितसर्वाङ्गा विस्फुरद्वामलोचना । सीता सिक्तामृतेनेव बुबुधे ध्वनिनामुना ॥६६॥
अचिन्तयच्च को न्वेष जनको यस्य नन्दनः । जयतीति मुहुर्नाद श्रूयतेऽत्यन्तमुन्नत. ॥६७॥
कनकस्याग्रजो राजा ममापि जनक पिता । जातमात्रश्च मे भ्राता हृतो य किं न्वसौ भवेत् ॥६८॥

समस्त लोग हाहाकार करते तथा मस्तक हिलाते हुए आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥५४॥ राजा चन्द्रगति यह अत्यन्त आश्चर्यकारी वृत्तान्त सुनकर परम प्रबोध तथा अत्यन्त दुर्लभ सवेगको प्राप्त हुआ । उसने लोक-धर्म अर्थात् स्त्री-सेवनरूपी वृक्षको सुखरूपी फलसे रहित तथा ससारका बन्धन जाना, इन्द्रियोंके विषयोंमे जो बुद्धि लग रही थी उसका परित्याग किया, आत्म-कर्तव्यका ठीक-ठीक निश्चय किया, पुत्रके लिए विधिपूर्वक अपना राज्य दिया और बड़ी शीघ्रतासे सर्वभूतहित नामक मुनिराजके चरणमूलमें प्रस्थान किया ॥५५-५७॥ भगवान् सर्वभूतहित भव्य जीवोंको आनन्द देनेवाले गुणरूपी किरणोंके समूहसे समस्त संसारमे प्रसिद्ध थे ॥५८॥ महेन्द्रोदय नामा उद्यानमे स्थित उन सर्वभूतहित मुनिराजकी पूजा कर नमस्कार कर तथा भावपूर्वक स्तुति कर हाथ जोड मस्तकसे लगाकर राजा चन्द्रगतिने इस प्रकार कहा कि हे भगवन् ! मै गृहवाससे विरक्त हो चुका हूँ इसलिए आपके प्रसादसे जिनदीक्षा प्राप्त कर तपश्चरण करना चाहता हूँ ॥५९-६०॥ 'एवमस्तु' ऐसा कहने पर भामण्डलने भावपूर्वक परम प्रभावना की । जोर-जोरसे भेरियाँ बजने लगी, उत्तम स्त्रियोंने बाँसुरीकी ध्वनिके साथ मनोहर गीत गाया, करतालके साथ-साथ अनेक वादित्रोंके समूह गर्जना करने लगे । 'राजा जनकका लक्ष्मीशाली पुत्र जयवन्त हो रहा है' वन्दीजनोका यह जोरदार शब्द प्रतिध्वनि करता हुआ गूँजने लगा ॥६१-६३॥ उद्यानसे उठे हुए इस श्रोत्रहारी शब्दने रात्रिके समय अयोध्यावासी समस्त लोगोंको निद्रारहित कर दिया ॥६४॥ ऋषियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली इस हर्षध्वनिको सुनकर जैन लोग परम हर्षको प्राप्त हुए और मिथ्यादृष्टि लोग विषादसे युक्त हो गये ॥६५॥ उस शब्दको सुनकर सीता भी इस प्रकार जाग उठी मानो अमृतसे ही सींची गई हो, उसके समस्त अङ्ग रोमाञ्चसे व्याप्त हो गये तथा उसका बाँया नेत्र फड़कने लगा ॥६६॥ वह विचारने लगी कि यह जनक कौन है जिसका कि पुत्र जयवन्त हो रहा है । यह अत्यन्त उन्नत शब्द बार-बार सुनाई दे रहा है ॥६७॥ राजा जनक कनकका बड़ा भाई और मेरा पिता है । मेरा भाई उत्पन्न होते ही हरा

---

१ वध्य म० । वन्ध्या क० । २. भूतमात्रमति म० । ३ यात्यन्त ब० । ४. उच्चैः । ५. नारभे स०, म० दुन्दुभयः । ६. वशस्वसानुगं म० । ७. विपन्नाश्च म० ।

ध्यात्वेति सोदरस्नेहसुसम्प्लावितमानसा । मुक्तकण्ठ रुरोदासौ परिदेवनकारिणी ॥६९॥
ततो रामोऽभिरामाङ्ग' प्रोवाच मधुराक्षरम् । कस्माद् रोदिषि वैदेहि भ्रातृशोकेन कर्षिता ॥७०॥
भवत्या यद्यसौ भ्राता श्वो ज्ञातास्मो न सशय । अथवान्य क्वचित् कोऽपि पण्डिते शोचितेन किम् ॥७१॥
कारण यदतिक्रान्त मृतमिष्ट च बान्धवम् । हृतं विनिर्गत नष्ट न शोचन्ति विचक्षणाः ॥७२॥
कातरस्य विषादोऽस्ति दयिते [1]प्राकृतस्य च । न कदाचिद्विषादोऽस्ति विक्रान्तस्य[2] बुधस्य च ॥७३॥
एव तयो. समालाप दम्पत्यो कुर्वतो क्षपा । कृपयैव गता शीघ्र जातमङ्गलनिस्वना ॥७४॥
ततो दशरथ कृत्वा प्रत्यङ्ग वस्तु सादर । नगरीतो विनिष्क्रान्त ससुत साङ्गनाजन ॥७५॥
इतश्चेतश्च विस्तीर्णां पश्यन् खेचरवाहिनीम् । ययौ स विस्मयापन्न सामन्तशतपूरित. ॥७६॥
ददर्श चक्रे च देवेन्द्रपुरतुल्य विनिर्मितम् । क्षणाद्विद्याधरै. स्थान तुङ्गप्राकारगोपुरम् ॥७७॥
पताकातोरणैश्चित्र रत्नैश्च कृतमण्डनम् । प्रविवेश तदुद्यान साधुलोकसमाकुलम् ॥७८॥
नत्वा स्तुत्वा च तत्रासौ गुरु गुणगुरु नृपः । ददर्शोदयने भानोश्चन्द्रयानस्य दीक्षणम् ॥७९॥
नभश्चरै सम पूजा कृत्वा सुमहतीं गुरो । एकपार्श्वे निविष्टोऽसौ सर्वबान्धवसङ्गतः ॥८०॥
श्रीप्रभामण्डलोऽप्येक पार्श्वमाश्रित्य खेचरै । समस्तै. सहितस्तस्थौ किञ्चिच्छोकमिवोद्वहन् ॥८१॥
खेचरा भूचराश्चैते मुनयश्चान्तिक स्थिता' । शुश्रुवुर्गुरुतो धर्ममनगार तथेतरम् ॥८२॥
चरित निरगाराणा शूराणां शान्तमीहितम् । शिव सुदुर्लभ सिद्ध सार क्षुद्रभयावहम् ॥८३॥

गया था सो यह वही तो नही है ? ॥६८॥ ऐसा विचार कर भाईके स्नेहसे जिसका मन व्याप्त हो रहा था ऐसी सीता विलाप करती हुई गला फाड़कर रोने लगी ॥६९॥

तदनन्तर सुन्दर शरीरके धारी रामने मधुर अक्षरोमे कहा कि हे वैदेहि ! भाईके शोकसे विवश हो क्यो रही हो ॥७०॥ यदि यह तुम्हारा भाई है तो कल मालूम करेंगे इसमे संशय नहीं है और यदि कही कोई दूसरा है तो हे पण्डिते ! शोक करनेसे क्या लाभ है ? ॥७१॥ क्योकि जो चतुर जन है वे बीते हुए, मरे हुए, हरे हुए, गये हुए अथवा गुमे हुए इष्टजनका शोक नहीं करते है ॥७२॥ हे वल्लभे ! विषाद उसका किया जाता है जो कातर होता है अथवा बुद्धिहीन होता है । इसके विपरीत जो शूरवीर बुद्धिमान् होता है उसका विषाद नहीं किया जाता ॥७३॥ इस प्रकार दम्पतीके वार्तालाप करते-करते रात्रि बीत गई सो मानो दयासे ही शीघ्र चली गई और प्रातःकाल सम्बन्धी मङ्गलमय शब्द होने लगे ॥७४॥

तदनन्तर राजा दशरथ अङ्गसम्बन्धी कार्य कर आदरसहित पुत्रो और स्त्रीजनोंके साथ नगरीसे बाहर निकले ॥७५॥ सैकड़ो सामन्त उनके साथ थे । वे जहाँ-तहाँ फैली हुई विद्याधरोंकी सेनाको देखते हुए आश्चर्यचकित होते जा रहे थे ॥७६॥ उन्होंने क्षणभरमें ही विद्याधरोके द्वारा निर्मित ऊँचे कोट और गोपुरोसे सहित इन्द्रपुरीके समान स्थान देखा ॥७७॥ तदनन्तर उन्होंने पताकाओ और तोरणोसे चित्रित, रत्नोंसे अलंकृत एव मुनिजनोसे व्याप्त उस महेन्द्रोदय नामा उद्यानमे प्रवेश किया ॥७८॥ वहाँ जाकर राजा दशरथने गुणोसे श्रेष्ठ सर्वभूतहितनामा गुरुको नमस्कार कर तथा उनकी स्तुति कर सूर्योदयके समय राजा चन्द्रगतिका दीक्षामहोत्सव देखा ॥७९॥ उन्होंने विद्याधरोंके साथ गुरुकी बहुत बड़ी पूजा की और उसके बाद वे समस्त भाई-बन्धुओंके साथ एक ओर बैठ गये ॥८०॥ कुछ शोकको धारण करता हुआ भामण्डल भी समस्त विद्याधरोंके साथ एक ओर आकर बैठ गया ॥८१॥ विद्याधर और भूमिगोचरी गृहस्थ तथा मुनिराज सभी लोग पास-पास बैठकर गुरुदेवसे मुनि तथा गृहस्थ धर्मका व्याख्यान सुन रहे थे ॥८२॥ गुरुदेव कह रहे थे कि मुनियोंका धर्म शूरवीरोंका धर्म है, अत्यन्त शान्त दशारूप है,

---

१ पामरस्य । २ शूरस्य ।

भव्यजीवा यमासाद्य लभन्ते सशयोज्झितम् । सम्यग्दर्शनसम्पन्ना गीर्वाणेन्द्रसुख महत् ॥८४॥
केचित् केवलमासाद्य लाकालोकप्रकाशनम् । लोकप्राग्भारमारुह्य भजन्ते नैर्वृत[1] सुखम् ॥८५॥
तिर्यङ्नरकदु खाग्निज्वालाभि परिपूरित । ससारो मुच्यते येन त पन्थान महोत्तमम् ॥८६॥
सर्वप्राणिहितोऽवोचन्मन्द्रगर्जित[2]निस्वन । प्रह्लाद सर्वचित्ताना जनयन्विदिताखिल ॥८७॥
सन्देहतापविच्छेदि तद्वचोम्बु मुनीन्द्रजम् । कर्णाञ्जलिपुटै पीत प्राणिभि प्रीतमानसै ॥८८॥
ततो दशरथोऽपृच्छत् सजाते वचनान्तरे । चन्द्रकीर्ते. खगेन्द्रस्य वैराग्य नाथ किंकृतम् ॥८९॥
सीता तत्र विशुद्धार्चा ज्ञातुमिच्छु सहोदरम् । शुश्रूषया मनश्चक्रे विनीतात्यन्तनिश्चलम् ॥९०॥
शुद्धात्मा भगवानूचे शृणु राजन् विचित्रताम् । जीवाना निर्मितामेता[3] कर्मभि स्वयमर्जितै ॥९१॥
संसारे सुचिर भ्रान्त्वा जीवोऽयमतिदु खित । कर्मानिलेरित प्राप्तश्चन्द्रेण [4]द्युतिमण्डल ॥९२॥
अर्पित पुष्पवत्यै च स्त्रीचिन्ताकुलतारक. । स्वसार च समालोक्य गाढाकल्पकमागतः ॥९३॥
जनक कृत्रिमाश्वेन हृतश्चापस्वयवरा । जाता विदेहजा चिन्ता परां भामण्डलोऽगमत् ॥९४॥
अस्मरच्च भव पूर्व मूर्च्छित पुनरश्वसीत् । पृष्टश्चन्द्रेण चावोचदिति पूर्वभवक्रियाम् ॥९५॥
भरतस्थे विदग्धाख्ये पुरे कुण्डलमण्डित । अधार्मिकोऽहरत् कान्ता पिङ्गलस्य मन प्रियाम् ॥९६॥

मङ्गलरूप है, अत्यन्त दुर्लभ है, सिद्ध है, साररूप है और क्षुद्रजनोको भय उत्पन्न करनेवाला है ॥८३॥ इस मुनिधर्मको पाकर सम्यग्दृष्टि भव्यजीव नि.सन्देह स्वर्गका महासुख प्राप्त करते है ॥८४॥ और कितने ही लोक अलोकको प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानको प्राप्त कर लोकके अग्रभाग पर आरूढ हो मोक्षका सुख प्राप्त करते है ॥८५॥ तिर्यञ्च और नरक गतिके दु खरूपी अग्निकी ज्वालाओसे भरा हुआ यह संसार जिससे छूटता है वही मार्ग सर्वोत्तम है ॥८६॥ ऐसे मार्गका कथन उन मुनिराजने किया था। वे मुनिराज समस्त प्राणियोका हित करनेवाले थे, गम्भीर गर्जनाके समान स्वरको धारण करनेवाले थे, समस्त जीवोके चित्तमे आह्लाद उत्पन्न करनेवाले थे तथा समस्त पदार्थोंको जाननेवाले थे ॥८७॥ जिनके चित्त प्रसन्नतासे भर रहे थे ऐसे समस्त लोगोने सन्देहरूपी सन्तापको नष्ट करनेवाले मुनिराजके वचनरूपी जलका अपने-अपने कर्णरूपी अञ्जलिपुटसे खूब पान किया ॥८८॥

तदनन्तर जब वचनोमे अन्तराल पड़ा तब राजा दशरथने पूछा कि हे नाथ ! विद्याधरोके राजा चन्द्रगतिका वैराग्य किस कारण हुआ है ? ॥८९॥ वही पासमे बैठी निर्मल दृष्टिकी धारक सीता अपने भाईको जानना चाहती थी इसलिए श्रवण करनेकी इच्छासे नम्र हो उसने मनको अत्यन्त निश्चल कर लिया ॥९०॥ तब विशुद्ध आत्माके धारक भगवान् सर्वभूतहित मुनिराज बोले कि हे राजन् ! अपने द्वारा अर्जित कर्मोंके द्वारा निर्मित जीवोकी इस विचित्रताको सुनो ॥९१॥ कर्मरूपी वायुसे प्रेरित हुआ यह भामण्डलका जीव दीर्घकाल तक ससारमे भ्रमण कर अत्यन्त दु.खी हुआ है। अन्तमे जब भामण्डल पैदा हुआ तब वह राजा चन्द्रगतिको प्राप्त हुआ। चन्द्रगतिने पालन-पोषण करनेके लिए अपनी पुष्पवती भार्याको सौंपा। जब यह तरुण होकर स्त्रीविषयक चिन्ताको प्राप्त हुआ तब अपनी बहिन सीताका चित्रपट देख अत्यन्त व्यथाको प्राप्त हुआ ॥९२-९३॥ सीताकी मँगनी करनेके लिए मायामयी अश्वके द्वारा राजा जनकका हरण हुआ अन्तमे सीताका धनुष-स्वयंवर हुआ और उसने स्वयंवरमें राजा दशरथके पुत्र रामको वर लिया। इस घटनासे भामण्डल परम चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥९४॥ अकस्मात् इसे पूर्व भवका स्मरण हुआ जिससे यह मूर्च्छित हो गया। सचेत होनेपर राजा चन्द्रगतिने इसका कारण पूछा तब वह अपने पूर्व भवकी वार्ता इस प्रकार कहने लगा ॥९५॥ कि मै भरत. क्षेत्रके विदग्धनामा

---

१. निर्वाणसम्बन्धि । २. निर्जित-ज० । ३. मेका म० । ४ भामण्डलः । ५. गाढव्यथाम् ।

ज्योत्स्नाकृताट्टहासायां रात्रौ प्राप्तः पतंस्त्वया । तदा स्मरसि किं नेदं पुष्पवत्यै समर्पितः ॥१०९॥
प्राप्तो भवत्प्रसादेन विद्याधरविधिर्मया । नूनं माता विदेहा मे सा च सीता सहोदरी ॥११०॥
इत्युक्ते विस्मयं प्राप्ता सर्वा वैद्याधरी सभा । चन्द्रायणश्च संविग्नो न्यस्य भामण्डले श्रियम् ॥१११॥
माता पिता च ते वत्स दुःखशोकेन तिष्ठति । तयोर्नेत्रोत्सवं यच्छेत्येवमुक्त्वा समागतः ॥११२॥
जातस्य नियतो मृत्युस्ततो गर्भस्थितिः पुनः । इति भीतो भवादेष चन्द्रः प्राव्रज्यमाप्तवान् ॥११३॥
अत्रान्तरे विदेहाज[1] सशयं परिपृच्छति । स्नेहश्चन्द्रायणादीनां मयि कस्मात् परः प्रभो ॥११४॥
ततः सर्वहितोऽवोचन्निबोध द्युतिमण्डल । यथा पिता च माता च तव पूर्वभवे स्थितौ ॥११५॥
दारुग्रामे तु विप्रोऽभूद् विमुचिस्तस्य भामिनी । अनुकोशातिभूतिश्च तनयः सरसा स्नुषा ॥११६॥
ऊर्या मात्रा सहप्राप्तः कयानाख्योऽन्यदा द्विजः । अहरत् सरसां सारं धनमन्तर्गतं च यत् ॥११७॥
अतिभूतिश्च तद्धेतोः शोकी बभ्राम मेदिनीम् । ततो निष्पुरुषे गेहे शेषं स्वमपि लुण्ठितम् ॥११८॥
विमुचिर्दक्षिणाकाङ्क्षी देशान्तरगतः पुरा । श्रुत्वा कुलकुटं भग्नं निवृत्तस्त्वरयान्वितः ॥११९॥
जीर्णवस्त्रावशेषाङ्गामनुकोशां सुविह्वलाम् । सान्त्वयित्वा तया सार्धमुर्यां चान्वेष्टुमुद्यतः ॥१२०॥
प्रजाभिः पृथिवीपृष्ठे कथ्यमानं समन्ततः । अवधिज्ञानकरणैर्जगद् येनावभासितम् ॥१२१॥

लिए वह देव बालकको उठा ले गया परन्तु कर्मोदयसे उसके परिणाम शान्त हो गये जिससे उसने उस बालकको लघुपर्णी विद्यासे लघु कर 'जीते रहो' इन शब्दोंका उच्चारण कर आकाशसे छोड़ा ॥१०८॥ जिसमे चाँदनी अट्टहास कर रही थी ऐसी रात्रिमे आकाशसे पड़ते हुए उस बालकको आपने पकडा था और अपनी रानी पुष्पवतीके लिए सौंपा था। क्या यह आपको स्मरण नहीं है ? ॥१०९॥ मैंने आपके प्रसादसे विद्याधरपना प्राप्त किया। यथार्थमे विदेहा मेरी माता है वह सीता मेरी बहिन है ॥११०॥ भामण्डलके ऐसा कहनेपर विद्याधरोकी समस्त सभा आश्चर्यको प्राप्त हुई तथा चन्द्रगति संसारसे भयभीत हो भामण्डलके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तथा यह कहकर यहाँ चला आया कि हे वत्स ! तेरे माता-पिता शोकके कारण दुःखसे रह रहे है सो उनके नेत्रोको आनन्द प्रदान कर ॥१११-११२॥

तदनन्तर जो उत्पन्न होता है उसका मरण अवश्य होता है और जिसका मरण होता है वह गर्भमे स्थित होता है, ऐसा विचार कर चन्द्रगति संसारसे भयभीत हो वैराग्यको प्राप्त हुआ ॥११३॥ इसी बीचमे भामण्डलने सर्वभूतहित मुनिराजसे पूछा कि हे प्रभो ! चन्द्रगति आदिका मुझपर बहुत भारी स्नेह किस कारण था ॥११४॥ इसके उत्तरमे मुनिराजने कहा कि हे भामण्डल ! तेरे माता-पिता पूर्व भवमे जिस प्रकार थे सो कहता हूँ सुन ॥११५॥

दारुग्राममे एक विमुचि नामका ब्राह्मण था उसकी स्त्रीका नाम अनुकोशा था और पुत्रका नाम अतिभूति था। अतिभूतिकी स्त्रीका नाम सरसा था ॥११६॥ किसी समय उसके घर अपनी ऊरी नामक माताके साथ कयान नामका एक ब्राह्मण आया सो उसने अतिभूतिकी स्त्री सरसा तथा घरके भीतरका सारभूत धन दोनोंका हरण किया अर्थात् सरसा और धनको लेकर कहीं भाग गया ॥११७॥ इस निमित्तसे अतिभूति बहुत दुःखी हुआ और स्त्रीकी खोजमें पृथिवीपर भ्रमण करने लगा। इधर उसके चले जानेसे घर पुरुषरहित हो गया सो बाकी बचा धन भी चोर ले गये ॥११८॥ विमुचि ब्राह्मण दक्षिणाकी इच्छा करता हुआ पहले ही देशान्तर चला गया था। वहाँ जब उसने सुना कि हमारा कुल-परम्परासे चला आया घर नष्ट हो गया है तब वह शीघ्र ही लौटकर वापिस आया ॥११९॥ आकर उसने देखा कि उसकी स्त्री अनुकोशा अत्यन्त विह्वल हो रही है और उसके शरीरपर जीर्ण-शीर्ण फटे चिथड़े ही शेष रह गये हैं। तब उसने उसे सान्त्वना दी और कयानकी माता ऊरीके साथ पुत्रको ढूँढनेके लिए गया ॥१२०॥ उसने पृथिवी

1. भामण्डलः ।

तमाचार्यं परिप्राप्त पुरे सर्वारिनामनि । प्रष्टुं किल महाशोको नष्टचित्तस्तुपात्मज ॥१२२॥
दृष्ट्वा गणेश्वरीमृद्धिं श्रुत्वा च विविधा स्थितम् । तीव्र संवेगमासाद्य विमुचिर्मुनिता गतः ॥१२३॥
पार्श्वे कमलकान्ताया आर्याया सुसमाहिता । समभूर्यानुकोशापि प्रव्रज्य तपसि स्थिता ॥१२४॥
त्रयोऽपि ते शुभध्याना कृत्वाकालमलोलुपा । लोकान्तिक गता लोक नित्यालोकमनाकुलम् ॥१२५॥
अतिभूतिप्रभृतयो हिंसावादस्य शंसका । द्वेषका संयताना च कुध्याना दुर्गति गता ॥१२६॥
मृगीत्व सरसा प्राप्ता वलाहकनगोरसि । व्याघ्रभीता च्युता यूथान्मृता दावानलाहता ॥१२७॥
जाता मनस्विनीदेव्या सुता चित्तोत्सवाह्वया । दु खदानप्रवीणस्य प्रशमात् पापकर्मण ॥१२८॥
कयान क्रमशो भूत्वा पारसीक क्रमेलक । मृत्वा पिङ्गलनामाभूद्धूमकेशस्य नन्दन ॥१२९॥
हसस्ताराक्षसरसि सोऽतिभूति क्रमादभूत् । श्येनैर्विलुप्तसर्वाङ्गश्चैत्यस्य पतितोऽन्तके ॥१३०॥
अध्याप्यमान गुरुणा यशोमित्र पुन॰ पुन । अश्रोषीदर्हता स्तोत्र मुक्तवानथ जीवितम् ॥१३१॥
दशवर्षसहस्रायु किन्नरोऽभून्नगोत्तरे । विदग्धनगरे च्युत्वा जात कुण्डलमण्डितः ॥१३२॥
अहरत् पिङ्गल कन्या तथा कुण्डलमण्डित । यदत्राथ पुरावृत्तः सम्बन्ध॰ परिकीर्तितः ॥१३३॥
योऽसौ विमुचिरित्यासीत् सोऽय चन्द्रगतिर्नृप । अनुकोशा तु जायास्य जाता पुष्पवती पुन ॥१३४॥
कयानोऽय सुरो हर्ता सरसा हृदयोत्सवा । ऊरी जाता विदेहा तु सोऽतिभूति प्रभाह्वय ॥१३५॥

तलपर भ्रमण करते हुए लोगोसे सुना कि सर्वारिपुर नामा नगरमे एक आचार्य हैं जिन्होने अपने अवधिज्ञानसे इस जगत्को प्रकाशित कर रक्खा है सो वह उनसे पुत्रकी वार्ता पूछनेके उद्देश्यसे उनके पास गया। विमुचि महाशोकसे भरा था और पुत्र तथा पुत्रवधूका पता न लगनेसे अत्यन्त दु खी था ॥१२१–१२२॥ वह आचार्य महाराजकी तप ऋद्धि देखकर तथा संसारकी नाना प्रकारकी स्थिति सुनकर तीव्र वैराग्यको प्राप्त हुआ और उन्हींके पास दीक्षा लेकर मुनि हो गया ॥१२३॥ विमुचिकी स्त्री अनुकोशा और कयानकी माता ऊरी इन दोनो ब्राह्मणियोंने भी कमलकान्ता नामक आर्यिकाके पास दीक्षा लेकर तप धारण कर लिया ॥१२४॥ विमुचि, अनुकोशा और ऊरी ये तीनो प्राणी महानि-स्पृह, धर्म ध्यानसे मरकर निरन्तर प्रकाशसे युक्त तथा आकुलतारहित ब्रह्मलोक नामक स्वर्गमे उत्पन्न हुए ॥१२५॥ अतिभूति तथा कयान दोनो ही हिंसा धर्मके समर्थक तथा मुनियोसे द्वेप रखनेवाले थे। इसलिए खोटे ध्यानसे मरकर दुर्गतिमे गये ॥१२६॥ अतिभूतिकी स्त्री सरसा बलाहक नामक पर्वतकी तलहटीमे मृगी हुई सो व्याघ्रसे भयभीत हो मृगोके झुण्डसे बिछुडकर दावानलमे जल मरी ॥१२७॥ तदनन्तर दु ख देनेमे प्रवीण पाप कर्मके शान्त होनेसे मनस्विनी देवीके चित्तोत्सवा हुई ॥१२८॥ और कयान मरकर क्रमसे घोड़ा तथा ऊँट हुआ। फिर मरकर धूम्रकेशका पुत्र पिङ्गल हुआ ॥१२९॥ अतिभूति भव भ्रमण कर क्रमसे ताराक्ष नामक सरोवरके तीरपर हंस हुआ सो किसी समय श्येन अर्थात् बाज पक्षियोंने इसका समस्त शरीर नोच डाला जिससे घायल होकर जिनमन्दिरके समीप पड़ा ॥१३०॥ वहाँ गुरु यशोमित्र नामक शिष्यको बार-बार अर्हन्तभगवान्का स्तोत्र पढ़ा रहे थे सो सुनकर हंसने प्राण छोड़े ॥१३१॥ उसके फलस्वरूप वह नगोत्तर नामक पर्वतपर दश हजार वर्षकी आयुवाला किन्नर देव हुआ और वहाँसे च्युत होकर विदग्धनगरमे राजा कुण्डल-मण्डित हुआ ॥१३२॥ पूर्वभवके संस्कारसे चित्तोत्सवा कन्याका पिङ्गलने अपहरण किया और उसके पाससे कुण्डलमण्डित राजाने अपहरण किया। इन सबका जो पूर्व भवका सम्बन्ध था वह पहले कहा जा चुका है ॥१३३॥ इनमें जो विमुचि ब्राह्मण था वह चन्द्रगति राजा हुआ, उसकी अनुकोशा नामकी जो स्त्री थी वही पुष्पवती नामकी फिरसे स्त्री हुई ॥१३४॥ कयान अपहरण करनेवाला देव हुआ, सरसा चित्तोत्सवा हुई, ऊरी विदेहा हुई और अतिभूति भामण्डल हुआ ॥१३५॥

ततो दशरथ श्रुत्वा त वृत्तान्तमशेषत । भामण्डल समाश्लिष्य वाष्पपूर्णनिरीक्षण ॥१३६॥
अङ्गुतैजितमूर्धानो जातरोमोद्गमा भृशम् । आनन्दवाष्पलोलाक्षा सभायामभवञ्जना ॥१३७॥
उद्गीर्णमाननेनैव प्रीत्या त वीक्ष्य सोदरम् । मृगीव रुदती स्नेहाद्धावोद्धृतबाहुका ॥१३८॥
हा भ्रात प्रथम दृष्टो मयाद्यासीतिशब्दिनी । तमाश्लिष्य चिर सीता रुदित्वा धृतिमागता ॥१३९॥
सभाषित स रामेण सम्भ्रमालिङ्गितश्चिरम् । लक्ष्मणेन तथान्येन बन्धुलोकेन सादरम् ॥१४०॥
नमस्कृत्य मुनि श्रेष्ठ तत खेचरभूचरा । उद्यानात् प्रमदापूर्णा निरीयु सुविराजिता ॥१४१॥
भामण्डलेन समन्थ्य द्रुत दशरथो ददौ । लेख जनकराजस्य नीत गगनयायिना ॥१४२॥
प्रेषित भानुमार्गेण तस्य हसरथ वरम् । यान विद्याधरैर्वीरैर्भूरिभि परिवारितम् ॥१४३॥
प्रभामण्डलमादाय ततो भूत्यातिकान्तया । तुष्टो दशरथोऽयोध्या सुत्रामसदृशोऽविशत् ॥१४४॥
अक्षीणसर्वकोशोऽसावुपचार पर नृप । प्रीतो भामण्डले चक्रे सर्वलोकसमन्वित ॥१४५॥
रम्ये सुविपुले तुगे वाप्युद्यानविभूषिते । गृहे दशरथोद्दिष्टे तस्थौ भामण्डल सुखम् ॥१४६॥
दारिद्र्यान्मोचितो लोक परमोत्सवजन्मना । दानेन वाञ्छिताधिक्य प्राप्तेन धरणीतले ॥१४७॥
गत्वा पवनवेगेन जनको लेखहारिणा । सहसा वर्द्धितो दिष्ट्या पुत्रागमनजन्मना ॥१४८॥
प्रवाच्य चार्पित लेख सुदृढप्रत्यय परम् । प्रमोद जनक प्राप रोमाञ्चार्चितविग्रह ॥१४९॥
भद्र कि किमय स्वप्न स्याज्जाग्रप्रत्ययोऽथवा । एहि ढौकस्व ढौकस्व तावत्त्वाद्य परिष्वजे ॥१५०॥

तदनन्तर इस समस्त वृत्तान्तको सुनकर जिनके नेत्र आँसुओसे भर गये थे ऐसे राजा दशरथने भामण्डलका आलिङ्गन किया ॥१३६॥ उस समय सभामे जितने लोग बैठे थे सभीके मस्तक आश्चर्यसे चकित रह गये, सभीके शरीरमे बहुत भारी रोमाञ्च निकल आये और सभीके नेत्र आनन्दके आँसुओसे चञ्चल हो उठे ॥१३७॥ मुखकी आकृति ही जिसे प्रकट कर रही थी ऐसे भाईको बडे प्रेमसे देखकर सीता स्नेहवश मृगीकी तरह रोती हुई, भुजाएँ ऊपर उठा दौडी और हे भाई ! मै तुझे आज पहले ही पहल देख रही हूँ, यह कहकर उससे लिपट गई और चिरकाल तक रुदन कर धैर्यको प्राप्त हुई ॥१३८-१३९॥ राम, लक्ष्मण तथा अन्य बन्धुओने भी सहसा उठकर भामण्डलका आलिङ्गन किया तथा आदरसहित उससे वार्तालाप किया ॥१०४॥

तदनन्तर उन श्रेष्ठ मुनिराजको नमस्कार कर सब विद्याधर और भूमिगोचरी मनुष्य उपवनसे बाहर निकले । उस समय वे हर्षसे परिपूर्ण थे तथा अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥१४१॥ भामण्डलके साथ सलाह कर राजा दशरथने शीघ्र ही आकाशगामी विद्याधरके हाथ राजा जनकके पास पत्र भेजा ॥१४२॥ भामण्डलका उत्तम विमान आकाश-मार्गसे आ रहा था, हंसोके द्वारा धारण किया गया था तथा बहुतसे विद्याधर वीर उसे घेरे हुए थे ॥१४३॥ तदनन्तर भामण्डलको लेकर राजा दशरथने इन्द्रके समान बडी विभूतिसे अयोध्यामे प्रवेश किया ॥१४४॥ अक्षीण कोशके धनी राजा दशरथने भामण्डलके आनेपर प्रसन्न हो सब लोगोके साथ मिलकर बड़ा उत्सव किया ॥१४५॥ भामण्डल राजा दशरथके द्वारा बताये हुए रमणीय, विशाल, ऊँचे तथा वापी और बगीचासे सुशोभित महलमे सुखसे ठहरा ॥१४६॥ उस परमोत्सवके समय राजा दशरथने इतना अधिक दान दिया कि पृथ्वीतलके दरिद्र मनुष्य इच्छासे अधिक धन पाकर दरिद्रतासे मुक्त हो गये ॥१४७॥ उधर पवनके समान शीघ्रगामी पत्रवाहक विद्याधरने पुत्रके आगमनका समाचार सुनाकर राजा जनकको सहसा हर्षित कर दिया ॥१४८॥ राजा जनक दिये हुए पत्रको बाँचकर तथा उसकी सत्यताका दृढ विश्वास कर परम प्रमोदको प्राप्त हुए । उसका सारा शरीर हर्षसे रोमाञ्चित हो गया ॥१४९॥ वे उस विद्याधरसे पूछने लगे कि हे भद्र ! क्या

१ इन्द्रतुल्यः । २. सुदृढः प्रत्ययः म० । ३. तावत् + त्वा + अद्य ।

इत्युक्त्वानन्दवाष्पेण तरत्तारकलोचनः । साक्षात्पुत्रमिव प्राप्तं लेखहारं स सस्वजे ॥१५१॥
नग्नतापरिहारेण देहस्थं वस्त्रभूषणम् । ससम्भ्रमं ददौ तस्मै मुदा नृत्तमिवाचरन्[1] ॥१५२॥
समेति बन्धुलोकोऽस्य यावद्धिप्स्याभिवर्द्धकः[2] । तावत्तद्यानमायातं छादयद्गगनं रुचा ॥१५३॥
अपृच्छत्तस्य वृत्तान्तमतृप्तश्च पुनः पुनः । उक्तं विद्याधरैस्तस्य यथावदतिविस्तरम् ॥१५४॥
ततो यानं समारुह्य समस्तैर्बन्धुभिः समम् । निमेषेण परिप्राप्तो विनीतां तूर्यनादिताम्[3] ॥१५५॥
अवतीर्याम्बराद्दाशु पुत्रमालिङ्ग्य निर्भरम् । सुखमीलितनेत्रोऽसौ क्षणं मूर्छामुपागतः ॥१५६॥
प्रबुध्य च विशालेन चक्षुषा वाष्पवारिणा । आसेचनकमैक्षिष्ट[4] तनयं पाणिना स्पृशन् ॥१५७॥
माता तं मूर्छिता दृष्ट्वा परिष्वज्य प्रबोधिनी । आचक्रन्द सुकारुण्यं तिरश्चामपि कुर्वती ॥१५८॥
परिदेवनमेवं च चक्रे पुत्रक हा कथम् । हृतोऽसि जातमात्रस्त्वं केनाप्युत्तमवैरिणा ॥१५९॥
त्वदीक्षाचिन्तया देहो दग्धोऽयं वह्नितुल्यया । भवद्दर्शनतोयेन चिरान्निर्वापितोऽद्य मे ॥१६०॥
धन्या पुष्पवती सुस्त्री या तेऽङ्गानि शैशवे । क्रीडता धूसराण्यके निहितानि सुचुम्बितम् ॥१६१॥
चन्दनेन विलिप्तस्य कुङ्कुमस्थासकाञ्चितम् । दधतः शैशवं दृष्टं कौमारं ते तया वपुः ॥१६२॥
नेत्राभ्यामस्रमुत्सृज्य स्तनाभ्यां च पयश्चिरम् । सुपुत्रसङ्गमानन्दं विदेहा परमं गता ॥१६३॥

यह स्वप्न है ? अथवा जागृत दशामें होनेवाला प्रत्यक्ष ज्ञान है ! आओ, आओ मैं तुम्हारा आलिङ्गन करूँ ॥१५०॥ इतना कहकर आनन्दके आँसुओंसे जिनके नेत्रोंकी पुतलियाँ चञ्चल हो रही थीं ऐसे राजा जनकने उस पत्रवाहक विद्याधरका ऐसा आलिङ्गन किया मानो साक्षात् पुत्र ही आ गया हो ॥१५१॥ उन्होंने इस हर्षसे नृत्य करते हुए की तरह उस विद्याधरके लिए अपने शरीरपर स्थित समस्त वस्त्राभूषण दे दिये। शरीरपर केवल उतने ही वस्त्र शेष रहने दिये जिससे कि वे नग्न न दिखें ॥१५२॥ हर्षकी वृद्धि करनेवाले राजा जनकके बन्धुवर्ग जब तक इकट्ठे होते हैं तब तक अपनी कान्तिसे आकाशको आच्छादित करता हुआ भामण्डलका विमान वहाँ आ पहुँचा ॥१५३॥ राजा जनकने अतृप्त हो बार-बार भामण्डलका वृत्तान्त पूछा और विद्याधरोंने सब वृत्तान्त ज्योंका-त्यों बड़े विस्तारसे कहा ॥१५४॥

तदनन्तर राजा जनक समस्त भाई-बन्धुओंके साथ विमानपर आरूढ़ हो निमेषमात्रमें अयोध्या जा पहुँचे। उस समय अयोध्या तुरहीके मधुर शब्दसे शब्दायमान हो रही थी ॥१५५॥ आकाशसे शीघ्र ही उतरकर उन्होंने पुत्रका गाढ़ आलिङ्गन किया। आलिङ्गनजन्य सुखसे उनके नेत्र निमीलित हो गये और क्षण भरके लिए वे मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥१५६॥ सचेत होनेपर उन्होंने जिनसे अश्रु-जल झर रहा था ऐसे विशाल लोचनोंसे तृप्तिकर पुत्रका अवलोकन किया तथा हाथसे उसका स्पर्श किया ॥१५७॥ माता विदेहा भी पुत्रको देखकर तथा आलिङ्गन कर हर्षातिरेकसे मूर्छित हो गई और सचेत होनेपर ऐसा रुदन करने लगी कि जिससे तिर्यञ्चोंको भी दया उत्पन्न हो रही थी ॥१५८॥ वह विलाप करने लगी कि हाय पुत्र ! तू उत्पन्न होते ही किसी विकट वैरीके द्वारा क्यों अपहृत हो गया था ? ॥१५९॥ मेरा यह शरीर अग्निके समान तेरे देखनेकी चिन्तासे अब तक जलता रहा है। आज चिरकालके बाद तेरे दर्शनरूपी जलसे शान्त हुआ है ॥१६०॥ पुष्पवती बड़ी ही धन्य और भाग्यशालिनी उत्तम स्त्री है जिसने कि बाल्य अवस्थामें क्रीड़ासे धूलधूसरित तेरे अङ्ग अपनी गोदमें रक्खे हैं तथा चन्दनसे लिप्त और केशरके तिलकसे सुशोभित तेरे मुखका चुम्बन किया है एवं शैशव अवस्थाको धारण करनेवाले तेरे कुमारकालीन शरीरको देखा है ॥१६१-१६२॥ माता विदेहाके नेत्रोंसे आँसू और स्तनोंसे चिरकाल तक दूध निकलता रहा। वह उत्तम पुत्रका सङ्ग पाकर परम आनन्दको प्राप्त हुई ॥१६३॥

---

१. वृत्तमिवा-म० । २ यावद्विद्याभिवर्धकः म० । ३. तूर्यनोदिता ख० । ४. 'तदासेचनकं तृप्तेर्नास्त्यन्तो यस्य दर्शनात्' ।

अर्हच्छासनदेवीव जृम्भैरावतनामनि । सा तत्र लोचने कृत्वा तस्थौ मग्ना सुखाम्बुधौ ॥१६४॥
माससमात्रमुषित्वातो बन्धुसङ्गममोदिना । पद्मो भामण्डलेनोचे विनय बिभ्रता[1] परम् ॥१६५॥
वैदेह्या शरण देव त्वमेवोत्तमबान्धव । छन्देऽस्या वर्तता येन नो यात्युद्वेगमेषका ॥१६६॥
स्वसार च समालिंग्य स्नेहादेना[2] सुचेष्टिताम् । उपादिशदसौ भूयो भूय. प्रवरमानस ॥१६७॥
मातालिंग्यागदत् सीता सुते श्वसुरयो प्रिये । परिवर्गे च तत्कुर्या श्लाघ्यता येन गच्छसि ॥१६८॥
सर्वानामन्त्र्य विन्यस्य कनके मिथिलेशिताम् । गृहीत्वा पितरौ यात स्थान भामण्डलो निजम् ॥१६९॥

इन्द्रवज्रा

वीक्षस्व माहात्म्यमिद कृतस्य धर्मस्य पूर्वं मगधाधिराज ।
विद्याधरेन्द्रो यदवापि बन्धु सीता च पत्नी गुणरूपपूर्णा ॥१७०॥

उपजाति

अधिष्ठिते देवगणैश्च चापे सककटे सीरगदादियुक्ते ।
लब्धे सुरैरप्यतिदुर्लभे ये पद्मेन लक्ष्मीनिलयश्च भृत्यः ॥१७१॥

उपेन्द्रवज्रा

इद जनो य सुविशुद्धचेता श्रृणोति भामण्डलबन्धुयोगम् ।
अभीष्टयोगानरुजश्चिराय रविप्रभोऽसौ लभते शुभात्मा ॥१७२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते भामण्डलसमागमाभिधान नाम त्रिंशत्तम पर्व ॥३०॥

जिस प्रकार ऐरावत क्षेत्रमे जृम्भा नामकी जिनशासनकी सेवक देवी रहती है उसी प्रकार वह भामण्डलपर दृष्टि लगाकर अर्थात् उसे देखती हुई सुखरूपी सागरमे निमग्न होकर रहने लगी ॥१६४॥ तदनन्तर एक मास तक अयोध्यामे रहनेके बाद भाई-बन्धुओंके समागमसे प्रसन्न एवं परम विनयको धारण करनेवाले भामण्डलने श्रीरामसे कहा कि ॥१६५॥ हे देव ! सीताके आप ही शरण हो और आप ही इसके सर्वोत्तम बान्धव हो। आप इसके हृदयमे इस प्रकार विद्यमान रहे कि जिससे यह उद्वेगको प्राप्त न हो ॥१६६॥ उत्कृष्ट हृदयके धारक भामण्डलने उत्तम चेष्टाओसे सुशोभित बहिनका स्नेहवश आलिङ्गन कर उसे बार-बार उपदेश दिया ॥१६७॥ माता विदेहाने भी सीताका आलिङ्गन कर कहा कि हे बेटी ! तू अपने सास ससुरको प्रिय हो, तथा परिजनके साथ ऐसा व्यवहार कर कि जिससे प्रशंसाको प्राप्त हो ॥१६८॥ तदनन्तर भामण्डल सब लोगोंसे पूछकर तथा मिथिलाका राज्य कनकके लिए सौंपकर माता पिताको साथ ले अपने स्थानपर चला गया ॥१६९॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! पूर्व भवमे किये हुए धर्मका यह माहात्म्य देखो। धर्मके माहात्म्यसे ही रामने विद्याधरोका राजा भामण्डल जैसा बन्धु प्राप्त किया, गुण तथा रूपसे परिपूर्ण सीता जैसी पत्नी प्राप्त की तथा देवोके समूहसे अधिष्ठित कवच, हल, गदा आदिसे युक्त एवं देवोके द्वारा दुर्लभ धनुष प्राप्त किये। लक्ष्मीका भाण्डार लक्ष्मण जैसा सेवक प्राप्त किया ॥१७०-१७१॥ जो मनुष्य अत्यन्त विशुद्ध हृदयसे भामण्डलके इस इष्ट समागमको सुनता है सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला वह शुभात्मा मनुष्य चिरकाल तक इष्ट जनोंके साथ समागम और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७२॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें भामण्डलके समागमका वर्णन करनेवाला तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३०॥

---

१. बिभ्रतं म० । २. सुचेष्टित म० ।

एकत्रिंशत्तमं पर्व

उवाच श्रेणिको भूप सबन्धुरनरण्यज । इमा विभूतिं सम्प्राप्य चक्रे किं गणनायक ॥१॥
पुरातन च वृत्तान्त रामलक्ष्मणयोस्तयो. । तवैव विदित सर्वं तन्नो ब्रूहि महायश. ॥२॥
इति पृष्टो महातेजा जगाद मुनिपुङ्गव. । निरवद्य तथा तत्त्व यथा सर्वज्ञभाषितम् ॥३॥
स्वसशयमशेषज्ञं राजा दशरथोऽन्यदा । प्रणम्य साधुमप्राक्षीत सर्वभूतहित हितम् ॥४॥
मया जन्मानि भूरीणि परिप्राप्तानि यानि तु । वेद्म्येकमपि नो तेषा तत्सर्वं विदित[2] त्वया ॥५॥
तान्यह ज्ञातुमिच्छामि भगवन्नुच्यतामिति । भवत्प्रसादतो मोह निराकर्तुमह यजे ॥६॥
श्रोतु समुद्यतस्यैव[3] भवान्[4] दशरथस्य तु । सर्वभूतहित साधुरिदं वचनमब्रवीत् ॥७॥
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यन्मां पृच्छसि सन्मते । त्वया पर्यट्य ससारे मतिरासादिता यथा ॥८॥
न त्वयैकेन ससारो भ्रान्तोऽन्यैरपि संभृत[5] । चिन्वानै कर्मभि. कर्मदु खसजननो महान् ॥९॥
अस्मिन् जगत्त्रये राजन् जन्तूनां स्वहितैषिणाम् । स्थितयस्तिस्र उद्दिष्टा उत्तमाधममध्यमा ॥१०॥
[6]अभाव्यी च तथा [7]भाव्यी सैद्धी[8] च गतिरुत्तमा । पुनरावृत्तिनिर्मुक्ता कल्याणी जिनदेशिता ॥११॥
सेय सिद्धगतिः शुद्धा सनातनसुखावहा । इन्द्रियव्रणरोगार्तैर्मोहेनान्धैर्न दृश्यते ॥१२॥

अथानन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे पूछा कि हे गणनायक ! इष्टजनोंसे सहित, राजा अनरण्यके पुत्र राजा दशरथने इस विभूतिको पाकर क्या किया ?॥१॥ हे महायशके धारक ! राम और लक्ष्मणका पुरातन वृत्तान्त आपको ही विदित है इसलिए वह सब वृत्तान्त मुझसे कहिए ॥२॥ इस प्रकार पूछे गये महातेजस्वी मुनिराजने कहा कि हे राजन् ! इनका जैसा वृत्तान्त सर्वज्ञदेवने कहा है वैसा कहता हूँ तू सुन ॥३॥ वे कहने लगे कि किसी समय राजा दशरथने समस्त पदार्थोंको जाननेवाले सर्वभूतहित नामक हितकारी मुनिराजको प्रणाम कर उनसे अपना संशय पूछा ॥४॥ उन्होने कहा कि हे स्वामिन् ! मैने बहुतसे जन्म धारण किये है पर मै उनमेंसे एक भी भवको नही जानता जब कि आपके द्वारा सब विदित हैं ॥५॥ हे भगवन् ! मै उन्हें जानना चाहता हूँ सो कहिए । आपके प्रसादसे मोह नष्ट करनेके लिए मै आपकी पूजा करता हूँ ॥६॥ इस प्रकार भवान्तर सुननेके लिए उद्यत राजा दशरथसे सर्वभूतहित मुनि निम्नाङ्कित वचन कहने लगे ॥७॥

उन्होंने कहा कि हे राजन् ! सुन । हे सद्बुद्धिके धारक ! तुमने जो पूछा है वह सब मैं कहूँगा । तुमने इस ससारमे समन्तात् भ्रमण कर जिस प्रकार सद्बुद्धि प्राप्त की है वह सब मैं निवेदन करूँगा ॥८॥ दुःख देनेवाले इस महान् संसारमें केवल तुमने ही भ्रमण नहीं किया है किन्तु कर्मोंका संचय करनेवाले अन्य लोगोने भी कर्मोदयसे इसमे भ्रमण किया है ॥९॥ हे राजन् ! इस जगत्त्रयमे अपना हित चाहनेवाले प्राणियोकी दशाएँ उत्तम मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन प्रकारकी वर्णित की गई हैं ॥१०॥ उनमेसे अभव्य जीवकी दशा जघन्य है, भव्यकी मध्यम है और सिद्धोंकी उत्तम है । जिनेन्द्रभगवान्‌ने सिद्धगतिको पुनरागमनसे रहित तथा कल्याणकारिणी बतलाया है ॥११॥ यह सिद्धगति शुद्ध है तथा सनातन सुखको देनेवाली है ।

---

१ दशरथः । २ विहित म० । ३ समुद्यतस्यैव म० । ४. पूर्वपर्यायान् । ५. ससरणविषयीकृतः । ६. अभव्यस्येयम् अभाव्यी । ७ भव्यस्येय भाव्यी । ८ सिद्धानामिय सैद्धी ।

श्रद्धासंवेगहीनानां हिंसादिष्वनिवर्तिनाम् । चतुर्गतिकसंवर्ता गतिरुग्रतमोरजा ॥१३॥
अभव्यानां गतिः क्लिष्टा विनाशपरिवर्जिता । भव्यानां तु परिज्ञेया गतिर्निर्वृतिभाविनी ॥१४॥
धर्मादिद्रव्यपर्यन्तं लोकालोकमशेषतः । पृथिवीप्रभृतीन् कायानाश्रिताश्चेतनाभृतः ॥१५॥
जीवराशिरनन्तोऽयं विद्यते नास्य सङ्क्षयः । दृष्टान्तः सिकताकाशचन्द्रादित्यकरादिकः ॥१६॥
[1]अनाद्यमन्तनिर्मुक्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् । स्वकर्मनिचयोपेतं नानायोनिकृताटनम् ॥१७॥
सिद्धाः सिद्धयन्ति सेत्स्यन्ति कालेऽन्तपरिवर्जिते । जिनदृष्टेन धर्मेण नैवान्येन कथञ्चन ॥१८॥
यः सन्देहकलङ्केन निचितः पापकर्मणा । [2]अभावितस्य धर्मेण का तस्य श्रद्धानता ॥१९॥
कुतः श्रद्धाविमुक्तस्य धर्मो धर्मफलानि च । अत्यन्तदुःखमज्ञानं[3] सम्यक्त्वरहितात्मनाम् ॥२०॥
अत्युग्रकर्मनिर्मोकै[4]र्वेष्टितानां समन्ततः । मिथ्याधर्मानुरक्तानां स्वाहिताद्दूर[5]वर्तिनाम् ॥२१॥
सेनापुरेऽथ दीपिन्या उपास्तिर्नाम [6]भावनः । सा च मिथ्याभिमानेन परिपूर्णा निरर्गलम् ॥२२॥
[7]अश्रद्दधाना सरभमत्सरक्ष्वेडधारिणी । दुर्भावा सततं साधुनिन्दनासक्तशब्दिका ॥२३॥
प्रयच्छति स्वयं नान्नं यच्छन्तं नानुमन्यते । निवारयति यत्नेन विद्यमानं बुभूर्ष्वपि ॥२४॥

इन्द्रियरूपी व्रणरोगसे पीडित तथा मोहसे अन्धे मनुष्य इसे नहीं देख सकते है ॥१२॥ जो मनुष्य श्रद्धा और संवेगसे रहित है तथा हिंसादि पाँच पापोंसे निवृत्त नही है उनकी चतुर्गतिमें भ्रमण करानेवाली गति अर्थात् दशा होती है। उनकी यह गति अत्यन्त उग्र तमोगुण और रजोगुणसे युक्त रहती है ॥१३॥ अभव्य जीवोंकी गति अतिशय दुःखपूर्ण तथा विनाशसे रहित है और भव्य जीवोंकी गति मोक्ष प्राप्त करनेवाली है अर्थात् अभव्य जीव सदा चतुर्गतिमें ही भ्रमण करते है और भव्य जीवोंमें किन्हींका निर्वाण भी हो जाता है ॥१४॥ जहाँ तक धर्माधर्मादि द्रव्य पाये जाते है उसे लोक कहते है और बाकी समस्त आकाश अलोक कहलाता है। संसारके समस्त प्राणी पृथिवी आदि षट्कायको धारण करनेवाले हैं ॥१५॥ यह जीवराशि अनन्त है। इसका क्षय नही होता है। इसके लिए बालूके कण, आकाश अथवा चन्द्रमा सूर्य आदिकी किरणे दृष्टान्त हैं अर्थात् जिस प्रकार बालूके कणोंका अन्त नहीं है, आकाशका अन्त नही है और चन्द्र तथा सूर्यकी किरणोंका अन्त नहीं है उसी प्रकार जीवराशिका भी अन्त नहीं है ॥१६॥ चर अचर पदार्थों अर्थात् त्रस स्थावर जीवोंसे सहित ये तीनों लोक अनादि अनन्त हैं, स्वकीय कर्मोंके समूहसे सहित हैं तथा नाना योनियोंके जीव इनमे भ्रमण करते रहते है ॥१७॥ आज तक जितने सिद्ध हुए है, जो वर्तमानमे सिद्ध हो रहे है और जो अनन्त काल तक सिद्ध होंगे वे जिनेन्द्रदेवके द्वारा देखे हुए धर्मके द्वारा ही होंगे अन्य किसी प्रकारसे नहीं ॥१८॥ जो पाप कर्मके कारण संशयरूपी कलङ्कसे व्याप्त है तथा धर्मकी भावना अर्थात् संस्कारसे रहित है उसके सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है ? ॥१९॥ जो मनुष्य श्रद्धासे रहित है उसके धर्म और धर्मके फल कहाँसे प्राप्त हो सकते हैं ? जिनकी आत्मा सम्यग्दर्शनसे रहित है, जो अत्यन्त उग्र कर्मरूपी काँचलीसे सब ओरसे वेष्टित है, जो मिथ्या धर्ममे अनुरक्त है और जो आत्महितसे दूर रहते हैं उन प्राणियोंको अत्यन्त दुःख देनेवाला अज्ञान ही प्राप्त होता है ॥२०-२१॥

अथानन्तर हस्तिनापुर नगरमें एक उपास्ति नामका गृहस्थ था। उसकी दीपिनी नामकी स्त्री थी। वह दीपिनी मिथ्या अभिमानसे पूर्ण थी, श्रद्धासे रहित थी, क्रोध तथा मात्सर्यरूपी विषको धारण करनेवाली थी, दुष्ट भावोंसे युक्त थी, उसके शब्द सदा साधुओंकी निन्दा करनेमें तत्पर रहते थे। वह न कभी स्वयं किसीको आहार देती थी और न देते हुए किसी दूसरेकी

१. अनादिमन्त- म० । २ असंस्कृतस्य धर्मभावनारहितस्येति यावत् । ३. विज्ञानं म० । ४. निर्मोकै वेष्टिताना म० । ५. दुःखवर्तिना । ६. गृहस्थः इति । ७. अश्रद्धानात् म० ।

एवमादिमहादोषा कुतीर्थपरिभाविता । कालमेत्याभ्रमद्भीमे निष्पारे भवसागरे ॥२५॥
उपास्तिर्देहि देहीति समभ्यस्याक्षरद्वयम् । पुण्यकर्मानुभावेन पुरेऽन्द्रकपुराह्वये[1] ॥२६॥
सुतोऽभूद् भद्रधारिण्योर्भाग्यवान् बहुबान्धव. । वारणो नामतस्तस्य पत्नी नयनसुन्दरी ॥२७॥
देशकालप्रपन्नेभ्य. साधुभ्य शुद्धभावत । दत्वासौ पारणा सम्यक्काले सत्यज्य विग्रहम् ॥२८॥
विदेहे धातकीखण्डे मेरोरुत्तरतः कुरौ । भुक्त्वा पल्यत्रय भोग समारूढस्त्रिविष्टपम् ॥२९॥
च्युतोऽत पुष्कलावत्या नगर्या नन्दिघोषत । वसुधाया समुत्पन्नो नामतो नन्दिवर्धन ॥३०॥
नन्दिघोषोऽन्यदा धर्मं श्रुत्वोद्यान प्रबुद्धवान् । नन्दिवर्धनमाघ्राय पृथिवीपरिपालने ॥३१॥
यशोधरमुने पार्श्वे प्रव्रज्य सुमहत्तप. । कृत्वा स्वर्गं समारूढस्तनु त्यक्त्वा यथाविधि ॥३२॥
गृहिधर्मसमासक्तो नमस्कारपरायण । पूर्वकोटी महाभोगान् भुक्त्वा श्रीनन्दिवर्धन ॥३३॥
सन्यासेन तनु त्यक्त्वा प्रयात पञ्चम दिवम् । ततश्च्युतो विदेहेऽस्मिन् गिरिराजस्य पश्चिमे ॥३४॥
ख्याते शशिपुरे स्थाने विजयार्द्धनगोत्तमे । सूर्यञ्जयोऽभवद् विद्युल्लताया रत्नमालिन ॥३५॥
अन्यदा सिंहनगर रत्नमाली महाबल । प्रस्थितो विग्रह कर्तुं यत्रासौ वज्रलोचन ॥३६॥
रथै प्रभास्वरैर्दिव्यै. पदातिगजवाजिभि. । नानाशस्त्रकृतध्वान्तै सामन्तै सुमहाबलै ॥३७॥

अनुमोदना करती थी। यदि कोई दानादि सत्कार्योंमे प्रवृत्त होता था तो उसे वह प्रयत्नपूर्वक मना करती थी। इत्यादि अनेक महादोषोंसे युक्त थी और कुतीर्थकी भावनासे युक्त थी। इस प्रकार समय व्यतीत कर वह भयङ्कर तथा पाररहित ससार सागरमे भ्रमण करने लगी ॥२२–२५॥ इसके विपरीत उपास्ति 'देहि' 'देहि' अर्थात् 'देओ' 'देओ' इन दो अक्षरोंका अच्छी तरह अभ्यास कर—अत्यधिक दान देकर पुण्य कर्मके प्रभावसे अन्द्रकपुरनामा नगरमे भद्रनामा गृहस्थ और उसकी धारिणीनामा स्त्रीके धारण नामका भाग्यशाली एवं अनेक बन्धुजनोंसे युक्त पुत्र हुआ। उसकी नयनसुन्दरी नामकी स्त्री थी ॥२६–२७॥ वह योग्य देश तथा कालमे प्राप्त हुए साधुओंके लिए शुद्धभावसे आहार देता था। जिसके फलस्वरूप अन्तमे समाधिपूर्वक शरीर का त्यागकर धातकीखण्डद्वीप सम्बन्धी विदेह क्षेत्रमे मेरु पर्वतकी उत्तर दिशामे विद्यमान कुरुक्षेत्रमे आर्य हुआ। वहाँ तीन पल्य तक भोग भोगकर स्वर्गमे उत्पन्न हुआ ॥२८–२९॥ वहाँसे च्युत होकर पुष्कलावती नगरीमे राजा नन्दिघोष और वसुधा रानीके नन्दिवर्धन नामका पुत्र हुआ ॥३०॥ एक दिन राजा नन्दिघोष उत्कृष्ट धर्म श्रवण कर प्रबोधको प्राप्त हुआ और नन्दिवर्धनको पृथिवी-पालनका भार सौंप यशोधर मुनिराजके समीप दीक्षा लेकर महातप करने लगा। तथा अन्तमे विधिपूर्वक शरीर त्यागकर स्वर्गमे उत्पन्न हुआ ॥३१–३२॥

इधर नन्दिवर्धन गृहस्थका धर्म धारण करनेमे लीन एवं पञ्च-नमस्कार मन्त्रकी आराधना करनेमे तत्पर था। वह एक करोड़ पूर्वतक महाभोगोंको भोगकर तथा संन्याससे शरीर छोड़कर पञ्चम स्वर्गमे गया। वहाँसे च्युत होकर इसी विदेह क्षेत्रमे सुमेरु पर्वतके पश्चिमकी ओर विजयार्ध पर्वतपर स्थित शशिपुरनामा नगरमे राजा रत्नमाली और रानी विद्युल्लताके सूर्यजय नामका पुत्र हुआ ॥३३–३५॥

अथानन्तर एक समय महा बलवान् राजा रत्नमाली युद्ध करनेके लिए उस सिंहपुर नगर की ओर चला जहाँ कि राजा वज्रलोचन रहता था ॥३६॥ वह देदीप्यमान सुन्दर रथ, पैदल सेना, हाथी, घोड़े तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंसे अन्धकार उत्पन्न करनेवाले अत्यन्त बलवान्

१ चन्द्रपुराह्वये म० । २. भद्रनामा पुरुषः, तस्य धारिणी नाम्नी स्त्री तयो. । ३. प्रयत्नेभ्यो म० । ४ स्वर्गम् । ५. पृथुलावत्या ज० । ६. सुमेरोः ।

त दष्टोष्ठ धनु पाणि कवचावृतविग्रहम् । [1]दग्धुकाममरिस्थान क्रोधादाग्नेयविद्यया ॥३८॥
रथाग्रारूढमायान्त वेगिन भीषणाकृतिम् । नभस्थ सहसा कश्चिदमरोऽभिदधाविति ॥३९॥
रत्नमालिन् किमारब्धमिद सरभमुत्सृज । विबुध्यस्व वदाम्येष वृत्तान्त तव पूर्वकम् ॥४०॥
इहासीद् भारते वास्ये मांसादोऽधमकर्मकृत् । गान्धार्यां भूतिरुर्वीभृदुपमन्युः पुरोहित ॥४१॥
साधो कमलगर्भस्य श्रुत्वा [3]व्याकरण च स. । नाचरामि पुन पापमिति व्रतमुपाददे ॥४२॥
पञ्चपल्योपम स्वर्गे तेनायु समुपार्जितम् । उपमन्यूपदेशेन[4] भस्मसाद्भावमाहृतम् ॥४३॥
मुञ्चते सुकृत चासाववस्कन्देन चारिभि. । प्रपत्य हिसित साकमुपमन्यु[5]पुरोधसा ॥४४॥
पुरोहितो गजो जातो युद्धेऽसौ जर्जरीकृत । सम्प्राप्य [6]जाप्यमप्राप्तमितरैर्दु खभाजनै. ॥४५॥
पुनस्तत्रैव गान्धार्यां भूतिपुत्रस्य धीमत । देव्या योजनगन्धाया पुत्रोऽभूदरिसूदन ॥४६॥
दृष्ट्वा कमलगर्भं च पूर्वं जन्म समस्मरत् । प्रव्रज्यासौ ततो मृत्वा [7]शतारेऽह सुरोऽभवम् ॥४७॥
स त्व [8]भूतिमृगो जातो मन्दारण्ये दुराकृति । अकामनिर्जरा तस्य दावदग्धस्य[9] भूकुना[10] ॥४८॥
कम्बोजेन सताकारि यत्त्वया कर्म दारुणम् । [11]क्लिञ्जाख्येन मृतस्त्वासीच्छर्करानरक गत ॥४९॥
[12]मया स्नेहानुबन्धेन ततस्त्व सम्प्रबोधित. । अयमुद्वृत्य जातोऽसि रत्नमाली खगेश्वर ॥५०॥

सामन्तोंसे सहित था ॥३७॥ जो क्रोधके कारण ओठ डस रहा था, जिसके हाथमे धनुष था, जिसका शरीर कवचसे आच्छादित था, जो आग्नेयविद्यासे शत्रुका स्थान जलाना चाहता था, जो रथके अग्रभागपर आरूढ था, जो वेगशाली था एवं भयङ्कर आकारका धारक था। ऐसे उस रत्नमालीको आकाशमे स्थित देख सहसा किसी देवने इस प्रकार कहा ॥३८–३९॥ कि हे रत्नमालिन् ! तूने यह क्या आरम्भ कर रक्खा है ? क्रोधको छोड़ और स्मरण कर, मै तेरा पूर्व वृत्तान्त कहता हूँ ॥४०॥

'इसी भरत क्षेत्रकी गान्धारीनामा नगरीमे एक भूति नामका राजा था। उपमन्यु उसके पुरोहितका नाम था। राजा और पुरोहित दोनो ही मासभोजी तथा नीचकार्य करनेवाले थे ॥४१॥ एक बार कमलगर्भनामा मुनिका व्याख्यान सुनकर राजा भूतिने व्रत लिया कि अब मै ऐसे पापका आचरण फिर कभी नही करूँगा ॥४२॥ इस व्रतके प्रभावसे उसने इतने पुण्यका सञ्चय किया कि उससे स्वर्गकी पॉच पल्य प्रमाण आयुका बन्ध हो सकता था, परन्तु उपमन्यु पुरोहितके उपदेशसे उसका यह सब पुण्य भस्म-भावको प्राप्त हो गया अर्थात् नष्ट हो गया। उसने उस पुण्यभावको छोड़ दिया। उसी समय शत्रुओंने आक्रमण कर पुरोहितके साथ-साथ उसे मार डाला ॥४३–४४॥ पुरोहितका जीव मरकर हाथी हुआ सो युद्धमे घायल हो अन्य दु खी जीवोंको जिसका मिलना दुर्लभ था ऐसे पञ्च नमस्कार मन्त्रको पाकर उसी गान्धारीके राजा भूतिके बुद्धिमान् पुत्रकी योजनगन्धा नामा स्त्रीके अरिसूदन नामका पुत्र हुआ ॥४५–४६॥ कमलगर्भ मुनिराजके दर्शन कर अरिसूदनको पूर्व जन्मका स्मरण हो आया जिससे विरक्त होकर उसने दीक्षा ले ली और मरकर शतार नामक ग्यारहवे स्वर्ग मे देव हुआ। इस तरह मैं वही पुरोहितका जीव देव हूँ और तू राजा भूतिका जीव मरकर मन्दारण्यनामा वनमे मृग हुआ सो वहाँ दावानलमे जलकर उसने अकामनिर्जरा की उसके फलस्वरूप वह क्लिञ्ज नामका नीच पुरुष हुआ। उस पर्यायमे तूने जो दारुण कार्य किये—तीव्र पाप किये। उनके फलस्वरूप तू शर्कराप्रभा नामक दूसरे नरक गया ॥४७–४९॥ तदनन्तर स्नेहके संस्कारसे मैंने वहाँ

---

१ दग्धु काम 'तु काममनसोरपि' इति मलोपः दग्धकामम० । २. जगाद । ३. व्याख्यानम् । ४ उपमन्यूपदेशेन व्रतं त्यक्तम् । ५. उपमन्युः पुरोधसा म० । ६ जय्य म० । ७ शतारस्वर्गे । ८. भूतिनामनृपः । ९ दावदग्धोस्य म०, ख० । १० नीचपुरुषेण । ११ क्लिञ्जाख्ये वने मृतः सन् शर्करानामनरक प्राप्तः । १२ महा- म० ।

पर्याप्तानि न किं तानि दुःखानीत्युदितश्च सः । सूर्यञ्जयसुतं राज्ये निधाय कुलनन्दनम् ॥५१॥
वृत्तान्तश्रवणात्तस्मात्परं निर्वेदमीयुषा । सूर्यञ्जयेन सहितः सत्कर्मोदयचेतसा ॥५२॥
रत्नमाली पुनर्नानादुर्गतित्रस्तमानसः । ययौ शरणमाचार्यं सौम्यं तिलकसुन्दरम् ॥५३॥
सूर्यञ्जयस्तपः कृत्वा महाशुक्रमुपागमत् । च्युतोऽनरण्यराजर्षेः सुतो दशरथोऽभवत् ॥५४॥
स्वल्पेन सुकृतेन त्वमुपास्तिप्रमुखैर्भवैः । न्यग्रोधबीजवद्वृद्धिं सम्प्राप्तोऽसि शुभोदयात् ॥५५॥
नन्दिवर्धनकाले ते[1] नन्दिघोषपिता च यः । सोऽहं ग्रैवेयकाद् भ्रष्टः सर्वभूतहितोऽभवम् ॥५६॥
यो भूतिरुपमन्युश्च [2]तावेतौ तद्वशानुगौ । जनको कनकश्चेति जातौ सुकृतचेतसा ॥५७॥
संसारे न परः कश्चिन्नात्मीयः कश्चिदञ्जसा । सैषा शुभाशुभैर्जन्तोरुद्वर्तपरिवर्तना ॥५८॥
उदाहृतमिदं श्रुत्वा विनीतो वीतसंशयः । अनरण्यसुतो जातः प्रबुद्धः संयमोन्मुखः ॥५९॥
सर्वादरसमेतश्च सम्पूज्य चरणौ गुरोः । प्रणम्य च विशुद्धात्मा प्रविवेश सुकोशलम् ॥६०॥
एवं च मानसे चक्रे सार्वभूमीश्वरं पदम् । पद्माय सुधिये दत्वा [3]माधवीयाः श्रये गतिम् ॥६१॥
धर्मात्मा सुस्थिरो रामस्त्रिसमुद्रां वसुन्धराम् । अनुपालयितुं शक्तो भ्रातृभिः परिवारितः ॥६२॥
चिन्तयत्येवमेवास्मिन् राज्यमोहपराङ्मुखे । मुक्त्यर्थाहितचेतस्के श्रीमद्दशरथे नृपे ॥६३॥
तिरोधानं गता क्वापि स्वच्छज्योत्स्नापटा शरत् । चन्द्रास्याहिमभीतेव सरोरुहनिरीक्षणा ॥६४॥
प्राप्तः प्रालेयसंपातः[4] विच्छायीकृतनीरजः । हेमन्तो जडवातेन व्याकुलीकृतविष्टपः ॥६५॥

जाकर तुझे सम्बोधा जिसके प्रभावसे निकल कर तू यह रत्नमाली विद्याधर हुआ है ॥५०॥ तूने क्या वे दुःख नहीं पाये हैं ?' इस प्रकार देवके कहते ही रत्नमालीका मन नाना दुर्गतियोंसे भयभीत हो गया। इस वृत्तान्तके सुननेसे रत्नमालीका पुत्र सूर्यंजय भी परम वैराग्यको प्राप्त हो गया इसलिए उस पुण्यात्माके साथ ही साथ राजा रत्नमाली, सूर्यञ्जयके पुत्र कुलनन्दको राज्य देकर तिलकसुन्दरनामा प्रशान्त आचार्यकी शरणमें पहुँचा ॥५१-५३॥ तदनन्तर सूर्यंजय तप कर महाशुक्र स्वर्गमें गया और वहाँसे च्युत होकर राजर्षि अनरण्यके दशरथ नामका पुत्र हुआ ॥५४॥ सर्वभूतहित मुनि कहते हैं कि तू थोड़े ही पुण्यके द्वारा उपास्ति आदि भवोंमें वटबीजकी तरह शुभोदयसे वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥५५ तू राजा दशरथ उपास्तिका जीव है और नन्दिवर्धनकी पर्यायमें जो तेरा पिता नन्दिघोष था वह तपकर ग्रैवेयक गया और वहाँसे च्युत होकर मैं सर्वभूतहित हुआ हूँ ॥५६॥ तथा उसके अनुकूल रहनेवाले जो भूति और उपमन्युके जीव थे वे पुण्यके प्रभावसे क्रमशः राजा जनक एवं कनक हुए हैं ॥५७॥ वास्तवमें इस संसारमें न तो कोई पर है और न अपना है। शुभाशुभ कर्मोंके कारण जीवका यह जन्म-मरणरूप परिवर्तन होता रहता है ॥५८॥ इस प्रकार पूर्व भवका वृत्तान्त सुन अनरण्यका पुत्र राजा दशरथ प्रतिबोधको प्राप्त हुआ तथा सब प्रकारका संशय छोड़ विनीत हो संयम धारण करनेके सन्मुख हुआ ॥५९॥ सम्पूर्ण आदरके साथ उसने गुरुके चरणोंकी पूजा की, उन्हें प्रणाम किया और तदनन्तर निर्मल हृदय हो नगरमें प्रवेश किया ॥६०॥ उसने मनमें विचार किया कि यह महामण्डलेश्वरका पद बुद्धिमान् रामके लिए देकर मैं मुनिव्रत धारण करूँ ॥६१॥ धर्मात्मा तथा स्थिर चित्तका धारक राम अपने भाइयोंके साथ जिसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिणमें तीन समुद्र हैं ऐसी इस भरत क्षेत्रकी पृथ्वीका पालन करनेमें समर्थ है ॥६२॥ इस प्रकार राज्यके मोहसे विमुख और मुक्तिके लिए चित्त धारण करनेवाले राजा दशरथ ऐसा विचार कर रहे थे कि उसी समय निर्मल चाँदनी ही जिसका वस्त्र थी, चन्द्रमा ही जिसका मुख था और कमल ही जिसके नेत्र थे ऐसी शरद् ऋतुरूपी स्त्री हिमसे डरकर ही मानो कहीं जा छिपी ॥६३॥-६४॥ और लगातार हिमके पड़नेसे

---

१. कालेन म० । २. तावन्तौ म० । ३. माधवीया (?) म० । ४. संघातो विच्छायी-म० ।

स्फुटिताधरपादान्ता पृष्ठन्यस्तपटच्चरा । दन्तवीणाकृतस्वाना रूक्षव्याकुलमूर्धजा ॥६६॥
तित्तिरच्छदनच्छायक्रोडजङ्घा विभावसो । सततासेवनात् कुक्षिपूरणाधूनचेतस ॥६७॥
शरीरच्छायया तुल्या त्रपक्वत्रपुषत्वच' । दुर्गेहिनीवच शस्त्रैरत्यन्त [1]तष्टमानसा' ॥६८॥
[2]काष्ठाद्यानयनासक्ता दिवाभास्करतापिता । कुठारादिधराः स्कन्धो दधाना किणकर्कशौ ॥६९॥
शाकाम्लखलकाद्यन्तपरिपूरितकुक्षय । दुःखं नयन्ति तत्काल [3]दुष्कुटीषु धनोज्झिता ॥७०॥
वरप्रासादयातास्तु शीतसङ्गमहारिभि । सवीताङ्गा वरैर्वस्त्रैर्धूपामोदानुबन्धिभि ॥७१॥
षड्रस स्वादुसम्पन्न हेमरुक्मादिपात्रगम् । भुञ्जाना सुरभिस्निग्धमाहार निजलीलया ॥७२॥
कुङ्कुमप्रविलिप्ताङ्गा असितागुरुधूपिता । अक्षीणधननिश्चिन्ता गवाक्षकृतवीक्षणाः ॥७३॥
गीतनृत्यादिसम्प्राप्ता विनोद परम सदा । माल्यभूषणसम्पन्ना सुभाषितकथोद्यता ॥७४॥
विनीताभि कलाज्ञाभि सुरूपाभि सम नरा । क्रीडन्ति वरनारीभि तदा पुण्यानुभावतः ॥७५॥
पुण्येन लभ्यते सौख्यमपुण्येन च दु खिताः[4] । कर्मणामुचित लोक सर्वं फलमुपाश्नुते ॥७६॥
तदा दशरथो भीतो भृश ससारवासत । [5]निर्वृत्याालिङ्गनाकाङ्क्षी विरक्तो भोगवस्तुत [6] ॥७७॥
द्वा स्थमाज्ञापयद्भूमिन्यस्तजानुकर द्रुतम् । भद्राहूय स्वसामन्तान् मन्त्रिभि· सहितानिति ॥७८॥
नियुज्यात्मसम द्वारे शासन तेन तत्कृतम् । आगतास्ते नमस्कृत्य यथास्थानमवस्थिता ॥७९॥

जिसने कमलोको कान्तिरहित कर दिया था तथा शीतल वायुसे जिसने समस्त संसारको व्याकुल बना दिया था ऐसा हेमन्त काल आ पहुँचा ॥६५॥ जिनके ओठ तथा पैरोंके किनारे फट गये थे, जो पीठपर पुराने चिथड़े धारण किये हुए थे, जिनके दन्त वीणाके समान शब्द कर रहे थे, जिनके मस्तकके बाल रूखे तथा बिखरे हुए थे, निरन्तर अग्निके तापनेसे जिनकी गोद तथा जाँघे तीतरके पङ्खके समान मटमैली हो गई थी, जिनका चित्त पेट भरनेकी चिन्तासे दु खी रहता था, जो शरीरकी कान्तिसे पके हुए त्रपुषफलके वल्कलके समान श्यामवर्ण थे, दुष्ट भार्याके वचनरूपी शस्त्रोसे जिनका हृदय छिल गया था, जो लकड़ी आदिके लानेमे लगे रहते थे, जो दिनभर सूर्यके द्वारा तपाये जाते थे, जो कुल्हाड़ी आदि हथियारोको धारण करते थे तथा जो घट्ट पड़ जानेसे कठोर कन्धोको धारण करते थे तथा जो शाकभाजी आदिसे पेट भरते थे, ऐसे निर्धन मनुष्य जीर्ण-शीर्ण कुटियोमे उस हेमन्तकालको बड़े कष्टसे व्यतीत करते थे ॥६६–७०॥ और इनसे विपरीत जो अक्षीण धनके कारण निश्चिन्त थे वे उत्तमोत्तम महलोंमें रहते थे, शीतके समागमको हरनेवाले तथा धूपकी सुगन्धिसे सुवासित उत्कृष्ट वस्त्रोसे उनके शरीर ढके रहते थे, स्वर्ण तथा चाँदी आदिके पात्रमे रखे हुए, छह रसके स्वादिष्ट, सुगन्धित तथा स्निग्ध आहारको लीलापूर्वक ग्रहण करते थे, उनके शरीर केशरसे लिप्त तथा कालागुरुकी धूपसे सुवासित रहते थे, उनके नेत्र झरोखोकी ओर झाँका करते थे, वे गीत, नृत्य आदि परम विनोदको प्राप्त होते रहते थे, माला तथा आभूपणोसे युक्त रहते थे, सुभाषितोके कहनेमे तत्पर रहते थे और विनीत, कलानिपुण तथा सुन्दर रूपकी धारक उत्तम स्त्रियोंके साथ पुण्योदयसे क्रीड़ा करते थे ॥७१–७५॥ आचार्य कहते हैं कि इस संसारमे पुण्यसे सुख प्राप्त होता है और पापसे दुःख मिलता है। प्राणी अपने कर्मोंके अनुरूप ही सब प्रकारका फल प्राप्त करते है ॥७६॥

तदनन्तर उस समय संसारवाससे अत्यन्त भयभीत राजा दशरथ, मुक्तिरूपी स्त्रीके आलिङ्गनकी आकांक्षा करते हुए भोगवस्तुओंसे विरक्त हो गये ॥७७॥ जिसने पृथिवीपर घुटने और हस्त टेककर नमस्कार किया था ऐसे द्वारपालको उन्होने तत्काल आज्ञा दी कि हे भद्र ! मन्त्रियोंसे सहित अपने सामन्तोंको बुला लाओ ॥७८॥ द्वारपालने द्वारपर अपने ही समान

१. नष्ट-ख० । २. काष्ठादानयताशक्त्या म० । ३. तत्काल म० । ४ दुःखिनो भावो दुःखिता । ५. मुक्तिकान्ताश्लेषणाभिलाषी । ६. भोगवस्तुन- ख०, ज०, ब० ।

नाथाज्ञापय किं कृत्यमिति चोक्तेन भूभृता । विनीता जगदे [1]संसत् प्रव्रजामीति निश्चितम् ॥८०॥
ततस्तन्मन्त्रिणोऽवोचन् गण्यमानाश्च पार्थिवाः । नाथ किं कारणं जातं मतावस्यां तवाधुना ॥८१॥
जगादासौ समक्षं भो नन्वेतत्सकलं जगत् । शुष्कं तृणमिवाजस्रं दह्यते मृत्युवह्निना ॥८२॥
अग्राह्यं यदभव्यानां भव्यानां ग्रहणोचितम् । सुरासुरनमस्कार्यं प्रशस्यं शिवसौख्यदम् ॥८३॥
त्रिलोके प्रकटं सूक्ष्मं विशुद्धमुपमोज्झितम् । श्रुतं तन्मुनितो जैनं श्रुतमद्य मयाचिरात् ॥८४॥
परमं सर्वभावानां सम्यक्त्वमतिनिर्मलम् । गुरुपादप्रसादेन प्राप्तोऽहं वर्त्म निर्वृते ॥८५॥
नानाजन्ममहावर्तां मोहपङ्कसमाकुलाम् । कुतर्कग्राहसम्पूर्णां महादुःखोमिसन्तताम् ॥८६॥
मृत्युकल्लोलसंयुक्तां कुदृष्टिजलनिर्भराम् । समाक्रन्दमहारावां विधर्मजववाहिनीम् ॥८७॥
भवापगां मम स्मृत्वा नरकाम्भोधिगामिनीम् । पश्यताङ्गानि कम्पन्ते वित्रासेन समन्ततः ॥८८॥
वृथावोचत मा[3] किंचिदात्मानं मोहिता भृशम् । तमसः प्रकटे देशे कुतः स्थानं रवौ सति ॥८९॥
अभिषिञ्चत मे पुत्रं प्रथमं राज्यपालने । त्वरितं येन निर्विघ्नं प्रविशामि तपोवनम् ॥९०॥
इत्युक्ते निश्चितं ज्ञात्वा महाराजस्य मन्त्रिणः । सामन्ताश्च परं शोकं प्राप्ता विनतमस्तकाः ॥९१॥
लिखन्तो भूमिमङ्गुल्या वाष्पाकुलनिरीक्षणाः । क्षणेन निष्प्रभीभूतास्तस्थुर्मौनं समाश्रिताः ॥९२॥
प्राणेशं निश्चितं श्रुत्वा[4] निर्ग्रन्थव्रतसंश्रयम् । एकीभूतं शुचं प्राप्तं सर्वमन्तःपुरं परम् ॥९३॥

दूसरे पुरुषको नियुक्त कर राजाज्ञाका पालन किया। सामन्त और मन्त्रीगण आकर तथा नमस्कार कर यथास्थान बैठ गये ॥७९॥ उन्होंने राजासे कहा कि हे नाथ! आज्ञा दीजिए, क्या कार्य है? तब राजाने विनयसे भरी सभासे कहा कि मैंने निश्चय किया है कि 'दीक्षा धारण करूँ' ॥८०॥ तदनन्तर मन्त्रियों तथा गण्यमान-प्रमुख राजाओंने कहा कि हे नाथ! इस समय आपकी ऐसी बुद्धिके उत्पन्न होनेमें क्या कारण है? ॥८१॥ तब राजाने कहा कि अये! यह समस्त संसार सूखे तृणके समान निरन्तर मृत्युरूपी अग्निसे जल रहा है इस बातको आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं ॥८२॥ आज मैंने अभी-अभी मुनिराजके मुखसे जिनेन्द्रप्रणीत उस शास्त्रका श्रवण किया है कि जिसे अभव्य जीव ग्रहण नहीं कर सकते, जो भव्य जीवोंके ग्रहण करनेके योग्य है, सुर और असुर जिसे नमस्कार करते हैं, जो प्रशस्त है, मोक्षसुखको देनेवाला है, तीन लोकमें प्रकट है, सूक्ष्म है। विशुद्ध है तथा उपमासे रहित है ॥८३-८४॥ समस्त भावोंमें सम्यक्त्व भाव ही उत्कृष्ट तथा निर्मल भाव है, यही मुक्तिका मार्ग है। गुरु चरणोंके प्रसादसे आज मैंने उसे प्राप्त किया है ॥८५॥ जिसमें नाना जन्मरूपी बड़े-बड़े भँवर उठ रहे हैं, जो मोहरूपी कीचड़से भरी है, कुतर्करूपी मगरमच्छोंसे व्याप्त है, महादुःखरूपी तरङ्गोंसे युक्त है, मृत्युरूपी कल्लोलोंसे सहित है, मिथ्यात्वरूपी जलसे भरी है, जिसमें रुदनरूपी भयङ्कर शब्द हो रहा है, जो विधर्म अर्थात् मिथ्याधर्मरूपी वेगसे बह रही है तथा नरकरूपी समुद्रके पास जा रही है, ऐसी संसाररूपी नदीका स्मरण कर देखो। भयसे मेरे अङ्ग सब ओरसे कम्पित हो रहे हैं ॥८६-८८॥ आप लोग मोहके वशीभूत हो व्यर्थ ही कुछ मत कहिए अर्थात् मुझे रोकिए नहीं क्योंकि प्रकट स्थानमें सूर्यके विद्यमान रहते अन्धकारका निवास कैसे हो सकता है? ॥८९॥ आप लोग मेरे प्रथम पुत्रका शीघ्र ही राज्याभिषेक कीजिए जिससे मैं निर्विघ्न हो तपोवन में प्रवेश कर सकूँ ॥९०॥ ऐसा कहनेपर महाराजका दृढ़ निश्चय जानकर मन्त्री तथा सामन्तवर्ग परम शोकको प्राप्त हुए। सभीके मस्तक नीचे हो रहे ॥९१॥ वे अङ्गुलीसे भूमिको खोदने लगे, उनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त हो गये और सभी क्षणभरमें प्रभाहीन हो चुपचाप बैठ रहे ॥९२॥ 'प्राणनाथ निश्चितरूपसे निर्ग्रन्थ व्रतको धारण करनेवाले हैं' यह सुनकर

१. शासत् म० (?) । २. नं त्वेतत् म० । ३. मा म० । ४. ज्ञात्वा म० ।

विनोदान् प्रस्तुतान्मुक्त्वा बाष्पपूरितलोचना । भूषणस्वनभूयिष्ठं रुरुदुः प्रमदाङ्गनाः ॥९४॥
पितरं तादृशं दृष्ट्वा भरतः प्रतिबुद्धवान् । अचिन्तयदहो कष्टं दुश्छेद्यं स्नेहबन्धनम् ॥९५॥
अव्यापारेण [1]तातस्य किमेतेन प्रबोधिनः । चिन्ता राज्यगता कास्य प्रव्रज्यां कर्तुमिच्छतः ॥९६॥
आपृच्छया न मे किञ्चित्कार्यमाशु विशाम्यहम् । तपोवनं महादुःखससारक्षयकारणम् ॥९७॥
देहेनापि किमेतेन व्याधिगेहेन नाशिना । बान्धवेषु तु कावस्था स्वकर्मफलभोगिषु ॥९८॥
जन्तुरेकक एवायं[2] भवपादपसङ्कुले । मोहान्धो दुःखविपिने कुरुते परिवर्तनम् ॥९९॥
ततः कलाकलापज्ञा भरतस्येङ्गितादिभिः । केकया चिन्तितं ज्ञात्वा दधाना शोकमुत्तमम् ॥१००॥
कथं मे न भवेद्भर्ता न च पुत्रो गुणालयः । एतयोर्वारणे कुर्वे कमुपायं सुनिश्चितम् ॥१०१॥
एवं चिन्तामुपेतायाः परमं व्याकुलात्मनः । तस्या वरोऽभवच्चित्ते गत्वा च त्वरितं ततः ॥१०२॥
प्रीत्या परमया दृष्ट्वा सावष्टम्भं नराधिपम् । जगादार्धासने स्थित्वा तेजसा पुरुणान्विता ॥१०३॥
सर्वेषां भूभृतां नाथ पत्नीनां च पुरस्त्वया । मनीषितं ददामीति यदुक्ताहं प्रसादिना ॥१०४॥
वरं सम्प्रति तं यच्छ मह्यं सत्यसमुज्ज्वला[3] । दानेन तेऽखिलं लोकं कीर्तिर्भ्रमति निर्मला ॥१०५॥
ततो दशरथोऽवोचद्[4] ब्रूहि त्वं दक्षिणा प्रिये । प्रार्थयस्व यदिष्टं ते यच्छाम्येष वराशये ॥१०६॥

समस्त अन्तःपुर एकत्रित हो परम शोकको प्राप्त हुआ ॥९३॥ स्त्रियोंने जो विनोद प्रारम्भ कर रक्खे थे उन्हें छोडकर आँसुओंसे नेत्र भर लिये तथा आभूषणोंका अत्यधिक शब्द करती हुई वे रुदन करने लगीं ॥९४॥

पिताको विरक्त देख भरत भी प्रतिबोधको प्राप्त हुआ। वह विचार करने लगा कि अहो ! यह स्नेहका बन्धन बड़ा कष्टकारी तथा दुःखसे छेदने योग्य है ॥९५॥ वह सोचने लगा कि सम्यग्ज्ञानको प्राप्त हुए पिताको इस अव्यापार अर्थात् नहीं करने योग्य चिन्तासे क्या प्रयोजन है ? जब ये दीक्षा ही लेना चाहते हैं तब इन्हें राज्यकी चिन्ता क्यों होनी चाहिए ? ॥९६॥ मुझे किसीसे पूछनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, मैं तो तीव्र दुःखसे भरे संसारके क्षयका कारण जो तपोवन है उसमें शीघ्र ही प्रवेश करता हूँ ॥९७॥ रोगोंके घरस्वरूप इस नश्वर शरीरसे भी मुझे क्या प्रयोजन है ? फिर भाई-बन्धु जो अपने अपने कर्मोंका फल भोग रहे हैं उनसे क्या प्रयोजन हो सकता है ? ॥९८॥ मोहसे अन्धा हुआ यह प्राणी अकेला ही जन्मरूपी वृक्षोंसे व्याप्त इस दुःखदायी अटवीमें भ्रमण करता रहता है ॥९९॥

तदनन्तर कलाओंके कलापको जाननेवाली केकयी चेष्टाओंसे भरतका अभिप्राय जानकर अत्यधिक शोक करने लगी ॥१००॥ वह सोचने लगी कि भर्ता और गुणी पुत्र दोनों ही मेरे नहीं हो रहे हैं अर्थात् दोनों ही दीक्षा धारण करनेके लिए उद्यत हैं। इन दोनोंको रोकनेके लिए मैं किस निश्चित उपायका अवलम्बन करूँ ? ॥१०१॥ इस प्रकार चिन्ताको प्राप्त तथा अत्यन्त व्याकुल हृदयको धारण करनेवाली केकयाके मनमें शीघ्र ही स्वीकृत वर माँगनेकी बात याद आ गई ॥१०२॥ वह अपने विचारोंमें दृढ़ राजा दशरथके पास बड़ी प्रसन्नतासे गई और बहुत भारी तेजके साथ अर्द्धासनपर बैठकर बोली कि हे नाथ ! आपने उस समय प्रसन्न होकर समस्त राजाओं और पत्नियोंके सामने कहा था कि 'जो तू चाहेगी दूँगा'। सो हे नाथ ! इस समय वह वर मुझे दीजिए। सत्यधर्मके कारण उज्ज्वल तथा निर्मल जो आपकी कीर्ति है, वह दानके प्रभावसे समस्त संसारमें फैल रही है ॥१०३-१०५॥ तदनन्तर राजा दशरथने कहा कि हे प्रिये ! तू अपना अभिप्राय बता। हे उत्कृष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाली प्रिये ! जो तुझे इष्ट हो सो

१. तावस्य म० । २. रेकक्या वाय म० । ३. कीर्तिसमुज्ज्वला म० । ४. रक्तस्वादीक्षणा ज०, ख०, ब० ।

इत्युक्ते मुञ्चती बाष्पमवोचज्ज्ञातनिश्चया । कथं नाथ त्वया चेतः[1] कृतं निष्ठुरमीदृशम् ॥१०७॥
वद किं कृतमस्माभिर्येनासि त्यक्तुमुद्यतः । ननु जीवितमायत्तमस्माकं त्वयि पार्थिव ॥१०८॥
अत्यन्तं दुर्धरोद्दिष्टा प्रव्रज्या जिनसत्तमैः । कथमाश्रयितुं बुद्धिस्त्वामद्य भवता कृता ॥१०९॥
देवेन्द्रसदृशैर्भोगैरिदं ते लालितं वपुः । कथं वक्ष्यति[2] जीवेश श्रामण्यं विविधं परम् ॥११०॥
एवमुक्तो जगादासौ कान्ते सत्त्वस्य को भरः । वाञ्छितं वद कर्तव्यं स्वयं यास्यामि साम्प्रतम् ॥१११॥
इत्युक्ता लिखती[3] क्षोणीं प्रदेशिन्या नतानना । जगाद नाथ पुत्राय मम राज्यं प्रदीयताम् ॥११२॥
ततो दशरथोऽवोचत्प्रिये कास्मिन्नपत्रपा । न्यासस्त्वया मयि न्यस्तः साम्प्रतं गृह्यतामसौ ॥११३॥
एवमस्तु शुचं मुञ्च निऋणोऽहं त्वया कृतः । किं वा कदाचिदुक्तं ते मया जनितमन्यथा ॥११४॥
पद्मं लक्षणसंयुक्तमाहूय च कृताननतिम् । ऊचे विनयसम्पन्नं किञ्चिद्विगतमानसः ॥११५॥
वत्स पूर्वं रणे घोरे कलापारगयानया । कृतं केकयया साधु सारथ्यं मम दक्षया ॥११६॥
तदा तुष्टेन पत्नीनां भूभृतां च पुरो मया । मनीषितं प्रतिज्ञातं नीतं न्यासत्वमेतया ॥११७॥
देहि पुत्रस्य मे राज्यमिति तं याचतेऽधुना । किमप्याकूतमापन्ना निरपेक्षा मनस्विनी ॥११८॥
प्रतिज्ञाय तदेदानीं ददाम्यस्यै न चेन्मतम् । प्रव्रज्यां भरतः कुर्यात् संसारालम्बनोज्झितः ॥११९॥
इयं च पुत्रशोकेन कुर्यात् प्राणविवर्जनम् । भ्रमेच्च मम लोकेस्मिन्नकीर्तिर्वितथोद्भवा ॥१२०॥

माँग अभी देता हूँ ॥१०६॥ राजाके इस प्रकार कहनेपर जिसने उसका निश्चय जान लिया था ऐसी केकयी आँसू डालती हुई बोली कि हे नाथ! आपने ऐसा कठोर चित्त किस कारण किया है? बताइए, हमलोगोंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है कि जिससे आप हमलोगोंको छोड़नेके लिए उद्यत हुए है। हे राजन्! आप तो यह जानते ही है कि हमारा जीवन आपके आधीन है ॥१०७-१०८॥ जिनेन्द्रभगवान्‌के द्वारा कही हुई दीक्षा अत्यन्त कठिन है उसे धारण करनेकी आज आपने बुद्धि क्यो की? ॥१०९॥ हे प्राणवल्लभ! आपका यह शरीर इन्द्रके समान भोगोंसे पालित हुआ है सो अत्यन्त कठिन नाना प्रकारका मुनिपना कैसे धारण करेगा? ॥११०॥

केकयीके इस प्रकार कहनेपर राजा दशरथने कहा कि प्रिये! समर्थके लिए क्या भार है? तू तो केवल अपना मनोरथ बता। जो मुझे करना है उसे मैं अब अवश्य ही प्राप्त होऊँगा ॥१११॥ पतिके इस प्रकार कहनेपर प्रदेशिनीनामा अङ्गुलिसे पृथिवीको खोदती हुई केकयीने मुख नीचा कर कहा कि हे नाथ! मेरे पुत्रके लिए राज्य प्रदान कीजिए ॥११२॥ तब दशरथने कहा कि हे प्रिये! इसमे लज्जाकी क्या बात है? तुमने अपनी धरोहर मेरे पास रख छोड़ी थी सो इस समय जैसा तुम चाहती हो वैसा ही हो। शोक छोड़ो, आज तुमने मुझे ऋण मुक्त कर दिया। क्या कभी मैंने तुम्हारा कहा अन्यथा किया है? ॥११३-११४॥ उसी समय उन्होंने उत्तम लक्षणोंसे युक्त नमस्कार करते हुए विनयी रामको बुलाकर कुछ खिन्न चित्तसे कहा ॥११५॥ कि हे वत्स! कलाकी पारगामिनी इस चतुर केकयीने पहले भयंकर युद्धमें अच्छी तरह मेरे सारथिका काम किया था ॥११६॥ उस समय संतुष्ट होकर मैंने पत्नियों तथा राजाओंके सामने प्रतिज्ञा की थी 'जो यह चाहे सो दूँ'। परन्तु उस समय इसने वह वर मेरे पास न्यासरूपमें रख छोड़ा था ॥११७॥ अब किसीकी अपेक्षा नहीं रखनेवाली यह तेजस्विनी किसी खास अभिप्रायसे उस वरको इस प्रकार माँग रही है कि 'मेरे पुत्रके लिए राज्य दीजिये' ॥११८॥ उस समय प्रतिज्ञा कर इस समय यदि इसके लिए इसकी इच्छानुरूप वर नहीं देता हूँ तो संसारके आलम्बनसे उन्मुक्त होकर भरत दीक्षा ले लेगा ॥११९॥ और यह पुत्रके शोकसे प्राण छोड़ देगी तथा असत्य व्यवहारके कारण उत्पन्न हुई मेरी अपकीर्ति इस संसारमें सर्वत्र

१. मायात म० । २. चक्ष्यति म० (?) । ३. लिखित म० ।

मर्यादा न च नामेय यद्विहायाग्रज क्षमम् । राज्यलक्ष्मीवधूसङ्ग कनीयान् प्राप्यते सुत ॥१२१॥
भरतस्याखिले राज्ये दत्ते स त्व सलक्ष्मण । क्व गच्छेत्परम तेजो दधान क्षत्रगोचरम् ॥१२२॥
तदह वत्स नो वेद्मि कि करोमीति [1]पण्डित । अत्यतदु खवेगोरुचिन्तावार्तान्तरस्थित. ॥१२३॥
तत पद्मो जगादैव बिभ्रद्विनयमुत्तमम् । [2]सद्भावप्रीतिचेतस्क पादन्यस्तनिरीक्षण ॥१२४॥
तात रक्षात्मन सत्य त्यजास्मत्परिचिन्तनम् । शक्रस्यापि श्रिया कि मे त्वय्यकीर्तिमुपागते ॥१२५॥
जातेन ननु पुत्रेण तत्कर्तव्य गृहैषिणा । येन नो पितरौ शोक कनिष्ठमपि गच्छत ॥१२६॥
पुनाति त्रायते चाय पितर येन शोकत । एतत्पुत्रस्य पुत्रत्व प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१२७॥
सभानुरञ्जनी यावत्कथेय वर्तते तयो. । तावद्भव निहन्मीति[3] कठोरीकृतमानस. ॥१२८॥
सौधादवतरन्वेगाल्लोकहाहाकारनादित. । निरुद्धो भरत पित्रा स्नेहविक्लवचेतसा ॥१२९॥
उपविश्याङ्कमारोप्य परिष्वज्य सचुम्बितम् । इति चाभिदधे भूमौ [4]तिष्ठासुर्वशग पितु ॥१३०॥
राज्य पालय वत्स त्वमह यामि तपोवनम् । स जगौ न भजे राज्य प्राव्रज्य तु करोम्यहम् ॥१३१॥
भज तावत्सुख पुत्र सार मनुजजन्मन । नवेन वयसा कान्त वृद्ध. सम्प्रव्रजिष्यसि ॥१३२॥
इत्युक्तेऽभिदधे तात किं मोहयसि मा वृथा । मृत्यु प्रतीक्षते नैव बाल तरुणमेव वा ॥१३३॥
गृहाश्रमे महावत्स श्रूयते धर्मसञ्चय । अशक्य कुनरै. कर्तुं कुरुते राज्यसगत ॥१३४॥

फैल जावेगी ॥१२०॥ साथ ही यह मर्यादा भी नहीं है कि समर्थ बड़े पुत्रको छोड़कर छोटे पुत्रको राज्य-लक्ष्मीरूपी स्त्रीका समागम प्राप्त कराया जाय ॥१२१॥ जब भरतके लिए समस्त राज्य दे दिया जायगा तब क्षत्रिय-सम्बन्धी परम तेजको धारण करनेवाले तुम लक्ष्मणके साथ कहाँ जाओगे ? यह मैं नही जानता हूँ । तुम पण्डित-निपुण पुरुष हो । अत बताओ कि इस दु.खपूर्ण बहुत भारी चिन्ताकी बातके मध्यमे स्थित रहनेवाला मै क्या करूँ ? ॥१२२-१२३॥

तदनन्तर उत्तम अभिप्रायके कारण जिनका चित्त अतिशय प्रसन्न था और जो अपनी दृष्टि पैरों पर लगाये हुए थे ऐसे रामने उत्तम विनयको धारण करते हुए इस प्रकार कहा कि हे पिता जी ! आप अपने सत्य-व्रतकी रक्षा कीजिए और मेरी चिन्ता छोड़िए । यदि आप अपकीर्तिको प्राप्त होते है तो मुझे इन्द्रकी लक्ष्मीसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥१२४-१२५॥ निश्चयसे उत्पन्न हुए तथा घरकी इच्छा रखनेवाले पुत्रको वही कार्य करना चाहिए कि जिससे माता-पिता किञ्चित् भी शोकको प्राप्त न हो ॥१२६॥ जो पिताको पवित्र करे अथवा शोकसे उसकी रक्षा करे यही पुत्रका पुत्रपना है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥१२७॥

इधर जब तक पिता-पुत्रके बीच सभाको अनुरक्त करनेवाली यह कथा चल रही थी तब तक 'मै ससारको नष्ट करूँ' ऐसा दृढ़ निश्चयकर भरत महलसे नीचे उतर पडा । यह देख लोग हाहाकार करने लगे । पिताने स्नेहसे दु.खी चित्त होकर उसे रोका । वह पिताका आज्ञाकारी था अतः रुककर सामने पृथिवीपर खड़ा होना चाहता था; परन्तु पिताने उसे गोदमे बैठाकर उसका आलिङ्गन किया, चुम्बन किया और इस प्रकार कहा कि 'हे पुत्र ! तू राज्यका पालन कर । मैं तपोवनके लिए जा रहा हूँ' । इसके उत्तरमे भरतने कहा कि मै राज्यकी सेवा नही करूँगा, मै तो दीक्षा धारण कर रहा हूँ ॥१२८-१३१॥ यह सुनकर पिताने कहा कि हे पुत्र ! अभी तू नवीन वयसे सुन्दर है अतः मनुष्य-जन्मका सारभूत जो सुख है उसकी उपासना कर । पीछे वृद्ध होनेपर दीक्षा धारण करना ॥१३२॥ पिताके इस प्रकार कहने पर भरतने कहा कि हे पिता जी ! मुझे व्यर्थ ही क्यो मोहित कर रहे हो । मृत्यु बालक अथवा तरुणकी प्रतीक्षा नहीं करती ॥१३३॥ इसके उत्तरमे पिताने कहा कि हे पुत्र ! गृहस्थाश्रममें भी तो धर्मका संचय सुना

१. पीडित म० । २ सद्भावः प्रीति -ब० । ३. भवति हन्मीति म० (?) । ४. स्थातुमिच्छुः ।

इत्युक्तेऽभिदधे तात हृषीकवशवर्तिनः । कामक्रोधादिपूर्णस्य का मुक्तिर्गृहसेविनः ॥१३५॥
मुनीनां वत्स केषाञ्चिद्भवेनैकेन जायते । नैव मुक्तिस्ततो धर्मं कुरु सद्मन्यवस्थितः ॥१३६॥
इत्युक्तोऽभिदधे तात यद्यप्येव तथापि किम् । गृहधर्मेण तस्मिन् हि मुक्त्यभावः सुनिश्चितः ॥१३७॥
अपि चानुक्रमान्मुक्तिर्न ममान्यस्य सोचिता । गरुडः किं पतङ्गानां वेगेन सदृशो भवेत् ॥१३८॥
कामार्चिषा परं दाहं व्रजन्तः कुत्सिता नराः[1] । जिह्वाधमाङ्गकार्याणि कुर्वते न च निर्वृतिः ॥१३९॥
निक्षिप्यते हि कामाग्नौ भोगसर्पिर्यथा[2] यथा । नितरां वृद्धिमायाति तापकृत्स तथा तथा ॥१४०॥
भुक्त्वा भोगान् दुरुत्पादान् दुरक्षान् क्षणभङ्गिनः । नियतं दुर्गतिं याति पापात् परमदुःखदम् ॥१४१॥
अनुमन्यस्व मां तात नितान्तं जन्मभीरुकम् । करोमि विधिनारण्ये तपोनिर्वृतिकारणम् ॥१४२॥
अथ गेहेऽपि लभ्येत श्रेयो जनक नैर्वृतम्[3] । त्वमेव कुरुषे कस्मादस्य त्यागं महामते ॥१४३॥
तार्यते दुःखतो यस्मात्तपश्चाभ्यनुमोदते । एतत्तातस्य तातत्वं प्रवदन्ति विचक्षणाः ॥१४४॥
जीवितं वनितामिष्टं पितरं मातरं धनम् । भ्रातरं च परित्यज्य याति जीवोऽयमेककः ॥१४५॥
सुचिरं देवभोगेऽपि यो न तृप्तो हताशकः । स कथं तृप्तिमागच्छेन्मनुष्यभवभोगकैः ॥१४६॥
पिता तद्वचनं श्रुत्वा हृष्टरोमा प्रमोदतः । जगाद वत्स धन्योऽसि विबुद्धो भव्यकेसरी ॥१४७॥

जाता है। यद्यपि क्षुद्र मनुष्य इसे नहीं कर सकते हैं पर जो उत्तम पुरुष हैं वे तो राज्य पाकर भी करते ही हैं ॥१३४॥ पिताके इस प्रकार कहने पर भरतने कहा कि हे पिता जी! जो इन्द्रियोंके वशीभूत हैं तथा काम क्रोधादिसे परिपूर्ण हैं ऐसे गृहसेवी मनुष्यकी मुक्ति कैसे हो सकती है? ॥१३५॥ इसके उत्तरमें पिताने कहा कि हे वत्स! एक भवमें मुक्ति किन्हीं विरले ही मुनियोंको प्राप्त होती है। अधिकांश मुनियोंको मुक्ति नहीं मिलती। इसलिए घरमें रहकर ही धर्म धारण करो ॥१३६॥ पिताके इस प्रकार कहनेपर भरतने कहा कि हे पिता जी! यद्यपि ऐसा है तथापि गृहस्थाश्रमसे क्या प्रयोजन है? क्योंकि उससे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती यह बिलकुल निश्चित है ॥१३७॥ और दूसरी बात यह है कि मेरी मुक्ति अनुक्रमसे नहीं होगी। मैं तो इसी भवसे प्राप्त करूँगा। अनुक्रमसे होनेवाली मुक्ति दूसरे हीके योग्य है। क्या गरुड़ वेगसे अन्य पक्षियोंके समान होता है? ॥१३८॥ क्षुद्र मनुष्य कामरूपी ज्वालासे परम दाहको प्राप्त होते हुए जिह्वा और स्पर्शन इन्द्रिय-सम्बन्धी कार्य करते हैं पर उनसे उन्हें सन्तोष प्राप्त नहीं होता ॥१३९॥ कामरूपी अग्निमें ज्यों-ज्यों भोगरूपी घी डाला जाता है त्यों-त्यों वह अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त होती है और सन्तापको उत्पन्न करती है ॥१४०॥ प्रथम तो ये भोग बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होते हैं फिर इनकी रक्षा करना कठिन है। ये देखते-देखते क्षण भरमें नष्ट हो जाते हैं और इनको भोगनेवाला व्यक्ति पापके कारण नियमसे परम दुःख देनेवाली दुर्गतिको प्राप्त होता है ॥१४१॥ हे पिता जी! मैं संसारसे अत्यन्त भयभीत हो चुका हूँ इसलिए मुझे अनुमति दीजिए। जिससे मैं वनमें जाकर विधिपूर्वक मोक्षका कारण जो तप है उसे कर सकूँ ॥१४२॥ हे पिता जी! यदि मोक्ष-सम्बन्धी सुख घरमें भी मिल सकता है तो फिर आप ही इसका त्याग क्यों कर रहे हैं? आप तो महा बुद्धिमान् हैं ॥१४३॥ जो पुत्रको दुःखसे तारे और तपकी अनुमोदना करे यही तातका तातपना है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥१४४॥ यह जीव आयु, स्त्री, मित्रादि इष्टजन, पिता, माता, धन और भाई आदिको छोड़कर अकेला ही जाता है ॥१४५॥ जो अभागा चिरकाल तक देवोंके भोग भोगने पर भी सन्तुष्ट नहीं हो सका वह मनुष्य भवके तुच्छ भोगोंसे किस प्रकार सन्तोष प्राप्त करेगा? ॥१४६॥

पिता दशरथ भरतके उक्त वचन सुनकर गद्गद हो गये। हर्षसे उनके शरीरमें रोमाञ्च

१. वराः म० । २. भोगरूपं घृतम् । ३. निर्वाणसम्बन्धि ।

तथापि धीर नो भङ्गः कदाचित्प्रणयस्य मे । त्वया कृतो विनीतानां भवान् हि शिरसि स्थितः ॥१४८॥
शृणु सारथ्यतुष्टेन मयाजौ[1] जीवसंशये । प्रतिज्ञातं जनन्यास्ते वाञ्छितं नृपसाक्षिकम् ॥१४९॥
ऋणतां तच्चिरं नीतमद्याहं [2]याचितोऽनया । राज्यं प्रयच्छ पुत्रस्य ममेति बहुमानतः ॥१५०॥
स त्वं निष्कण्टकं तात राज्यं शक्रोपमं कुरु । असत्यसंधा[3]कीर्तिर्मे माभ्रमीन्निखिलं जगत् ॥१५१॥
इयं च तव शोकेन परमेणाभिलापिता । माता म्रियेत सौख्येन सततं लालिताङ्गिका ॥१५२॥
न करोति यतः पातं पित्रोः शोकमहोदधौ । अपत्यत्वमपत्यस्य तद्वदन्ति सुमेधसः ॥१५३॥
ततः पद्मोऽपि तत्पाणौ गृहीत्वैवमभाषत । प्रेमनिर्भरया पश्यन् दृष्ट्या मधुरनिस्वनः ॥१५४॥
तातेन भ्रातरुक्तं यत्कोऽन्यस्तद्वक्तुमर्हति क्षमः । नहि सागररत्नानामुपपत्तिः सरसो भवेत् ॥१५५॥
वयस्तपोऽधिकारे ते जायतेऽद्यापि नोचितम् । कुरु राज्यं पितुः कीर्तिरुद्यातु शशिनिर्मला ॥१५६॥
इयं च शोकतप्ताङ्गा माता यद्याति पञ्चताम् । न तद्युक्तं महाभो[4]गे नन्दने त्वादृशे सति ॥१५७॥
पितुः पालयितुं सत्यं त्यजामोऽपि वयं तनुम् । कथं त्वं तु कृतः प्राज्ञः श्रियं न प्रतिपद्यसे ॥१५८॥
नद्या गिरावरण्ये वा तत्र वासं करोम्यहम् । तत्र कश्चिन्न जानाति कुरु राज्यं यथेप्सितम् ॥१५९॥
[5]भागं सर्वं परित्यज्य पन्थानमपि संश्रितः । न करोमि पृथिव्यां ते काञ्चित्पीडां गुणालय ॥१६०॥
माश्वसीर्दीर्घमुष्णं च मुञ्च तावज्जवाद्भयम् । कुरु वाक्यं पितुः क्षोणीं रक्ष न्यायपरायण ॥१६१॥

निकल आये। वे बोले कि हे वत्स! तू धन्य है, सचमुच ही तू प्रतिबोधको प्राप्त हुआ है और तू उत्तम भव्य है॥१४७॥ फिर भी हे धीर! तूने कभी भी मेरे स्नेहका भंग नहीं किया। तू विनयी मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ है॥१४८॥ सुन, एकबार युद्धमें मेरे प्राणोंका संशय उपस्थित हुआ था। उस समय तेरी माताने सारथिका कार्य कर मेरी रक्षा की थी। उससे सन्तुष्ट होकर मैंने अनेक राजाओंके समक्ष प्रतिज्ञा की थी कि 'यह जो कुछ चाहेगी वह दूँगा'॥१४९॥ मेरे ऊपर इसका यह बहुत पुराना ऋण था सो इसने आज मुझसे माँगा है। इसने बड़े सम्मानके साथ कहा है कि मेरे पुत्रके लिए राज्य दीजिए॥१५०॥ इसलिए हे पुत्र! तू इन्द्रके समान यह निष्कण्टक राज्य कर जिससे असत्य प्रतिज्ञाके कारण मेरी अकीर्ति समस्त संसारमें भ्रमण नहीं करे॥१५१॥ और जिसका शरीर सुखसे निरन्तर पालित हुआ है ऐसी यह तेरी माता इस महाशोकसे दुःखी होकर प्राण छोड़ देगी॥१५२॥ अपत्य अर्थात् पुत्रका अपत्यपना यही है कि जो माता-पिताको शोकरूपी महासागरमें नहीं गिरने देता है ऐसा विद्वज्जन कहते है॥१५३॥

तदनन्तर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए रामने भी उसका हाथ पकड़कर मधुर शब्दोंमें इस प्रकार कहा कि हे भाई! पिताजीने जो कहा है वह दूसरा कौन कह सकता है? सो ठीक ही है क्योंकि समुद्रके रत्नोंकी उत्पत्ति सरोवरसे नहीं हो सकती॥१५४-१५५॥ अभी तेरी अवस्था तप करनेके योग्य नहीं है। इसलिए राज्य कर जिससे पिताकी चन्द्रमाके समान निर्मल कीर्ति फैले॥१५६॥ जिसका शरीर शोकसे सन्तप्त हो रहा है ऐसी यह तेरी माता तेरे समान भाग्यशाली पुत्रके रहते हुए यदि मरणको प्राप्त होती है तो यह ठीक नहीं होगा॥१५७॥ पिताके सत्यकी रक्षा करनेके लिए हम शरीरको भी छोड़ सकते है। फिर तू बुद्धिमान् होकर भी लक्ष्मीको क्यों नहीं प्राप्त हो रहा है?॥१५८॥ मैं किसी नदीके किनारे पर्वत, अथवा वनमें वहाँ निवास करूँगा जहाँ कोई जान नहीं सकेगा इसलिए तू इच्छानुसार राज्य कर॥१५९॥ हे गुणोंके आलय! मैं अपना सब भाग छोड़ मार्गका ही आश्रय ले रहा हूँ। मैं पृथ्वी पर तुझे कुछ भी पीड़ा नहीं पहुँचाऊँगा॥१६०॥ इसलिए लम्बी और गरम सांस मत ले, संसारका भय छोड़, पिताकी बात

१. युद्धे, मयासौ म०। २. प्रापितोऽनया म०। ३. असत्यसधान- म०। ४. महाभोगे ख०। ५. भोगं म०।

इक्ष्वाकूणा कुल श्रीमद्भूषयामलविभ्रमम् । अत्यन्तविपुल भ्रात. शशी ग्रहकुल यथा ॥१६२॥
भ्राजते त्रायमान. सन् वाक्य तत्पितृकस्य यत् । लब्धवर्णैरिद भ्रातुर्भ्रातृत्व परिकीर्तितम् ॥१६३॥
इत्युक्त्वा भावत पादो शिरसा भूतलस्पृशा । पितु प्रणम्य तत्पार्श्वान्निर्गतो लक्ष्मणान्वित ॥१६४॥
अत्रान्तरे नृपो मूर्छां सम्प्राप्तोऽपि न केनचित् । ज्ञात स्तम्भसमायुक्तवपु पुस्तसमाकृति ॥१६५॥
स तूर्णं धनुरादाय गत्वा नत्वा च मातरम् । आपृच्छ्य ता च गच्छामि तावदन्यमहीमिति ॥१६६॥
सखीत्व मूर्छया तस्या दु खज्ञाननिवारणात् । क्षण कृत परिप्राप्तसज्ञा चास्राकुलेक्षणा ॥१६७॥
ऊचेऽपराजिता[1] हा त्व वत्स क्व प्रस्थितोऽसि माम् । कस्मात्त्यजसि सच्चेष्ट क्षिप्त्वा शोकमहोदधौ ॥१६८॥
मनोरथशतै पुत्र त्व प्राप्तो दुर्लभो मया । प्रारोह इव शाखाया मातुरालम्बन सुत ॥१६९॥
परिदेवनमेव ता कुर्वन्ती हृदयङ्गमम् । जगाद प्रणत पद्मो मातृभक्तिपरायण ॥१७०॥
अम्ब मा गाद् विषाद त्व दक्षिणस्यामह दिशि । निरूप्य सश्रय योग्य नेष्यामि त्वा विसशयम् ॥१७१॥
तातेन पृथिवी दत्ता जननीवरदानत. । भरतायेति ते [2]कर्णजाह नूनमुपागतम् ॥१७२॥
अन्ते तस्या महारण्ये विन्ध्याद्रौ मलयेऽथवा । अन्यस्मिन् चार्णवस्यान्ते पश्य मात. कृत पदम् ॥१७३॥
मयि स्थिते समीपेऽस्मिन् लोके भास्करसमते । आज्ञैश्वर्यमयी कान्तिर्भरतेन्दोर्न जायते ॥१७४॥
तत प्ररुदती माता जगादात्यन्तदु खिता । पुत्र विनतमाश्लिष्य स्नेहकातरलोचना ॥१७५॥

मान और न्यायमे तत्पर रहकर पृथ्वीकी रक्षा कर ॥१६१॥ हे भाई ! जिस प्रकार चन्द्रमा ग्रहोंके समूहको अलकृत करता है उसी प्रकार तू इक्ष्वाकुओंके इस लक्ष्मीसम्पन्न, निर्मल एवं अत्यन्त विशाल कुलको अलकृत कर ॥१६२॥ जो पिताके वचनकी रक्षा करता हुआ देदीप्यमान होता है वही भाईका भाईपन है ऐसा विद्वानोंने कहा है ॥१६३॥ इतना कहकर राम पृथ्वीतलका स्पर्श करनेवाले शिरसे भावपूर्वक पिताके चरणोमे प्रणाम कर लक्ष्मणके साथ उनके पाससे चले गये ॥१६४॥ इसी बीचमे यद्यपि राजा दशरथ मूर्छाको प्राप्त हो गये तो भी किसीको इसका पता नही चला क्योकि वे जिस खम्भासे टिककर बैठे हुए थे मूर्च्छाके समय भी पुतलेके समान उसी खम्भासे टिके बैठे रहे ॥१६५॥ राम शीघ्र ही धनुष उठा कर माताके पास गये और प्रणाम कर पूछने लगे कि मै अन्य पृथ्वी अर्थात् देशान्तरको जाता हूँ ॥१६६॥ रामकी बात सुनकर माताको मूर्च्छा आ गई सो मानो दु.खका ज्ञान रोककर उसने सखीका कार्य किया । तदनन्तर क्षणभरके बाद जब मूर्च्छा दूर हुई तथा चैतन्य प्राप्त हुआ तब ऑखोमे ऑसू भरकर माता अपराजिता (कौसल्या) बोली कि हाय वत्स ! तू कहाँ जा रहा है ? हे उत्तम चेष्टाके धारक पुत्र ! तू मुझे शोकरूपी महासागरमे डालकर क्यो छोड़ रहा है ? ॥१६७–१६८॥ हे पुत्र ! तू बड़ा दुर्लभ है, सैकड़ो मनोरथोके बाद मैने तुझे पाया है । जिस प्रकार शाखाका आलम्बन प्रारोह अर्थात पाया होता है उसी प्रकार माताका आलम्बन पुत्र होता है ॥१६९॥ इस प्रकार हृदयमे चुभनेवाला विलाप करती हुई माताको प्रणाम कर मातृभक्तिमें तत्पर रहनेवाले रामने कहा कि माता ! तुम विषादको प्राप्त मत होओ । मै दक्षिण दिशामे योग्य स्थान देखकर तुम्हें ले जाऊँगा । इसमें कुछ भी संशय नही है ॥१७०–१७१॥ 'पिताने, केकयी माताको वरदान देनेके कारण पृथ्वी भरतके लिए दे दी है' यह समाचार निश्चित ही आपके कर्णमूल तक आ गया होगा ॥१७२॥ अब यह पृथिवी जहाँ समाप्त होती है उसके अन्तमे किसी महाअटवीमें, विन्ध्याचलमें, मलयपर्वतपर अथवा समुद्रके निकट किसी अन्य देशमे हे माता ! अपना स्थान बनाऊँगा ॥१७३॥ सूर्यके समान जब तक मैं इस देशके समीप ही रहूँगा तब तक भरतरूपी चन्द्रमाकी आज्ञा ऐश्वर्यसे सम्पन्न नही हो सकेगी ॥१७४॥

तदनन्तर जो अत्यन्त दुःखी थी और जिसके नेत्र स्नेहसे कातर हो उठे थे ऐसी माता

१. कौशल्या, रामजननी । २. कर्णयोर्मूलमिति कर्णजाहम् ।

तनयाद्यैव मे गन्तुमुचित भवता समम् । कथ त्वाहमपश्यन्ती प्राणान् धारयितु क्षमा ॥१७६॥
पिता नाथोऽथवा पुत्र कुलस्त्रीणा त्रयी गति । पितातिक्रान्तकालो मे नाथो दीक्षासमुत्सक ॥१७७॥
जीवितस्य त्वमेवैक साम्प्रत मेऽवलम्बनम् । त्वयापि रहिता साह वद गच्छामि का गतिम् ॥१७८॥
सोऽवोचदुपलैरम्ब क्षितिरत्यन्तकर्कशा । भवत्या विषमा पद्भ्या गतु सा शक्यते कथम् ॥१७९॥
तस्मादेकक एवाह विधाय सुखमाश्रयम् । यानेन केनचिन्नेष्ये भवन्ती त्यजन कुत ॥१८०॥
यथा स्पृशामि ते मात. पादावेष तथा ध्रुवम् । आगमिष्यामि नेतु [1]त्वा मुञ्च कार्यविचक्षणे ॥१८१॥
एवमुक्ते विमुक्त. सन् [2]परिसान्त्व्य सुभाषितै । पुनश्च पितर प्राप्तप्रबोध प्रणिपत्य स. ॥१८२॥
शेष मातृजन [3]नत्वा परिसान्त्व्य सुभाषितै. । अविषण्णमहाचेता सर्वन्यायविचक्षण ॥१८३॥
भ्रातृबन्धुपरिष्वङ्ग कृत्वा सम्भाषण तथा । [4]सीतायाः सदन प्राप्त· प्रेमनिर्भरमानस. ॥१८४॥
प्रिये त्व तिष्ठ चात्रैव गच्छाम्यहं पुरान्तरम् । ततो जगाद साध्वी सा यत्र त्व तत्र चाप्यहम् ॥१८५॥
मन्त्रिणो नृपतीन् सर्वान् परिवर्गञ्च सादरम् । आपृच्छच्छेकत्[5]वर्गेऽपि [6]भाषणाह्लापताकुल ॥१८६॥
प्रीत्या सवर्धित भूय कृतालिङ्गनमादृतम्[7] । मित्रवर्ग सवाष्पाक्ष पुनरुक्त न्यवर्तयत् ॥१८७॥
स्निग्धेन चक्षुषा पश्यन् प्रधानान्वाजिवारणान् । निरगच्छत्पितुर्गेहान्मन्दरस्थिरमानसः ॥१८८॥

रोती हुई, नम्रीभूत पुत्रका आलिङ्गनकर बोली कि हे पुत्र ! मेरा आज ही तेरे साथ चला जाना उचित है क्योंकि तुझे बिना देखे मै प्राण धारण करनेके लिए कैसे समर्थ हो सकूँगी ? ॥१७५-१७६॥ पिता, पति अथवा पुत्र ये तीन ही कुलवती स्त्रियोंके आधार है । इनमे मेरे पिता तो अपना समय पूरा कर चुके हैं और पति दीक्षा लेनेके लिए उत्सुक है इस प्रकार इस समय मेरे जीवनका आधार एक तू ही है सो यदि तू भी मुझे छोड़ रहा है तो बता मै किस दशाको प्राप्त होऊँ ॥१७७-१७८॥ यह सुन रामने कहा कि हे माता ! पृथ्वी पत्थरोंसे अत्यन्त कठोर है आप इस ऊँची-नीची पृथ्वीपर पैरोंसे किस प्रकार चल सकोगी ? ॥१७९॥ इसलिए मै अभी अकेला ही जाता हूँ फिर सुखकारी कोई स्थान ठीककर किसी यानके द्वारा आपको वहाँ ले जाऊँगा अत आपका छोड़ना कैसे हुआ ? ॥१८०॥ हे माता ! मै आपके चरणोंका स्पर्श कर कहता हूँ कि मैं आपको ले जानेके लिए अवश्य ही आऊँगा । हे कार्यके समझनेमे निपुण माता ! इस समय मुझे छोड़ दे ॥१८१॥ रामके ऐसा कहनेपर माताने उन्हें छोड़ दिया और अनेक हितकारी वचन कहकर उन्हें सान्त्वना दी । अब तक पिता दशरथ प्रबोधको प्राप्त हो चुके थे इसलिए रामने पुन. पास जाकर उन्हें प्रणाम किया ॥१८२॥ अपराजिताके सिवाय अन्य माताओंको नमस्कार कर अनेक मधुर वचनोंसे उन्हें सान्त्वना दी, भाई-बन्धुओंका आलिङ्गन कर उनके साथ मधुर संभाषण किया और तदनन्तर जिनका उदार हृदय विषादसे रहित था, तथा जो सर्व प्रकारके न्यायमे निपुण थे ऐसे राम हृदयको प्रेमसे भरकर सीताके महलसे पहुँचे ॥१८३-१८४॥ राम बोले—'कि हे प्रिये ! तुम यहीं पर रहो मै दूसरे नगरको जाता हूँ' । तदनन्तर उस पतिव्रताने एक ही उत्तर दिया कि 'जहाँ आप रहेंगे वहीं मै भी रहूँगी' ॥१८५॥

इसके पश्चात् रामने समस्त मन्त्रियोंसे, राजाओंसे तथा परिवारके अन्य लोगोंसे बड़े आदरके साथ पूछा । नगरमें जो बुद्धिमान् मनुष्य थे उनके साथ बड़ी तत्परतासे वार्तालाप किया ॥१८६॥ इस समय प्रीतिवश बहुतसे मित्र इकट्ठे हो गये थे जो बार-बार आलिङ्गन कर रहे थे, आदरसे भरे हुए थे तथा जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे । रामने अनेक बार कहकर उन्हें वापिस लौटाया ॥१८७॥ तदनन्तर जिनका मन मेरु पर्वतके समान स्थिर था ऐसे राम,

१. त्व म० । २. परिसान्त्वा म० । ३. गत्वा म०, ज्ञात्वा क०, ख० । ४. जानकीन्यस्तविस्तारिलोचनम्प्रश्रयान्वित. म०, ज०, क०, ख० एषु पुस्तकेषु इतोऽग्रे 'प्रिये त्व तिष्ठ' इत्यादिश्लोको नास्त्येव । ५. च्छेषवर्गेऽपि म० । ६. भीषणाल्लाप म० । ७. मारत म० ।

आद्धुढौकन् द्रुत [1]चारु [2]सामन्ता वाजिवारणम् । पद्मेन न गृहीतास्ते परमन्यायवेदिना ॥१८९॥
विदेशगमनोद्युक्त दृष्ट्वा त जानकी भृशम् । श्रीमद्शुकसवीता विकसत्पद्मलोचना ॥१९०॥
प्रणम्य श्वसुरं श्वश्रूरापृच्छ्य च सुहृज्जनम् । विनीतानुययौ नाथ पौलोमीव सुराधिपम् ॥१९१॥
दृष्ट्वा तमुद्यत गन्तु स्नेहनिर्भरमानसः । लक्ष्मणोऽचिन्तयत् क्रोध वहन्नयनलक्षकम्[3] ॥१९२॥
अन्यायमीदृश कर्तुं कथ तातेन वाञ्छितम् । स्वार्थसक्तनित्याश धिक् स्त्रैणमनपेक्षितम् ॥१९३॥
अहो महानुभावोऽय ज्यायान् पुरुषसत्तम । मुनेरपीदृश स्वान्त दुष्कर जातु जायते ॥१९४॥
किमद्यैव करोम्यन्या सृष्टिमुत्सृज्य दुर्जनान्[4] । भरतस्य बलादाहो करोमि विमुखा श्रियम् ॥१९५॥
विधातुरद्य[5] सामर्थ्यं भनज्मि चिरमूर्जितम् । निरुद्ध्य पादयोर्ज्येष्ठ करोमि श्रीसमुत्सुकम् ॥१९६॥
न युक्तमथवा चिन्त जातक्रोधानुगस्य मे । क्रोधः करोति मोहान्धमपि दीक्षामुपाश्रितम् ॥१९७॥
किमनेन विचारेण कृतेनानुचितेन मे । ज्येष्ठस्तातश्च जानाति साम्प्रतासाम्प्रत बहु ॥१९८॥
सितकीर्तिसमुत्पत्तिर्विधातव्या हि न पितु । तूष्णीमेवानुगच्छामि ज्यायान्स[ं]साधुकारिणम् ॥१९९॥
प्रशमय्य स्वय कोपमित्यादाय शरासनम् । [6]प्रणम्यापृच्छ्य चाशेष जन गुरुपुरस्सरम् ॥२००॥
महाविनयसम्पन्नो मार्गयोग्यकृताकृति । लक्ष्मीनिलयवक्षस्क पद्मस्यानुपद ययौ ॥२०१॥
पितरौ परिवर्गेण सहितौ तनयान्वितौ । वर्षेव कुर्वाणौ तौ धाराभिर्नयनाम्भसा ॥२०२॥

मुख्य-मुख्य घोड़ों तथा हाथियोंको स्नेह पूर्ण दृष्टिसे देखते हुए पिताके घरसे बाहर निकल पड़े ॥१८८॥ यद्यपि सामन्त लोग शीघ्र ही सुन्दर घोड़े और हाथी ले आये परन्तु परम न्यायके जाननेवाले रामने उन्हें ग्रहण नहीं किया ॥१८९॥ पतिको विदेश गमनके लिए उद्यत देख, जिसके शरीरपर सुन्दर वस्त्रका आवरण था जिसके नेत्र फूले हुए कमलके समान थे ऐसी सीता भी, सास श्वसुरको प्रणामकर तथा मित्र जनोंसे पूछकर, जिस प्रकार इन्द्राणी इन्द्रके पीछे चलती है उसी प्रकार रामके पीछे चलने लगी ॥१९०–१९१॥

तदनन्तर जिसका चित्त स्नेहसे भरा हुआ था ऐसे लक्ष्मणने जब रामको जाते हुए देखा तो नेत्रोंमें छलकते हुए क्रोधको धारण करता हुआ वह चिन्ता करने लगा कि अहो ! पिताजी ऐसा अन्याय क्यों करना चाहते हैं ? जिसमें निरन्तर स्वार्थ साधनकी ही आशा लगी रहती है तथा जिसमें दूसरेकी कुछ भी अपेक्षा नहीं की जाती ऐसे स्त्री स्वभावको धिक्कार हो ॥१९२–१९३॥ अहो ! बड़े भाई राम महानुभाव हैं तथा पुरुषोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ हैं । इनके समान दुर्लभ हृदय तो मुनिके भी जब कभी ही होता है ॥१९४॥ क्या दुर्जनोंको छोड़कर आज ही दूसरी सृष्टि रच डालूँ या बलपूर्वक लक्ष्मीको भरतसे विमुख कर दूँ ? ॥१९५॥ मैं आज विधाताकी बलवती सामर्थ्यको नष्ट करता हूँ और चरणोंमें पड़कर बड़े भाईको लक्ष्मीमें उत्सुक करता हूँ ॥१९६॥ अथवा क्रोधके वशीभूत हो मुझे ऐसा विचार करना उचित नहीं है क्योंकि क्रोध दीक्षा धारण करनेवाले मुनिको भी मोहसे अन्धा बना देता है ॥१९७॥ मुझे इस अनुचित विचार करनेसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि बड़े भाई राम तथा पिता ही 'यह कार्य उचित है अथवा अनुचित' यह अच्छी तरह जानते हैं ॥१९८॥ हमें पिताकी उज्ज्वल कीर्ति ही उत्पन्न करनी चाहिए अतः मैं चुपचाप उत्तम कार्य करनेवाले बड़े भाईके ही साथ जाता हूँ ॥१९९॥ इस प्रकार लक्ष्मण स्वयं ही क्रोध शान्तकर, धनुष लेकर तथा पिता आदि समस्त जनोंसे पूछकर भी रामके पीछे चलने लगा । उस समय लक्ष्मण महा विनयसे सम्पन्न था, मार्गके योग्य उसकी वेष भूषा थी, तथा उसका वक्षःस्थल लक्ष्मीका घर था ॥२००–२०१॥ उस समयका दृश्य बड़ा ही करुण था । सीताके साथ राम लक्ष्मण आगे बढ़े जाते थे और माता पिता परिवार तथा

१. चारून् म० । २. सामन्तान् म० । ३. नयनलक्षणम् म० । ४. दुर्जनात् म० । ५. मथ म० । ६. प्रशाम्य म० ।

परिसान्त्वनसूरिभ्या प्राप्ताभ्या निश्चय परम् । कृच्छ्रान्निवर्तितौ ताभ्या प्रणिपत्य पुन पुनः ॥२०३॥
निवर्त्यमानबन्धूना समूहेनान्विताविमौ । राजगेहाद्विनिष्क्रान्तौ देवाविव सुरालयात् ॥२०४॥
वर्तते किमिद मातः कस्येद [1]मतमीदृशम् । अभाग्येय पुरी कष्टमथवा सकला मही ॥२०५॥
यामोऽनेन सम दु.खमेताभ्या सह गम्यते । महाशक्ताविमौ कृच्छ्राद्धरणीधरगह्वरात् ॥२०६॥
पश्य शीता कथ याति [2]नाथेनैषानुमोदिता । अस्याः सुविहित सर्वं पतिभ्राता करिष्यति ॥२०७॥
अहो परमधन्येय जानकी रूपशालिनी । विनयाशुकसवीता भर्तार यानुगच्छति ॥२०८॥
अस्माकमपि नारीणामेषैव भवताद् गति । उदाहरणभूतेय भर्तृदैवतयोषिताम् ॥२०९॥
पश्य मातरमुज्झित्वा नेत्राम्बुप्लावितानानाम् । एष लक्ष्मीधरो गन्तुमुद्युक्तो ज्यायसा समम् ॥२१०॥
अहो प्रीतिरहो भक्तिरहो शक्तिरहो क्षमा । अहो विनयसम्भार श्रीमतोऽस्य विराजते ॥२११॥
भरतस्य किमाकूत कृत दशरथेन किम् । रामलक्ष्मणयोरेषा का मनीषा व्यवस्थिता ॥२१२॥
काल. कर्मेश्वरो दैव स्वभाव पुरुष क्रिया । नियतिर्वा करोत्येव [3]विचित्र क समीहितम् ॥२१३॥
वर्ततेऽनुचित बाढ क्व गता स्थानदेवता[4] । एवमादिस्तदा जज्ञे ध्वनिर्जनसमूहत. ॥२१४॥
कुमाराभ्यां सम गन्तुमुत्सुके सकले जने । पुरी शून्यगृहा जाता नष्टाशेषसमुत्सवा ॥२१५॥
पुष्पप्रकरसपूर्णा. समस्ता द्वारभूमय. । पिच्छलत्व समानीता शोकपूर्णजनाश्रुभि. ॥२१६॥

शेष दो पुत्रोंके साथ धारा-प्रवाह आँसुओसे मानो वर्षा कर रहे थे ॥२०२॥ परन्तु दोनो भाई दृढ़ निश्चयको प्राप्त थे और सान्त्वना देनेमे अत्यन्त निपुण थे इसलिए उन्होने बार-बार चरणोमे गिरकर माता-पिताको बड़ी कठिनाईसे वापिस किया ॥२०३॥ उन्होने भाई-बन्धुओको बहुत लौटाया फिर भी वे लौटे नहीं । अन्तमे जिस प्रकार स्वर्गसे देव बाहर निकलते है उसी प्रकार दोनो भाई राजमहलसे बाहर निकले ॥२०४॥ 'हे माता! यह क्या हो रहा है ? यह ऐसा किसका मत था ? अर्थात् किसके कहनेसे यह सब हुआ है ? यह नगरी बड़ी अभागिन है अथवा नगरी ही क्यो समस्त पृथिवी अभागिन है ॥२०५॥ अब हम इनके साथ ही चलेंगे, इनके साथ रहनेसे सब दु:ख दूर हो जायगा। ये दोनो ही दु:ख रूपी पर्वतकी गुहासे उद्धार करनेमे अत्यन्त समर्थ है ॥२०६॥ देखो, यह सीता कैसी जा रही है ? पतिने इसे साथ चलने की अनुमति दे दी है। देवर इसका सब काम ठीक कर देगा ॥२०७॥ अहो ! जो विनय रूपी वस्त्रसे आवृत होकर पतिके पीछे-पीछे जा रही है ऐसी यह रूपवती जानकी अत्यन्त धन्य है— बड़ी भाग्यवती है ॥२०८॥ हमारी स्त्रियोकी भी ऐसी ही गति हो। यह पतिव्रता स्त्रियोके लिए उदाहरण स्वरूप है ॥२०९॥ अहो ! देखो, जिसका मुख आँसुओसे भीग रहा है ऐसी माताको छोड़कर यह लक्ष्मण बड़े भाईके साथ जानेके लिए उद्यत हुआ है ॥२१०॥ अहो ! इस लक्ष्मण की प्रीति धन्य है, भक्ति धन्य है, शक्ति धन्य है, क्षमा धन्य है और विनयका समूह धन्य है ॥२११॥ भरतका क्या अभिप्राय था ? और राजा दशरथने यह क्या कर दिया ? राम लक्ष्मण के भी यह कौन-सी बुद्धि उत्पन्न हुई है ? ॥२१२॥ यह सब काल, कर्म, ईश्वर, दैव, स्वभाव, पुरुष, क्रिया अथवा नियति ही कर सकती है। ऐसी विचित्र चेष्टाको और दूसरा कौन कर सकता है ? ॥२१३॥ यह सब बड़ा अनुचित हो रहा है। इस स्थानके देवता कहाँ गये' ? उस समय लोगोंकी भीड़से इस प्रकारके शब्द निकल रहे थे ॥२१४॥

उस समय समस्त लोग रामलक्ष्मणके साथ जानेके लिए उत्सुक हो रहे थे इसलिए नगरीके समस्त घर सूने हो गये थे तथा नगरीका समस्त उत्सव नष्ट हो गया था ॥२१५॥ समस्त घरोंके दरवाजोंकी जो भूमियाँ पहले फूलोंके समूहसे व्याप्त रहती थीं वे उस समय शोकसे भरे

१. व्रत म० । २. नाथेनानुमोदिता म० (?) । ३. विचित्रकसमीहितम् म० । ४. देवताः म०, ख० ।

जनस्योत्सार्यमाणस्य वरूथिन्यो नरोत्तमैः । वीचयः सागरस्येव विक्षोभमन्ते महानिलैः ॥२१७॥
भक्तिभिः पूज्यमानोऽपि सम्भाषणसमुद्यत । दाक्षिण्यपरमः पद्मो मेने विघ्नं पदे पदे ॥२१८॥
असक्त इव त द्रष्टुमसमञ्जसमीदृशम् । मन्द मन्दांशुसङ्घातो रविरस्तमुपागमत् ॥२१९॥
रविणा दिवसस्यान्ते त्यक्ता सर्वमरीचय । [2]ज्येष्ठचक्रधरेणेव सम्पदो मुक्तिमिच्छता ॥२२०॥
दधाना परम रागमुचिताम्बरयोगिनी । अन्वियाय रवि सन्ध्या सीता दाशरथि यथा ॥२२१॥
ततो विशेषविज्ञानविध्वसनविधायिना । रामव्रज्योद्भवेनेव तमसा व्याप्तत जगत् ॥२२२॥
अनुप्रयातुकामस्य कर्तुं लोकस्य वञ्चनम् । ससीतौ तावरेशस्य[3] स्थान प्राप्तौ क्षपामुखे ॥२२३॥
भवान्तकस्य भवन नित्यालङ्कृतपूजितम् । चन्दनाम्भोऽनुलिप्तक्ष्म[4] त्रिद्वार तुङ्गतोरणम् ॥२२४॥
दर्पणादिविभूष तत्ससीतौ सप्रदक्षिणम् । प्रविष्टावनपेक्षौ तौ यथाविधि विशारदौ ॥२२५॥
तृतीये तु जनो द्वारे प्रतिहारेण रुध्यते । कर्मणा मोहनीयेन शिवमिच्छन् कुदृष्टिवत् ॥२२६॥
स्थापयित्वा धनुर्वर्म पुण्डरीकनिभेक्षणौ । जिनेन्द्रवदन दृष्ट्वा तौ वरां धृतिमागतौ ॥२२७॥
मणिपीठस्थित सौम्य प्रलम्बितभुजद्वयम् । श्रीवत्सभासुरोरस्क व्यक्तनिश्शेषलक्षणम् ॥२२८॥

मनुष्योंके आँसुओंसे पङ्किल अर्थात् कर्दम युक्त हो गई थीं ॥२१६॥ जिस प्रकार महापवनसे समुद्रकी लहरें क्षोभको प्राप्त होती हैं उसी प्रकार उत्तम मनुष्योंके द्वारा दूर हटाये गये लोगोंकी पङ्क्तियाँ क्षोभको प्राप्त हो रही थीं ॥२१७॥ लोग पद-पदपर भक्तिवश रामकी पूजा करते थे और भक्तिवश उनके साथ वार्तालाप करनेके लिए उद्यत होते थे सो अत्यन्त सरल प्रकृतिके धारक राम उसे विघ्न मानते थे ॥२१८॥

तदनन्तर धीरे-धीरे जिसकी किरणें मन्द पड़ गई थीं ऐसा सूर्य अस्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो वह इस अनुचित कार्यको देखनेके लिए असमर्थ होनेसे ही अस्त हो गया था ॥२१९॥ जिस प्रकार मुक्तिकी इच्छा करनेवाले प्रथम चक्रवर्ती भरतने सब सम्पत्तियाँ छोड़ दी थीं उसी प्रकार दिनके अन्तमें सूर्यने सब किरणें छोड दीं ॥२२०॥ जिस प्रकार परम राग अर्थात् उत्कृष्ट प्रेमको धारण करनेवाली तथा उचित-अम्बर अर्थात् योग्य वस्त्रसे सुशोभित सीता रामके पीछे जा रही थी उसी प्रकार परम राग अर्थात् उत्कृष्ट लालिमा और उचित-अम्बर अर्थात् अभ्यस्त आकाशके समागमको प्राप्त सन्ध्या सूर्यके पीछे जा रही थी ॥२२१॥ तदनन्तर वस्तुओंके विशेष ज्ञानको नष्ट करनेवाले अन्धकारसे समस्त जगत् व्याप्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो रामके जानेसे उत्पन्न शोकसे ही व्याप्त हो गया हो ॥२२२॥ तत्पश्चात् पीछे चलनेके लिए उत्सुक मनुष्योंको धोखा देनेके लिए सीता सहित वे दोनों कुमार सायकालके समय अरहनाथ भगवान्के मन्दिरमें पहुँचे ॥२२३॥ संसारको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्का वह मन्दिर सदा अलंकृत रहता था, लोग उसकी निरन्तर पूजा करते थे, चन्दनके जलसे वहाँकी भूमि लिप्त रहती थी, उसमें तीन दरवाजे थे, ऊँचा तोरण था और दर्पणादि मङ्गल द्रव्योंसे वह विभूषित रहता था। सो अतिशय बुद्धिमान् तथा अन्यकी अपेक्षासे रहित राम-लक्ष्मणने सीताके साथ प्रदक्षिणा देकर उस मन्दिरमें विधिपूर्वक प्रवेश किया ॥२२४-२२५॥ दो दरवाजे तक तो सब मनुष्य चले गये परन्तु तीसरे दरवाजे पर द्वारपालने उन्हें उस प्रकार रोक दिया जिस प्रकार की मोक्षकी ईच्छा करनेवाले मिथ्यादृष्टिको मोहनीय कर्म रोक देता है ॥२२६॥ कमलके समान नेत्रोंको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मण, अपने धनुष तथा कवच एक ओर रख भगवान्के दर्शन कर परम सन्तोषको प्राप्त हुए ॥२२७॥ तदनन्तर जो मणिमयी चौकीपर विराजमान थे, सौम्य थे, जिनकी दोनों भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं, जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्सके चिह्नसे

---

१. पङ्क्तयः। विरूपिण्यो म०। २. प्रथमचक्रवर्तिना भरतेन। ३. तौ + अरेशस्य = अरनाथस्य स्थानं मन्दिरम्। ४. चन्दनाम्भोजलिप्तक्ष्म

सम्पूर्णचन्द्रवदनं विबुद्धकमलेक्षणम् । अस्मर्यमाणनिर्माणबिम्बमष्टादशं जिनम् ॥२२९॥
प्रणम्य सर्वभावेन समभ्यर्च्य च सादरौ । स्थितौ तत्र विभावर्यां चिन्तयन्तौ सुहृज्जनम् ॥२३०॥
तत्र तावुषितौ ज्ञात्वा मातरः पुत्रवत्सलाः । एत्य बाष्पाकुलाः स्नेहात् परिष्वज्य पुनः पुनः ॥२३१॥
पुत्राभ्यां सह सम्मन्त्र्य दर्शने तृप्तिवर्जिताः । दोलारूढसमात्मानो[1] जग्मुर्दशरथं पुनः ॥२३२॥
सर्वासामेव शुद्धीनां मनःशुद्धिः प्रशस्यते । अन्यथालिङ्ग्यतेऽपत्यमन्यथालिङ्ग्यते पतिः ॥२३३॥
ततस्ता गुणलावण्यरूपवेषमहोदयाः । जग्मुर्मधुरवादिन्यः प्रियं मन्दरनिश्चलम् ॥२३४॥
कुलपोतं निमज्जन्तं प्रिय शोकमहार्णवे । सधारय ससौमित्रिं विनिवर्तय राघवम् ॥२३५॥
सोऽवोचन्न ममायत्तं जगद्वात्र विकारिकम् । प्रमाणं चेन्मदीयेच्छा सुखमेवास्तु जन्तुषु ॥२३६॥
जन्ममृत्युजराव्याधैर्मास्म कश्चिद्विबाध्यताम् । नानाकर्मस्थितौ त्वस्यां को नु शोचति कोविदः ॥२३७॥
पर्याप्तिर्नास्ति मृष्टानामिष्टानां दर्शनेषु वा । बान्धवानां सुखानां च जीवितस्य धनस्य च ॥२३८॥
असमाप्तेन्द्रियसुखं कदाचित्स्थितिसंक्षये । पक्षी वृक्षमिव त्यक्त्वा देहं जन्तुर्गमिष्यति ॥२३९॥
[2]पुत्रवत्यो [3]भवत्योऽत्र निवर्तयत सत्सुतौ । [4]उपभुङ्ध्वं सुविश्रब्धाः पुत्रभोगोदयद्युतिम् ॥२४०॥
त्यक्तराज्याधिकारोऽहं निवृत्तः पापचेष्टितात् । भवादुग्रं भयं प्राप्तः करोमि चरितं मुने ॥२४१॥

सुशोभित था, जिनके समस्त लक्षण स्पष्ट दिखाई देते थे, जिनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, जिनके नेत्र विकसित कमलके समान थे, और जिनके प्रतिबिम्बकी रचना भुलाई नहीं जा सकती थी। ऐसे अठारहवें अरनाथ जिनेन्द्रको सर्व भाव अर्थात् मन वचन कायसे प्रणाम कर तथा उनकी पूजा कर आदरसे भरे हुए राम-लक्ष्मण मित्रजनोंकी चिन्ता करते हुए रात्रिके समय उसी मन्दिरमें स्थित रहे ॥२२८-२३०॥ पुत्र वत्सल माताओंको जब पता चला कि राम-लक्ष्मण अर-जिनेन्द्रके मन्दिरमें ठहरे हैं तब वे तत्काल दौड़ी आईं। उस समय उनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे। उन्होंने बार-बार पुत्रोंका आलिङ्गन किया और बार-बार उनके साथ मन्त्रणा-सलाह की। उन्हें पुत्रोंको देखते-देखते तृप्ति ही नहीं होती थी और संकल्प-विकल्पके कारण उनकी आत्मा हिंडोले पर चढ़ी हुईके समान चञ्चल हो रही थी। अन्तमें वे पुनः राजा दशरथके पास चली गईं ॥२३१-२३२॥ आचार्य कहते हैं कि सब शुद्धियोंमें मनकी शुद्धि ही सबसे प्रशस्त है। स्त्री पुत्र और पति दोनोंका आलिङ्गन करती है परन्तु परिणाम जुदे-जुदे रहते है ॥२३३॥

तदनन्तर गुण लावण्यरूप वेष आदि महा अभ्युदयको धारण करनेवाली चारों मिष्टवादिनी रानियाँ मेरुके समान निश्चल पतिके पास गईं और बोलीं कि हे वल्लभ! शोकरूपी समुद्रमें डूबते हुए इस कुलरूपी जहाजको रोको और लक्ष्मण सहित रामको वापिस बुलाओ ॥२३४-२३५॥ इसके उत्तरमें राजा दशरथने कहा कि यह विकार रूप जगत् मेरे आधीन नहीं। मेरी इच्छानुसार यदि काम हो तो मैं तो चाहता हूँ कि समस्त प्राणियोंमें सदा सुख ही रहे ॥२३६॥ जन्म जरा और मरणरूपी व्याधोंके द्वारा किसीका घात नहीं हो परन्तु कर्मोंकी स्थिति नाना प्रकारकी है अतः कौन विवेकी शोक करे ॥२३७॥ बान्धवादिक इष्ट पदार्थोंके देखनेमें किसीको तृप्ति नहीं है सांसारिक सुख, धन और जीवनके विषयमें भी किसीको सन्तोष नहीं है ॥२३८॥ कदाचित् इन्द्रिय सुखकी पूर्णता न हो और आयु समाप्त हो जावे तो यह प्राणी जिस प्रकार पक्षी एक वृक्षको छोड़कर दूसरे वृक्षपर चला जाता है उसी प्रकार एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरको प्राप्त हो जाता है ॥२३९॥ आप लोग पुत्रवाली हैं अर्थात् आपके पुत्र हैं इसलिए गुणी पुत्रोंको लौटा लो और निश्चिन्त होकर पुत्र भोगका अभ्युदय भोगो ॥२४०॥ मैं तो राज्यका अधिकार छोड़ चुका हूँ, इस पाप पूर्ण चेष्टासे निवृत्त हो गया हूँ और संसारसे तीव्र भय प्राप्त कर चुका

१. दोलारूढमिवात्मानो म० । २. पुत्रवन्त्यो म० । ३. भवन्त्यो म० । ४. उपयुक्त म० ।

आर्याच्छन्दः

एव निश्चितचित्तो दशरथनृपतिस्समग्रमौदासीन्यम् ।
भेजे रविसमतेजा. सकलकुभावाभिलाषदोषविमुक्त. ॥२४२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथप्रव्रज्याभिधानं नामैकत्रिंशत्तम पर्व ॥३१॥

हूँ इसलिए मुनिव्रत धारण करूँगा ॥२४१॥ इस प्रकार जिन्होंने अपने चित्तमे दृढ़ निश्चय कर लिया था, जो सूर्यके समान तेजस्वी थे और जो समस्त मिथ्याभावोकी अभिलाषारूपी दोषसे रहित थे ऐसे राजा दशरथने सब प्रकारकी उदासीनता धारण कर ली ॥२४०॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यके द्वारा कथित पद्मचरितमे राजा दशरथके वैराग्यका वर्णन करनेवाला इकतीसवॉ पर्व समाप्त हुआ ॥३१॥

द्वात्रिंशत्तमं पर्व

अथ तत्र क्षणं नीत्वा निद्रान्तौ धृतकङ्कटौ । अर्धरात्रे महाध्वान्ते निश्शब्दे शान्तमानवे ॥१॥
विधाय जानकीं मध्ये जिनं नत्वा सकार्मुकौ । सुवेषौ प्रस्थितौ दीपैः पश्यन्ताविव[1] कामिनः ॥२॥
कश्चित् सुरतखिन्नाङ्गो बाहुपञ्जरवर्तिनीम् । कृत्वा प्राणसमां निद्रामतिगाढां निषेवते ॥३॥
[2]कृत्वापराधकः पूर्वं कोपिनीं कश्चिदङ्गनाम् । प्रत्याययत्यलीकेन शपथेन पुनः पुनः ॥४॥
अपरो मानमुत्सृज्य कान्तया स्मरतप्तया । कृतकं कोपमायातः सुवाग्भिः परिसान्त्व्यते ॥५॥
सुरतायासखिन्नाङ्गा देहे कस्यचिदङ्गना । लीना तत्त्वमिव प्राप्ता गाढां निद्रां निषेवते ॥६॥
नवसङ्गमनां कश्चिज्जायां विमुखवर्तिनीम् । कृच्छ्रात् प्रस्तावमानीय सम्भाषयति समदी ॥७॥
कस्मैचित्पूर्ववैगुण्यं कथयत्यङ्गनाखिलम् । अपरो वेदयत्यस्मै विस्रब्धं कृतमाननः ॥८॥
कश्चित् परगृहं प्राप्तो धूर्तः सङ्कुचिताङ्गकः । उद्वासयति मार्जारं वातायनकृतस्थितिम् ॥९॥
अपरः कृतसङ्केता शून्यदेवकुलान्तरे । कुलटामाकुलीभूतो मुहुरुत्थाय वीक्षते ॥१०॥
चिरादुपगतं कश्चिद् घनरोषाभिसारिका । ताडयत्युत्तरीयेण बध्वा मेखलया खलम् ॥११॥
अभिसारिकया साकमन्यः प्राप्य समागमम् । शुनोऽपि पदशब्देन याति त्रासमनुत्तमम् ॥१२॥

अथानन्तर राम-लक्ष्मण उस मन्दिरमे कही क्षण एक निद्रा लेकर अर्ध रात्रिके समय जब घोर अन्धकार फैल रहा था, लोगोंका शब्द मिट गया था, और मनुष्य शान्त थे तब जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर कवच धारण कर तथा धनुष उठाकर चले। वे सीताको बीचमे करके चल रहे थे। दोनो ही उत्तम वेषके धारक थे तथा दीपक हाथमे लिये थे जिससे ऐसे जान पड़ते थे मानो मण्डपादि स्थानोमे कामी जनोको देख ही रहे थे ॥१-२॥ उन्होने देखा कि जिसका शरीर संभोगसे खिन्न हो रहा है ऐसा कोई पुरुष अपनी प्राणवल्लभाको भुजारूप पञ्जरके मध्य रखकर अत्यन्त गाढ निद्राका सेवन कर रहा है ॥३॥ अपराध करनेवाले किसी पुरुषने पहले तो अपनी स्त्रीको कुपित कर दिया और पीछे बार-बार झूठी शपथके द्वारा उसे विश्वास दिला रहा है ॥४॥ कोई एक पुरुष कृत्रिम कोपकर जुदा बैठा है और उसकी स्त्री कामसे संतप्त हो उसे मधुर वचनोसे शान्त कर रही है ॥५॥ सुरतके श्रमसे जिसका शरीर खिन्न हो रहा था ऐसी कोई स्त्री पतिके शरीरमें इस तरह लीन होकर गाढ़ निद्रा ले रही है जिस तरह कि मानो वह पतिके साथ अभेदको ही प्राप्त हो चुकी हो ॥६॥ कोई एक पुरुष लज्जाके कारण विमुख बैठी नवोढा पत्नीको बड़ी कठिनाईसे अनुकूल कर हर्ष पूर्वक उसके साथ वार्तालाप कर रहा है ॥७॥ कोई एक स्त्री अपने पतिके लिए उसके द्वारा पहले किये हुए सब अपराध बता रही है और वह उसे मनाकर निश्चिन्ततासे उसका समाधान कर रहा है ॥८॥ कोई एक धूर्त पुरुष अपने शरीरको संकुचित कर दूसरेके घर पहुँचा है और वहाँ झरोखेमे बैठे बिलावको वहाँसे हटा रहा है ॥९॥ किसी पुरुषने अपनी कुलटा प्रेमिकाको सूने मठमें आनेका संकेत दिया था पर उसने आनेमें विलम्ब किया इसलिए वह व्याकुल हो बार-बार उठकर उसे देख रहा है ॥१०॥ किसी अभिसारिकाका प्रेमी देरसे आया था इसलिए वह अत्यन्त कुपित हो उसे मेखलासे बाँधकर उत्तरीय वस्त्रसे पीट रही है ॥११॥ और कोई एक मनुष्य अभिसारिकाके साथ समागम प्राप्तकर कुत्तेके

---

१. विति कामिनः म० । २. कृतापराधकः ज० ।

इति[1] निर्यूहदेशेषु मण्डपेषु च कामिनाम् । शृण्वन्तौ [2]वीक्ष्यमाणौ च [3]वृत्तान्तौ जग्मतुः शनैः ॥१३॥
अवद्वारेण[4] निर्गत्य पुरीतः पश्चिमेन तौ । आश्रितौ मार्गयोगेन दक्षिणौ दक्षिणां दिशम् ॥१४॥
त्रियामान्ते ततोऽस्पष्टे सामन्ता वेगवाहिनः । राघवेण समं गन्तुमुत्सुका भक्तिनिर्भराः ॥१५॥
यथाश्रुति परिज्ञाय बन्धुवञ्चनकारिणः । समीपं रामदेवस्य प्रापुर्मन्थरगामिनः ॥१६॥
ते चक्षुर्गोचरीकृत्य समेतौ रामलक्ष्मणौ । महाविनयसम्पन्नाः पद्भ्यामेव ढुढौकिरे ॥१७॥
प्रणिपत्य च भावेन सक्रमं सम्बभाषिरे । यावत्तावन्महासैन्यं तद्गवेषार्थमाययौ ॥१८॥
प्रशशंसुश्च ते सीतामिति निर्मलचेतसः । वयमस्याः प्रसादेन राजपुत्रौ समागताः ॥१९॥
अयास्यद्यदि नैताभ्यां सममेषा सुमन्थरा । ततः कथमिव प्राप्स्यामेतौ पवनरंहसौ ॥२०॥
इयं नः सुसती माता परमप्रियकारिणी । एतस्याः सदृशी नान्या प्रशस्तास्ति क्षिताविह ॥२१॥
तौ सीतागतिचिन्तत्वान्मन्दमन्दं नरोत्तमौ । गव्यूतिमात्रमध्वानं सुखयोगेन जग्मतुः ॥२२॥
सस्यानि बहुरूपाणि पश्यन्तौ क्षितिमण्डले । सरांसि कञ्जरम्याणि तरूंश्च गगनस्पृशः ॥२३॥
आपूर्यमाणपर्यन्तौ वेगवद्भिर्नराधिपैः[5] । घनागमे नदैर्गङ्गाकालिन्दीप्रवहाविव ॥२४॥
ग्रामखेटमटम्बेषु घोषेषु नगरेषु च । लोकेन पूजितौ वीरौ भोजनादिभिरुत्तमौ ॥२५॥
केचिदध्वजखेदेन सामन्ता व्रजतोस्तयोः । पश्चादज्ञापियत्वैव विवृत्ता ज्ञातनिश्चयाः ॥२६॥

भी पैरकी आहट सुनकर अत्यधिक भयको प्राप्त हो रहा है ॥१२॥ इस प्रकार बाह्य झरोखों और मण्डपोंमें कामीजनोंको देखते तथा उनके वृत्तान्तको सुनते हुए राम और लक्ष्मण धीरे-धीरे जा रहे थे ॥१३॥ वे अतिशय सरल थे और वे नगरीके पश्चिम द्वारसे बाहर निकलकर आगे मिलनेवाले मार्गसे दक्षिण दिशाकी ओर चले गये ॥१४॥

इधर जब भक्तिसे भरे तथा रामके साथ जानेके लिए उत्सुक सामन्तोंको कानोंकान यह पता चला कि राम तो बन्धुजनोंको धोखा देकर चले गये हैं तब वे प्रातःकाल होनेके पूर्व जब कुछ-कुछ अँधेरा था वेगसे घोड़े दौड़ाकर मन्थर गतिसे चलनेवाले रामके पास जा पहुँचे ॥१५-१६॥ जब उन्हें साथ-साथ चलनेवाले राम-लक्ष्मण नेत्रोंसे दिखने लगे तब वे महाविनयसे युक्त हो पैदल ही चलने लगे ॥१७॥ सामन्त लोग भावपूर्वक प्रणामकर जब तक उनके साथ यथा क्रमसे वार्तालाप करते हैं तब तक उन्हें खोजनेके लिए बड़ी भारी सेना वहाँ आ पहुँची ॥१८॥ अत्यन्त निर्मल चित्तके धारक सामन्त लोग सीताकी इस प्रकार स्तुति करने लगे कि हम लोग इसके प्रसादसे ही राजपुत्रोंको प्राप्त कर सके हैं ॥१९॥ यदि यह इनके साथ धीरे-धीरे नहीं चलती तो हम पवनके समान वेगशाली राजपुत्रोंको किस तरह प्राप्त कर सकते ? ॥२०॥ यह माता अत्यन्त सती तथा हम सबका बहुत भारी भला करनेवाली है । इस पृथिवीपर इसके समान दूसरी पवित्र स्त्री नहीं है ॥२१॥ मनुष्योंमें उत्तम रामलक्ष्मण सीताकी गतिका ध्यानकर गव्यूति प्रमाण मार्गको ही सुखसे तय कर पाते थे ॥२२॥ वे पृथिवीमण्डलपर नाना प्रकारके धान, कमलोंसे सुशोभित तालाब और गगनचुम्बी वृक्षोंको देखते हुए जा रहे थे ॥२३॥ जिस प्रकार वर्षा ऋतुमें गङ्गा और यमुनाके प्रवाह अनेक नदियोंसे मिलते रहते हैं उसी प्रकार राम-लक्ष्मणके पर्यन्त भाग भी अनेक वेगशाली राजाओंसे मिलते रहते थे ॥२४॥ ग्राम, खेट, मटंब, घोष तथा नगरोंमें लोग उन उत्तम वीरोंका भोजनादि सामग्रीके द्वारा सत्कार करते थे ॥२५॥ दोनों ही भाई आगे बढ़ रहे थे, और सामन्त लोग मार्गके खेदसे दुःखी हो रहे थे । जब उन्हें इस बातका दृढ़ ज्ञान हो गया कि राम-लक्ष्मण लौटनेवाले नहीं हैं तब वे उनसे कहे

१. गवाक्षप्रदेशेषु । २. वीक्ष्यमाणौ म० । ३. वृत्तान्तौ म० । ४. लघुनाद्वारेण, अपद्वारेण (?) म० ५. वेगवन्निर्जराधिपैः म० । ६. घनागमेनदी गगा म० ।

अपरे त्रपया केचिद्भीत्यान्ये भक्तितत्पराः । अव्रजन् विनयात् पद्भ्या दत्वा दुःखस्य मानसम् ॥२७॥
ततो हरिगजव्रातसङ्कुलारावभैरवाम् । [1]परियात्राटवीं प्राप्तौ लीलया रामलक्ष्मणौ ॥२८॥
तस्यां बहुलशर्वर्यां तुल्यध्वान्तां महानगैः । निम्नगां शर्वरीमेतौ शवराश्रितरोधसाम् ॥२९॥
तस्या रोधसि विश्रम्य नानास्वादुफलोचिते । [2]काश्चिन्न्यवर्तयद्भूपान् पद्मः सुप्रतिबोधनः ॥३०॥
महतापि प्रयत्नेन निवृत्ता नापरे नृपाः । पद्मेन सहितं गन्तुं किल सञ्जातनिश्चयाः ॥३१॥
ततस्ते निम्नगां दृष्ट्वा महानीलावभासिनीम् । चण्डवेगोर्मिसङ्घातनिर्मितोदरनिश्रिताम् ॥३२॥
उन्मज्जत्प्रबलग्राहकृतकल्लोलसङ्कुलाम् । वीचीमालासमाघातनिपतन्मृदुरोधसम् ॥३३॥
[3]महाद्रिकन्दरास्फाल[4]प्रतिसूत्कारनादिनीम् । उद्वर्तमानमीनांगस्फुरद्भास्कररोचिषम् ॥३४॥
उद्वृत्तनक्रसूत्कारजातदूरगशीकराम् । उड्डीयमाननिश्शेषभयपूर्णपतत्रिणाम् ॥३५॥
सन्त्रासकम्पमानाङ्गा जगू राम सलक्ष्मणम् । समुत्तारय नाथास्मानपि पद्मप्रसादवान् ॥३६॥
भृत्यानां भक्तिपूर्णानां प्रसादं कुरु लक्ष्मण । देवि ते कुरुते वाक्यं जानकि ब्रूहि लक्ष्मणम् ॥३७॥
एवमादिगदन्तस्ते कृपणा बहु तां नदीम् । डुढौकिरे प्रसस्रुश्च नानाचेष्टाविधायिनः ॥३८॥
ततस्तान् राघवोऽवोचद्विश्रब्धो रोधसि स्थितः । अधुना विनिवर्तध्वं भद्रा भीममिदं वनम् ॥३९॥
अस्माभिः सह युष्माकमियानेवैष[5] सङ्गमः । एषा नद्यवधिर्जाता भवतौत्सुक्यवर्जिता ॥४०॥

बिना ही लौट गये ॥२६॥ भक्तिमें तत्पर रहनेवाले कितने ही सामन्त लज्जासे और कितने ही भयसे अपने मनको दुःखी कर विनय पूर्वक उनके साथ पैदल चल रहे थे ॥२७॥

तदनन्तर रामलक्ष्मण लीला पूर्वक परियात्रा नामकी उस अटवीमें पहुँचे जो कि सिंह और हस्तिसमूहके उच्च शब्दोंसे भयंकर हो रही थी ॥२८॥ उस अटवीमें बड़े-बड़े वृक्षोंसे कृष्ण-पक्षकी निशाके समान घोर अन्धकार व्याप्त था। वहीं, जिसके किनारे अनेक शबर अर्थात् भील रहते थे ऐसी एक शर्वरी नामकी नदी थी। रामलक्ष्मण वहाँ पहुँचे ॥२९॥ नाना प्रकारके मधुर फलोंसे युक्त उस नदीके तटपर विश्रामकर रामने समझा-बुझाकर कितने ही राजाओंको तो वापिस लौटा दिया ॥३०॥ पर जिन्होंने रामके साथ जानेका निश्चय ही कर लिया था ऐसे अन्य अनेक राजा बहुत भारी प्रयत्न करनेपर भी नहीं लौटे ॥३१॥

तदनन्तर जो नदी महानील मणिके समान सुशोभित हो रही थी, अत्यन्त वेगशाली लहरोंके समूहसे जिसका मध्य भाग व्याप्त था, जो उछलते हुए बलवान् मगरमच्छोंकी टक्करसे उत्पन्न होनेवाली तरङ्गोंसे व्याप्त थी, लहरोंके समूहका आघातपर जिसके कोमल किनारे उसीमें टूट-टूटकर गिर रहे थे, बड़े-बड़े पर्वतोंकी गुफाओंमें टकरानेसे जिसमें 'सूं'सूं' शब्द हो रहा था, जिसमें ऊपर तैरनेवाली मछलियोंके शरीरमें सूर्यकी किरणें प्रतिबिम्बित हो रहीं थी, जिसमें उत्पात करनेवाले नाकोंकी सूत्कारसे जलके छींटे दूर-दूर तक उड़ रहे थे, और जिसके पाससे समस्त पक्षी भयभीत होकर उड़ गये थे ऐसी उस नदीको देखकर सब सामन्तोंके शरीर भयसे काँपने लगे। वे लक्ष्मण सहित रामसे बोले कि 'हे नाथ! हम लोगोंको भी नदीसे पार उतारो। हे पद्म! प्रसन्न होओ, हे लक्ष्मण! भक्तिसे भरे हुए हम सेवकोंपर प्रसन्नता करो। हे देवि! लक्ष्मण तुम्हारी बात मानते हैं इसलिए इनसे कह दो' ॥३२-३७॥ इत्यादि अनेक शब्दोंका उच्चारण करते हुए वे दीन सामन्त उस नदीमें कूद पड़े तथा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करते हुए बहने लगे ॥३८॥ तब किनारेपर निश्चिन्ततासे खड़े हुए रामने उन सबसे कहा कि हे भले पुरुषो! अब तुम लौट जाओ। यह वन बहुत भयङ्कर है ॥३९॥ हमलोगोंके साथ तुम्हारा

---

१. एतन्नामाटवी। २. कांश्चित्प्रावर्तयद् म०। ३. महीन्द्र म०। ४. प्रान्ते सूत्कार म०। ५. मियानेषैव म०।

तातेन भरतः स्वामी सर्वेषां वो निवेदितः । विसाध्वसास्तमावृत्य तिष्ठत क्षितिपालिनः ॥४१॥
ततस्ते पुनरित्यूचुर्नाथास्माकं भवान् गतिः । प्रसादं कुरु मा त्याक्षीरस्मान् कारुण्यकोविद ॥४२॥
निराश्रयाकुलीभूता त्वयेयं रहिता प्रजा । वद कं शरणं यातु सदृशः कस्तवापरः ॥४३॥
व्याघ्रसिंहगजेन्द्रादिव्यालजालसमाकुले । वसामो भवता सार्धमरण्ये न विना दिवि ॥४४॥
न नो नि[1]वर्तते चित्तं प्रतियामः कथं वयम् । महत्तरत्वमेतेन हृषीकेष्वर्जितं ननु ॥४५॥
किं नो गृहेण किं भोगैः किं दारैः किं नु बन्धुभिः । भवता नररत्नेन मुक्तानां पापकर्मणाम् ॥४६॥
क्रीडास्वपि त्वया देव वञ्चिता स्मो न जातुचित् । सम्मानेनाधुना कस्माज्जातोऽस्यत्यन्तनिष्ठुरः ॥४७॥
कोऽपराधो वदास्माकं भवच्चरणरेणुना । परमां वृद्धिमेतानां भक्तानां भृत्यवत्सल ॥४८॥
अहो जानकि [2]लक्ष्मीश रचितोऽयं शिरोऽञ्जलिः । प्रसादयतमीशं नः प्रसादी भवतोरयम् ॥४९॥
सीता लक्ष्मीधरश्चैवमुच्यमानौ सुदक्षिणौ । तस्थतुः पद्मपादाग्रन्यस्तनेत्रौ निरुत्तरौ ॥५०॥
ततः पद्मो जगादेदं भवतामुत्तरं स्फुटम् । निवर्तध्वमयं भद्रा यातोऽस्मि सुखमास्यताम् ॥५१॥
इत्युक्त्वा निरपेक्षौ तौ परमोत्साहसङ्गतौ । अवतेरतुरत्यन्तगम्भीरां तां महापगाम् ॥५२॥
उत्तीर्णः सरितं पद्मो जानकीं विकचेक्षणाम् । करेण सुखमादाय पद्मिनीमिव दिग्गजः ॥५३॥
अम्भोविहारविज्ञानबुधयोः सा तयोर्धुनी । नाभिदघ्नी[3] बभूवोद्धां क्रीडामाचरतोश्चिरम् ॥५४॥

इतना ही समागम था। अब हमारे और तुम्हारे बीचमे यह नदी सीमा बन गई है इसलिए उत्सुकतासे रहित होओ ॥४०॥ पिताने तुम सबके लिए भरतको राजा बनाया है सो तुम सब निर्भय होकर उसीके शरणमे रहो ॥४१॥

तदनन्तर उन्होंने फिर कहा कि हे नाथ! हमारी गति तो आप ही है इसलिए हे दया-निपुण! प्रसाद करो और हमलोगोको नही छोड़ो ॥४२॥ तुम्हारे बिना यह प्रजा निराधार होकर व्याकुल हो रही है आप ही कहो किसकी शरणमे जावे? आपके समान दूसरा है ही कौन? ॥४३॥ हम आपके साथ व्याघ्र, सिंह, गजेन्द्र आदि दुष्ट जीवोंके समूहसे भरे हुए वनमे रह सकते है पर आपके बिना स्वर्गमे भी नहीं रहना चाहतें ॥४४॥ हमारा चित्त ही नहीं लौटता है फिर हम कैसे लौटे? यह चित्त ही तो इन्द्रियोमे प्रधान है ॥४५॥ जब आप जैसे नर-रत्न हमे छोड़ रहे हैं तब हम पापी जीवोको घरसे क्या प्रयोजन है? भोगोंसे क्या मतलब है? स्त्रियोंसे क्या अर्थ है? और बन्धुओंकी क्या आवश्यकता है? ॥४६॥ हे देव! क्रीड़ाओंमें भी कभी आपने हम लोगोको सम्मानसे वञ्चित नहीं किया फिर इस समय अत्यन्त निष्ठुर क्यो हो रहे हो? ॥४७॥ हे भृत्यवत्सल! हमलोग आपके चरणोकी धूलिसे ही परम वृद्धिको प्राप्त हुए है। बताइये, हमारा क्या अपराध है? ॥४८॥ रामसे इतना कहकर उन्होंने सीता और लक्ष्मणको भी संबोधित करते हुए कहा कि हे जानकि! हे लक्ष्मण! मैं आप दोनोंके लिए हाथ जोड़कर मस्तकपर लगता हूँ आप हमारे विषयमे स्वामीको प्रसन्न कीजिए क्योकि ये आप दोनोपर प्रसन्न है—आपकी बात मानते है ॥४९॥ लोग सीता तथा लक्ष्मणसे इस प्रकार कह रहे थे और अत्यन्त सरल प्रकृतिके धारक वे दोनो रामके चरणकमलोंके आगे दृष्टि लगाये हुए चुपचाप खड़े थे—'क्या उत्तर दिया जाय' यह उन्हें सूझ नहीं पड़ता था ॥५०॥

तदनन्तर रामने कहा कि हे भद्रपुरुषो! आप लोगोके लिए यही एक स्पष्ट उत्तर है कि अब आप यहाँसे लौट जाइये, मै जाता हूँ, आप लोग अपने घर सुखसे रहें ॥५१॥ इतना कहकर किसीकी अपेक्षा नहीं करनेवाले दोनों भाई बड़े भारी उत्साहसे उस अतिशय गहरी महा नदीमे उतर पड़े ॥५२॥ जिस प्रकार दिग्गज अपने कर (सूँड़) मे कमलिनीको लेकर तैरता है उसी प्रकार राम विकसित नेत्रोंवाली सीताको हाथमे लेकर नदीको पार कर रहे थे ॥५३॥ दोनों ही

१. तनोति वर्तते म० । २. लक्ष्मण । ३. नाभिप्रमाणजला ।

तदातिशोभते सीता पद्महस्ततलस्थिता । सुधीरा श्रीरिवोत्तुङ्गशतपत्रगृहस्थिता ॥५५॥
पारंग सीतया सार्धं लक्ष्मणेन च स क्षणात् । वृक्षैरन्तर्धिमायातश्चेतस्तम्भनविग्रहः ॥५६॥
विप्रलापं ततः कृत्वा महान्तं साश्रुलोचनाः । भवनाभिमुखीभूता केचित्कृच्छ्रेण भूभृतः ॥५७॥
तदाशान्यस्तनेत्रास्तु केचित्पुंस्तम्भमया इव । तस्थुः प्राप्यापरे मूर्छां निपेतुर्धरणीतले ॥५८॥
विबोध्य केचिदत्रोचुर्धिक् संसारमसारकम् । धिग्भोगान्भोगिभोगाभान् भङ्गुरान्भीतिभाविनः ॥५९॥
ईदृशामपि शूराणां यत्रावस्थेयमीदृशी । तत्र ग्रहणमस्मासु किमेरण्डप्रफल्गुषु ॥६०॥
वियोगमरणव्याधिजराव्यसनभाजनम् । जलबुद्बुदनिस्सारं कृतघ्नं धिक् शरीरकम् ॥६१॥
भाग्यवन्तो महासत्त्वास्ते नराः श्लाघ्यचेष्टिताः । कपिभ्रूभङ्गुरा लक्ष्मी ये तिरस्कृत्य दीक्षिताः ॥६२॥
इति निर्वेदमापन्ना बहवो नरसत्तमाः । प्रव्रज्याभिमुखीभूता बभ्रमुस्तत्र रोधसि ॥६३॥
अथेक्षाञ्चक्रिरे तुङ्गं विशालं शुभमालयम् । परिवीतमतिश्याममहानोकहमालया ॥६४॥
अनुसस्रुश्च तं नानापुष्पजातिसमाकुलम् । मकरन्दरसास्वादगुञ्जत्सम्भ्रान्तषट्पदम् ॥६५॥
ददृशुश्च विविक्तेषु[1] देशेषु समवस्थितान् । साधून् स्वाध्यायसंसक्तमानसान् पुरुतेजसः ॥६६॥
क्रमेण तान्नमस्यन्तः शनैर्मस्तकपाणयः । विविशुर्जिननाथस्य भवनं भृशमुज्ज्वलम् ॥६७॥
रम्येष्वद्रिनितम्बेषु काननेषु सरित्सु च । तत्र काले मही प्रायो भूषितासीज्जिनालयैः ॥६८॥

जल-क्रीडाके ज्ञानमें निपुण थे अतः चिरकाल तक उत्तम क्रीड़ा करते हुए जा रहे थे। उनके लिए वह नदी नाभि प्रमाण गहरी हो गई थी ॥५४॥ उस समय रामकी हथेलीपर स्थित धैर्यशालिनी सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो ऊँचे उठे हुए कमलरूपी घरमें स्थित लक्ष्मी ही हो ॥५५॥ इस प्रकार जिनका शरीर चित्तको रोकनेवाला था ऐसे राम सीता और लक्ष्मणके साथ नदीको पारकर क्षणभरमें वृक्षोंसे अन्तर्हित हो गये ॥५६॥

तदनन्तर जिनके नेत्रोंसे आँसू झर रहे थे ऐसे कितने ही राजा बहुत भारी विलाप कर अपने भवनकी ओर उन्मुख हुए ॥५७॥ कितने ही लोग उसी दिशामें नेत्र लगाये हुए मिट्टी आदिके पुतलोंके समान खड़े रहे। कितने ही मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥५८॥ और कितने ही प्रबोधको प्राप्त होकर कहने लगे कि इस असार संसारको धिक्कार है तथा साँपके शरीरके समान भय उत्पन्न करनेवाले नश्वर भोगोंको धिक्कार है ॥५९॥ जहाँ इन जैसे शूर वीरोंकी भी यह अवस्था है वहाँ एरण्डके समान निःसार हमलोगोंकी तो गिनती ही क्या है? ॥६०॥ वियोग, मरण, व्याधि और जरा आदि अनेक कष्टोंके पात्र तथा जलके बबूलेके समान निःसार इस कृतघ्न शरीरको धिक्कार है ॥६१॥ उत्तम चेष्टाके धारक जो मनुष्य वानरकी भौंहके समान चञ्चल लक्ष्मीको छोड़कर दीक्षित हो गये हैं वे महाशक्तिके धारक भाग्यवान् हैं ॥६२॥ इस प्रकार वैराग्यको प्राप्त हुए अनेक उत्तम मनुष्य दीक्षा लेनेके सन्मुख हो नदीके उसी तटपर घूमने लगे ॥६३॥

तदनन्तर उन्होंने हरे भरे वृक्षोंकी पङ्क्तिसे घिरा हुआ एक ऊँचा, विशाल तथा शुभ मन्दिर देखा ॥६४॥ मन्दिरका वह स्थान नाना प्रकारके पुष्पोंकी जातियोंसे व्याप्त था तथा मकरन्द रसके आस्वादसे गूँजते हुए भ्रमर वहाँ भ्रमण कर रहे थे ॥६५॥ उन लोगोंने वहाँ एकान्त स्थानोंमें बैठे हुए, स्वाध्यायमें लीन तथा विशाल तेजके धारक मुनियोंको देखा ॥६६॥ मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर सब लोगोंने उन्हें धीरे-धीरे यथा क्रमसे नमस्कार किया। तदनन्तर अत्यन्त उज्ज्वल जिनमन्दिरमें प्रवेश किया ॥६७॥ उस समय भूमि प्रायः कर पर्वतोंके सुन्दर नितम्बोंपर, वनोंमें तथा नदियोंके तटोंपर बने हुए जिनमन्दिरोंसे विभूषित थी ॥६८॥

---

५. मृदादिनिर्मिता इव । ६. सर्पफणासदृशान् । १. विविक्तेषु म० ।

तत्र कृत्वा नमस्कारं जिनानां शुभ्रभावना । [1]रत्नसम्भवगम्भीरं सयतेन्द्र ढुढौकिरे ॥६९॥
प्रणम्य शिरसा तस्य संवेगभरवाहिन [2] । नाथोत्तारय संसारादस्मादिति बभाषिरे ॥७०॥
सत्यकेतुगणीशेन तथास्त्विति कृतध्वनौ । जग्मुस्ते परमं तोषं निर्गता स्मो भवादिति ॥७१॥
[3]विदग्धो विजयो मेरु क्रूर. संग्रामलोलुपः । श्रीनागदमनो धीर. शठ शत्रुदमो धर ॥७२॥
विनोद कण्टक सत्य. कठोर प्रियवर्धन' । एवमाद्या नृपा धर्मं नैर्ग्रन्थ्यं समशिश्रियन् ॥७३॥
साधनानि भटास्तेषां गृहीत्वा नगरीं गताः । द्रुतमर्पयितु दीना पुत्रादीना त्रपान्विता [4] ॥७४॥
अणुव्रतानि संगृह्य केचिन्नियमधारिण । आराधयितुमुद्युक्ता बोधिशुद्धिविभूषणा ॥७५॥
सम्यग्दर्शनमात्रेण सन्तोषमपरे गता । श्रुत्वातिविमल धर्मं जिनाना जितजन्मनाम् ॥७६॥
सामन्तैर्बहुभिर्गत्वा भरताय निवेदित. । वृत्तान्तो सुस्थितश्चाय ध्यायन् किमपि दु खित ॥७७॥
अथानरण्यराजस्य [5]तनय. सुप्रबोधन । राज्याभिषिञ्चन कृत्वा भरतस्य सुचेतसः ॥७८॥
किञ्चित्पद्मवियोगेन सन्तप्त चित्तमुद्वहन् । शोकाम्भोधिनिमग्नेन परिवर्गेण वीक्षित ॥७९॥
कृतसान्त्वनमप्युच्चैर्विलपत्स समाकुलम् । अन्त.पुर परित्यज्य नगरीतो विनिर्गतः ॥८०॥
गुरुपूजा परां कृत्वा द्वासप्ततिनृपान्वितः । सर्वभूतहितस्यान्ते शिश्रिये श्रमणश्रिया ॥८१॥
अथाप्येकविहारस्य शुभ ध्यानमभीप्सतः । मानस पुत्रशोकेन कलुष तस्य जन्यते ॥८२॥
अन्यदा योगमाश्रित्य दध्यावेव विचक्षण । धिक् स्नेह भवदुःखाना मूल बन्धमिम मम ॥८३॥

वहाँ उज्ज्वल भावनाको धारण करनेवाले सब लोग जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कारकर समुद्रके समान गम्भीर मुनिराजके पास गये ॥६९॥ वहाँ जाकर वैराग्यको धारण करनेवाले सब लोगोने शिर झुकाकर मुनिराजको नमस्कार किया और तदनन्तर यह कहा कि हे नाथ ! हम लोगोको इस ससार-सागरसे पार कीजिये ॥७०॥ इसके उत्तरमे मुनियोके अधिपति सत्यकेतु आचार्यने ज्योही 'तथास्तु' यह शब्द कहा त्योहीं 'अब तो हम संसारसे पार हो गये' यह कहते हुए सब लोग परम सन्तोषको प्राप्त हुए ॥७१॥ विदग्ध, विजय, मेरु, क्रूर, संग्रामलोलुप, श्रीनागदमन, धीर, शठ, शत्रुदम, धर, विनोद, कण्टक, सत्य, कठोर और प्रियवर्धन आदि अनेक राजाओने दिगम्बर दीक्षा धारण की ॥७२–७३॥ इनके जो सेवक थे वे हाथी घोड़ा आदि सेनाको लेकर उनके पुत्रोको सौंपनेके लिए शीघ्र ही नगरकी ओर गये । उस समय वे सेवक अत्यन्त दीन तथा लज्जासे युक्त हो रहे थे ॥७४॥ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाले कितने ही लोग अणुव्रत ग्रहणकर निर्ग्रन्थमुद्राके धारकोंकी सेवा करनेके लिए उद्यत हुए ॥७५॥ तथा कितने ही लोग संसारको जीतनेवाले जिनेन्द्र भगवान्का अत्यन्त निर्मल धर्म श्रवणकर मात्र सम्यग्दर्शन से ही सन्तोषको प्राप्त हुए ॥७६॥ अनेक सामन्तोने जाकर यह समाचार भरतके लिए सुनाया सो भरत कुछ ध्यान करता हुआ सुखसे बैठा था परन्तु यह समाचार सुन दु खी हुआ ॥७७॥

अथानन्तर सम्यक् प्रबोधको प्राप्त हुए राजा दशरथ स्वस्थ चित्तको धारण करनेवाले भरतका राज्याभिषेक कर रामके वियोगसे कुछ सन्तप्त चित्तको धारण करते हुए, सान्त्वना देने पर भी जो अत्यन्त विलाप कर रहा था ऐसे व्याकुल अन्त पुरको छोड़ नगरीसे बाहर निकले । उस समय शोकरूपी सागरमें डूबे हुए परिजन उनकी ओर निहार रहे थे ॥७८–८०॥ नगरीसे निकलकर वे सर्वभूतहित नामक गुरुके समीप गये और वहाँ बहुत भारी गुरु पूजाकर बहत्तर राजाओके साथ दीक्षित हो गये ॥८१॥ यद्यपि मुनिराज दशरथ एकाकी विहार करते हुए सदा शुभ ध्यानकी इच्छा रखते थे तथापि पुत्र शोकके कारण उनका मन कलुषित हो जाता था ॥८२॥ एक दिन योगारूढ होकर बुद्धिमान् दशरथ विचार करने लगे कि संसार सम्बन्धी दुःखों

१. सागर इव गम्भीरस्तम् । २. वादिनः म० । ३. निदग्धो म० । निर्दग्धो क०, ख० । ४. त्रपाचिताः म० । ५. दशरथः ।

अन्यजन्मसु ये दारा पितृभ्रातृसुतादय । क्व गतास्ते ममानादौ ससारे गणनोज्झिताः ॥८४॥
अनेकशो मया प्राप्ता विविधा विषया दिवि । नरकानलदाहाश्च सम्प्राप्ता भोगहेतवः ॥८५॥
अन्योन्यभक्षणादीनि तिर्यक्त्वे च चिर मया । प्राप्तानि दु खशल्यानि बहुरूपासु योनिषु ॥८६॥
श्रुता सङ्गीतनिस्वाना वशवीणानुगामिनः[1] । भूयश्च परमाक्रन्दाश्चित्तदारणकारिण ॥८७॥
स्तनेष्वप्सरसां पाणिर्लालितो नेत्रहारिषु । पुनः कुठारघातेन दुर्वृत्तेन पृथक्कृति ॥८८॥
आस्वादित महावीर्यमन्न सुरभि षड्रसम् । त्रपुसीसादिकलल पुनश्च नरकावनौ ॥८९॥
वीक्षित परम रूप मनोद्रवणकारणम् । पुनश्चात्यन्तविन्त्रासकारण दृत्तवेपथु ॥९०॥
आघ्रात' स चिरामोदो गन्धो मुदितषट्पद । पुनश्च पूतिरत्यन्तमुद्वासितमहाजन' ॥९१॥
आलिङ्गिता मनश्चोर्यो नार्यो लीलाविभूषणा. । पुनश्च कूटशाल्मल्य. तीक्ष्णकण्टकसङ्कटाः ॥९२॥
किं न स्पृष्ट न किं दृष्ट किं घ्रात न किं श्रुतम् । मुहुरास्वादित किं न भवे दासेन कर्मणाम् ॥९३॥
न सा क्षितिर्न तत्तोय न्नासौ वह्निर्न सोऽनिलः । देहता यो न मे प्राप्तो भवे सक्रामतश्चिरम् ॥९४॥
त्रैलोक्ये स न जीवोऽस्ति यो न प्राप्तः सहस्रश. । पितादिता मम स्थान न यत्रोषितोऽस्मि न ॥९५॥
अध्रुव देहभोगादिशरण नास्ति विद्यते । ससारोऽय चतु.स्थान एकोऽह दुःखभुक्तिषु ॥९६॥

का मूल कारण तथा मुझे बन्धनमे डालनेवाले स्नेहको धिक्कार है ॥८३॥ अन्य जन्मोमे जो मेरे स्त्री, पिता, भाई तथा पुत्र आदि सम्बन्धी थे वे सब कहाँ गये ? यथार्थमे इस अनादि संसारमे सभी सम्बन्धी इतने हो चुके है कि उनकी गणना नही की जा सकती ॥८४॥ मैंने अनेको बार स्वर्गमें नाना प्रकारके विषय प्राप्त किये हैं और भोगोके निमित्त नरकाग्निके सन्ताप भी सहन किये हैं ॥८५॥ तिर्यञ्च पर्यायमे मैने चिरकाल तक परस्पर एक दूसरेका खाया जाना आदि दुःख उठाये है । इस प्रकार नाना योनियोमे मैने दु ख रूपी अनेक शल्य प्राप्त किये है ॥८६॥ मैने बाँसुरी वीणा आदि मधुर बाजोका अनुगमन करनेवाले सङ्गीतके शब्द सुने है और हृदयको विदारण करनेवाले तीव्र रुदनके शब्द भी अनेक बार श्रवण किये है ॥८७॥ मैंने अपना हाथ अप्सराओके सुन्दर स्तनोपर लड़ाया है और कभी कुठारकी तीक्ष्ण धारासे उसके टुकडे-टुकड़े भी किये है ॥८८॥ मैने महाशक्ति वर्धक, सुगन्धित छहरसोसे युक्त आहार ग्रहण किया है और नरककी भूमिमे राँगा सीसा आदिका कलल भी बार-बार पिया है ॥८९॥ मनको द्रवीभूत करनेवाला अत्यन्त सुन्दर रूप देखा है और अत्यन्त भयका कारण तथा कम्पन उत्पन्न करनेवाला घृणित रूप भी अनेक बार देखा है ॥९०॥ जिसकी सुवास चिरकाल तक स्थित रहती है ऐसा भ्रमरोको आनन्दित करनेवाला मनोहर गन्ध सूँघा है और जिसे देखते ही महाजन दूर हट जाते है ऐसा तीव्र दुर्गन्ध उत्पन्न करनेवाला सड़ा कलेवर भी बार-बार सूँघा है ॥९१॥ मनको चुरानेवाली तथा लीला रूपी आभूषणोसे सुशोभित स्त्रियोका आलिङ्गन किया है और तीक्ष्ण काँटोसे व्याप्त सेमरके मायामयी वृक्षोंका भी बार-बार आलिङ्गन किया है ॥९२॥ कर्मोंका दास बनकर मैंने इस संसारमे क्या नहीं किया है ? क्या नहीं देखा है ? क्या नहीं सूँघा है ? क्या नहीं सुना है ? और बार-बार क्या नहीं खाया है ? ॥९३॥ न वह पृथिवी है, न वह जल है, न वह अग्नि है और न वह वायु है जो चिर कालसे संसारमे भ्रमण करते हुए मेरी शरीर-दशा को प्राप्त नही हुआ है ॥९४॥ तीनो लोकोमे वह जीव नहीं है जो हजारो बार मेरा पिता आदि नही हुआ हो और वह स्थान भी नहीं है जहाँ मैंने निवास नहीं किया हो ॥९५॥ शरीर भोग आदि अनित्य है, कोई किसीका शरण नहीं है, यह संसार चतुर्गति रूप है, मै अकेला ही दु.ख भोगता हूँ, यह शरीर अशुचि है तथा उससे मैं जुदा हूँ, इन्द्रियाँ कर्मोंके आनेका द्वार हैं,

१. वशवीणा तु गायिनः (?) म० ।

अशुचे. कायतोऽन्योऽहं द्वारमत्राणि कर्मणाम् । संवरो वारणं तेषां निर्जरा जायते ततः ॥६७॥
लोको विचित्ररूपोऽयं दुर्लभा बोधिरुत्तमा । स्वाख्यातोऽयं जिनैर्धर्मः कृच्छ्रेणाधिगतो मया ॥६८॥
ध्यानेन मुनिदृष्टेन विशुद्धेनैवमादिना । आर्तध्यानमसौ धीरः क्रमेण निरनीनशत् ॥६९॥
येषूच्छ्रितसितच्छत्रो वरस्तम्बेरमाश्रितः । महाजिषु पराजिग्ये शत्रूनत्यन्तमुद्धतान् ॥१००॥
विषमानधिकुर्वाण परीषहगणान् भृशम् । शान्तरसेष्वेव देशेषु निर्ग्रन्थो विजहार स. ॥१०१॥
नाथे तथा स्थिते तस्मिन् विदेशे च गतेऽङ्गजे । परं सुमित्रया सत्रा शोकं भेजेऽपराजिता ॥१०२॥
ते दृष्ट्वा दु.खिते बाढमजस्रास्तुतलोचने[1] । भरताभां[2] श्रियं मेने भरतो विषदारुणाम् ॥१०३॥
अथैव दु.खमापन्ने भृशं ते वीक्ष्य केकया । पश्चादुत्पन्नकारुण्यात् पुत्रमेवमभाषत ॥१०४॥
पुत्र राज्यं त्वया लब्धं प्रणताखिलराजकम् । पद्मलक्ष्मणनिर्मुक्तमलमेतन्न शोभते ॥१०५॥
विना ताभ्यां विनीताभ्यां किं राज्यं का सुखासिका । का वा जनपदे शोभा तव का वा सुवृत्तता ॥१०६॥
राजपुत्र्या समं बालौ क्व तौ यातौ सुखैधितौ । विमुक्तवाहनौ मार्गे पाषाणादिभिराकुले ॥१०७॥
मातरौ दु खिते एते तयोर्गुणसमुद्रयो । विरहे मापतां[3] मृत्युमजस्रपरिदेवते ॥१०८॥
तस्मादानय तौ क्षिप्रं समं ताभ्यां महासुखः । सुचिरं पालय क्षोणीमेवं सर्वं विराजते ॥१०९॥
व्रज तावत्त्वमारुह्य तुरङ्गं जातरंहसम् । आव्रजाम्यहमप्येषा सुपुत्रानुपदं तव ॥११०॥
इत्युक्तो धृतिमासाद्य साध्वेवमिति सस्वनं । सम्भ्रान्तोऽश्वसहस्रेण भरतस्तत्पथं श्रितः ॥१११॥

कर्मोंको रोक देना संवर है, संवरके बाद कर्मोंकी निर्जरा होती है, यह लोक विचित्र रूप है, उत्तम रत्नत्रयकी प्राप्ति होना दुर्लभ है, और जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा कहा हुआ यह धर्म मैंने बड़े कष्टसे पाया है ॥९६–९८॥ इस प्रकार मुनियोंके द्वारा अनुभूत विशुद्ध ध्यानसे धीरवीर दशरथ मुनिने क्रमसे पूर्वोक्त आर्तध्यानको नष्ट कर दिया ॥९९॥ जिनके ऊपर सफेद छत्र फिर रहा था तथा जो उत्तम हाथीपर सवार थे ऐसे राजा दशरथने पहले जिन देशोंमे महायुद्धोंके बीच अत्यन्त उद्धत शत्रुओंको जीता था अब उन्ही देशोंमे वे अत्यन्त शान्त निर्ग्रन्थ मुनि होकर विषम परिषहोंको सहते हुए विहार कर रहे थे ॥१००–१०१॥

तदनन्तर पतिके मुनि हो जाने और पुत्रके विदेश चले जानेपर अपराजिता (कौशल्या) सुमित्राके साथ परम शोकको प्राप्त हुई ॥१०२॥ जिनके नेत्रोंसे निरन्तर अश्रु झरते रहते थे ऐसी दोनों विमाताओंको दुःखी देखकर भरत, भरत चक्रवर्तीकी लक्ष्मीके समान विशाल राज्यलक्ष्मीको विषके समान दारुण मानता था ॥१०३॥ अथानन्तर इस तरह उन्हें अत्यन्त दुखी देख केकयीके मनमे दया उत्पन्न हुई जिससे प्रेरित होकर उसने अपने पुत्र भरतसे इस प्रकार कहा कि हे पुत्र ! यद्यपि तूने जिसमे समस्त राजा नम्रीभूत है ऐसा राज्य प्राप्त किया है तथापि वह राम और लक्ष्मणके बिना शोभा नहीं देता है ॥१०४–१०५॥ नियमसे भरे हुए उन दोनों भाइयोंके बिना राज्य क्या है ? देशकी शोभा क्या है ? और तेरी धर्मज्ञता क्या है ? ॥१०६॥ सुख पूर्वक वृद्धिको प्राप्त हुए दोनों बालक, बिना किसी वाहनके पाषाण आदि विषम मार्गमें राजकुमारी सीताके साथ कहाँ भटकते होंगे ? ॥१०७॥ गुणोंके सागर स्वरूप उन दोनोंकी ये माताएँ अत्यन्त दु.खी है, निरन्तर विलाप करती रहती है सो उनके विरहमे मृत्युको प्राप्त न हो जावें ॥१०८॥ इसलिए तू शीघ्र ही उन दोनोंको वापिस ले आ । उन्हींके साथ सुखपूर्वक चिर-काल तक पृथिवीका पालन कर । ऐसा करनेसे ही सबकी शोभा होगी ॥१०९॥ हे सुपुत्र ! तू वेगशाली घोड़ेपर सवार होकर जा और मैं भी तेरे पीछे ही आती हूँ ॥११०॥

माताके इस प्रकार कहनेपर भरत बहुत प्रसन्न हुआ वह 'साधु-साधु ठीक-ठीक' इस

१. -मजस्रास्तितलोचने म० । २. भरताभिश्रियं म० । ३. नापतां ज० ।

कृत्वा पुरस्सरान् पद्मपार्श्वात् प्रत्यागतान्नरान् । पवनाश्वसमारूढः स ययौ भृशमुत्सुकः ॥११२॥
प्राप्तश्च तामरण्यानीमनेकपैकुलाकुलाम्[1] । नानावृक्षावृतादित्या गिरिगह्वरभीषणाम् ॥११३॥
बन्धयित्वा महावृक्षैरुडुपाना[2] सुसहती.[3] । तां[4] धुनीमुत्ततारासौ क्षणेन सहवाहन. ॥११४॥
इतो दृष्टावितो दृष्टौ पुरुषौ सह योषिता । इति पृच्छन्स शृण्वंश्च जगामानन्यमानस ॥११५॥
अथ तौ परमारण्ये विश्रान्तो सरसस्तटे । ससीतौ भरतोऽपश्यत् पार्श्वन्यस्तशरासनौ ॥११६॥
प्रभूतदिवसप्राप्त ताभ्यां सीताव्यपेक्षया । षड्भिर्दिनैस्तमुद्देशं भरत प्रतिपन्नवान् ॥११७॥
अवतीर्य तुरङ्गाच्च मार्गं लोचनगोचरम् । गत्वा पद्भ्यां[5] समाश्लिष्य पादौ[6] पद्मस्य मूर्छितः ॥११८॥
ततो विबोधितस्तेन कृत्वा सम्भाषण क्रमात् । मूर्द्धाञ्जलिर्जगादैवं पद्म विनतविग्रह· ॥११९॥
विडम्बनमिद कस्मान्नाथ मे भवता कृतम् । पर राज्यापदेशेन न्यायसर्वस्व कोविद ॥१२०॥
आस्तां तावदिद राज्य जीवितेनापि किं मम । भवता विप्रयुक्तस्य गुरुचेष्टितकारिणा ॥१२१॥
उत्तिष्ठ स्वपुरीं याम प्रसाद कुरु मे प्रभो । राज्य पालय निश्शेष यच्छ मेऽतिसुखासिकाम् ॥१२२॥
भवामि छत्रधारस्ते शत्रुघ्नश्चामराश्रित । लक्ष्मण परमो मन्त्री सर्वं सुविहित ननु ॥१२३॥
पश्चात्तापानलेनाल सन्तप्ता जननी मम । तव लक्ष्मीधरस्यापि वर्तते शोककारिणी ॥१२४॥
ब्रवीत्येवमसौ यावत्केकया तावदागता । वेगिन रथमारुह्य सामन्तशतमध्यगा ॥१२५॥

प्रकारके शब्द कहने लगा तथा शीघ्र ही एक हजार घोड़ोसे युक्त हो रामके मार्गमे चल पड़ा ॥१११॥ वह रामके पाससे लौटकर आये हुए लोगोको आगेकर बड़ी उत्कण्ठासे पवनके समान शीघ्रगामी घोड़ेपर सवार होकर चला ॥११२॥ तथा कुछ ही समयमे उस महाअटवीमे जा पहुँचा जो हाथियोके समूहसे व्याप्त थी, नाना वृक्षोसे जहाँ सूर्यका प्रवेश रुक गया था तथा जो पर्वत और गर्तोंसे अत्यन्त भयंकर थी ॥११३॥ सामने भयंकर नदी थी सो वृक्षोंके बड़े-बड़े लट्ठोसे नावोके समूहको बाँधकर उनका पुल बना वाहनोके साथ-साथ क्षण भरमे पार कर गया ॥११४॥ वह मार्गमे मिलनेवाले लोगोसे पूछता जाता था कि क्या यहाँ आप लोगोने एक स्त्रीके साथ दो पुरुष देखे है और उनके उत्तरको एकाग्र मनसे सुनता हुआ आगे बढ़ता जाता था ॥११५॥

अथानन्तर जो सघन वनमे एक सरोवरके तीरपर विश्राम कर रहे थे तथा जिनके पास ही धनुष रक्खे हुए थे ऐसे सीता सहित रामलक्ष्मणको भरतने देखा ॥११६॥ रामलक्ष्मण, सीताके कारण जिस स्थानपर बहुत दिनमे पहुँच पाये थे भरत उस स्थानपर छह दिनमे ही पहुँच गया ॥११७॥ वह घोड़ेसे उतर पड़ा और जहाँसे राम दिख रहे थे उतने मार्गमे पैदल ही चलकर उनके समीप पहुँचा तथा उनके चरणोका आलिङ्गन कर मूर्च्छित हो गया ॥११८॥ तदनन्तर रामने सचेत किया सो क्रमसे वार्तालाप कर नम्रीभूत हो हाथ जोड़ शिरसे लगाकर इस प्रकार कहने लगा कि हे नाथ ! राज्य देकर आपने मेरी यह क्या विडम्बना की है ? आप ही न्यायके जाननेवाले अतिशय निपुण हो ॥११९-१२०॥ उत्तम चेष्टाओके धारण करनेवाले आपसे पृथक् रहकर मुझे यह राज्य तो दूर रहे जीवनसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥१२१॥ हे प्रभो ! उठो, अपनी नगरीको चले, मुझपर प्रसन्नता करो, समस्त राज्यका पालन करो और मुझे सुखकी अवस्था देओ ॥१२२॥ मै आपका छत्र धारक होऊँगा, शत्रुघ्न चमर ढोलेगा और लक्ष्मण उत्कृष्ट मन्त्री होगा, ऐसा करनेसे ही सब ठीक होगा ॥१२३॥ मेरी माता पश्चात्तापरूपी अग्निसे अत्यन्त संतप्त हो रही है तथा आपकी और लक्ष्मणकी माता भी निरन्तर शोक कर रही है ॥१२४॥ जब तक भरत इस प्रकार कह रहा था तब तक सैकड़ों सामन्तोंके मध्य गमन करने-

---

१. हस्तिसमूहयुक्ताम् । २. नौकाना । ३ समूहान् । ४. नदीम् । ५. पद्भ्या म० (?) । ६. रामस्य ।

दृष्ट्वा परमशोकेन निर्भरीकृतमानसा । हाकारमुखरा चेतावालिंग्य रुदिता चिरम् ॥१२६॥
ततोऽस्रसरितश्छेदे विप्रलापेऽतिखेदिता । क्रमात्सम्भाषणं कृत्वा केकयैवमभाषत ॥१२७॥
पुत्रोत्तिष्ठ पुरीं याम· कुरु राज्यं सहानुज । ननु त्वया विहीनं मे सकलं विपिनायते[1] ॥१२८॥
भरत शिक्षणीयोऽयं तवात्यन्तमनीषिण । स्त्रैणेन नष्टबुद्धेर्मे क्षमस्व दुरनुष्ठितम् ॥१२९॥
ततः पद्मो जगादैवं किं न वेत्सि त्वमम्बिके । क्षत्रिया ननु कुर्वन्ति सकृत्कार्यमनन्यथा ॥१३०॥
उक्तं तातेन यत्सत्यं तत्कर्तव्यं मया त्वया । भरतेन च दुष्कीर्तिर्माभूदस्य जगत्त्रये ॥१३१॥
पुनश्चोवाच भरत भ्रातर्मा गा विचित्तताम्[2] । [3]शङ्कसे यद्यनाचाराद्राज्य मदनुमोदनात् ॥१३२॥
इत्युक्त्वा पुनरप्यस्य पद्मो राज्याभिषेचनम् । चकार कानने रम्ये समक्षं सर्वभूभृताम् ॥१३३॥
प्रणम्य केकया सान्त्वं सम्भाष्य च पुन. पुन । भ्रातरं च परिष्वज्य प्राहिणोत् सोऽतिकृच्छ्रत ॥१३४॥
तौ विधाय यथायोग्यमुपचारं ससीतयोः । रामलक्ष्मणयोर्यातौ मातापुत्रौ यथागतम् ॥१३५॥
परिध्वस्ताखिलद्वेषं सर्वप्रकृतिसौख्यदम् । चकार भरतो राज्यं प्रजासु जनकोपम ॥१३६॥
राज्ये तथाविधेऽप्यस्य धृतिर्नाभूदपि क्षणम् । दुस्सहं दधमानस्य शोकशल्यं मनस्विन· ॥१३७॥
त्रिकालमरनाथस्य वन्दारुर्भोगमन्दधी· । ययौ श्रोतुं च सद्धर्मं चैत्यमस्येयती धृति· ॥१३८॥

वाली केकयी वेगशाली रथपर सवार हो वहाँ आ पहुँची ॥१२५॥ राम लक्ष्मणको देखकर उसका हृदय बहुत भारी शोकसे भर गया। हा हा कार करती हुई वह दोनोका आलिङ्गन कर चिर काल तक रोती रही ॥१२६॥

तदनन्तर जो विलाप करती-करती अत्यन्त खिन्न हो गई थी ऐसी केकयी अश्रुरूपी नदीकी धारा टूटनेपर क्रमसे वार्तालाप कर इस प्रकार बोली कि हे पुत्र! उठो, नगरीको चले, छोटे भाइयोके साथ राज्य करो, तुम्हारे बिना मुझे यह सब राज्य वनके समान जान पड़ता है ॥१२७-१२८॥ तुम अतिशय बुद्धिमान् हो, यह भरत तुम्हारी शिक्षाके योग्य है अर्थात् इसे शिक्षा देकर ठीक करो, स्त्रीपनाके कारण मेरी बुद्धि नष्ट हो गई थी अतः मेरे इस कुकृत्यको क्षमा करो ॥१२९॥ तदनन्तर रामने कहा कि हे माता! क्या तुम यह नही जानती हो कि क्षत्रिय स्वीकृत कार्यको कभी अन्यथा नहीं करते है—एक बार कार्यको जिस प्रकार स्वीकृत कर लेते है उसी प्रकार उसे पूर्ण करते हैं ॥१३०॥ पिताने जो सत्य वचन कहा था उसकी पूर्ति मुझे तुझे तथा भरत-सभीको करनी चाहिये। 'पिताकी अपकीर्ति जगत्त्रयमें न फैले' इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है ॥१३१॥ केकयीसे इतना कहकर उन्होंने भरतसे कहा कि हे भाई! तू वैचित्य अर्थात् द्विविधाको प्राप्त मत हो। यदि तू अनाचारसे डरता है तो यह अनाचार नही है क्योंकि मैं स्वयं इस कार्यकी तुझे अनुमति दे रहा हूँ ॥१३२॥ इतना कहकर रामने मनोहर वनमें सब राजाओके समक्ष भरतका पुनः राज्याभिषेक किया ॥१३३॥ तदनन्तर केकयीको प्रणामकर सान्त्वना देते हुए बार-बार संभाषण कर और भाईका आलिङ्गन कर बड़े कष्टसे सबको वापिस विदा किया ॥१३४॥ इस प्रकार माता और पुत्र अर्थात् केकयी और भरत, सीता सहित रामलक्ष्मणका यथा योग्य उपचार कर जैसे आये थे वैसे लौट गये ॥१३५॥

अथानन्तर भरत, पिताके समान, प्रजापर राज्य करने लगा। उसका राज्य समस्त शत्रुओसे रहित तथा समस्त प्रजाको सुख देनेवाला था ॥१३६॥ तेजस्वी भरतने अपने मनमें असह्नीय शोकरूपी शल्यको धारण कर रहा था इसलिए ऐसे व्यवस्थित राज्यमे भी उसे क्षणभरके लिए संतोष नहीं होता था ॥१३७॥ वह तीनों काल अरनाथ भगवान्की वन्दना करता था भोगोंसे सदा उदास रहता था और समीचीन धर्मका श्रवण करनेके लिए मन्दिर जाता था

---

१. विपिनमिवाचरति । २. विचिन्तता म० । ३. 'सकासय घनारातीन्नाय मदनुमोदनात्' ब० ।

तत्राचार्यो द्युतिर्नाम [1]स्वपरागमपारग । महता साधुसघेन सतत कृतसेवन ॥१३९॥
अग्रतोऽवग्रहं तस्य चकार भरत सुधी । पद्मदर्शनमात्रेण करिष्ये मुनितामिति ॥१४०॥
कृतावग्रहमेव तमुवाच भगवान् द्युति । कुर्वन् मयूरवृन्दानां नर्तनं धीरया गिरा ॥१४१॥
भव्य भो यावदायाति पद्म पद्मनिरीक्षण । तावद्गृहस्थधर्मेण [3]भवाप्तपरिकर्मक ॥१४२॥
अत्यन्तदुस्सहा चेष्टा निर्ग्रन्थानां महात्मनाम् । परिकर्म विशुद्धस्य जायते सुखसाधना ॥१४३॥
उपरिष्टात् करिष्यामि काले तप इति ब्रुवन् । अनेको मृत्युमायाति नरोतिजडमानस ॥१४४॥
अनर्घ्यरत्नसदृश तपो दिग्वाससामिति । एवमप्यक्षम वक्तु परस्तस्योपमा कुत ॥१४५॥
कनीयांस्तस्य धर्मोऽयमुक्तोऽय गृहिणा जिनै । अप्रमादी भवेत्तस्मिन्निरतो बोधदायिनि ॥१४६॥
यथा रत्नाकरद्वीप मानव कश्चिदागत । रत्न यत्किञ्चिदादत्ते यात्यस्य तदनर्घताम् ॥१४७॥
तथास्मिन्नियमद्वीपे शासने धर्मचक्रिणाम् । य एव नियम कश्चिद् ग्रहीतो यात्यनर्घताम् ॥१४८॥
अहिंसारत्नमादाय विपुल यो जिनाधिपम् । भक्त्यार्चयत्यसौ [4]नाके परमां वृद्धिमश्नुते ॥१४९॥
सत्यव्रतधर स्रग्भिर्य करोति जिनार्चनम् । भवत्यादेयवाक्योऽसौ सत्कीर्तिव्याप्तविष्टप ॥१५०॥
अदत्तादाननिर्मुक्तो जिनेन्द्रान् यो नमस्यति । जायते रत्नपूर्णानां [5]निधीनां स विभुर्नरः ॥१५१॥
यो रतिं परनारीषु न करोति जिनाश्रित । सोऽथ गच्छति सौभाग्य सर्वनेत्रमलिम्लुच [6] ॥१५२॥
जिनानर्चति यो भक्त्या कृतावधिपरिग्रह । लभतेऽसावतिस्फीतान् लाभान् लोकस्य पूजितः ॥१५३॥

यही इसका नियम था ॥१३८॥ वहाँ स्व और पर शास्त्रोंके पारगामी तथा अनेक मुनियोंका संघ जिनकी निरन्तर सेवा करता था ऐसे द्युति नामके आचार्य रहते थे ॥१३९॥ उनके आगे बुद्धिमान् भरतने प्रतिज्ञा की कि मै रामके दर्शन मात्रसे मुनिव्रत धारण करूँगा ॥१४०॥ तदनन्तर अपनी गम्भीर वाणीसे मयूर समूहको नृत्य कराते हुए भगवान् द्युति भट्टारक इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करनेवाले भरतसे बोले ॥१४१॥ कि हे भव्य ! कमलके समान नेत्रोंके धारक राम जब तक आते तब तक तू गृहस्थ धर्मके द्वारा अभ्यास कर ले ॥१४२॥ महात्मा निर्ग्रन्थ मुनियोंकी चेष्टा अत्यन्त कठिन है पर जो अभ्यासके द्वारा परिपक्व होते है उन्हें उसका साधन करना सरल हो जाता है ॥१४३॥ 'मै आगे तप करूँगा' ऐसा कहनेवाले अनेक जड़बुद्धि मनुष्य मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं पर तप नही कर पाते हैं ॥१४४॥ निर्ग्रन्थ मुनियोंका तप अमूल्य रत्नके समान है' ऐसा कहना भी अशक्य है फिर उसकी अन्य उपमा तो दी क्या सकती है ? ॥१४५॥ गृहस्थोंके धर्मको जिनेन्द्र भगवान्ने मुनिधर्मका छोटा भाई कहा है सो बोधिको प्रदान करनेवाले इस धर्ममें भी प्रमाद रहित होकर लीन रहना चाहिये ॥१४६॥ जैसे कोई मनुष्य रत्नद्वीप मे गया वहाँ वह जिस किसी भी रत्नको उठाता है वही उसके लिए अमूल्यताको प्राप्त हो जाता है इसी प्रकार धर्मचक्रकी प्रवृत्ति करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्के शासनमे जो कोई इस नियमरूपी द्वीपमे आकर जिस किसी नियमको ग्रहण करता है वही उसके लिए अमूल्य हो जाता है ॥१४७-१४८॥ जो अत्यन्त श्रेष्ठ अहिंसारूपी रत्नको लेकर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है वह स्वर्गमे परम बृद्धिको प्राप्त होता है ॥१४९॥ जो सत्य व्रतका धारी होकर मालाओं से भगवान्की अर्चा करता है उसके वचनोंको सब ग्रहण करते है तथा उज्ज्वल कीर्तिसे वह समस्त संसारको व्याप्त करता है ॥१५०॥ जो अदत्तादान अर्थात् चोरीसे दूर रहकर जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करता है वह रत्नोंसे परिपूर्ण निधियोंका स्वामी होता है ॥१५१॥ जो जिनेन्द्र भगवान्की सेवा करता हुआ परस्त्रियोंमें प्रेम नहीं करता है वह सबके नेत्रोंको हरण करनेवाला परम सौभाग्यको प्राप्त होता है ॥१५२॥ जो परिग्रहकी सीमा नियतकर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र

१. स्वकीयपरकीयशास्त्रपारगामी । २ प्रतिज्ञाम् । ३ प्राप्ताभ्यासः । ४. स्वर्गे । ५. नदीना म० (?) । ६. सर्वजनमनोहरः ।

आहारदानपुण्येन जायते भोगनिर्भर । विदेशमपि यातस्य सुखिता तस्य सर्वदा ॥१५४॥
अभीतिदानपुण्येन जायते भयवर्जित । महासङ्कटयातोऽपि निरुपद्रवविग्रह ॥१५५॥
जायते ज्ञानदानेन विशालसुखभाजनम् । कलार्णवामृत चासौ गण्डूष कुरुते नर ॥१५६॥
य करोति विभावर्यामाहारपरिवर्जनम् । सर्वारम्भप्रवृत्तोऽपि यात्यसौ सुखदा गतिम् ॥१५७॥
वन्दन यो जिनेन्द्राणा त्रिकाल कुरुते नर । तस्य भावविशुद्धस्य सर्व नश्यति दुष्कृतम् ॥१५८॥
सामोदैर्भूजलोद्भूतै पुष्पैर्यो जिनमर्चति । विमान पुष्पक प्राप्य स क्रीडति यथेप्सितम् ॥१५९॥
भावपुष्पैर्जिन यस्तु पूजयत्यतिनिर्मलै । लोकस्य पूजनीयोऽसौ जायतेऽत्यन्तसुन्दर ॥१६०॥
धूप यश्चन्दनाद्युत्थागुर्वादिप्रभव सुधी । जिनाना ढौकयत्येष जायते सुरभि[1] सुर ॥१६१॥
यो जिनेन्द्रालये दीप ददाति शुभभावत । स्वयम्प्रभशरीरोऽसौ जायते सुरसद्मनि ॥१६२॥
छत्रचामरलम्बूषपताकादर्पणादिभि । भूषयित्वा जिनस्थान याति विस्मयिनी श्रियम् ॥१६३॥
समालभ्य जिनान् गन्धै सौरभ्यव्याप्तदिङ्मुखै । सुरभि[2] प्रमदानन्दो जायते दयित पुमान् ॥१६४॥
अभिषेक जिनेन्द्राणा कृत्वा सुरभिवारिणा । अभिषेकमवाप्नोति यत्र यत्रोपजायते ॥१६५॥
अभिषेक जिनेन्द्राणा विधाय क्षीरधारया । विमाने क्षीरधवले जायते परमद्युति ॥१६६॥
दधिकुम्भैर्जिनेन्द्राणा य करोत्यभिषेचनम् । दध्याभकुट्टिमे स्वर्गे जायते स सुरोत्तम ॥१६७॥
सर्पिषा जिननाथानां कुरुते योऽभिषेचनम् । कान्तिद्युतिप्रभावाढ्यो विमानेश स जायते ॥१६८॥

जिनेन्द्र भगवान्‌की अर्चा करता है वह अतिशय विस्तृत लाभोको प्राप्त होता है तथा लोग उसकी पूजा करते हैं ॥१५३॥ आहार-दानके पुण्यसे यह जीव भोग-निर्भर होता है अर्थात् सब प्रकारके भोग इसे प्राप्त होते हैं। यदि यह परदेश भी जाता है तो वहाँ भी उसे सदा सुख ही प्राप्त होता है ॥१५४॥ अभयदानके पुण्यसे यह जीव निर्भय होता है और बहुत भारी सकटमे पड़कर भी उसका शरीर उपद्रवसे शून्य रहता है ॥१५५॥ ज्ञानदानसे यह जीव विशाल सुखो का पात्र होता है और कलारूपी सागरसे निकले हुए अमृतके कुल्ले करता है ॥१५६॥ जो मनुष्य रात्रिमे आहारका त्याग करता है वह सब प्रकारके आरम्भमे प्रवृत्त रहनेपर भी सुखदायी गतिको प्राप्त होता है ॥१५७॥ जो मनुष्य तीनो कालमे जिनेन्द्रभगवान्‌की वन्दना करता है उसके भाव सदा शुद्ध रहते है तथा उसका सब पाप नष्ट हो जाता है ॥१५८॥ जो पृथिवी तथा जलमे उत्पन्न होनेवाले सुगन्धित फूलोसे जिनेन्द्रभगवान्‌की अर्चा करता है वह पुष्पक विमानको पाकर इच्छानुसार क्रीड़ा करता है ॥१५९॥ जो अतिशय निर्मल भावरूपी फूलोसे जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है वह लोगोंके द्वारा पूजनीय तथा अत्यन्त सुन्दर होता है ॥१६०॥ जो बुद्धिमान् चन्दन तथा कालागुरु आदिसे उत्पन्न धूप जिनेन्द्रभगवान्‌के लिए चढ़ाता है वह मनोज्ञ देव होता है ॥१६१॥ जो जिनमन्दिरमे शुभ भावसे दीपदान करता है वह स्वर्गमे देदीप्यमान शरीरका धारक होता है ॥१६२॥ जो मनुष्य छत्र, चमर, फन्नूस, पताका तथा दर्पण आदिके द्वारा जिनमन्दिरको विभूषित करता है वह आश्चर्यकारक लक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥१६३॥ जो मनुष्य सुगन्धिसे दिशाओको व्याप्त करनेवाली गन्धसे जिनेन्द्रभगवानका लेपन करता है वह सुगन्धिसे युक्त, स्त्रियोको आनन्द देनेवाला प्रिय पुरुष होता है ॥१६४॥ जो मनुष्य सुगन्धित जलसे जिनेन्द्रभगवान्‌का अभिषेक करता है वह जहाँ-जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ अभिषेक को प्राप्त होता है ॥१६५॥ जो दूधकी धारासे जिनेन्द्रभगवान्‌का अभिषेक करता है वह दूधके समान धवल विमानमें उत्तमकान्तिका धारक होता है ॥१६६॥ जो दहीके कलशोसे जिनेन्द्रभगवान्‌का अभिषेक करता है वह दहीके समान फर्सवाले स्वर्गमे उत्तम देव होता है ॥१६७॥ जो घीसे जिनदेवका अभिषेक करता है वह कान्ति द्युति और प्रभावसे युक्त विमानका स्वामी

१. रत्य म० । २. सुगन्धियुक्तः ।

अभिषेकप्रभावेण श्रूयन्ते बहवो बुधा । पुराणेऽनन्तवीर्याद्या [1]द्युभूलब्धाभिषेचनाः ॥१६९॥
भक्त्या वल्युपहार य कुरुते जिनसद्मनि । सम्प्राप्नोति परां भूतिमारोग्य स सुमानस ॥१७०॥
गीतनर्तनवादित्रैर्य. करोति महोत्सवम् । जिनसद्मन्यसौ स्वर्गे लभते परमोत्सवम् ॥१७१॥
भवन यस्तु जैनेन्द्र निर्मापयति मानव । तस्य भोगोत्सव शक्य केन वक्तु सुचेतस ॥१७२॥
प्रतिमा यो जिनेन्द्राणा कारयत्यचिरादसौ । सुरासुरोत्तमसुख प्राप्य याति पर पदम् ॥१७३॥
व्रतज्ञानतपोदानैर्यान्युपात्तानि देहिन । सर्वैस्त्रिष्वपि कालेषु पुण्यानि भुवनत्रये ॥१७४॥
एकस्मादपि जैनेन्द्रबिम्बाद् भावेन कारितात् । यत्पुण्य जायते तस्य न सम्मान्त्यतिमात्रतः ॥१७५॥
फल यदेतदुद्दिष्ट स्वर्गे सम्प्राप्य जन्तव । चक्रवर्त्यादिता लब्ध्वा तन्मर्त्यत्वेपि भुञ्जते ॥१७६॥
धर्ममेव विधानेन य. कश्चित्प्राप्य मानव । ससारार्णवमुत्तीर्य त्रिलोकाग्रेऽवतिष्ठते ॥१७७॥
फल ध्याना[2]च्चतुर्थस्य [3]षष्ठस्योद्यानमात्रत. । [4]अष्टमस्य तदारम्भे गमने दशमस्य तु ॥१७८॥
द्वादशस्य ततः किञ्चिन्मध्ये पक्षोपवासजम् । फल मासोपवासस्य लभते चैत्यदर्शनात् ॥१७९॥
चैत्याङ्गण समासाद्य याति षाण्मासिक फलम् । फल वर्षोपवासस्य प्रविश्य द्वारमश्नुते ॥१८०॥
फल प्रदक्षिणीकृत्य भुङ्क्ते वर्षशतस्य तु । दृष्ट्वा जिनास्यमाप्नोति फल वर्षसहस्रजम् ॥१८१॥
अनन्तफलमाप्नोति स्तुति कुर्वन् स्वभावत । नहि भक्तेर्जिनेन्द्राणा विद्यते परमुत्तमम् ॥१८२॥
कर्म भक्त्या जिनेन्द्राणा क्षय भरत गच्छति । क्षीणकर्मा पद याति यस्मिन्ननुपम सुखम् ॥१८३॥

देव होता है ॥१६८॥ पुराणमे सुना जाता है कि अभिषेकके प्रभावसे अनन्तवीर्य आदि अनेक विद्वज्जन, स्वर्गकी भूमिमे अभिषेकको प्राप्त हुए हैं ॥१६९॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जिनमन्दिरमे रङ्गावलि आदि का उपहार चढाता है वह उत्तम हृदयका धारक होकर परम विभूति और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७०॥ जो जिनमन्दिरमे गीत, नृत्य तथा वादित्रोसे महोत्सव करता है वह स्वर्गमे परम उत्सवको प्राप्त होता है ॥१७१॥ जो मनुष्य जिनमन्दिर बनवाता है उस सुचेताके भोगोत्सवका वर्णन कौन कर सकता है ? ॥१७२॥ जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान्की प्रतिमा बनवाता है वह शीघ्र ही सुर तथा असुरोके उत्तम सुख प्राप्तकर परम पदको प्राप्त होता है ॥१७३॥ तीनो कालो और तीनो लोकोमे व्रत, ज्ञान, तप और दानके द्वारा मनुष्यके जो पुण्य-कर्म सचित होते हैं वे भावपूर्वक एक प्रतिमाके बनवानेसे उत्पन्न हुए पुण्यकी बराबरी नही कर सकते ॥१७४–१७५॥ इस कहे हुए फलको जीव स्वर्गमे प्राप्तकर जब मनुष्य पर्यायमे उत्पन्न होते हैं तब चक्रवर्ती आदिका पद पाकर वहाँ भी उसका उपभोग करते है ॥१७६॥ जो कोई मनुष्य इस विधिसे धर्मका सेवन करता है वह संसार-सागरसे पार होकर तीन लोकके शिखरपर विराजमान होता है ॥१७७॥ जो मनुष्य जिनप्रतिमाके दर्शनका चिन्तवन करता है वह वेलाका, जो उद्यमका अभिलाषी होता है वह तेलाका, जो जानेका आरम्भ करता है वह चौलाका, जो जाने लगता है वह पाँच उपवासका, जो कुछ दूर पहुँच जाता है बारह उपवासका, जो बीचमे पहुँच जाता है वह पन्द्रह उपवासका, जो मन्दिरके दर्शन करता है वह मासोपवासका, जो मन्दिरके आँगनमें प्रवेश करता है वह छहमासके उपवासका, जो द्वारमे प्रवेश करता है वह वर्षोपवासका, जो प्रदक्षिणा देता है वह सौ वर्षके उपवासका, जो जिनेन्द्रदेवके मुखका दर्शन करता है वह हजार वर्षके उपवासका और जो स्वभावसे स्तुति करता है वह अनन्त उपवासके फलको प्राप्त करता है। यथार्थमें जिनभक्तिसे बढ़कर उत्तम पुण्य नहीं है ॥१७८–१८२॥ आचार्य कहते हैं कि हे भरत ! जिनेन्द्रदेवकी भक्तिसे कर्म क्षयको प्राप्त हो जाते हैं और जिसके कर्म क्षीण हो जाते हैं वह अनुपम सुखसे सम्पन्न परम पदको प्राप्त होता

---

१. स्वर्गवसुधाप्राप्ताभिषेकाः । २. वेलोपवासस्य । ३. दिनत्रयोपवासस्य । ४. चतुर्दिनोपवासस्य ।

उपजातिः

बहुप्रकारैर्मरणैर्जनोऽयं प्रतर्क्यते दु खसहस्रभागी ।
[1]क्षाराणवस्येव तटे प्रसुप्तो मत्तोऽतिवेगप्रसृतोर्मिजाले ॥१६३॥

विधाय राज्य घनपापदिग्धो हा क प्रपत्स्ये नरक तु घोरम्[2] ।
शरासिचक्रागनगान्धकार किं वा नु तिर्यक्त्वमनेकयोनिम् ॥१६४॥

लब्ध्वापि जैन समय यदेतन्मनो मदीय[3] दुरितानुबद्धम् ।
करोति नो निस्पृहतामुपेत्य विमुक्तिदक्ष निरगारधर्मम् ॥१६५॥

एव च चिन्ता सतत प्रपन्नो दुष्कर्मविध्वसनहेतुभूताम् ।
पुराणनिर्ग्रन्थकथाप्रसक्तो ददर्श राजा न रविं न चन्द्रम् ॥१६६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथरामभरताना प्रव्रज्यावनप्रस्थानराज्याभिधान नाम द्वात्रिंशत्तम पर्व ॥३२॥

द्वारा छोड़े हुए शस्त्रसे, अथवा तीक्ष्ण शूलसे मरणको प्राप्त हो जाता है ॥१६२॥ यह प्राणी अनेक प्रकारके मरणोंसे हजारो प्रकारके दुःख भोगता हुआ भी निश्चिन्त बैठा है सो ऐसा जान पड़ता है मानो कोई मत्त मनुष्य वेगसे फैलनेवाली लहरोके समूहसे निर्भय हो लवणसमुद्रके तटपर सोया है ॥१६३॥ हाय हाय, मै राज्य कर तीव्र पापसे लिप्त होता हुआ जहाँ बाण, खड्ग, चक्र आदि शस्त्र, तथा शाल्मली आदि वृक्षों और पहाड़ोके कारण घोर अन्धकार व्याप्त है ऐसे किस भयंकर नरकमे पड़ूंगा अथवा अनेक योनियोसे युक्त तिर्यञ्च पर्यायको प्राप्त होऊँगा ? ॥१६४॥ मेरा यह मन जैनधर्मको पाकर भी पापोसे लिप्त हो रहा है तथा निःस्पृहताको प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करानेमे समर्थ मुनिधर्मको धारण नही कर रहा है ॥१६५॥ इस प्रकार जो पापकर्मके नाशमे कारणभूत चिन्ताको निरन्तर प्राप्त था तथा जो प्राचीन मुनियोंकी कथामे सदा लीन रहता था ऐसा राजा भरत न सूर्यकी ओर देखता था न चन्द्रमाकी ओर ॥१६६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमे राजा दशरथकी दीक्षा, रामका वनगमन और भरतके राज्याभिषेकका वर्णन करनेवाला बत्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३२॥

१. लवणसमुद्रस्येव, क्षीरार्णव-म० । २. कुघोर म० । ३. न्मदान्मदीय म० ।

त्रयस्त्रिंशत्तमं पर्व

ततो जनोपभोग्यानां प्रदेशानां समीपतः । रमणीयान् परिप्राप पद्मस्तापससंश्रयान् ॥१॥
तापसा जटिलास्तत्र नानावल्कलधारिणः । सुस्वादुफलसम्पूर्णाः पादपा इव भूरयः ॥२॥
विशालपत्रसञ्छन्ना मठकाः सवितर्दिका[1] । पलाशोदुम्बरैधानां पूलिकाभिर्युता क्वचित् ॥३॥
[2]अकृष्टपच्यबीजेन शुष्यता पूरिताङ्गणाः । वर्तयद्भिः सुविश्रब्धैः रोमन्थं राजिता मृगैः ॥४॥
सजटैर्वटुभिर्युक्ता रटद्भिः सततं पटु । ललितोच्छ्रितपुच्छेण तार्णकेन कृताजिराः ॥५॥
पठद्भिर्विशदं युक्ताः शारिकाशुककौशिकैः । वीरुधां पुष्परम्याणां छायासु समवस्थितैः ॥६॥
कन्याभिर्घटकैः स्वादु वारिणा भ्रातृतेच्छितैः । पूर्णालबालकैर्वालैस्तरुभिः[3] कृतराजनाः[4] ॥७॥
फलैर्बहुविधैः पुष्पैर्वासितैः स्वादुवारिभिः । सादरैः स्वागतस्वानैः सार्घदानैस्तथाशनैः ॥८॥
सम्भाषणैः कुटीदानैः शयनैर्मृदुपल्लवैः । तापसैरुपचारैस्ते पूजिताः श्रमहारिभिः ॥९॥
[5]आतिथेयाः स्वभावेन ते हि सर्वत्र तापसाः । रूपेष्वेव प्रकारेषु विशेषेण सुवृत्तयः ॥१०॥
उषित्वा गच्छतां तेषां ययुर्मार्गेण तापसाः । पाषाणानपि तद्रूपं द्रवीकुर्यात् किमन्यकैः ॥११॥
शुष्कपत्राशिनस्तत्र तापसा वायुपायिनः । सीतारूपहृतस्वान्ता धृतिं दूरेण तत्यजुः ॥१२॥

अथानन्तर राम मनुष्योंके उपभोगके योग्य स्थानोंसे हटकर तपस्वियोंके सुन्दर आश्रममें पहुँचे। वहाँ वृक्षोंके समान जटिल अर्थात् जटाधारी (पक्षमें जड़ोंसे युक्त), नाना प्रकारके वल्कलोंको धारण करनेवाले और स्वादिष्ट फलोंसे युक्त बहुतसे तापस रहते थे ॥१-२॥ उस आश्रममें अनेक मठ बने हुए थे जो विशाल पत्तोंसे छाये थे। सबके आगे बैठनेके लिए चबूतरे थे, जो एक ओर कहीं रक्खी हुई पलाश तथा ऊमरकी लकड़ियोंकी गड्डियोंसे सहित थे ॥३॥ बिना जोते बोये अपने आप उत्पन्न होनेवाले धान उनके आँगनोंमें सूख रहे थे तथा निश्चिन्ततासे रोमन्थ करते हुए हरिणोंसे वे सुशोभित थे ॥४॥ निरन्तर जोर-जोरसे रटनेवाले जटाधारी बालकोंसे युक्त गायोंके बछड़े अपनी सुन्दर पूँछ ऊपर उठाकर उन मठोंके आँगनोंमें चौकड़ियाँ भर रहे थे ॥५॥ फूलोंसे सुन्दर लताओंकी छायामें बैठकर स्पष्ट उच्चारण करनेवाले तोता मैना तथा उल्लूक आदि पक्षियोंसे वे मठ सहित थे ॥६॥ कन्याओंने भाई समझ कर घड़ों द्वारा मधुर जलसे जिनकी क्यारियाँ भर दी थीं ऐसे छोटे-छोटे वृक्ष उन मठोंकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥७॥ उन तपस्वियोंने नाना प्रकारके मधुर फल, सुगन्धित पुष्प, मीठा जल, आदरसे भरे स्वागतके शब्द, अर्घके साथ दिये गये भोजन, मधुर संभाषण, कुटीका दान और कोमल पत्तोंकी शय्या आदि थकावटको दूर करनेवाले उपचारसे उनका बहुत सन्मान किया ॥८-९॥ तापस लोग स्वभावसे ही सर्वत्र अतिथि-सत्कार करनेमें निपुण थे फिर इस प्रकारके सुन्दर पुरुषोंके मिलनेपर तो उनका वह गुण और भी अधिक प्रकट हो गया था ॥१०॥ रामलक्ष्मण वहाँ बसकर जब आगे जाने लगे तब वे तापस उनके मार्गमें आ गये सो ठीक ही है क्योंकि उनका रूप पाषाणोंको भी द्रवीभूत कर देता था फिर औरोंकी तो बात ही क्या थी? ॥११॥ उस आश्रममें जो तापस रहते थे उन्होंने सुन्दर रूप कहाँ देखा था? वे सूखे पत्ते खाकर तथा वायुका पानकर जीवन बिताते थे इसलिए सीताका रूप देखते ही उनका चित्त हरा गया जिससे उन्होंने धीरजको

---

१ वितर्दिकासहिताः । २. अकृष्टपच्यमानेन म० । ३. बालस्तरुभिः म० । ४. कृतराजनः म० । ५. अतिथिषु साधवः ।

तानूचुस्तापसा वृद्धा सान्त्ववाचा पुनः पुनः । तिष्ठत यदि नास्माकमाश्रमे श्रृणुत ततः ॥१३॥
सर्वातिथ्यसमेतास्वप्यटवीषु विचक्षणौ । विश्रम्भं जातु मा गाता नारीष्विव नदीष्विव ॥१४॥
तापसप्रमदा दृष्ट्वा पद्मं पद्मनिरीक्षणम् । लक्ष्मणं च जहुः सर्वं कर्तव्यं शून्यविग्रहाः ॥१५॥
काश्चिदुत्कण्ठया युक्तास्तन्मार्गाहितलोचनाः । व्रजन्त्यन्यापदेशेन सुदूरं विह्वलात्मिकाः ॥१६॥
मधुरं ब्रुवते काश्चिद्भवन्तोऽस्माकमाश्रमे । किं न तिष्ठन्तु सर्वं न करिष्यामो यथोचितम् ॥१७॥
अतीत्य त्रीनितः क्रोशानरण्यानी[1] जनोज्झिता । महानोकहसञ्छन्ना हरिशार्दूलसङ्कुला ॥१८॥
समित्फलप्रसूनार्थं तापसा अपि तां भुवम् । न व्रजन्ति महाभीमां दर्भसूचीभिराचिताम् ॥१९॥
चित्रकूटः सुदुर्लङ्घ्यः प्रविशालो महीधरः । भवद्भिः किं न विज्ञातः प्रकोपं येन गच्छत ॥२०॥
तापस्योऽवश्यमस्माभिर्गन्तव्यमिति चोदिताः । कृच्छ्रेण ता न्यवर्तन्त कुर्वाणास्तत्कथां चिरम् ॥२१॥
ततस्ते भूमहीध्राग्रग्रावव्रातसुकर्कशम् । महातरुसमारूढवल्लीजालसमाकुलम् ॥२२॥
क्षुदतिक्रुद्धशार्दूलनखवि[2]क्षतपादपम् । सिंहाहतद्विपोद्गीर्णरक्तमौक्तिकपिच्छलम् ॥२३॥
उन्मत्तवारणस्कन्धत[3]ष्टस्कन्धमहातरुम् । केसरिध्वनिवित्रस्तसमुत्कीर्णकुरङ्गकम् ॥२४॥
सुप्ताजगरनिश्वासवायुपूरितगह्वरम् । वराहयूथपोताग्रविपर्यासीकृतपल्वलम् ॥२५॥
महामहिषशृङ्गाग्रभग्नवल्मीकसानुकम् । ऊर्ध्वीकृतमहाभोगसञ्चरद्भोगिभीषणम् ॥२६॥

दूर छोड़ दिया ॥१२॥ वृद्ध तपस्वियोंने शान्त वचनोंसे उनसे बार-बार कहा कि यदि आप लोग हमारे आश्रममे नहीं ठहरते है तो भी हमारे वचन सुनिये ॥१३॥ यद्यपि ये अटवियाँ सर्व प्रकारके आतिथ्य-सत्कारसे सहित है तो भी नारियो और नदियोके समान इनका विश्वास नही कीजिये । आप स्वयं बुद्धिमान् है ॥१४॥ तपस्वियोंकी स्त्रियोंने कमलके समान नेत्रोवाले राम और लक्ष्मणको देखकर अपने सब काम छोड़ दिये । उनका सर्व शरीर शून्य पड़ गया ॥१५॥ उत्कण्ठासे भरी कितनी ही विह्वल स्त्रियाँ उनके मार्गमे नेत्र लगाकर किसी अन्य कार्यके बहाने बहुत दूर तक चली गईं ॥१६॥ कोई स्त्रियाँ मधुर शब्दोंमे कह रही थीं कि आप लोग हमारे आश्रममे क्यों नही रहते है ? हम आपका सब कार्य यथा योग्य रीतिसे कर देंगी ॥१७॥ यहाँसे तीन कोश आगे चलकर मनुष्योंके सचारसे रहित, बड़े-बड़े वृक्षोसे भरी तथा सिंह, व्याघ्र आदि जन्तुओंसे व्याप्त एक महाअटवी है ॥१८॥ वह अत्यन्त भयंकर है तथा डाभकी सूचियोंसे व्याप्त है । ईंधन तथा फल-फूल लानेके लिए तपस्वी लोग भी वहाँ नहीं जाते हैं ॥१९॥ आगे अत्यन्त दुर्लङ्घ्य, तथा बहुत भारी चित्रकूट नामका पर्वत है सो क्या आप जानते नहीं हैं जिससे क्रोधको प्राप्त हो रहे है ॥२०॥ इसके उत्तरमे राम-लक्ष्मणने कहा कि हे तपस्वियो ! हम लोगोंको अवश्य ही जाना है । इस प्रकार कहने पर वे बडी कठिनाईसे लौटीं और लौटती हुई भी चिरकाल तक उन्हींकी कथा करती रही ॥२१॥

अथानन्तर उन्होने ऐसे महावनमे प्रवेश किया कि जो पृथिवी और पर्वतोंके अग्रभाग के चट्टानोंके समूहसे अत्यन्त कर्कश था तथा बड़े-बड़े वृक्षोंपर चढ़ी हुई लताओंके समूहसे जो व्याप्त था ॥२२॥ जहाँ भूखसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए व्याघ्र नखोंसे वृक्षोंको क्षत-विक्षत कर रहे थे । जो सिंहोंके द्वारा मारे गये हाथियोंके गण्डस्थलसे निकले रुधिर तथा मोतियोंकी कीच से युक्त था ॥२३॥ जहाँ उन्मत्त हाथियोंने अपने स्कन्धोंसे बड़े-बड़े वृक्षोंके स्कन्ध छील दिये थे । जहाँ सिंहोकी गर्जनासे भयभीत हुए मृग इधर-उधर दौड़ रहे थे ॥२४॥ जहाँ सोये हुए अजगरोंकी श्वासोच्छ्वास वायुसे गुफाएँ भरी हुई थीं । तथा सूकर समूहके मुखके अग्रभागके आघात से छोटे-छोटे जलाशय ऊँचे-नीचे हो रहे थे ॥२५॥ बड़े-बड़े भैंसाओंके सींगोंके अग्रभागसे जहाँ

---

१. महद् अरण्यम् अरण्यानी । २. विकृत- म० । ३. छिन्न । तट- म० ।

तरक्षुक्षतसारङ्गरुधिरभ्रान्तमक्षिकम् । कण्टकासक्तपुच्छाग्रप्रताम्यच्चमरीगणम् ॥२७॥
दर्पसम्पूरितश्वाविन्मुक्तसूचीविचित्रितम् । विषपुष्परजोघ्राणघूर्णितानेकजन्तुकम् ॥२८॥
खड्गिखड्गसमुल्लीढतरुस्कन्धच्युतद्रवम् । उद्भ्रान्तगवयव्रातभग्नपल्लवजालकम् ॥२९॥
[1]नानापक्षिकुलक्रूरकूजितप्रतिनादितम् । शाखामृगकुलाक्रान्तचलत्प्राग्भारपादपम् ॥३०॥
तीव्रवेगगिरिस्रोतःशतनिर्दारितक्ष्मम् । वृक्षाग्रविस्फुरत्स्फीतदिवाकरकरोत्करम् ॥३१॥
नानापुष्पफलाकीर्णं विचित्रामोदवासितम् । विविधौषधिसम्पूर्णं वनसस्यसमाकुलम् ॥३२॥
क्वचिन्नील क्वचित्पीत क्वचिद्रक्त हरित्क्वचित् । पिञ्जरच्छायमन्यत्र विविशुर्विपिन महत् ॥३३॥
तत्र ते चित्रकूटस्य निर्झरेष्वतिचारुषु । क्रीडन्तो दर्शयन्तश्च सद्वस्तूनि परस्परम् ॥कुलक (द्वादशभि)
फलानि स्वादुहारीणि स्वदमाना पदे पदे । गायन्तो मधुर हारि किन्नरीणा त्रपाकरम् ॥३५॥
पुष्पैर्जलस्थलोद्भूतैर्भूषयन्तः परस्परम् । सुगन्धिभिर्द्रवैरङ्ग लिम्पन्तस्तरुसम्भवै· ॥३६॥
उद्यानमिव निर्याता विकसत्कान्तिलोचना· । स्वच्छन्दकृतसस्कारा[2] सत्त्वलोचनतस्करा ॥३७॥
लतागृहेषु विश्रान्ता मुहुर्नयनहारिषु । कृतनानाकथासङ्गा किञ्चित्कर्मविधायिन ॥३८॥
व्रजन्तो लीलया युक्ता निसर्गादतिरम्यया । पर्यटन्तो वन चारु त्रिदशा इव नन्दनम् ॥३९॥
पक्षोनै पञ्चभिर्मासैस्तमुद्देशमतीत्य ते । जनै· समाकुल प्रापुर्देशमत्यन्तसुन्दरम् ॥४०॥

वामियोंके शिखर खुद गये थे तथा जो बड़े-बड़े फण ऊँचे उठाकर चलनेवाले साँपोंसे भयङ्कर था ॥२६॥ जहाँ भेड़ियोंके द्वारा मारे गये मृगोंके रुधिरपर मक्खियाँ भिन-भिना रहीं थीं और कटीली झाडियोंमे पूँछके बाल उलझ जानेसे जहाँ चमरी मृगोंके झुण्ड बेचैन हो रहे थे ॥२७॥ जो अहङ्कारसे भरी सेहियोंके द्वारा छोड़ी हुई सूचियोंसे चित्रविचित्र था तथा विषपुष्पोंकी परागके सूँघनेसे जहाँ अनेक जन्तु इधर-उधर घूम रहे थे ॥२८॥ जहाँ गेंडा हाथियोंके गण्ड-स्थलोंके आघातसे खण्डित हुए वृक्षोंके तनोंसे पानी झर रहा था तथा इधर-उधर दौड़ते हुए गवय-समूहने जहाँ वृक्षोंके पल्लव तोड़ डाले थे ॥२९॥ जहाँ नाना पक्षियोंके समूहकी क्रूरध्वनि गूँज रही थी तथा वानर समूहके आक्रमणसे जहाँ वृक्षोंके ऊर्ध्वभाग हिल रहे थे ॥३०॥ तीव्र वेग से बहनेवाले सैकड़ों पहाडी झरनोंसे जहाँ पृथिवी विदीर्ण हो गई थी तथा वृक्षोंके अग्रभागपर जहाँ सूर्यकी किरणोंका समूह देदीप्यमान होता था ॥३१॥ जो नाना प्रकारके फूलों और फलोंसे व्याप्त था, विचित्र प्रकारकी सुगन्धिसे सुवासित था, नाना ओषधियोंसे परिपूर्ण था, और जङ्गली धान्योंसे युक्त था ॥३२॥ जो कहीं नीला था, कहीं पीला था, कहीं लाल था, कहीं हरा था, और कहीं पिङ्गल वर्ण था ॥३३॥ वे तीनों महानुभाव वहाँ चित्रकूटके सुन्दर निर्झरोंमें क्रीडा करते, सुन्दर वस्तुएँ परस्पर एक दूसरेको दिखाते, स्वादिष्ट मनोहर फल खाते, पद-पदपर किन्नरियोंको लज्जित करनेवाला हृदयहारी मधुर गान गाते, जल तथा स्थलमें उत्पन्न हुए पुष्पों से परस्पर एक दूसरेको भूषित करते और वृक्षोंसे निकले हुए सुगंधित द्रवसे शरीरको लिप्त करते हुए इस प्रकार भ्रमणकर रहे थे मानो उद्यानकी सैर करनेके लिए ही निकले हों। उनके सुन्दर नेत्र विकसित हो रहे थे, वे इच्छानुसार शरीरकी सजावट करते थे तथा प्राणियोंके नेत्रों का अपहरण करते थे ॥३४-३७॥ वे बार-बार नेत्रोंको हरण करनेवाले निकुञ्जोंमें विश्राम करते थे, नाना प्रकारकी कथावार्ता करते थे और तरह-तरहकी क्रीड़ाएँ करते थे ॥३८॥ स्वभावसे ही अत्यन्त सुन्दर लीलाके साथ गमन करते हुए वे उस सुन्दर वनमें इस प्रकार भ्रमण कर रहे थे जिस प्रकार कि नन्दन वनमें देव ।॥३९॥ इस प्रकार एक पक्ष कम पाँच मासमें वे उस स्थान को पारकर मनुष्योंसे भरे हुए अत्यन्त सुन्दर अवन्ती देशमें पहुँचे। वह देश गायोंकी गरदनो

१. नानापक्षि कुल क्रूरकूजित प्रतिनादित म० । २. निर्धारितक्ष्य म० ।

गोघण्टारवसम्पूर्णं नानासस्योपशोभितम् । अवन्तीविषय स्फीत ग्रामपत्तनसङ्कुलम् ॥४१॥
मार्गं तत्र कियन्त चिदतिक्रम्य जनोज्झितम् । विषयैकान्तमापुस्ते पृथु स्वाकारधारिण ॥४२॥
जाया न्यग्रोधजा श्रित्वा विश्रान्तास्ते परस्परम् । जगु कस्माद्य देशो दृश्यते जनवर्जित ॥४३॥
सस्यानि कृष्टपच्यानि दृश्यन्तेऽत्रातिभूरिश । उद्यानपादपाश्चैत्ये फलै पुष्पैश्च शोभिता ॥४४॥
पुण्ड्रेक्षुवाटसम्पन्ना ग्रामास्तुङ्गावनिस्थिता । सरास्यच्छिन्नपद्मानि युक्तानि विविधै खगै. ॥४५॥
अध्वाय घटकैर्भग्नै शकटैश्च विसङ्कट । करण्डै कुण्डकैर्दण्डै कुण्डिकाभि कटासनै ॥४६॥
विकीर्णास्तण्डुला माषा मुद्गा सूर्पादयस्तथा । वृद्धोक्षोय मृतो जीर्णगोण्यस्योपरि तिष्ठति ॥४७॥
देशोऽयमतिविस्तीर्ण. शोभते न जनोज्झित । अत्यन्तविषयासङ्गो यथा दीक्षासमाश्रित ॥४८॥
ततोऽत्यन्तमृदुस्पर्शे निषण्ण रत्नकम्बले । देशोद्वासकृतालाप राम पार्श्वस्थकार्मुकम् ॥४९॥
पद्मगर्भदभाभ्या पाणिभ्या पूजितेहिता । द्राग्विश्रमयितु सक्ता सीता प्रेमाम्बुदीर्घिका ॥५०॥
उत्सार्य [1]चोरुलग्ना ता सादरक्रमकोविद । सवाहयितुमासक्तो लक्ष्मणो ज्यायसोदित. ॥५१॥
निरूपय क्वचित्तावद् ग्राम नगरमेव वा । घोष वा लक्ष्मण क्षिप्र श्रान्तेय हि प्रजावती ॥५२॥
ततोऽन्यस्यातितुङ्गस्य वृक्षस्योर्ध्वंसमाश्रित । दृश्यते किञ्चिदत्रेति पद्मेनोच्यत लक्ष्मण. ॥५३॥
सोवोचद्देव पश्यामि रूपपर्वतसन्निभान् । शारदाभ्रसमुत्तुङ्गै शृङ्गजालैर्विराजितान् ॥५४॥

मे बँधे घण्टाओंके शब्दसे परिपूर्ण था, नाना प्रकारके धान्यके सुशोभित था, विस्तृत था और ग्राम तथा नगरोंसे व्याप्त था ॥४०-४१॥

तदनन्तर सुन्दर आकारको धारण करनेवाले वे तीनो, कितना ही मार्ग उल्लंघकर एक अतिशय विस्तृत ऐसे स्थानमें पहुँचे जिसे मनुष्य छोड़कर भाग गये थे ॥४२॥ एक वट वृक्षकी छायामे बैठकर विश्राम करते हुए वे परस्पर कहने लगे कि यह मनुष्योसे रहित क्यो दिखाई देता है ? ॥४३॥ यहाँ अनेको धानके पके खेत दिखाई दे रहे है, बगीचोके ये वृक्ष फलो और फूलोसे सुशोभित है ॥४४॥ ऊँची भूमिपर बसे गाँव पौंडो और ईखोके बागोसे युक्त है, जिनके कमलोको किसीने तोड़ा नही है ऐसे सरोवर नाना प्रकारके पक्षियोसे युक्त हैं ॥४५॥ यह मार्ग फूटे घड़ो, गाड़ियो, पिटारो, कूँड़ो, कुण्डिकाओं और चटाई आदि आसनोसे व्याप्त है ॥४६॥ यहाँ चावल, उड़द, मूँग तथा सूप आदि बिखरे हुए हैं और इधर यह बूढा बैल मरा पड़ा है तथा इसके ऊपर फटी पुरानी गोन लदी हुई है ॥४७॥ यह इतना बड़ा देश मनुष्योसे रहित हुआ ठीक उस तरह शोभित नहीं होता जिस प्रकार कि कोई दीक्षा लेनेवाला साधु विषयोंकी आसक्तिमें पड़कर शोभित नहीं होता ॥४८॥

तदनन्तर देशके ऊजड़ होनेकी चर्चा करते हुए राम अत्यन्त कोमल स्पर्शवाले रत्नकम्बल पर बैठ गये और पास ही उन्होंने अपना धनुष रख लिया ॥४९॥ जो प्रशस्त चेष्टाकी धारक और प्रेमरूपी जलकी मानो वापिका ही थी ऐसी सीता कमलके भीतरी दलके समान कोमल हाथोंसे शीघ्र ही रामको विश्राम दिलाने अर्थात् उनके पाद मर्दन करनेके लिए तैयार हुई ॥५०॥ तब आदरपूर्ण क्रमको जाननेवाला लक्ष्मण, बड़े भाईकी आज्ञा प्राप्त कर जाँघोंसे लगी सीताको अलग कर स्वयं पादमर्दन करने लगा ॥५१॥ रामने लक्ष्मणसे कहा कि हे भाई ! तेरी यह भावज बहुत थक गई है इसलिए शीघ्र ही किसी गाँव, नगर अथवा अहीरोकी बस्तीको देखो ॥५२॥ तब लक्ष्मण एक बड़े वृक्षकी शिखरपर चढ़ा रामने उससे पूछा कि क्या यहाँ कुछ दिखाई देता है ? ॥५३॥ लक्ष्मणने कहा कि हे देव ! जो चाँदीके पर्वतके समान हैं, शरद् ऋतुके

---

१. चारु म० ।

प्राग्भारसिंहकर्णस्थजिनबिम्बोपलक्षितान्। प्रासादान् परमोद्यानान् [1]प्रचलद्धवलध्वजान् ॥५५॥
ग्रामाश्चायतवापीभिः सस्यैश्च कृतवेष्टनान्। नगराणि च गन्धर्वपुरैर्बिभ्रन्ति तुल्यताम् ॥५६॥
दृष्टिगोचरमात्रे तु सन्निवेशाः सुभूरयः। दृश्यन्ते न पुनः कश्चिदेकोऽप्यालोक्यते जनः ॥५७॥
समं किं परिवर्गेण विनष्टाः स्युरिह प्रजाः। उपानीताः किमु म्लेच्छैर्बन्दित्वं क्रूरकर्मभिः ॥५८॥
एकस्तु पुरुषाकारो दृश्यते चातिदूरतः। स्थाणुर्न पुरुषो यः तु ननु चैष चलाकृतिः ॥५९॥
यात्येष किमुतायाति पश्याम्यागच्छतीत्ययम्। तावदायातु मार्गेण जानाम्येनं विशेषतः ॥६०॥
अयं मृग इवोद्विग्नो द्रुतमायाति मानवः। रूक्षोर्द्धमूर्धजो दीनो मलोपहतविग्रहः ॥६१॥
कूर्चाच्छादितवक्षस्को वसानश्चीरखण्डकम्। स्फुटिताङ्घ्रिः स्रवत्स्वेदो दर्शयन् पूर्वदुष्कृतम् ॥६२॥
आनयेममितः क्षिप्रमिति पद्मेन भाषितः। अवतीर्य गतस्तस्य सविस्मय इवान्तिकम् ॥६३॥
दृष्ट्वा तं पुरुषो हृष्टरोमा विस्मयपूरितः। विलम्बितगतिः किञ्चिदकरोदिति मानसे ॥६४॥
समाकम्पितवृक्षोऽयमवतीर्य समागतः। किमिन्द्रो वरुणो दैत्यः किं नागः किन्नरो नरः ॥६५॥
[2]वैवस्वतः शशाङ्को नु वह्निर्वैश्रवणो नु किम्। भास्करो नु भुवं प्राप्तः कोऽयमुत्तमविग्रहः ॥६६॥
इति ध्यायन् महाभीत्या मुकुलीकृत्य लोचने। निश्चेष्टावयवो भूमौ पपाताव्यक्तचेतनः ॥६७॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्र त्वं मा भैषीरिति भाषितः। प्रत्यागतधृतिर्नीतो लक्ष्मणेनान्तिकं गुरोः[3] ॥६८॥

बादलोंके समान ऊँचे शिखरोंसे सुशोभित हैं, जो उपरितन अग्र भागपर जिन-प्रतिमाओंसे सहित हैं, उत्तमोत्तम बगीचोंसे युक्त हैं तथा जिनपर सफेद ध्वजाएँ फहरा रही हैं ऐसे जिनमन्दिरोंको देख रहा हूँ ॥५४-५५॥ लम्बी-चौड़ी वापिकाओं तथा धानके हरे-भरे खेतोंसे घिरे गाँव और गन्धर्वनगरोंकी तुलना धारण करनेवाले नगर भी दिखाई दे रहे हैं। इस प्रकार बहुत भारी वसतिकाएँ दिखाई दे रही हैं परन्तु उनमें आदमी एक भी नहीं दिखाई देता ॥५६-५७॥ क्या यहाँकी प्रजा अपने समस्त परिवारके साथ नष्ट हो गई है अथवा क्रूर कर्म करनेवाले म्लेच्छोंने उसे बन्दी बना लिया है ? ॥५८॥ बहुत दूर, एक पुरुष जैसा आकार दिखाई देता है जो ठूँठ नहीं है पुरुष ही मालूम होता है क्योंकि उसकी प्रकृति चञ्चल है ॥५९॥ परन्तु यह जा रहा है या आ रहा है इसका पता नहीं चलता। कुछ देर तक गौरसे देखनेके बाद लक्ष्मणने कहा कि 'यह आ रहा है' यही जान पड़ता है, अच्छा, मार्गपर आने दो तभी इसे विशेषतासे जान सकूँगा ॥६०॥ लक्ष्मणने फिर देखकर कहा कि यह पुरुष मृगके समान भयभीत होकर शीघ्र ही आ रहा है, इसके शिरके बाल रूखे तथा खड़े हैं, दीन है, इसका शरीर मैलसे दूषित है, लम्बी दाढ़ीसे इसका वक्षःस्थल ढक रहा है, यह फटे चिथड़े पहिने है, इसके पैर फटे हुए हैं, पसीना झर रहा है और पूर्वोपार्जित पाप कर्मको दिखा रहा है ॥६१-६२॥ रामने लक्ष्मणसे कहा कि इसे शीघ्र ही यहाँ बुलाओ। तब लक्ष्मण नीचे उतरकर आश्चर्यके साथ उसके पास गया ॥६३॥ लक्ष्मणको देखकर उस पुरुषको रोमाञ्च उठ आये। वह आश्चर्यसे भर गया और अपनी गति कुछ धीमी कर मनमें इस प्रकार विचार करने लगा ॥६४॥ कि यह जो वृक्षको कम्पित करनेवाला नीचे उतरकर आया है सो क्या इन्द्र है ? या वरुण है ? या दैत्य है ? या नाग है ? या किन्नर है ? या मनुष्य है ? या यम है ? या चन्द्रमा है ? या अग्नि है ? या कुबेर है ? या पृथिवी पर आया सूर्य है ? अथवा उत्तम शरीरका धारी कौन है ? ॥६५-६६॥ इस प्रकार विचार करते-करते उसके नेत्र महाभयसे बन्द हो गये, शरीर निश्चेष्ट पड़ गया और वह मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥६७॥ यह देख लक्ष्मणने कहा कि भद्र ! उठ-उठ डर मत। कुछ देर बाद जब चैतन्य हुआ तब लक्ष्मण उसे रामके पास ले गया ॥६८॥

१ प्रचलच्चलध्वगान् ब०। २. यमः। ३. ज्येष्ठभ्रातुः।

ततः सौम्याननं राममभिरामं समन्ततः । दृष्ट्वा कान्तिसमुद्रस्थं चक्षुरुत्सवकारिणम् ॥६९॥
सीतया शोभितं पार्श्ववर्तिन्यातिविनीतया । मुमोच पुरुषः सद्यः क्षुधादिजपरिश्रमम् ॥७०॥
ननाम चाञ्जलिं कृत्वा शिरसा स्पृष्टभूतलः । छायायां भव विश्वस्त इति चोक्त उपाविशत् ॥७१॥
अपृच्छत्तं ततः पद्मः क्षरन्निव गिरामृतम् । आगतोऽसि कुतो भद्र को वा किंसञ्ज्ञकोऽपि वा ७२॥
सोऽवोचद् दूरतः स्थानाच्छीरगुप्तिः[1] कुटुम्बिकः । देशोऽयं विजनः कस्मादिति पृष्टोऽवदत् पुनः ॥७३॥
सिंहोदर इति ख्यातो देवोऽस्त्युज्जयिनीपतिः । प्रतापप्रणतोदारसामन्तः सुरसन्निभः ॥७४॥
दशाङ्गपुरनाथोऽस्य वज्रकर्णश्रुतिर्महान् । अत्यन्तदयितो भृत्यः कृतानेकाद्भुतक्रियः ॥७५॥
मुक्त्वा त्रिभुवनाधीशं भगवन्तं जिनाधिपम् । निर्ग्रन्थांश्च नमस्कारं न करोत्यपरस्य सः ॥७६॥
साधुप्रसादतस्तस्य सम्यग्दर्शनमुत्तमम् । पृथिव्यां ख्यातिमायातं देवेन किमु न श्रुतम् ॥७७॥
प्रसादः साधुना तस्य कृतः कथमितीरितः । लक्ष्मीधरकुमारेण पद्माभिप्रायसूरिणा ॥७८॥
उवाच पथिको देव समासात् कथयाम्यहम् । प्रसादः साधुना तस्य यथायमुपपादितः ॥७९॥
अन्यदा वज्रकर्णोऽयं दशारण्यसमाश्रिताम् । प्राविशत् सत्त्वसम्पूर्णामटवीं मृगयोद्यतः ॥८०॥
जन्मनः प्रभृति क्रूरः ख्यातोऽयं विष्टपेऽखिले । हृषीकवशगो मूढः सदाचारपराङ्मुखः ॥८१॥
लोभसञ्ज्ञासमासक्तः सूक्ष्मतत्त्वान्धचेतनः[2] । भोगोद्भवमहागर्वपिशाचग्रहदूषितः ॥८२॥
तेन च भ्रमता तत्र कर्णिकारवनान्तरे । दृष्टः शिलातले साधुर्दधानः शममुत्तमम् ॥८३॥
परित्यक्तावृतिर्ग्रीष्मे समाप्तनियमस्थितिः । विहङ्ग इव निःशङ्कः केसरीव भयोज्झितः ॥८४॥

तदनन्तर जिनका मुख सौम्य था, जो सर्व प्रकारसे सुन्दर थे, मानो कान्तिके समुद्रमें ही स्थित थे, नेत्रोंको उत्सव प्रदान करनेवाले थे, और पासमें बैठी हुई अतिशय नम्र सीतासे सुशोभित थे ऐसे रामको देखकर उस पुरुषने क्षुधा आदिसे उत्पन्न हुए श्रमको शीघ्र ही छोड़ दिया ॥६९–७०॥ उसने हाथ जोड़ मस्तकसे भूमिका स्पर्श करते हुए नमस्कार किया तथा 'छायामें विश्रामकर' इस प्रकार कहे जाने पर वह बैठ गया ॥७१॥ तदनन्तर रामने वाणीसे मानो अमृत झराते हुए उससे पूछा कि हे भद्र ! तू कहाँसे आ रहा है और तेरा क्या नाम है ? ॥७२॥ उसने कहा कि मैं बहुत दूरसे आ रहा हूँ और सीरगुप्ति मेरा नाम है। 'यह देश मनुष्योंसे रहित क्यों है ?' इस प्रकार रामके पूछनेपर वह पुनः कहने लगा ॥७३॥ कि जिसने अपने प्रतापसे बड़े-बड़े सामन्तोंको नम्रीभूत कर दिया है तथा जो देवोंके समान जान पड़ता है ऐसा सिंहोदर नामसे प्रसिद्ध उज्जयिनी नगरीका राजा है ॥७४॥ दशाङ्गपुरका राजा वज्रकर्ण जिसने कि अनेक आश्चर्यजनक कार्य किये हैं इसका अत्यन्त प्रिय सेवक है ॥७५॥ वह तीन लोकके अधिपति जिनेन्द्रभगवान् और निर्ग्रन्थ मुनियोंको छोड़कर किसी अन्यको नमस्कार नहीं करता है ॥७६॥ 'साधुके प्रसादसे उसका उत्तम सम्यग्दर्शन पृथिवीमें प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ है' यह क्या आपने नहीं सुना ? ॥७७॥ इसी बीचमें रामका अभिप्राय जाननेवाले लक्ष्मणने उससे पूछा कि हे भाई ! साधुने इस पर किसी तरह प्रसाद किया है ? सो तो बता ॥७८॥ इसके उत्तरमें उस पथिकने कहा कि हे देव ! साधुने जिस तरह इसपर प्रसाद किया यह मैं संक्षेपसे कहता हूँ ॥७९॥

एक समय शिकार खेलनेके लिए उद्यत हुआ वज्रकर्ण दशारण्यपुरके समीपमें स्थित जीवोंसे भरी अटवीमें प्रविष्ट हुआ ॥८०॥ यह वज्रकर्ण जन्मसे ही लेकर समस्त संसारमें अत्यन्त क्रूर प्रसिद्ध था, इन्द्रियोंका वशगामी था, मूर्ख था, सदाचारसे विमुख था, लोभ अर्थात् परिग्रह संज्ञामें आसक्त था, सूक्ष्म तत्त्वके विचारसे शून्य था, और भोगोंसे उत्पन्न महागर्वरूपी पिशाच ग्रहसे दूषित था ॥८१–८२॥ उस अटवीमें घूमते हुए उसने कनेर वनके बीचमें शिलापर विद्यमान उत्तम शान्तिके धारक एक साधु देखे ॥८३॥ उन साधुके ऊपर कोई प्रकारका

१. क्षीरगुप्तिः म० । हलवाहकः । २. चेतसः म० ।

स ग्रावभि करैर्भानोरतिलप्त समन्तत । अभ्याख्यानशतैस्तीव्रैर्दुर्जनस्येव सज्जन ॥८५॥
अश्वारूढ स त दृष्ट्वा कृतान्तसमदर्शन । रत्नप्रभवगम्भीर परमार्थनिवेशनम् ॥८६॥
पापघातकर सर्वभूतकारुण्यमङ्गतम् । कुन्तपाणिरुवाचैव भूपित श्रमणश्रिया ॥८७॥
अत्र कि क्रियते साधो सोऽवोचद्धितमात्मन । अनाचरितपूर्वं यज्जन्मान्तरशतेष्वपि ॥८८॥
जगाद विहसन् भूभृदनया खल्ववस्थया । न किञ्चिदपि ते सौख्य कीदृश हितमात्मन ॥८९॥
मुक्तलावण्यरूपस्य कामार्थरहितस्य च । अचेलस्यासहायस्य कीदृश हितमात्मन ॥९०॥
स्नानालङ्काररहितै परपिण्डोपजीविभि । भवादृशैर्नरै कीदृक् क्रियते हितमात्मन॰ ॥९१॥
दृष्ट्वा तं कामभोगार्तं दयावान् सयतोऽवदत् । हित पृच्छसि कि त्व मा छिन्नाशापाशबन्धनम् ॥९२॥
इन्द्रियैर्वञ्चितान् पृच्छ हितोपायबहिष्कृतान् । [1]मोहेनात्यन्तवृद्धेन भ्राम्यन्ते ये भवाम्बुधौ ॥९३॥
हन्ता सत्त्वसहस्राणामात्मानर्थपरायण । यास्येष नरक घोरमवश्य नष्टचेतन॰ ॥९४॥
नून त्वया न विज्ञाता घोरा नरकभूमय । उत्थायोत्थाय पापेषु[2] त्त्वरा कुरुषे रतिम् ॥९५॥
पृथिव्य सति सप्ताधो नरकाणा सुदारुणा । सुदुर्गन्धा सुदुष्प्रेक्षाः सुदुस्पर्शा सुदुस्तरा ॥९६॥
तीक्ष्णायस्कीलसङ्कीर्णा नानायन्त्रसमाकुला । क्षुरधाराद्रिसयुक्तास्तप्तलोहतलाधिका ॥९७॥
रौरवाद्यवटाक्रान्ता महाध्वान्ता महाभया॰ । असिपत्रवनच्छन्ना महाक्षारनदीयुता ॥९८॥

आवरण नही था, वे घाममे बैठकर अपना नियम पूर्ण कर रहे थे, पक्षीके समान नि शङ्क और सिहके समान निर्भय थे ॥८४॥ जिस प्रकार दुर्जनके अत्यन्त तीखे सैकड़ो कुवचनोसे सज्जन सन्तप्त होता है उसी प्रकार वे साधु भी नीचे पत्थरो और ऊपरसे सूर्यकी किरणोके द्वारा सब ओरसे सन्तप्त हो रहे थे ॥८५॥ जो यमराजके समान दिखाई देता था ऐसे वज्रकर्णने घोड़ेपर चढ़े-चढ़े, समुद्रके समान गम्भीर, परमार्थके ज्ञाता, पापोका विनाश करनेवाले, समस्त प्राणियो की दयासे युक्त एवं श्रमण लक्ष्मीसे विभूषित साधुसे भाला हाथमे लेकर कहा ॥८६-८७॥ कि हे साधो ! यह क्या कर रहे हो ? साधुने उत्तर दिया कि जो पिछले सैकड़ो जन्मोमे भी नहीं किया जा सका ऐसा आत्माका हित करता हूँ ॥८८॥ राजा वज्रकर्णने हँसते हुए कहा कि इस अवस्थामे तो तुम्हें कुछ भी सुख नहीं है फिर आत्माका हित कैसा ? ॥८९॥ जिसका लावण्य और रूप नष्ट हो गया है, जो काम और अर्थसे रहित है, जिसके शरीरपर एक भी वस्त्र नहीं है तथा जिसका कोई भी सहायक नहीं उसका आत्महित कैसा ? ॥९०॥ स्नान तथा अलङ्कारसे रहित एवं परके द्वारा प्रदत्त भोजनपर निर्भर रहनेवाले आप जैसे लोगोके द्वारा आत्महित किस प्रकार किया जाता है ? ॥९१॥ कामभोगसे पीडित राजा वज्रकर्णको देखकर दयालु मुनिराज बोले कि तू आशापाशरूपी बन्धनको तोड़नेवाले मुझसे हित क्या पूछ रहा है ? उनसे पूछ कि जो इन्द्रियोके द्वारा ठगे गये है, हितके उपायोसे दूर है और अत्यन्त बढ़े हुए मोहसे जो संसार-सागरमे भ्रमण कर रहे है ॥९२-९३॥ यह जो तू हजारो प्राणियोका घात करने वाले, आत्माके अनर्थ करनेमे तत्पर एवं सद्-असद्के विचारसे रहित है सो अवश्य ही भयङ्कर नरकमे पड़ेगा ॥९४॥ जो तू उठ-उठकर पापोमे परम प्रीति कर रहा है सो जान पडता है कि तूने भयङ्कर नरककी पृथिवियोको अब तक जाना नहीं है ॥९५॥ इस पृथिवीके नीचे नरकोकी सात पृथिवियाँ हैं जो अत्यन्त भयङ्कर है, अत्यन्त दुर्गन्धसे युक्त है, जिनका देखना अत्यन्त कठिन है, जिनका स्पर्श करना अत्यन्त दुःखदायी है, जिनका पार करना अत्यन्त दुःखकारक है ॥९६॥ लोहेके तीक्ष्ण कॉटोंसे व्याप्त हैं, नाना प्रकारके यन्त्रोसे युक्त है, छुराकी धाराके समान पैने पर्वतोसे युक्त है, जिनका तल भाग तपे हुए लोहेसे भी अधिक दुःखदायी है ॥९७॥ जो रौरव आदि बिलोसे युक्त है, महाअन्धकारसे भरी हैं, महा भय उत्पन्न करनेवाली है, असिपत्र-

५. अभ्याख्यात म० । १. मोदेना- म० । २. पापेषु म० ।

पापकर्मपरिक्लिष्टैर्गजैरिव निरङ्कुशैः । तत्र दु खसहस्राणि प्राप्यन्ते पुरुषाधमैः ॥९९॥
भवन्तमेव पृच्छामि त्वादृशैर्विषयातुरै । क्रियते पापसक्तै कीदृश हितमात्मन ॥१००॥
इन्द्रियप्रभव सौख्य किम्पाकसदृश कथम् । अहन्यहन्युपादाय मन्यसे हितमात्मन ॥१०१॥
हित करोत्यसौ स्वस्य भूतानां यो दयापर । दीक्षितो गृहयातो वा बुधो निर्मलमानस ॥१०२॥
कृत तैरात्मन' श्रेयो ये महाव्रततत्परा । अथवाणुव्रतैर्युक्ता' शेषा दु खस्य भाजनम् ॥१०३॥
परलोकादि[1]हैतस्त्व कृत्वा सुकृतमुत्तमम् । इहलोकेऽधुना पाप कृत्वा यास्यसि दुर्गतिम् ॥१०४॥
अमी निरागस. क्षुद्रा वराका क्षितिशायिन. । अनाथा लोलनयना नित्योद्विग्ना वने मृगा ॥१०५॥
आरण्यतृणपानीयकृतविग्रहधारिण' । अनेकदु खसछन्ना. पूर्वदुष्कृतभोगिन ॥१०६॥
रात्रावपि न विन्दन्ति निद्रां चकितचेतस । साध्वाचारैर्न युक्त ते कुलजैर्हिंसितु नरै ॥१०७॥
अतो ब्रवीमि राजस्त्वा यदीच्छस्यात्मनो हितम् । त्रिधा हिसा परित्यज्य कुर्वंहिसा प्रयत्नतः ॥१०८॥
उच्चैरित्युपदेशोद्यैर्यदासौ प्रतिबोधित । तदा प्रणतिमायात फलैरिव महीरुह' ॥१०९॥
उत्तीर्य प्रसृत सप्ते[2]र्जानुपीडितभूतल । प्रणनामोत्तमाङ्गेन सुसाधु रचिताञ्जलि ॥११०॥
निरीक्ष्य सौम्यया दृष्ट्या तमेव चाभ्यनन्दयत । श्लाघ्योऽय वीक्षित सिद्धो मुनिस्त्यक्तपरिग्रह ॥१११॥
शकुन्तयो मृगाश्चामी धन्या वननिवासिन । शिलातलनिषण्ण ये पश्यन्तीम समाहितम् ॥११२॥
अतिधन्योऽहमप्यद्य मुक्त पापेन कर्मणा । यदेत त्रिजगद्वन्द्य प्राप्त साधुसमागमम् ॥११३॥

वनसे आच्छादित है और अत्यन्त खारे जलसे भरी नदियोसे युक्त है ॥९८॥ जो पाप कार्योंसे संक्लेशको प्राप्त होते रहते है तथा जो हाथियोंके समान निरङ्कुश अर्थात् स्वच्छन्द रहते है ऐसे नीच पुरुष उन पृथिवियोमे हजारो दु ख प्राप्त करते है ॥९९॥ मै आपसे ही पूछता हूँ कि तुम्हारे समान विषयोसे पीड़ित तथा पापोमे लीन मनुष्य आत्माका कैसा हित करते है ? ॥१००॥ किंपाक फलके समान जो इन्द्रियजन्य सुख है उसे प्रतिदिन प्राप्त कर तू आत्माका हित मान रहा है ॥१०१॥ अरे ! आत्माका हित तो वह करता है जो प्राणियोपर दया करनेमे तत्पर रहता हो, विवेकी हो, निर्मल अभिप्रायका धारक हो, मुनि हो अथवा गृहस्थ हो ॥१०२॥ आत्माका कल्याण तो उन्होने किया है जो महाव्रत धारण करनेमे तत्पर रहते है अथवा जो अणुव्रतोसे युक्त होते है, शेष मनुष्य तो दु.खके ही पात्र है ॥१०३॥ तू परलोकमे उत्तम पुण्य कर यहाँ आया है और अब इस लोकमे पाप कर दुर्गतिको जायगा ॥१०४॥ ये वनके निरपराधी, क्षुद्र, दयनीय मृग, जो अनाथ है, चञ्चल नेत्रोके धारक है, निरन्तर उद्विग्न रहते है, जङ्गलके तृण और पानी से बने शरीरको धारण करते है, अनेक दु खोसे व्याप्त हैं, पूर्व भवमे किये पापको भोग रहे है और भयभीत होनेके कारण जो रात्रिमे भी निद्राको नहीं प्राप्त होते है, उत्तम आचारके धारक कुलीन मनुष्योंके द्वारा मारे जानेके योग्य नही है ॥१०५-१०७॥ इसलिए हे राजन् ! मैं तुझसे कहता हूँ कि यदि तू अपना हित चाहता है तो मन वचन कायसे हिंसा छोडकर प्रयत्नपूर्वक अहिंसाका पालन कर ॥१०८॥ इस प्रकार हितकारी उपदेशात्मक वचनोसे जब राजा सम्बोधा गया तब वह फलोसे वृक्षके समान नम्रताको प्राप्त हो गया ॥१०९॥ वह घोड़ेसे उतरकर पैदल चलने लगा तथा पृथिवीपर घुटने टेक, हाथ जोड़ शिर झुकाकर उसने उन उत्तम मुनिराजको नमस्कार किया ॥११०॥ सौम्य दृष्टिसे दर्शन कर उनका इस प्रकार अभिनन्दन किया कि अहो ! आज मैने परिग्रहरहित प्रशंसनीय तपस्वी मुनिराजके दर्शन किये ॥१११॥ वनमे निवास करने वाले ये पक्षी तथा हरिण धन्य हैं जो शिलातलपर विराजमान इन ध्यानस्थ मुनिका दर्शन करते हैं ॥११२॥ आज जो मैं त्रिभुवनके द्वारा वन्दनीय इस साधु समागमको प्राप्त हुआ हूँ सो धन्य

१. परलोकादिहेतुं त्व । २ अश्वात् ।

बन्धुस्नेहमयं बन्धं छित्वा ज्ञाननखैरयम् । केसरीव विनिष्क्रान्तः प्रभुः संसारपञ्जरात् ॥११४॥
अनेन साधुना पश्य वशीकृतमनोरिपुम् । नाग्न्योपकारयोगेन शीलस्थानं प्रपाल्यते ॥११५॥
अहं पुनरतृप्तात्मा तावदस्मिन् गृहाश्रमे । अणुव्रतविधौ रम्ये करोमि परमां धृतिम् ॥११६॥
इति सञ्चिन्त्य जग्राह तस्मात्साधोर्गृहस्थितिम् । चकारावग्रहं[1] चैव भावप्लावितमानसः ॥११७॥
देवदेवं जिनं मुक्त्वा परमात्मानमच्युतम् । निर्ग्रन्थांश्च महाभागान्न नमाम्यपरानिति ॥११८॥
प्रीतिवर्धनसंज्ञस्य मुनेस्तस्य महादरः । चकार महतीं पूजामुपवासं समाहितः ॥११९॥
उपासीनस्य[2] चाख्यातं परमं साधुना हितम् । यत्समाराध्य मुच्यन्ते संसाराद् भव्यदेहिनः ॥१२०॥
सागारं निरगारं च द्विधा चारित्रमुत्तमम् । सावलम्बं गृहस्थानां निरपेक्षं[3] खवाससाम् ॥१२१॥
दर्शनस्य विशुद्धिश्च तपोज्ञानसमन्विता । प्रथमाद्यनुयोगाश्च प्रसिद्धा जिनशासने ॥१२२॥
सुदुष्करं[4] विगेहानां चारित्रमवधार्य सः । पुनः पुनर्मतिं चक्रेऽणुव्रतेष्वेव पार्थिवः ॥१२३॥
निधानमधनेनेव प्राप्तं बिभ्रदनुत्तमम् । धर्म्यध्यानमसौ बुद्ध्वा परमां धृतिमागतः ॥१२४॥
नितान्तक्रूरकर्मायमुपशान्तो महीपतिः । इति प्रमोदमायातः संयतोऽपि विशेषतः ॥१२५॥
गते साधौ तपोयोग्यं स्थानं सुकृतसन्निधिः । विभूत्या परया युक्तः सुलाभः सुखतर्पितः ॥१२६॥
विहितातिथिसन्मानोऽपरेद्युः कृतपारणः । प्रणम्य चरणौ साधोः स्वस्थानमविशन्नृपः ॥१२७॥

हो गया हूँ, पाप कर्मसे छूट गया हूँ ॥११३॥ ये प्रभु सिंहके समान ज्ञानरूपी नखोंके द्वारा बन्धुओंके स्नेहरूपी बन्धनको छोड़कर संसाररूपी पिंजड़ेसे बाहर निकले हैं ॥११४॥ देखो, इन साधुके द्वारा मनरूपी शत्रुको वशकर नग्नताके उपकारसे शील स्थानकी किस प्रकार रक्षा की जा रही है ? ॥११५॥ किन्तु मेरी आत्मा अभी तृप्त नहीं हुई है । अतः मैं इस गृहस्थाश्रममें रहकर रमणीय अणुव्रतके पालनमें ही सन्तोष धारण करता हूँ ॥११६॥

इस प्रकार विचार कर उसने उन मुनिराजसे गृहस्थ धर्म अङ्गीकार किया और भावसे प्लावित मन होकर इस प्रकार प्रतिज्ञा की कि मैं देवाधिदेव तथा गुणोंसे अच्युत परमात्मा जिनेन्द्रदेव और उदार अभिप्रायके धारक निर्ग्रन्थ मुनियोंको छोड़कर अन्य किसीको नमस्कार नहीं करूँगा ॥११७–११८॥ इस प्रकार उसने बड़े आदरसे उन प्रीतिवर्धन मुनिराजकी बड़ी भारी पूजा की और स्थिरचित्त होकर उस दिनका उपवास किया ॥११९॥ समीपमें बैठे हुए राजा वज्रकर्णको मुनिराजने उस परम हितका उपदेश दिया कि जिसकी आराधना कर भव्य प्राणी संसारसे मुक्त हो जाते हैं ॥१२०॥ उन्होंने कहा कि उत्तम चरित्रके दो भेद हैं एक सागार और दूसरा अनागार । इनमेंसे पहला चारित्र बाह्य वस्तुओंके आलम्बनसे सहित है तथा गृहस्थोंके होता है और दूसरा चारित्र बाह्य वस्तुओंकी अपेक्षासे रहित है तथा आकाशरूपी वस्त्रके धारक मुनियोंके ही होता है ॥१२१॥ उन्होंने यह भी बताया कि तप तथा ज्ञानके संयोगसे दर्शनमें विशुद्धता उत्पन्न होती है । साथ ही साथ उन्होंने जिनशासनमें प्रसिद्ध प्रथमानुयोग आदिका वर्णन भी किया ॥१२२॥ यह सब सुननेके बाद भी राजाने निर्ग्रन्थ मुनियोंका चरित्र अत्यन्त कठिन समझकर अणुव्रत धारण करनेका ही बार-बार विचार किया ॥१२३॥ यह जानकर राजा परम संतोषको प्राप्त हुआ कि मुझे उत्कृष्ट धर्म ध्यान क्या प्राप्त हुआ मानो किसी निर्धनको उत्तम खजाना ही मिल गया ॥१२४॥ अत्यन्त क्रूर कार्य करनेवाला यह राजा शान्त हो गया है यह देख मुनिराज भी बहुत हर्षको प्राप्त हुए ॥१२५॥ तदनन्तर पुण्यरूपी यज्ञके धारक मुनिराज तपके योग्य दूसरे स्थान पर चले गये और राजा परम विभूतिसे युक्त हो वहीं रहा आया । उसे उत्तम लाभकी प्राप्ति हुई थी इसलिए सुखसे संतृप्त था ॥१२६॥ दूसरे दिन अतिथिका

१. प्रतिज्ञां । २. समीपस्थितस्य । ३. दिगम्बराणाम् । ४. मुनीनाम् ।

वहन् परमभावेन वज्रकर्णः सदा गुरुम् । बभूव वीतसन्देहश्चिन्तामेवमुपागतः ॥१२८॥
भृत्यो भूत्वा विपुण्योऽहं सिंहोदरमहीभृतः । अकृत्वा विनयं भोगान् कथं सेवे [1]निकारिणः ॥१२९॥
इति चिन्तयतस्तस्य प्रसन्नेनान्तरात्मना । विधिना प्रेर्यमाणस्य मतिरेवं समुद्गता ॥१३०॥
कारयाम्यूर्मिकां स्वार्णीं सुव्रतस्वामिबिम्बिनीम् । दधामि दक्षिणाङ्गुष्ठे तां नमस्कारभागिनीम् ॥१३१॥
घटिता सा ततस्तेन पाणिभासुरपीठिका । पिनद्धा चातिहृष्टेन नयप्रवणचेतसा ॥१३२॥
स्थित्वा सिंहोदरस्याग्रे कृत्वाङ्गुष्ठं पुरः कृती । प्रतिमां तां महाभागो नमस्यति स सन्ततम् ॥१३३॥
रन्ध्रविन्यस्तचित्तेन वैरिणा कथितेऽन्यदा । वृत्तान्तेऽत्र परं कोपं पापः सिंहोदरोऽगमत् ॥१३४॥
माययाह्वयच्चैनं दशाङ्गनगरस्थितम् । वधार्थमुद्यतो मानी मत्तो विक्रमसम्पदा ॥१३५॥
बृहद्गतितनूजस्तु प्रगुणेनैव चेतसा । प्रवृत्तोऽश्वशतेनास्य विनीतो गन्तुमन्तिकम् ॥१३६॥
दण्डपाणिरुवाचैकः पीवरोदारविग्रहः । कुङ्कुमस्थासकोद्भासी तमागत्यैवमुक्तवान् ॥१३७॥
यदि भोगशरीराभ्यां सुनिर्विण्णोऽसि पार्थिव । तत उज्जयिनीं गच्छ नोचेन्नो गन्तुमर्हसि ॥१३८॥
क्रुद्धः सिंहोदरो यत्ते वधं कर्तुं समुद्यतः । अनमस्कारदोषेण कुरु राजन्नभीप्सितम् ॥१३९॥
एवं स गदितो दध्यौ केनाप्येष दुरात्मना । मा सर्यहतचित्तेन भेदं कर्तुमभीप्सितः ॥१४०॥
तं विसर्पन्मदामोदं किञ्चित्खेदमुपागतम् । सोऽपृच्छत्कोऽसि किंनामा कुतो वासि समागतः ॥१४१॥

सत्कार कर उसने पारणा की और फिर मुनिराजके चरणोको प्रणाम कर अपने नगरमे प्रवेश किया ॥१२७॥

अथानन्तर जो परम भक्ति-भावसे गुरुको सदा हृदयमे धारण करता था तथा जिसे किसी प्रकारका सन्देह नही था ऐसा राजा वज्रकर्ण इस प्रकार चिन्ता करने लगा ॥१२८॥ कि मै पुण्यहीन, राजा सिंहोदरका सेवक होकर यदि उसकी विनय नही करता हूँ तो वह दमन करेगा—दण्ड देवेगा तब इस दशामे भोगोका सेवन किस प्रकार करूँगा ॥१२९॥ इस प्रकार चिन्ता करते-करते भाग्यसे प्रेरित राजा वज्रकर्णको अपनी स्वच्छ अन्तरात्मासे यह बुद्धि उत्पन्न हुई ॥१३०॥ कि मै मुनिसुव्रत भगवान्‌की प्रतिमासे युक्त एक स्वर्णकी अंगूठी बनवा कर दाहिने हाथके अंगूठामे धारण करूँ तो मेरा नमस्कार उसीको कहलावेगा ॥१३१॥ इस प्रकार विचारकर उस नीतिनिपुण राजाने, जिसकी पीठिका हाथमे सुशोभित थी ऐसी अंगूठी बनवाई और अत्यन्त हर्षित होकर धारण की ॥१३२॥ अब वह बुद्धिमान्, राजा सिंहोदरके आगे खड़ा होकर तथा अगूठेको आगे कर सदा उस प्रतिमाको नमस्कार करने लगा ॥१३३॥ किसी एक दिन छिद्रान्वेषी वैरीने यह समाचार सिंहोदरसे कह दिया जिससे वह पापी परम कोपको प्राप्त हुआ ॥१३४॥ तदनन्तर पराक्रमरूपी सम्पदासे मत्त मानी सिंहोदर उसका वध करनेके लिए उद्यत हो गया और उसने दशांगपुरमे रहनेवाले वज्रकर्णको छलसे अपने यहाँ बुलाया ॥१३५॥ बृहद्गतिका पुत्र वज्रकर्ण सरल चित्त था इसलिए वह सौ घुड़सवार साथ ले उसके पास जानेके लिए तैयार हो गया। उसी समय जिसके हाथमें लाठी थी, जिसका मोटा तथा ऊँचा शरीर था और जो केशरके तिलकसे सुशोभित हो रहा था ऐसा एक पुरुष आकर उससे इस प्रकार बोला ॥१३६-१३७॥ कि हे राजन् ! यदि तुम भोग और शरीरसे उदासीन हो चुके हो तो तुम उज्जयिनी जाओ अन्यथा जाना योग्य नहीं है ॥१३८॥ हे राजन् ! तुम सिंहोदरको नमस्कार नहीं करते हो इस अपराधसे वह क्रुद्ध होकर तुम्हारा वध करनेके लिए तैयार हुआ है। अतः जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करो ॥१३९॥ उस पुरुषके ऐसा कहने पर वज्रकर्णने विचार किया कि किसी ईर्ष्यालु दुष्ट मनुष्यने भेद करना चाहा है अर्थात् मुझमे और सिंहोदरमे फूट डालनेका उद्योग किया है। इस प्रकार

१. दमनकर्तुः ।

कथं वा तव मन्त्रोऽयं विदितोऽत्यन्तदुर्गमः । एतद्भद्र समाचक्ष्व ज्ञातुमिच्छाम्यशेषतः ॥१४२॥
सोऽवोचत् कुन्दनगरे वणिग्धनपरायणः । समुद्रसङ्गमो नामा यमुना तस्य भामिनी ॥१४३॥
विद्युज्ज्वालाकुले काले प्रसूता जननी च माम् । बन्धुभिर्विद्युदङ्गाख्या मयि तेन नियोजिता ॥१४४॥
क्रमाच्च यौवनं बिभ्रदवन्तीनगरीमिमाम् । आगतोऽस्म्यर्थलाभाय युक्तो वाणिज्यविद्यया ॥१४५॥
वेश्यां कामलतां दृष्ट्वा कामबाणेन ताडितः । न रात्रौ न दिवा यामि निर्वृतिं परमाकुलः ॥१४६॥
एकां रात्रिं वसामीति तया कृतसमागमः । प्रीत्या दृढतरं बद्धो यथा वागुरया मृगः ॥१४७॥
जनकेन ममासख्यैर्यद्वर्षैरर्जितं धनम् । तन्मयास्य सुपुत्रेण षड्भिर्मासैर्विनाशितम् ॥१४८॥
पद्मे द्विरेफवत् सक्तः कामतद्गतमानसः । साहसं कुरुते किं न मानवो योषितां कृते ॥१४९॥
अन्यदा सा पुरः सख्या निन्दन्ती कुण्डलं निजम् । श्रुता मयेति भारेण किं कर्णस्यामुना मम ॥१५०॥
धन्या सा श्रीधरा देवी महासौभाग्यभाविनी । यस्यास्तद्राजते कर्णे मनोज्ञं रत्नकुण्डलम् ॥१५१॥
चिन्तितं च मया तच्चेदपहृत्य सकुण्डलम् । आशां न पूरयाम्यस्यास्तदा किं जीवितेन मे ॥१५२॥
ततो जिहीर्षया तस्य दयितं प्रोह्य जीवितम् । गतोऽहं भवनं राज्ञो रजन्यां तमसावृतः ॥१५३॥
पृच्छन्ती श्रीधरा तस्य मया सिंहोदरं श्रुता । निद्रां न लभसे कस्मान्नाथोद्विग्न इवाधुना ॥१५४॥
सोऽवोचद्देवि निद्रा मे कुतो व्याकुलचेतसः । न मारितो रिपुर्यावन्नमस्कारपराङ्मुखः ॥१५५॥

विचार कर उसने जिसे अत्यधिक हर्ष हो रहा था तथा जो किञ्चित् खेदको प्राप्त था ऐसे उस दूतसे पूछा कि तू कौन है ? कहाँसे आया है ? ॥१४०–१४१॥ और इस अत्यन्त दुर्गम मन्त्रका तुझे कैसे पता चला है ? हे भद्र ! यह कह मैं सब जानना चाहता हूँ ॥१४२॥

वह बोला कि कुन्दनगरमें धनसञ्चय करनेमें तत्पर एक समुद्रसंगम नामक वैश्य रहता था। उसकी स्त्रीका नाम यमुना था। मैं उन्हींका पुत्र हूँ। चूँकि मेरी माताने मुझे उस समय जन्म दिया जो बिजलीकी ज्वालाओंसे व्याप्त रहता है इसलिए बन्धुजनोंने मेरा विद्युदङ्ग नाम रक्खा ॥१४३–१४४॥ क्रमसे यौवनको धारण करता हुआ मैं व्यापारकी विद्यासे युक्त हो धनोपार्जन करनेके लिए इस उज्जयिनी नगरीमें आया था ॥१४५॥ सो यहाँ कामलता नामक वेश्याको देख कर कामबाणसे ताडित हुआ जिससे व्याकुल होकर न दिनमें चैनको पाता हूँ और न रात्रिमें ॥१४६॥ 'मैं एक रात उसके साथ समागम कर रह लूँ' इस प्रीतिने मुझे इस प्रकार अत्यन्त मजबूत बाँध रक्खा जिस प्रकार कि जाल किसी हरिणको बाँध रखता है ॥१४७॥ मेरे पिताने अनेक वर्षोंमें जो धन सञ्चित किया था मुझ सुपूत ने उसे केवल छह माहमें नष्ट कर दिया ॥१४८॥ जिस प्रकार भ्रमर कमलमें आसक्त रहता है उसी प्रकार मेरा मन कामसे दुःखी हो उस वेश्यामें आसक्त रहता था सो ठीक ही है क्योंकि यह पुरुष स्त्रियोंके लिए कौन-सा साहस नहीं करता है ? ॥१४९॥ एक दिन मैंने सुना कि वह वेश्या सखीके सामने अपने कुण्डलकी निन्दा करती हुई कह रही है कि कानोंके भारस्वरूप इस कुण्डलसे मुझे क्या प्रयोजन है ? वह महासौभाग्यका उपभोग करनेवाली श्रीधरा रानी धन्य है जिसके कानमें वह रत्नमयी मनोहर कुण्डल शोभित होता है ॥१५०–१५१॥ मैंने सुनकर विचार किया कि यदि मैं उस उत्तम कुण्डलको चुरा कर इसकी आशा पूर्ण नहीं करता हूँ तो मेरा जीवन किस काम का ? ॥१५२॥ तदनन्तर उस कुण्डलको अपहरण करनेकी इच्छासे मैं अपने प्रिय जीवनकी उपेक्षा कर रात्रिके समय अन्धकारसे आवृत होकर राजाके घर गया ॥१५३॥ वहाँ मैंने रानी श्रीधराको सिंहोदरसे यह पूछती हुई सुना कि हे नाथ ! आज नींदको क्यों नहीं प्राप्त हो रहे हो तथा उद्विग्नसे क्यों मालूम होते हो ? ॥१५४॥ उसने कहा कि हे देवि ! जब तक मैं नमस्कारसे विमुख रहनेवाले

१. वर्षैः । २ भागिनी म० ।

अपमानेन दग्धस्य व्याकुलस्यार्णचिन्तया[1] । अजितप्रत्यनीकस्य विटाक्रान्ताबलस्य च ॥१५६॥
सशल्यस्य दरिद्रस्य भीरोश्च [2]भवदु खत । निद्रा कृपापरीतेव सुदूरेण पलायते ॥१५७॥
निहन्तास्मि न चेदेन नमस्कारपराङ्मुखम् । वज्रकर्णं तत कि मे जीवितेन हतौजस ॥१५८॥
ततोऽह कुलिशेनेव हृदये कृतताडन । रहस्यरत्नमादाय त्यक्त्वा कुण्डलशेमुषी ॥१५९॥
धर्मोद्यतमनस्कस्य सतत साधुसेविन । भवतोऽन्तिकमायातो ज्ञात्वा कुरु निवर्तनम् ॥१६०॥
नागैरञ्जनशैलाभै. प्रक्षरद्गण्डभित्तिभि । सप्तिभिश्च महावेगैर्भटैश्च कवचावृतै ॥१६१॥
तदाज्ञापनया मार्गो निरुद्धोऽयं पुरोऽखिलः । सामन्तै परम क्रूरैर्भवन्त हन्तुमुद्यतै ॥१६२॥
प्रसाद कुरु गच्छाशु प्रतीप धर्मवत्सल । पतामि पादयोरेष तव मद्वचन कुरु ॥१६३॥
अर्थं[3] प्रत्येषि नो राजन् तत. पश्यैतदागतम् । धूलीपटलसच्छन्न परचक्र महारवम् ॥१६४॥
तावत्परागत दृष्ट्वा साधन कुलिशश्रवा[4] । समेतो विद्युदङ्गेन निवृत्तो वेगिवाहनः ॥१६५॥
प्रविश्य च पुर दुर्गं सुवीर -प्रत्यवस्थितै[5]. । विधाय बद्धितोरोध[6] मामन्ताश्चावतस्थिरे ॥१६६॥
प्रविष्ट नगर श्रुत्वा वज्रकर्णं रुषा ज्वलन् । सिंहोदर समायात सर्वसाधनसयुत ॥१६७॥
पुरस्यात्यन्तदुर्गत्वात् साधनक्षयकातर । न स तद्ग्रहणे बुद्धि चकार सहसा नृप ॥१६८॥
समावास्य समीपे च त्वरित प्राहिणोच्चरम् । वज्रकर्णं स गत्वेति बभाणात्यन्तनिष्ठुरम् ॥१६९॥

शत्रु वज्रकर्णको नही मारता हूँ तब तक मेरा चित्त व्याकुल है अत निद्रा कैसे आ सकती है ? ॥१५५॥ जो अपमानसे जल रहा हो, जो ऋणकी चिन्तासे व्याकुल हो, जो शत्रुको नही जीत सका हो, जिसकी स्त्री विटपुरुषके चक्रमे पड़ गई हो, जो शल्यसे सहित दरिद्र हो तथा जो संसारके दु खसे भयभीत हो ऐसे मनुष्यसे दयायुक्त होकर ही मानो निद्रा दूर भाग जाती है ॥१५६–१५७॥ यदि मै नमस्कारसे विमुख रहनेवाले इस वज्रकर्णको नही मारता हूँ तो मुझ निस्तेजको जीवनसे क्या प्रयोजन है ? ॥१५८॥

तदनन्तर यह सुनकर जिसके हृदयमे मानो वज्रकी ही चोट लगी थी ऐसा मै इस रहस्य-रूपी रत्नको लेकर और कुण्डलकी भावना छोड़कर आपके पास आया हूँ क्योकि आपका मन सदा धर्ममे तत्पर रहता है तथा आप सदा साधुओंकी सेवा करते है । हे नाथ ! यह जान कर आप लौट जाइए उज्जैन मत जाइए ॥१५९–१६०॥ उसकी आज्ञा पाकर नगरका यह समस्त मार्ग, जिनके गण्डस्थलसे मद झर रहा है ऐसे अञ्जनगिरिके समान आभावाले हाथियों, महावेगशाली घोड़ो, कवचोंसे आवृत योद्धाओं तथा आपको मारनेके लिए उद्यत क्रूर सामन्तोंसे घिरा हुआ है ॥१६१–१६२॥ अतः हे धर्मवत्सल ! प्रसन्न होओ, शीघ्र ही उलटा वापिस जाओ, मै आपके चरणोंमे पडता हूँ आप मेरा वचन मानो ॥१६३॥ हे राजन् ! यदि आपको विश्वास नही हो तो देखो, धूलीके समूहसे व्याप्त तथा महा कल-कल शब्द करता हुआ यह शत्रुका दल आ पहुँचा है ॥१६४॥ इतनेमें शत्रुदलको आया देख वज्रकर्ण विद्युदङ्गके साथ वेगशाली घोड़ेसे वापिस लौटा ॥१६५॥ और अपने दुर्गम नगरमे प्रवेश कर धीरताके साथ युद्धकी तैयारी करता हुआ स्थित हो गया । बड़े-बड़े सामन्त गोपुरोंको रोक कर खड़े हो गये ॥१६६॥

तदनन्तर वज्रकर्णको नगरमे प्रविष्ट सुन, क्रोधसे जलता हुआ सिंहोदर अपनी सर्व सेनाके साथ वहाँ आया ॥१६७॥ वज्रकर्णका नगर अत्यन्त दुर्गम था । इसलिए सेनाके क्षयसे भयभीत हो राजा सिंहोदरने उसपर तत्काल ही आक्रमण करनेकी इच्छा नहीं की ॥१६८॥ किन्तु सेनाको समीप ही ठहराकर शीघ्र ही एक दूत भेजा । वह दूत वज्रकर्णके पास जाकर बडी

१. ऋणसम्बन्धिचिन्तया । २. भवद्दुखितः म० । ३. विश्वास नो करोषि । ४. वज्रकर्णः म० । ५. समवस्थितः म० । ६. प्रतोलीरोध ।

जिनशासनवर्गेण सदावष्टब्धमानस. । ऐश्वर्यकटकस्त्व मे जात सद्भाववर्जित ॥१७०॥
कुटुम्बभेदने दक्षै श्रमणैर्दुर्विचेष्टितै । प्रोत्साहितो गतोऽस्येतामवस्था नयवर्जित ॥१७१॥
भुङ्क्षे देश मया दत्तमर्हन्त च नमस्यति । अहो ते परमा माया जातेय दुष्टचेतस ॥१७२॥
आगच्छाशु ममाभ्याश प्रणाम कुरु सन्मति । अन्यथा पश्य यातोऽसि मृत्युना सह सङ्गतम् ॥१७३॥
ततस्तद्वचनाद्गत्वा दूतोऽवददिद पुन । एव वज्रश्रुतिर्नाथ ब्रवीति कृतनिश्चयः ॥१७४॥
नगर साधन कोष गृहाण विषय विभो । धर्मद्वार सभार्यस्य यच्छ मे केवलस्य वा ॥१७५॥
कृता मया प्रतिज्ञेय मुञ्चाम्येना मृतोऽपि न । द्रविणस्य भगवान् स्वामी शरीरस्य तु नो मम ॥१७६॥
इत्युक्तोऽप्यपरित्यक्तक्रोध सिंहोदर पुर. । कृत्वा रोधमिम देशमुद्वासयदुज्ज्वलम् ॥१७७॥
इद ते कथित देव देशोद्वासनकारणम् । गच्छामि साम्प्रत शून्यग्रामधानमितोऽन्तिकम् ॥१७८॥
तस्मिन् विमानतुल्येषु दह्यमानेषु सद्मसु । मदीया दुष्कुटी दग्धा तृणकाष्ठविनिर्मिता ॥१७९॥
तत्र गोपायित सूर्प घट पिठरमेव च । आनयामि कुगेहिन्या प्रेरित क्रूरवाक्यया ॥१८०॥
गृहोपकरण भूरि शून्यग्रामेषु लभ्यते । आनयस्व त्वमेवेति सा तु मा भाषते मुहु ॥१८१॥
अथवात्यन्तमेवेद तया मे जनित हितम् । देव कोऽपि भवान् दृष्टो मया येन सुकर्मणा ॥१८२॥
इत्युक्ते करुणाक्लिष्टः पथिक वीक्ष्य दु खितम् । पद्मोऽस्मै रत्नसयुक्त ददौ काञ्चनसूत्रकम् ॥१८३॥
प्रतीत प्रणिपत्यासौ तदादाय त्वरान्वितम् । प्रतियातो निज धाम बभूव च नृपोपम. ॥१८४॥

निष्ठुरतासे बोला ॥१६९॥ कि जिन शासनके वर्गसे जिसका मन सदा अहङ्कार पूर्ण रहता है तथा जो समीचीन भावोसे रहित है ऐसा तू मेरे ऐश्वर्यका कण्टक बन रहा है ॥१७०॥ कुटुम्बो के भेदन करनेमे चतुर, तथा खोटी चेष्टाओसे युक्त मुनियोके द्वारा प्रोत्साहित होकर तू इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है, स्वय नीतिसे रहित है ॥१७१॥ मेरे द्वारा प्रदत्त देशका उपभोग करता है और अरहन्तको नमस्कार करता है। अहो, तुझ दुष्ट हृदयकी यह बड़ी माया ॥१७२॥ तू सुबुद्धि है अत शीघ्र ही मेरे पास आकर प्रणामकर अन्यथा देख, अभी मृत्युके साथ समागम को प्राप्त होता है ॥१७३॥

तदनन्तर वज्रकर्णका उत्तर ले दूतने वापिस जाकर सिहोदरसे कहा कि हे नाथ! निश्चय को धारण करनेवाला वज्रकर्ण इस प्रकार कहता है कि हे विभो! नगर, सेना, खजाना और देश सब कुछ ले लो पर भार्या सहित केवल मुझे धर्मका द्वार प्रदान कीजिए अर्थात् मेरी धर्माराधनामे बाधा नही डालिए ॥१७४-१७५॥ मैने जो यह प्रतिज्ञा की है कि मैं अरहन्त देव और निर्ग्रन्थ गुरुको छोड अन्य किसीको नमस्कार नही करूँगा सो मरते-मरते इस प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ूँगा। आप मेरे धनके स्वामी हैं शरीरके नही ॥१७६॥ इतना कहनेपर भी सिहोदरने क्रोध नहीं छोड़ा और नगरपर घेरा डालकर तथा आग लगाकर इस देशको उजाड़ दिया ॥१७७॥ इस प्रकार हे देव! मैंने आपसे इस देशके ऊजड़ होनेका कारण कहा है अब यहाँ पास ही अपने उजड़े गाँवको जाता हूँ ॥१७८॥ उस गाँवमे विमानके तुल्य जो अच्छे-अच्छे महल थे वे जल गये और उनके साथ तृण तथा काष्ठसे निर्मित मेरी टूटी फूटी कुटिया भी जल गई ॥१७९॥ उस कुटियामे एक जगह सूपा घट तथा भटका छिपाकर रखे थे सो दुष्ट वचन बोलनेवाली स्त्री से प्रेरित हो उन्हें लेने जा रहा हूँ ॥१८०॥ 'सूने गाँवोमे घर गृहस्थीके बहुतसे उपकरण मिल जाते हैं इसलिए तू भी उन्हें ले आ' इस प्रकार वह बार-बार मुझसे कहती रहती है ॥१८१॥ अथवा उसने मेरा यह बहुत भारी हित किया है कि हे देव! पुण्योदयसे मैं आपके दर्शन कर सका हूँ ॥१८२॥ इस प्रकार उस पथिकको दु खी देख दयासे स्वयं दु खी होते हुए रामने उसके लिए अपना रत्नजटित स्वर्णसूत्र दे दिया ॥१८३॥ वह पथिक उसे लेकर तथा विश्वास पूर्वक

१. पश्य जातोऽसि मृत्युना सहसगत: ज०, ब० । २ वज्रकर्ण. । ३. जनरहितमकरोत् ।

अथावोचत्तत पद्मो [1]लक्ष्मणाय दिवाकर । नैदाघो यावदत्यन्त दुस्सहत्व न गच्छति ॥१८५॥
तावदुत्तिष्ठ गच्छाव पुरस्यास्यान्तिक भुवम् । जानकीय तृषाश्रान्ता कुर्वाहारविधिं द्रुतम् ॥१८६॥
एवमित्युदिते याता[2] दशाङ्गनगरस्य ते । समीपे चन्द्रभासस्य चैत्यालयमनुत्तमम् ॥१८७॥
तस्मिन् सजानकीराम प्रणम्यावस्थित सुखम् । तदाहारोपलम्भाय लक्ष्मण सधनुर्गतः ॥१८८॥
विशन् सिंहोदरस्यासौ शिबिर रक्षिमानवै[3] । निरुद्ध कृतनिस्वानै समीरण इवाद्रिभि ॥१८९॥
[5]इमकैर्दुष्कुलोत्पन्नै कि विरोधेन मे समम् । इति सञ्चिन्त्य यातोऽसौ नगर तेन पण्डित ॥१९०॥
गोपुर च समासीददनेकभटरक्षितम् । यस्योपरि स्थित साक्षाद्वज्रकर्ण प्रयत्नवान् ॥१९१॥
ऊचिरे तस्य भृत्यास्त कस्त्वमेतः कुतोऽपि वा । किमर्थं वेति सोऽवोचद्दूरात्प्राप्तोऽन्नलिप्सया ॥१९२॥
ततस्त बालक कान्त दृष्ट्वा विस्मयसङ्गत । आगच्छ प्रविश क्षिप्रमिति वज्रश्रवा जगौ ॥१९३॥
ततस्तुष्ट प्रयातोऽसौ समीप कुलिशश्रुते. । विनीतवेषसम्पन्नो वीक्षित सादर नरै ॥१९४॥
जगाद वज्रकर्णश्च नरमाप्तमय द्रुतम् । अन्न प्रसाधित मह्य भोज्यता रचितादर ॥१९५॥
सोऽवोचन्नात्र भुञ्जेऽहमिति मे गुरुरन्तिके । तमादौ भोजयाम्यन्न नयाम्यस्याहमन्तिकम् ॥१९६॥
एवमस्त्विति सम्भाष्य नृपोऽन्नमतिपुष्कलम् । अदीदपद् वर तस्मै चारुव्यञ्जनपानकम् ॥१९७॥
लक्ष्मीधरस्तदादाय गतो द्विगुणरहसा । भुक्त च तै क्रमेणैतत्तृप्ति च परमा गता ॥१९८॥

उन्हें प्रणामकर अपने घर वापिस लौट गया और राजाके समान सम्पन्न हो गया ॥१८४॥

अथानन्तर रामने कहा कि हे लक्ष्मण ! यह ग्रीष्मकालका सूर्य जब-तक अत्यन्त दुःसह अवस्थाको प्राप्त नहीं हो जाता है तब-तक उठो इस नगरके समीपवर्ती प्रदेशमे चले । यह जानकी प्याससे पीड़ित है इसलिए शीघ्र ही आहारकी विधि मिलाओ ॥१८५–१८६॥ इस प्रकार कहनेपर वे तीनो दशाङ्गनगरके समीप चन्द्रप्रभ भगवान्के उत्तम चैत्यालयमे पहुँचे ॥१८७॥ वहाँ जिनेन्द्र-देवको नमस्कार कर सीता सहित राम तो उसी चैत्यालयमे सुखसे ठहर गये और लक्ष्मण धनुष लेकर आहार प्राप्तिके लिए निकला ॥१८८॥ जब वह राजा सिंहोदरकी छावनीमे प्रवेश करने लगा तब रक्षक पुरुषोंने जोरसे ललकार कर उसे उस तरह रोका जिस तरह कि पर्वत वायुको रोक लेते हैं ॥१८९॥ 'इन नीच कुली लोगोके साथ विरोध करनेसे मुझे क्या प्रयोजन है' ऐसा विचार कर वह बुद्धिमान् लक्ष्मण नगरकी ओर गया ॥१९०॥ जब वह अनेक योद्धाओके द्वारा सुरक्षित उस गोपुर द्वार पर पहुँचा जिसपर कि साक्षात् वज्रकर्ण बड़े प्रयत्नसे बैठा था ॥१९१॥ तब उसके भृत्योंने कहा कि तुम कौन हो ? कहाँसे आये हो ? और किसलिए आये हो ? इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि मै बहुत दूरसे अन्न प्राप्त करनेकी इच्छासे आया हूँ ॥१९२॥ तदनन्तर उस बालकको सुन्दर देख आश्चर्यचकित हो वज्रकर्णने कहा कि आओ, शीघ्र प्रवेश करो ॥१९३॥ तत्पश्चात् सन्तुष्ट होकर लक्ष्मण विनीत वेषमे वज्रकर्णके पास गया । वहाँ सब लोगोंने उसे बड़े आदरसे देखा ॥१९४॥ वज्रकर्णने एक आप्त पुरुषसे कहा कि जो अन्न मेरे लिए तैयार किया गया है वह इसे शीघ्र ही आदरके साथ खिलाओ ॥१९५॥ यह सुन लक्ष्मणने कहा कि मैं यहाँ भोजन नहीं करूँगा । पास ही में मेरे गुरु अग्रज ठहरे हुए हैं पहले उन्हें भोजन कराऊँगा इसलिए मैं यह अन्न उनके पास ले जाता हूँ ॥१९६॥ 'एवमस्तु–ऐसा ही हो' कहकर राजाने उसे उत्तमोत्तम व्यञ्जन और पेय पदार्थोंसे युक्त बहुत भारी अन्न दिला दिया ॥१९७॥ लक्ष्मण उसे लेकर दूने वेगसे रामके पास गया । सबने उसे यथा क्रमसे खाया और खाकर परम तृप्तिको प्राप्त हुए ॥१९८॥

१. लक्ष्मणोऽय म० । २. जाता म० । ३. रक्ष्यमानसैः म० । ४. निरुद्धकृतिनिस्वानै. म० । ५. द्रुमकैः म० ।

ततस्तुष्टोऽवदत् पद्म पश्य लक्ष्मण भद्रताम् । वज्रकर्णस्य येनेदं कृतं परिचयाद् विना ॥१९९॥
जामात्रेऽपि सुसम्पन्नमीदृगन्नं न दीयते । पानकानामहो शैत्यं व्यञ्जनानां च मृष्टता ॥२००॥
अनेनामृतकल्पेन भुक्तेनान्नेन मार्गज । नैदाघोऽपहृतः सद्यः श्रमोऽस्माकं समन्ततः ॥२०१॥
चन्द्रबिम्बमिवाचूर्ण्य शालयोऽमी विनिर्मिताः । धवलत्वेन बिभ्राणा मार्दवं भिन्नसिक्थकाः ॥२०२॥
दुग्ध्वेव दीधितीरिन्दोः कृतमेतच्च पानकम् । नितान्तमच्छतायुक्तं सौरभाकृष्टषट्पदम् ॥२०३॥
घृतक्षीरमिदं जातं कल्पधेनुस्तनादिव । रसनामीदृशी व्यक्तिर्व्यञ्जनेषु सुदुस्तरा ॥२०४॥
अणुव्रतधरः साधुर्वर्णितः पथिकेन सः । अतिथीनां करोत्यन्यः संविभागं क ईदृशम् ॥२०५॥
शुद्धात्मा श्रूयते सोऽयमनन्यप्रणतिः सुधीः । भवार्तिमथनं नाथं जिनेन्द्रं यो नमस्यति ॥२०६॥
ईदृक्शीलगुणोपेतो यद्येषोऽस्माकमग्रतः । तिष्ठत्यरातिना रुद्धस्ततो नो[1] जीवितं वृथा ॥२०७॥
अपराधविमुक्तस्य साधुसेवार्पितात्मनः । समस्ताश्चास्य सामन्ता एकनाथाविरोधिनः ॥२०८॥
तोद्यमानमिमं नूनं सिंहोदरकुभूभृता । भरतोऽपि न शक्नोति रक्षितुं नूतनेश्वरः ॥२०९॥
तस्मादन्यपरित्राणरहितस्यास्य सन्मतेः । क्षिप्रं कुरु परित्राणं व्रज सिंहोदरं वद ॥२१०॥
इदं वाच्यमिदं वाच्यमिति किं शिक्ष्यते भवान् । उत्पन्नः प्रज्ञया साकं प्रभयेव महामणिः ॥२११॥
गुणोच्चारणसव्रीडः कृत्वा शिरसि शासनम् । यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा प्रणम्य [2]प्रमदान्वितः ॥२१२॥

तदनन्तर रामने सन्तुष्ट होकर कहा कि हे लक्ष्मण ! वज्रकर्णकी भद्रता देखो जो इसने परिचयके बिना ही यह किया है ॥१९९॥ ऐसा सुन्दर भोजन तो जमाईके लिए भी नहीं दिया जाता है। अहो ! पेय पदार्थोंकी शीतलता और व्यञ्जनोंकी मधुरता तो सर्वथा आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली है ॥२००॥ इस अमृत तुल्य अन्नके खानेसे हमारा मार्गसे उत्पन्न हुआ गर्मीका समस्त श्रम एक साथ नष्ट हो गया है ॥२०१॥ जो कोमलताको धारण कर रहे हैं, जिनका एक-एक सीत अलग-अलग है, और जो सफेदीके कारण ऐसे जान पड़ते हैं मानो चन्द्रमाके बिम्बको चूर्ण कर ही बनाये गये हैं ऐसे ये धानके चावल हैं ॥२०२॥ जो अत्यन्त स्वच्छतासे युक्त है तथा जो अपनी सुगन्धिसे भ्रमरोंको आकृष्ट कर रहा है ऐसा यह पानक, जान पड़ता है चन्द्रमाकी किरणोंको दुहकर ही बनाया गया है ॥२०३॥ यह घी और दूध तो मानो कामधेनुके स्तनसे ही उत्पन्न हुआ है अन्यथा व्यञ्जनोंमें रसोंकी ऐसी व्यक्तता कठिन ही है ॥२०४॥ पथिकने यह ठीक ही कहा था कि वह सत्पुरुष अणुव्रतोंका धारी है अन्यथा अतिथियोंका ऐसा सत्कार दूसरा कौन करता है ? ॥२०५॥ जो संसारकी पीड़ाको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार करता है उनके सिवाय किसी दूसरेको नमस्कार नहीं करता ऐसा वह बुद्धिमान् शुद्ध आत्माका धारक सुना जाता है ॥२०६॥ ऐसे शील और गुणोंसे सहित होने पर भी यदि यह हम लोगोंके आगे शत्रुसे घिरा रहता है तो हमारा जीवन व्यर्थ है ॥२०७॥ यह अपराधसे रहित है, अपने आपको सदा साधुओंकी सेवामें तत्पर रखता है तथा इसके समस्त सामन्त अपने इस अद्वितीय स्वामीके अनुकूल हैं ॥२०८॥ दुष्ट राजा सिंहोदरके द्वारा पीडित हुए इस वज्रकर्णकी रक्षा करनेके लिए भरत भी समर्थ नहीं है क्योंकि वह अभी नवीन राजा है ॥२०९॥ इसलिए अन्य रक्षकोंसे रहित इस बुद्धिमान्‌की रक्षा शीघ्र ही करो, जाओ और सिंहोदरसे कहो ॥२१०॥ 'यह कहना, यह कहना' यह तुम्हें क्या शिक्षा दी जाय क्योंकि जिस प्रकार महामणि प्रभाके साथ उत्पन्न होता है उसी प्रकार तुम भी प्रज्ञाके साथ ही उत्पन्न हुए हो ॥२११॥

अथानन्तर अपने गुणोंकी प्रशंसा सुन जिसे लज्जा उत्पन्न हो रही थी ऐसा लक्ष्मण रामकी

---

१. अस्माकम् । २ हर्षान्वितः ।

विनीत धारयन् वेषमनुपादाय कार्मुकम् । प्रयातो रयसम्पन्नो लक्ष्मण कम्पितक्षिति ॥२१३॥
दृष्ट्वा सरक्षकै पृष्ट कतरस्य पुमान् भवान् । सोऽवोचद् भरतस्याहमेतो दूतस्य कर्मणा ॥२१४॥
क्रमेणातीत्य शिविर भूरि प्राप्तो नृपास्पदम् । अविशद्वेदितो द्वा स्थै सद सिहोदरस्य सः ॥२१५॥
प्रस्पष्टमिति चोवाच मन्यमानस्तृण नृपम् । ज्येष्ठभ्रातृवचोवाह सिहोदर [1]निबोध माम् ॥२१६॥
आज्ञापयत्यसौ देवो भवन्तमिति सद्गुण । यथा किल किमेतेन विरोधेन विहेतुना ॥२१७॥
तत सिंहोदरोऽत्रादीन्मन कर्कशमुद्वहन् । दूत ब्रूता विनीतेशमिति मद्वचनाद् भवान् ॥२१८॥
यथा किलाविनीताना भृत्याना विनयाहृतौ । कुर्वन्ति स्वामिनो यत्न विरोध कोऽत्र दृश्यते ॥२१९॥
वज्रकर्णो दुरात्माय मानी नैकृतिक [2] पर । पिशुन क्रोधन. क्षुद्र सुहृन्निन्दापरायण ॥२२०॥
आलस्योपहतो मूढो वायुग्रहगृहीतधी । विनयाचारनिर्मुक्तो दुर्विदग्धो दुरीहित. ॥२२१॥
एत मुञ्चन्त्यमी दोषा दमेन मरणेन वा । तदुपाय करोम्यस्य स्वैरमत्रास्यता त्वया ॥२२२॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत् किमत्र [3]प्रत्युरोत्तरै । कुरुतेऽय हित यस्मात् क्षम्यता सर्वमस्य तत् ॥२२३॥
इत्युक्त प्रकटक्रोध सन्धिदूरपराङ्मुख. । सिंहोदरोऽवदत्तार वीक्ष्य सामन्तसहतिम् ॥२२४॥
न केवलमसौ मानी हतात्मा वज्रकर्णक· । तत्कार्यवाञ्छया प्राप्तो भवानपि तथाविध ॥२२५॥
पाषाणेनैव ते गात्रमिद दूत विनिर्मितम् । न [4]नाममर्मीषदप्येति दुर्भृत्य कोशलापते. ॥२२६॥

आज्ञा शिरोधार्य कर 'जैसी आपकी आज्ञा' यह कहकर तथा प्रणाम कर हर्षित होता हुआ चला। वह उस समय विनीत वेषको धारण कर रहा था, धनुष साथमे नही ले गया था, वेगसे सम्पन्न था और पृथ्वीको कँपाता हुआ जा रहा था ॥२१२–२१३॥ रक्षक पुरुषोने देखकर उससे पूछा कि आप किसके आदमी है ? इसके उत्तरमे लक्ष्मणने कहा कि मै राजा भरतका आदमी हूँ और दूतके कार्यसे आया हूँ ॥२१४॥ क्रम-क्रमसे बहुत बड़ी छावनीको उलँघ कर वह राजाके निवास-स्थानमे पहुँचा और द्वारपालोके द्वारा खबर देकर राजा सिहोदरकी सभामे प्रविष्ट हुआ ॥२१५॥ वहाँ जाकर राजाको तृणके समान तुच्छ समझते हुए उसने स्पष्ट शब्दोमे इस प्रकार कहा कि हे सिहोदर ! तू मुझे बड़े भाईका सन्देशवाहक समझ ॥२१६॥ उत्तमगुणोको धारण करनेवाले राजा भरत आपको इस प्रकार आज्ञा देते हैं कि इस निष्कारण वैरसे क्या लाभ है ? ॥२१७॥

तदनन्तर कठोर मनको धारण करनेवाला सिहोदर बोला कि हे दूत ! तू मेरी ओरसे अयोध्याके राजा भरतसे इस प्रकार कहो कि अविनीत सेवकोको विनयमें लानेके लिए स्वामी प्रयत्न करते हैं इसमे क्या विरोध दिखाई देता है ? ॥२१८–२१९॥ यह वज्रकर्ण दुष्ट है, मानी है, मायावी है, अत्यन्त नीच है, क्रोधी है, क्षुद्र है, मित्रकी निन्दा करनेमे तत्पर है, आलस्यसे युक्त है, मूढ है, वायु अथवा किसी पिशाचने इसकी बुद्धि हर ली है, यह विनयाचारसे रहित है, पण्डितम्मन्य है, और दुष्ट चेष्टाओसे युक्त है। ये दोष इसे या तो दमनसे छोड़ सकते है या मरणसे; इसलिए इसका उपाय करता हूँ इस विषयमे आप चुप बैठिये ॥२२०–२२२॥ तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि इस विषयमे उत्तर-प्रत्युत्तरोसे क्या प्रयोजन है ? चूँकि यह सबका हित करता है अत· इसका यह सब अपराध क्षमा कर दिया जाय ॥२२३॥ लक्ष्मणके इस प्रकार कहते ही जिसका क्रोध उबल पड़ा था, और जो सन्धिसे विमुख था ऐसा सिंहोदर अपने सामन्तोकी ओर देख गरजकर बोला कि न केवल यह दुष्ट वज्रकर्ण ही मानी है किन्तु उसके कार्यकी इच्छासे आया हुआ यह दूत भी वैसा ही मानी है ॥२२५॥ अरे दूत ! जान पड़ता है तेरा यह शरीर पाषाणसे ही बना है अयोध्यापतिका यह दुष्ट भृत्य, रञ्च मात्र भी नम्रताको

---

१. नृपाधम ब० । २. मायी । ३. प्रत्युरोत्तरैः । ४. नमनम् नामः तम् ।

तत्र देशे नरा नून सर्वं एव भवद्विधा । स्थालीपुलाकधर्मेण परोक्ष ज्ञायते ननु ॥२२७॥
इत्युक्ते कोपमायात किञ्चिल्लक्ष्मीधरोऽवदत् । साम्यहेतोरह प्राप्तो न ते कर्तुं नमस्कृतिम् ॥२२८॥
बहुनात्र किमुक्तेन हरे सक्षेपत शृणु । प्रतीच्छ सन्धिमद्यैव मरण वा समाश्रय ॥२२९॥
इत्युक्ते परिषत्सर्वा पर क्षोभमुपागता । नानाप्रकारदुर्वाक्या नानाचेष्टाविधायिनी ॥२३०॥
आकृष्य छुरिका केचिन्निस्त्रिशानपरे भटा । वधार्थमुद्यतास्तस्य कोपकम्पितमूर्तय ॥२३१॥
वेगनिर्मुक्तहुङ्कारा परस्परसमाकुला । ते त समन्ततो ब्रध्नर्मशका इव पर्वतम् ॥२३२॥
अप्राप्तानेव धीरोऽसौ क्रियालाघवपण्डित । चिक्षेप चरणाघातैर्दूर तान् विह्वलान् समम् ॥२३३॥
जघान जानुना कांश्चित्कूर्परेणापरान् भ्रमन् । कांश्चिन्मुष्टिप्रहारेण चकार शतशर्करान् ॥२३४॥
कचेषु कांश्चिदाकृष्य निपात्य धरणीतले । पादेनाचूर्णयत् कांश्चिदसघातैरपातयत् ॥२३५॥
कांश्चिदन्योन्यघातेन परिचूर्णितमस्तकान् । चकार जघया कांश्चिदप्राप्तविमूर्छनान् ॥२३६॥
एवमेकाकिना तेन परिषत्सा तथाविधा । महाबलेन विध्वस नीता भयसमाकुला ॥२३७॥
एव विध्वसयन् यावन्निष्क्रान्तो भवनाजिरम् । तावद्योधशतैरन्यै लक्ष्मण परिवेष्टित ॥२३८॥
सामन्तैरथ सन्नद्धैर्वारणै सप्तिभी रथै । परस्परविमर्देन बभूवाकुलता परा ॥२३९॥
नानाशस्त्रकरेष्वेषु लक्ष्म्यालिङ्गितविग्रह । चकार चेष्टित वीर शृगालेष्विव केसरी ॥२४०॥

प्राप्त नही है—अर्थात् इसने बिलकुल भी नमस्कार नहीं किया ॥२२६॥ सचमुच ही उस देशके सब लोग तेरे ही जैसे है जिस प्रकार बटलोईके दो चार सीथ जाननेसे सब सीथोंका ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार तेरे द्वारा वहाँके सब लोगोका परोक्ष ज्ञान हो रहा है ॥२२७॥

सिहोदरके इस प्रकार कहने पर कुछ क्रोधको प्राप्त हुआ लक्ष्मण बोला कि मै साम्यभाव स्थापित करनेके लिए यहाँ आया हूँ तुझे नमस्कार करनेके लिए नही ॥२२८॥ सिहोदर ! इस विषयमे बहुत कहनेसे क्या ? सक्षेपसे सुन, या तो तू सन्धि कर या आज ही मरणका आश्रय ले ॥२२९॥ यह कहते ही समस्त सभा परम क्षोभको प्राप्त हो गई, नाना प्रकारके दुर्वचन बोलने लगी तथा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करने लगी ॥२३०॥ जिनके शरीर क्रोधसे काँप रहे थे ऐसे कितने ही योधा छुरी खींचकर और कितने ही योधा तलवारे निकालकर उसका वध करनेके लिए उद्यत हो गये ॥२३१॥ जो वेगसे हुंकार छोड रहे थे तथा जो परस्पर अत्यन्त व्याकुल थे ऐसे उन योद्धाओने लक्ष्मणको चारो ओरसे उस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि मच्छर किसी पर्वतको घेर लेते है ॥२३२॥ शीघ्रतासे कार्य करनेमें निपुण धीर-वीर लक्ष्मणने जो पासमे नहीं आ पाये थे ऐसे उन योद्धाओको चरणोकी चपेटसे विह्वल कर एक साथ दूर फेक दिया ॥२३३॥ शीघ्रतासे घूमते हुए लक्ष्मणने कितने ही लोगोको घुटनोसे, कितने ही लोगोंको कोहनीसे, और कितने ही लोगोंको मुट्ठियोके प्रहारसे शतखण्ड कर दिया अर्थात् एक-एकके सौ-सौ टुकड़े कर दिये ॥२३४॥ कितने ही लोगोके बाल खींचकर तथा पृथिवी पर पटक कर उन्हे पैरोसे चूर्ण कर डाला और कितने ही लोगोको कन्धेके प्रहारसे गिरा दिया ॥२३५॥ कितने ही लोगोको परस्पर भिड़ाकर उनके शिर एक दूसरेके शिरकी चोटसे चूर्ण कर डाले और कितने ही लोगोको जङ्घाके प्रहारसे मूर्च्छित कर दिया ॥२३६॥ इस प्रकार महाबलवान् एक लक्ष्मणने सिंहोदरकी उस सभाको भयभीत कर विध्वस्त कर दिया ॥२३७॥

इस प्रकार सभाको विध्वस्त करता हुआ लक्ष्मण जब भवनसे बाहर आङ्गणमे निकला तब सैकडों अन्य योद्धाओने उसे घेर लिया ॥२३८॥ तदनन्तर युद्धके लिए तैयार खड़े हुए सामन्तो, हाथियो, घोड़ो और रथोके द्वारा उत्पन्न परस्परकी धक्काधूमीसे बहुत भारी आकुलता उत्पन्न हो गई ॥२३९॥ हाथोंमे नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले उन सामन्तोंके साथ वीर

ततोऽनेकपमारुह्य [1]प्रावृषेण्यघनाकृतिम् । स्वयं सिंहोदरो रोद्धुं लक्ष्मीनिलयमुद्यतः ॥२४१॥
तस्मिन् रणशिरोयाते किञ्चिद्धैर्यमुपागताः । दूरगाः पुनराजग्मुः सामन्ता लक्ष्मणं प्रति ॥२४२॥
घनानामिव सङ्घास्ते बब्रुस्तं शशिनं यथा । वातूल इव तानेष तूलराशीनिवाकिरत् ॥२४३॥
उदारभटकामिन्यो गण्डविन्यस्तपाणयः । जगुराकुलताभाजः प्रविलोलविलोचनाः ॥२४४॥
पश्यतैनं महाभीमं सख्यः पुरुषमेककम् । वेष्टितं बहुभिः क्रूरैरसाम्प्रतमिदं परम् ॥२४५॥
अन्यास्तत्रोचुरे कोऽपि केनायं परिभूयते । पश्यतानेन विक्रान्ता बहवो विह्वलीकृताः ॥२४६॥
आस्तृणानमथो दृष्ट्वा लक्ष्मणोऽभिमुखं बलम् । विहस्य वारणस्तम्भं महान्तमुदमूलयत् ॥२४७॥
ततः सरभसस्तत्र सान्द्रहुङ्कारभीषणः । जजृम्भे लक्ष्मणः कक्षे यथोच्चैराशुशुक्षणिः[3] ॥२४८॥
विस्मितो गोपुराग्रस्थो दशाङ्गनगराधिपः । पार्श्ववर्तिभिरित्यूचे सामन्तैर्विकचेक्षणैः ॥२४९॥
कोऽप्येष पुरुषो नाथ पश्य सैंहोदरं बलम् । भग्नध्वजरथच्छत्रं करोति परमद्युतिः ॥२५०॥
एष खड्गधनुश्छायामध्यवर्ती सुविह्वलः । आवर्त इव निक्षिप्तो भ्राम्यती[4]भाहितोदरः ॥२५१॥
इतश्चेतश्च विस्तीर्णमेतत्सैन्यं पलायते । एतस्मात्त्रासमागत्य सिंहान् मृगकुलं यथा ॥२५२॥
वदन्त्यन्योन्यमत्रैते[2] सामन्ता दूरवर्तिनः । अवतारय सन्नाहं मण्डलाग्रो विमुच्यताम् ॥२५३॥

लक्ष्मण ऐसी चेष्टा करने लगा जैसी कि शृगालोंके साथ सिंह करता है ॥२४०॥ तदनन्तर वर्षा ऋतुके मेघके समान आकारको धारण करनेवाले हाथीपर सवार होकर सिंहोदर स्वयं लक्ष्मणको रोकनेके लिए उद्यत हुआ ॥२४१॥ जो सामन्त पहले दूर भाग गये थे वे सिंहोदरके रणाग्रमें आते ही कुछ-कुछ धैर्य धारणकर फिरसे वापिस आ गये ॥२४२॥ जिस प्रकार मेघोंके झुण्ड चन्द्रमाको घेरते हैं उसी प्रकार उन सामन्तोंने लक्ष्मणको घेरा परन्तु जिस प्रकार तीव्र वायु रुईके ढेरको उड़ा देती है उसी प्रकार उसने उन सामन्तोंको उड़ा दिया—दूर भगा दिया ॥२४३॥ जिन्होंने गालोंपर हाथ लगा रक्खे थे, जो अत्यन्त आकुलताको प्राप्त थीं, तथा जिनके नेत्र भयसे चञ्चल हो रहे थे ऐसी उत्तम योद्धाओंकी स्त्रियाँ परस्परमें कह रही थीं कि हे सखियो! इस महा-भयङ्कर पुरुषको देखो। इस एकको बहुतसे क्रूर सामन्तोंने घेर रक्खा है यह अत्यन्त अनुचित बात है ॥२४४–२४५॥ उन्हींमें कुछ स्त्रियाँ इस प्रकार कह रहीं थीं कि यद्यपि यह अकेला है फिर भी इसे कौन परिभूत कर सकता है? देखो, इसने अनेक योद्धाओंको चपेटकर विह्वल कर दिया है ॥२४६॥

अथानन्तर सामने सेनाको इकट्ठी होती देख लक्ष्मणने हँसकर हाथी बाँधनेका एक बड़ा खम्भा उखाड़ा ॥२४७॥ और जिस प्रकार वनमें जोरदार अग्नि वृद्धिङ्गत होती है उसी प्रकार सघन हुंकारोंसे भयङ्करताको प्राप्त करता हुआ लक्ष्मण उस सेनापर वेगसे टूट पड़ा ॥२४८॥ दशाङ्गपुरका राजा वज्रकर्ण गोपुरके अग्रभाग पर बैठा-बैठा इस दृश्यको देख आश्चर्यसे चकित हो गया। जिनके नेत्र हर्षसे विकसित हो रहे थे ऐसे समीपवर्ती सामन्तोंने उससे कहा कि हे नाथ! देखो, परम तेजको धारण करनेवाला यह कोई पुरुष सिंहोदरकी सेनाको नष्ट कर रहा है। उसने उसकी सेनाके ध्वज, रथ तथा छत्र आदि सभी तोड़ डाले हैं ॥२४९–२५०॥ तलवारों और धनुषोंकी छायाके बीच खड़ा हुआ यह सिंहोदर, अत्यन्त विह्वल हो भँवरमें पड़े हुए के समान इधर-उधर घूम रहा है ॥२५१॥ जिस प्रकार सिंहसे भयभीत होकर मृग समूह इधर-उधर भागता फिरता है उसी प्रकार सिंहोदरकी सेना इससे भयभीत होकर इधर-उधर भागती फिरती है ॥२५२॥ ये दूर खड़े हुए सामन्त परस्पर कर रहे हैं कि कवच उतार दो, तलवार छोड़

१ प्रावृषेण म० । २. जाते म० । ३. अग्निः । ४. सिंहोदरः ।

कार्मुकं क्षिप मुञ्चाश्वं वारणादवतार्यताम् । गदां निरस्य गर्तायां माकार्षीरवमुन्नतम् ॥२५४॥
आलोक्य शस्त्रसङ्घातं श्रुत्वा वा रभसान्वितः । कोऽप्येष पुरुषोऽस्माकमापतदतिदारुणः[1] ॥२५५॥
अपसर्पामुतो[2] देशाद्देहि मार्गमहो भट । वारणं सारयैतस्मात्किमत्र स्तभितोऽसि ते ॥२५६॥
अयं प्राप्तोऽयमायातो दुःसूत स्यन्दनं त्यज । तुरङ्गाश्चोदय क्षिप्रं घातिता स्मो न संशयम् ॥२५७॥
एवमादिकृतालापाः केचित्सङ्कटमागताः । परित्यज्य भटाकल्पमेते[3] पण्डकैर्वत्[4] स्थिताः ॥२५८॥
किमेष रमते युद्धे कोऽपि त्रिदशसम्भवः । विद्याधरो नु वान्यस्य कस्येयं शक्तिरीदृशी ॥२५९॥
कालो नाम यमो वायुः कोऽपि लोके प्रकीर्त्यते । सोऽयं किमु भवेच्चण्डो[5] विद्युद्दण्डचलाचलः ॥२६०॥
कृत्वेदृर्मीदृशं[6] सैन्यं पुनरेष करिष्यति । किमित्येव मनोऽस्माकं नाथ शङ्कामुपागतम् ॥२६१॥
[7]निरीक्षस्वैनमुत्पत्य संग्रामे रोमहर्षणे । सिंहोदरं समाकृष्य विह्वलं वरवारणात् ॥२६२॥
गले तदंशुकेनैव प्राध्वकृत्य[8] सुविस्मितः । एष याति पुरः कृत्वा[9] बलीवर्दं यथा वशम् ॥२६३॥
एवमुक्तः स[10] तैरूचे स्वस्था भवत मानवाः । देवाः शान्तिं करिष्यन्ति किमत्र बहुचिन्तया ॥२६४॥
स्थिताः[11]मूर्द्धसु हर्म्याणां दशाङ्गनगराङ्गनाः । परं विस्मयमापन्ना जगुरेवं परस्परम् ॥२६५॥
सखि पश्यास्य वीरस्य चेष्टितं परमाद्भुतम् । येनैकेन नरेन्द्रोऽयमानीतोऽशुकबन्धनम् ॥२६६॥
अहो कान्तिरमुष्येयं द्युतिश्चातिशतान्विता । अहो शक्तिरियं कोऽयं भवेत् पुरुषसत्तमः ॥२६७॥
भूतोऽयं भविता वापि पुण्यवत्या सुयोषितः । पतिः कस्याः प्रशस्ताया समस्तजगतीश्वरः ॥२६८॥
सिंहोदरमहिष्योऽथ वृद्धबालसमन्विताः । रुदत्यः पादयोः पेतुर्लक्ष्मणस्यातिविक्लवाः ॥२६९॥

दो, धनुष फेंक दो, घोड़ा छोड़ दो, हाथीसे नीचे उतर जाओ, गदा गड्ढेमें गिरा दो, ऊँचा शब्द मत करो, शस्त्रोंका समूह देखकर यह अतिशय भयङ्कर पुरुष वेगसे कहीं हमारे ऊपर न आ पड़े, इस स्थानसे हट जाओ, अरे भट ! रास्ता दे, हाथीको यहाँसे दूर हटा, चुपचाप क्यों खड़ा है ? अरे दुष्ट सारथि ! देख, यह आया, यह आया, रथ छोड़, घोड़े जल्दी बढा, मारे गये इसमें संशय नहीं, इत्यादि वार्तालाप करते हुए, संकटमें पड़े कितने ही योद्धा, योद्धाओंका वेष छोड़ कर नपुंसकोंके समान एक ओर स्थित हैं ॥२५३–२५८॥ क्या युद्धमें यह कोई देव क्रीड़ा कर रहा है अथवा विद्याधर, वायु नामका कोई व्यक्ति संसारमें प्रसिद्ध है सो क्या यह वही है ? यह अत्यन्त तीक्ष्ण और बिजलीके समान चञ्चल है ॥२५९–२६०॥ सेनाको इस प्रकार नष्ट भ्रष्ट करके अब यह आगे क्या करेगा ? हे नाथ ! इस प्रकार हमारा मन शङ्काको प्राप्त हो रहा है ॥२६१॥ देखो, रोमाञ्चकारी युद्धमें उछलकर भयभीत सिंहोदरको हाथीसे खींचकर उसीके वस्त्रसे गलेमें बाँध लिया है और यह बैलकी तरह वशकर उसे आगे कर आश्चर्यसे चकित होता हुआ आ रहा है ॥२६२–२६३॥ इस प्रकार सामन्तोंके कहनेपर वज्रकर्णने कहा कि हे मानवो ! स्वस्थ होओ, देव शान्ति करेंगे, इस विषयमें बहुत चिन्ता करनेसे क्या लाभ है ? ॥२६४॥ महलोंके शिखरों पर बैठी दशाङ्गनगरकी स्त्रियाँ परम आश्चर्यको प्राप्त हो परस्पर इस प्रकार कह रहीं थी ॥२६५॥ कि हे साथी ! इस वीरकी परम अद्भुत चेष्टा देखो जिसने अकेले ही इस राजाको वस्त्रसे बाँध लिया ॥२६६॥ धन्य इसकी कान्ति, धन्य इसका अतिशय पूर्ण तेज, और धन्य इसकी शक्ति। अहो ! यह उत्तम पुरुष कौन होगा ? ॥२६७॥ यह किस भाग्यशालिनी गुणवती स्त्रीका पति है ? अथवा आगे होगा ? यह समस्त पृथिवीका स्वामी है ॥२६८॥

अथानन्तर वृद्ध और बालकोंसे सहित सिंहोदरकी रानियाँ भयसे अत्यन्त विह्वल हो रोती

१ मा पतदतिदारुणः म० । २. अपसर्पा म० । ३. योधवेषम् । ४. नपुंसकवत् स्थिताः । ५. भवेच्चन्द्रो (?) म० । ६. त्वयेद- म० । ७ निरीक्षस्व + एनम् । ८. बद्ध्वा । ९. परः कृत्वा ज०, ख० । १०. वज्रकर्णः । ११ हर्म्याणां प्रासादानां मूर्द्धसु पृष्ठेषु ।

ऊचुश्च देव मुञ्चैनं भर्तृभिक्षां प्रयच्छ नः । अद्य प्रभृति भृत्योऽयं तवाज्ञाकरणोद्यतः ॥२७०॥
सोऽवोचत् पश्यतोदारं द्रुमखण्डमिमं पुरः । अत्र नीत्वा दुराचारमेतमुल्लम्बयाम्यहम् ॥२७१॥
करुणं बहु कुर्वन्त्यः पुनः साञ्जलयोऽवदन् । रुष्टोऽसि यदि देवास्मान् जहि निर्धार्यतामयम् ॥२७२॥
प्रसादं कुरु मा दुःखं दर्शय प्रियसम्भवम्[1] । ननु योषित्सु कारुण्यं कुर्वन्ति पुरुषोत्तमाः ॥२७३॥
पुरो मोचयामि सेवध्वं स्वस्थतामित्यसौ वदन् । ययौ चैत्यालयं यत्र ससीतो राघवः स्थितः ॥२७४॥
अवोचल्लक्ष्मणः पद्मं सोऽयं वज्रश्रुतेररिः । आनीतोऽस्याधुना देव कृत्यं वदतु यन्मया ॥२७५॥
ततः सिंहोदरो मूर्ध्ना करकुड्मलयोगिना । पपात वेपमानाङ्गः पद्मस्य क्रमपद्मयोः ॥२७६॥
जगाद च न देव त्वां वेद्मि कोऽसीति कान्तिमान् । परेण तेजसा युक्तो महीध्रपतिसंनिभः ॥२७७॥
मानवो भव देवो वा गम्भीरपुरुषोत्तम । अत्र किं बहुभिः प्रोक्तैरहमाज्ञाकरस्तव ॥२७८॥
गृह्णातु रुचितस्तुभ्यं राज्यमिन्द्रायुधश्रुतिः[2] । अहं तु पादशुश्रूषां करोमि सततं तव ॥२७९॥
[3]धवभिक्षां प्रयच्छेति योषितोऽप्यस्य पादयोः । रुदत्यः प्रणिपत्योचुः कुर्वन्त्यः करुणं बहु ॥२८०॥
देवि स्त्रैणात्त्वमस्माकं कारुण्यं कुरु शोभने । इत्युदित्वा च सीतायाः पतितास्ताः क्रमाब्जयोः ॥२८१॥
ततः सिंहोदरं पद्मो जगाद विनताननम् । कुर्वन् वापीषु हंसानां मेघनादोद्भवं भयम् ॥२८२॥
शक्रायुधश्रुतिर्यत्ते ब्रवीति कुरु तत्सुधीः । एवं ते जीवितं मन्ये प्रकारोऽन्यो न विद्यते ॥२८३॥
आहूतोऽथ हितैः पुम्भिः कृतदक्ष्यादिवर्धनः[4] । वज्रकर्णः परीवारसहितश्चैत्यमागमत् ॥२८४॥
स त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य मूर्धपाणिर्जिनालयम् । स्तुत्वा ननाम चन्द्राभं भक्तिहृष्टस्तनूरुहः ॥२८५॥

हुई लक्ष्मणके चरणोंमें आ पड़ीं ॥२६९॥ वे बोलीं कि हे देव ! इसे छोड़ो, हमारे लिए पतिकी भिक्षा देओ, आजसे यह आपका आज्ञाकारी भृत्य है ॥२७०॥ लक्ष्मणने कहा कि देखो यह सामने ऊँचा वृक्षखण्ड है वहाँ ले जाकर इस दुराचारीको उसपर लटकाऊँगा ॥२७१॥ तदनन्तर बहुत करुण रुदन करती तथा बार-बार हाथ जोड़ती हुई बोलीं कि हे देव ! यदि रुष्ट हो तो हम लोगोंको मारो और इसे छोड़ दो ॥२७२॥ प्रसन्नता करो, हम लोगोंको पतिका दुःख न दिखाओ उत्तम पुरुष स्त्रियों पर दया करते ही हैं ॥२७३॥ तब लक्ष्मणने कहा कि अच्छा आगे चलकर छोड़ देंगे आप लोग स्वस्थताको प्राप्त होओ। इस प्रकार कहता हुआ लक्ष्मण उस चैत्यालयमें गया जहाँ कि सीता सहित राम ठहरे हुए थे ॥२७४॥ वहाँ जाकर लक्ष्मणने रामसे कहा कि यह वज्रकर्णका शत्रु है इसे मैं ले आया हूँ। अब हे देव ! जो करना हो सो आज्ञा करो ॥२७५॥ तब जिसका शरीर काँप रहा था ऐसा सिंहोदर हाथ जोड़ मस्तकसे लगा रामके चरणकमलोंमें गिरा ॥२७६॥ और बोला कि हे देव ! आप कौन हैं ? यह मैं नहीं जानता। आप कान्तिमान् हैं उत्कृष्ट तेजसे युक्त हैं और सुमेरुके समान स्थिर हैं ॥२७७॥ हे गम्भीर पुरुषोत्तम ! आप मनुष्य रहो चाहे देव ! इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? मैं आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ ॥२७८॥ वज्रकर्ण आपको रुचता है सो वह यह राज्य ग्रहण करे मैं तो सदा आपके चरणोंकी शुश्रूषा ही करता रहूँगा ॥२७९॥ सिंहोदरकी स्त्रियाँ भी अत्यन्त करुण विलाप करती हुई, रामके चरणोंमें प्रणाम कर बोलीं कि हमारे लिए पतिकी भिक्षा दीजिए ॥२८०॥ 'हे देवि ! तुम तो स्त्री हो अतः हे शोभने ! हम पर दया करो' इस प्रकार कहकर वे सीताके चरणकमलोंमें भी पड़ीं ॥२८१॥

तदनन्तर वापिकाओंमें स्थित हंसोंको मेघध्वनिसे होनेवाला भय उत्पन्न करते हुए रामने नीचा मुखकर बैठे हुए सिंहोदरसे कहा ॥२८२॥ कि हे सुधी ! तुझे वज्रकर्ण जो कहे सो कर ! इसी तरह तेरा जीवन रह सकता है और दूसरा उपाय नहीं है ॥२८३॥ तदनन्तर जिसकी भाग्य-वृद्धि हो रही थी ऐसा वज्रकर्ण हितकारी पुरुषोंके द्वारा बुलाया गया जो परिवार सहित उस चैत्यालयमें आया ॥२८४॥ उसने हाथ जोड़ मस्तकसे लगा जिनालयकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं

१. संगमं म० । २. वज्रकर्णः । ३. पतिभिक्षां । ४. कृतदक्षाभिवर्धनः म० ।

ततश्च विनयी गत्वा स्तुत्वा तो भ्रातरौ क्रमात् । अपृच्छद् वपुरारोग्य सीतां च विधिकोविदः ॥२८६॥
भद्र ते कुशलेनाद्य कुशल न समन्ततः । इति त राघवोऽवोचन्नितान्त मधुरध्वनि' ॥२८७॥
सङ्कथेय तयोर्यावद् वर्तते शुभलीलयो. । चारुवेषोऽथ सैन्येन विद्युदङ्ग समागत ॥२८८॥
स तयो प्रणति कृत्वा स्तुत्वा च क्रमपण्डित । समीपे वज्रकर्णस्य सन्निविष्ट प्रतापवान् ॥२८९॥
विद्युदङ्ग सुधी सोऽय वज्रकर्णसुहृत्पर । इति शब्द समुत्तस्थौ तदा सदसि मासल. ॥२९०॥
पुनश्च राघवोऽवोचत् कृत्वा स्मितसित मुखम् । वज्रकर्ण ! समीचीना तव दृष्टिरिय परा ॥२९१॥
कुमतैस्तव धीरेषा मनागपि न कम्पिता । उत्पातवातसङ्घातै [1]मन्दरस्येव चूलिका ॥२९२॥
ममापि सहसा दृष्ट्वा न ते मूर्धायमानत । अहो परमिद चारु तव शान्त विचेष्टितम् ॥२९३॥
अथवा शुद्धतत्त्वस्य किमु पुसोऽस्ति दुस्तरम् । धर्मानुरागचित्तस्य सम्यग्दृष्टेर्विशेषत ॥२९४॥
प्रणम्य त्रिजगद्वन्द्य जिनेन्द्र परम शिवम् । तुङ्गेन शिरसा तेन कथमन्य प्रणम्यते ॥२९५॥
मकरन्दरसास्वादलब्धवर्णो[2] मधुव्रत [3] । रासभस्य पद पुच्छे प्रमत्तोऽपि करोति किम् ॥२९६॥
बुद्धिमानसि धन्योऽसि दधास्यासन्नभव्यताम् । चन्द्रादपि सिता कीर्तिस्तव भ्राम्यति विष्टपे ॥२९७॥
विद्युदङ्गोऽप्यय मित्र पर ते विदित मया । भव्योऽयमपि य सेवा तव कर्तुं समुद्यतः ॥२९८॥
सद्भूतगुणसत्कीर्तेरथ लज्जामुपागत । किञ्चिन्नताननोऽवोचच्छुनाशीरायुधश्रवा[4] ॥२९९॥
अत्रावसीदतो देव प्राप्तस्य व्यसन महत् । सञ्जातोऽसि महाभाग त्व मे[5] परमबान्धव ॥३००॥

फिर भक्तिसे रोमाञ्चित हो चन्द्रप्रभ भगवान्को नमस्कार किया ॥२८५॥ तत्पश्चात् विधि-विधानके जानकार वज्रकर्णने विनयपूर्वक जाकर राम लक्ष्मण दोनो भाइयोकी क्रमसे स्तुति की और सीतासे शरीर-सम्बन्धी आरोग्य पूछा ॥२८६॥ तदनन्तर रामने अत्यन्त मधुर ध्वनिमें उससे कहा कि हे भद्र ! आज तो तेरी कुशलसे ही हम सबकी कुशल है ॥२८७॥ इस प्रकार शुभलीलाके धारक राम और वज्रकर्णके बीच जब-तक यह वार्तालाप चलता है तब-तक सुन्दर वेषका धारक विद्युदङ्ग सेनाके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥२८८॥ क्रमके जाननेमे पण्डित प्रतापी विद्युदङ्ग राम लक्ष्मणको प्रणाम कर वज्रकर्णके पास आ बैठा ॥२८९॥ उसी समय सभामे यह जोरदार शब्द गूँजने लगा कि यह बुद्धिमान् विद्युदङ्ग वज्रकर्णका परम मित्र है ॥२९०॥

तदनन्तर रामने मन्द हास्यसे मुखको धवल कर वज्रकर्णसे कहा कि हे वज्रकर्ण ! तेरी यह दृष्टि अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥२९१॥ जिस प्रकार मेरुपर्वतकी चूलिका, प्रलयकालकी वायुके आघातसे कम्पित नही होती, उसी प्रकार तेरी यह बुद्धि मिथ्या मतोसे रञ्चमात्र भी कम्पित नही हुई ॥२९२ मुझे देखकर भी तेरा यह मस्तक नम्रीभूत नहीं हुआ सो तेरी यह चेष्टा अत्यन्त मनोहर तथा शान्त है ॥२९३॥ अथवा शुद्ध तत्त्वके जानकार पुरुषको क्या कठिन है ? खासकर धर्मा-नुरागी सम्यग्दृष्टिके मनुष्य को ॥२९४॥ जिस उन्नत शिरसे तीन लोकके द्वारा वन्दनीय परम कल्याणस्वरूप जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार किया जाता है उसी शिरसे दूसरे लोगोको कैसे प्रणाम किया जाय ? ॥२९५॥ मकरन्द रसके आस्वादनमे निपुण भौंरा उन्मत्त होने पर भी क्या गधेके पूँछपर अपना स्थान जमाता है ? ॥२९६॥ तुम बुद्धिमान् हो, धन्य हो, निकट भव्यपना धारण कर रहे हो और चन्द्रमासे भी अधिक धवल तुम्हारी कीर्ति संसारमे भ्रमण कर रही है ॥२९७॥ मुझे मालूम है कि यह विद्युदङ्ग भी तुम्हारा मित्र है । सो यह भी भव्य है जो कि तुम्हारी सेवा करनेके लिये उद्यत रहता है ॥२९८॥

अथानन्तर यथार्थ गुणोके कथनसे जो लज्जाको प्राप्त था तथा जिसका मुख कुछ नीचेकी ओर झुक रहा था ऐसा वज्रकर्ण बोला कि हे देव ! यद्यपि आपको यहाँ रहते बहुत कष्ट हुआ है

१. सुमेरोः । २. निपुणः । ३. भ्रमरः । ४. वज्रकर्णः । ५. मे त्वं म० ।

नियमस्त्वत्प्रसादेन ममायं जीवतोऽधुना[1]। पालितो[2] मम भाग्येन[3] त्वमानीतो नरोत्तम ॥३०१॥
वदन्नेवमसौ ऊचे लक्ष्मणेन विचक्षण । यदभिरुचितं यत्ते क्षिप्रं सम्पादयाम्यहम् ॥३०२॥
सोऽवोचत् सुहृदं प्राप्य भवन्तमतिदुर्लभम् । न किञ्चिदस्ति लोकेऽस्मिन्निदं तु प्रवदाम्यहम् ॥३०३॥
तृणस्यापि न वाञ्छामि पीडां जिनमताश्रितः । अतो विमुच्यतामेष मम सिंहोदरप्रभुः ॥३०४॥
इत्युक्ते लोकवक्त्रेभ्यः साधुकारः समुद्ययौ । प्राप्तद्वेषेऽपि पश्यायं मतिं धत्ते शुभामिति ॥३०५॥
अपकारिणि कारुण्यं यः करोति स सज्जनः । मध्यो कृतोपकारे वा प्रीतिः कस्य न जायते ॥३०६॥
एवमस्त्विति भाषित्वा लक्ष्मणेन तयोः कृता । हस्तग्रहणसम्पन्ना प्रीतिः समयपूर्विका ॥३०७॥
उज्जयिन्या ददावर्धं वज्रकर्णाय शुद्धधीः । सिंहोदरो हृतं पूर्वं विषयोद्वासने च यत् ॥३०८॥
चतुरङ्गस्य देशस्य गणिकानां धनस्य च । विभागं समभागेन निजस्याप्यकरोदसौ ॥३०९॥
वार्हद्गतप्रसादेन तां वेश्यां रत्नकुण्डलम् । लेभे सेनाधिपत्यं च विद्युदङ्गः सुविश्रुतः[4] ॥३१०॥
वज्रकर्णस्ततः कृत्वा रामलक्ष्मणयोः पराम् । पूजामानाययत्क्षिप्रमष्टौ दुहितरो वराः ॥३११॥
[5]सजायो दृश्यते ज्यायानिति तास्तेन ढौकिताः । लक्ष्मीधरं कृतोदारविभूषाविनयान्विताः ॥३१२॥
नृपाः सिंहोदराद्याश्च ददुः परमकन्यकाः । एवं सन्निहितं तस्य कुमारीणां शतत्रयम् ॥३१३॥
ढौकित्वा वज्रकर्णस्ताः समं सिंहोदरादिभिः । जगाद लक्ष्मणं देव सर्वैता वनिता इति ॥३१४॥

तो भी हे महाभाग ! आप मेरे परम बान्धव हुए हैं ॥२९९-३००॥ इस समय मेरे जीवित रहते हुए मेरे इस नियमका पालन आपके ही प्रसादसे हुआ है और मेरे भाग्यसे ही आप पुरुषोत्तम यहाँ पधारे हैं ॥३०१॥ इस प्रकार कहते हुए बुद्धिमान् वज्रकर्णसे लक्ष्मणने कहा कि जो तेरी अभिलाषा हो वह कह मैं शीघ्र ही पूर्ण कर दूँ ॥३०२॥ यह सुनकर वज्रकर्णने कहा कि आप जैसे अत्यन्त दुर्लभ मित्रको पाकर इस संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। अतः मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि मैं जिनमतका धारक होनेसे यह नहीं चाहता हूँ कि तृणको भी पीड़ा हो। इसलिए यह मेरा स्वामी राजा सिंहोदर छोड़ दिया जाय ॥३०३-३०४॥ वज्रकर्णके इतना कहते ही लोगोंके मुखसे 'धन्य धन्य' शब्द निकल पड़ा। देखो यह भद्र पुरुष शत्रुके ऊपर भी शुभ बुद्धि धारण कर रहा है ॥३०५॥ अपकारीके ऊपर जो दया करता है वही सज्जन है। वैसे मध्यस्थ अथवा उपकार करनेवाले पर किसे प्रेम उत्पन्न नहीं होता ॥३०६॥

तदनन्तर 'एवमस्तु' कह लक्ष्मणने हाथ मिलाकर तथा कभी शत्रुता नहीं करेंगे, इस प्रकार शपथ दिलवाकर दोनोंकी मित्रता करा दी ॥३०७॥ निर्मल बुद्धिके धारक सिंहोदरने उज्जयिनीका आधा भाग तथा देशको उजाड़ करते समय जो कुछ पहले हरा था वह सब वज्रकर्णके लिए दे दिया ॥३०८॥ अपनी चतुरङ्ग सेना, देश, गणिका तथा धनका भी उसने बराबर-बराबर आधा भाग कर दिया ॥३०९॥ जिनभक्तिके प्रसादसे अतिशय प्रसिद्ध विद्युदङ्गने भी वह वेश्या, वह रत्नमयी कुण्डल और सेनापतिका पद प्राप्त किया ॥३१०॥ तदनन्तर वज्रकर्णने राम-लक्ष्मणकी परम पूजा कर शीघ्र ही अपनी आठ पुत्रियाँ बुलवाईं ॥३११॥ चूँकि बड़े भाई राम स्त्रीसे सहित दिखाई देते थे इसलिए उसने उत्तम आभूषणोंको धारण करनेवाली तथा विनयसे युक्त अपनी पुत्रियाँ लक्ष्मणको व्याह दीं ॥३१२॥ इनके सिवाय सिंहोदर आदि राजाओंने भी उत्तमोत्तम कन्याएँ दीं। इस तरह सब मिलाकर लक्ष्मणको तीन सौ कन्याएँ प्राप्त हुईं ॥३१३॥ उन सबको खड़ी कर वज्रकर्णने सिंहोदर आदि राजाओंके साथ लक्ष्मणसे कहा कि हे देव ! ये आपकी स्त्रियाँ हैं ॥३१४॥

---

१. जीविताधुना क०, ख०, ज० । २. पालिता क० । ३ भागेन म० । ४. शुचिश्रुतः म० । ५. 'तव ज्यायान् ज्येष्ठो भ्राता रामः सजायो सवल्लभो दृश्यते अतस्त्वमपि सजायो भव' इति निर्दिश्य तेन ता दुहितरो लक्ष्मणं प्रापिता इति भावः ।

लक्ष्मीधरस्ततोऽवोचद् दारसङ्ग करोम्यहम् । न तावन्न कृत यावत् पद भुजबलार्जितम् ॥३१५॥
पद्मश्च तानुवाचैव नास्माक वसति क्वचित् । भरतस्याधिराज्येऽस्मिन् देशे स्वर्गतलोपमे ॥३१६॥
देशान् सर्वान् समुल्लङ्घ्य करिष्याम्यालय तत । आश्रित्य चन्दनगिरि दक्षिणार्णवमेव वा ॥३१७॥
एका वेलामिह ततो जनन्यौ नेतुमुत्सुके । आगन्तव्य मयावश्य द्रागयोध्यामनेन वा ॥३१८॥
काले तत्रैव नेष्यन्ते कन्यका अपि भो नृपा । अज्ञातनिलयस्यास्य कीदृशो दारसग्रह ॥३१९॥
एवमुक्ते कुमारीणा तद्वृन्द शुशुभे न च । आकुल पङ्कजवन हिमवाताहत यथा ॥३२०॥
प्रियस्य विरहे प्राणान् त्यक्ष्यामो यदि तत्पुन । अवाप्स्यामं कुतोऽनेन समागमरसायनम् ॥३२१॥
प्राणाश्च धारयन्तीना कैतव मन्यते जन. । दह्यते च समिद्धेन मनो विरहवह्निना ॥३२२॥
सुमहान् भृगुरेकत्र व्याघ्रोऽन्यत्रातिदारुण । अहो कष्ट कमाधार व्रजामोऽत्यन्तदुस्सहा ॥३२३॥
अथवा विरहव्याघ्र सङ्गमाशयविद्यया । सस्तंभ्य धारयिष्याम शरीरस्थिति साम्प्रतम् ॥३२४॥
एव विचिन्तयन्तीभि सार्धं ताभिर्महीभृत । गता यथागत कृत्वा रामादीना[1] यथोचितम् ॥३२५॥
सच्चेष्टा पूज्यमानास्ता पितृवर्गेण कन्यका । नानाविनोदनासक्तास्तस्थुस्तद्गतमानसा ॥३२६॥
आनायित. पिता भूत्या सबन्धुर्देशमात्मन । विद्युदङ्गेन चक्रे च परम सङ्गमोत्सव ॥३२७॥
परमेऽथ निशीथे ते[1] नत्वा चैत्यालयात्तत । शनैर्निर्गत्य पादाभ्यां स्वेच्छया सुधियो ययु. ॥३२८॥
चैत्यालय प्रभाते त दृष्ट्वा शून्य जनोऽखिल । रहिताशेषकर्तव्यो वितानहृदयस्थित[2] ॥३२९॥

तदनन्तर उसके उत्तरमे मे लक्ष्मणने कहा कि मै जब तक अपने बाहुबलसे अर्जित स्थान प्राप्त नही कर लेता हूँ तब तक स्त्री समागम नहीं करूँगा ॥३१५॥ रामने भी उनसे इसी प्रकार कहा कि अभी हमारा कहीं निश्चित निवास नहीं है। स्वर्गके समान भरतके राज्यमे जो देश है उन सबको पार कर हम मलयगिरि अथवा दक्षिण समुद्रके आस-पास अपना घर बनावेंगे। वहाँ उत्कण्ठासे भरीं अपनी माताओंको ले जानेके लिए एक बार हम अथवा लक्ष्मण अवश्य ही अयोध्या आवेंगे। हे राजाओ! उसी समय आपकी इन कन्याओंको ले जावेंगे। तुम्हीं कहो जिसके रहनेका ठिकाना नहीं उसका स्त्री-सग्रह कैसा? ॥३१६-३१९॥ इस प्रकार कहने पर वह कन्याओंका समूह तुषार वायुसे आहत कमलवनके समान आकुल होता हुआ शोभित नहीं हुआ ॥३२०॥ कन्याएँ विचार करने लगीं कि यदि हम पतिके विरहमे प्राण छोड़ देवेंगी तो फिर इसके साथ समागमरूपी रसायनको कैसे प्राप्त कर सकेंगी? ॥३२१॥ और यदि प्राण धारण करती हैं तो लोग कपट मानते हैं तथा देदीप्यमान विरहानलसे मन जलता है ॥३२२॥ अहो! एक ओर तो बड़ी भारी ढालू चट्टान है और दूसरी ओर अत्यन्त निर्दय व्याघ्र है। अत' अत्यन्त दु खसे भरी हुई हम किस आधारको प्राप्त हो? ॥३२३॥ अथवा इस समय हम समागमकी अभिलाषारूपी विद्यासे विरहरूपी व्याघ्रको कीलकर शरीर धारण करेंगी ॥३२४॥ इस प्रकार विचार करती हुई उन कन्याओंके साथ राजा लोग राम आदिका यथोचित सत्कार कर जैसे आये थे वैसे चले गये ॥३२५॥ जिनकी उत्तम चेष्टा थी, पितृवर्ग जिनका निरन्तर सत्कार करता था और जो नाना प्रकारके विनोदमे आसक्त थी ऐसी कन्याएँ लक्ष्मणमे मन लगा कर रह गईं ॥३२६॥ तदनन्तर विद्युदङ्गने भाई-बान्धवोंसे सहित पिताको बड़े ठाट-बाटसे अपने देशमे बुलाया और पहुँचनेपर उनके समागमका बहुत भारी उत्सव किया ॥३२७॥

अथानन्तर बुद्धिमान् राम-लक्ष्मण सीताके साथ-साथ घनघोर आधी रातके समय भगवान्को नमस्कार कर चुपके-चुपके चैत्यालयसे निकलकर इच्छानुसार पैदल चले गये ॥३२८॥ प्रभात होनेपर चैत्यालयको शून्य देख सबलोग अपना-अपना कर्तव्य भूलकर शून्य हृदय हो

---

१. रामादयः । २ शून्यहृदयः ।

सम कुलिशकर्णेन जाता प्रीतिरनुत्तरा। सिंहोदरस्य सन्मानगत्यागमनवर्धिता ॥३३०॥

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

स्वैरं स्वैरं जनकतनयां तौ च सञ्चारयन्तौ स्थाय स्थायं विकटसरसां काननानां तलेषु।
पायं पायं रसमभिमतं स्वादुभाजां फलानां क्रीडं क्रीडं सुरसवचनं चारुचेष्टासमेतम् ॥३३१॥
प्राप्तौ नानारचनभवनोत्तुङ्गशृङ्गाभिरामं रम्योद्यानावततवसुधं चैत्यसङ्घातपूतम्।
[1]नाकच्छायं सततजनितात्युत्सवोदारपौरं श्रीमत्स्वानं रविसमरुचिख्यातिमत्कूवराख्यम् ॥३३२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते वज्रकर्णोपाख्यानं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमं पर्व ॥३३॥

गये ॥३२९॥ सिंहोदरकी वज्रकर्णके साथ जो उत्तम प्रीति उत्पन्न हुई थी वह पारस्परिक सम्मान तथा आने-जानेसे वृद्धिको प्राप्त हुई ॥३३०॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि राम लक्ष्मण सीताको धीरे-धीरे उसकी इच्छानुसार चलाते हुए, विशाल सरोवरोंसे युक्त वनोंके मध्यमें ठहरते हुए, स्वादिष्ट फलोंका इच्छित रस पीते हुए, तथा उत्तम वचन और सुन्दर चेष्टाओंके साथ क्रीड़ा करते हुए, कूवरनामक उस देशमें पहुँचे जो नाना प्रकारके भवनोंके ऊँचे-ऊँचे शिखरोंसे सुन्दर था, जिसकी वसुधा मनोहर उद्यानोंसे व्याप्त थी, जो मन्दिरोंके समूहसे पवित्र था, स्वर्गके समान कान्तिवाला था, जहाँके नगरवासी लोग निरन्तर होनेवाले उत्सवोंसे उत्कृष्ट थे, श्रीमानोंके शब्दसे युक्त था तथा सूर्यके समान कान्ति और प्रसिद्धिसे युक्त था ॥३३१-३३२॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य रचित पद्मचरितमें वज्रकर्णका वर्णन करनेवाला तैंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३३॥

---

१. स्वर्गसदृशम्। २. सविख्याति म०, ब०।

चतुस्त्रिंशत्तमं पर्व

परम सुन्दरे तत्र फलपुष्पभरानते । गुञ्जद्भ्रमरसङ्घाते मत्तकोकिलनादिते ॥१॥
कानने सीतया साकमग्रजन्मा[1] स्थित सुखम् । अन्तिका सलिलार्थी तु लक्ष्मण सरसी गत ॥२॥
अत्रान्तरे सुरूपाढ्यो नेत्रतस्करविभ्रम । एकोऽपि सर्वलोकस्य हृदयेषु सम वसन् ॥३॥
महाविनयसम्पन्न कान्तिनिर्झरपर्वत । वरवारणमारूढश्चारुपादातमध्यगः ॥४॥
तामेव सरसीं रम्यां क्रीडनाहितमानस । प्राप्त कल्याणमालाख्यो जनस्तन्नगराधिप ॥५॥
महत सरसस्तस्य दृष्ट्वा[2] त तीरवर्तिनम् । नीलोत्पलचयश्याम लक्ष्मण चारुलक्षणम् ॥६॥
ताडितः कामबाणेन स जनोऽत्यन्तमाकुल । मनुष्यमब्रवीदेकमयमानीयतामिति ॥७॥
गत्वा कृत्वाञ्जलीदंच स तमेवमभाषत । एह्यय राजपुत्रस्ते प्रसादात् सङ्गमिच्छति ॥८॥
को दोष इति सञ्चिन्त्य दधान कौतुक परम् । जगाम लीलया चार्व्या समीप तस्य लक्ष्मण ॥९॥
उत्तीर्य स जनो नागात् पद्मतुल्येन पाणिना । करे लक्ष्मणमालम्ब्य प्राविशद् गृहमाम्बरम्[3] ॥१०॥
एकासने च तेनातिप्रतीत' सहित स्थित । अपृच्छच्च सखे कस्त्व कुतो वा समुपागत ॥११॥
सोऽवोचद् विप्रयोगान्मे ज्येष्ठो दु खेन तिष्ठति । तावन्नयामि तस्यान्न कथयिष्यामि ते तत ॥१२॥
तत. शाल्योदन. सूप उपदर्शनव[4] घृतम् । अपूपा घॅनबन्धानि[5] व्यञ्जनानि पयो दधि ॥१३॥

अथानन्तर जो फल और फूलोके भारसे नत हो रहा था, जहाँ भ्रमरोके समूह गूँज रहे थे और जहाँ मत्त कोकिलाएँ शब्द कर रही थी ऐसे अत्यन्त सुन्दर वनमे राम तो सुखसे विराजमान थे और लक्ष्मण पानी लेनेके लिए समीपवर्ती सरोवरमे गये ॥१-२॥ इसी अवसरमे जो अत्यन्त सुन्दर रूपसे सहित था, जिसके विभ्रम नेत्रोको चुरानेवाले थे, जो एक होनेपर भी सर्व लोगोके हृदयमे एक साथ निवास करता था, महाविनय सम्पन्न था। कान्तिरूपी निर्झरके उत्पन्न होनेके लिए पर्वतस्वरूप था, उत्तम हाथीपर सवार था। मनोहर पैदल सैनिकोके बीच चल रहा था, जिसका मन क्रीडा करनेमे लीन था। जिसका कल्याणमाला नाम था तथा जो उस नगरका स्वामी था, ऐसा एक पुरुष उसी सरोवरमे क्रीड़ा करनेके लिए आया ॥३-५॥ सो उस महासरोवरके तटपर विद्यमान, नील कमलोके समूहके समान श्याम और सुन्दर लक्षणोसे युक्त लक्ष्मणको देख वह मनुष्य कामबाणसे ताडित होकर अत्यन्त आकुल हो गया। फलस्वरूप उसने अपने एक आदमीसे कहा कि इस पुरुषको ले आओ ॥६-७॥ वह चतुर मनुष्य जाकर तथा हाथ जोडकर लक्ष्मणसे इस प्रकार बोला कि 'आइये, यह राजकुमार प्रसन्नतासे आपके साथ मिलना चाहता है' ॥८॥ 'क्या दोष है' इस प्रकार विचारकर परम कौतुकको धारण करते हुए लक्ष्मण सुन्दर लीलासे उसके पास गये ॥९॥ तदनन्तर वह राजकुमार हाथीसे उतरकर तथा कमलके समान कोमल हाथसे लक्ष्मणको पकड़ अपने वस्त्र निर्मित तम्बूमे भीतर चला गया ॥१०॥ वहाँ अत्यन्त विश्वस्त हो एक ही आसनपर लक्ष्मणके साथ सुखसे बैठा। कुछ समय बाद उसने लक्ष्मणसे पूछा कि हे सखे! तुम कौन हो? और कहाँसे आये हो? ॥११॥ लक्ष्मणने कहा कि मेरे वियोगसे मेरे बड़े भाई दुःखी होंगे इसलिए मैं पहले उनके पास भोजन ले जाता हूँ पश्चात् तुम्हारे लिए सब समाचार कहूँगा ॥१२॥

अथानन्तर शालिके चावलोंका भात, दाल, ताजा घृत, पुए, घेवर, नानाप्रकारके व्यञ्जन, दूध, दही, अनेक प्रकारके पानक, शक्कर और खाँडके लड्डू, पूड़ियाँ, कचौड़ियाँ, साधारण पूड़ियाँ,

१ रामः । २ दृष्ट्वा म० । ३ वस्त्रनिर्मितम् । ४. उपदेशनव म० । ५. 'घेवर' इति प्रसिद्धानि ।

पानकानि विचित्राणि शर्कराखण्डमोदका.[1] । शष्कुल्यो घृतपूर्णानि पूरिका गुडपूर्णिका ॥१४॥
वस्त्रालङ्कारमाल्यानि लेपनप्रभृतीनि च । [2]अमत्राणि च चित्राणि हस्तमार्जनकानि च ॥१५॥
सर्वमेतत् समासन्नपुरुषै[3] सुमहाजवै । भाविनानायित तेन जनेनान्तिकमात्मन ॥१६॥
अन्तरङ्ग प्रतीहारो जनस्य वचनात् तत । गत्वा सीतान्वित पद्म प्रणम्यैवमभाषत ॥१७॥
अमुष्मिन् वस्त्रभवने भ्राता ते देव तिष्ठति । एतन्नगरनाथश्च विज्ञापयति सादर ॥१८॥
प्रसाद कुरु तच्छाया शीतलेय मनोहरा । तस्मादियन्तमध्वान स्वेच्छया गन्तुमर्हथ[4] ॥१९॥
इत्युक्ते सीतया सार्धं ज्योत्स्नयेव निशाकर । पद्म समाययौ बिभ्रन् मत्तद्विरदविभ्रमम् ॥२०॥
दूरादेव समालोक्य लक्ष्मणेन सम तत । अभ्युत्थान चकारास्य जन प्रत्युद्गति तथा ॥२१॥
सीतया सहितस्तस्थौ पद्मोऽत्यन्तवरासने । अर्घदानादिसन्मान प्राप्तश्च जनकल्पितम् ॥२२॥
तत कर्मणि निर्वृत्ते स्वैर स्नानाशनादिके । समुत्सार्याखिल लोकमात्मा नीतस्तुरीयताम् ॥२३॥
दूत पितु सकाशान्मे प्राप्त इत्युपदेशन[5] । प्रयत्नपरम कक्षया प्रविश्यानन्यगोचराम् ॥२४॥
नानाप्रहरणान् वीरान् नियुज्य द्वारि भूयस । प्रविष्टो योऽत्र [6]बध्योऽसौ ममेति कृतभाषणः ॥२५॥
सद्भावज्ञापने लज्जां दूरीकृत्य सुमानसः । व्यपाटयदसौ तेषा समक्ष कञ्चुक जन ॥२६॥
स्वर्गादिव ततोऽपप्तत् काऽप्यसौ वरकन्यका । उपयातेव पातालात् किञ्चिन्नम्रानतानना ॥२७॥
तत्कान्त्या भवन लिप्त लग्नानिलमिवाभवत् । उद्योतमिव चन्द्रेण लज्जास्मितसितांशुभि ॥२८॥

गुडमिश्रित पूड़ियाँ, वस्त्र, अलकार, मालाएँ, लेपन आदि की सामग्री, नानाप्रकारके बर्तन और हाथ धोनेका सामान, यह सब सामग्री निकटवर्ती शीघ्रगामी पुरुष भेजकर उसने अपने पास मँगवा ली ॥१३–१६॥ तदनन्तर उसकी आज्ञा पाकर अन्तरङ्ग द्वारपाल वहाँ गया जहाँ सीता सहित राम विराजमान थे, सो उन्हें प्रणाम कर वह इस प्रकार बोला ॥१७॥ कि हे देव ! उस तम्बूमे आपके भाई विराजमान है वही इस नगरका राजा भी विद्यमान है सो वह आदरके साथ प्रार्थना करता है कि चूँकि इस तम्बूकी छाया शीतल तथा मनको हरण करनेवाली है इसलिए प्रसन्न होइए और इतना मार्ग स्वेच्छासे चलकर आप यहाँ पधारिये ॥१८–१९॥ प्रतिहारीके इतना कहने पर मत्त हाथीकी शोभाको धारण करते हुए रामचन्द्र सीताके साथ चल पड़े उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे मानो चाँदनीके सहित चन्द्रमा ही हो ॥२०॥ रामको दूरसे ही आते देख राजकुमारने लक्ष्मणके साथ खड़े होकर तथा कुछ आगे जाकर उनका स्वागत किया ॥२१॥ राम सीताके साथ अत्यन्त उत्कृष्ट आसन पर विराजमान हुए तथा राजकुमारके द्वारा प्रदत्त अर्घदान आदि सन्मानको प्राप्त हुए ॥२२॥ तदनन्तर इच्छानुसार स्नान, भोजन आदि समस्त कार्य समाप्त होने पर राजकुमारने अन्य सब लोगोको दूर कर दिया । वहाँ राम, लक्ष्मण, सीता तीन और चौथा राजकुमार ये ही चार व्यक्ति रह गये ॥२३॥ 'मेरे पिताके पाससे दूत आया है' ऐसा कहता हुआ वह राजकुमार प्रयत्नपूर्वक सजाये हुए एक दूसरे कमरेमे गया । वहाँ उसने नानाप्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले अनेक योद्धाओको द्वार पर नियुक्त कर यह आदेश दिया कि यहाँ जो कोई प्रवेश करेगा वह मेरे द्वारा वध्य होगा ॥२४–२५॥

तदनन्तर यथार्थ भावके प्रकट करनेमे जो लज्जा थी उसे दूर कर उस सुचेताने राम लक्ष्मण और सीताके सामने बीचका आवरण फाड़ डाला ॥२६॥ तत्पश्चात् आवरणके दूर होते ही ऐसा लगने लगा मानो स्वर्गसे ही कोई उत्तम कन्या नीचे आकर पड़ी है । अथवा पातालसे ही निकली है । उस कन्याका मुख लज्जाके कारण कुछ-कुछ नम्रीभूत हो रहा था ॥२७॥ उसकी

१. मोदकान् म० । २. पात्राणि । ३. समासन्नपुरुषै. क०, ख० । ४. समहाजवैः म० । ५. इत्युपदेशतः क०, ख०, प्रसन्नः परमो -म० । ६. मध्योऽसौ समेति म०, ख० ।

छेकहंसाश्चिरं त्रस्ताश्चक्षुषी समचूकुचन् । लक्ष्मीरिव स्थिता साक्षात् श्रीरिवोज्झितपङ्कजा ॥२९॥
गृहं प्लावितुमारब्धामिव लावण्यवारिधौ । उत्कीर्णामिव रत्नानां रजसा काञ्चनस्य वा ॥३०॥
कल्लोला इव निर्जग्मुः स्तनाभ्यां कान्तिवारिणः । तरङ्गा इव सञ्जाता मध्ये त्रिवलिराजिते ॥३१॥
[1]चण्डातकं समुद्भिद्य जघनस्य घनं महः । निर्जगामापरं छात्रं जीमूतं शशिनो यथा ॥३२॥
सुचिरं प्रथितं लोके [2]चञ्चलत्वायशोमलम् । गृहजीमूतवर्तिन्या निर्धौतमिव विद्युता ॥३३॥
अत्यन्तस्निग्धया तन्व्या[3] रामराज्या विराजिता । नितम्बाज्जातया हैमात् महानीलत्विषा यथा ॥३४॥
ततोऽसौ सहसामुक्तनररूपा सुलोचना । ढौकिता जानकीं तेन [4]रतिश्रीरिव लज्जया ॥३५॥
अन्ते लक्ष्मणस्तत्र परिष्वक्तो मनोभुवा । अवस्थां कामपि प्रापच्चलमन्थरलोचनः ॥३६॥
ततो विशुद्धया बुद्ध्या पद्मस्तामित्यभाषत । दधाना विविधं वेषं का त्वं क्रीडसि कन्यके ॥३७॥
ततोऽशुकेन संवीय गात्रं प्रवरभाषिणी । जगाद देव ! वृत्तान्तं शृणु सद्भाववेदिनम् ॥३८॥
बालिखिल्य इति ख्यातः पुरस्यास्य पतिः सुधीः । सदाचारपरो नित्यं मुनिवल्लोकवत्सलः ॥३९॥
पृथिवीति प्रिया तस्य गर्भाधानमुपागता । म्लेच्छाधिपतिना चासौ गृहीतः संयुगे नृपः ॥४०॥

कान्तिसे लिप्त हुआ कपडेका तम्बू ऐसा दीखने लगा मानो उसमे आग ही लग गई हो तथा लज्जासे युक्त मन्द मुसकानकी किरणोंसे लिप्त होने पर ऐसा जान पड़ने लगा मानो उसमे चन्द्रमा का ही प्रकाश फैल गया हो ॥२८॥ उसे देख, चतुर हंसोने चिरकाल तक भयभीत हो अपने नेत्र संकुचित कर लिये । वह कन्या ऐसी जान पड़ती थी मानो कमलको छोड़कर साक्षात् लक्ष्मी ही वहाँ आ बैठी हो ॥२९॥ उसकी कान्तिसे वह घर ऐसा मालूम होता था मानो सौन्दर्यके सागरमे उसने तैरना ही शुरू किया हो अथवा रत्नो और स्वर्णकी परागसे मानो आच्छादित ही किया गया हो ॥३०॥ उसके स्तनोसे ऐसा जान पडता था मानो कान्तिरूपी जलके कल्लोल ही निकल रहे हों और त्रिबलिसे शोभित मध्यभागमे ऐसा लगता था मानो तरङ्गे ही उठ रहीं हो ॥३१॥ जिस प्रकार मेघके पतले आवरणको लॉघ कर चन्द्रमाका प्रकाश बाहर फूट पड़ता है उसी प्रकार लॅहगाको भेदकर उसके नितम्बस्थलका सघन तेज बाहर फूट पड़ा था ॥३२॥ वह घर, एक मेघके समान जान पडता था और उसमे बैठी हुई वह कन्या बिजलीके समान प्रतिभासित होती थी । ऐसा लगता था कि लोकमे चञ्चलताके कारण बिजलीके यशमे जो मल चिरकालसे लगा हुआ था उसने उसे बिलकुल ही धो डाला था ॥३३॥ वह स्वर्णनिर्मित की तरह देदीप्यमान नितम्बस्थलसे उत्पन्न महानीलमणिके समान श्याम, अत्यन्त चिकनी एवं पतली रोमराजिसे सुशोभित थी ॥३४॥

तदनन्तर जिसने सहसा पुरुषका वेष छोड़ दिया था तथा जिसके नेत्र अत्यन्त सुन्दर थे, ऐसी वह कन्या सीताके पास आ बैठी जिससे वह उस प्रकार सुशोभित होने लगी जिस प्रकारकी लज्जासे रतिकी श्री सुशोभित होती है ॥३५॥ लक्ष्मण उसके पास ही बैठे थे, सो कामसे युक्त हो किसी अनिर्वचनीय अवस्थाको प्राप्त हुए । उस समय उनके चञ्चल नेत्र धीरे-धीरे चल रहे थे ॥३६॥ तदनन्तर निर्मल बुद्धिसे युक्त रामने उससे इस प्रकार कहा कि हे कन्ये ! विविध वेषको धारण करनेवाली तू कौन है ? जो इस तरह क्रीड़ा करती है ? ॥३७॥ इसके उत्तरमें मधुर भाषण करनेवाली कन्याने वस्त्रसे शरीर ढँक कर कहा कि हे देव ! सद्भावको सूचित करनेवाला मेरा वृत्तान्त सुनिये ॥३८॥

इस नगरका स्वामी 'बालिखिल्य' इस नामसे प्रसिद्ध है जो अतिशय बुद्धिमान्, मुनियोंके समान निरन्तर सदाचारका पालन करनेवाला और लोगोंके साथ स्नेह करने वाला है ॥३९॥ उसकी

१. 'लहँगा' इति प्रसिद्ध स्त्रीवस्त्रम् । २. चञ्चलत्वायसोमलं (?) म० । ३. रुच्या म० । ४. रति श्रीरिव म० ।

उक्तं च स्वामिना तस्य सिंहोदरमहीभृता । पुत्रश्चेद् भविता गर्भे कर्ता राज्यमसाविति ॥४१॥
ततोऽहं पापिनी जाता मन्त्रिणा वसुबुद्धिना[1] । सिंहोदराय पौंस्नेन कथिता राज्यकाङ्क्षया ॥४२॥
नीता कल्याणमालाख्यां जनन्या रहितार्थिकाम्[2] । प्रायो[3] माङ्गलिके लोको व्यवहारे प्रवर्तते ॥४३॥
मन्त्री माता च मे वेत्ति कन्येयमिति नापरः । इयन्तं कालमधुना भवन्तः पुण्यवीक्षिताः ॥४४॥
दुःखं तिष्ठति मे तातः प्राप्तश्चारकवासिताम् । सिंहोदरोऽपि नो सक्तस्तस्य कर्तुं विमोचनम् ॥४५॥
यदत्र द्रविणं किञ्चिद्देशे समुपजायते । तन्म्लेच्छस्वामिने सर्वं प्रेष्यते[4] दुर्गमीयुषे ॥४६॥
वियोगवह्निनात्यन्तं तप्यमाना ममाम्बिका । जाता कलावशेषेव चन्द्रमूर्तिर्गतप्रभा ॥४७॥
इत्युक्त्वा दुःखभारेण पीडिताशेषगात्रिका । सद्यो विच्छायतां प्राप्ता मुक्तकण्ठं रुरुद सा ॥४८॥
अत्यन्तमधुरैर्वाक्यैः पद्मेनाश्वासिता ततः । सीतया च निधायाङ्के कुर्वन्त्या मुखधावनम् ॥४९॥
सुमित्रासूनुना चोक्ता शुचं त्यज सुन्दरि । कुरु राज्यमनेनैव वेषेणोचितकारिणि ॥५०॥
शुभे काश्चित्प्रतीक्षस्व दिवसान् धैर्यसङ्गतान् । म्लेच्छेनग्रहणं किं मे पितरं पश्य मोचितम् ॥५१॥
इत्युक्ते परमं तोषं ताते मुक्त इवागता । समुल्लसितसर्वाङ्गा कन्यका द्युतिपूरिता ॥५२॥
तत्र ते कानने रम्ये विचित्रालापविभ्रमाः । देवा इव सुखं तस्थुः स्वच्छन्दा दिवसत्रयम् ॥५३॥
ततः [5]सुप्तजने काले रजन्यां रामलक्ष्मणौ । ससीतौ रन्ध्रमाश्रित्य निष्क्रान्तौ काननालयात् ॥५४॥

प्रियाका नाम पृथिवी है। जिस समय पृथिवी गर्भाधानको प्राप्त हुई उसी समय राजा बालखिल्य का म्लेच्छ राजाके साथ युद्ध हुआ, सो युद्धमे म्लेच्छ राजाने उसे पकड़ लिया ॥४०॥ राजा सिंहोदर बालखिल्यके स्वामी है सो उन्होंने कहा कि बालखिल्यकी रानी गर्भवती है यदि उसके गर्भमे पुत्र होगा तो वह राज्य करेगा ॥४१॥ तदनन्तर दुर्भाग्यसे पुत्र न होकर मै पापिनी पुत्री उत्पन्न हुई परन्तु वसुबुद्धि मन्त्रीने राज्यकी आकांक्षासे सिंहोदरके लिए पुत्र उत्पन्न होनेकी खबर दी ॥४२॥ माताने मेरा कल्याणमाला यह अर्थहीन नाम रक्खा, सो ठीक ही है क्योंकि लोग प्राय. मङ्गलमय व्यवहारमें ही प्रवृत्त होते है ॥४३॥ अब तक मन्त्री और मेरी माता ही जानती है कि यह कन्या है दूसरा नहीं। आज पुण्योदयसे आप लोगोंके दर्शन हुए ॥४४॥ बन्दीगृहके निवास को प्राप्त हुए हमारे पिता बहुत कष्टमे है। सिंहोदर भी उन्हें छुड़ानेके लिए समर्थ नहीं है ॥४५॥ इस देशमे जो कुछ धन उत्पन्न होता है वह सब दुर्गकी रक्षा करनेवाले म्लेच्छ राजाके लिए भेज दिया जाता है ॥४६॥ वियोगरूपी अग्निसे अत्यन्त सन्तापको प्राप्त हुई मेरी माता सूखकर कला मात्रसे अवशिष्ट चन्द्रमाके समान कान्तिहीन हो गई है ॥४७॥ इतना कहकर दुःखके समान भारसे जिसका समस्त शरीर पीड़ित हो रहा था ऐसी वह कल्याणमाला शीघ्र ही कान्तिरहित हो गई तथा गला फाड़कर रोने लगी ॥४८॥

तदनन्तर रामने अत्यन्त मधुर शब्दोंमे उसे सान्त्वना दी, सीताने गोदमे बैठाकर उसका मुँह धोया और लक्ष्मणने कहा कि हे सुन्दरि ! शोक छोड़ो, इसी वेषसे राज्य करो, तुम उचित कार्य कर रही हो ॥४९-५०॥ हे शुभे ! हे कल्याणरूपिणि ! धैर्यके साथ कुछ दिन तक प्रतीक्षा करो। मेरे लिए म्लेच्छराजका पकड़ना कौनसी बात है ? तुम शीघ्र ही अपने पिताको छूटा देखोगी ॥५१॥ इस प्रकार कहने पर उसे इतना सन्तोष हुआ मानो पिता छूट ही गया हो। उस कन्याके समस्त अङ्ग हर्षसे उल्लसित हो उठे और वह कान्तिसे भर गई ॥५२॥ तदनन्तर उस मनोहर वनमे नाना प्रकारका वार्तालाप करते हुए वे सब तीन दिन तक देवोंके समान स्वतन्त्र हो सुखसे रहे ॥५३॥ तत्पश्चात् रात्रिके समय जब सब लोग सो गये तब सीता सहित

१ सुबुद्धिना म० । च सबुद्धिना क०, ख० । २. रहितार्थिक म० । ३. प्राप्तौ म० । ४. प्रेक्ष्यते म० । ५. सुपूजने म० ।

विबुद्धा तानपश्यन्ती कन्या व्याकुलमानसा । हाकारमुखरा शोकं परमं समुपागता ॥५५॥
महापुरुषयुक्तं ते स्तेनयित्वा मनो मम । गन्तुं निद्रासमेतायाः[1] निर्घृणेति मनस्विनी ॥५६॥
कृच्छ्रान्नियम्य शोकं च वरवारणवर्तिनी । प्रविश्य कूबरं तस्थौ पूर्ववद्दीनमानसा ॥५७॥
ततः कल्याणमालायाः रूपेण विनयेन च । हृतचित्ताः क्रमेणैते प्रापुर्मेकलनिम्नगाम्[2] ॥५८॥
उत्तीर्य विहितक्रीडास्तां सुखेन मनोहरान् । बहून् देशानतिक्रम्य प्राप्ता विन्ध्यमहाटवीम् ॥५९॥
स्कन्धावारमहासार्थपरिक्षुण्णेन[3] वर्त्मना । प्रयान्तः पथिकैर्गोपैः कीनाशैश्च[4] निवारिताः ॥६०॥
क्वचित्सालादिभिर्वृक्षैर्लतालिङ्गितमूर्तिभिः । तद्वनं शोभतेऽत्यन्तं स्वामोदं नन्दनं यथा ॥६१॥
क्वचिद्दावेन[5] निर्दग्धप्रान्तस्थितमहीरुहम् । न शोभते यथा गोत्रं दुष्पुत्रेण कलङ्कितम् ॥६२॥
अथावोचत् ततः सीता कर्णिकारवनान्तरे । वामतोऽयं स्थितो ध्वाङ्क्षो मूर्ध्नि कण्टकिनस्तरो[6] ॥६३॥
[7]वाशमानो मुहुः क्रूरं कलहं कथयत्ययम् । अन्योऽपि क्षीरवृक्षस्थो जयं शंसति वायसः ॥६४॥
तस्मात् तावत् प्रतीक्षेतां मुहूर्तं कलहात् परम्[8] । जयोऽपि नैव मे चित्ते प्रतिभात्यतिसुन्दरः ॥६५॥
ततः क्षणं विलम्ब्यैतौ प्रयातौ पुनरुद्यतौ । तदेव च पुनर्जातं निमित्तं निकटेऽन्तरे ॥६६॥
ब्रुवत्या अपि सीताया अवकर्ण्य वचस्ततः । प्रवृत्तो गन्तुमग्रे च म्लेच्छानां सैन्यमुद्गतम् ॥६७॥
तौ निरीक्ष्यैव निर्भीतावायान्तौ वरकार्मुकौ । क्षणेनैकेन तत्सैन्यं कान्दिशीकं पलायितम् ॥६८॥

राम, लक्ष्मण, छिद्र पाकर वनके उस तम्बूसे बाहर निकल गये ॥५४॥ जागने पर जब कन्याने उन्हें नहीं देखा तब उसका मन बहुत ही व्याकुल हुआ। वह हाहाकार करती हुई परम शोकको प्राप्त हुई ॥५५॥ वह मनस्विनी मन ही मन यह कह रही थी कि हे महापुरुष ! मेरा मन चुराकर तथा मुझे सोती छोड़ क्या तुम्हें जाना उचित था ? तुम बड़े निर्दय हो ॥५६॥ अन्तमें बड़े दुःखसे शोकको रोककर तथा उत्तम हाथीपर सवार हो उसने कूबर नगरमें प्रवेश किया और वहाँ पहलेके समान दीन हृदयसे वह निवास करने लगी ॥५७॥

अथानन्तर कल्याणमालाके रूप और विनयसे जिनके चित्त हरे हो गये थे ऐसे राम, सीता तथा लक्ष्मण क्रम-क्रमसे नर्मदा नदीको प्राप्त हुए ॥५८॥ क्रीडा करते हुए उस नदीको पारकर तथा अनेक सुन्दर देशोंको उल्लंघन कर वे विन्ध्याचलकी महाअटवीमें पहुँचे ॥५९॥ वे बड़ी भारी सेनाके संचारसे खुदे हुए मार्गसे जा रहे थे, इसलिए मार्गमें चलनेवाले ग्वालों तथा हलवाहकोंने उन्हें रोका कि इस मार्गसे आगे न जाओ पर वे रुके नहीं ॥६०॥ बहुत भारी सुगन्धिसे भरा हुआ यह वन कहीं तो लताओंसे आलिङ्गित सागौन आदिके वृक्षोंसे नन्दनवनके समान अत्यन्त सुशोभित है और कहीं दावानलके कारण समीप स्थित वृक्षोंके जल जानेसे कुपुत्रके द्वारा कलंकित गोत्रके समान सुशोभित नहीं है, इस प्रकार कहते हुए वे आगे बढ़ रहे थे ॥६१–६२॥ तदनन्तर कुछ आगे बढ़नेपर सीताने कहा कि देखो, कनेर वनके बीचमें बाईं ओर कटीले वृक्षकी चोटीपर बैठा कौआ बार-बार क्रूर शब्द कर रहा है सो 'शीघ्र ही कलह होनेवाली है' यह कह रहा है और इधर क्षीर वृक्षपर बैठा दूसरा कौआ 'हम लोगोंकी विजय होगी' यह सूचित कर रहा है ॥६३–६४॥ इसलिए आपलोग मुहूर्तमात्र प्रतीक्षा कर लें क्योंकि कलहान्तर जय प्राप्त करना भी मेरे मनमें बहुत अच्छा नहीं जँचता ॥६५॥ तदनन्तर क्षण भर विलम्ब कर वे पुनः आगे गये तो कुछ ही अन्तर पर वही निमित्त फिर हुआ ॥६६॥ यद्यपि सीता कह रही थी फिर भी उसका कहा अनसुना कर राम-लक्ष्मण आगे बढ़ते गये। कुछ दूरी पर उन्हें म्लेच्छोंकी सेना मिली, सो उत्तम धनुषके धारक तथा निर्भय राम-लक्ष्मणको आते देख वह सेना भयभीत हो

१. निद्रां समेताया म० । २. नर्मदा । ३. परिक्षुणेन (?) म० । ४. हलिभिः । ५. निर्दग्धं प्रान्त म० । ६. कण्टकितस्तरौ म० । ७. शब्दं कुर्वन् । ८. परः म० ।

अवगत्य ततस्तस्मात् सन्नह्यान्ये समागता । प्रावृड्मेघसमानेन तेऽपि हासेन निर्जिता ॥६९॥
ततस्तेऽत्यन्तवित्रस्ता म्लेच्छा पतितकार्मुका । कुर्वन्त परम राव गत्वा पत्ये न्यवेदयन् ॥७०॥
ततोऽसौ परम क्रोध वहश्चाप च दारुणम् । निर्जगाम महासैन्य शस्त्रसन्तमसावृत ॥७१॥
काकोनदा इति ख्याता म्लेच्छास्ते धरणीतले । दारुणा सर्वमासादो दुर्जया पार्थिवैरपि ॥७२॥
तैरावृतां दिश प्रेक्ष्य पुरो घ[1]नकुलासितै । धनुरारोपयत् कोप किञ्चिल्लक्ष्मीधरो भजन् ॥७३॥
तथा चास्फालित सर्वंवनमाकम्पित यथा । ज्वरश्च वनसत्वाना जज्ञे प्रकटवेपथु ॥७४॥
सन्दधान शर वीक्ष्य लक्ष्मण त्रस्तचेतस. । बभ्रमुश्चक्रता प्राप्ता म्लेच्छा निश्चक्षुषो यथा ॥७५॥
तत साध्वससम्पूर्णो म्लेच्छानामधिपो भृशम् । अवतीर्य रथादेतौ प्रणम्य रचिताञ्जलि ॥७६॥
अब्रवीदस्ति कौशाम्बी नगरी प्रथिता प्रभुः । आहिताग्निर्द्विजस्तत्र नाम्ना विश्वानलः शुचि. ॥७७॥
प्रतिसन्ध्येति त[2]ज्जाया जातोऽहं तनयस्तयो । रौद्रभूतिरिति ख्यात शस्त्रद्यूतकलान्वित ॥७८॥
बाल्यात् प्रभृति दुष्कर्मनित्यानुष्ठानकोविद । प्राप्तश्चौर्ये कदाचिच्च शूले भेत्तुमभीप्सित ॥७९॥
[3]धनिनैकेन तत्राह श्रद्धानेन साधुना । मोचितो वेपमानाङ्ग त्यक्त्वा देशमिहागत ॥८०॥
प्राप्त. कर्मानुभावेन काकोनदजनेशताम् । भ्रष्टस्तिष्ठामि सद्वृत्तात् पशुभिः समता गत ॥८१॥
इयन्त यस्य मे काल सैन्याढ्या अपि पार्थिवा । चक्षुषो गोचरीभावमासन् शक्ता न सेवितुम् ॥८२॥
सोऽहं दर्शनमात्रेण कृतो दैवेन विक्लव । धन्योऽस्मि वीक्षितौ येन भवन्तौ पुरुषोत्तमौ ॥८३॥

क्षणभरमे भाग गई ॥६७–६८॥ तदनन्तर भागती सेनासे समाचार जानकर दूसरे म्लेच्छ तैयार हो सामने आये परन्तु वर्षाकालीन मेघके समान श्याम लक्ष्मणने उन्हें हँसते-हँसते पराजित कर दिया ॥६९॥ तदनन्तर जो अत्यन्त भयभीत थे, जिन्होंने धनुष छोड़ दिये थे और जो जोरसे चिल्ला रहे थे ऐसे उन म्लेच्छोंने जाकर अपने स्वामीसे निवेदन किया ॥७०॥ तब परम क्रोध और भयकर धनुषको धारण करता हुआ म्लेच्छोंका स्वामी निकला। बड़ी भारी सेना उसके साथ थी और वह शस्त्ररूपी अन्धकारसे आच्छादित था ॥७१॥ वे म्लेच्छ पृथिवीपर 'काकोनद' इस नामसे प्रसिद्ध थे, अत्यन्त भयंकर थे, सब जन्तुओंका मांस खाने वाले थे और राजाओंके द्वारा भी दुर्जेय थे ॥७२॥ जब लक्ष्मणने देखा कि आगेकी दिशा मेघसमूहके समान श्यामवर्ण म्लेच्छोंसे आच्छादित हो रही है तब उन्होंने कुछ कुपित हो धनुषकी डोरी चढ़ा ली ॥७३॥ और उस प्रकारसे उसका आस्फालन किया कि समस्त वन काँप उठा तथा जंगली जानवरोंको कँपकँपी उत्पन्न करनेवाला ज्वर उत्पन्न हो गया ॥७४॥ लक्ष्मणको डोरीपर बाण चढ़ाते देख जिनका चित्त भयभीत हो गया था ऐसे वे म्लेच्छ नेत्रहीनके समान चक्राकार घूमने लगे ॥७५॥ तदनन्तर अत्यन्त भयसे भरा म्लेच्छोंका स्वामी रथसे उतर कर हाथ जोड़ता हुआ इनके पास आया और प्रणाम कर बोला कि एक कौशाम्बी नामकी प्रसिद्ध नगरी है निरन्तर अग्निमें होम करने वाला विश्वानल नामका पवित्र ब्राह्मण उसका स्वामी है। विश्वानलकी स्त्रीका नाम प्रतिसंध्या है। मैं उन्हीं दोनोंका पुत्र हूँ, रौद्रभूति नामसे प्रसिद्ध हूँ, शस्त्र तथा जुएके कलाका पारगामी हूँ ॥७६–७८॥ मैं बाल्य अवस्थासे ही निरन्तर खोटे कार्य करनेमें निपुण था। किसी समय चोरीके अपराधमें पकड़ा गया और मुझे शूलीपर चढ़ानेका निश्चय किया गया ॥७९॥ शूलीका नाम सुनते ही मेरा शरीर काँप उठा तब विश्वास रखनेवाले एक भले धनिकने जमानत देकर मुझे छुड़वा दिया। तदनन्तर देश छोड़कर मैं यहाँ आ गया ॥८०॥ कर्मोंके प्रभावसे इन काकोनद म्लेच्छोंकी स्वामिताको प्राप्त हो गया हूँ तथा सदाचारसे भ्रष्ट हो पशुओंके समान यहाँ रहता हूँ ॥८१॥ इतने समय तक बड़ी-बड़ी सेनाओंसे युक्त राजा भी जिसके दृष्टिगोचर होनेके लिए समर्थ नहीं हो सके उस मुझको आपने दृष्टिमात्रसे ही दीन कर दिया। मैं धन्य हूँ जिससे

१ मेघसमूहवत्कृष्णै । २ यजाया म० । ३. ध्वनिनैकेन म० ।

शासनं यच्छता नाथौ किं करोमि यथोचितम् । शिरसा पादुके किं वा वहे पावनपण्डिते ॥८४॥
[1]विन्ध्योऽयं निधिभिः पूर्णो वरयोषिच्छतैस्तथा । भुजिष्यमिच्छता देवौ मामतो निभृतं परम् ॥८५॥
इत्युक्त्वा प्रणतिं कुर्वन् पुनरार्तिं परां गतः । पपात विह्वलो भूमौ छिन्नमूलस्तरुर्यथा ॥८६॥
कष्टावस्थां ततः प्राप्तं तमेवं राघवोऽवदत् । कृपालतापरिष्वक्तवीरकल्पमहातरुः ॥८७॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा भैषीर्वालिखिल्यं विबन्धनम् । कृत्वाऽऽनय द्रुतं प्राप्य सन्मानं परमं सुधी ॥८८॥
तस्यैवाभिमतो भूत्वा सचिवः सज्जनान्वितः । विहाय सङ्गतिं म्लेच्छैर्विषयस्य [2]हितोऽभवत् ॥८९॥
एतत् चेत् कुरुषे सर्वमन्यथात्वविवर्जितम् । ततस्ते विद्यते शान्तिरद्यैव म्रियसेऽन्यथा ॥९०॥
एवं प्रभो करोमीति कृत्वा प्रणतिमादृतः । [3]महारथसुतं गत्वा मुमोच विनयान्वितः ॥९१॥
अभ्यङ्गोद्वर्त्य [4]सुस्नातं भोजयित्वा स्वलङ्कृतम् । आरोप्य स्यन्दने नेतुमारेभे तं तदन्तिकम् ॥९२॥
स दध्यौ नीयमानः सन् विस्मयं परमं गतः । इतोऽपि गहनावस्था प्रायो मेऽद्य भविष्यति ॥९३॥
क्वायं म्लेच्छो महाशत्रुः कुकर्माऽत्यन्तनिर्दयः । क्व चायमतिसन्मानो न मन्येऽद्यासुधारणम् ॥९४॥
इति दीनमना गच्छन् सहसा पद्मलक्ष्मणौ । दृष्ट्वा परां धृतिं प्राप्तोऽवतीर्य सनमस्कृतिः ॥९५॥
अब्रवीत् तौ युवां नाथावागतावतिसुन्दरौ । मम पुण्यानुभावेन मुक्तो येनास्मि बन्धनात् ॥९६॥
गच्छ क्षिप्रं निजं धाम लभस्वाभीष्टसङ्गमम् । तत्र नौ ज्ञास्यसीत्युक्ते बालिखिल्यः सुधीर्गतः ॥९७॥

पुरुषोंमे उत्तम आप महानुभावोंके दर्शन किये ॥८२–८३॥ हे नाथ ! आज्ञा दीजिए मैं क्या योग्य सेवा करूँ ? क्या पवित्र करनेमें निपुण आपकी पादुकाएँ शिर पर धारण करूँ ? ॥८४॥ यह विन्ध्याचल निधियों तथा उत्तमोत्तम सैकड़ों स्त्रियोंसे परिपूर्ण है इसलिए हे देव ! मुझसे किसी अच्छे भारी राजस्वकी इच्छा प्रकट करो ॥८५॥ इतना कहकर प्रणाम करता हुआ वह पुनः परम पीड़ाको प्राप्त हुआ और विह्वल हो कटे वृक्षके समान भूमि पर गिर पड़ा ॥८६॥

तदनन्तर जो वीरजनोंके लिए दयारूपी लतासे आलिङ्गित कल्पवृक्षके समान थे ऐसे राम दुःखमय अवस्थाको प्राप्त हुए म्लेच्छ राजासे इस प्रकार बोले कि हे सुबुद्धि ! उठ-उठ, डर मत, बालिखिल्यको बन्धन रहित कर तथा उत्तम सन्मानको प्राप्त करा कर शीघ्र ही यहाँ ला ॥८७–८८॥ उसीका इष्ट मन्त्री हो सज्जनोंकी संगति कर और म्लेच्छोंकी संगति छोड़, देशका हितकारी हो ॥८९॥ यदि तू यह सब काम ठीक-ठीक करता है तो उससे तुझे शान्ति प्राप्त होगी अन्यथा आज ही मारा जायगा ॥९०॥ 'हे प्रभो ! ऐसा ही करता हूँ' इस प्रकार कहकर उसने बड़े आदरसे रामको प्रणाम किया और विनयके साथ जाकर महारथके पुत्र बालखिल्यको छोड़ दिया ॥९१॥

तदनन्तर जिसे तेल उबटन लगाकर अच्छी तरह स्नान कराया गया था और भोजन कराकर जिसे अलंकारोंसे अलंकृत किया गया था। ऐसे बालखिल्यको रथपर बैठाकर वह रामके पास ले जानेके लिए उद्यत हुआ ॥९२॥ जो इस तरह आदरके साथ लाया जा रहा था ऐसा बालखिल्य परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ और मन ही मन सोचता जाता था कि प्रायः अब मेरी अवस्था इससे भी गहन होगी ॥९३॥ कहाँ तो यह कुकर्म करनेवाला अत्यन्त निर्दय महावैरी म्लेच्छ ? और कहाँ यह भारी सम्मान ? जान पड़ता है कि आज प्राण नहीं बचेंगे ॥९४॥ इस प्रकार बालखिल्य दीन चित्त होकर जा रहा था कि सहसा राम-लक्ष्मणको देखकर वह परम सन्तोषको प्राप्त हुआ। उसने रथसे उतरकर नमस्कार करते हुए कहा कि हे नाथ ! मेरे पुण्योदयसे अतिशय सुन्दर रूपको धारण करनेवाले आप दोनों महानुभाव पधारे हैं इसीलिए मैं बन्धनसे मुक्त हुआ हूँ ॥ ९५–९६॥ राम लक्ष्मणने उससे कहा कि शीघ्र ही अपने घर जाओ और इष्टजनोंके साथ

---

१. वन्ध्योऽयं ज०, ब० । २. हितोऽभवत् (?) म० । ३ बालखिल्यं म० । ४. सुस्नानं म० ।

कृत्वा सुनिभृतं भृत्यं तस्य विश्वानलाङ्गजम् । यातौ सीतान्वितौ स्वेष्टं कृतिनौ रामलक्ष्मणौ ॥९८॥
वालिखिल्यस्तु सम्प्राप्तः समं रौद्रविभूतिना । स्वपुरस्यान्तिकां क्षोणीं स्मरन् बान्धवचेष्टितम् ॥९९॥
प्रत्यासन्नं ततः कृत्वा विभूत्या परयान्वितम् । पितरं निरगात्तुष्टा पुरात् कल्याणमालिनी ॥१००॥
प्रतीता सनमस्कारा तां समाघ्राय[1] मस्तके । निजयाने पुनः कृत्वा प्रविष्टः कूवरं नृपः ॥१०१॥
पृथिवी महिषी तोषसञ्जातपुलका क्षणात् । पुरातनीं तनुं भेजे कान्तिसागरवर्तिनीम् ॥१०२॥
सिंहोदरप्रभृतयो नृपा प्रभृतयोऽखिला. । गुणैः कल्याणमालाया परमं विस्मयं गता. ॥१०३॥

उपजातिवृत्तम्

यद्रौद्रभूतिः सुचिरं विचित्रं समार्जयच्चौर्यपरायणः स्वम्[2] ।
अनेकदेशप्रभवं विशालं तद्वालिखिल्यस्य गृहं विवेश ॥१०४॥
जातेऽस्य वग्ग्वर्तिनि रौद्रभूतौ वशीकृत[3]म्लेच्छसुदुर्गभूमौ ।
सिंहोदरोऽपि प्रतिपन्नशङ्क. स्नेहं ससन्मानमलञ्चकार ॥१०५॥
सोऽयं समासाद्य परां विभूतिं प्रसादतो राघवसत्तमस्य ।
महारथी प्राणसमासमेतो रविर्यथैव शरदा रराज ॥१०६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते बालिखिल्योपाख्यानं नाम चतुस्त्रिंशत्तमं पर्व ॥३४॥

समागम प्राप्त करो। वहाँ पहुँचने पर तुम हम लोगोंको जान सकोगे'। इस प्रकार कहनेपर बुद्धिमान् बालखिल्य अपने घर चला गया ॥९७॥

तदनन्तर विश्वानलके पुत्र रौद्रभूतिको बालखिल्यका निश्चल मित्र बनाकर अतिशय कुशल राम-लक्ष्मण सीताके साथ अपने इष्ट स्थानको चले गये ॥९८॥ बान्धवजनोंकी चेष्टाका स्मरण करता हुआ बालखिल्य, रौद्रभूतिके साथ जब अपने नगरकी समीपवर्ती भूमिमें पहुँचा तब निकटवर्ती पिताको परम विभूतिसे युक्तकर पुत्री कल्याणमालिनी सन्तुष्ट हो उसका सत्कार करनेके लिए नगरसे बाहर निकली ॥९९–१००॥ तदनन्तर नमस्कार करती हुई पुत्रीको पहिचान कर राजा बालखिल्यने उसका मस्तक सूँघा फिर अपने रथपर बैठाकर कूबर नगरमें प्रवेश किया ॥१०१॥ बालखिल्यकी रानी पृथिवीके शरीरमें हर्षातिरेकसे रोमाञ्च निकल आये और वह कान्तिरूपी सागरमें वर्तमान अपने पुराने शरीरको क्षण भरमें पुनः प्राप्त हो गई ॥१०२॥ सिंहोदर आदि समस्त राजा कल्याणमालाके गुणोंसे परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥१०३॥ रौद्रभूतिने चिरकाल तक चोरीमें तत्पर रहकर नाना देशोंमें उत्पन्न जो विविध प्रकारका विशाल धन इकट्ठा किया था वह सब बालखिल्यके घरमें प्रविष्ट हुआ ॥१०४॥ जब म्लेच्छोंकी सुदुर्गम भूमिको वश करनेवाला रौद्रभूति बालखिल्यका आज्ञाकारी हो गया तब शङ्काको प्राप्त हुआ सिंहोदर भी सम्मान सहित उसके साथ बहुत स्नेह करने लगा ॥१०५॥ इस प्रकार महारथी बालखिल्य राम-लक्ष्मणके प्रसादसे परम विभूतिको पाकर अपनी प्राण प्रियासे इस तरह सुशोभित होने लगा जिस तरह कि शरदृतुसे सूर्य सुशोभित होता है ॥१०६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें बालिखिल्यका वर्णन करनेवाला चौंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३४॥

---

१. माघाय म० । २. धनम् , ३. वशीकृते म्लेच्छ म० ।

पञ्चत्रिंशत्तमं पर्व

अथ ते त्रिदशाभिख्या· कानन नन्दनोपमम् । विहरन्त सुख प्राप्ता देशमत्यन्तमुज्ज्वलम् ॥१॥
मध्ये यस्य नदी भाति प्रसिद्धजलवाहिनी । तापीति विश्रुता नानापक्षिवर्गानुनादिता ॥२॥
अरण्ये तत्र निस्तोये सिताऽत्यन्तश्रमान्विता । जगाद राघव नाथ कण्ठशोषो ममोत्तम· ॥३॥
यथा भवशतै खिन्नो भव्यो दर्शनमर्हत । वाञ्छत्येवमह तीव्रतृष्णयाऽऽकुलिता जलम् ॥४॥
[1]इत्युक्त्वा वार्यमाणापि निषण्णा सुतरोरध । रामेण जगदे देवि विषाद मागमः शुभे ॥५॥
आसन्नोऽय महाग्रामो दृश्यते विकटालय । उत्तिष्ठाशु प्रयामोऽत्र शिशिर वारि [2]पास्यति ॥६॥
एवमुक्ते तया स्वैर स्वैर प्रस्थितया समम् । प्राप्तौ तावरुणग्राम महाधनकुटुम्बिकम् ॥७॥
आहिताग्निर्द्विजस्तत्र कपिलो नाम विश्रुत । गेहे तस्यावतीर्णौ तौ यथाक्रममुपागते ॥८॥
अत्राग्निहोत्रशालायामपनीय श्रम क्षणम् । तद्ब्राह्मण्या जल दत्त पपौ सीता सुशीतलम् ॥९॥
यावत् तिष्ठन्ति ते तत्र द्विजस्तावदरण्यत । विल्वाश्वत्थपलाशैधोभारवाही समागत· ॥१०॥
दावानलसम यस्य मानस नित्यकोपिन । कालकूटविष वाक्यमुलूकसदृश मुखम् ॥११॥
कमण्डलुशिखाकूर्चवालसूत्रादिभि परम् । बिभ्राणः कुटिल वेषमुञ्छवृत्ति भजन् किल ॥१२॥
दृष्ट्वा तान् कुपितोऽत्यन्तभ्रुकुटीकुटिलानन । उवाच ब्राह्मणी वाचा तक्षन्निव सुतीक्ष्णया ॥१३॥

अथानन्तर देवोंके समान शोभाको धारण करनेवाले वे तीनो, नन्दन वनके समान सुन्दर वनमे सुखसे विहार करते हुए एक ऐसे अत्यन्त उज्वल देशमे पहुँचे, जिसके मध्यमे प्रसिद्ध जलको बहानेवाली, पक्षी समूहसे शब्दायमान तापी नामकी प्रसिद्ध नदी सुशोभित है ॥१-२॥ वहाँके निर्जल वनमे जब सीता अत्यन्त थक गई तब रामसे बोली कि नाथ ! मेरा कण्ठ बिलकुल सूख गया है ॥३॥ जिस प्रकार सैकड़ो जन्म धारण करनेसे खेदको प्राप्त हुआ भव्य, अरहन्त भगवान्‌के दर्शन चाहता है उसी प्रकार तीव्र पिपासासे आकुलित हुई मै जल चाहती हूँ ॥४॥ इतना कहकर वह रोकनेपर भी एक उत्तम वृक्षके नीचे बैठ गई । रामने कहा कि हे देवि ! हे शुभे ! विषादको प्राप्त मत होओ ॥५॥ यह पास ही बड़े-बड़े महलोसे युक्त बड़ा भारी ग्राम दिखाई दे रहा है, उठो, शीघ्र ही चले, वहीं शीतल पानी पीना ॥६॥ इस प्रकार कहने पर धीरे-धीरे चलती हुई सीताके साथ चलकर वे दोनो, जहाँ अनेक धनिक कुटुम्ब रहते थे, ऐसे अरुण ग्राममे पहुँचे ॥७॥ वहाँ प्रतिदिन होम करनेवाला एक कपिल नामका ब्राह्मण रहता था सो वे दोनो यथा क्रमसे प्राप्त हुए, उसीके घर उतरे ॥८॥ वहाँ यज्ञ-शालामे क्षण भर विश्राम कर सीताने उसकी ब्राह्मणीके द्वारा दिया शीतल जल पिया ॥९॥ वे सब वहाँ ठहर ही रहे थे कि इतनेमे बेल, पीपल और पलाशकी लकड़ियोका भार लिये ब्राह्मण जङ्गलसे वापिस आ पहुँचा ॥१०॥ निरन्तर क्रोध करनेवाले उस ब्राह्मणका मन दावानलके समान था, वचन कालकूटके समान थे, और मुख उल्लूके सदृश था ॥११॥ वह हाथमें कमण्डलु लिये था, उसने शिर पर बड़ी चोटी रख छोड़ी थी, मुख पर लम्बी चौड़ी दाढ़ी बढ़ा ली थी और कन्धेपर यज्ञोपवीतका सूत्र धारण किया था, इन सब चीजोसे वह अत्यन्त कुटिल वेषको धारण कर रहा था तथा उञ्छ वृत्तिसे अपनी जीविका चलाता था ॥१२॥ उन्हें देखते ही उसका क्रोध उमड़ पड़ा, उसका मुख भौंहोसे अत्यन्त कुटिल हो गया और वह ब्राह्मणीसे इस प्रकार बोला, मानो तीक्ष्ण वचनोसे

---

१. इत्युक्ता म० । २. पश्यति म० ।

अयि पापे किमित्येषामिह दत्त प्रवेशनम् । प्रयच्छाम्यद्य ते दुष्टे बन्ध गोरपि दुस्सहम् ॥१४॥
पश्येमे निस्त्रपा धृष्टा केऽपि पांशुलपाण्डुका । अग्निहोत्रकुटी पापा कुर्वन्त्युपहता मम ॥१५॥
तत सीताऽब्रवीत् पद्ममार्यपुत्र कुकर्मण. । अस्येदमास्पद दग्ध परमाक्रोशकारिण ॥१६॥
वर पुष्पफलच्छन्नै पादपैरुपशोभिते । सरोभिश्चातिविमलैः पद्मादिपिहितैर्वने ॥१७॥
सारङ्गैरुषित सार्धं क्रीडद्भिर्निजयेच्छया । श्रूयते नेदृश तत्र नितान्त परुष वचः ॥१८॥
अस्मिन् राघव नाकाभे देशे धनसमुज्वले । समस्तो निष्ठुरो लोको ग्रामवासी विशेषत. ॥१९॥
विप्रस्य रूक्षया वाचा क्षोभितोऽसौ ततोऽखिल । ग्रामः समागतो दृष्ट्वा तेषा रूप सुरोपमम् ॥२०॥
अब्रवीद् ब्राह्मणैकान्ते[१] पथिकाः क्षणमेककम् । तिष्ठन्तु किमिमे दोष कुर्वन्ति विनयान्विता' ॥२१॥
ततो निर्भर्त्स्य सकल त लोक कोपलोहित[२] । बभाषे तौ द्विज प्राप सारमेयो गजाविव ॥२२॥
निष्क्रामत पर गेहान्मदीयादपवित्रकौ । एवमादिवचोघातैर्लक्ष्मीमान् कुपितस्तत ॥२३॥
ऊर्ध्वपादमधोग्रीव कृत्वा त ब्राह्मणाधमम् । अब्रह्मण्य प्रकूजन्त शोणितारुणलोचनम् ॥२४॥
भ्रमयित्वा क्षितौ यावदास्फालयितुमुद्यत । रामेण वारितस्तावदिति कारुण्यधारिणा ॥२५॥
सौमित्रे किमिद क्लीबे प्रारब्ध भवतेदृशम् । मारितेन किमेतेन जीवन्मृतेन ते ननु ॥२६॥
मुञ्चैन त्वरित क्षुद्र यावत्प्राणैर्न मुच्यते । अयश परमेतस्मिल्लभ्यते केवल मृते ॥२७॥
श्रमणा ब्राह्मणा गाव पशुस्त्रीबालवृद्धका । सदोषा अपि शूराणा नैते वध्या. किलोदिता. ॥२८॥

उसे छील ही रहा हो ॥१३॥ उसने कहा कि हे पापिनि ! तूने इन्हें यहाँ प्रवेश क्यों दिया है ? अरी दुष्टे ! मैं आज तुझे पशुसे भी अधिक दु.सह बन्धनमे डालता हूँ ॥१४॥ देख, जिनका शरीर धूलिसे धूसर हो रहा है, ऐसे ये निर्लज्ज, पापी, ढीठ व्यक्ति मेरी यज्ञ शालाको दूषित कर रहे है ॥१५॥

तदनन्तर सीताने रामसे कहा कि हे आर्यपुत्र ! इस कुकर्मा तथा अतिशय अपशब्द कहनेवाले इस ब्राह्मणका यह अधम स्थान छोड़ो ॥१६॥ फूलो और फलोंसे आच्छादित वृक्षो तथा कमल आदिसे युक्त अत्यन्त निर्मल सरोवरोंसे सुशोभित वनमे स्वेच्छासे साथ-साथ क्रीड़ा करनेवाले हरिणोंके साथ निवास करना अच्छा, जहाँ इस प्रकारके अत्यन्त कठोर शब्द सुनाई नही पड़ते ॥१७–१८॥ हे राघव ! स्वर्गके समान आभावाले इस अतिशय सुन्दर देशमे समस्त लोग निष्ठुर है और खासकर ग्रामवासी तो अत्यन्त निष्ठुर हैं ही ॥१९॥ ब्राह्मणके रूक्ष वचनोसे क्षोभको प्राप्त हुआ समस्त गॉव उनका देवतुल्य रूप देखकर वहाँ आ गया ॥२०॥ गॉवके लोगोंने कहा कि हे ब्राह्मण ! यदि ये पथिक तेरे मकानमे एक ओर क्षण भरके लिए ठहर जाते है तो क्या दोष उत्पन्न कर देंगे ? ये सब बड़े विनयी जान पड़ते है ॥२१॥ उसने क्रोधसे लाल होकर सब लोगोको डॉटते हुए, राम-लक्ष्मणसे कहा कि तुम लोग अपवित्र हो, अतः मेरे घरसे निकलो । ब्राह्मणका राम-लक्ष्मणके प्रति रोष दिखाना ऐसा ही था जैसा कि कोई एक कुत्ता दो हाथियोंके प्रति रोष दिखाता है—उन्हें देखकर भौंकता है । तदनन्तर उसके इस प्रकारके वचन सम्बन्धी आघातसे लक्ष्मणको क्रोध आ गया, वे रुधिरके समान लाल-लाल नेत्रोंके धारक तथा अमाङ्गलिक अपशब्द बकनेवाले उस नीच ब्राह्मणको ऊर्ध्वपाद और अधोग्रीव कर घुमाकर ज्यों ही पृथिवी पर पछाडनेके लिए उद्यत हुए त्यों ही करुणाके धारी रामने उन्हें यह कहते हुए रोका ॥२२–२५॥ कि हे लक्ष्मण ! तुम इस वेचारे दीन प्राणी पर यह क्या करने जा रहे हो ? यह तो जीवित रहते हुए भी मृतकके समान है, इसके मारनेसे क्या लाभ है ? ॥२६॥ जब तक यह निष्प्राण नहीं होता है तब तक इस क्षुद्रको शीघ्र ही छोड़ दो । इसके मरने पर केवल अपयश ही प्राप्त होगा ॥२७॥ मुनि, ब्राह्मण, गाय, पशु, स्त्री, बालक और वृद्ध ये सदोष होने पर

---

१ ब्राह्मणकान्ता म० । २ लोललोहितः म० ।

इत्युक्त्वा मोचयित्वा तं कृत्वा लक्ष्मणमग्रतः । सीतयाऽनुगतो रामः कुटीरान्निरगात्ततः ॥२९॥
धिग् धिग् नीचसमासङ्गं दुर्वचःश्रुतिकारणम् । मनोविकारकरणं महापुरुषवर्जितम् ॥३०॥
वरं तरुतले शीते[1] दुर्गमे विपिने स्थितम् । परित्यज्याखिलं ग्रन्थं विहृतं[2] भुवने वरम् ॥३१॥
वरमाहारमुत्सृज्य मरणं सेवितुं[3] सुखम् । अवज्ञातेन नान्यस्य गृहे क्षणमपि स्थितम् ॥३२॥
कूलेषु सरितामद्रेः कुक्षिष्वत्यन्तहारिषु । स्थास्यामो न पुनर्भूयः प्रवेक्ष्यामः खलालयम् ॥३३॥
[4]निन्दन्नेव खलासङ्गमभिमानं परं वहन् । निर्गत्य ग्रामतः पद्मो वनस्य पदवीं श्रितः ॥३४॥
घनकालस्ततः प्राप्तो नीलयन्नखिलं नभः । पटुगर्जितसन्तानप्रतिनादितगह्वरः ॥३५॥
ग्रहनक्षत्रपटलमुपगुह्य समन्ततः । सरावविद्युदुद्योतं जहासेव नभःस्फुटम् ॥३६॥
ग्रीष्मडामरकं घोरं समुत्सार्य घनाघनः । जगर्ज विद्युदङ्गुल्या [5]प्रोषितानिव तर्जयन् ॥३७॥
नभोऽन्धकारितं कुर्वन् धाराभिर्नीलतोयदः । अभिषेक्तुं समारेभे सीतां गज इव श्रियम् ॥३८॥
तिम्यन्तस्ते ततोऽभ्यर्णं पृथुन्यग्रोधपादपम् । उपसस्रुः पुरो गेहसमानस्कन्धमुन्नतम् ॥३९॥
[6]इभकर्णो गणस्तेषामभिभूतोऽथ[7] तेजसा । गत्वा स्वामिनमित्यूचे नत्वा विन्ध्यवनाश्रितम्[8] ॥४०॥
आगत्य नाकतः केऽपि मदीये नाथ सद्मनि । स्थिता यैस्तेजसैवाहं तस्मादुद्वासितो द्रुतम् ॥४१॥
श्रुत्वा तद्वचनं स्मित्वा विनायकपतिः समम् । वधूभिः प्रस्थितो गन्तुं न्यग्रोधं वरलीलया ॥४२॥

भी शूर वीरोंके द्वारा वध्य नहीं है, ऐसा कहा गया है ॥२८॥ इतना कहकर रामने उसे छुड़ाया और लक्ष्मणको आगेकर वे सीता सहित उस ब्राह्मणकी कुटियासे बाहर निकल आये ॥२९॥ 'जो दुर्वचन सुननेका कारण है, मनमें विकार उत्पन्न करनेवाला है और महापुरुष जिसे दूरसे ही छोड़ देते हैं ऐसी नीच मनुष्योंकी संगतिको धिक्कार है ॥३०॥ शीत ऋतुके समय दुर्गम वनमें वृक्षके नीचे बैठा रहना अच्छा है, समस्त परिग्रह छोड़कर संसारमें भ्रमण करते रहना अच्छा है और आहार छोड़कर सुख पूर्वक मर जाना अच्छा है परन्तु तिरस्कारके साथ दूसरेके घरमें एक क्षण भी रहना अच्छा नहीं है ॥३१-३२॥ 'हम नदियोंके तटों और पर्वतोंकी अतिशय मनोहर गुफाओंमें रहेंगे परन्तु अब फिर दुर्जनोंके घरमें प्रवेश नहीं करेंगे' इस प्रकार दुर्जन संसर्गकी निन्दा करते तथा परम अभिमानको धारण करते हुए रामने गाँवसे निकलकर वनका मार्ग लिया ॥३३-३४॥

तदनन्तर समस्त आकाशको नीला करता और तीव्र गर्जनाके समूहसे गुफाओंको प्रतिध्वनित करता हुआ वर्षा काल आया ॥३५॥ उस समय ग्रह और नक्षत्रोंके पटलको सब ओरसे छिपाकर कड़कती हुई बिजलीके प्रकाशके बहाने आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥३६॥ ग्रीष्म कालके भयंकर विस्तारको दूर हटाकर मेघ गरज रहा था और बिजली रूपी अगुलीके द्वारा ऐसा जान पड़ता था मानो प्रवासी मनुष्योंको डाँट ही दिखा रहा हो ॥३७॥ धाराओंके द्वारा आकाशको अन्धकार युक्त करता हुआ श्यामल मेघ, सीताका अभिषेक करनेके लिए उस तरह तैयार हुआ जिस तरह हाथी लक्ष्मीका अभिषेक करनेके लिए तैयार होता है ॥३८॥ तदनन्तर वे भीगते हुए एक निकटवर्ती ऐसे विशाल वटवृक्षके नीचे पहुँचे कि जिसका स्कन्ध घरके समान सुरक्षित था तथा जो अत्यन्त ऊँचा था ॥३९॥

अथानन्तर उनके तेजसे अभिभूत हुआ इभकर्ण नामका यक्ष, विन्ध्याचलके वनमें रहनेवाले अपने स्वामीके पास जाकर तथा नमस्कार कर इस प्रकार बोला कि हे नाथ! स्वर्गसे आकर कोई ऐसे तीन महानुभाव मेरे घरमें ठहरे हैं जिन्होंने अपने तेजसे अभिभूत कर मुझे शीघ्र ही घरके बाहर कर दिया है ॥४०-४१॥ इभकर्णके वचन सुनकर मन्दहास्य करता हुआ

१. सीते म०, ब० । २. भावे क्तः, विहरणमित्यर्थः । ३. सेविते म० । ४. निन्दन्नेव म० । ५. प्रेषितामिव म० । ६. इभकर्णनामधेयो यक्षः । ७. भूतोऽपि ब०, म० । ८. विन्ध्यमुपाश्रितम् ।

अधीश्वरः स यक्षाणां महाविभवसङ्गतः । रम्यकाननसंसक्तः क्रीडन्पूतनसञ्ज्ञकः ॥४३॥
दूरादेव च तौ दृष्ट्वा महारूपौ गणाधिप । प्रयुज्यावधिमज्ञासीद् बलनारायणाविति ॥४४॥
ततस्तदनुभावेन वात्सल्येन च भूयसा । क्षणेन नगरी तेषां तेन रम्या विनिर्मिता ॥४५॥
ततस्ते सुखसम्पन्नं सुप्ता किल सुचारुगाः । प्रभाते गीतशब्देन प्रबोधं समुपागताः ॥४६॥
तल्पेऽवस्थितमात्मानमपश्यन् रत्नराजिते । प्रासादं च महारम्यं बहुभूमिकमुज्ज्वलम् ॥४७॥
देहोपकारणव्यग्रं परिवर्गं च सादरम् । नगरं च महाशब्दशालगोपुरशोभितम् ॥४८॥
तेषां महानुभावानां दृष्टेऽस्मिन् सहसा पुरे । न मनो विस्मयं प्राप तद्धि क्षुद्रविचेष्टितम् ॥४९॥
अशेषवस्तुसम्पन्नास्तत्र ते चारुचेष्टिताः । अवस्थानं सुखं चक्रुरमरा इव भोगिनः ॥५०॥
यथाधिपेन रामस्य पुरी यस्मात् प्रकल्पिता । ततो महीतले ख्यातिं गता रामपुरीति सा ॥५१॥
प्रतीहारा भटाः शूरा अमात्याः सप्तयो[1] गजाः । पौराश्च विविधास्तस्यामयोध्यायामिवाभवन् ॥५२॥
कुशाग्रनगरेशोऽय[2] श्रणिनः पृष्टवानिति । तयोर्नाथ तथाभूतो स द्विजः किमु चेष्टितः ॥५३॥
उवाच च गणस्वामी शृणु श्रेणिक स द्विजः । प्रयातः प्रातरुत्थाय दात्रहस्तो वनस्थलीम् ॥५४॥
भ्रमंश्च समिदा[3]द्यर्थमकस्मादूर्ध्वलोचनः । नातिदूरे पुरीं पृथ्वीमपश्यद् विस्मिताननः ॥५५॥
असिताभिः सिताभिश्च पताकाभिर्विराजिताम् । शरन्मेघसमानैश्च भवनैरतिभासुरैः ॥५६॥

यक्षराज, अपनी स्त्रियोंके साथ लीलापूर्वक उस वटवृक्षके पास जानेके लिए चला ॥४२॥ यक्षोंका वह अधिपति महावैभवसे युक्त था, रम्य वनोंमें क्रीडा करता आ रहा था और 'पूतन' नामसे सहित था ॥४३॥ यक्षराजने अत्यन्त सुन्दर रूपके धारक राम-लक्ष्मणको दूरसे ही देख अवधि ज्ञान जोड़कर जान लिया कि ये बलभद्र और नारायण हैं ॥४४॥ तदनन्तर उनके प्रभाव एवं बहुत भारी वात्सल्यसे उसने उनके लिए क्षण भरमें एक सुन्दर नगरीकी रचना कर दी ॥४५॥ तत्पश्चात् वे वहाँ सुखसे सोये और प्रातःकाल अतिशय मनोहर संगीतके शब्दसे प्रबोधको प्राप्त हुए ॥४६॥ उन्होंने अपने आपको रत्नोंसे सुशोभित शय्यापर अवस्थित देखा, अनेक खण्डका अत्यन्त रमणीय उज्ज्वल महल देखा, आदरके साथ शरीरकी सेवा करनेमें व्यग्र सेवकोंका समूह देखा और महाशब्द प्राकार तथा गोपुरोंसे शोभित नगर देखा ॥४७–४८॥ सहसा इस नगरको दीखने पर उन महानुभावोंका मन आश्चर्यको प्राप्त नहीं हुआ सो ठीक ही है क्योंकि यह सब चमत्कार क्षुद्र चेष्टा थी ॥४९॥ सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाले राम सीता और लक्ष्मण समस्त वस्तुओंसे युक्त हो देवोंके समान भोग भोगते हुए उस नगरीमें सुखसे रहने लगे ॥५०॥ चूँकि वह नगरी यक्षराजने रामके लिए बनाई थी इसलिए महीतल पर रामपुरी इसी नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुई ॥५१॥ द्वारपाल, भट, शूरवीर, मन्त्री, घोड़े, हाथी तथा नाना प्रकारके नगरवासी जिस प्रकार अयोध्यामें थे उसी प्रकार इस रामपुरीमें भी थे ॥५२॥ तदनन्तर राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे पूछा कि हे नाथ! राम लक्ष्मणके साथ उस प्रकारका व्यवहार करनेवाले उस कपिल ब्राह्मणका क्या हाल हुआ? सो कहिये ॥५३॥ तब गौतम स्वामी बोले कि हे श्रेणिक! सुन, वह ब्राह्मण प्रभात काल उठकर तथा हँसिया हाथमें लेकर वनकी ओर चला ॥५४॥ वह इन्धन आदिकी प्राप्तिके लिए इधर-उधर घूम रहा था कि अकस्मात् ही दृष्टि ऊपर उठाने पर उसने एक विशाल नगरी देखी। देखकर उसका मुख आश्चर्यसे चकित हो गया ॥५५॥ वह नगरी सफेद तथा अन्य रङ्गोंकी अनेक पताकाओं और शरद् ऋतुके मेघोंके समान अतिशय देदीप्यमान भवनोंसे सुशोभित थी ॥५६॥ नगरीके मध्यमें सफेद कमल रूपी छत्रसे सहित एक बड़ा भवन था जो ऐसा जान पड़ता था मानो कैलासका बच्चा ही हो ॥५७॥ यह सब देख,

---

१. अश्वाः । २. राजगृहनगराधिपः श्रेणिकराजः । ३. समिदाभ्यर्णं-म० ।

ततोऽसौ कृपयाऽऽकृष्टा सुमाया नाम यक्षिणी । जगाद विप्र परमं त्वयेदं साहसं कृतम् ॥७२॥
अस्याः पुरः समासन्नां कथं त्वं भुवमागतः । आरक्षकैरलं घोरैर्नूनं नश्यति वीक्षितः ॥७३॥
अस्या द्वारत्रयं पुर्या दुष्प्रवेशं सुरैरपि । अशून्यं सर्वदा वीरै रक्षकैः सुनियामकैः ॥७४॥
सिंहवारणशार्दूलतुल्यवक्त्रैर्महोज्ज्वलैः । एभिर्विभीषिता मृत्युं मानुषा यान्त्यसंशयम् ॥७५॥
पूर्वद्वारमदो यत्तु तस्य पश्यसि यान् बहिः । प्रासादानन्तिकानेतान् बलाकाच्छादनच्छवीन् ॥७६॥
मणितोरणरम्येषु विविधध्वजराजिषु । अर्हतामिन्द्रवन्द्यानाममीषु [1]प्रतियातनाः ॥७७॥
सामायिकं पुरस्कृत्य तासां यस्तवनं नरः । नमोऽर्हत्सिद्धनिस्वानपूर्वं पठति भावतः ॥७८॥
गुरूपदेशयुक्तोऽसौ सम्यग्दर्शनरक्षितः । विशतीन्द्रककुब्द्वारं हन्यते त्वनमस्कृतिः ॥७९॥
अणुव्रतधरो यो ना गुणशीलविभूषितः । तं रामः परया प्रीत्या वाञ्छितेन समर्चति ॥८०॥
ततस्तस्या वचः श्रुत्वा द्विजोऽसावमृतोपमम् । जगाम परमं हर्षं लब्ध्वोपायं धनागमे ॥८१॥
नमस्कारं च कृत्वाऽस्या भूयो भूयस्तुतिं तथा । रोमाञ्चार्चितसर्वाङ्गः परमाद्भुतभावितः ॥८२॥
मुनेश्चारित्रशूरस्य गत्वासन्नं कृताञ्जलिः । प्रणम्य शिरसाऽपृच्छदणुव्रतधरक्रियाम् ॥८३॥
ततस्तेन समुद्दिष्टं धर्मं सद्मनिवासिनाम् । स जग्राहानुयोगांश्च शुश्राव चतुरः सुधीः ॥८४॥
धनलोभाभिभूतस्य धर्मं सुश्रूषतोऽस्य सः । ग्रहणे परमार्थस्य परिणाममुपागतः ॥८५॥
अवगम्य ततो धर्मं द्विजोऽवोचत् सुमानसः । नाथ तेऽद्योपदेशेन चक्षुरुन्मीलितं मम ॥८६॥

तदनन्तर दयासे आकृष्ट हुई उस सुमाया नामकी यक्षीने ब्राह्मणसे कहा कि तूने यह बड़ा साहस किया है ॥७२॥ तू इस नगरीकी समीपवर्ती भूमिमें कैसे आ गया ? यदि भयंकर पहरेदार तुझे देख लेते तो तू अवश्य ही नष्ट हो जाता ॥७३॥ इस नगरीके तीन द्वारोंमें तो देवोंको भी प्रवेश करना कठिन है क्योंकि वे सदा सिंह, हाथी और शार्दूलके समान मुखवाले तेजस्वी, वीर तथा कठोर नियन्त्रण रखनेवाले रक्षकोंसे अशून्य रहते हैं। इन रक्षकोंके द्वारा डरवाये हुए मनुष्य निःसन्देह मरणको प्राप्त हो जाते हैं ॥७४–७५॥ इनके सिवाय जो वह पूर्व द्वार तथा उसके बाहर समीप ही बने हुए बगलाके पङ्खके समान कान्तिवाले सफेद-सफेद भवन तू देख रहा है वे मणिमय तोरणोंसे रमणीय तथा नाना ध्वजाओंकी पङ्क्तिसे सुशोभित जिन-मन्दिर है। उनमें इन्द्रोंके द्वारा वन्दनीय अरहन्त भगवान्‌की प्रतिमाएँ हैं जो मनुष्य सामायिक कर तथा 'अर्हत् सिद्धेभ्यो नमः' अर्थात् 'अरहन्त तथा सिद्धोंको नमस्कार हो' इस प्रकार कहता हुआ भाव पूर्वक उन प्रतिमाओंका स्तवन पढ़ता है तथा निर्ग्रन्थ गुरुका उपदेश पाकर सम्यग्दर्शन धारण करता है वही उस पूर्वद्वारमें प्रवेश करता है। इसके विपरीत जो मनुष्य प्रतिमाओंको नमस्कार नहीं करता है वह मारा जाता है ॥७६–७९॥ जो मनुष्य अणुव्रतका धारी तथा गुण और शीलसे अलंकृत होता है, राम उसे बड़ी प्रसन्नतासे इच्छित वस्तु देकर संतुष्ट करते हैं ॥८०॥

तदनन्तर उसके अमृत तुल्य वचन सुनकर तथा धन प्राप्तिका उपाय प्राप्तकर वह ब्राह्मण परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८१॥ उसका समस्त शरीर रोमाञ्चोंसे सुशोभित हो गया तथा उसका हृदय अत्यन्त अद्भुत भावोंसे युक्त हो गया। वह उस स्त्रीको नमस्कार कर तथा बार-बार उसकी स्तुति कर चारित्र पालन करनेमें शूर-वीर मुनिराजके पास गया और अञ्जलि बाँध शिरसे प्रणाम कर उसने उनसे अणुव्रत धारण करनेवालोंकी क्रिया पूछी ॥८२–८३॥ तदनन्तर उस चतुर बुद्धिमान् ब्राह्मणने मुनिराजके द्वारा उपदिष्ट गृहस्थ धर्म अङ्गीकृत किया तथा अनुयोगोंका स्वरूप सुना ॥८४॥ पहले तो वह ब्राह्मण धनके लोभसे अभिभूत होकर धर्म श्रवण करना चाहता था पर अब वास्तविक धर्म ग्रहण करनेके भावको प्राप्त हो गया ॥८५॥ मुनिराजसे धर्मका स्वरूप

---

१. प्रतिम्बाः ।

तृषार्तेनेव सत्तोय छायेवाश्रयकाङ्क्षिणा । क्षुधार्तेनेव मिष्टान्न रोगिणेव सुभेषजम् ॥८७॥
दुष्पथप्रतिपन्नेन वर्त्मेवेप्सितदेशगम् । यानपात्रमिवाम्भोधौ व्याकुलेन निमज्जताम् ॥८८॥
मयेद शासन जैन सर्वदु खविनाशनम् । [1]लब्ध भवत्प्रसादेन दुर्लभ पुरुषाधमै ॥८९॥
त्रैलोक्येऽपि न मे कश्चिद्भवता विद्यते सम । येनायमीदृशो मार्गो तोपितो जिनदेशन. ॥९०॥
इत्युक्त्वा शिरसा पादौ वन्दित्वाऽञ्जलियोगिना[2] । गुरु प्रदक्षिणीकृत्य द्विज स भवन गत ॥९१॥
जगाद वाऽतिहृष्टस्ता प्रसन्नविकचेक्षण । दयिते परमाश्चर्यं गुरोरद्य मया श्रुतम् ॥९२॥
श्रुत तव न तत्पित्रा जनकेनाथ वा पितु । किं वाऽत्र बहुभि प्रोक्तैर्गोत्रेणापि न ते श्रुतम् ॥९३॥
दृष्ट ब्राह्मणि यातेन यदरण्य मयाद्भुतम् । तद्गुरोरुपदेशेन नेदानी विस्मयाय मे ॥९४॥
किं किं भो ब्राह्मण ब्रूहि दृष्ट किंवा त्वया श्रुतम् । उक्तोऽवोचन्न शक्नोमि हर्षात्कथयितु प्रिये ॥९५॥
आदरेणानुयुक्तश्च कौतुकिन्या पुन पुनः । विप्रोऽवोचत शृण्वार्ये यन्मया श्रुतमद्भुतम् ॥९६॥
समिदर्थं प्रयातेन वन तस्य समीपत. । दृष्टा पुरी मया रम्या यत्रासीद् गहन वनम् ॥९७॥
तदासन्ने मया चैका दृष्टा नारी विभूषिता । नूनं सा देवता [3]कापि मनोहरणभाषिता ॥९८॥
पृष्टा च सा मयाख्यात तया रामपुरीति च । ददाति श्रावकेभ्योऽत्र किल रामो महद्धनम् ॥९९॥

जानकर जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध हो गया था, ऐसा वह ब्राह्मण बोला कि हे नाथ ! आज आपके उपदेशसे तो मेरे नेत्र खुल गये है ॥८६॥ जिस प्रकार प्याससे पीडित मनुष्यको उत्तम जल मिल जाय, आश्रयकी इच्छा करनेवाले पुरुषको छाया मिल जाय, भूखसे पीडित मनुष्यको मिष्टान्न मिल जाय, रोगीके लिए उत्तम औषधि मिल जाय, कुमार्गमे भटके हुएको इच्छित स्थान पर भेजनेवाला मार्ग मिल जाय, और बड़ी व्याकुलतासे समुद्रमे डूबनेवालोको जहाज मिल जाय, उसी प्रकार आपके प्रसादसे सर्व दु खोको नष्ट करनेवाला यह जैन शासन मुझे प्राप्त हुआ है । यह जैन शासन नीच मनुष्योंके लिए सर्वथा दुर्लभ है ॥८७-८९॥ चूँकि आपने यह ऐसा जिन-प्रदर्शित मार्ग मुझे दिखलाया है इसलिए तीन लोकमे भी आपके समान मेरा हितकारी नही है ॥९०॥ इस प्रकार कहकर तथा अञ्जलिबद्ध शिरसे मुनिराजके चरणोमे नमस्कार कर प्रदक्षिणा देता हुआ वह ब्राह्मण अपने घर चला गया ॥९१॥

तदनन्तर जिसके नेत्र कमलके समान विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यन्त हर्षसे युक्त था ऐसा वह ब्राह्मण घर जाकर अपनी स्त्रीसे बोला कि हे प्रिये ! आज मैंने गुरुसे परम आश्चर्य सुना है ॥९२॥ ऐसा परम आश्चर्य कि जिसे तेरे पिताने, पिताके पिताने अथवा बहुत कहनेसे क्या तेरे गोत्र भरने नहीं सुना होगा ॥९३॥ हे ब्राह्मणि ! वनमे जाकर जो अद्भुत बात मैंने देखी थी अब वह गुरुके उपदेशसे आश्चर्य करनेवाली नहीं रही ॥९४॥ ब्राह्मणीने कहा कि हे ब्राह्मण ! तुमने क्या-क्या देखा है और क्या-क्या सुना है ? सो कहो । ब्राह्मणीके इस प्रकार कहने पर ब्राह्मण बोला कि हे प्रिये ! मै हर्षके कारण कहनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ९५॥ तदनन्तर कौतुकसे भरी ब्राह्मणीने जब आदरके साथ बार-बार पूछा तब वह विप्र बोला कि हे आर्ये ! जो आश्चर्य मैंने सुना है वह सुन ॥९६॥

मैं लकड़ियाँ लानेके लिए जङ्गल गया था सो उसके समीप ही जहाँ सघन वन था वहाँ एक मनोहर नगरी दिखी ॥९७॥ मैंने उस नगरीके पास एक आभूषणोंसे विभूषित स्त्री देखी । जान पड़ता है कि मनोहर भाषण करनेवाली वह कोई देवी होगी ॥९८॥ मैंने उससे पूछा तो उसने कहा कि यह रामपुरी नामकी नगरी है, यहाँ राजा रामचन्द्र श्रावकोके लिए बहुत भारी

---

१. लब्धोपाय म० । २. योगिनः म० । ३. क्वापि म० ।

ततो गत्वा मया साधोर्जिनेन्द्रवचनं श्रुतम् । आत्मा मे तर्पितस्तेन कुदृष्टिपरितापितः ॥१००॥
मुनयो य[1] समाश्रित्य तप्यन्ते सुधियस्तपः । त्यक्त्वा परिग्रहं सर्वं मुक्त्यालिङ्गनलालसाः ॥१०१॥
सोऽर्हद्धर्मो मया लब्धस्त्रैलोक्यैकमहानिधिः । अमी यतो बहिर्भूताः क्लिश्यन्ते त्वन्यवादिनः ॥१०२॥
यथाभूतो मुनेर्धर्मः श्रुतो धर्मेण तादृशः । ब्राह्मण्यै कथितः सर्वो मलवर्जितचेतसा ॥१०३॥
ब्राह्मणी विनिशम्यैतं सुशर्मा वाक्यमब्रवीत् । मयापि त्वत्प्रसादेन लब्धो धर्मो जिनोदितः ॥१०४॥
विधेः पश्य मया योगं मोहाद् विषफलार्थिना । वीच्छेनापि[2] त्वया लब्धमर्हन्नामरसायनम् ॥१०५॥
मयासीन्मन्दधीभाजा मणिर्हस्तगतो यथा । निजाङ्गणगतः साधुरपमानमुपाहृतः ॥१०६॥
उपवासपरिश्रान्तश्रमणं तं निरम्बरम् । निराकृत्यान्नवेलाया मार्गोऽन्यस्यैव वीक्षितः ॥१०७॥
अर्हन्तं समतिक्रम्य [3]पाकशासनवन्दितम् । ज्योतिष्कव्यन्तरादीनां शिरसा प्रणतिः कृता ॥१०८॥
अहिंसानिर्मलं सारमर्हद्धर्मरसायनम् । अज्ञानात् समतिक्रम्य विषमं भक्षितं विषम् ॥१०९॥
मानुषद्वीपमासाद्य त्यक्त्वा साधुपरीक्षितम् । धर्मरत्नं कृतः कष्टं विभीतकपरिग्रहः ॥११०॥
सर्वसत्त्वप्रवर्तेषु दिवारात्रौ च भोजिषु । अव्रतेषु विशीलेषु दत्तं फलविवर्जितम् ॥१११॥
यं किलातिथिवेलायामागतं विभयोचितम् । यो नार्चयति दुर्बुद्धिस्तस्य धर्मो न विद्यते ॥११२॥
परित्यक्तोत्सवतिथिः सर्वस्वैकान्तनिस्पृहः । निकेतरहितः सोऽयमतिथिः श्रमणः स्मृतः ॥११३॥
येषां न भोजनं हस्ते नाप्यासन्नपरिग्रहः । ते तारयन्ति निर्ग्रन्थाः पाणिपात्रपुटाशिनः ॥११४॥

धन देते है ॥९९॥ तदनन्तर मैंने मुनिराजके पास जाकर जिनेन्द्र भगवान्‌के वचन सुने उससे मेरी आत्मा जो कि मिथ्या दर्शनसे संतप्त थी अत्यन्त सन्तुष्ट हो गई ॥१००॥ मुक्तिके आलिङ्गनकी लालसा रखनेवाले बुद्धिमान् मुनि जिस धर्मका आश्रय ले समस्त परिग्रहका त्यागकर तप करते है वह अरहन्तका धर्म मैंने प्राप्त कर लिया। वह धर्म तीनों लोकोंकी महानिधि है, इससे बहिर्भूत जो अन्यवादी हैं वे व्यर्थ ही क्लेश उठाते हैं ॥१०१-१०२॥ तदनन्तर उस धर्मात्माने मुनिराजसे जैसा वास्तविक धर्म सुना था वह सब शुद्ध हृदयसे उसने ब्राह्मणीके लिए कह दिया ॥१०३॥ उसे सुन सुशर्मा ब्राह्मणी ब्राह्मणसे बोली कि मैंने भी तुम्हारे प्रसादसे जिनेन्द्र प्रतिपादित धर्म प्राप्त कर लिया है ॥१०४॥ 'मेरा यह भाग्यका योग तो देखो कि जो मोह वश विषफलकी इच्छा कर रहे थे तथा जिसे तद्विषयक रञ्चमात्र भी इच्छा नहीं थी ऐसे तुमने अर्हन्तका नामरूपी रसायन प्राप्त कर लिया ॥१०५॥ जिस प्रकार किसी मूर्खके हाथमे मणि आ जाय और वह तिरस्कार कर उसे दूर कर दे उसी प्रकार मुझ मूर्खके गृहाङ्गणमे साधु आये और मैंने उनका अपमान कर उन्हें दूर कर दिया ॥१०६॥ उस दिन आहारके समय उपवाससे खिन्न दिगम्बर मुनि घर आये सो उन्हें हटा कर मैंने दूसरे साधुका मार्ग देखा ॥१०७॥ जिन्हें इन्द्र भी नमस्कार करता है ऐसे अर्हन्तको छोड़कर मैंने ज्यौतिषी तथा व्यन्तरादिक देवोंको शिर झुका-झुकाकर नमस्कार किया ॥१०८॥ अर्हन्त भगवान्‌का धर्मरूपी रसायन अहिंसासे निर्मल तथा सारभूत है सो उसे छोड़कर मैंने अज्ञान वश विषम विषका भक्षण किया है ॥१०९॥ बड़े खेदकी बात है कि मैंने मनुष्य द्वीपको पाकर साधुओं द्वारा परीक्षित धर्मरूपी रत्न तो छोड़ दिया और उसके बदले बहेड़ा अङ्गीकार किया ॥११०॥ जो इन्द्रियोंके विषयोंमे प्रवृत्त है, रात दिन इच्छानुसार खाते है, व्रत रहित हैं तथा शीलसे शून्य हैं, ऐसे साधुओंके लिए मैंने जो कुछ दिया वह सब निष्फल गया ॥१११॥ जो दुर्बुद्धि मनुष्य आहारके समय आये हुए अतिथिका अपनी सामर्थ्यके अनुसार सन्मान नहीं करता है—उसे आहार आदि नही देता है उसके धर्म नहीं है ॥११२॥ जिसने उत्सवकी तिथिका परित्याग कर दिया है, जो सर्व प्रकारके परिग्रहसे बिलकुल निःस्पृह हैं तथा घरसे रहित है ऐसा साधु ही अतिथि कहलाता है ॥११३॥ जिनके हाथमे न

१ यत् समाश्रित्य म० । २. विगता इच्छा यस्य स तेन । ३. इन्द्रवन्दितं ।

स्वशरीरेऽपि निस्सगा ये लुभ्यन्ति न जातुचित् । ते निष्परिग्रहा ज्ञेया मुक्तिलक्षणभूषिता ॥११५॥
एवमुद्गतसद्दृष्टि कुदृष्टिमलवर्जिता । सुशर्मा शुशुभे पत्यौ भरणीव बुधे परम् ॥११६॥
पादमूले ततो नीत्वा गुरोस्तस्यैव सादरम् । अणुव्रतानि सामोदा ब्राह्मणी तेन लम्भिता ॥११७॥
विज्ञाय कपिल रक्त परम जिनशासने । कुलान्याशीविषोग्राणि विप्राणां सेजिरे शमम् ॥११८॥
मुनिसुव्रतनाथस्य सम्प्राप्य सुदृढ मतम् । बभूवु श्रावकास्तीव्रा ऊचुश्चैव सुबुद्धय ॥११९॥
कर्मभारगुरूभूता मानोत्तानितमस्तका । स्तोकेन नरक घोर न याता[1] स्म प्रमादिन ॥१२०॥
अज्ञातमिदमप्राप्त जन्मान्तरशतेष्वपि । जिनेन्द्रशासन ब्रह्म कृच्छ्रात् प्राप्त सुनिर्मलम् ॥१२१॥
ध्यानाशुशुक्षणाविद्धे मनऋत्विक्समाहिता । स्वकर्मसमिधो भावसर्पिषा जुहुमोऽधुना ॥१२२॥
इति केचित् समाधाय मन सवेगनिर्भरा । विरक्ता सर्वसगेभ्यो बभूवु श्रमणोत्तमा ॥१२३॥
सागारधर्मरक्तस्तु कपिल परमक्रिय । कदाचिद् ब्राह्मणीमूचे सदभिप्रायवर्तिनीम् ॥१२४॥
कान्ते रामपुरीं किं नो व्रजामोऽद्य तमूर्जितम् । विशुद्धचेष्टित द्रष्टु राम [2]राजीवलोचनम् ॥१२५॥
आशापरायण नित्यमुपायगतमानसम् । दारिद्र्यवारिधौ मग्नमाद्यून[3] कुक्षिपूरणे ॥१२६॥
जनमुत्तारयत्येष किल भव्यानुकम्पक । इति कीर्तिर्भ्रमत्यस्य निर्मलाह्लादकारिणी ॥१२७॥
उत्तिष्ठैव गृहाणैव प्रिये पुष्पकरण्डकम् । करोम्यहमपि स्कन्धे सुकुमारमिम शिशुम् ॥१२८॥

भोजन है न जो अपने पास परिग्रह रखते है तथा जो हस्तरूपी पात्रमे भोजन करते है ऐसे निर्ग्रन्थ साधु ही संसार समुद्रसे पार करते है ॥११४॥ जो अपने शरीरमे भी निःस्पृह है तथा जो कभी बाह्य विषयोमे नहीं लुभाते और मुक्तिके लक्षण अर्थात् चिह्न स्वरूप दिगम्बर मुद्रासे विभूषित रहते है उन्हें निर्ग्रन्थ जानना चाहिये' ॥११५॥ इस प्रकार जिसे सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ था तथा जो मिथ्या दर्शनरूपी मलसे रहित थी ऐसी सुशर्मा नामकी ब्राह्मणी पतिके साथ बुध ग्रहके साथ भरणी नक्षत्रके समान सुशोभित हो रही थी ॥११६॥

तदनन्तर उस ब्राह्मणने हर्षसे ब्राह्मणीको उन्ही गुरुके पादमूलमे ले जाकर तथा आदर सहित नमस्कार कर अणुव्रत ग्रहण कराये ॥११७॥ जो पहले आशीविष साँपके समान अत्यन्त उग्र थे ऐसे ब्राह्मणोंके कुल, कपिलको जिनशासनमे अनुरक्त जान कर शान्तिभावको प्राप्त हो गये ॥११८॥ उनमे जो सुबुद्धि थे वे मुनिसुव्रत भगवान्का अत्यन्त सुदृढ मत प्राप्त कर श्रावक हो गये तथा इस प्रकार बोले कि हम लोग कर्मोंके भारसे वजनदार थे, अहङ्कारसे हमारे मस्तक ऊपर उठ रहे थे और हम निरन्तर प्रमादसे युक्त रहते थे परन्तु अब जिनधर्मके प्रसादसे भयङ्कर नरकमे नहीं जावेगे ॥११९-१२०॥ इस जिनशासनको हमने सैकडो जन्मोमे भी नहीं जाना, न प्राप्त किया किन्तु आज अतिशय निर्मल यह जिनशासन रूपी ब्रह्म बड़े कष्टसे प्राप्त किया है ॥१२१॥ अब हम मनरूपी होताके साथ मिलकर भाव रूपी घीके साथ अपनी कर्मरूपी समिधाओको ध्यानरूपी देदीप्यमान अग्निमें होमेगे ॥१२२॥ इस प्रकार मनको स्थिर कर संवेगसे भरे हुए कितने ही ब्राह्मण सर्वपरिग्रहसे विरक्त हो उत्तम मुनि हो गये ॥१२३॥ परन्तु कपिल श्रावकधर्ममे आसक्त रहकर ही उत्तम आचरण करता था। एक दिन वह उत्तम अभिप्राय रखनेवाली ब्राह्मणी से बोला ॥१२४॥ कि हे प्रिये ! आज हम लोग, अतिशय बलवान्, विशुद्ध चेष्टाके धारक तथा कमलके समान नेत्रोंसे युक्त उन श्रीरामके दर्शन करनेके लिए रामपुरी क्यों नहीं चलें ? ॥१२५॥ वे भव्य जीवोपर अनुकम्पा करनेवाले है तथा जो निरन्तर आशामे तत्पर रहता हैं, जिसका मन निरन्तर धनोपार्जनके उपाय जुटानेमे ही लगा रहता है, जो दरिद्रतारूपी समुद्रमें मग्न है, और पेट भरना भी जिसे कठिन है ऐसे दरिद्र मनुष्यका वे उद्धार करते हैं, इस प्रकार आनन्ददायिनी उनकी निर्मल कीर्ति सर्वत्र फैल रही है ॥१२६-१२७॥ हे प्रिये ! उठो, यह फूलोंका पिटारा तुम ले

१. याता' स्म म०, ज० । २. कमललोचनम् । ३ जन्मदरिद्रम् । इति ज० पुस्तके टिप्पणम् ।

एवमुक्त्वा तथा कृत्वा दम्पती सम्पदान्वितौ । स्वशक्त्या गन्तुमुद्युक्तौ शुद्धवेषविभूषितौ ॥१२९॥
व्रजतोश्च तयोरुग्रा तस्थु॰ पन्नगा पथि । दंष्ट्राकरालवक्त्राश्च वेतालास्तारहासिन॰ ॥१३०॥
एवमादीनि वस्तूनि भीषणान्यवलोक्य तौ । निष्कम्पहृदयौ भूत्वा स्तुतिमेतामुपागतौ ॥१३१॥
नमस्त्रिलोकवन्द्येभ्यो जिनेभ्य सतत त्रिधा । उत्तीर्णभवपङ्केभ्यो दातृभ्यः परम शिवम् ॥१३२॥
एतयो स्तुवतोरेव विदित्वा जिनभक्तिताम् । भेजिरे प्रशम यक्षास्तौ च प्राप्तौ जिनालयम् ॥१३३॥
ततो नमो निषद्याया इत्युक्त्वा रचिताञ्जली । कृत्वा प्रदक्षिण स्तोत्रमुदचीचरतमिदम् ॥१३४॥
विहाय लौकिक मार्गं महादुर्गतिदु खदम् । भवन्त शरण नाथ चिरेण समुपागत॰ ॥१३५॥
चतुर्भिर्वि शति युक्तामक्षरणा महात्मनाम् । उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योर्वन्दे भूतभविष्यताम् ॥१३६॥
पञ्चस्वैरावताख्येषु भरताख्येषु पञ्चसु । जिनान्नमामि वास्येषु तान्नमामि जिनांस्त्रिधा ॥१३७॥
यै ससारसमुद्रस्य कृते तरणतारणे । त्रिकाल सर्ववास्येषु तान्नमामि जिना त्रिधा ॥१३८॥
मुनिसुव्रतनाथाय तस्मै भगवते नम॰ । त्रैलोक्ये शासन यस्य सुविशुद्ध प्रकाशते ॥१३९॥
इति कृत्वा स्तुतिं जानुमस्तकस्पृष्टभूतलौ । नेमतुस्तौ जिन भक्त्या परिहृष्टतनूरुहौ ॥१४०॥
ततोऽसौ कृतकर्तव्यो रक्षै॰ सौम्यै प्रियवदै । अनुज्ञात॰ सम पत्न्या द्रष्टुं हलिनमुद्ययौ ॥१४१॥
राजमार्गेऽद्रिसकाशान् प्रासादान् विमलत्विष । ब्राह्मण्यै दर्शयन् याति दिव्यनारीसमाकुलान् ॥१४२॥

लो और मैं इस सुकुमार बच्चेको कन्धे पर रख लेता हूँ ॥१२८॥ इस प्रकार कह कर तथा वैसा ही कर हर्षसे भरे दोनो दम्पती जानेके लिए तत्पर हुए। अपनी शक्तिके अनुसार वे निर्मल वेषसे विभूषित थे ॥१२९॥ जब वे चले तो उनके मार्गमे उग्र सर्प विभूषित थे ॥१२९॥ जब वे चले तो उनके मार्गमे उग्र सर्प फणा तानकर खड़े हो गये तथा जिनके मुख डॉटोसे विकराल थे और जो जोर-जोरसे हँस रहे थे ऐसे वेताल मार्गमे आडे आ गये ॥१३०॥ परन्तु इन सब भयङ्कर वस्तुओको देखकर भी उनके हृदय निष्कम्प रहे। वे निश्चल चित्त होकर यही स्तुति पढते जाते थे कि ॥१३१॥ 'जो त्रिलोक द्वारा वन्दनीय है, जो भयङ्कर ससाररूपी कर्दमसे पार हो चुके है तथा जो उत्कृष्ट मोक्ष प्रदान करनेवाले है ऐसे जिनेन्द्र भगवान्‌को मन, वचन, कायसे सदा नमस्कार हो' ॥१३२॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए उन दोनोकी जिन-भक्तिको जान कर यक्ष शान्त हो गये और वे रामपुरीके जिनालयमे पहुँच गये ॥१३३॥ तदनन्तर 'भगवान्‌की वसतिकाके लिए नमस्कार हो' यह कहकर दोनोने हाथ जोडे और प्रदक्षिणा देकर दोनो ही यह स्तुति पढ़ने लगे ॥१३४॥ हे नाथ! महादुर्गतिके दुःख देनेवाले लौकिक मार्गको छोड़कर हम चिरकालके बाद आपकी शरणमे आये है ॥१३५॥ उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके वर्तमान तथा भूत-भविष्यत् सम्बन्धी तीर्थङ्करोकी चौबीसीको हम नमस्कार करते हैं। पॉच भरत और पॉच ऐरावत क्षेत्रोंमे जो तीर्थङ्कर है, हो चुके है अथवा होंगे उन सबको हम मन, वचन, कायसे नमस्कार करते हैं ॥१३६-१३७॥ जो संसार समुद्रसे स्वयं पार हुए है तथा जिन्होने दूसरोको पार किया है ऐसे समस्त क्षेत्रो सम्बन्धी तीर्थङ्करोको हम त्रिकाल नमस्कार करते हैं ॥१३८॥ उन मुनिसुव्रत भगवान्‌को नमस्कार हो जिनका निर्मल शासन तीनो लोकोंमे प्रकाशमान हो रहा है ॥१३९॥ इस प्रकार स्तुति कर घुटनो और मस्तकसे पृथिवीतलका स्पर्श करते हुए उन्होने जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार किया। उस समय भक्तिके कारण उन दोनोके शरीरमे रोमाञ्च उठ रहे थे ॥१४०॥

तदनन्तर वन्दनाका कार्य पूर्ण कर चुकनेके बाद शान्त तथा मधुरभाषी रक्षकोने जिसे आज्ञा दे दी थी ऐसा कपिल ब्राह्मण अपनी स्त्रीके साथ रामके दर्शन करनेके लिए चला ॥१४१॥ वह, राजमार्गमे पर्वतोके समान ऊँचे, निर्मल कान्तिके धारक, तथा दिव्य स्त्रियोसे भरे जो

१. रामम् । २. द्रिसकाशान् म० ।

ऊचे च कुन्दसंकाशैः सर्वकामगुणान्वितैः । राजते भवनैर्यस्य पुरीयं स्वर्गसन्निभा ॥१४३॥
तस्यैतद्भवनं भद्रे प्रान्तप्रासादवेष्टितम् । अभिरामस्य रामस्य पुर्यां मध्ये विराजते ॥१४४॥
ब्रुवन्निति महाहृष्टः स विवेश च तद्गृहम् । दृष्ट्वा च लक्ष्मणं दूराद्भृशमाकुलतां गतः ॥१४५॥
दध्यौ सञ्जातकम्पश्च सोऽयमिन्दीवरप्रभः । व्यथितो दुर्विदग्धोऽहं चित्रैर्येन तदा वधैः ॥१४६॥
कर्णयोरतिदुःखानि भाषितानि महाखले । तानि कृत्वा तदा पापे जिह्वे निस्सर साम्प्रतम् ॥१४७॥
किं करोमि क्व गच्छामि विवरं प्रविशामि किम् । अस्मिन् शरणहीनस्य भवेच्छरणमद्य कः ॥१४८॥
अवस्थितोऽयमत्रेति यदि मे विदितो भवेत् । समुल्लङ्घ्योत्तरामाशां देशत्यागः कृतो भवेत् ॥१४९॥
एवमुद्वेगमापन्नो विहाय ब्राह्मणीं द्विजः । प्रपलायितुमुद्युक्तो लक्ष्मणेन विलोकितः ॥१५०॥
स्मित्वा च स जगादायं कुतो विप्रः समागतः । वनसंवर्धितात्मेव किमित्याकुलतामितः ॥१५१॥
समाश्वासमिमं नीत्वा द्रुतमानय तं द्विजम् । पश्यामस्तावदेतस्य चेष्टितं किमयं वदेत् ॥१५२॥
न भेतव्यं न भेतव्यं निवर्तस्वेति चोदितः । अधिगम्य समाश्वासं निवृत्तः स्खलितक्रमः ॥१५३॥
उपसृत्य भयं त्यक्त्वा प्रसृतो धवलाम्बरः । पुष्पाञ्जलिस्तयोरग्रे स्थित्वा स्वस्तीत्यशब्दयत् ॥१५४॥
ततो लब्धासनासीनो निकटस्थाङ्गनो द्विजः । ऋग्भिः स्तवनदक्षाभिरस्तौषीद् रामलक्ष्मणौ ॥१५५॥
ततः पद्मो जगादैवं तां न कृत्वा विमाननाम् । वद साम्प्रतमागत्य कस्मात् पूजयसि द्विज ॥१५६॥
सोऽब्रवीन्न मया ज्ञातः त्वं प्रच्छन्नमहेश्वरः । मोहाद्विमानितस्तेन भस्मच्छन्न इवानिलः ॥१५७॥

महल मिलते थे उन्हें अपनी स्त्रीके लिए दिखाता जाता था ॥१४२॥ उसने स्त्रीसे कहा कि हे भद्रे ! कुन्दके समान उज्ज्वल तथा सर्व मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले गुणोंसे सहित, भवनोंसे जिनकी यह स्वर्ग तुल्य नगरी सुशोभित हो रही है उन मनोहर रामका यह भवन समीपवर्ती अन्य महलोंसे घिरा कैसा सुन्दर जान पड़ता है ? ॥१४३-१४४॥ इस प्रकार कहते हुए उस अतिशय हर्षित ब्राह्मणने रामके भवनमे प्रवेश किया। वहाँ वह दूर से ही लक्ष्मणको देखकर अत्यन्त आकुलताको प्राप्त हुआ ॥१४५॥ उसके शरीरमे कँपकँपी छूटने लगी। वह विचार करने लगा कि नील कमलके समान प्रभावाला यह वही पुरुष है जिसने उस उसय मुझ मूर्खको नाना प्रकारके वधसे दुखी किया था ॥१४६॥ उसकी बोलती बन्द हो गई। वह मन ही मन अपनी जिह्वासे कहने लगा हे महादुष्टे ! हे पापे ! उस समय तो तूने कानोंके लिए अत्यन्त दुःखदायी वचन कहे अब चुप क्यो है ? बाहर निकल ॥१४७॥ वह मन ही मन विचार करने लगा कि क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किस बिलमे घुस जाऊँ ? आज मुझ शरणहीनका यहाँ कौन शरण होगा ? ॥१४८॥ यदि मुझे मालूम होता कि यह यहाँ ठहरा है तो मै उत्तर दिशाको लाँघकर देशत्याग ही कर देता ॥१४९॥ इस प्रकार उद्वेगको प्राप्त हुआ वह ब्राह्मण, ब्राह्मणीको छोड़ भागनेके लिए तैयार हुआ ही था कि लक्ष्मणने उसे देख लिया ॥१५०॥ हँसकर लक्ष्मणने कहा कि यह ब्राह्मण कहाँसे आया है ? जान पड़ता है कि इसका पोषण वनमें ही हुआ है, यह इस तरह आकुलताको क्यो प्राप्त हुआ है ? ॥१५१॥ सान्त्वना देकर उस ब्राह्मणको शीघ्र ही लाओ हम इसकी चेष्टाको देखेंगे तथा सुनेंगे कि यह क्या कहता है ? ॥१५२॥ 'नहीं डरना चाहिये, नहीं डरना चाहिये, लौटो', इस प्रकार कहने पर वह सान्त्वनाको प्राप्त कर लड़खड़ाते पैरों वापिस लौटा ॥१५३॥

तदनन्तर श्वेत वस्त्रको धारण करनेवाला वह ब्राह्मण पास जाकर निर्भय हो राम लक्ष्मणके सम्मुख गया तथा अञ्जलिमें पुष्प रखकर उनके सामने खड़ा हो 'स्वस्ति' शब्दका उच्चारण करने लगा ॥१५४॥ तदनन्तर जो प्राप्त हुए आसनपर बैठा था और पास ही जिसकी स्त्री बैठी थी ऐसा वह ब्राह्मण स्तवन करनेमे समर्थ ऋचाओंके द्वारा रामलक्ष्मणकी स्तुति करने लगा ॥१५५॥ स्तुतिके बाद रामने कहा कि हे ब्राह्मण ! उस समय हमलोगोंका वैसा तिरस्कार कर अब इस समय आकर पूजा क्यों कर रहे हो सो तो बताओ ॥१५६॥ ब्राह्मणने कहा हे देव !

स्थितिरेषा जगन्नाथ लोके स्थावरजङ्गमे । धनवान् पूज्यते नित्यं यथादित्यो हिमागमे ॥१५८॥
अधुना त्वं मया ज्ञातः सोऽसि नान्यः कदाचन । द्रविणानीह पूज्यन्ते न भवान् पद्म पूज्यते ॥१५९॥
नित्यमर्थयुतं देव मानयन्ति जना जनम् । त्यजन्त्यर्थपरित्यक्तं निष्प्रयोजनसौहृदम् ॥१६०॥
यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः । यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥१६१॥
अर्थेन विप्रहीनस्य न मित्रं न सहोदरः । तस्यैवार्थसमेतस्य परोऽपि स्वजनायते ॥१६२॥
सार्थो धर्मेण यो युक्तो सो धर्मो यो दयान्वितः । सा दया निर्मला ज्ञेया मांसं यस्यां न भुज्यते ॥१६३॥
मांसाशनान्निवृत्तानां सर्वेषां प्राणधारिणाम् । अन्या मूलेन सम्पन्ना प्रशस्यन्ते निवृत्तयः ॥१६४॥
राजन् विचित्ररूपोऽयं लोको मानुषलक्षितः । मादृशो ज्ञायते नैव यथाभूतोऽत्र यो जनः ॥१६५॥
आस्तां तावद्भवानत्र वन्द्यते ये भवद्विधैः । पराभवं विमूढेभ्यो लभन्ते तेऽपि साधवः ॥१६६॥
पूर्वं सनत्कुमाराख्यः किं ते ज्ञातो न चक्रभृत् । महर्द्धयः सुरा यस्य रूपं द्रष्टुमिहागताः ॥१६७॥
सोऽपि श्रामण्यमासाद्य सम्प्राप्तः परिभूततान् । पर्यटन् क्वचिल्लेभे भिक्षामाचारकोविदः ॥१६८॥
वनस्पत्युपजीविन्या तर्पितः सोऽन्यदा मुनिः । पञ्चाश्चर्यगुणैश्वर्यमाददे विजये पुरे[1] ॥१६९॥
सुभूमश्चक्रभृद् भूत्वा करं कटकभास्वरम् । केयूरभूषितभुजो बदरार्थमढौकयत् ॥१७०॥
बदरं नैकमप्यस्मै निःस्वोऽसावदात्तः । अनभिज्ञो विशेषस्य विशेषं कमवाप्नवान् ॥१७१॥

मैंने नहीं जाना था कि आप प्रच्छन्न महेश्वर हो इसीलिए भस्मसे आच्छादित अग्निके समान मोहवश मुझसे आपका अनादर हो गया ॥१५७॥ हे जगन्नाथ ! चराचर विश्वकी यही रीति है कि शीत ऋतुमें सूर्यके समान धनवान्‌की ही सदा पूजा होती है ॥१५८॥ यद्यपि इस समय मैं जानता हूँ कि आप वही हैं अन्य नहीं फिर भी आपकी पूजा हो रही है सो हे पद्म ! यहाँ यथार्थमें धनकी ही पूजा हो रही है आपकी नहीं ॥१५९॥ हे देव ! लोग निरन्तर धनवान् मनुष्यका ही सन्मान करते हैं और जिसके साथ मित्रताका प्रयोजन जाता रहा है ऐसे धनहीन मनुष्यको छोड़ देते हैं ॥१६०॥ जिसके पास धन है उसके मित्र हैं, जिसके पास धन है उसके बान्धव हैं, जिसके पास धन है लोकमें वह पुरुष है और जिसके पास धन है वह पण्डित है ॥१६१॥ जब मनुष्य धनरहित हो जाता है तब उसका न कोई मित्र रहता है न भाई। पर वही मनुष्य जब धनसहित हो जाता है तो अन्य लोग भी उसके आत्मीय बन जाते हैं ॥१६२॥ धन वही है जो धर्मसे सहित है, धर्म वही है जो दयासे सहित है और निर्मल दया वही है जिसमें मांस नहीं खाया जाता ॥१६३॥ मांस भोजनसे दूर रहनेवाले समस्त प्राणियोंके अन्य त्याग चूँकि मूलसे सहित रहते हैं इसलिए ही उनकी प्रशंसा होती है ॥१६४॥ हे राजन् ! यह मनुष्य लोक विचित्र है इसमें मेरे जैसे लोगोंको तो कोई जानता ही नहीं है ॥१६५॥ अथवा आपकी बात जाने दीजिये आप जैसे लोग जिनकी वन्दना करते हैं वे साधु भी मूर्ख पुरुषोंसे पराभव प्राप्त करते हैं ॥१६६॥ क्या आप नहीं जानते कि पहले एक ऐसे सनत्कुमार चक्रवर्ती हो गये हैं जिनका रूप देखनेके लिए बड़ी-बड़ी ऋद्धियोंको धारण करनेवाले देव आये थे परन्तु वे भी मुनिपद धारणकर पराभवको प्राप्त हुए। आचार-शास्त्रके जाननेमें निपुण वे मुनिराज भ्रमण करते रहे परन्तु उन्हें कहीं भिक्षा नहीं मिली ॥१६७–१६८॥ फिर अन्य समय विजयपुर नगरमें वनस्पतिसे आजीविका करनेवाली एक स्त्रीने आहार देकर उन्हें सन्तुष्ट किया और पञ्चाश्चर्यरूपी गुणोंका ऐश्वर्य प्राप्त किया ॥१६९॥ जिनकी भुजा बाजूबन्दसे विभूषित थी ऐसे सुभूमने चक्रवर्ती होकर अपना वलयविभूषित हाथ बेरके लिए बढ़ाया परन्तु यह दरिद्र है यह समझकर उनके लिए किसीने एक बेर भी नहीं दिया सो ठीक ही है क्योंकि विशेषको नहीं

१ पञ्चाश्चर्यं जगुश्चर्यं म० ।

अयमन्यश्च विवशो जनैः स्वकृतभोगिभिः । न योऽवगम्यते यत्र न स तत्र जनोऽर्च्यते ॥१७२॥
न कृता मन्दभागेन कस्मादभ्यागतक्रिया । तदा मयेति मेऽद्यापि तप्यते मानसं भृशम् ॥१७३॥
रूपमेवमलं कान्तं युष्माकमवलोकयन् । भृशं क्रुद्धोऽपि को नाम न ययावतिविस्मयम् ॥१७४॥
एवमुक्त्वा शुचा ग्रस्तं रुदन्तं कपिलं गिरा । शुभयासान्त्वयद् रामः सुशर्माणं च जानकी ॥१७५॥
ततो हेमघटाम्भोभिः किङ्करै राघवाज्ञया । कपिलः श्रावकः प्रीत्या स्नापितः सह भार्यया ॥१७६॥
परमं भोजितश्चान्नं वस्त्रै रत्नैश्च भूषितः । सुभूरिधनमादाय जगाम निजमालयम् ॥१७७॥
जनानां विस्मयकरं सर्वोपकरणान्वितम् । भोगं यद्यपि यातोऽयं[1] तथापि सुविचक्षणः ॥१७८॥
सन्मानविशिखैर्विद्धो दष्टो[2] गुणमहोरगैः । उपचारहृतात्मासौ धृतिं न लभते द्विजः ॥१७९॥
दध्यौ चाहं पुरा यत्र स्कन्धन्यस्तैन्धभारकः । यथा शोषितदेहः स तृषितोऽत्यन्तदुर्विधः ॥१८०॥
ग्रामे तत्रैव जातोऽस्मि पश्य यक्षाधिपोपमः । रामदेवप्रसादेन चिन्तादुःखविवर्जितः ॥१८१॥
आसीन्मे शीर्णपतितमनेकच्छिद्रजर्जरम् । काकाद्यशुचिसंलिप्तं गृहं गोमयवर्जितम् ॥१८२॥
अधुना धेनुभिर्व्याप्तं बहुप्रासादसङ्कुलम् । रामदेवप्रसादेन प्राकारपरिमण्डलम् ॥१८३॥
हा मया पुण्डरीकाक्षौ भ्रातरौ गृहमागतौ । निर्भर्त्सितौ विना दोषं तौ मृगाङ्कनिभाननौ ॥१८४॥

जाननेवाला मनुष्य किसी विशेषको कब प्राप्त हुआ है ? ॥१७०-१७१॥ यह अथवा और कोई-सभी लोग, स्वकृत कर्मको भोगनेवाले मनुष्योंसे विवश हैं । जिस मनुष्यका जहाँ ज्ञान नहीं वहाँ उसकी अर्चा नहीं होती ॥१७२॥ मुझ मन्दभाग्यने उस समय आपकी आतिथ्य-क्रिया क्यों नहीं की ? यह विचारकर आज भी मेरा मन अत्यन्त सन्तापको प्राप्त है ॥१७३॥ आपके अतिशय सुन्दर रूपको देखनेवाला मनुष्य ही अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त नहीं होता किन्तु आपके प्रति अत्यन्त क्रोध प्रकट करनेवाला पुरुष भी ऐसा कौन है जो अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त नहीं हुआ हो ॥१७४॥ इस प्रकार कहकर वह कपिल ब्राह्मण शोकाक्रान्त हो रोने लगा, तब रामने शुभ वचनोंसे उसे सान्त्वना दी और सीताने उसकी स्त्री सुशर्माको समझाया ॥१७५॥

तदनन्तर रामकी आज्ञासे किंकरोंने भार्या सहित कपिल श्रावकको सुवर्ण घटोंमें रक्खे हुए जलसे प्रीतिपूर्वक स्नान कराया ॥१७६॥ उत्कृष्ट भोजन कराया और वस्त्र तथा रत्नोंसे उसे अलंकृत किया । तदनन्तर वह बहुत भारी धन लेकर अपने घर वापिस गया ॥१७७॥ यद्यपि वह बुद्धिमान् ब्राह्मण, लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाले तथा सर्व प्रकारके उपकरणोंसे युक्त भोगोपभोगके पदार्थोंको प्राप्त हुआ था, तो भी चूँकि वह सम्मानरूपी बाणोंसे विद्ध था, गुणरूपी महासर्पोंसे डसा गया था और सेवा-शुश्रूषाके कारण उसकी आत्मा दब रही थी, इसलिए वह सन्तोष को प्राप्त नहीं होता था । भावार्थ—रामने तिरस्कारके बदले उसका सत्कार किया था, अपने अनेक गुणोंसे उसे वशीभूत किया था और स्नान, भोजन, पान आदि सेवा-शुश्रूषासे उसे सुखी किया था इसलिए वह रात-दिन इसी शोकमें पड़ा रहता था कि देखो कहाँ तो मैं दुष्ट कि जिसने इन्हें एक रात घर भी नहीं ठहरने दिया और कहाँ ये महापुरुष जिन्होंने इस प्रकार हमारा उपकार किया ? ॥१७८-१७९॥ वह विचार करने लगा कि मैं पहले जिस गाँवमें इतना अधिक दरिद्र था कि कन्धेपर लकड़ियोंका गट्ठा रखकर भूखा-प्यासा दुर्बल शरीर इधर-उधर भटकता था आज उसी गाँव में मैं रामके प्रसादसे यक्षराजके समान हो गया हूँ तथा सब चिन्ता और दुःखोंसे छूट गया हूँ ॥१८०-१८१॥ पहले मेरा जो घर जीर्ण-शीर्ण होकर गिर गया था, अनेक छिद्रोंसे जर्जर था, काक आदि पक्षियोंकी अशुचिसे लिप्त था तथा जिसमें कभी गोबर भी नहीं लगता था, वही घर आज श्री रामके प्रसादसे अनेक गायोंसे व्याप्त है, नाना महलोंसे संकीर्ण तथा प्राकार-कोटसे घिरा हुआ है ॥१८२-१८३॥ हाय, बड़े खेदकी बात है कि मैंने

१ जातोऽय म० । २ दृष्टो म० ।

यद्ग्रीष्मातपतप्ताङ्गौ सम देव्या विनिर्गतौ । तन्मे प्रतिष्ठित शल्य हृदये प्रचलत् सदा ॥१८५॥
तावन्मे नास्ति दुःखस्य छेदो यावदिद गृहम् । परित्यज्य निरारम्भ प्रव्रजिष्याम्यसशयम् ॥१८६॥
उपलभ्यास्य वैराग्य बन्धुवर्गं ससम्भ्रम । धाराभिरुत्ससर्जास्त्र दीन साक सुशर्मणा ॥१८७॥
निरीक्ष्य स्वजन विप्रो निर्मग्न शोकसागरे । अपेक्षापेतया बुद्ध्या निजगाद् शिवोत्सुक ॥१८८॥
विचित्रस्वजनस्नेहैरत्युत्तुङ्गमनोरथै । मूढोऽय दह्यते लोक किं न जानीथ भो जना ॥१८९॥[1]
इति सवेगमापन्नः प्रिया दु खेन मूर्च्छिताम् । विहाय बन्धुलोक च बहुविक्लवकारिणम् ॥१९०॥
अष्टादश सहस्राणि धेनूनां सिततेजसाम् । रत्नपूर्णं च भवन दासीयोषित्समाकुलम् ॥१९१॥
सुशर्मायां समारोप्य तनय द्रविण तथा । बभूव कपिल साधुर्निरारम्भो निरम्बर· ॥१९२॥
सद्यानन्दमते शिष्य· सुप्रतीतस्तपोधन । चकार गुरुता तस्य गुणशीलमहार्णव ॥१९३॥

वियोगिनीवृत्तम्

विजहार महातपास्ततः कपिलश्चारुचरित्रवीवधः[2] ।
परमार्थनिविष्टमानसः श्रमणश्रीपरिवीतविग्रह ॥१९४॥
य इद कपिलानुकीर्तन पठति प्रह्वमति· श्रृणोति वा ।
उपवाससहस्रसम्भव लभतेऽसौ रविभासुरः फलम् ॥१९५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते कपिलोपाख्यान नाम पञ्चत्रिंशत्तम पर्व ॥३५॥

कमलके समान नेत्रोंके धारक तथा चन्द्रतुल्य मुखसे सुशोभित, घर आये हुए उन दोनों भाइयों का अपराधके बिना ही तिरस्कार किया ॥१८४॥ ग्रीष्म ऋतुके आतापसे जिनके शरीर सन्तप्त हो रहे थे ऐसे दोनो भाई देवी अर्थात् सीताके साथ घरसे बाहर निकले, वह मेरे हृदयमे सदा शल्यकी तरह गड़ा हुआ चञ्चल हो उठता है ॥१८५॥ नि.सन्देह मेरे दु.खका अन्त तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि मैं घर छोड़कर निरारम्भ हो दीक्षा नहीं ले लेता हूँ ॥१८६॥

तदनन्तर कपिलके वैराग्यका समाचार जानकर इसके घबड़ाये हुए दीन-हीन भाई बन्धु, सुशर्मा ब्राह्मणीके साथ अश्रुधारा बहाने लगे ॥१८७॥ मोक्ष प्राप्त करनेमें उत्सुक कपिल, अपने परिजनको शोकरूपी सागरमे निमग्न देख निरपेक्ष बुद्धिसे बोला कि हे मानवो! बड़े-बड़े मनोरथोंसे युक्त कुटुम्बी जनोके विचित्र स्नेहसे मोहित हुआ यह प्राणी निरन्तर जलता रहता है, यह क्या तुम नही जानते ? ॥१८८–१८९॥ इस प्रकार संवेगको प्राप्त हुआ कपिल ब्राह्मण दु खसे मूर्च्छित स्त्री तथा बहुत दु'खका अनुभव करनेवाले बन्धुजनोंको छोड़कर, अठारह हजार सफेद गायें, रत्नोंसे परिपूर्ण तथा दास-दासियोंसे युक्त भवन, पुत्र और समस्त धन सुशर्मा ब्राह्मणीके लिए सौंपकर आरम्भ रहित दिगम्बर साधु हो गया ॥१९०–१९२॥ सद्यानन्द मतिके शिष्य तथा गुण और शीलके महासागर अतिशय तपस्वी मुनि, उसके गुरु हुए थे अर्थात् उनके पास उसने दीक्षा ली थी ॥१९३॥ तदनन्तर जो निर्मल चारित्ररूपी काँवरको धारण करते थे, जिनका मन सदा परमार्थमें लगा रहता था, और जिनका शरीर निर्ग्रन्थ व्रत रूपी लक्ष्मीसे आलिङ्गित था ऐसे महातपस्वी कपिल मुनिराज पृथिवी पर विहार करने लगे ॥१९४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य अहंकार रहित हो कपिलकी इस कथाको पढ़ता अथवा सुनता है वह सूर्यके समान देदीप्यमान होता हुआ एक हजार उपवासका फल प्राप्त करता है ॥१९५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें कपिलका वर्णन करनेवाला पैंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३५॥

---

१. जानाति भो जन । २. धीरधीः म०, ब० ।

षट्त्रिंशत्तमं पर्व

ततोऽनुक्रमत [1]काले विकालप्रतिमे गते। घोरान्धकारसंरुद्धे विद्युच्चकितभीषणे ॥१॥
जातायां सुप्रसन्नायां शरदि प्रीतिनिर्भरं। ऊचे यक्षाधिपः पद्मं प्रस्थातुं कृतमानसम् ॥२॥
क्षन्तव्यं देव यत्किञ्चिदस्माकमिति दुष्कृतम्। विधातुं शक्यते केन योग्यं सर्वं भवादृशाम् ॥३॥
इत्युक्ते रामदेवोऽपि तमूचे गुह्यकाधिपम्। त्वयापि निखिला स्वस्य क्षन्तव्या परतन्त्रता ॥४॥
सुतरां तेन वाक्येन जातः सत्तमभावनः। यक्षाणामधिपो नत्वा सम्भाष्य विपुलक्रियम् ॥५॥
हारं स्वयंप्रभाभिख्यं ददौ पद्माय सोऽद्भुतम्। उद्यद्दिनकराकारे [2]हरये मणिकुण्डले ॥६॥
चूडामणिं सुकल्याणं सीतायै विलसत्प्रभम्। महाविनोददक्षां च वीणामीप्सितनादिनीम् ॥७॥
स्वेच्छया तेषु यातेषु यक्षराजः पुरीकृताम्। मायां समहरत्किञ्चिद्दधानः शोकितामिव ॥८॥
बलदेवोऽपि कर्तव्यकरणाच्च ससम्मदः। अमन्यत परिप्राप्तमुदारं शिवमात्मनः ॥९॥
पर्यटन्तो महीं स्वैरं नानारसफलाशिनः। विचित्रसङ्कथासक्ताः रममाणाः सुरा इव ॥१०॥
उल्लङ्घ्य सुमहारण्यं द्विपसिंहसमाकुलम्। जनोपभुक्तमुद्देशं वैजयन्तपुरं गताः ॥११॥
ततोऽस्तमागते सूर्ये दिक्चक्रे तमसावृते। नक्षत्रमण्डलाकीर्णे सञ्जाते गगनाङ्गणे ॥१२॥
अपरोत्तरदिग्भागे क्षुद्रलोकभयावहे। यथाभिरुचिते देशे ते पुरो निकटे स्थिताः ॥१३॥
अथात्र नगरे राजा प्रसिद्धः पृथिवीधरः। इन्द्राणी महिषी तस्य योषिद्गुणसमन्विता ॥१४॥

तदनन्तर घोर अन्धकारसे व्याप्त और बिजलीकी चमकसे भीषण वर्षा काल, दुष्कालके समान जब क्रम-क्रमसे व्यतीत हो गया तथा स्वच्छ शरद् ऋतु आ गई तब रामने वहाँसे प्रस्थान करनेका विचार किया उसी समय यक्षोंका अधिपति आकर रामसे कहता है कि हे देव! हमारी जो कुछ त्रुटि रह गई हो वह क्षमा कीजिये क्योंकि आप जैसे महानुभावोंके योग्य समस्त कार्य करनेके लिए कौन समर्थ है? ॥१-३॥ यक्षाधिपतिके ऐसा कहने पर रामने भी उससे कहा कि आप भी अपनी समस्त परतन्त्रताको क्षमा कीजिये अर्थात् आपको इतने समय तक मेरी इच्छानुसार जो प्रवृत्ति करनी पड़ी है उसके लिए क्षमा कीजिये ॥४॥ रामके इस वचनसे यक्षाधिप अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने बहुत काल तक वार्तालाप कर नमस्कार किया, रामके लिए स्वयंप्रभ नामका अद्भुत हार दिया। लक्ष्मणके लिए उगते सूर्यके समान देदीप्यमान दो मणिमय कुण्डल दिये, और सीताके लिए महामाङ्गलिक देदीप्यमान चूड़ामणि तथा महाविनोद करनेमें समर्थ एवं इच्छानुसार शब्द करनेवाली वीणा दी ॥५-७॥ तदनन्तर जब वे इच्छानुसार वहाँसे चले गये तब यक्षराजने कुछ शोकयुक्त हो अपनी नगरी सम्बन्धी माया समेट ली ॥८॥ इधर राम भी कर्तव्य कार्य करनेसे हर्षित हो ऐसा मान रहे थे कि मानो मुझे उत्कृष्ट मोक्ष ही प्राप्त हो गया है ॥९॥

अथानन्तर स्वेच्छानुसार पृथिवीमें विहार करते, नाना रसके स्वादिष्ट फल खाते, विचित्र कथाएँ करते और देवोंके समान रमण करते हुए वे तीनों, हाथी और सिंहोंसे व्याप्त महावनको पारकर मनुष्योंके द्वारा सेवित वैजयन्तपुरके समीपवर्ती मैदानमें पहुँचे ॥१०-११॥ तदनन्तर जब सूर्य अस्त हो गया, दिशाओंका समूह अन्धकारसे आवृत हो गया और आकाशरूपी आँगन नक्षत्रोंके समूहसे व्याप्त हो गया तब वे क्षुद्र मनुष्योंको भय उत्पन्न करनेवाले पश्चिमोत्तर दिग्भागमें नगरके समीप ही किसी इच्छित स्थानमें ठहर गये ॥१२-१३॥ अथानन्तर इस

१. वर्षाकाले। २. लक्ष्मणाय।

तनया वनमालेति तयोरत्यन्तसुंदरी । बाल्यात् प्रभृति सा रक्ता लक्ष्मणस्य गुणश्रुते ॥१५॥
श्रुत्वानरण्यपुत्रस्य प्रव्रज्यासमये वच । [1]रक्षितु क्वापि [2]निर्यात राम लक्ष्मणसयुतम् ॥१६॥
ध्यात्वेन्द्रनगरेशस्य बालमित्राय सूनवे । सुन्दरायातियोग्याय पितृभ्या सा निरूपिता ॥१७॥
त च विज्ञाय वृत्तान्त हृदयस्थितलक्ष्मणा । विरहाद्भयमापन्ना चिन्तामेवमुपागता ॥१८॥
अशुकेन वर कण्ठ विवेष्ट्यासज्य पादपे । मृत्यु प्राप्तास्मि नान्येन पुरुषेण समागमम् ॥१९॥
विधिच्छलेन केनापि गत्वारण्य दिनक्षये । ध्रुवमद्यैव यास्यामि मृत्यु विघ्नविवर्जितम् ॥२०॥
प्रयाहि भगवन् भानो सप्रेषय निशा द्रुतम् । कृताञ्जलिरिय दीना पादयो प्रपतामि ते ॥२१॥
शर्वरी भण्यता यात्वा काङ्क्षन्ती दु खभागिनी । सवत्सरसम वेत्ति दिन द्रागम्यतामिति ॥२२॥
इति सञ्चिन्त्य सा बाला गतेऽस्त तिग्मतेजसि । सोपवासा समासाद्य पितृभ्यामनुमोदनम् ॥२३॥
प्रवर रथमारुह्य सखीजनसमावृता । जगाम परया लक्ष्म्या वनदेवी किलार्चितुम् ॥२४॥
यस्यां रात्रौ वनोद्देशे यत्र ते प्रथम स्थिता. । तस्यामेव तमेवैषा गता दैवनियोगत· ॥२५॥
अरण्यदेवतापूजा तस्मिन् किल विनिर्मिता । सुप्तश्च सकलो लोको निराशङ्क· कृतक्रिय· ॥२६॥
[3]निश्शब्दपदनिक्षेपातितो वनमृगीव सा । निष्क्रम्य शिविरात् तस्मात् प्रतस्थे भयवर्जिता ॥२७॥
ततस्तस्या समाघ्राय गन्ध परमसौरभम् । एव सूनु सुमित्राया दध्यौ सम्मदमुद्वहन् ॥२८॥
ज्योतीरेखेव काप्येषा मूर्तिरत्रोपलक्ष्यते । कुमार्या श्रेष्ठया भाव्यमनया कुलजातया ॥२९॥

नगरका राजा पृथिवीधर नामसे प्रसिद्ध था उसकी रानीका नाम इन्द्राणी था जो कि स्त्रियोंके योग्य समस्त गुणोंसे सहित थी ॥१४॥ उन दोनोंके वनमाला नामकी अत्यन्त सुन्दरी पुत्री थी। वनमाला बाल्य अवस्थासे ही लक्ष्मणके गुण श्रवण कर उनमे अनुरक्त थी ॥१५॥ इसके माता पिताने सुना कि राम अपने पिता दशरथके दीक्षा लेनेके समय कथित वचनोका पालन करनेके लिए लक्ष्मणके साथ कहीं चले गये हैं तब उन्होंने इन्द्र नगरके राजाके बालमित्र नामक अत्यन्त योग्य सुन्दर पुत्रके लिए वनमाला देनेका निश्चय किया ॥१६-१७॥ जिसके हृदयमे लक्ष्मण विद्यमान थे ऐसी वनमालाने जब यह समाचार सुना तो वह विरहसे भयभीत हो इस प्रकार चिन्ता करने लगी ॥१८॥ कि वस्त्रसे कण्ठ लपेट वृक्षपर लटक कर भले ही मर जाऊँगी परन्तु अन्य पुरुषके साथ समागमको प्राप्त नही होऊँगी ॥१९॥ मै किसी कार्यके बहाने सायंकालके समय वनमे जाकर आज ही निर्विघ्न रूपसे मृत्यु प्राप्त करूँगी ॥२०॥ हे भगवन् सूर्य ! आप जाओ और रात्रिको जल्दी भेजो। मै अतिशय दीन हो हाथ जोड़कर आपके चरणोमे पड़ती हूँ। जाकर रात्रिसे कहो कि तुम्हारी आकाङ्क्षा करती हुई यह दुःखिनी दिनको वर्षके समान समझती है इसलिए जल्दी जाओ ॥२१-२२॥ इस प्रकार विचार कर उपवास धारण करनेवाली वह बाला, सूर्यास्त होनेपर माता पिताकी आज्ञा प्राप्तकर उत्तम रथपर सवार हो सखी जनोंके साथ वैभव पूर्वक वनदेवीकी पूजा करनेके लिए गई ॥२३-२४॥

भाग्यकी बात कि जिस रात्रिमे तथा वनके जिस प्रदेशमे राम सीता और लक्ष्मण पहलेसे जाकर ठहरे थे उसी रात्रिमे उसी स्थान पर वनमाला भी आ पहुँची ॥२५॥ वहाँ उसने वन देवताकी पूजा की। तदनन्तर जब सब लोग अपना-अपना कार्य पूरा कर निःशङ्क हो सो गये तब जिसके पैर रखनेका भी शब्द नहीं हो रहा था ऐसी वनमाला वनकी मृगीकी नांईं उस शिविरसे निकल निर्भय हो आगे चली ॥२६-२७॥ तत्पश्चात् वनमालाके शरीरसे निकलनेवाली अत्यन्त मनोहर सुगन्धको सूँघकर हर्षित हो लक्ष्मण इस प्रकार विचार करने लगे ॥२८॥ कि यहाँ कोई ज्योतिकी रेखाके समान मूर्ति दिखाई पड़ती है, हो सकता है कि वह कोई उच्च

---

१ रक्षितं क०, ख० । २. निर्जात ज० । ३ निःशब्दवननिक्षेपामतो म० ।

महता शोकभारेण परिपीडितमानसा । अपश्यन्ती परं दुःखवारणोपायमुन्मना ॥३०॥
अजातचिन्तिता नूनमेषात्मानं जिघांसति । पश्यामि तावदेतस्याश्चेष्टामन्तर्हितो भवन् ॥३१॥
इति सञ्चिन्त्य निश्शब्दो भूत्वा वटतरोरधः । तस्थौ कल्पद्रुमस्येव त्रिदशः कौतुकान्वितः ॥३२॥
तमेव पादपं सापि प्राप्ता हंसवधूगतिः । नतेव स्तनभारेण चन्द्रवक्त्रा तनूदरी ॥३३॥
लक्ष्मणस्तां तथाभूतां दृष्ट्वाचिन्तयदुक्तिभिः । वेद्मि तावदिमां सम्यक् कुतः कृत्यं भविष्यति ॥३४॥
अशुकेनाम्बुवर्णेन कृत्वा पाशं तु कन्यका । जगादैवं गिरा योगिमनोहरणयोग्यया ॥३५॥
एतत्तरुनिवासिन्यः शृणुताहो सुदेवताः । भवतीभ्यो नमाम्येषा प्रसादः क्रियतां मयि ॥३६॥
वाच्यो मद्वचनादेवं भवन्तीभिः प्रयत्नतः । कुमारो लक्ष्मणो दृष्ट्वा वनेऽस्मिन् विचरन् ध्रुवम् ॥३७॥
यथा त्वद्विरहे बाला वनमाला सुदुःखिता । त्वयि मानसमारोप्य प्रेतलोकमुपागता ॥३८॥
अशुकेन समालम्ब्य स्वं सा न्यग्रोधपादपे । त्वन्निमित्तमसून् तन्वी त्यजन्त्यस्माभिरीक्षिता ॥३९॥
एवमुक्तं त्वया नाथ यदि मे नात्र जन्मनि । समागमः कृतोऽन्यत्र प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥४०॥
एवं निगद्य शाखायां समर्पयति पाशकम् । सम्भ्रान्तश्च समालिङ्ग्य सौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥४१॥
अयि मुग्धे सुकण्ठेऽस्मिन् मद्भुजालिङ्गनोचिते । कस्मादशुकपाशोऽयं त्वया सुमुखि सज्ज्यते ॥४२॥
अहं स लक्ष्मणो मुञ्च पाशं परमसुन्दरि । यथाश्रुतं निरीक्षस्व न चेत्प्रत्येषि बालिके ॥४३॥
इत्युक्त्वा पाशमेतस्याः करात् सान्त्वनकोविदः । जहार लक्ष्मणः फेनपुञ्जं तामरसादिव ॥४४॥

कुलीन श्रेष्ठ कुमारी हो ॥२९॥ बहुत भारी शोकके भारसे इसका मन पीड़ित हो रहा है और दुःख दूर करनेका दूसरा उपाय नहीं देखती हुई यह बेचैन हो रही है ॥३०॥ निश्चित ही यह मनचाही वस्तुके न मिलनेसे आत्मघात करना चाहती है अतः छिपकर इसकी चेष्टा देखता हूँ' ॥३१॥ इस प्रकार विचार कर कौतुक भरे लक्ष्मण चुपचाप वटवृक्षके नीचे उस प्रकार खड़े हो गये जिस प्रकार कि कल्प वृक्षके नीचे कोई देव खडा होता है ॥३२॥ तदनन्तर जिसकी चाल हंसीके समान थी, जो स्तनोंके भारसे झुकी हुई सी जान पडती थी, जिसका मुख चन्द्रमाके समान था तथा जिसका उदर अत्यन्त कृश था ऐसी वनमाला भी उसी वृक्षके नीचे पहुँची ॥३३॥ उसे उस प्रकारकी देख लक्ष्मणने विचार किया कि इसके शब्दोंसे ठीक-ठीक मालूम तो करूँ कि इसे किससे कार्य है ? ॥३४॥ तदनन्तर जलके समान स्वच्छ वर्णवाले वस्त्रसे फाँसी बनाकर वह कन्या योगियोंका भी मन हरण करनेमें समर्थ वाणीसे इस प्रकार कहने लगी कि अहो इस वृक्षके निवासी देवताओ ! सुनिये, मैं आपके लिए नमस्कार करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥३५-३६॥ कुमार लक्ष्मण इस वनमें अवश्य ही विचरण करते होंगे सो उन्हें प्रयत्न पूर्वक देखकर आप लोग मेरी ओरसे उनसे कहें ॥३७॥ कि तुम्हारे विरहमें कुमारी वनमाला अत्यन्त दुखी होकर तथा तुम्हींमें मन लगाकर मृत्यु लोकको प्राप्त हुई है ॥३८॥ वट-वृक्षपर कपड़ेसे अपने आपको टाँगकर तुम्हारे निमित्त प्राण छोड़ती हुई उस कृशाङ्गीको हमने देखा है ॥३९॥ और यह कह गई है कि हे नाथ ! यद्यपि मेरे इस जन्ममें आपने समागम नहीं किया है तो अन्य जन्ममें प्रसन्नता करनेके योग्य हो ॥४०॥

इतना कह कर वह ज्यों ही शाखा पर फाँसी बाँधती है त्योंही घबड़ाये हुए लक्ष्मणने उसका आलिङ्गन कर यह कहा कि हे मूर्खे ! यह कण्ठ तो मेरी भुजाके आलिङ्गन के योग्य है, हे सुमुखि ! तू इसमें यह वस्त्र की फाँसी क्यों सजा रही है ? ॥४१-४२॥ मैं वही लक्ष्मण हूँ, हे परम सुन्दरि ! यह फाँसी छोड़ो, हे बालिके ! यदि तुझे विश्वास न हो तो जैसा सुन रक्खा हो वैसा देख लो ॥४३॥ इस प्रकार कह कर सान्त्वना देनेमें निपुण लक्ष्मणने जिस प्रकार कोई

1. प्रसाद म० ।

ततोऽसौ त्रपया युक्ता दृष्ट्वा मन्थरचक्षुषा । लक्ष्मणं नेत्रचौरेण रूपेण परिलक्षितम् ॥४५॥
परं विस्मयमापन्ना चिन्तामेवमुपागता । ईषद्वेपथुना युक्ता नवसङ्गमजन्मना ॥४६॥
किमद्य वनदेवीभिः प्रसादो जनितो मम । कारुण्यमुपयाताभिः सन्देशवचनैः परम् ॥४७॥
सोऽयं यथाश्रुतो नाथः सम्प्राप्तो दैवयोगतः । भवेद्येन मम प्राणाः प्रयान्तो विनिवारिताः ॥४८॥
इति सञ्चिन्तयन्ती सा किञ्चित्प्रस्वेदधारिणी । लक्ष्मीधरसमाश्लेषं लब्ध्वात्यन्तमराजत ॥४९॥
ततो मृदुमहामोदकुसुमोदारसस्तरे । प्रबुद्धो राघवश्चक्षुर्लक्ष्मणार्थमुदीरयन् ॥५०॥
अपश्यंश्च समुत्थाय पप्रच्छ जनकात्मजाम् । प्रदेशे लक्ष्मणो देवि नैतस्मिन् दृश्यते कुतः ॥५१॥
प्रदोषे संस्तरं कृत्वा सोऽस्माकं पुष्पपल्लवैः । आसीदनतिदूरस्थः कुमारो ह्यत्र नेक्ष्यते ॥५२॥
नाथ वाह्वायतां तावदिति तस्याः कृतध्वनौ । क्रमादत्युच्चया वाचा वचो व्याहृतवानिति ॥५३॥
एह्यागच्छ क्व यातोऽसि भद्र लक्ष्मण लक्ष्मण । प्रयच्छ वचनं तात चरितं बालकानुज ॥५४॥
अयमायामि देवेति दत्वास्मै सम्भ्रमी वचः । वनमालासमेतोऽसौ ज्येष्ठस्यान्तिकमागतः ॥५५॥
अर्धरात्रे तदा स्पष्टे निशानाथे समुद्ययौ । ववौ कुमुदगर्भाणिर्वायुः सामोदशीतलः ॥५६॥
ततः पल्लवकान्ताभ्यां हस्ताभ्यां रचिताञ्जलिः । अंशुकावृतसर्वाङ्गा त्रपाविनमिताननाः ॥५७॥
ज्ञातनिःशेषकर्तव्या बिभ्राणा विनयं परम् । बालावन्दत रामस्य सीतायाश्च क्रमद्वयम् ॥५८॥
सद्वितीयं ततो दृष्ट्वा सीता लक्ष्मणमब्रवीत् । कुमार सह चन्द्रेण समवायस्त्वया कृतः ॥५९॥
कथं जानासि देवीति पद्मेनोक्ता जगाद सा । चेष्टया देव जानामि शृणु तुल्यप्रवृत्तया ॥६०॥

कमलसे फेनको दूर करता है उसी प्रकार उसके हाथ से फाँसी छीन ली ॥४४॥ तदनन्तर नेत्रोंको चुरानेवाले रूपसे सुशोभित लक्ष्मणको मन्थर दृष्टिसे देख कर वह कन्या लज्जासे युक्त हो गई ॥४५॥ नवसमागमके कारण कुछ-कुछ काँपती हुई वनमाला परम आश्चर्यको प्राप्त हो इस प्रकार विचार करने लगी ॥४६॥ कि क्या मेरे सन्देश वचनोंसे परम दयालुताको प्राप्त हुई वनदेवियोंने ही मुझ पर यह प्रसन्नता की है ? ॥४७॥ जिन्होंने मेरे निकलते हुए प्राण रोके हैं ऐसे ये प्राणनाथ दैवयोगसे ही यहाँ आ पहुँचे हैं ॥४८॥ इस प्रकार विचार करती और कुछ-कुछ पसीनाको धारण करती हुई वनमाला लक्ष्मणका आलिङ्गन पाकर अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥४९॥

तदनन्तर इधर कोमल तथा महासुगन्धित फूलोंकी उत्कृष्ट शय्या पर पड़े रामकी जब निद्रा टूटी तो उन्होंने लक्ष्मणकी ओर दृष्टि डाली। लक्ष्मणको न देखकर वे उठे और सीतासे पूछने लगे कि देवि ! यहाँ लक्ष्मण क्यों नहीं दिखाई देता ? ॥५०–५१॥ सायंकालके समय तो वह फूल तथा पत्तोंसे हमारी शय्याकर यहीं पासमें सोया था पर अब यहाँ दिखाई नहीं दे रहा है ॥५२॥ सीताने उत्तर दिया कि हे नाथ ! आवाज देकर बुलाइए। तब रामने यथाक्रमसे उच्च-वाणीमें इस प्रकार शब्द कहे कि हे लक्ष्मण ! तू कहाँ चला गया, आओ-आओ, हे तात ! हे बालक ! हे अनुज ! कहाँ हो, आवाज देओ ॥५३–५४॥ रामकी आवाज सुन लक्ष्मणने हड़बड़ा कर उत्तर दिया कि देव ! यह आता हूँ। इस प्रकार उत्तर देकर वे वनमालाके साथ अग्रजके समीप आ पहुँचे ॥५५॥ उस समय स्पष्ट ही आधी रात थी, चन्द्रमाका उदय हो चुका था और कुमुदोंके गर्भसे मिलकर सुगन्धित तथा शीतल वायु बह रही थी ॥५६॥ तदनन्तर जिसने कमलके समान सुन्दर हाथोंसे अञ्जलि बाँध रक्खी थी, वस्त्रसे जिसका सर्व शरीर आवृत था, लज्जासे जिसका मुख नम्रीभूत हो रहा था, जो समस्त कर्तव्यको जानती थी तथा परम विनयको धारण कर रही थी ऐसी वनमालाने आकर राम तथा सीताके चरणयुगलको नमस्कार किया ॥५७–५८॥ तदनन्तर लक्ष्मणको स्त्री सहित देख सीताने कहा कि हे कुमार ! तुमने तो चन्द्रमाके साथ मित्रता कर ली ॥५९॥ रामने सीतासे कहा कि हे देवि ! तुम किस प्रकार जानती हो ?

ज्योत्स्नया सहितश्चन्द्रो यस्मिन् काले समागत । लक्ष्मीधरोऽपि तत्रैव सहितो बालयानया ॥६१॥
यथा ज्ञापयसि स्पष्टमेवमेतदिति ब्रुवन् । लक्ष्मीधरोऽन्तिके तस्थौ ह्रिया किञ्चिन्नतानन ॥६२॥
उत्फुल्लनेत्रराजीवा प्रमोदार्पितचेतस । प्रसन्नवक्त्रताराेशा सुशीला विस्मयान्विता ॥६३॥
कथाभि. स्मितयुक्ताभि· याताभि स्थानयुक्तताम् । ते तत्र त्रिदशच्छाया नष्टनिद्राः सुख स्थिता· ॥६४॥
सख्योऽत्र वनमालाया. समये बोधमागता । शयनीय तथा शून्य दृष्ट्वा त्रस्तमानसा ॥६५॥
ततोऽश्रुपूर्णनेत्राणां गवेषण्याकुलात्मनाम् । तासा हाकारशब्देन प्रबोध भेजिरे भटा ॥६६॥
उपलभ्य च वृत्तान्त सन्नद्धारूढसप्तय । शूरा पदातयश्चान्ये कुन्तकार्मुकपाणय ॥६७॥
दिशः सर्वा समास्तीर्य दधावुद्भ्रान्तमानसा· । भीतिप्रीतिसमायुक्ता· समीरस्येव शावका ॥६८॥
तत. कैरपि ते दृष्टा समेता वनमालया । निवेदिताश्च शेषस्य जनस्य जववाहनै ॥६९॥
ज्ञातनिश्शेषवृत्तान्तैस्तैरल सम्मदान्वितै. । पृथिवीधरराजस्य कृत दिष्ट्याभिवर्धनम् ॥७०॥
उपायारम्भमुक्तस्य तवाद्य नगरे प्रभो । जगाम प्रकटीभाव महारत्ननिधिः स्वयम् ॥७१॥
पपात नभसो वृष्टिर्विना मेघसमुद्भवात् । परिकर्मविनिर्मुक्त सस्य क्षेत्रात् समुद्गतम् ॥७२॥
जामाता लक्ष्मणोऽय ते वर्तते निकटे पुर । जीवित हातुमिच्छन्त्या सङ्गतो वनमालया ॥७३॥
पद्मश्च सीतया साक परमो भवत· प्रिय· । शच्येव सहितो देवेन्द्रोऽयमत्र विराजते ॥७४॥
वदतामिति भृत्यानां वचनै प्रियशंसिभि· । सुखनिर्झरचेतस्को मुमूर्छ नृपति क्षणम् ॥७५॥

इसके उत्तरमे सीताने कहा कि हे देव ! मैं समान प्रवृत्त चेष्टासे जानती हूँ सुनिये ॥६०॥ जिस समय चन्द्रमा चन्द्रिका अर्थात् चाँदनीके साथ आया उसी समय लक्ष्मण भी इस बालाके साथ आया है इससे स्पष्ट है कि इसकी चन्द्रमाके साथ मित्रता है ॥६१॥ जैसा आप समझ रही है बात स्पष्ट ही ऐसी है इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मण लज्जासे कुछ नतानन हो पास ही मे बैठ गये ॥६२॥ इस तरह जिनके नेत्रकमल विकसित थे, जो आनन्दसे विभोर थे, जिनके मुख रूपी चन्द्रमा अत्यन्त प्रसन्न थे, जो सुशील थे, आश्चर्यसे सहित थे, देवोके समान कान्तिके धारक थे तथा जिनकी निद्रा नष्ट हो गई थी ऐसे वे सब, स्थानकी अनुकूलताको प्राप्त मन्दहास्य युक्त कथाएँ करते हुए वहाँ सुखसे विराजमान थे ॥६३–६४॥ यहाँ समयपर जब वनमालाकी सखियाँ जागीं तो शय्याको सूनी देख भयभीत हो गईं ॥६५॥ तदनन्तर जिनके नेत्र आँसुओसे व्याप्त थे तथा जो वनमालाकी खोजके लिए छटपटा रहीं थी ऐसी उन सखियोंकी हाहाकारसे योद्धा जाग उठे ॥६६॥ तथा सब समाचार जानकर तैयार हो कुछ तो घोड़ोपर आरूढ़ हुए और कुछ भाले तथा धनुष हाथमे ले पैदल ही चलनेके लिए तैयार हुए ॥६७॥ इस प्रकार जिनके चित्त घबड़ा रहे थे, जो भय और प्रीतिसे युक्त थे तथा जो शीघ्र गतिमे वायुके बच्चोके समान जान पडते थे ऐसे योद्धा समस्त दिशाओंको आच्छादित कर दौड़े ॥६८॥

तदनन्तर कितने ही योद्धाओंने वनमालाके साथ बैठे हुए उन सबको देखा और देख कर शीघ्रगामी वाहनोसे चलकर शेषजनोके लिए इसकी खबर दी ॥६९॥ तदनन्तर समस्त समाचारको ठीक-ठीक जानकर जो अत्यधिक हर्षित हो रहे थे ऐसे कुछ योद्धाओंने पृथिवीधर राजाके लिए भाग्य वृद्धिकी सूचना दी ॥७०॥ उन्होंने कहा कि हे प्रभो ! उपायारम्भसे रहित होनेपर भी आज आपके नगरमें स्वयं ही महारत्नोंका खजाना प्रकट हुआ है ॥७१॥ आज आकाशसे बिना मेघके ही वर्षा पड़ी है तथा जोतना बखेरना आदि क्रियाओंके बिना ही खेतसे धान्य उत्पन्न हुआ है ॥७२॥ आपका जामाता लक्ष्मण नगरके निकट ही वर्तमान है तथा प्राण छोड़नेकी इच्छा करनेवाली वनमालाके साथ उसका मिलाप हो गया है ॥७३॥ सीता सहित राम भी जो कि आपको अत्यन्त प्रिय है इन्द्राणी सहित इन्द्रके समान यहीं सुशोभित हो रहे हैं ॥७४॥ इस प्रकार कहनेवाले भृत्योंके प्रिय सूचक वचनोंसे जिसके हृदयमें सुखका

ततः प्रबुद्धचित्तेन परं प्रमदमीयुषा । दत्तं बहुधनं तेभ्यः स्मितशुक्लमुखेन्दुना ॥७६॥
अचिन्तयच्च ही साधु सञ्जातं दुहितुर्मम । अनिश्चितगतिं प्राप्तो यदयं सुमनोरथः ॥७७॥
सर्वेषामेव जीवानां धनमिष्टसमागमः । जायते पुण्ययोगेन यच्चात्मसुखकारणम् ॥७८॥
योजनानां शतेनापि परिच्छिन्ने श्रुतान्तरे । इष्टो मुहूर्तमात्रेण लभ्यते पुण्यभागिभिः ॥७९॥
ये पुण्येन विनिर्मुक्ताः प्राणिनो दुःखभागिनः । तेषां हस्तमपि प्राप्तमिष्टवस्तु पलायते ॥८०॥
अरण्यानां गिरेर्मूर्ध्नि विषमे पथि सागरे । जायन्ते पुण्ययुक्तानां प्राणिनामिष्टसङ्गमाः ॥८१॥
इति सञ्चिन्त्य जायायै तं वृत्तान्तमशेषतः । उत्थाप्याकथयत्तोषाद्वर्णैः कृच्छ्रनिर्गतैः ॥८२॥
पुनः पुनरपृच्छत् सा सुमुखी स्वप्नशङ्कया । सञ्जातनिश्चयादाप स्वसंवेद्यां सुखासिकाम् ॥८३॥
ततो रामाधरच्छाये समुद्यति दिवाकरे । प्रेमसम्पूरितो राजा सर्वबान्धवसङ्गतः ॥८४॥
वरवारणमारुह्य द्युत्या परमया युतः । प्रतस्थे परमं द्रष्टुमुत्सुकः प्रियसङ्गमम् ॥८५॥
माता च वनमालायाः पुत्रैरष्टाभिरन्विता । आरुह्य शिबिकां रम्यां प्रियस्य पदवीं श्रिता ॥८६॥
अनन्तरं नृपादेशात् कशिपु प्रचुरं हितम् । गन्धमाल्यादिवाशेषमनीयत मनोहरम् ॥८७॥
ततो दूरात् समालोक्य सफुल्लेक्षणपङ्कजम् । अवतीर्य गजाद् राजा ढुढौके राममादरी ॥८८॥
परिष्वज्य महाप्रीत्या सहितं लक्ष्मणेन तम् । अपृच्छत् कुशलं कृष्टि[1]र्जानकीं च सुमानसम् ॥८९॥

झरना फूट पड़ा था ऐसा राजा पृथिवीपर हर्षातिरेकसे क्षण भरके लिए मूर्छित हो गया ॥७५॥ तदनन्तर सचेत होनेपर जो परम हर्षको प्राप्त था तथा जिसका मुख रूपी चन्द्रमा मन्द मुसकानसे धवल हो रहा था ऐसे राजाने उन भृत्योंके लिए बहुत भारी धन दिया ॥७६॥ वह विचार करने लगा कि अहो, मेरी पुत्रीका बड़ा भाग्य है कि जिससे उसका यह अनिश्चित मनोरथ स्वयं ही पूर्ण हो गया ॥७७॥ समस्त जीवोंको धन, इष्टका समागम तथा जो भी आत्मसुखका कारण है वह सब पुण्य योगसे प्राप्त होता है ॥७८॥ जिसके बीचमें सौ योजनका भी अन्तर प्रसिद्ध है वह इष्ट वस्तु पुण्यात्मा जीवोंको मुहूर्तमात्रमें प्राप्त हो जाती है ॥७९॥ इसके विपरीत जो प्राणी पुण्यसे रहित है वे निरन्तर दुखी रहते हैं तथा उनके हाथमें आई हुई भी इष्ट वस्तु दूर हो जाती है ॥८०॥ अटवियोंमें बीचमें, पहाड़की चोटीपर विषम मार्ग तथा समुद्रके मध्यमें भी पुण्यशाली मनुष्योंको इष्ट समागम प्राप्त होते रहते है ॥८१॥ इस प्रकार विचारकर उसने स्त्रीको उठाया और उसके लिए हर्षातिरेकके कारण कष्टसे निकलनेवाले वचनोंके द्वारा सब समाचार कहा ॥८२॥ उस सुमुखीने 'कहीं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ' इस आशङ्कासे बार-बार पूछा और उत्पन्न हुए निश्चय से वह स्वसंवेद्य सुखको प्राप्त हुई ॥८३॥

तदनन्तर जब स्त्रीके ओठके समान लाल लाल कान्तिको धारण करनेवाला सूर्य उदित हो रहा था। तब प्रेमसे भरा, सर्व बन्धुजनोंसे सहित, परम कान्तिसे युक्त और परम प्रिय समागम देखनेके लिए उत्सुक राजा पृथिवीधर उत्तम हाथीपर सवार हो चला ॥८४-८५॥ आठों पुत्रोंसे सहित वनमालाकी माता भी मनोहर पालकीपर सवार हो पतिके मार्गमें चली ॥८६॥ इसके पीछे राजाकी आज्ञानुसार सेवकोंके द्वारा अत्यधिक हितकारी वस्त्र तथा गन्धमाला आदि समस्त मनोहर पदार्थ ले जाये जा रहे थे ॥८७॥

तदनन्तर दूरसे ही विकसित नेत्रकमलोंके धारी रामको देखकर राजा पृथिवीधर हाथीसे उतरकर आदरके साथ उनके पास पहुँचा ॥८८॥ तत्पश्चात् विधि विधानके वेत्ता तथा शोभा हृदयके धारक राजाने बड़े प्रेमसे राम लक्ष्मणका आलिङ्गनकर उनसे तथा सीतासे कुशल समा-

१. विधिवेदी ।

[1]तद्देव्यपि तयो पृष्ट्वा क्षेमं सुस्निग्धलोचना। निखिलाचारनिष्णाता जानकी परिषस्वजे ॥९०॥
उपचारो यथायोग्यं तयोस्तैरपि निर्मित। आचार्यके हिते[2] याता वस्तुन्यत्र प्रतिष्ठितम् ॥९१॥
वीणावेणुमृदङ्गादिसहितो गीतनि स्वन। क्षुब्धार्णवसमो जज्ञे वन्दिवृन्दानुनादित ॥९२॥
उत्सव स महाञ्जात पूजिताखिलसज्जन। नृत्यल्लोक[3]क्रमन्यासादतिकम्पितभूतल ॥९३॥
दिशस्तूर्यनिनादेन प्रतिशब्दसमन्विता। चक्रु परस्परालापमिव सम्मदनिर्भरा[4] ॥९४॥
शनै प्रसन्नता याते तस्मिन्नथ महोत्सवे। शरीरकर्म तै सर्वं कृत स्नानाशनादिकम् ॥९५॥
तत सद्विपारूढसामन्तशतवेष्टितौ। सारङ्गोपमपादातमहाचक्रपरिच्छदौ ॥९६॥
पुर प्रवृत्तसोत्साहराजस्थपृथिवीधरौ। विदग्धसूतलोकेन कृतमङ्गलनिस्वनौ ॥९७॥
हारराजितवक्षस्कावनर्घांशुकधारिणौ। हरिचन्दनदिग्धाङ्गावारूढौ रथमुत्तमम् ॥९८॥
नानारत्नांशुसम्पर्कसमुद्भूतेन्द्रकार्मुकौ। शशाङ्कभास्कराकारावशक्यगुणवर्णनौ ॥९९॥
सौधर्मैशानदेवाभौ जानकीसहितौ पुरम्। कुर्वाणौ विस्मयं तुङ्गं प्रविष्टौ रामलक्ष्मणौ ॥१००॥
वरमालाधरौ गन्धबद्धषट्पदमण्डलौ। सम्पूर्णचन्द्रवदनौ विनीताकारधारिणौ ॥१०१
यक्षेणेव कृते तस्मिन्नलामे पुटभेदने। रेमाते परमं भोगं भुञ्जानौ निजयेच्छया ॥१०२॥

चार पूछा ॥८९॥ जिसके नेत्रोंसे स्नेह टपक रहा था तथा जो सब प्रकारका आचार जाननेमें निपुण थी ऐसी रानीने भी राम-लक्ष्मणसे कुशल पूछकर सीताका आलिङ्गन किया ॥९०॥ उन सबने भी राजा रानीका यथायोग्य सत्कार किया सो ठीक ही है क्योंकि वे इस विषयमें अतिशय निपुणताको प्राप्त थे ॥९१॥ तदनन्तर जो वीणा बाँसुरी मृदङ्ग आदिके शब्दसे सहित था, जो क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रकी तुलना धारण कर रहा था और जिसमें बन्दीजनोंके द्वारा उच्चारित विरुदावलीका नाद गूँज रहा था ऐसा सङ्गीतका शब्द होने लगा ॥९२॥ जिसमें आये हुए समस्त इष्टजनोंका सत्कार हो रहा था, तथा नृत्य करनेवाले मनुष्योंके चरण निक्षेपसे जिसमें भूतल काँप रहा था ऐसा वह महान् उत्सव सम्पन्न हुआ ॥९३॥ तुरहीके शब्दसे जिनमें प्रतिध्वनि गूँज रही थी ऐसी दिशाएँ हर्षसे ओत-प्रोत हो मानो परस्पर वार्तालाप ही कर रहीं थी ॥९४॥ अथानन्तर धीरे-धीरे जब वह महोत्सव शान्त हुआ तब उन्होंने स्नान भोजन आदि शरीर सम्बन्धी सब कार्य किये ॥९५॥

तदनन्तर जो हाथी घोड़ों पर बैठे हुए सैकड़ों सामन्तोंसे घिरे थे, मृगतुल्य पैदल सिपाहियोंका बड़ा दल जिनके साथ था, उत्साहसे भरा राजा पृथिवीधर जिनके आगे-आगे चल रहा था, चतुर बन्दीजन जिनके आगे मङ्गल ध्वनि कर रहे थे, जिनके वक्ष स्थल हारोंसे सुशोभित थे, जो अमूल्य वस्त्र धारण किये हुए थे, जिनके शरीर हरिचन्दनसे लिप्त थे, जो उत्तम रथ पर सवार थे, जिनके नाना रत्नोंकी किरणोंके सम्पर्कसे इन्द्रधनुष उठ रहे थे, चन्द्र और सूर्यके समान जिनके आकार थे, जिनके गुणोंका वर्णन करना अशक्य था, सौधर्म तथा ऐशानेन्द्रके समान जिनकी कान्ति थी, जो अत्यधिक आश्चर्य उत्पन्न कर रहे थे, जिनके गलेमें वरमालाएँ पड़ी थीं, सुगन्धिके कारण जिनके आस-पास भ्रमरोंने मण्डल बाँध रक्खे थे, जिनके मुख चन्द्रमाके समान थे तथा जो विनीत आकारको धारण कर रहे थे ऐसे राम-लक्ष्मणने नगरमें प्रवेश किया ॥९६-१०१॥ जिस प्रकार पहले, यक्षके द्वारा निर्मित नगरमें इच्छानुसार भोग भोगते हुए वे रमण करते थे उसी प्रकार राजा पृथिवीधरके नगरमें भी वे इच्छानुसार उत्कृष्ट

---

१. तद्देव्यापि म० । २. हितो याता ज० । ३. नृत्यलोक म० । ४ सम्मदनिर्भराः म० ।

पुष्पिताग्रावृत्तम्

इति वनगहनान्यपि प्रयाता सुकृतसुसंस्कृतचेतसो मनुष्या ।
अतिपरमगुणानुपाश्रयन्ते रविरुचय. सहसा पदार्थलाभान् ॥१०३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्म पुराणे-पद्मायने वनमालाभिधान नाम षट्त्रिंशत्तम पर्व ॥३६॥



भोग भोगते हुए रमण करने लगे ॥१०२॥ गौतम स्वामी कहते है कि जिनके चित्त पुण्यसे सुसंस्कृत है तथा जो सूर्यके समान दीप्तिके धारक है ऐसे मनुष्य सघन वनोंमे पहुँचकर भी सहसा उत्कृष्ट गुणोंसे युक्त पदार्थोंको प्राप्त कर लेते है ॥१०३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमे वनमालाका वर्णन करनेवाला छत्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३६॥

सप्तत्रिंशत्तमं पर्व

अन्यदाथ सुखासीनं समुदीरिततत्कथम् । राघवालङ्कृतास्थानं राजानं पृथिवीधरम् ॥१॥
दूराध्वपरिखिन्नाङ्गो लेखवाहः समाययौ । प्रणम्य च समासीनो द्रुतं लेखं समार्पयत्[1] ॥२॥
गृहीत्वासौ ततो राज्ञा वाह्यनामकलक्षितं[2] । लेखकायार्पितं साधुं[3] सन्धिविग्रहवेदिने ॥३॥
स विमुच्यानुवाच्यैनं वाचितो[4] राजचक्षुषा । लिपिचुञ्चुर्विधौ चारुरित्यवाचयदुच्चगी ॥४॥
स्वस्तिस्वस्तिलकोदारप्रभावमतिकर्मणे । श्रीमते नतराजानामतिवीर्याय शर्मणे ॥५॥
श्रीनन्द्यावर्तनगरान्नगराज इवोत्थितः[5] । ख्यातः पञ्चमहाशब्दः शस्त्रशास्त्रविशारदः ॥६॥
राजाधिराजताश्लिष्टः प्रतापवशिताहितः । अनुरञ्जितसर्वक्ष्मः समुद्यद्भास्करद्युतिः ॥७॥
अतिवीर्यः समस्तेषु कर्तव्येषु महानयः । राजमानगुणः श्रीमानतिवीर्यः क्षितीश्वरः ॥८॥
आज्ञापयति नगरे विजये पृथिवीधरम् । अक्षरैर्लेखसंक्रान्तैः कुशलप्रश्नपूर्वकम् ॥९॥
यथा मे केचिदेतस्मिन् सामन्ता धरणीतले । सकोषवाहनास्ते मे वर्तन्ते पार्श्ववर्तिनः ॥१०॥
आयान्बहुविधा म्लेच्छाश्चतुरङ्गसमन्विताः । नानाशास्त्रकरा वाक्यमर्चन्ति समभूतयः ॥११॥
वराञ्जननगाभानां करिणामष्टभिः शतैः । समीरशावतुल्यानां सहस्रैर्वाजिनां त्रिभिः ॥१२॥
महाभोगो महातेजा मद्गुणाकृष्टमानसः । राजा विजयशार्दूलः सोऽद्य प्राप्तो ममान्तिकम् ॥१३॥

अथानन्तर एक दिन राजा पृथ्वीधर सभामण्डपमें सुखसे विराजमान थे, पास ही में राम भी सभाको अलङ्कृत कर रहे थे तथा उन्हींसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा चल रही थी कि इतनेमें दूर मार्गसे आनेके कारण जिसका शरीर खिन्न हो रहा था ऐसा एक पत्रवाहक आया और राजाको प्रणाम कर बैठनेके बाद उसने शीघ्र ही एक पत्र समर्पित किया ॥१-२॥ वह पत्र जिसे दिया जाता था उसके नामसे अङ्कित था। राजाने पत्रवाहकसे पत्र लेकर सन्धिविग्रहको अच्छी तरह जाननेवाले लेखक (मुन्शी) के लिए सौंप दिया ॥३॥ वह लेखक सब लिपियोंके जाननेमें निपुण था, राजाके नेत्र द्वारा सन्मान प्राप्त कर उसने वह पत्र खोला। एक बार स्वयं बाँचा और फिर उच्च स्वरसे इस प्रकार बाँच कर सुनाया ॥४॥ उसमें लिखा था कि जो इन्द्रके समान उदार प्रभावका धारक तथा बुद्धिमान् है लक्ष्मीमान् है, तथा नम्रीभूत राजाओंके लिए सुख देनेवाला है ऐसा राजा अतिवीर्य स्वस्तिरूप है मङ्गलरूप है ॥५॥ जो नगराज अर्थात् सुमेरुके समान (उदार) है, प्रसिद्ध है, महायशका धारी है, शस्त्रमें निपुण है, राजाधिराजपनासे आलिङ्गित है, जिसने अपने प्रतापसे शत्रुओंको वश कर लिया है, जिसने समस्त पृथिवीको अनुरञ्जित कर लिया है, उगते हुए सूर्यके समान जिसकी कान्ति है, जो अतिशय पराक्रमी है, समस्त कार्योंमें महानीतिज्ञ है, और जिससे अनेक गुण शोभायमान हो रहे हैं ऐसा श्रीमान् अतिवीर्य राजा नन्द्यावर्तपुरसे विजयनगरमें वर्तमान राजा पृथिवीधरको लेखमें लिखित अक्षरोंसे कुशल समाचार पूछता हुआ आज्ञा देता है कि इस पृथिवी तल पर मेरे जो सामन्त हैं वे खजाना और सेनाके साथ मेरे पास हैं ॥६-१०॥ जिनके हाथमें नाना प्रकारके शस्त्र देदीप्यमान हैं तथा जो एक सदृश विभूतिके धारक हैं ऐसे म्लेच्छ राजा अपनी-अपनी चतुरङ्ग सेनाके साथ यहाँ आ गये हैं ॥११॥ जो महाभोगी और महाप्रतापी हैं तथा जिसका मन हमारे गुणोंसे आकर्षित है ऐसा राजा विजयशार्दूल भी अंजनगिरिके समान आभावाले आठ

---

१ समर्पयत् म० । २ वाह्यनामाङ्कलक्षितः म० । ३ साधुः सन्धि म० । ४. वापितो म०, ख० ।
५. इव स्थितः ख० ।

मृगध्वजो रणोर्मिश्च कलभ केसरी तथा । अङ्गा महीभृत. षड्भिरमी करटिना शतै. ॥१४॥
प्रत्येक पञ्चभि सप्तिसहस्रैश्च समावृता । प्राप्ता कृतमहोत्साहा नयपण्डितबुद्धय ॥१५॥
उत्साहयन् छलोद्वृत्त नयशास्त्रविशारदम् । पञ्चालाधिपमात्मार्थकारिण ज्ञातकारणम् ॥१६॥
द्विरदाना सहस्रेण तैर्युना च सप्तभि । पौण्ड्रचमापतिरालीन प्रताप परम वहन् ॥१७॥
साधनेन तदग्रेण सम्प्राप्तो मगधाधिपः । पूर्यमाणो नृपैर्वाहो रैवो नदशतैरिव ॥१८॥
सहस्रैरागतोऽष्टाभिर्दन्तिना जलदत्विषाम् । अश्वीयेन सुकेशश्च दुर्लभान्तेन वज्रधृक् ॥१९॥
सुभद्रो मुनिभद्रश्च साधुभद्रश्च नन्दन । तुल्या वज्रधरस्यैते सम्प्राप्ता यवनाधिपा ॥२०॥
अवार्यवीर्यसम्प्राप्त सिंहवीर्यो महीपति । वाङ्ग सिंहरथश्चेतौ मातुलौ बलशालिनौ ॥२१॥
पदातिभी रथैर्नागै स्थूरीपृष्ठै· प्रतिष्ठितै । वत्सस्वामी समायातो मारिदत्तोतिभूरिभि ॥२२॥
आवष्ठ. ओष्ठिलो राजा सौवीरो धीरमन्दिर । प्राप्तौ दुर्वेदसख्येन साधनेनान्वितावमौ ॥२३॥
एतेऽन्ये च महासत्त्वा राजान. श्रुतशासनाः । अक्षौहिणीभिरायाता दशभिस्त्रिदशोपमा ॥२४॥
अमीभिरनुयातोऽहं प्रस्थितो भरत प्रति । त्वामुदीक्षे यतो लेखदर्शनानन्तर तत· ॥२५॥
आगन्तव्य त्वया प्रीत्या कार्यप्रेक्षितया तथा । पश्यामोऽत्यादरेण त्वा यथा वर्ष कृषीवला ॥२६॥
एव च वाचिते लेखे न यावत्पृथिवीधर । किञ्चिदूचे सुमित्राया सूनुस्तावदभाषत ॥२७॥

सौ हाथियो और वायुके पुत्रके समान चपल तीन हजार घोड़ोके साथ आज हमारे पास आ गया है ॥१२-१३॥ बहुत भारी उत्साहके देनेवाले तथा नीति निपुण बुद्धिके धारक जो मृगध्वज, रणोर्मि, कलभ, और केसरी नामके अङ्ग देशके राजा है वे भी प्रत्येक छह सौ हाथियो तथा पॉच हजार घोडोसे समावृत हो आ पहुँचे है ॥१४-१५॥ जो छलपूर्ण युद्ध करनेमे निपुण है, नीति शास्त्रका पारगामी है, प्रयोजन सिद्ध करनेवाला है तथा युद्धकी सब गतिविधियोका जानकार है ऐसे पञ्चाल देशके राजाको उत्साहित करता हुआ पौण्ड्रदेशका परम प्रतापी राजा, दो हजार हाथियों और सात हजार घोड़ोके साथ आ गया है ॥१६-१७॥ जिस प्रकार रेवा नदीके प्रवाह मे सैकड़ो नदियॉ आकर मिलती है इसी प्रकार जिसमें अन्य अनेक राजा आ-आकर मिल रहे है ऐसा मगध देशका राजा भी पौण्ड्राधिपतिसे भी कही अधिक सेना लेकर आया है ॥१८॥ वज्रको धारण करनेवाला राजा सुकेश, मेघके समान कान्तिको धारण करनेवाले आठ हजार हाथियो और जिसका अन्त पाना कठिन है ऐसी घोडोकी सेनाके साथ आ पहुँचा है ॥१९॥ जो इन्द्रके समान पराक्रमके धारी हैं, ऐसे सुभद्र, मुनिभद्र, साधुभद्र और नन्दन नामक भवनोके राजा है वे भी आ गये है ॥२०॥ जो अवार्य वीर्यसे सम्पन्न है, ऐसा राजा सिंहवीर्य, तथा वङ्ग देशका राजा सिंहरथ ये दोनो मेरे मामा है सो वहुत भारी सेनासे सुशोभित होते हुए आये है ॥२१॥ वत्स देशका राजा मारिदत्त बहुत भारी पदाति, रथ, हाथी और उत्तमोत्तम घोडोके साथ आया है ॥२२॥ अम्बष्ठ देश का राजा प्रोष्ठिल और सुवीर देशका स्वामी धीरमन्दिर ये दोनो असंख्यात सेनाके साथ आ पहुँचे है ॥२३॥ तथा इनके सिवाय जो और भी महापराक्रमी एवं देवोकी उपमा धारण करने वाले अन्य राजा है वे मेरी आज्ञा श्रवणकर सेनाओंके साथ आ चुके हैं ॥२४॥ इन सब राजाओं को साथ लेकर मैंने अयोध्याके राजा भरतके प्रति प्रस्थान किया है, सो तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, अतः तुम्हें पत्र देखनेके बाद तुरन्त ही यहाँ आना चाहिए। तुम्हारी मुझमें प्रीति ही ऐसी है कि जिससे आप दूसरे कार्यके प्रति दृष्टि भी नहीं डालेंगे। जिस प्रकार किसान वर्षाको बड़े आदरसे देखते हैं, उसी प्रकार हम भी तुम्हें बड़े आदरसे देखते है ॥२५-२६॥ इस प्रकार पत्र

१. अश्वानाम्। २. सानुभद्रस्यनन्दन म०,

अतिवीर्ये तथाक्रुद्धो भरतस्य विचेष्टितम् । तव कीदृगिति ज्ञात [1]भद्रस्य दूतस्य ते ॥२८॥
एव वायुगति पृष्टो जगाद निखिल मम । विदित राजचरितमन्तरङ्गो ह्यय पर ॥२९॥
इच्छामि विशद श्रोतुमित्युक्ते पुनरब्रवीत् । शृणु चित्त समाधाय भवतश्चेत्कुतूहलम् ॥३०॥
श्रुतबुद्धिरिति ख्यातो दूत श्रुतविशारद । प्रहित स्वामिनास्माक गत्वा भरतमब्रवीत् ॥३१॥
दूतोऽस्मि शक्रतुल्यस्य प्रणताखिलभूभृतः । अतिवीर्यनरेन्द्रस्य नयन्यासमनीषिण ॥३२॥
सम्प्राप्य साध्वस यस्मान्नरकेसरिण परम् । भजन्ते रिपुसारङ्गा न निद्रा वसतिष्वपि ॥३३॥
विनीता पृथिवी यस्य चतुरम्भोधिमेखला । आज्ञा पाणिगृहीतेव कुरुते परिपालिता ॥३४॥
आज्ञापयत्यसौ देवो भवन्तमिति सत्क्रिय । वर्णैर्मदास्यविन्यस्तैरूर्जितात्मा समन्तत. ॥३५॥
यथा भज समागत्य भृत्यता भरत द्रुतम् । अयोध्यां वा परित्यज्य भज पारमुदन्वत ॥३६॥
ततः क्रोधपरीताङ्ग शत्रुघ्नश्चण्डया गिरा । जगाद निष्प्रतीकारो दावानल इवोत्थित ॥३७॥
भजत्येव तथा देवो भरतस्तस्य भृत्यताम् । यथा सञ्जायते युक्तमिद तावत्प्रभाषितम् ॥३८॥
विनीतां च परित्यज्य सचिवेषु प्रभुध्रुवम् । यात्येवोदन्वत. पार वशीकुर्वन् कुमानवान् ॥३९॥
वचस्त्वा ज्ञापयामीति नितरा तस्य नोचितम् । रासभस्य यथा मत्तवारणधिपगर्जितम् ॥४०॥
सूचयत्यथवा तस्य मृत्युमेतद्वच स्फुटम् । उत्पातभूतमेतो वा स नून वायुवश्यताम् ॥४१॥

बाँचे जानेपर राजा पृथिवीधर जब तक कुछ नहीं कह पाये कि तब तक उसके पहले ही लक्ष्मण ने कहा कि हे भद्र ! हे समीचीन बुद्धिके धारक दूत ! तुझे मालूम है कि राजा अतिवीर्यके उस तरह रुष्ट होनेमे भरतकी कैसी चेष्टा कारण है अर्थात् अतिवीर्य और भरतमे विरोध होने का क्या कारण है ? ॥२७–२८॥ इस प्रकार लक्ष्मणके पूछनेपर उस वायुगति नामक दूतने कहा कि मैं चूँकि राजाका अत्यन्त अन्तरङ्ग व्यक्ति हूँ अत मुझे सब मालूम है ॥२९॥ इसके उत्तरमे लक्ष्मणने कहा कि तो मै सुनना चाहता हूँ । इस प्रकार कहे जानेपर वायुगति दूत बोला कि यदि आपको कुतूहल है तो चित्त स्थिर कर सुनिए मै कहता हूँ ॥३०॥ उसने कहा कि एक बार हमारे राजा अतिवीर्यने श्रुतबुद्धि नामका निपुण दूत भरतके पास भेजा, सो उसने जाकर भरतसे कहा कि जो इन्द्रके समान पराक्रमी है । जिसे समस्त राजा नमस्कार करते है तथा जो नयके प्रयोग करनेमे अत्यन्त निपुण है ऐसे राजा अतिवीर्यका मैं दूत हूँ ॥३१–३२॥ जो मनुष्योमे सिंहके समान है तथा जिससे भयभीत होकर शत्रु रूप मृग अपनी वसतिकाओंमे निद्राको प्राप्त नही होते ॥३३॥ चार समुद्र ही जिसकी कटिमेखला है, ऐसी समस्त पृथिवी स्त्रीके समान बड़ी विनयसे जिसकी आज्ञाका पालन करती है, जो उत्तम क्रियाओका आचरण करनेवाला है तथा सब ओरसे जिसकी आत्मा अत्यन्त बलिष्ठ है, ऐसे राजा पृथिवीपर मेरे मुखमे स्थापित किये हुए अक्षरोसे आपको आज्ञा देते है कि हे भरत ! तू शीघ्र ही आकर मेरी दासता स्वीकृत कर अथवा अयोध्या छोड़कर समुद्रके उस पार भाग जा ॥३४–३६॥

तदनन्तर जिसका शरीर क्रोधसे व्याप्त हो रहा था तथा उठी हुई दावानलके समान जिसका प्रतिकार करना कठिन था ऐसा शत्रुघ्न तीक्ष्ण वाणीसे बोला कि अरे दूत ! राजा भरत उसकी भृत्यताको उस तरह अभी हाल स्वीकृत करते है कि जिस तरह उसका यह कहना ठीक सिद्ध हो जाय ? अयोध्या छोड़नेकी बात कही सो अभ्युदयको धारण करनेवाले राजा भरत अयोध्याको मन्त्रियों पर छोड़ क्षुद्र मनुष्योंको वश करनेके लिए अभी हाल समुद्रके पार जाते हैं ॥३७–३९॥ परन्तु मैं तुमसे कह रहा हूँ कि जिस प्रकार मदोन्मत्त हाथीके प्रति गधेकी गर्जना उचित नहीं जान पड़ती, उसी प्रकार भरतके प्रति तेरे स्वामीकी यह गर्जना बिलकुल ही उचित नहीं है ॥४०॥ अथवा उसके यह वचन स्पष्ट ही उसकी मृत्युको सूचित करते हैं । जान पड़ता है

१. भद्रास्य दूत सन्मते ज० । भद्रस्य इतस्य ते म० (?) । २ यात्येवोन्नतः म० ।

वैराग्याद्थवा ताते तपोवनमुपागते । नरेन्द्रेण[1] समाविष्टो ग्रहेण खलवेष्टितः ॥४२॥
यद्यप्युपशमं यातस्तातानिर्मुक्तिकाम्यया । तथापि निर्गतस्तस्मात्कुलिङ्गस्त दहाम्यहम् ॥४३॥
सिंहे करीन्द्रकीलालपङ्कलोहितकेसरे । शान्तेऽपि शावकस्तस्य कुरुते करिपातनम् ॥४४॥
इत्युक्त्वा दह्यमानोरुवेणुकान्तारभीषणम् । जहास तेजसास्थान ग्रसमान. इवाखिलम् ॥४५॥
जगाद च कुदूतस्य तावदस्य विधीयताम् । खलीकारोऽल्पवीर्यस्य सत्यङ्कार इव द्रुतम् ॥४६॥
इत्युक्ते पादयोर्दूतो गृहीत्वा कुपितैर्भटै । सारमेय इवागस्वी[2] हन्यमान' कृतध्वनि ॥४७॥
आकृष्टो नगरीमध्य यावन्मुक्तश्च दुखित' । दग्धो दुर्वचनैर्धूलीधूसरो निरगात्ततः ॥४८॥
तत. सागरगम्भीर परमार्थविशारदः । अपूर्वं दुर्वच. श्रुत्वा किञ्चित्कोपमुपागत ॥४९॥
केकयानन्दन श्रीमान्सुप्रभानन्दनान्वित । विनिर्नाचुरि पुर्या निर्यात सचिवान्वित ॥५०॥
श्रुत्वा त मिथिलाधीश कनक पुरुसाधन. । प्राप सिंहोदराद्याश्च राजानो भक्तितत्परा ॥५१॥
चक्रेण महता युक्तो भरत प्रस्थितस्तत' । नन्द्यावर्तं प्रजा रक्षन् पितेव न्यायकोविद. ॥५२॥
अतिवीर्योऽपि दूतेन खलीकारप्रदर्शिना । परम क्रोधमानीतः क्षुब्धाकूपारभीषण ॥५३॥
भरतायाग्निरोचिष्णुर्गतु सविदधे मतिम् । सामन्तैर्वेष्टित सर्वे कृतानेकमहाद्भुतै ॥५४॥
ततो ललाटभागेन युवचन्द्राकृति[3] श्रित । वनमालापितु सज्ञा कृत्वा स्वैरं बलोऽवदत् ॥५५॥

कि वह उत्पातरूपी भूतसे ग्रस्त है अथवा वायुरोगके वशीभूत है ॥४१॥ अथवा वैराग्यके योगसे पिता राजा दशरथके तपोवनके लिए चले जाने पर दुष्टोंसे घिरा तुम्हारा राजा ग्रहसे आक्रान्त हो गया है ॥४२॥ यद्यपि मोक्षकी आकाङ्क्षासे पितारूपी अग्नि शान्त हो चुकी है तथापि मै उस अग्निसे निकला हुआ एक तिलगा हूँ, सो तेरे राजाको अभी भस्म करता हूँ ॥४३॥ बड़े-बड़े हाथियोंके रुधिररूपी पङ्कसे जिसकी गरदनके बाल लाल हो रहे थे ऐसे सिंहके शान्त हो जाने पर भी उसका बच्चा हाथियोंका विघात करता ही है ॥४४॥ इस प्रकार जलते हुए बाँसोंके बड़े वनके समान भयङ्कर वचन कह कर तेजसे समस्त सभाको ग्रसता हुआ शत्रुघ्न जोरसे हँसा ॥४५॥ और बोला कि बयानेके समान अल्पवीर्य (अतिवीर्य) के इस कुदूतका तिरस्कार शीघ्र ही किया जाय ॥४६॥ शत्रुघ्नके इस प्रकार कहते ही क्रोधसे भरे योद्धाओंने उस दूतके दोनों पैर पकड़ कर उसे घसीटना शुरू किया जिससे वह पीटे जानेवाले अपराधी कुत्तेके समान कॉय-कॉय करने लगा ॥४७॥ इस तरह नगरीके मध्यतक घसीट कर उसे छोड़ दिया । तदनन्तर दु खी दुर्वचनोंसे जला और धूलिसे धूसर हुआ वह दूत वहाँसे चला गया ॥४८॥

तदनन्तर जो समुद्रके समान गम्भीर थे, परमार्थके जाननेवाले थे तथा जो दूतके पूर्वोक्त अपूर्व वचन सुनकर कुछ क्रोधको प्राप्त हुए थे ऐसे श्रीमान् राजा भरत, शत्रुघ्न भाई और मन्त्रियोंको साथ ले, शत्रुका प्रतिकार करनेके लिए नगरीसे बाहर निकले ॥४९–५०॥ वह सुनकर मिथिलाका राजा कनक बड़ी भारी सेना लेकर भरतसे आ मिला तथा भक्तिमे तत्पर रहनेवाले सिंहोदर आदि राजा भी आ पहुँचे ॥५१॥ इस प्रकार जो पिताके समान प्रजाकी रक्षा करते थे, तथा जो न्याय नीतिमे निपुण थे ऐसे राजा भरत बड़ी भारी सेनासे युक्त हो नन्द्यावर्त नगरकी ओर चले ॥५२॥

उधर अपने अपमानको दिखानेवाले दूतने जिसे अत्यन्त कुपित कर दिया था, जो क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान भयकर था, जो अग्निके समान दमक रहा था तथा अनेक बड़े-बड़े आश्चर्य पूर्ण कार्य करनेवाले सामन्त जिसे घेरे थे ऐसा राजा अतिवीर्यने भी भरतके प्रति चढ़ाई करनेका निश्चय किया ॥५३–५४॥ तदनन्तर ललाटसे तरुण चन्द्रमाकी आकृतिके धारण करने-

१ नरेन्द्रेशा समाविष्टो नरेन्द्रो स समा० म०, ज० । २. अपराधी (?) ३ कृति. श्रित. म० ।

युक्तमेवातिवीर्यस्य भरते कर्तुमीदृशम् । पितुर्येन समो भ्राता ज्येष्ठोऽसावपमानित ॥५६॥
आगच्छाम्यहमित्युक्त्वा लेखवाह महीधर । प्रतिप्रेष्याकरोन्मन्त्र रामेण पृथिवीधर ॥५७॥
अतिवीर्योऽतिदुर्वारश्छद्मना त व्रजाम्यहम् । एव महीधरेणोक्ते पद्मो विश्रब्धमब्रवीत् ॥५८॥
अज्ञातैरिदमस्माभि साधनीय प्रयोजनम् । ततो न महता कृत्य सरम्भेण तु पार्थिव ॥५९॥
तिष्ठ त्वमिह कुर्वाण सुप्रयुक्तमह तव । पुत्रजामातृभि सार्धमन्त तस्यं व्रजाम्यरे ॥६०॥
इत्युक्त्वा रथमारुह्य पर सारबलान्वितै । महीधरसुतै साक ससीतो लक्ष्मणान्वित ॥६१॥
नन्द्यावर्तपुरी रामो गन्तु प्रववृते जवी । प्राप्तश्चावस्थितस्तस्य पुरस्य निकटेतरे ॥६२॥
तनुकृत्ये कृते तत्र सम्बन्धितनयै सह । रामलक्ष्मणयोर्मन्त्रः सीतायाश्चेत्यवर्तत ॥६३॥
जगाद जानकी नाथ भवत सन्निधौ मम । वक्तु नैवाधिकारोऽस्ति कि तारा भान्ति भास्करे ॥६४॥
तथापि देव भाषेऽह प्रेरिता हितकाम्यया । जातो वशलतातोऽपि मणि सगृह्यते ननु ॥६५॥
अतिवीर्योऽतिवीर्योऽय महासाधनसगत । क्रूरकर्मा कथ शक्यो जेतु भरतभूभृता ॥६६॥
[1]अतस्तन्निर्जये तावदुपायाश्चिन्त्यता द्रुतम् । सहसारभ्यमाण हि कार्यं व्रजति सशयम् ॥६७॥
त्रिलोकेऽप्यस्ति नासाध्य भवतो लक्ष्मणस्य वा । किन्तु प्रस्तुतमत्यक्त्वा समारब्ध प्रशस्यते ॥६८॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत्किमेव देवि भाषसे । पश्य श्वो निहित पापमणुवीर्यं मया रणे ॥६९॥
रामपादरज पूतशिरसो मे सुरैरपि । न शक्यते पुर स्थातु क्षुद्रवीर्ये तु का कथा ॥७०॥

वाले रामने वनमालाके पिता राजा पृथिवीधरको संकेत कर स्वेच्छानुसार कहा कि जिसने पिताके समान बड़े भाईको अपमानित किया है ऐसे भरत पर अतिवीर्यका ऐसा करना उचित ही है ॥५५-५६॥ तदनन्तर 'मै अभी आता हूँ' इस प्रकार कहकर राजा पृथिवीधरने दूतको तो विदा किया और रामके साथ बैठकर इस प्रकार सलाह की कि 'अतिवीर्यका निराकरण करना सरल नही है इसलिए मैं छलसे जाता हूँ। राजा पृथिवीधरके इस प्रकार कहने पर रामने विश्वासपूर्वक कहा कि हम लोगोको यह कार्य अज्ञात रूपसे चुपचाप करना योग्य है अत हे राजन् ! बड़े आडम्बरकी आवश्यकता नहीं है ॥५७-५९॥ आप सुचारु रूपसे अपना काम करते हुए यहीं रहिये मै आपके पुत्र तथा जॅवाईके साथ शत्रुके सम्मुख जाता हूँ ॥६०॥ इस प्रकार कहकर राम, लक्ष्मण और सीताके साथ रथपर सवार हो श्रेष्ठ सेना सहित राजा पृथिवीधरके पुत्रोंको साथ ले नन्द्यावर्तपुरीकी ओर चले तथा वेगसे चलकर नगरीके निकट जाकर ठहर गये ॥६१-६२॥ वहाँ स्नान भोजन आदि शरीर सम्बन्धी कार्य कर चुकनेके बाद राम लक्ष्मण, तथा सीताकी पृथिवीधरके पुत्रोके साथ निम्न प्रकार सलाह हुई ॥६३॥ सलाहके बीच सीताने रामसे कहा कि हे नाथ ! यद्यपि आपके समीप मुझे कहनेका अधिकार नही है क्योंकि सूर्यके रहते हुए क्या तारा शोभा देते है ? ॥६४॥ तथापि हे देव ! हितकी इच्छासे प्रेरित हो कुछ कह रही हूँ सो ठीक ही है क्योकि वंशकी लतासे उत्पन्न हुआ मणि भी तो ग्राह्य होता है ॥६५॥ सीताने कहा कि यह अतिवीर्य, अत्यन्त बलवान्, बडी भारी सेनासे सहित तथा क्रूरता पूर्ण कार्य करनेवाला है सो भरतके द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥६६॥ अतः शीघ्र ही उसके जीतनेका उपाय सोचिये क्योंकि सहसा प्रारम्भ किया हुआ कार्य संशयमे पड़ जाता है ॥६७॥ यद्यपि तीन लोकमें भी ऐसा कार्य नही है जो आप तथा लक्ष्मणके असाध्य हो किन्तु जो कार्य प्रकृत कार्यको न छोड़कर प्रारम्भ किया जाता है वही प्रशंसनीय होता है ॥६८॥ तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हे देवि ! ऐसा क्यो कहती हो तुम कल ही अणुवीर्य (अतिवीर्य) को रणमे मेरे द्वारा मरा हुआ देख लेना ॥६९॥ रामकी चरण-धूलिसे जिसका शिर पवित्र है ऐसे मेरे

१. अतस्त निर्जये म० ।

न यावदथवा याति भानुरस्त कुतूहली । वीक्षयता तावदद्यैव क्षुद्रवीर्यस्य पञ्चताम् ॥७१॥
युवगर्वसमाध्माता सम्बन्धितनया अपि । एतदेव वचोऽमुञ्चन्प्रतिशब्दमिवोन्नतम् ॥७२॥
तत पद्मो निवार्यैता भ्रूभङ्गेन महामना । अब्रवील्लक्ष्मण धैर्यादब्धि गण्डूषयन्निव ॥७३॥
युक्तमुक्तमल तात जानक्या वस्तु पुष्कलम् । स्फुटीकृत तु नात्यन्तमत्यासादनभीतया ॥७४॥
अस्या शृणु यदाकूतमतिवीर्यो बलोद्धत । भरतेन स नो शक्यो वशीकर्तुं रणाजिरे ॥७५॥
भागो न भरतस्तस्य दशमोऽपि भवत्यत । तस्य दावानलस्याय कि करोति महागज ॥७६॥
दन्तिभिश्च समृद्धस्य समृद्धोऽपि तुरङ्गमै । भरतो नैव शक्तोऽस्य[2] तथा विन्ध्यस्य केसरी ॥७७॥
भरतस्य जये नात्र सशयोऽपि समीक्ष्यते । एकान्तस्तु कुतो वापि स्याज्जन्तुप्रलयस्तथा ॥७८॥
कष्टमेकक्रयोर्जाते विरोधे कारण विना । पक्षद्वय मनुष्याणा जायते विवशक्षयम्[3] ॥७९॥
दुरात्मनातिवीर्येण भरते च वशीकृते । जायते रघुगोत्रस्य कलङ्क पश्य कीदृश ॥८०॥
नेक्ष्यते सन्धिरप्यत्र शत्रुघ्नेन च मानिना । शैशवेन कृत दोष शत्रावत्युद्धते शृणु ॥८१॥
विभावर्यां तमिस्राया किलावस्कन्ददायिना । रौद्रभूतिसमेतेन शत्रुघ्नेन चरिष्णुना ॥८२॥
निद्रावशीकृतान् वीरान् बहून् कृत्वा मृतक्षतान् । हस्तिनश्च दुरारोहान् प्रगलद्दाननिर्झरान् ॥८३॥
चतु षष्टिसहस्राणि वाजिना वातरहसाम् । शतानि सप्त चेभानामञ्जनाद्रिसमत्विषाम् ॥८४॥
बाह्यस्थानि पुरस्यास्य नीतानि दिवसैस्त्रिभि । भरतस्यान्तिक कि ते न श्रुतानि जनास्यत[4] ॥८५॥

सामने देव भी खड़े होनेके लिए समर्थ नहीं है फिर अणुवीर्यकी तो बात ही क्या है ? ? ॥७०॥ अथवा कुलूहलसे भरा सूर्य जब तक अस्त नही होता है तब तक आज ही अणुवीर्यकी मृत्यु देख लेना ॥७१॥ तरुण लक्ष्मणके गर्वसे फूले राजा पृथिवीधरके पुत्रोंने भी प्रतिध्वनिके समान यही जोरदार शब्द कहे ॥७२॥

तदनन्तर धैर्यसे समुद्रको कुल्लेके समान तुच्छ करनेवाले महामना रामने भ्रकुटिके भंगसे पृथिवीधरके पुत्रोंको रोककर लक्ष्मणसे कहा कि हे तात ! सीताने सब बात बिलकुल ठीक कही है केवल रहस्य खुल न जाय इससे भयभीत हो खुलासा नहीं किया है ॥७३-७४॥ उसका जो अभिप्राय है वह सुनो । यह कह रही है कि चूँकि अतिवीर्य बलसे उद्धत है अत. भरतके द्वारा रणाङ्गणमे वश करनेके योग्य नहीं है ॥७५॥ भरत उसके दशवें भाग भी नही है वह दावानलके समान है अत यह महागज उसका क्या कर सकता है ? ॥७६॥ यद्यपि भरत घोड़ोसे समृद्ध है पर अतिवीर्य हाथियोसे समृद्ध है अतः जिस प्रकार सिंह विन्ध्याचलका कुछ नहीं कर सकता उसी प्रकार भरत भी अतिवीर्यका कुछ नही कर सकता ॥७७॥ वह भरतको जीत लेगा इसमे कुछ भी सशय नहीं है अथवा दो मे से किसीकी जीत होगी पर उससे प्राणियोका विनाश तो होगा ही ॥७८॥ जब बिना कारण ही दो व्यक्तियोमे परस्पर विरोध होता है तब दोनो पक्षके मनुष्योका विवश होकर क्षय होता ही है ॥७९॥ और यदि दुष्ट अतिवीर्यने भरतको वश कर लिया तो फिर देखो रघुवंशका कैसा अपयश उत्पन्न होता है ? ॥८०॥ इस विषयमे सन्धि भी होती नहीं दिखती क्योकि मानी शत्रुघ्नने लड़कपनके कारण अत्यन्त उद्धत शत्रुके बहुत दोप—अपराध किये हैं सुनो, रौद्रभूतिके साथ मिलकर शत्रुघ्नने अन्धेरी रातमें छापा मार-मार कर उसके बहुतसे निद्रानिमग्न वीरोको तथा जिनपर चढ़ना कठिन था और जिनसे मदके निर्झर झर रहे थे ऐसे बहुतसे हाथियोको मारा । पवनके समान वेगशाली चौंसठ हजार घोड़े और अञ्जनगिरिके समान आभावाले सात सौ हाथी जो कि इसके नगरके बाहर स्थित थे तीन दिन तक चुराकर भरतके पास ले गया सो क्या लोगोके मुँहसे तुमने सुना नहीं

१ मृत्युम् । २ शक्योऽस्य । ३ विवशः क्षयम् । ४ लोकमुखात् ।

दृष्ट्वा कलिङ्गराजस्तान् गाढशल्यान् बहून्नृपान् । जीवेन च विनिर्मुक्तान् हृतं ज्ञात्वा च साधनम् ॥८६॥
सम्प्राप्तः परमं क्रोधमप्रमत्तः समन्ततः । वैरिनिर्यातनं कृत्वा बुद्धौ रणमुदीक्षते ॥८७॥
दण्डोपायं परित्यज्य भरतो मानिनां वरः । हेतुं तन्निर्जये नान्यं प्रयुङ्क्ते बुद्धिमानपि ॥८८॥
अथ त्वं साधयस्येव केनैतन्न प्रतीयते । शक्तिस्ते प्रभवेत्तात तीव्रांशोरपि यातने ॥८९॥
किन्त्वयं वर्ततेऽत्रैव प्रदेशे भरतोऽधुना । निर्गत्य च तथायुक्तं प्रकटीकरणं ननु ॥९०॥
अज्ञाता एव ये कार्यं कुर्वन्ति पुरुषाद्भुतम् । तेऽतिश्लाघ्या यथात्यन्तं निवृष्य जलदा गताः ॥९१॥
इति मन्त्रयमाणस्य रामस्य मतिरुद्गता । अतिवीर्यग्रहोपाये ततो मन्त्रः समापितः ॥९२॥
प्रमादरहितस्तत्र कृतप्रवरसङ्कथः । सुखेन शर्वरीं नीत्वा रामः स्वजनसङ्गतः ॥९३॥
आवासान्निर्गतोऽपश्यदार्यिकाजनलक्षितम् । जिनेन्द्रभवनं भक्त्या प्रविवेश च साञ्जलिः ॥९४॥
नमस्कारं जिनेन्द्राणां विधायार्यिजनस्य च । सकाशे वरधर्मायां गणपालयाः सशस्त्रिकाम् ॥९५॥
स्थापयित्वा कृती सीतां कृत्वात्मानं च [1]वर्णिनीम् । स्त्रीवेषधारिभिः सार्धं सुरूपैर्लक्ष्मणादिभिः ॥९६॥
कृत्वा पूजां जिनेन्द्राणां बहुमङ्गलभूषिताम् । नरेन्द्रभवनद्वारं प्रतस्थे लीलयान्वितः ॥९७॥
सुरेन्द्रगणिका[2]तुल्यं वीक्ष्य तं वर्णिनी जनम् । सर्वं पौरजनो लग्नः पश्चाद्गन्तुं सविस्मयः ॥९८॥
सर्वलोकस्य नेत्राणि मनांसि च सुचेष्टिताः । हरन्त्यस्ता नृपागारं प्राप्ता द्वारि सुमण्डनाः ॥९९॥

है ? ॥८१-८५॥ कलिङ्गाधिपति अतिवीर्यने जब देखा कि बहुतसे राजाओंको गहरी शल्य लगी हुई है तथा कितने ही राजा निष्प्राण हो गये हैं और साथ ही बहुत-सी सेनाका अपहरण हुआ है तब वह परम क्रोधको प्राप्त हुआ। अब वह सब ओरसे सावधान है और बुद्धिमें वैरीसे बदला लेनेका विचार कर रणकी प्रतीक्षा कर रहा है ॥८६-८७॥ भरत मानियोंमें श्रेष्ठ है तथा बुद्धिमान् भी इसलिए वह उसके जीतनेमें एक युद्धरूपी उपायको छोड़कर अन्य उपाय प्रयोगमें नहीं लाना चाहता ॥८८॥ यद्यपि तुम इसे ठीक कर सकते हो यह किसे प्रतीति नहीं है ? अथवा हे तात ! इसकी बात जाने दो तुममें तो सूर्यको भी गिरानेकी शक्ति है किन्तु भरत इसी प्रदेशमें विद्यमान है अर्थात् यहाँसे बहुत ही निकट है सो इस समय उस तरह अयोध्यासे निकल कर प्रकट होना उचित नहीं है ॥८९-९०॥ जो लोग अज्ञात रहकर मनुष्योंको आश्चर्यमें डाल देनेवाला भारी उपकार करते हैं वे चुपचाप बरस कर गये हुए रात्रिके मेघोंके समान अत्यन्त प्रशंसनीय है ॥९१॥ इस प्रकार सलाह करते-करते रामको, अतिवीर्यके वश करनेका उपाय सूझ आया और उसके बाद सलाहका काम समाप्त हो गया ॥९२॥

अथानन्तर आत्मीयजनोंके साथ मिले हुए रामने, प्रमाद रहित हो उत्तमोत्तम कथाएँ कहते हुए सुखसे रात्रि व्यतीत की ॥९३॥ दूसरे दिन डेरेसे निकलकर रामने आर्यिकाओंसे सहित जिनमन्दिर देखा सो हाथ जोड़कर बड़ी भक्तिसे उसमें प्रवेश किया ॥९४॥ भीतर प्रवेशकर जिनेन्द्र भगवान् तथा आर्यिकाओंको नमस्कार किया। वहाँ आर्यिकाओंकी जो वरधर्मा नामकी गणिनी थी उसके पास सीताको रक्खा तथा सीताके पास ही अपने सब शस्त्र छोड़े। तदनन्तर अतिशय चतुर रामने अपने आपका नृत्यकारिणीका वेश बनाया और साथ ही अत्यन्त सुन्दर रूपको धारण करनेवाले लक्ष्मण आदिने भी स्त्रियोंके वेष धारण किये ॥९५-९६॥ तत्पश्चात् जिनेन्द्र भगवान्‌की मङ्गलमयी पूजाकर सबलोगोंके साथ रामने लीलापूर्वक राजमहलके द्वारकी ओर प्रस्थान किया ॥९७॥ इन्द्रनर्तकी की तुलना करनेवाली उन नर्तकियोंको देखकर आश्चर्यसे भरे समस्त नगरवासी उनके पीछे लग गये ॥९८॥ तदनन्तर उत्तम चेष्टाओं और सुन्दर आभूषणोंको धारण करनेवाली वे नृत्यकारिणीं सब लोगोंके नेत्र और मनको हरतीं हुई राजमहलके द्वारपर पहुँचीं ॥९९॥

---

१ नृत्यकारिणीम्। २. तुल्य वीक्षितु वर्णिनी जनः म० ।

ते चतुर्विंशतिर्भवत्या जिनेन्द्रा भक्तितत्परैः । वन्द्यन्तेऽस्माभिरित्येव तेवातेवा ध्वनिं पुरः ॥१००॥
कृत्वा पुराणवस्तूनि गातुमुत्फुल्ललोचनाः । गम्भीरभारतीतानासक्ताश्चारणयोषितः ॥१०१॥
ध्वनिमश्रुतपूर्वं तं श्रुत्वा तासां नराधिपः । आजगाम गुणाकृष्टः काष्ठभार इवोदके ॥१०२॥
ततो रेचकमादाय ललिताङ्गविवर्तनम् । नृपस्याभिमुखीभाव जगाम वरवर्त्तनी ॥१०३॥
सस्मितालोकितैस्तस्या विगलद्भ्रूसमुद्गमैः । गमकानुगतैः कम्पैस्तनभारस्य हारिणः ॥१०४॥
मन्थरैश्चारुसञ्चारैर्जघनस्य घनस्य च । तथा बाहुलताहारैः सुलीलकरपल्लवैः ॥१०५॥
पादन्यासैर्लघुस्पृष्टविमुक्तधरणीतलैः । आशु सम्पादितैः स्थानैः केशपाशविवर्तनैः ॥१०६॥
त्रिकस्य वलनैर्भागगात्रसन्दर्शिताऽत्मभिः । कामबाणैरिमैर्लोकः सकलः समताड्यत ॥१०७॥
मूर्छनाभिः स्वरैर्ग्रामैर्यथास्थानं नियोजितैः । नर्तकी सा जगौ वल्गु परिलीनसखीस्वरम् ॥१०८॥
यत्र यत्र समुद्देशे नर्तकी कुरुते स्थितिम् । तत्र तत्र सभा सर्वा नयनानि प्रयच्छति ॥१०९॥
तस्या रूपेण चक्षूंषि स्वरेण श्रवणेन्द्रियम् । मनांसि तद्द्वयेनापि बद्धानि सदसो दृढम् ॥११०॥
उत्फुल्लमुखराजीवा सामन्ता दानतत्परा । बभूवुर्निरलङ्कारा सव्यानाम्बरधारिणः ॥१११॥
आतोद्यानुगतं नृत्यं तत्तस्यास्त्रिदशानपि । वशीकुर्वीत कैवास्था सुहरेष्वन्यजन्तुषु ॥११२॥

तदनन्तर जिनके नेत्रकमल विकसित थे तथा जो भारतीकी गम्भीर तान खींचनेमें आसक्त थी ऐसी उन नृत्यकारिणी स्त्रियोंने 'भक्तिमें तत्पर रहनेवाली हम सब चौबीस तीर्थंकरोंको भक्ति पूर्वक नमस्कार करती हैं, यह कहकर सब प्रथम 'तेवा-तेवा' यह अव्यक्त ध्वनि की फिर पुराणोंमें प्रतिपादित वस्तुओंका गाना शुरू किया ॥१००-१०१॥ उन नृत्यकारिणियोंकी अश्रुतपूर्व ध्वनि सुनकर गुणोंसे खिंचा राजा अतिवीर्य उनके पास इस तरह आ गया जिस तरह कि पानीमें गुण अर्थात् रस्सीसे खिंचा काष्ठका भार खींचनेवालेके पास आता है ॥१०२॥ तदनन्तर फिरकी लेकर सुन्दर अङ्गोंको मोड़ती हुई श्रेष्ठ नर्तकी राजाके सन्मुख गई ॥१०३॥ वहाँ उसका मन्द-मन्द मुसकानके साथ देखना, भौंहोंका चलाना, विज्ञ मनुष्य ही जिसे समझ पाते थे ऐसे सुन्दर स्तनोंका कँपाना, धीमी-धीमी सुन्दर चालसे चलना, स्थूल नितम्बका मटकाना, भुजा रूप लताओंका चलाना, उत्तम लीलाके साथ हस्त रूपी पल्लवोंका फिराना, जिनमें शीघ्रतासे स्पर्शकर पृथिवीतल छोड़ दिया जाता था ऐसे पैर रखना, शीघ्रतासे नृत्यकी अनेक मुद्राओंका बदलना, केशपाशका चलाना, कटिकी अस्थिका हिलाना, तथा नाभि आदि शरीरके अवयवोंका दिखलाना आदि कामके बाणोंसे समस्त मनुष्य ताड़े गये थे ॥१०४-१०७॥ वह नर्तकी, जिनका यथास्थान प्रयोग किया गया था ऐसी मूर्च्छनाओं, स्वरों तथा ग्रामों—स्वरोंके समूहसे सखियोंके स्वरको अपने स्वरमें मिलाकर बहुत सुन्दर गा रही थी ॥१०८॥ वह नृत्यकारिणी जिस-जिस स्थानमें ठहरती थी सारी सभा उसी-उसी स्थानमें अपने नेत्र लगा देती थी ॥१०९॥ सारी सभाके नेत्र उसके रूपसे, कान मधुर स्वरसे और मन, रूप तथा स्वर दोनोंसे मजबूत बँध गये थे ॥११०॥ जिनके मुख कमल विकसित थे ऐसे सामन्त लोग उन नर्तकियोंको पुरस्कार देते-देते अलङ्काररहित हो गये थे उनके शरीरपर केवल पहिननेके वस्त्र ही बाकी रह गये थे ॥१११॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक! गायन वादनसे सहित उस नृत्यकारिणीका वह नृत्य देवोंको भी वश कर सकता था फिर जिनका हरा जाना सरल बात थी

१. तेवा तेवा इत्यनुकरणशब्दम् । २. नानाशक्त्याश्चारण म० । ३. स्पष्ट म० । ४. विवर्तनै म० । ५. इमैः इति छान्दसिक सयोग । ६. च सद्देशे म० । ७ सख्याना वरधारिणी म० । ८ आलाप्यानुगतं (?) म० । ९ समरेष्वन्य ख० ।

विधाय वृषभादीना चरितस्य प्रकीर्तनम् । सक्षेपेण वशीकृत्य समिति[1] सकलां भृशम् ॥११३॥
स्वगीतेन समुद्युक्ता राजानमिति नर्तकी । दधाना परमा दीप्तिमुपालब्धु[2] सुदुस्सहम् ॥११४॥
अतिवीर्य किमेतत्ते दुष्ट व्यवसित महत् । नयहीनमिद वस्तु तेनात्र त्व नियोजित ॥११५॥
किमिति स्वविनाशाय केकयानन्दनस्त्वया । शान्तचेता श्रृगालेन केसरीव प्रकोपित ॥११६॥
एव गतेऽपि बिभ्राण परम विनय द्रुतम् । सम्प्रसादय त गत्वा यदि ते जीवित प्रियम् ॥११७॥
जाता विशुद्धवशेषु वरक्रीडनभूमय । माभूवन् विधवा भद्र तवैता वरयोषित ॥११८॥
एतास्त्वया परित्यक्ता विमुक्ताशेषभूषणा । ध्रुव पुरा न शोभन्ते ताराश्चन्द्रमसा यथा ॥११९॥
निवर्तय द्रुत चित्तमशुभध्यानतत्परम् । उत्तिष्ठ व्रज निर्मानो[3] नमस्य भरत सुधी· ॥१२०॥
एव कुरु न चेदेव कुरुषे पुरुषाधम । ततोऽद्यैव विनष्टोऽसि सशयोऽत्र न विद्यते ॥१२१॥
जीवत्येवानरण्यस्य पौत्रे राज्य समीहसे । चकासति रवौ पापलक्ष्मीर्दोषाकरस्य का ॥१२२॥
पतितस्याद्य नो रूपे मरण ते समुद्गतम् । शलभस्येव मूढस्य दुष्पक्षस्य प्रियद्युते ॥१२३॥
देवेन भरतेनामा गरुडेन महात्मना । [4]अलगर्दोपमो भूत्वा प्रतिस्पर्धनमिच्छति ॥१२४॥
ततो निर्भर्त्सन स्वस्य भरतस्य च शसनम् । निशम्य ससदा साकमभूत्ताम्रेक्षणो नृप· ॥१२५॥
विरक्ता च सभात्यन्तपर रूक्षितमानसा[5] । जुघूर्णार्णववेलेव भ्रूतरङ्गसमाकुला ॥१२६॥

ऐसे अन्य मनुष्योकी तो बात ही क्या थी ? ॥११२॥ इस तरह सक्षेपसे ऋषभ आदि तीर्थंकरो के चरित्रका कीर्तन कर जब उस नर्तकीने समस्त सभाको अत्यन्त वशीभूत कर लिया तब वह सङ्गीतसे परम दीप्तिको धारण करती हुई राजाको इस प्रकारका असह्य उलाहना देनेके लिए तत्पर हुई ॥११३-११४॥ उसने कहा कि हे अतिवीर्य ! यह तेरी अतिशय दुष्ट चेष्टा क्या है ? तेरा यह कार्य नीतिसे रहित है, किसने तुझे इस कार्यमे लगाया है ? ॥११५॥ जिस तरह श्रृङ्गाल सिहको कुपित करता है उस तरह तूने शान्त चित्त भरतको अपना नाश करनेके लिए इस तरह क्यो कुपित किया है ? ॥११६॥ इतना सब होनेपर भी यदि तुझे अपना जीवन प्यारा है तो शीघ्र ही परम विनयको धारण करता हुआ जाकर भरतको प्रसन्न कर ॥११७॥ हे भद्र ! विशुद्ध कुलमे उत्पन्न तथा उत्तम क्रीड़ाकी भूमि स्वरूप तेरी ये स्त्रियाँ विधवा न हो ॥११८॥ तुझसे रहित होनेपर जिनने समस्त आभूषण छोड़ दिये है ऐसी ये उत्तम स्त्रियाँ चन्द्रमासे रहित ताराओके समान निश्चित ही शोभित नहीं होगी ॥११९॥ इसलिए अशुभ ध्यानमें जाने वाले अपने चित्तको शीघ्र ही लौटा, उठ, जा और मानरहित हो भरतको नमस्कार कर । तू बुद्धिमान् है ॥१२०॥ अत ऐसा कर । हे अधम पुरुष ! यदि तू ऐसा नहीं करता है तो आज ही नष्ट हो जायगा इसमे सशय नहीं है ॥१२१॥ अनरण्यके पोता भरतके जीवित रहते ही तू राज्य चाहता है सो सूर्यके देदीप्यमान रहते चन्द्रमाकी क्या शोभा है ? ॥१२२॥ जिस प्रकार कान्ति के लोभी तथा कमजोर पङ्खोंवाले मूर्ख शलभका मरण आ पहुँचता है उसी प्रकार हमलोगोके रूपपर आसक्त तथा खोटे सहायकोसे युक्त तुझ मूढ़का आज मरण आ पहुँचा है ॥१२३॥ तू जलके साँपके समान तुच्छ होकर भी गरुड़के समान जो महात्मा राजा भरत है उनके साथ ईर्ष्या करना चाहता है ॥१२४॥

तदनन्तर नृत्यकारिणीके मुखसे अपना तर्जन और भरतकी प्रशंसा सुनकर राजा अतिवीर्य सभाके साथ लाल-लाल नेत्रोंका धारक हो गया अर्थात् क्रोधवश उसके नेत्र लाल हो गये ॥१२५॥ जिसका मन अत्यन्त रूक्ष हो गया था जिसका प्रेम समाप्त हो चुका था और जो भ्रकुटिरूपी तरङ्गोंसे व्याकुल थी ऐसी सारी सभा समुद्रकी वेलाके समान क्षोभको प्राप्त हुई ॥१२६॥

---

१ सन्मतिं म० । २. मुपलब्धु म० । ३. मान-रहितः । ४ अलगर्दो जलव्यालः । ५. परुषक्षत-मानसा म० ।

अतिवीर्यो रुषा कम्पो यावज्जग्राह सायकम् । तावदुत्पत्य नर्तक्या सविलासकृतभ्रमम् ॥१२७॥
मण्डलाग्रं समाक्षिप्य वीक्षमाणेषु राजसु । जीवग्राहं विषण्णात्मा केशेषु जगृहे दृढम् ॥१२८॥
उद्यम्य नर्तकी खड्गं पश्यन्ती नृपसंहतिम् । जगादाविनयी योऽत्र स मे वध्यो विसंशयम् ॥१२९॥
परित्यज्यातिवीर्यस्य पक्षं विनयमण्डना । भरतस्य द्रुतं पादौ नमत प्रियजीविताः ॥१३०॥
भरतो जयति श्रीमान् गुणस्फीतांशुमण्डलः । दशस्यन्दनवंशेन्दुर्लोकानन्दकरः परः ॥१३१॥
लक्ष्मीकुमुद्वती यस्य विकासं भजते तराम् । द्विषत्तपननिर्मुक्ता कुर्वन्तं परमाद्भुतम् ॥१३२॥
उज्जगाम ततो लोकवक्त्रेभ्य इति निस्वरः । अहो वृत्तमिदं चित्रमिन्द्रजालोपमं महत् ॥१३३॥
यस्य चारणकन्यानामिदमीदृग्विचेष्टितम् । भरतस्य स्वयं तस्य शक्तिः शक्रं जयेदपि ॥१३४॥
न विद्मः स किमस्माकं क्रुद्धो नाथः करिष्यति । अथवा सप्रणामेषु देवो यास्यति मार्दवम् ॥१३५॥
ततः करिणमारुह्य राघवः सातिवीर्यकः । सहितः परिवर्गेण ययौ जिनवरालयम् ॥१३६॥
अवतीर्य गजात्तत्र प्रविश्य प्रमदान्वितः । चक्रे सुमहतीं पूजां कृतमङ्गलनिस्वनः ॥१३७॥
वरधर्मापि सर्वेण सङ्घेन सहितापरम्[1] । राघवेण ससीतेन नीता तुष्टेन पूजनम् ॥१३८॥
अतिवीर्योऽत्र पद्मेन लक्ष्मणाय समर्पितः । तस्यासौ वधमुद्युक्तः कर्तुमौच्यत[2] सीतया ॥१३९॥
मावीवधोऽस्य लक्ष्मीमन् कन्धरां निष्ठुराशय । केशेषु मागृहीर्गाढं कुमार भज सौम्यताम् ॥१४०॥
को दोषः कर्मसामर्थ्याद्यदायान्त्यापदं नराः । रक्ष्या एव तथाप्येते दधतामतिसाधुताम्[3] ॥१४१॥

क्रोधसे काँपते हुए अतिवीर्यने ज्योंही तलवार उठाई त्योंही नर्तकीने विलासपूर्वक विभ्रम दिखाते हुए उछल कर तलवार छीन ली और सब राजाओंके देखते-देखते अतिवीर्यको जीवित पकड़ कर मजबूतीसे उसके केश बाँध लिये ॥१२७–१२८॥ नर्तकीने तलवार उठा कर राजाओंकी ओर देखते हुए कहा कि यहाँ जो भी अविनय करेगा वह निःसन्देह मेरे द्वारा वध्य होगा ॥१२९॥ यदि आप लोगोंको अपना जीवन प्यारा है तो अतिवीर्यका पक्ष छोड़कर विनयरूपी आभूषणसे युक्त हो शीघ्र ही भरतके चरणोंमें नमस्कार करो ॥१३०॥ जो लक्ष्मीसे युक्त है, गुण ही जिसकी विस्तृत किरणोंका समूह है, जो लोगोंको परम आनन्दका देनेवाला है, जिसकी लक्ष्मीरूपी कुमुदिनी शत्रुरूपी सूर्यसे निर्मुक्त होकर परम विकासको प्राप्त हो रही है तथा जो अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्य कर रहा है ऐसा दशरथके वंशका चन्द्रमा भरत जयवन्त है ॥१३१–१३२॥

तदनन्तर लोगोंके मुखसे इस प्रकारके शब्द निकलने लगे कि अहो ! यह बड़ा आश्चर्य है, यह तो बहुत भारी इन्द्रजालके समान है ॥१३३॥ जिसकी नृत्यकारिणियोंकी यह ऐसी चेष्टा है उस भरतकी शक्तिका क्या ठिकाना ? वह तो इन्द्रको भी जीत लेगा ॥१३४॥ न जाने वह राजा भरत कुपित होकर हमारा क्या करेगा ? अथवा प्रणाम करनेवाले पर वह अवश्य ही मार्दवभावको प्राप्त होगा ॥१३५॥ तदनन्तर राम अतिवीर्यको पकड़ हाथी पर सवार हो अपने परिजनके साथ जिनमन्दिर गये ॥१३६॥ वहाँ उन्होंने हाथीसे उतर कर बड़े हर्षसे मन्दिरके भीतर प्रवेश किया और मङ्गलमय शब्दोंका उच्चारण कर बड़ी भारी पूजा की ॥१३७॥ मन्दिरमें सर्वसंघके साथ जो वरधर्मा नामकी गणिनी ठहरी हुई थी रामने सीताके साथ सन्तुष्ट होकर उनकी भी उत्तम पूजा की ॥१३८॥ यहाँ रामने अतिवीर्यको लक्ष्मणके लिए सौंप दिया और वे उसका वध करनेके लिए उद्यत हुए तब सीताने कहा कि हे लक्ष्मीधर ! निष्ठुर अभिप्रायके धारी हो इसकी ग्रीवा मत छेदो और न जोरसे इसके केश ही पकड़ो। हे कुमार ! सौम्यताको प्राप्त होओ ॥१३९–१४०॥ इस बेचारेका क्या दोष है ? यद्यपि मनुष्य कर्मोंकी सामर्थ्यसे आपत्तिको प्राप्त होते हैं तथापि सज्जनताको धारण करनेवाले मनुष्य उनकी रक्षा ही करते हैं ॥१४१॥

---

१. सहितः म० । २. भणित । ३. साधुना म० ।

इतरोऽपि खलीकर्तुं साधूना नोचितो जन । किमुताय नरेशाना सहस्राणा प्रपूजितः ॥१४२॥
कुर्वेन मुक्तक भद्र भवताय वशीकृत' । जानान स्वस्य सामर्थ्यं क्वानुगच्छति साम्प्रतम् ॥१४३॥
गृहीत्वा समयेनास्य सन्मानमुपलम्भिता । विमुच्यन्ते पुनर्भूयो मर्यादेय चिरन्तनी ॥१४४॥
इत्युक्तो मस्तके कृत्वा करराजीवकुड्मलम् । जगाद लक्ष्मणो देवि यद्ब्रवीषि तथैव तत् ॥१४५॥
आस्ता स्वामिनि ते वाक्यात्तावदस्य विमोचनम् । सुराणामप्ययमु पूज्य' कुर्वीय त्वत्प्रसादत ॥१४६॥
एव प्रशान्तसरम्भे सद्यो लक्ष्मीधरे स्थिते । अतिवीर्यो विबुद्धात्मा स्तुत्वा पद्ममभाषत ॥१४७॥
साधु साधु त्वया चित्र कृतमीदृग्विचेष्टितम् । कदाचिदप्यनुत्पन्ना ममाद्य मतिरुद्गता ॥१४८॥
विमुक्तहारमुकुट दृष्ट्वा त करुणान्वित' । विश्रब्ध राघवोऽवोचत् सौम्याकारपरिग्रह ॥१४९॥
मा व्रजीरङ्ग दैन्य त्व धत्स्व धैर्यं पुरातनम् । महतामेव जायन्ते सम्पदो विपदन्विता ॥१५०॥
न चात्र काचिदापत्ते नद्यावर्ते[2] क्रमागते । भरतस्य वशो भूत्वा कुरु राज्य यथेप्सितम् ॥१५१॥
अतिवीर्यस्ततोऽवोचन्न मे राज्येऽधुना स्पृहा । राज्येन मे फल दत्तमधुनान्यत्र सज्ज्यते ॥१५२॥
आसीन्मया कृता वाञ्छा हिमवत्सागरावधि । जेतु वसुन्धरा येन बिभ्रता मानमुत्तमम् ॥१५३॥
सोऽह स्वमानमुन्मूल्य भूत्वा सारविवर्जित । कुर्यां प्रणतिमन्यस्य कथ पुरुषता दधत् ॥१५४॥
षट्खण्डा यैरपि क्षोणी पालितेय महानरै । न तृप्तास्तेऽप्यह ग्रामै पञ्चभिस्तु किमेतकै ॥१५५॥
जन्मान्तरकृतस्यास्य बलिता पश्य कर्मण । छायाहानिमह येन राहुणेन्दुरिवाहृत' ॥१५६॥

जो सज्जन पुरुष है उन्हें साधारण मनुष्यको भी दु'खी करना उचित नही है फिर यह तो हजारो राजाओका पूज्य है इसकी बात ही क्या है ? ॥१४२॥ हे भद्र! इसे आपने वश कर ही लिया है अत' इसे छोड़ दो । अपनी सामर्थ्यको जानता हुआ यह अब कहाँ जायगा ? ॥१४३॥ प्रबल शत्रुओको पकड़ कर तदनन्तर सन्धिके अनुसार सन्मान कर उन्हें छोड दिया जाता है यह चिरकालकी मर्यादा है ॥१४४॥

सीताके इस प्रकार कहने पर लक्ष्मणने हस्तकमल जोड़ मस्तक पर लगाते हुए कहा कि हे देवि! आप जो कह रही है वह वैसा ही है ॥१४५॥ हे स्वामिनि, आपकी आज्ञासे इसका छोड़ना तो दूर रहा इसे आपके प्रसादसे ऐसा कर सकता हूँ कि यह देवताओका भी पूज्य हो जाय ॥१४६॥

इस प्रकार शीघ्र ही लक्ष्मणके शान्त होने पर प्रतिबोधको प्राप्त हुआ अतिवीर्य रामकी स्तुतिकर कहने लगा ॥१४७॥ कि आपने जो यह अद्भुत चेष्टा की सो बड़ा भला किया । मेरी जो बुद्धि कभी उत्पन्न नही हुई वह आज उत्पन्न हो गई ॥१४८॥ इतना कह उसने हार और मुकुट उतार कर रख दिये । यह देख सौम्य आकारको धारण करनेवाले दयालु रामने विश्वास दिलाते हुए कहा कि हे भद्र! तू दीनताको प्राप्त मत हो, पहले जैसा धैर्य धारण कर, विपत्तियोसे सहित सम्पदाएँ महापुरुषोको ही प्राप्त होती है ॥१४९–१५०॥ अब मुझे कोई आपत्ति नही है! इस क्रमागत नन्द्यावर्तनगरमे भरतका आज्ञाकारी होकर इच्छानुसार राज्य कर ॥१५१॥

तदनन्तर अतिवीर्यने कहा कि अब मुझे राज्यकी इच्छा नहीं है । राज्यने मुझे फल दे दिया है । अब दूसरे ही अवस्थामे लगना चाहता हूँ ॥१५२॥ उत्कट मानको धारण करते हुए मैने हिमवान्से लेकर समुद्र तककी सारी पृथिवी जीतनेकी इच्छा की थी सो मै अपने मानको उखाड़कर नि.सार हो गया हूँ अब मै पुरुषत्वको धारण करता हुआ अन्यको नमस्कार कैसे कर सकता हूँ ? ॥१५३–१५४॥ जिन महापुरुषोंने इस छहखण्डकी पृथिवीकी रक्षा की है वे भी सन्तोषको प्राप्त नहीं हुए फिर मैं इन पॉच गॉवोसे कैसे संतुष्ट हो सकता हूँ ? ॥१५५॥ जन्मान्तरमे किये हुए इस कर्मकी बलवत्ता तो देखो कि जिस प्रकार राहु चन्द्रमाको कान्ति

१. इतरो ये म० । २. नन्द्यावर्ते क्रमागते म०, नन्द्यावर्तकमागते ख० ।

मानुष्यकमिदं जातं सारमुक्तं मयाधुना । सुराणामपि वार्तैषा किमन्यत्राभिधीयताम् ॥१५७॥
सोऽहं पुनर्भवाद्भीरुस्त्वया सम्प्रतिबोधितः । तथाविधां भजे चेष्टां यया मुक्तिरवाप्यते ॥१५८॥
इत्युक्त्वा क्षमयित्वा तं परिवर्गसमन्वितम् । गत्वा केसरिविक्रान्तो मुनिं श्रुतिधरश्रुतिम् ॥१५९॥
कराब्जकुड्मलाङ्केन विधाय शिरसा नतिम् । जगाद नाथ वाञ्छामि दीक्षां दैगम्बरीमिति ॥१६०॥
आचार्येणैवमित्युक्ते परित्यज्याशुकादिकम् । केशलुञ्चं विधायासौ महाव्रतधरोऽभवत् ॥१६१॥
आत्मार्थनिरतस्त्यक्तरागद्वेषपरिग्रहः । विजहार क्षितिं धीरो यत्रास्तमितवास्यसौ ॥१६२॥
क्रूरश्वापदयुक्तेषु गहनेषु वनेषु स । चकार वसतिं निर्भीर्गह्वरेषु च भूभृताम् ॥१६३॥

उपजाति

विमुक्तनिश्शेषपरिग्रहाशं गृहीतचारित्रभरं सुशीलम् ।
नानातपःशोषितदेहमुद्धं महामुनिं तं नमतातिवीर्यम् ॥१६४॥
रत्नत्रयापादितचारुभूषं दिगम्बरं साधुगुणावतंसम् ।
सम्प्रस्थितं योग्यवरं विमुक्तेर्महामुनिं तं नमतातिवीर्यम् ॥१६५॥
इदं परं चेष्टितमातिवीर्यं श्रृणोति यो यश्च सुधीरधीते ।
प्राप्नोति वृद्धिं सदसोऽपि मध्ये रविप्रभोऽसौ व्यसनं न लोके ॥१६६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरितेऽतिवीर्यनिष्क्रमणाभिधानं नाम सप्तत्रिंशत्तमं पर्व ॥३७॥

रहित कर देता है उसी प्रकार इसने मुझे कान्तिरहित—निस्तेज कर दिया ?॥१५६॥ जिस मनुष्य पर्यायके लिए देव भी चर्चा करते है औरोंकी तो बात ही क्या है उस मनुष्य पर्यायको मैने अब तक नि.सार खोया ॥१५७॥ अब मै दूसरा जन्म धारण करनेसे भयभीत हो चुका हूँ इसलिए आपसे प्रतिबोध पाकर यह चेष्टा करता हूँ कि जिससे मुक्ति प्राप्त होती है ॥१५८॥ इस प्रकार कहकर तथा परिजन सहित रामसे क्षमा कराकर सिंहके समान शूर वीरताको धारण करता हुआ अतिवीर्य श्रुतिधर मुनिराजके पास गया और अञ्जलि युक्त शिरसे नमस्कार कर बोला कि हे नाथ ! मै दैगम्बरी दीक्षा धारण करना चाहता हूँ ॥१५९-१६०॥ 'एवमस्तु' इस प्रकार आचार्यके कहते ही वह वस्त्रादिका त्यागकर तथा केश लोचकर महाव्रतका धारी हो गया ॥१६१॥ आत्माके अर्थमे तत्पर, तथा राग द्वेष आदि परिग्रहसे रहित होकर वह धीर-वीर पृथिवीमे विहार करने लगा । विहार करते-करते जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था वहीं वह ठहर जाता था ॥१६२॥ सिंह आदि दुष्ट जानवरोंसे युक्त सघन वनो तथा पर्वतोंकी गुफाओमे वह निर्भय होकर निवास करता था ॥१६३॥ जिसने समस्त परिग्रहकी आशा छोड़ दी थी, जिसने चारित्रका भार धारण किया था, जो उत्तम शीलसे युक्त था, नाना प्रकारके तपसे जिसने अपना शरीर सुखा दिया, तथा जो स्वयं शुभ रूप था उन महामुनि अतिवीर्यको नमस्कार करो ॥१६४॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूपी मनोहर आभूषणोसे जो सहित थे, दिशाएँ ही जिनके अम्बर—वस्त्र थे, मुनियोंके अट्ठाईस मूल गुण ही जिनके आभरण थे, जिन्होने कर्मरूपी शत्रुओंको हरनेके लिए प्रस्थान किया था, और जो मुक्तिके योग्य वर थे उन महामुनि अतिवीर्यको नमस्कार करो ॥१६५॥ गौतम स्वामी कहते है कि हे श्रेणिक ! अतिवीर्य मुनिके इस उत्कृष्ट चरितको जो बुद्धिमान् सुनता है अथवा पढ़ता है वह सभाके बीच बुद्धिको प्राप्त होता है तथा सूर्यके समान प्रभाको धारण करता हुआ कभी कष्ट नहीं पाता ॥१६६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें राजा अतिवीर्यकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला सैंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३७॥

अष्टत्रिंशत्तमं पर्व

अथ पद्मोऽतिवीर्यस्य तनयं नयकोविदः । विजयस्यन्दनाभिख्यमभ्यषिञ्चत्पितुः पदे ॥१॥
दर्शिताशेषवित्तोऽसावरविन्दातनूभुवम् । स्वसारं रतिमालाख्यां लक्ष्मणाय न्यवेदयत् ॥२॥
एवमस्त्वित्यभीष्टाया[1] तस्या पद्मेन लक्ष्मणः । लक्ष्मीमिवाङ्कमायातां ज्ञात्वा [2]सप्रमदोऽभवत् ॥३॥
ततः कृत्वा जिनेन्द्राणां पूजां विस्मयदायिनीम् । इयाय विजयस्थानं लक्ष्मणाद्यन्वितो बलः[3] ॥४॥
दीक्षां श्रुत्वातिवीर्यस्य नर्तकीग्रहहेतुकाम् । शत्रुघ्नं हासमध्वानं निषिध्य भरतोऽवदत् ॥५॥
अतिवीर्यो महाधन्यस्तस्य किं भद्र हास्यते । त्यक्त्वा यो विषयान् कष्टान्[4] परां शान्तिमुपाश्रितः ॥६॥
प्रभावं तपसः पश्य त्रिदशेष्वपि दुर्लभम् । मुनिर्यो रिपुरासीन्नः सम्प्राप्तोऽसौ प्रणम्यताम् ॥७॥
श्लाघामित्यतिवीर्यस्य यावत्कुर्वन् स तिष्ठति । विजयस्यन्दनस्तावत्प्राप्तः सामन्तमध्यगः ॥८॥
प्रणम्य भरतायासौ स्थितः सङ्कथया क्षणम् । ज्यायसीं रतिमालाया नाम्ना विजयसुन्दरीम् ॥९॥
उपनिन्ये शुभां कन्यां नानालङ्कारधारिणीम् । कोशं च विपुलं सारं साधनं च प्रसन्नदृक् ॥१०॥
कन्यामेकामुपादाय केकयानन्दनस्ततः । तस्यैवानुमतं सर्वं स्थितिरेषा महात्मनाम् ॥११॥
कौतुकोत्कलिकाकीर्णमानसोऽथ महाजवैः । अश्वैः प्रववृते द्रष्टुमतिवीर्यदिगम्बरम् ॥१२॥
क्वासौ महामुनिः क्वासाविति पृच्छन्सुभावनः । एषोऽयमित्यमुं भृत्यैः कथ्यमानमियाय सः ॥१३॥

अथानन्तर न्यायके वेत्ता श्रीरामने अतिवीर्यके पुत्र विजयरथका उसके पिताके पद पर अभिषेक किया ॥१॥ उसने अपना सब धन दिखाया और माता अरविन्दाकी पुत्री अपनी रत्नमाला नामक बहिन लक्ष्मणके लिए देनी कही सो रामने उसे 'एवमस्तु' कहकर स्वीकृत किया रत्नमालाको पा, मानो लक्ष्मी ही गोदमें आई है, यह जानकर लक्ष्मण अधिक प्रसन्न हुए ॥२-३॥ तदनन्तर लक्ष्मण आदिसे सहित राम, जिनेन्द्र भगवान्की आश्चर्यदायिनी पूजा कर राजा पृथ्वीधरके विजयपुर नगर वापिस आये ॥४॥ नर्तकीके पकड़नेके कारण राजा अतिवीर्यने दीक्षा धारण की है यह सुनकर शत्रुघ्न हास्य करने लगा सो भरतने मनाकर कहा ॥५॥ कि हे भद्र! जो कष्टकारी विषयोंको छोड़ कर परम शान्तिको प्राप्त हुआ है ऐसा अतिवीर्य महाधन्य है उसकी तू क्या हँसी करता है? ॥६॥ जो देवोंके लिए भी दुर्लभ है ऐसा तपका प्रभाव देख। जो हमारा शत्रु था अब मुनि होने पर वह हमारे नमस्कार करने योग्य गुरु हो गया ॥७॥ इस प्रकार अतिवीर्यकी प्रशंसा करता हुआ भरत जब तक बैठा था तब तक अनेक सामन्तोंके साथ विजयरथ वहाँ आ पहुँचा ॥८॥ वह भरतको प्रणाम कर उत्तम वार्ता करता हुआ क्षणभर बैठा। तदनन्तर उसने रतिमालाकी बड़ी बहिन विजयसुन्दरी नामकी शुभ कन्या जो कि नाना अलङ्कारोंको धारण कर रही थी भरतके लिए समर्पित की। साथ ही बड़ी प्रसन्न दृष्टिसे बहुत भारी खजाना और उत्तम सेना भी प्रदान की ॥९-१०॥ तदनन्तर उस अद्वितीय कन्याको पा कर भरत बहुत प्रसन्न हुआ उसने विजयरथकी इच्छानुकूल सब कार्य स्वीकृत किया सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंकी यही रीति है ॥११॥

अथानन्तर जिसका मन कौतुक और उत्कण्ठासे व्याप्त था ऐसा भरत महावेगशाली घोड़ोंसे अतिवीर्य मुनिराजके दर्शन करनेके लिए चला ॥१२॥ वह उत्तम भावनासे सहित था तथा पूछता जाता था कि वे महामुनि कहाँ हैं? और सेवक कहते

---

१ स्वीकृतायाम् । २. सहर्षोऽभूत् । ३. रामः । ४ कष्टा क०, ख० ।

ततो विषमपाषाणनिवहात्यन्तदुर्गमम् । नानाद्रुमसमाकीर्णं कुसुमामोदवासितम्[1] ॥१४॥
तज्ज्ञेन कथितं रम्यं पर्वतं श्वापदाकुलम् । आरुरोहावतीर्याश्वाद्विनीताकारमण्डितः ॥१५॥
रोषतोषविनिर्मुक्तं प्रशान्तकरणं विभुम् । शिलातलनिषण्णं तमेकसिंहमिवाभयम् ॥१६॥
अतिवीर्यमुनिं दृष्ट्वा सुघोरतपसि स्थितम् । शुभध्यानगतात्मानं ज्वलन्तं श्रमणश्रिया ॥१७॥
उत्फुल्लनयनो लोकः सर्वो हृष्टतनूरुहः । विस्मयं परमं प्राप्तो ननाम रचिताञ्जलिः ॥१८॥
कृत्वास्य महतीं पूजां भरतः श्रमणप्रियः । प्रणम्य पादयोरूचे भक्त्या विनतविग्रहः ॥१९॥
नाथ शूरस्त्वमेवैकः परमार्थविशारदः । येनेयं दुर्धरा दीक्षा धृता जिनवरोदिता ॥२०॥
विशुद्धकुलजातानां पुरुषाणां महात्मनाम् । ज्ञातसंसारसाराणामीदृगेव विचेष्टितम् ॥२१॥
मनुष्यलोकमासाद्य फलं यदभिवाञ्छ्यते । तदुपात्तं त्वया साधो वयमत्यन्तदुःखिनः[2] ॥२२॥
क्षन्तव्यं दुरितं किञ्चिद्यदस्माभिस्त्वयीहितम् । कृतार्थोऽसि नमस्तुभ्यं प्राप्तायातिप्रतीक्ष्यताम्[3] ॥२३॥
इत्युक्त्वा साञ्जलिं कृत्वा महासाधोः प्रदक्षिणाम् । अवतीर्णः कथां मौनीं[4] कुर्वाणो धरणीधरात् ॥२४॥
स्थूरीपृष्ठं[5] समारुह्य पूर्यमाणः सहस्रशः । सामन्तैः प्रस्थितोऽयोध्यां विभवाम्भोधिमध्यगः ॥२५॥
महासाधनसामन्तमण्डलस्यान्तरे स्थितः । शुशुभेऽसौ यथा जम्बूद्वीपोऽन्यद्वीपमध्यगः ॥२६॥
क्व गतास्ता नु नर्तक्यः कृतलोकानुरञ्जनाः । स्वजीवितेऽपि निर्लोभा विदधुर्या मयि प्रियम् ॥२७॥

जाते थे कि ये आगे विराजमान है ॥१३॥ तदनन्तर जो ऊँचे नीचे पाषाणोके समूहसे अत्यन्त दुर्गम था, नाना प्रकारके वृक्षोसे व्याप्त था, फूलोकी सुगन्धिसे सुवासित था, और जङ्गली जानवरोसे युक्त था ऐसे जानकार सेवकोके द्वारा बताये हुए पर्वतपर भरत चढ़ा और घोडेसे उतरकर विनीत वेषसे शोभित होता हुआ अतिवीर्य मुनिराजके दर्शनके लिए चला। ॥१४-१५॥ वे मुनिराज हर्ष-विषादसे रहित थे, शान्त इन्द्रियोके धारक थे, विभु थे, शिलातल पर विराजमान थे, एक सिंहके समान निर्भय थे, घोर तपमे स्थित थे, शुभ ध्यानमे लीन थे और मुनिपनेकी लक्ष्मीसे देदीप्यमान थे ॥१६-१७॥ मुनिराजके दर्शनकर सबलोगोके नेत्र विकसित हो गये और सबके शरीरमे हर्षसे रोमाञ्च निकल आये। सभीने परम आश्चर्यको प्राप्त हो अञ्जलि जोड़कर उन्हे नमस्कार किया ॥१८॥ जिसे मुनि बहुत प्रिय थे ऐसे भरतने उन मुनिराजकी बड़ी भारी पूजा की, चरणोमे प्रणाम किया और फिर भक्तिसे नतशरीर होकर इस प्रकार कहा कि हे नाथ! जिसने यह जिनेन्द्र-प्रतिपादित कठिन दीक्षा धारण की है ऐसे एक आप ही शूरवीर हो तथा आप ही परमार्थके जाननेवाले हो ॥१९-२०॥ विशुद्ध कुलमे उत्पन्न तथा संसारके सारको जाननेवाले महापुरुषोकी ऐसी ही चेष्टा होती है ॥२१॥ मनुष्य लोक पाकर जिस फलकी इच्छा की जाती है हे साधो! वह फल आपने पा लिया पर हम अत्यन्त दुखी है ॥२२॥ हे नाथ! हमलोगोंसे आपके विषयमे जो कुछ अनिष्ट-पाप रूप चेष्टा हुई है उसे क्षमा कीजिए। आप कृतकृत्य है, अतिशय पूज्यताको प्राप्त हुए आपके लिए हमारा नमस्कार है ॥२३॥ इस प्रकार महामुनिराज अतिवीर्यसे कहकर तथा अञ्जलि सहित प्रदक्षिणा देकर उन्हींसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा करता हुआ भरत पर्वतसे नीचे उतरा ॥२४॥ तदनन्तर हजारों सामन्त जिसके साथ थे तथा जो विभव रूपी समुद्रके बीचमे गमन कर रहा था ऐसा भरत हस्तिनीके पृष्ठ पर सवार हो अयोध्याके लिए वापिस चला ॥२५॥ बड़ी भारी सेना और सामन्तोके बीचमे स्थित भरत ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो अन्य द्वीपोके मध्यमे स्थित जम्बूद्वीप ही हो ॥२६॥ भरत प्रसन्न चित्तसे इस प्रकार विचार करता जाता था कि जिन्होंने अपने जीवनका भी लोभ छोड़कर हमारा इष्ट किया ऐसी लोगोंको अनुरञ्जित करने-

---

१. वस्थितम् म० । २. दुःखिताः म० । ३. अतिपूज्यताम् । ४. मुनिसम्बन्धिनीम् । ५. हस्तिनीपृष्ठम् ।

पुर कृत्वातिवीर्यस्य महीया परमा स्तुतिम् । नर्तकीभि• कृत कर्म चित्रमेतदहो परम् ॥२८॥
स्त्रीणां कुतोऽथवा शक्तिरीदृशी विष्टपेऽखिले । जिनशासनदेवीभिर्नूनमेतदनुष्ठितम् ॥२९॥
चिन्तयन्नयमित्यादि सुप्रसन्नेन चेतसा । जगाम धरणी पश्यन्नानासस्यसमाकुलाम् ॥३०॥
व्याप्ताशेषजगत्कीर्ति• प्रभाव परम दधत् । सशत्रुघ्नो विवेशासौ विनीता[1] परमोदय• ॥३१॥
साक विजयसुन्दर्या तस्थौ तत्र रतिं भजन् । सुलोचनापरिष्वक्तो यथा जलदनिस्वन•[2] ॥३२॥
आनन्द सर्वलोकस्य कुर्वाणौ रामलक्ष्मणौ । कञ्चित्काल पुरे स्थित्वा पृथिवीधरभूभृत ॥३३॥
जानक्या सह सम्मन्त्र्य कर्तव्याहितमानसौ । भूय प्रस्थातुमुद्युक्तौ समुद्देशमभीप्सितम् ॥३४॥
वनमाला ततोऽवोचल्लक्ष्मण चारुलक्षणा । सबाष्पे बिभ्रती नेत्रे तरत्तरलतारके ॥३५॥
अवश्य यदि भोक्तव्या मन्दभाग्याहक त्वया । पुरैव रक्षिता कस्मान्मुमूर्षन्ती वद प्रिय ॥३६॥
सौमित्रिरगदद् भद्रे विषाद मा गम• प्रिये । अत्यल्पेनैव कालेन पुनरेमि वरानने ॥३७॥
सम्यग्दर्शनहीना या गतिं यान्ति सुविभ्रमे । व्रजेय ता पुनः क्षिप्र न चेदेमि तवान्तिकम् ॥३८॥
नराणा मानदग्धाना साधुनिन्दनकारिणाम् । प्रिये पापेन लिप्येऽह यदि नायामि तेऽन्तिकम् ॥३९॥
रक्षितव्य पितुर्वाक्यमस्माभि प्राणवल्लभे । दक्षिणोदन्वत• कूल गन्तव्य निर्विचारणम् ॥४०॥
मलयोपत्यका[3] प्राप्य कृत्वा परममालयम् । नेष्यामि भवतीमेत्य वरोरु धृतिमाव्रज[4] ॥४१॥
समयै•[5] सान्त्वयित्वेति वनमाला सुभाषितै• । भेजे लाङ्गलिन पार्श्वं सुमित्राकुक्षिसम्भव• ॥४२॥

वाली वे नर्तकियाँ कहा गईं होगीं ? ॥२७॥ राजा अतिवीर्यके सामने हमारी परम स्तुति कर उन नर्तकियोने जो काम किया । अहो ! वह बडे आश्चर्यकी बात है॥२८॥ अथवा समस्त संसारमें स्त्रियोंकी ऐसी शक्ति कहाँ है ? निश्चयसे यह कार्य जिनशासनकी देवियोंने किया है ।' तदनन्तर जो नाना प्रकारके धान्यसे युक्त पृथिवीको देख रहा था, जिसकी कीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त थी, जो परम प्रभावको धारण कर रहा था और जो उत्कृष्ट अभ्युदयसे युक्त था ऐसे भरतने शत्रुघ्नके साथ अयोध्यामे प्रवेश किया ॥२९-३१॥ वहाँ विजयसुन्दरीके साथ प्रीतिको धारण करता हुआ भरत सुलोचना सहित मेघस्वर (जयकुमार) के समान सुखसे रहने लगा ॥३२॥

अथानन्तर सब लोगोको आनन्द उत्पन्न करते हुए राम-लक्ष्मण कुछ समय तक तो राजा पृथिवीधरके नगरमे रहे फिर जानकीके साथ सलाह कर आगेका कार्य निश्चित करते हुए इच्छित स्थान पर जानेके लिए उद्यत हुए ॥३३-३४॥ तदनन्तर जो सुन्दर लक्षणोसे युक्त थी और आँसुओसे भीगे चञ्चल कनीनिकाओवाले नेत्र धारण कर रही थी ऐसी वनमाला लक्ष्मणसे बोली कि हे प्रिय ! यदि मुझ मन्दभाग्याको तुम्हें अवश्य ही छोड़ना था तो पहले ही मरनेसे क्यो बचाया था सो कहो ॥३५-३६॥ तब लक्ष्मणने कहा कि हे भद्रे ! हे प्रिये ! हे वरानने ! विषादको प्राप्त मत होओ । मैं बहुत ही थोड़े समय बाद फिर आ जाऊँगा ॥३७॥ हे उत्तम विलासोको धारण करनेवाली प्रिये ! यदि मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास वापिस न आऊँ तो सम्यग्दर्शनसे हीन मनुष्य जिस गतिको प्राप्त होते है उसी गतिको प्राप्त होऊँ ॥३८॥ हे प्रिये ! यदि मै तुम्हारे पास न आऊँ तो साधुओंकी निन्दा करनेवाले अहंकारी मनुष्योके पापसे लिप्त होऊँ ॥३९॥ हे प्राणवल्लभे ! हमें पिताके वचनकी रक्षा करनी है और विना कुछ विचार किये दक्षिण समुद्रके तट जाना है ॥४०॥ वहाँ मलयाचलकी उपत्यकामे जाकर उत्तम भवन बनाऊँगा और फिर तुम्हें ले जाऊँगा । हे सुन्दर जाँघोवाली प्रिये ! तब तक धैर्य धारण करो ॥४१॥ इस प्रकार उत्तम शब्दोसे युक्त शपथोके द्वारा वनमालाको शान्तकर लक्ष्मण रामके पास जा पहुँचे ॥४२॥

---

१. अयोध्याम् । २. जयकुमारः, मेघस्वर इति तस्यैवापर नाम । ३. मलयापत्यका म० । ४. माव्रत म० । ५. शपथैः । समग्रैः म० ।

ततः सुप्तजने काले विदितौ तौ न केनचित्। निर्गत्य नगराद्गन्तुं प्रवृत्तौ सह सीतया ॥४३॥
प्रभाते तद्विनिर्मुक्तं पुरं दृष्ट्वाखिलो जनः। परमं शोकमापन्नः कृच्छ्रेणाधारयत्तनुम् ॥४४॥
वनमाला गृहं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन विवर्जितम्। समयेषु समालम्ब्य जीवितं शोकिनी स्थिता ॥४५॥
विहरन्तौ ततः क्षोणीं लोकविस्मयकारिणौ। मुमुदाते महासत्त्वौ ससीतौ रामलक्ष्मणौ ॥४६॥
युवत्युज्ज्वलवल्लीनां मनोनयनपल्लवान्। तावनङ्गतुषारेण दहन्तावाटतुः शनैः ॥४७॥
कस्य पुण्यवतो गोत्रमेताभ्यां समलङ्कृतम्। सुजाता जननी सैका लोके यैतावजीजनत् ॥४८॥
धन्येयं वनितैताभ्यां समं या चरति क्षितिम्। ईदृशं यदि देवानां रूपं देवास्ततः स्फुटम् ॥४९॥
कुतः समागतावेतौ व्रजतो वा क्व सुन्दरौ। वाञ्छतः किमिमौ कर्तुं सृष्टिरीदृगियं कथम् ॥५०॥
सख्योऽनेन पथा दृष्टौ पुण्डरीकनिरीक्षणौ। व्रजन्तौ सहितौ नार्या क्वचिच्चन्द्रनिभाननौ ॥५१॥
यदिमौ शोभिनौ मुग्धे मनुष्यावथवा सुरौ। तत्किमर्थं त्वया शोको धार्यते गतलज्जया ॥५२॥
अयि मूढे न पुण्येन नितान्तं भूरिणा विना। लभ्यते सुचिरं द्रष्टुमेवंविधनराकृतिः ॥५३॥
निवर्तस्व भज स्वास्थ्यं स्रस्तं वसनमुद्धर। मा नैषीर्लोचने खेदमतिमात्रप्रसारिते ॥५४॥
नेत्रमानसचौराभ्यां दृष्टाभ्यामपि बालिके। निष्ठुराभ्यां किमेताभ्यां कान्ताभ्यामपि धृतिं भज ॥५५॥
इत्याद्यालापसंसक्तं कुर्वाणावबलाजनम्। रेमाते शुद्धचित्तौ तौ स्वेच्छाविहृतिकारिणौ ॥५६॥
नानाजनपदाकीर्णां पर्यट्य धरिणीमिमौ। क्षेमाञ्जलिसमाख्यानं सम्प्राप्तौ परमं पुरम् ॥५७॥
उद्याने निकटे तस्य [1]जलदोत्करसन्निभे। अवस्थितौ सुखेनैते यथा सौमनसे सुराः ॥५८॥

तदनन्तर जब सब लोग सो गये तब किसीके बिना जाने ही राम लक्ष्मण और सीताके साथ नगरसे निकल कर आगेके लिए चल पड़े ॥४३॥ जब प्रभात हुआ तब नगरको उनसे रहित देख समस्त जन परम शोकको प्राप्त हुए तथा बड़े कष्टसे शरीरको धारण कर सके॥४४॥ वनमाला भी घरको लक्ष्मणसे रहित देख बहुत शोकको प्राप्त हुई तथा लक्ष्मणके द्वारा की हुई शपथोंका आश्रय ले जीवित रही ॥४५॥ तदनन्तर महान् धैर्यके धारक राम लक्ष्मण पृथ्वी पर विहार करते हुए परम आनन्दको प्राप्त हुए। उन्हें देख लोगोंको आश्चर्य उत्पन्न होता था ॥४६॥ वे तरुण स्त्रीरूपी उज्ज्वल लताओंके मन और नेत्ररूपी पल्लवोंको कामरूपी तुषारसे जलाते हुए धीरे-धीरे विहार करते थे ॥४७॥ 'हे सखि! इन दोनोंने किस पुण्यात्माका कुल अलकृत किया है? वह कौन-सी भाग्यशालिनी माता है जिसने इन दोनोको जन्म दिया है? ॥४८॥ यह स्त्री धन्य है जो इनके साथ पृथ्वी पर विहार कर रही है। यदि ऐसा रूप देवोंका होता है तो निश्चित ही ये देव हैं ॥४९॥ ये सुन्दर पुरुष कहाँसे आये है? कहाँ जा रहे है? और क्या करना चाहते हैं इनकी यह ऐसी रचना कैसे हो गई? ॥५०॥ जिनके नेत्र कमलके समान तथा मुख चन्द्रमाके तुल्य है ऐसे दो पुरुष एक स्त्रीके साथ इस मार्गसे जा रहे थे सो हे सखियो! तुमने देखे ॥५१॥ हे मुग्धे! ये अतिशय सुशोभित व्यक्ति मनुष्य हो अथवा देव, तू निर्लज्ज होकर शोक किस लिए धारण कर रही है? ॥५२॥ अयि मूर्खे! ऐसे मनुष्योंका रूप बहुत भारी पुण्यके बिना चिरकाल तक देखनेको प्राप्त नहीं होता ॥५३॥ इसलिए लौट जा, स्वस्थ हो, नीचे खिसके हुए वस्त्रको सँभाल और अत्यधिक पसारे हुए नेत्रोंको खेद मत प्राप्त करा ॥५४॥ अरी बाले! नेत्र और मनको चुरानेवाले इन कठोर पुरुषोंके देखनेसे क्या प्रयोजन है? धीरज धर ॥५५॥ इस प्रकार स्त्रीजनोंको वार्तालाप करनेमें तत्पर करते हुए शुद्ध-चित्तके धारक वे दोनों स्वेच्छासे विहार कर रहे थे ॥५६॥ इस प्रकार नाना देशोंसे व्याप्त पृथिवी में विहार करते हुए वे क्षेमाञ्जलि नामके परम सुन्दर नगरमे पहुँचे ॥५७॥ उस नगरके निकट ही वे मेघसमूहके समान सुन्दर एक उद्यानमें सुखपूर्वक इस प्रकार ठहर गये जिस प्रकार कि

१ मेघसमूहसदृशे।

अन्न वरगुण भुक्त्वा लक्ष्मणेनोपसाधितम् । माध्वीक सीतया सार्धमसेवत हलायुधः ॥५९॥
प्रासाद[1]गिरिमालाभिस्ततो हृतनिरीक्षण । लक्ष्मण पद्मतोऽनुज्ञा प्राप्य प्रश्रययाचिताम् ॥६०॥
दधान प्रवर माल्य पीताम्बरधर' शुभ । स्वैर क्षेमाञ्जलिं द्रष्टु प्रतस्थे चारुविभ्रम ॥६१॥
नानालतोपगूढानि काननानि वराण्यसौ । सरितः स्वच्छतोयाश्च शुभ्राभ्रसमसैकता. ॥६२॥
विचित्रधातुरङ्गाश्च परिक्रीडनपर्वतान् । देवग्रामानि तुङ्गानि कूपान् वापीं. सभा प्रपा ॥६३॥
लोक च विविध पश्यन् दृश्यमान सविस्मयम् । विवेश नगर धीरो नानाव्यापारसङ्कुलम् ॥६४॥
शृणु शृण्विति तत्राय प्रधानविशिखागतम् । अशृणोत्पौरत शब्दमिति विश्रब्धभाषितम् ॥६५॥
पुरुषः कोऽन्वसौ लोके यो मुक्ता राजपाणिना । शक्तिं प्रसह्य शूरेन्द्रो जितपद्मा[2] गृहीष्यति ॥६६॥
स्वर्गे राज्य ददामीति राजा चेत्प्रतिपद्यते । तथापि नानया कृत्य कथया शक्तियातया ॥६७॥
जातश्चाभिमुख. शक्ते प्राणैश्च परिवर्जित. । किं करिष्यति कन्यास्य राज्यं वा त्रिदशालये ॥६८॥
समस्तेभ्यो हि वस्तुभ्य प्रिय जगति जीवितम् । तदर्थमितरत् सर्वमिति को नावगच्छति ॥६९॥
श्रुत्वैव कौतुकी कश्चिदथ पप्रच्छ मानवम् । भद्र ! का जितपद्मेय यदर्थं भाषते जन' ॥७०॥
सोऽवोचन्मृत्युकन्यासावतिपण्डितमानिनी । कि न ते विदिता सर्वलोकविख्यातकीर्तिका ॥७१॥
एतन्नगरनाथस्य राज्ञ शत्रुन्दमश्रुते । कनकाभासमुत्पन्ना दुहिता गुणशालिनी ॥७२॥
यतोऽनया जित पद्म कान्त्या वदनजातया । पद्मा च सर्वगात्रेण जितपद्मोदिता तत ॥७३॥

सौमनस वनमे देव ठहर जाते है ॥५८॥ वहाँ लक्ष्मणके द्वारा तैयार किया उत्तम भोजन ग्रहण कर रामने सीताके साथ दाखोंका मधुर पेय दिया ॥५९॥

तदनन्तर बड़े-बड़े महल रूपी पर्वतोकी पक्तियोसे जिनके नेत्र हरे गये थे ऐसे लक्ष्मण विनय पूर्वक रामसे आज्ञा प्राप्तकर इच्छानुसार क्षेमाञ्जलि नगर देखनेके लिए चले । उस समय वे उत्तम मालाएँ और पीतवस्त्र धारण किये हुए थे तथा सुन्दर विलाससे सहित थे ॥६०–६१॥ नाना लताओसे आलिङ्गित उत्तमोत्तम वनो, स्वच्छ जलसे भरीं तथा शुक्लमेघोंके समान उज्ज्वल तटोसे शोभित नदियों, नाना प्रकारकी धातुओसे रङ्ग-बिरङ्गे क्रीड़ा-पर्वतो, ऊँचे-ऊँचे जिन-मन्दिर, कुओं, वापिकाओं, सभाओं, पानीयशालाओं और अनेक प्रकारके मनुष्योको देखते हुए उन्होंने नाना प्रकारके व्यापार-कार्योंसे युक्त नगरीमे बड़ी धीरतासे प्रवेश किया । लोग उन्हें बड़े आश्चर्यसे देख रहे थे ॥६२–६४॥ जब ये नगरके प्रधान मार्गमे पहुँचे तब उन्होंने किसी नगरवासीसे निश्चिन्ततापूर्वक कहा हुआ यह शब्द सुना ॥६५॥ वह किसी से कह रहा था कि अरे सुनो-सुनो, संसारमे ऐसा कौन शूरवीर पुरुष है जो राजाके हाथसे छोड़ी हुई शक्तिको सहकर 'जितपद्मा' कन्याको ग्रहण करेगा ? ॥६६॥ यदि राजा यह भी कहे कि मै स्वर्गका राज्य देता हूँ तो भी शक्तिसे सम्बन्ध रखनेवाली इस कथासे क्या प्रयोजन है ? ॥६७॥ यदि कोई शक्ति झेलनेके लिए सन्मुख हुआ और प्राणोसे रहित हो गया तो यह कन्या और स्वर्ग का राज्य उसका क्या कर लेगा ? ॥६८॥ 'संसारमे समस्त वस्तुओसे जीवन ही प्यारा है और उसीके लिए अन्य सब प्रयत्न है यह कौन नहीं जानता है ? ॥६९॥

अथानन्तर इस प्रकारके शब्द सुनकर लक्ष्मणने कौतुक वश किसी मनुष्यसे पूछा कि हे भद्र ! यह जितपद्मा कौन है ! जिसके लिए लोग इस प्रकार वार्ता कर रहे है ॥७०॥ इसके उत्तरमें उस मनुष्यने कहा कि जिसकी कीर्ति समस्त संसारमे व्याप्त है तथा जो अपने आपको अति पण्डित मानती है ऐसी इस कालकन्याको क्या तुम नहीं जानते ? ॥७१॥ यह इस नगरके राजा शत्रुदमनकी कनकाभा रानीसे उत्पन्न गुणवती पुत्री है ॥७२॥ चूँकि इसने मुखकी कान्तिसे

---

१. प्रसाद ख० । २. एतन्नामधेया कन्या ।

नवयौवनसम्पन्ना कलालङ्कारधारिणी । पुसोऽपि त्रिदशान् द्वेष्टि मनुष्येषु कथात्र का ॥७४॥
उच्चारयति नो शब्दमपि पुल्लिङ्गवर्तिनम् । व्यवहार समस्तोऽस्याः पुरुषार्थविवर्जित' ॥७५॥
अदः पश्यसि कैलाससदृश भवन वरम् । अत्र तिष्ठत्यसौ कन्या शतसेवनलालिता ॥७६॥
शक्ति य पाणिना मुक्तां पित्रास्या' सहते नर. । वृणुते तमिय दग्ध-समीहा कृच्छ्रशालिनी ॥७७॥
लक्ष्मीधर समाकर्ण्य सकोपस्मयविस्मय । दध्यौ सा कीदृशी नाम कन्या यैव समीहते ॥७८॥
दुष्टचेष्टामिमा तावत्कन्या पश्यामि गर्विताम् । अहो पुनरभिप्रायः प्रौढोऽयमनया कृत ॥७९॥
ध्यायन्निति महोचेती[1] राजमार्गेण चारुणा । विमानाभान् महाशब्दान् प्रासादाविधुपाण्डुरान् ॥८०॥
दन्तिनो जलदाकारांस्तुरङ्गांश्चलचामरान् । वलभीर्नृत्यशालाश्च पश्यन् मन्थरचक्षुषा ॥८१॥
नानानिर्व्यूहसम्पन्न विचित्रध्वजशोभितम् । शुभ्राभ्रराशिसङ्काश प्राप शत्रुन्दमालयम् ॥८२॥
भास्वद्भक्तिशताकीर्णं तुङ्गप्राकारयोजितम् । द्वार तस्य ढुढौकेऽसौ शक्रचापाभतोरणम् ॥८३॥
शस्त्रिवृन्दावृते तस्मिन्नानोपायनसङ्कुले । निर्गच्छद्भिर्विशद्भिश्च सामन्तैरतिसङ्कटे ॥८४॥
द्वा स्थेन प्रविशन्नेष बभाषे सौम्यया गिरा । कस्त्वमज्ञापितो भद्र विशसि क्षितिपालयम् ॥८५॥
सोऽवोचद्द्रष्टुमिच्छामि राजान गच्छ वेदय । स्वपदेऽन्यमसौ कृत्वा गत्वा राज्ञे न्यवेदयत् ॥८६॥
दिदृक्षुस्त्वा महाराज पुमानिन्दीवरप्रभ । राजीवलोचन. श्रीमान् सौम्यो द्वारेऽवतिष्ठते ॥८७॥

कमलको अथवा सर्व शरीरसे लक्ष्मीको जीत लिया है इसलिए यह जितपद्मा कहलाती है ॥७३॥ नवयौवनसे सम्पन्न तथा कलारूपी अलंकारोको धारण करनेवाली यह कन्या पुवेदधारी देवोंसे भी द्वेष करती है फिर मनुष्योकी तो बात ही क्या है ? ॥७४॥ जो शब्द व्याकरणकी दृष्टिसे पुंलिङ्ग होता है यह उसका भी उच्चारण नही करती है । इसका जितना भी व्यवहार है वह सब पुरुषोके प्रयोजनसे रहित है ॥७५॥ सामने जो कैलास पर्वतके समान बडा भवन देख रहे हो उसीमे यह सैकड़ो प्रकारकी सेवाओसे लालित होती हुई रहती है ॥७६॥ जो मनुष्य इसके पिताके हाथसे छोड़ी हुई शक्तिको सहन करेगा उसे ही यह बरेगी ऐसी कठिन प्रतिज्ञा इसने ले रक्खी है ॥७७॥

यह सुनकर लक्ष्मण क्रोध, गर्व और आश्चर्यसे युक्त हो विचार करने लगे कि वह कन्या कैसी होगी जो इस प्रकारकी चेष्टा करती है ॥७८॥ दुष्ट चेष्टासे युक्त तथा गर्वसे भरी इस कन्याको देखूँ तो सही । अहो ! इसने यह बड़ा कठोर अभिप्राय कर रक्खा है ॥७९॥ इस प्रकार विचार करते हुए लक्ष्मण महावृषभकी नाई सुन्दर चालसे चलकर मनोहर राजमार्गमे आगे बढ़े । वहाँ वे विमानके समान आभावाले तथा चन्द्रमाके समान धवल उत्तमोत्तम भवनों, मेघोंके समान हाथियों, चञ्चल चमरोसे सुशोभित घोड़ो, छपरियो और नृत्यशालाओको धीमी दृष्टिसे देखते जाते थे ॥८०–८१॥ तदनन्तर जो नाना प्राकारके निर्व्यूहोसे युक्त था, रङ्ग विरङ्गी ध्वजाओसे सुशोभित था, तथा जो सफेद मेघावलीके समान था ऐसे राजा शत्रुंदमके महलपर पहुँचे ॥८२॥ महलका द्वार सैकड़ो देदीप्यमान बेलबूटोसे सहित था, ऊँचे प्रकारसे युक्त था, और इन्द्रधनुषके समान रङ्ग-विरङ्गे तोरणोसे सुशोभित था ॥८३॥ तदनन्तर जो शस्त्रधारी पहरेदारोंके समूहसे आवृत था, नाना प्रकारके उपहारोसे युक्त था और जहाँ बाहर निकलते तथा भीतर प्रवेश करते हुए सामन्तोंकी बड़ी भीड़ लग रही थी ऐसे द्वारमें लक्ष्मण प्रवेश करने लगे तो द्वारपालने सौम्यवाणीसे कहा कि हे भद्र ! तू कौन है जो बिना आज्ञा ही राजमहलमें प्रवेश कर रहा है ॥८४–८५॥ तब लक्ष्मणने कहा कि मै राजाके दर्शन करना चाहता हूँ सो राजाको खबर दे दो । यह सुन अपने स्थान पर दूसरेको नियुक्तकर द्वारपालने भीतर जाकर राजासे निवेदन किया कि ॥८६॥ हे महाराज ! जो आपके दर्शन करना चाहता है,

---

१. मोहोच्चेण न० । महोच्चेति म० । 'महावृषगतिः' इति 'ज' पुस्तके टिप्पणी ।

अमात्यवदनं वीक्ष्य राजावोचद्विशत्विति । ततः सुतः सुमित्रायाः प्रतीहारोदितोऽविशत् ॥८८॥
तं दृष्ट्वा सुन्दराकारं सुगम्भीरापि सा सभा । समुद्रमूर्तिवत्क्षोभं गता शीतांशुदर्शने ॥८९॥
प्रणामरहितं दृष्ट्वा विकटांसं सुभासुरम् । किञ्चिद्विकृतचेतस्कस्तमपृच्छदरिन्दमः ॥९०॥
कुतः समागतः कस्त्वं किमर्थं क्व कृतश्रमः । ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत् प्रावृषेण्यघनध्वनिः ॥९१॥
वाह्योऽहं भरतस्यापि महीहिण्डनपण्डितः । विद्वान् सर्वत्र ते भङ्क्तु दुहितुर्मानमागतः ॥९२॥
अभग्नमानश्रृङ्गेयं दुष्टकन्यागवी त्वया । पोषिता सर्वलोकस्य वर्तते दुःखदायिनी ॥९३॥
सोऽवोचद् यो मया मुक्तां शक्तः शक्तिं प्रतीच्छितुम् । कोऽसौ नु[1] जितपद्मायाः मानस्य ध्वंसको भवेत् ॥९४॥
उवाच लक्ष्मणः शक्त्या ग्रहणं मे किमेकया । शक्तीः पञ्च विमुञ्च त्वं मयि शक्त्या समस्तया ॥९५॥
विवादो गर्विणोरेवं प्रवृत्तो यावदेतयोः । गवाक्षा निबिडास्तावत्पिहिता वनिताननैः ॥९६॥
परित्यक्तनरद्वेषा दृष्ट्वा लक्ष्मणपुङ्गवम् । निर्व्यूहस्था जिताम्भोजा सञ्ज्ञादानादवारयत् ॥९७॥
दत्तबद्धाञ्जलिं भीरुं सौमित्रिरिति सञ्ज्ञया । चकार जातबोधां तां मा भैषीरिति सम्मदी ॥९८॥
जगाद च किमद्यापि कातर त्वं प्रतीक्षसे । विमुञ्चारिन्दमाभिख्य[2] शक्तिं[3] शक्तिं निवेदय ॥९९॥
इत्युक्तः कुपितो राजा बद्ध्वा परिकरं दृढम् । ज्वलत्पावकसङ्काशां शक्तिमेकामुपाददौ ॥१००॥
प्रतीच्छेच्छसि[4] मर्तुं चेदित्युक्त्वा भृकुटीं दधत् । वैशाखं स्थानकं कृत्वा तां मुमोच विधानवित् ॥१०१॥

जिसकी प्रभा नील कमलके समान है, जिसके नेत्र कमलोंके समान सुशोभित है तथा जो अत्यन्त सौम्य है ऐसा एक शोभासम्पन्न पुरुष द्वार पर खड़ा है ॥८७॥ मन्त्रीके मुखकी ओर देख राजाने कहा कि 'प्रवेश करे'। तदनन्तर द्वारपालके कहने पर लक्ष्मणने भीतर प्रवेश किया ॥८८॥ यद्यपि वह सभा गम्भीर थी तो भी जिस प्रकार चन्द्रमाको देखकर समुद्र क्षोभको प्राप्त होता है उसी प्रकार वह सभा भी सुन्दर आकारके धारक लक्ष्मणको देखकर क्षोभको प्राप्त हो गई ॥८९॥ प्रणामरहित, विशाल कन्धोंके धारक तथा अतिशय देदीप्यमान लक्ष्मणको देखकर जिसका हृदय कुछ-कुछ विकृत हो रहा था ऐसे राजा शत्रुदमने पूछा कि तू कहाँसे आया है ? कौन है ? और किस लिए आया है ? इसके उत्तरमें वर्षा ऋतुके मेघके समान गम्भीर ध्वनिको धारण करनेवाले लक्ष्मणने कहा ॥९०-९१॥ कि मै राजा भरतका सेवक हूँ, पृथ्वी पर घूमनेमे निपुण हूँ, सब विषयोंका पण्डित हूँ और तुम्हारी पुत्रीका मान भङ्ग करनेके लिए आया हूँ ॥९२॥ जिसके मानरूपी सीग अभग्न है ऐसी जो दुष्ट कन्यारूपी मरकनी गाय तुमने पाल रक्खी है वह सब लोगोंको दुःख देनेवाली है ॥९३॥ राजा शत्रुंदमने कहा कि जो मेरे द्वारा छोड़ी हुई शक्तिको सहन करनेमे समर्थ है ऐसा वह कौन पुरुष है जो जितपद्माका मान खण्डित करनेवाला हो ॥९४॥ लक्ष्मणने कहा कि मै एक शक्तिको क्या ग्रहण करूँ ? तू पूरी सामर्थ्यके साथ मुझपर पाँच शक्तियाँ छोड़॥९५॥यहाँ जब तक दोनो अहंकारियोंके बीच इस प्रकार का विवाद चल रहा था वहाँ तब तक राजमहलके सघन झरोखे स्त्रियोके मुखोंसे आच्छादित हो गये ॥९६॥ जितपद्मा भी लक्ष्मणको देख मोहित हो गई और पुरुषोंके साथ द्वेषको छोड़कर छपरी पर आ बैठी तथा इशारा देकर लक्ष्मणको मना करने लगी ॥९७॥ तब हर्षसे भरे लक्ष्मणने भयभीत तथा हाथ जोड़ कर बैठी हुई जितपद्माको इशारा देकर जताया कि भय मत करो ॥९८॥ और राजासे कहा कि अरे कातर ! अब भी क्या प्रतीक्षा कर रहा है ? शत्रुंदम नाम रखे फिरता है । शक्ति छोड़ और पराक्रम दिखा ॥९९॥ इस प्रकार कहने पर राजाने कुपित हो अच्छी तरह कमर कसी और जलती हुई अग्निके समान एक शक्ति उठाई ॥१००॥ तदनन्तर 'यदि मरना ही चाहता है तो ले झेल' यह कहकर भौंहको धारण करनेवाले विधि-विधानके

---

१. न म०, ज० । २. शक्तिनामकशस्त्रम् । ३. पराक्रमम् । ४. प्रतीच्छेच्छसि म० ।

[1]अयत्नेनेव सा तेन धृता दक्षिणपाणिना । वर्तिकाग्रहणे को वा बहुमानो गरुत्मत: ॥१०२॥
द्वितीयेतरहस्तेन कक्षाभ्यां द्वे सुविभ्रमः । शुशुभे सुभृशं ताभिश्चतुर्दन्त इव द्विपः ॥१०३॥
सक्रुद्धभोगिभोगा[2]भा सम्प्राप्तामथ पञ्चमीम् । दन्ताग्राभ्यां दधौ शक्तिं पेशीमिव मृगाधिपः ॥१०४॥
ततो देवगणा स्वस्था ववृषु पुष्पसंहतिम् । ननृतुस्ताडयाश्चक्रुर्दुन्दुभीश्च कृतस्वना ॥१०५॥
[3]प्रतीच्छारिन्दमेदानीं शक्तिं त्वमिति लक्ष्मणे । कृतशब्दे परं प्राप साध्वसं सकलो जनः ॥१०६॥
तमक्षततनुं दृष्ट्वा लक्ष्मीनिलयवक्षसम् । विस्मितोऽरिन्दमो जातस्त्रपावनमिताननः ॥१०७॥
जितपद्मा ततः प्राप स्मितच्छायानतानना । लक्ष्मीधरं समाकृष्टा रूपेणाचरितेन च ॥१०८॥
धृतशक्तेः समीपेऽस्य सा तन्वी शुशुभेतराम् । कुलिशायुधपार्श्वस्था शचीव[4] विनतानना ॥१०९॥
नवेन सगमेनास्या हृदयं तस्य कम्पितम् । यन्नासीत् कम्पितं जातु सङ्ग्रामेषु महत्स्वपि ॥११०॥
पुरस्तात्तनेरशानां कन्यया लक्ष्मणो वृतः । विभिन्नापत्रपापाली तद्गरन्यस्तनेत्रया ॥१११॥
सद्यो विनयनम्राङ्गो राजानं लक्ष्मणोऽब्रवीत् । मामकार्हसि मे क्षन्तुं शैशवाद्दुर्विचेष्टितम् ॥११२॥
बालानां प्रतिकूलेन कर्मणा वचसापि वा । भवद्विधा सुगम्भीरा नैव यान्ति विकारिताम् ॥११३॥
ततः शत्रुदमोऽप्येनं सप्रमोदःससंभ्रमः । स्तबेरमकराभाभ्यां कराभ्यां परिषस्वजे ॥११४॥
उवाच च परिक्लिन्नगण्डांश्चण्डान् गजान् क्षणात् । योऽजैषं भीमयुद्धेषु भद्र सोऽहं त्वया जितः ॥११५॥

ज्ञाता राजाने आलीढ आसनसे खड़ा होकर वह गदा छोड़ दी॥१०१॥ लक्ष्मणने बिना किसी यत्नके ही दाहिने हाथसे वह शक्ति पकड़ ली सो ठीक ही है क्योंकि बटेरके पकड़नेमें गरुडका कौन-सा बड़ा मान होता है ? ॥१०२॥ दूसरी शक्ति दूसरे हाथसे तथा तीसरी चौथी शक्ति दोनों बगलोंमें धारण कर पुलकते हुए लक्ष्मण उनसे चार दाँतोंको धारण करनेवाले ऐरावत हाथीके समान अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे॥१०३॥ अथानन्तर अत्यन्त कुपित साँपकी फणकी नाईं जो पाँचवीं शक्ति आई उसे लक्ष्मणने दाँतोंके अग्रभागसे उस प्रकार पकड़ लिया जिस प्रकार कि मृगराज मांसकी डलीको पकड़ रखता है ॥१०४॥ तदनन्तर आकाशमें खड़े देवोंके समूह पुष्प बरसाने लगे, नृत्य करने लगे तथा हर्षसे शब्द करते हुए दुन्दुभि बाजे बजाने लगे ॥१०५॥

अथानन्तर 'शत्रुदम ! अब तू मेरी शक्ति झेल' इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर सबलोग अत्यन्त भयको प्राप्त हुए ॥१०६॥ राजा शत्रुन्दम लक्ष्मणको अक्षत शरीर देख विस्मयमें पड़ गया और लज्जासे उसका मुख नीचा हो गया ॥१०७॥ तदनन्तर मन्द मुसकानकी छायासे जिसका मुख नीचेकी ओर हो रहा था ऐसी जितपद्मा रूप तथा आचरणसे खिंचकर लक्ष्मणके पास आई ॥१०८॥ शक्तियोंको धारण करनेवाले लक्ष्मणके पास वह कृशाङ्गी, इस तरह अत्यन्त सुशोभित हो रही थी जिस तरह कि वज्रके धारक इन्द्रके पास खड़ी नतमुखी इन्द्राणी सुशोभित होती है ॥१०९॥ लक्ष्मणका जो हृदय बड़े-बड़े संग्रामोंमें भी कभी कम्पित नहीं हुआ था वह जितपद्माके नूतन समागमसे कम्पित हो गया ॥११०॥ तदनन्तर लज्जाके भारसे जिसके नेत्र नीचे हो रहे थे ऐसी जितपद्माने पिता तथा अन्य अनेक राजाओंके सामने लज्जा छोड़कर लक्ष्मणका वरण किया ॥१११॥ तत्काल ही विनयसे जिसका शरीर नम्रीभूत हो रहा था ऐसे लक्ष्मणने राजासे कहा कि हे माम ! लड़कपनके कारण मैंने जो खोटी चेष्टा की है उसे आप क्षमा करनेके योग्य हैं ॥११२॥ बालकोंके विपरीत कार्य अथवा विरुद्ध वचनोंसे आप जैसे महागम्भीर पुरुष विकार भावको प्राप्त नहीं होते ॥११३॥

तदनन्तर हर्ष और संभ्रमसे सहित राजा शत्रुंदमने भी हाथीकी सूँडके समान लम्बी तथा सुपुष्ट भुजाओंसे लक्ष्मणका आलिङ्गन किया ॥११४॥ और कहा कि हे भद्र ! जिस मैंने

१ अयनेनैव म० । २. भोगाना म० । ३. प्रतीच्छा म० । ४ शची विनमितानना म० ।

स्त्रियो मङ्गलहस्तास्तं सर्वालङ्कारभूषिता । ढुढौकिरेऽतिहारिण्य समदस्फीतलोचना· ॥१३१॥
रथादुत्तीर्य पद्मास्य· सहितो जितपद्मया । पतिं पपात [1]पद्माया· पद्मस्य चरणौ द्रुतम् ॥१३२॥
पद्मस्य प्रणतिं कृत्वा सीताया अपि सत्रप· । निविश्य नातिनिकटे पद्मस्य विनयी स्थित: ॥१३३॥
नृपा शत्रुन्दमाद्याश्च क्रमात्कृत्वा नमस्कृतिम् । पद्मस्य सहसीतस्य यथास्थानमवस्थिता· ॥१३४॥
तत्र सङ्कथया [2]स्थित्वा कुशलप्रश्नपूर्वया । कृते च पुनरानन्दनर्तने पार्थिवैरपि ॥१३५॥
ऋद्धया परमया युक्तः ससीतो लक्ष्मणो बल· । प्रविष्ट· स्यन्दनारूढो नगरं प्रमदान्वित ॥१३६॥
तत्र लावण्यकिञ्जल्कयोषित्कुवलयाकुले । महाप्रासादसरसि स्वनद्भूषणपक्षिणि ॥१३७॥
नरेभकलभौ सत्यव्रतसिंहध्वनेरलम् । त्रासात् सङ्कुचितस्वान्तौ कुमारश्रीसमन्वितौ ॥१३८॥
शत्रुन्दमकृतच्छन्दौ किञ्चित्कालं महासुखौ । उषितौ सर्वलोकस्य चित्ताह्लादनदायिनौ ॥१३९॥
जितपद्मा ततो भीतां विरहाद्दतिदु खिताम् । परिसान्त्व्य प्रियैर्वाक्यैर्वनमालामिवादरात् ॥१४०॥
पद्म सीतानुगो भूत्वा निशीथे स्वैरनिर्गत· । यातो लक्ष्मीधरो दत्त्वा पौराणामधृतिं पराम् ॥१४१॥

शार्दूलविक्रीडितम्

ये जन्मान्तरसञ्चितातिसुकृता [3]सर्वासुभाजां प्रिया ।
य य देशमुपव्रजन्ति विविध कृत्य भजन्त· परम् ॥
तस्मिन्सर्वहर्षकसौख्यचतुरस्तेषा विना चिन्तया ।
मृष्टान्नादिविधिर्भवत्यनुपमो यो विष्टपे दुर्लभ· ॥१४२॥

जोरदार झनकार फैल रही थी ऐसी स्त्रियोके समूहको नृत्य करता देख राम निश्चिन्त हो सीताके साथ पुन बैठ गये ॥१३०॥

अथानन्तर जिनके हाथोमे मङ्गल द्रव्य थे, जो सब प्रकारके अलङ्कारोसे अलकृत थी अतिशय मनोहर थी और जिनके नेत्र मदसे फूल रहे थे ऐसी स्त्रियाँ रामके पास आई ॥१३१॥ कमलके समान मुखको धारण करनेवाले लक्ष्मण जितपद्माके साथ रथसे उतरकर शीघ्र ही रामके चरणोमे जा पड़े ॥१३२॥ तदनन्तर राम और सीताको प्रणामकर लजाते हुए लक्ष्मण रामसे कुछ दूर हटकर विनयपूर्वक बैठ गये ॥१३३॥ शत्रुन्दम आदि राजा भी क्रम-क्रमसे राम तथा सीताको नमस्कार कर यथा स्थान बैठ गये ॥१३४॥ कुशल समाचार पूछकर सब वार्तालाप करते हुए सुखसे बैठे तथा राजाओने आनन्द-नृत्य किया ॥१३५॥ तदनन्तर परम सम्पदा से युक्त तथा हर्षसे भरे राम लक्ष्मण और सीताने रथपर सवार हो नगरमे प्रवेश किया ॥१३६॥ वहाँ राजमहलमे पहुँचे सो वह राजमहल एक सरोवरके समान जान पड़ता था क्योकि सौन्दर्य रूपी केशरसे युक्त स्त्रियां रूपी नील कमलोंसे वह व्याप्त था और शब्द करते हुए आभूषण रूपी पक्षियोसे युक्त था ॥१३७॥ सत्यव्रत रूपी सिहकी गर्जनाके भयसे जिनके चित्त अत्यन्त सङ्कुचित रहते थे, जो कुमार लक्ष्मीसे सहित थे, राजा शत्रुन्दम जिनकी इच्छानुसार सब सेवा करता था, जो महा सुखसे सहित थे तथा जो समस्त लोगोके चित्तको आनन्द देने वाले थे ऐसे नर श्रेष्ठ राम लक्ष्मण उस राजमहलमें कुछ समय तक सुखसे रहे ॥१३८-१३९॥

तदनन्तर राम अर्धरात्रिके समय सीताके साथ इच्छानुसार राजमहलसे बाहर निकल पड़े और लक्ष्मण भी वनमालाके समान विरहसे भयभीत अतिशय दु खी जितपद्माको प्रिय वचनो द्वारा आदर पूर्वक सान्त्वना दे रामके साथ चले । इन सबके जानेसे नगरवासियोका धैर्य जाता रहा ॥१४०-१४१॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्होंने जन्मान्तरमे बहुत

१. पद्मायाः पतिः = लक्ष्मणः । २. छित्वा म० । ३. निखिलप्राणिनाम् ।

भोगैर्नास्ति मम प्रयोजनमिमे गच्छन्तु नाशं खला
इत्येषा यदि सर्वदापि कुरुते निन्दामलं द्वेषकः ।
एतैः सर्वगुणापपत्तिपटुभिर्यातोऽपि शृङ्गं गिरे-
र्नित्यं [1]याति तथापि निर्जितरविर्दीप्त्या जनः सङ्गमम् ॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते जितपद्मोपाख्यानं नामाष्टत्रिंशत्तमं पर्व ॥३८॥



भारी पुण्यका सञ्चय किया है ऐसे सर्व प्राणियोंको प्रिय पुरुष, नाना प्रकारके उत्तम कार्य करते हुए जिस-जिस देशमें जाते हैं उसी-उसी देशमें उन्हें बिना किसी चिन्ताके समस्त इन्द्रियोंके सुख देनेमें निपुण मधुर आहार आदिकी सब ऐसी अनुपम विधि मिलती है कि लोकमें जो दूसरोंके लिए दुर्लभ रहती है ॥१४२॥ 'मुझे इन लोगोंसे प्रयोजन नहीं है। ये दुष्ट नाशको प्राप्त हों, इस प्रकार भोगोंसे अतिशय द्वेष रखनेवाला पुरुष यद्यपि सर्वदा इन भोगोंकी निन्दा करता है और इन्हें छोड़कर पर्वतके शिखरपर भी चला जाता है तो भी अपनी कान्तिसे सूर्यको जीतनेवाला पुण्यात्मा पुरुष समस्त गुणोंकी प्राप्ति करानेमें समर्थ इन भोगोंके साथ सदा समागमको प्राप्त होता है अर्थात् पुण्यात्मा मनुष्यको इच्छा न रहते हुए भी सब प्रकारकी सुख-सामग्री सर्वत्र मिलती है ॥१४३॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें जितपद्माका वर्णन करनेवाला अड़तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३८॥

१ यान्ति म० ।

एकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथ नानाद्रुमक्ष्मासु बहुपुष्पसुगन्धिषु । लतामण्डपयुक्तासु सेवितासु सुख मृगै ॥१॥
देवोपनीतनिश्शेषशरीरस्थितिसाधनौ । आयातां रममाणौ तो ससीतौ रामलक्ष्मणौ ॥२॥
क्वचिद्विद्रुमसङ्काश राम किसलय लघु । गृहीत्वा कुरुते कर्णे जानक्या साध्विति ब्रुवन् ॥३॥
सुतारौ [1]सङ्गता वल्ली क्वचिदारोप्य जानकीम् । स्वैर दोलयत पार्श्ववर्तिनौ रामलक्ष्मणौ ॥४॥
द्रुमखण्डे क्वचिद् स्थित्वा नितान्तघनपल्लवे । कथाभि सुविदग्धाभि कुरुतस्तद्विनोदनम् ॥५॥
इयमेतदय[2] वल्ली पलाश तरुरीक्ष्यताम् । हारिणी हारि हारीति सीतोचे राघव क्वचित् ॥६॥
क्वचिद् भ्रमरसङ्घातैर्मुखसौरभलोलुपै । कृच्छ्रादरक्षतामेतौ राजपुत्री कदर्थिताम् ॥७॥
शनैर्विहरमाणो तौ ससीतौ शुभविभ्रमौ । काननेषु विचित्रेषु [3]स्ववनेषु सुराविव ॥८॥
नानाजनोपभोग्येषु देशेषु निहितेक्षणौ । [4]धीरौ क्रमेण सम्प्राप्तौ पुर वंशस्थलद्युतिम् ॥९॥
सुदीर्घोऽपि तयो कालो गच्छतो सहसीतयो । पुण्यानुगतयोर्नासीदपि दु:खलवप्रद. ॥१०॥
अपश्यता च तस्यान्ते वंशजालातिसङ्कटम् । नग वंशधराभिख्य भित्त्वेव भुवमुद्गतम् ॥११॥
छायया तुङ्गश्रृङ्गाणा य' सन्ध्यामिव सन्ततम् । दधाति निर्झराणां च हसतीव च शीकरै ॥१२॥
निर्गच्छन्ती प्रजा दृष्ट्वा पुरादथ स एककाम् । राम' पप्रच्छ भो' कस्मात् त्रासोऽय सुमहानिति ॥१३॥

अथानन्तर जिनकी शरीर-स्थितिके समस्त साधन देवोपनीत थे, ऐसे सीता सहित राम-लक्ष्मण रमण करते हुए वनकी उन भूमियोमे आये जो नाना प्रकारके वृक्षोसे सहित थी, जिनमे नाना फूलोकी सुगन्धि फैल रही थी, जो लतामण्डपोसे सहित थीं तथा मृगगण जिनमे सुखसे निवास करते थे ॥१–२॥ कहीं राम, मूंगके समान कान्तिवाले पल्लवको तोड़कर तथा उसका कर्णाभरण बनाकर 'यह ठीक रहेगा' इस प्रकार कहते हुए सीताके कानमे पहिनाते थे, तो कही किसी वृक्ष पर लटकती लता पर सीताको बैठाकर बगलमे दोनो ओर खडे हो राम-लक्ष्मण उसे भूला भुलाते थे ॥३–४॥ कहीं सघन पत्तोवाले द्रुम-खण्डमे बैठकर मनोहर-मनोहर कथाओंसे उसका मनोविनोद करते थे ॥५॥ कहीं सीता रामसे कहती थी कि यह मनोहर लता देखो, कहीं कहती थी कि यह मनोहर पल्लव देखो और कहीं कहती थी कि यह मनोहर वृक्ष देखो ॥६॥ कहीं मुखकी सुगन्धिके लोभी भ्रमरोके समूह सीताको पीडित करते थे, सो ये दोनो भाई बड़ी कठिनाईसे उसकी रक्षा करते थे ॥७॥ जिस प्रकार देव स्वर्गके वनोमे विहार करते है उसी प्रकार शुभ चेष्टाओंके धारक दोनो भाई सीताको साथ लिये नाना प्रकारके वनोमे धीरे-धीरे विहार करते थे ॥८॥ नाना मनुष्योसे उपभोग्य देशोमे दृष्टि डालते हुए वे धीर-वीर क्रमसे वंशस्थद्युति नामक नगरमे पहुँचे ॥९॥ सीताके साथ भ्रमण करते हुए उन पुण्यानुगामी महा-पुरुषोको यद्यपि बहुत काल हो गया था तो भी उतना बड़ा काल उन्हें अंशमात्र भी दुःख देनेवाला नही हुआ था ॥१०॥

उस नगरके समीप ही उन्होने वंशधर नामका पर्वत देखा जो बाँसोंके समूहसे अत्यन्त व्याप्त था, पृथिवीको भेदकर ही मानो ऊपर उठा था, ऊँचे-ऊँचे शिखरोंकी कान्तिसे जो मानो सदा सन्ध्याको धारण कर रहा था और निर्झरनोंके छींटोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥११–१२॥ उन्होंने यह भी देखा कि प्रजाके लोग नगरसे निकल-निकल कर कहीं

१ सस्तुताम् ब० । २. इय हारिणी वल्ली, एतत् हारि पलाश, अय हारी तरुः । ३. स्ववनेषु म० । ४ धारौ म० ।

सोऽवोचदद्य दिवसस्तृतीयो वर्तते नर । नक्तमुत्तिष्ठतोऽमुष्मिन्नगे नादस्य[1] मस्तके ॥१४॥
ध्वनिरश्रुतपूर्वोऽयं प्रतिनादी भयावहः । कस्येति बहुविज्ञानैर्न वृद्धैरपि वेद्यते ॥१५॥
मक्षुभ्यतीव भूः सर्वा नन्दतीव दिशो दश । सरांसि सञ्चरन्तीव निर्मूल्यन्त इवाङ्घ्रिपाः ॥१६॥
रौरवारावरौद्रेण घनेन ध्वनिनामुना । श्रवणौ सर्वलोकस्य ताड्येतेऽयोघनैरिव ॥१७॥
निशागमे किमस्माकं वधार्थमयमुद्यतः । करोति क्रीडनं तावत् कोऽपि विष्टपकण्टकः ॥१८॥
भयेन स्वनतस्तस्मादद्य लोको निशागमे । पलायते प्रभाते तु पुनरेति यथायथम् ॥१९॥
साग्रं योजनमेतस्मादतीत्यान्योन्यभाषितम्[2] । शृणोत्ययं जनः किंचित् प्राप्नोति च सुखासिकाम् ॥२०॥
निशम्योक्तमिदं सीता बभाषे रामलक्ष्मणौ । वयमन्यत्र गच्छामो यत्र याति महाजनः ॥२१॥
कालं देशं च विज्ञाय नीतिशास्त्रविशारदैः । क्रियते पौरुषं तेन न जातु विपदाप्यते ॥२२॥
प्रहस्यावोचतामेतामुद्विग्नां जनकात्मजाम् । गच्छ त्वं यत्र लोकोऽयं व्रजत्यलं[3]घुसाध्वसे ॥२३॥
अन्विष्यन्ती प्रभाते नौ लोकेन सहितामुना । अमुष्मिन् गण्डशैलान्ते गतभीरागमिष्यति ॥२४॥
अस्मिन् महीधरे रम्ये ध्वनिरत्यन्तभीषणः । कस्यायमिति पश्यामो वयमद्येति निश्चयः ॥२५॥
प्रभीष्यते वराकोऽयं लोकः शिशुसमाकुलः । पशुभिः सहितः स्वन्तमस्य को नु करिष्यति ॥२६॥
वैदेही [4]सज्वरेवोचे सततं भवतोरिमम् । हठं मेकग्रहः शक्तः कः कुलीरग्रहोपमम् ॥२७॥

अन्यत्र जा रहे है । तब रामने किसी एक मनुष्यसे पूछा कि हे भद्र ! यह बहुत भारी भय किस कारणसे है ? ॥१३॥ इसके उत्तरमे उस मनुष्यने कहा कि इस पर्वतके शिखर पर रात्रिके समय शब्द उठते हुए आज तीसरा दिन है ॥१४॥ जो शब्द पर्वत पर होता है वह हमने पहले कभी नही सुना, उसकी प्रतिध्वनि सर्वत्र गूँज उठती है तथा वह अत्यन्त भयङ्कर है । किस व्यक्तिका शब्द है ? यह बहुविज्ञानी वृद्ध लोग भी नही जानते है ॥१५॥ इस शब्दसे मानो समस्त पृथिवी हिल उठती है, दशो दिशाएँ मानो शब्द करने लगती हैं, सरोवर मानो इधर-उधर फिरने लगते है और वृक्ष मानो उखडने लगते है ॥१६॥ रौद्रतामे नरकके शब्दकी तुलना करनेवाले इस भारी शब्दसे समस्त लोगोके कान ऐसे फटे पड़ते है मानो लोहेके घनोसे ही ताडित होते हो ॥१७॥ जान पड़ता है कि रात्रिके समय हम लोगोका वध करनेके लिए उद्यत हुआ यह कोई लोकका कण्टक क्रीडा करता फिरता है ॥१८॥ ये लोग उस शब्दके भयसे रात्रि प्रारम्भ होते ही भाग जाते है और प्रभात होने पर पुन वापिस आ जाते है ॥१९॥ यहाँसे कुछ अधिक एक योजन चलकर यह शब्द इतना हलका हो जाता हैं कि लोग परस्परका वार्तालाप सुन सकते है तथा कुछ आराम प्राप्त कर सकते है' ॥२०॥

यह सुनकर सीताने राम-लक्ष्मणसे कहा कि जहाँ ये सब लोग जा रहे हैं वहाँ हम लोग भी चले ॥२१॥ नीतिशास्त्रके ज्ञाता पुरुष देश कालको समझकर पुरुषार्थ करते है, इसलिए कभी आपत्ति नहीं आती ॥२२॥ राम-लक्ष्मणने घबडाई हुई सीतासे हँसकर कहा कि तुझे बहुत भय लग रहा है इसलिए जहाँ ये लोग जाते हैं वहाँ तू भी चली जा॥२३॥ प्रभात होनेपर इन लोगोके साथ हम दोनोको खोजती हुई निर्भय हो इस पर्वतके समीप आ जाना ॥२४॥ 'इस मनोहर पर्वत पर यह अत्यन्त भयङ्कर शब्द किसका होता है ? यह आज हम देखेंगे' ऐसा निश्चय किया है॥२५॥ ये दीन लोग बाल-बच्चोसे व्याकुल तथा पशुओसे सहित है, इसलिए ये तो भयभीत होंगे ही इनका भला कौन कर सकता है ? ॥२६॥ तब जैसे ज्वर चढ़ रहा हो ऐसी काँपती हुई आवाजमें सीताने कहा कि हमेशा आपलोगो की हठ केंकड़ेकी पकड़के समान विलक्षण ही है उसे

१ नादोऽस्य म०। २. भाषितः ज० । ३. अतिभययुक्ते । ४. सज्वरा इव ऊचे । सहरेवोचे म० ।

वदन्ती पुनरेव सा पद्मनाभस्य पृष्ठत । लक्ष्मीधरकुमारस्य जगामावस्थिता पुर ॥२८॥
आरोहन्ती गिरिं देवी प्रखिन्नक्रमपङ्कजा । रराज श्रृङ्गमब्दस्य चन्द्ररेखेव निर्मला ॥२९॥
चन्द्रकान्तेन्द्रनीलान्त स्थिता पुष्पमणेरसौ । शलाकेवाभवत्तस्य पर्वतस्य विभूषणम् ॥३०॥
भृगुपातपरित्रस्ता क्वचिदुत्क्षिप्य तामिमौ । नयतोऽन्यत्र विश्रब्धहस्तालम्बनकोविदौ ॥३१॥
विषमग्रावसङ्घात [1]निस्तीर्य त्रासवर्जितौ । विस्तीर्णनगमूर्धानं ससीतौ तावपापतु ॥३२॥
अथ सद्ध्यानमारूढौ प्रलम्बितमहाभुजौ । साधयन्तौ सुदुस्साध्यां प्रतिमा चतुराननाम् ॥३३॥
परेण तेजसा युक्तावब्धिधीरौ नगस्थिरौ । शरीरचेतनान्यत्ववेदिनौ मोहवर्जितौ ॥३४॥
जातरूपधरौ कान्तिसागरौ नवयौवनौ । सयतौ प्रवराकारौ ददृशुस्ते यथोदितौ ॥३५॥
दध्युश्च विस्मय प्राप्ता यथा मुक्त्वाशुभार्जनम् । निस्सारमीहित सर्वं ससारे दु खकारणम् ॥३६॥
मित्राणि द्रविण दारा. पुत्रा सर्वे [2] च बान्धवा· । सुखदु खमिद सर्वं धर्म एकः सुखावहः ॥३७॥
ढुढौकिरे च भक्त्याढ्या मूर्धविन्यस्तपाणय । दधाना परम तोष विनयानतविग्रहा ॥३८॥
यावद्ददृशुरत्युग्रैर्विस्फुरद्भिर्महास्वनै· । भिन्नाञ्जनसमच्छायैश्चलज्जिह्वै [3]पृदाकुभि ॥३९॥
समुद्यतालकैर्भीमैश्चलद्भिरनिश घनैः । नानावर्णैरतिस्थूलैर्वेष्टितौ वृश्चिकैश्च[4] तौ ॥४०॥

दूर करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२७॥ ऐसा कहती हुई वह रामके पीछे और लक्ष्मणके आगे खड़ी हो चलने लगी ॥२८॥ जिसके चरणकमल खेदखिन्न हो गये थे, ऐसी सीता पहाड़ पर चढती हुई इस प्रकार सुशोभित हो रही थी मानो मेघके शिखर पर चन्द्रमाकी निर्मल रेखा ही है ॥२९॥ राम और लक्ष्मणके बीचमे खड़ी सीता चन्द्रकान्तमणि और नीलमणिके मध्यमे स्थित पद्मरागमणिकी शलाकाके समान पर्वतका आभूषण हो रही थी ॥३०॥ जहाँ कहीं सीताको गोल चट्टानोसे नीचे गिरनेका भय होता था वहाँ वे दोनो, उसे ऊपर उठा कर ले जाते थे और जहाँ गिरनेका भय नही होता था वहाँ निश्चिन्ततापूर्वक हाथका सहारा देकर ले जाते थे ॥३१॥ इस प्रकार ऊँची-नीची चट्टानोंका समूह पारकर भयसे रहित राम लक्ष्मण सीताके साथ पर्वतके चौड़े शिखर पर जा पहुँचे ॥३२॥

अथानन्तर उन्होने ऊपर जाकर ऐसे दो मुनि देखे जो उत्तमध्यानमे आरूढ थे, जिनकी लम्बी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थी, जो अत्यन्त दुःसाध्य चतुर्मुखी प्रतिमाको सिद्ध कर रहे थे, परम तेजसे युक्त थे, समुद्रके समान गम्भीर थे, पर्वतके समान स्थिर थे, शरीर और आत्माकी भिन्नताको जाननेवाले थे, मोहसे रहित थे, दिगम्बर-मुद्राको धारण करनेवाले थे, कान्तिके सागर थे नूतन तारुण्यसे युक्त थे, उत्तम आकारके धारक थे और आगमोक्त आचरण करनेवाले थे ॥३३-३५॥ आश्चर्यको प्राप्त हुए वे तीनो अशुभ कर्मोके आश्रयका परित्याग कर इस प्रकार विचार करने लगे कि संसारमे प्राणियोकी समस्त चेष्टाएँ नि सार तथा दु खके कारण है ॥३६॥ मित्र, धन, स्त्री, पुत्र, और भाई-बन्धु आदि सभी सुख-दुःख रूप हैं, एक धर्म ही सुखका कारण है ॥३७॥ तदनन्तर जो भक्तिसे युक्त थे, जिन्होने हाथ जोड़कर मस्तक पर लगा रक्खे थे, जो परम सन्तोषको धारण कर रहे थे, और विनयसे जिनके शरीर नम्रीभूत हो रहे थे, ऐसे वे तीनों उक्त मुनिराजोके पास गये ॥३८॥ दर्शन करते ही उन्होने, जो अत्यन्त भयङ्कर थे, इधर-उधर चल रहे थे, विकट शब्द कर रहे थे, मसले हुए अञ्जनके समान कान्तिवाले थे, तथा जिनकी जीभें लपलपा रही थीं ऐसे साँपोसे और जिन्होने अपनी पूँछ ऊपर उठा रक्खी थी, जो अत्यन्त भयङ्कर थे, रात-दिन एक-दूसरे से सटकर चल रहे थे, नाना रङ्गके थे, एवं बहुत मोटे थे, ऐसे बिच्छुओंसे उन दोनो मुनियोको

---

१. विस्तीर्य म० । २. सर्वेऽपि क० । ३. पृदाकुभिः । ४. वेष्टितैर्वृश्चिकैश्च म० ।

तथाविधौ च तौ दृष्ट्वा रामोऽपि सहलक्ष्मण । सहसा त्रासमायातौ भेजे स्तम्भमिव क्षणम् ॥४१॥
वैदेही भयसम्पन्ना भर्तारं परिषस्वजे । मा भैषीरिति तामूचे भय त्यक्त्वा क्षणेन स. ॥४२॥
उपसृत्य तत स्वैरं ताभ्या पन्नगवृश्चिका । अत्यस्ता कार्मुकाग्रेण मुहु कृतविवर्तनाः ॥४३॥
अथोद्वर्त्य चिर पादौ तयोर्निर्झरवारिणा । गन्धेन सीतया लिप्तौ चारुणा पुरुभावया ॥४४॥
आसन्नाना च वल्लीना कुसुमैर्वनसौरभैः । लक्ष्मीधरार्पितै शुक्लै पूरितान्तरमर्चितौ ॥४५॥
ततस्ते करयुग्माब्जमुकुलभ्राजितालिका[1] । चक्रुर्योगीश्वरी भक्त्या वन्दना विधिकोविदा ॥४६॥
वीणा च सन्निधायाङ्के वधूमिव मनोहराम् । पद्मोऽवादयदत्युद्ध गायन् सुमधुराक्षरम्[2] ॥४७॥
अन्वगायदिम लक्ष्मीलतालिङ्गितपादप । वाक्कोकिलरव पुत्र कैकय्यास्तत्त्वमादरम् ॥४८॥
महायोगेश्वरा धीरा मनसा शिरसा गिरा । वन्द्यास्ते साधवो नित्य सुरैरपि सुचेष्टिता ॥४९॥
उपमानविनिर्मुक्त यैरव्याहतमुत्तमम् । प्राप्त त्रिभुवनख्यात सुभाग्यैरर्हदक्षरम् ॥५०॥
भिन्न यैर्ध्यानदण्डेन महामोहशिलातलम् । दीन विदन्ति ये विश्व धर्मानुष्ठानवर्जितम् ॥५१॥
गायतोरक्षराण्येव तयोर्गानविधिज्ञयो । तिरश्चामपि चेतासि परिप्रापानि मार्दवम् ॥५२॥
ततो विदितनिश्शेषचारुनर्तनलक्षणा । मनोज्ञाकल्पसम्पन्ना हारमाल्यादिभूषिता ॥५३॥
लीलया परया युक्ता दर्शिताभिनया स्फुटम् । चारुबाहुलताभारा हावभावादिकोविदा ॥५४॥

घिरा देखा ॥३९–४०॥ उक्त प्रकार के मुनियोको देख, राम भी लक्ष्मणके साथ सहसा भयको प्राप्त हुए तथा क्षण भरके लिए निश्चल रह गये ॥४१॥ सीता भयभीत हो पतिसे लिपट गई, तब रामने क्षण एकमे भय छोडकर सीतासे कहा कि डरो मत ॥४२॥ तदनन्तर राम-लक्ष्मणने धीरे-धीरे पास जाकर जो दूर हटानेपर भी बार-बार वही लौट कर आते थे ऐसे सॉप, बिच्छुओंको धनुषके अग्रभागसे दूर किया ॥४३॥

अथानन्तर भक्तिसे भरी सीताने निर्झरके जलसे देर तक उन मुनियोके पैर धोकर मनोहर गन्धसे लिप्त किये ॥४४॥ तथा जो वनको सुगन्धित कर रहे थे एव लक्ष्मणने जो तोड़ कर दिये थे, ऐसे निकटवर्ती लताओके फूलोसे उनकी खूब पूजा की ॥४५॥ तदनन्तर अञ्जलिरूपी कमलकी बोड़ियोसे जिनके ललाट शोभायमान थे तथा जो विधि विधानके जाननेमे निपुण थे ऐसे उन सबने भक्तिपूर्वक मुनिराजकी वन्दना की ॥४६॥ अत्यन्त उत्तम तथा मधुर अक्षरोमे गाते हुए रामने मनोहर स्त्रीके समान वीणाको गोदमे रखकर बजाया ॥४७॥ इनके साथ ही लक्ष्मणने भी बड़े आदरसे तत्त्वपूर्ण गान गाया। उस समय लक्ष्मण, लक्ष्मीरूपी लतासे आलिङ्गित वृक्षके समान जान पड़ते थे और उनका मधुर शब्द कोयलकी मीठी तानके समान मालूम होता था ॥४८॥ वे गा रहे थे कि जो महायोगके स्वामी है, धीर-वीर है तथा उत्तम चेष्टाओसे सहित है, उत्तम भाग्यके धारक जिन मुनियोंने उपमासे रहित, अखण्डित, तथा तीन लोकमे प्रसिद्ध 'अर्हत्' यह उत्तम अक्षर प्राप्त कर लिया है। जिन्होंने ध्यानरूपी दण्डके द्वारा महामोहरूपी शिलातलको तोड़ दिया है और जो धर्मानुष्ठान–धर्माचरणसे रहित विश्वको दीन समझते है ऐसे साधु देवोके द्वारा भी मनसे, शिरसे तथा वचनसे वन्दनीय हैं ॥४९–५१॥ गानकी विधिको जाननेवाले राम-लक्ष्मण जब इस प्रकारके अक्षर गा रहे थे तब तिर्यञ्चोंके भी चित्त कोमलताको प्राप्त हो गये थे ॥५२॥

तदनन्तर जो समस्त सुन्दर नृत्योके लक्षण जानती थी, मनोहर वेषभूषासे युक्त थी, हार माला आदिसे अलंकृत थी, परम लीलासे सहित थी, स्पष्टरूपसे अभिनय दिखला रही थी, जिसकी बाहुरूपी लताओंका भार अत्यन्त सुन्दर था, जो हाव-भाव आदिके दिखलानेमे निपुण

१. भ्राजितललाटाः । २. -माक्षरन् म० ।

लयान्तरवशोत्कम्पिमनोज्ञस्तनमण्डला । निश्शब्दचरणाम्भोजविन्यासा चलितोरुका ॥५५॥
गीतानुगमसम्पन्नसमस्ताङ्गविचेष्टिता । [1]मन्दरे श्रीरिवानृत्यज्जानकी भक्तिचोदिता ॥५६॥
उपसर्गादिव त्रस्ते यातेऽस्तं भास्करे ततः । सन्ध्यायां चानुमार्गेण यातायां चलतेजसि ॥५७॥
नक्षत्रमण्डलालोकं निघ्नन् नीलाभ्रसन्निभम् । व्याप्नुवानं दिशः सर्वा गहनं ध्वान्तमुद्गतम् ॥५८॥
जनस्याश्रावि कस्यापि दिक्षु संक्षोभनं परम् । साराविणं तथा चित्रं [3]भिन्दानमिव पुष्करम्[4] ॥५९॥
विद्युज्ज्वालामुखैर्लम्बैरम्बुदैर्व्याप्तमम्बरम् । क्वापि यात इवाशेषो[5] लोकस्त्राससमाकुलः ॥६०॥
अत्यन्तभयाकारा दंष्ट्रालीकुटिलाननाः । अट्टहासान् महारौद्रान् भूतानां सस्रजुर्गणाः ॥६१॥
क्रव्यादा विरसं रेसुः सानलं चाशिवा[6] शिवाः[7] । ससृजुर्ननृतुर्भीमं कलेवरशतानि च ॥६२॥
मूर्धोरोभुजजङ्घादीन्यङ्गानि ववृषुर्घनाः । दुर्गन्धिभिः समेतानि स्थूलशोणितबिन्दुभिः ॥६३॥
करवालीकरा क्रूरविग्रहा दोलितस्तनी । लम्बोष्ठी डाकिनी नग्ना दृश्यमानास्थिसञ्चया ॥६४॥
मांसखण्डाभभग्नाक्षी शिरोघटितशेखरा । ललाटप्रसरोज्जिह्वा पेशीशोणितवर्षिणी ॥६५॥
सिंहव्याघ्रमुखैस्तप्तलोहचक्राभलोचनैः । शूलहस्तैर्विदष्टोष्ठैर्भ्रूकुटीकुटिलालिकैः ॥६६॥
राक्षसैः परुषारावैर्नृत्यद्भिरतिसङ्कुलम् । कम्पिताद्रिशिलाजालं चुक्षोभ वसुधातलम् ॥६७॥

थी, लय बदलनेके समय जिसके सुन्दर स्तनोंका मण्डल कुछ ऊपर उठकर कम्पित हो रहा था, जिसके चरण-कमलोंका विन्यास शब्द रहित था, जिसकी एक जाँघ चल रही थी। जिसके शरीरकी समस्त चेष्टाएँ संगीत शास्त्रके अनुरूप थी, तथा जो भक्तिसे प्रेरित थी, ऐसी सीताने उस प्रकार नृत्य किया जिस प्रकार कि जिनेन्द्रके जन्माभिषेकके समय सुमेरु पर श्री देवीने किया था ॥५३-५६॥ तदनन्तर उपसर्गसे त्रस्त होकर ही मानो जब सूर्य अस्त हो गया और उसीके पीछे चञ्चल तेजको धारण करनेवाली संध्या भी जब चली गई तब नक्षत्र मण्डलके प्रकाशको नष्ट करनेवाला तथा नील मेघके समान आभावाला सघन अन्धकार समस्त दिशाओंको व्याप्त करता हुआ उदित हुआ ॥५७-५८॥ उसी समय किसीका ऐसा विचित्र शब्द सुनाई दिया जो दिशाओंमे परम क्षोभ उत्पन्न करनेवाला था तथा जो आकाशको भेदन करता हुआ सा जान पड़ता था ॥५९॥ जिसके अग्रभागमे बिजलीरूपी ज्वाला प्रकाशमान थी, ऐसी लम्बी घन-घटासे आकाश व्याप्त हो गया और लोक ऐसा जान पड़ने लगा मानो भयसे व्याकुल हो कहीं चला ही गया हो ॥६०॥ जिनके आकार अत्यन्त भय उत्पन्न करनेवाले थे तथा जिनके मुख दाँढोंकी पंक्तिसे कुटिल थे, ऐसे भूतोंके झुण्ड महा भयङ्कर अट्टहास करने लगे ॥६१॥ राक्षस नीरस शब्द करने लगे, अमङ्गल रूप शृगालियाँ अग्नि उगलती हुई शब्द करने लगी, सैकड़ों कलेवर भयङ्कर नृत्य करने लगे, ॥६२॥ मेघ, दुर्गन्धित खूनकी बड़ी मोटी बूँदोसे सहित मस्तक वक्षःस्थल, भुजा तथा जङ्घा आदि अवयवोकी वर्षा करने लगे ॥६३॥ जो हाथमें तलवार लिये थी जिसका शरीर अत्यन्त क्रूर था, जिसके स्तन हिल रहे थे, जिसके ओंठ अत्यन्त लम्बे थे, जो नग्न थी, जिसकी हड्डियोका समूह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा था, जिसकी फूटी आँखे मांसखण्डके समान थी, जिसने नरमुण्डका सेहरा पहिन रक्खा था, जिसकी जीभ ऊपरकी ओर उठकर ललाटका स्पर्श कर रही थी तथा जो मांस और रुधिरकी वर्षा कर रही थी ऐसी डाकिनी दिखाई देने लगी ॥६४-६५॥ जिनके मुख सिंह तथा व्याघ्रके समान थे, जिनके नेत्र तपे हुए लोह चक्रके सदृश थे, जिनके हाथमें शूल विद्यमान थे, जो ओठको डश रहे थे, जिनके ललाट भौंहोंसे कुटिल थे, जिनकी आवाज अत्यन्त कठोर थी, तथा जो नृत्य कर रहे थे ऐसे राक्षसोंसे भरा हुआ वहाँका भूतल

१. सुमेरुपर्वते, मन्दिरे ख०, ज०, म० । २. निघ्नलीलाभ्रसभ्रमं, म० । ३. भिन्दन्तमिव म० । ४ आकाशम् । ५. इवाशेष आलोकस्त्राससमाकुल म० । ६. अमङ्गलभूताः । ७. शृगाल्यः ।

विचेष्टितमिदं व्यर्थं नाज्ञासिष्टां महामुनी । तयोर्हि [1]ज्ञानकर्मान्तःशुक्लध्यानमग्नं तदा ॥६८॥
तथाविधं तमालोक्य वृत्तान्तं वरभीतिदम् । संहृत्य जानकी नृत्यमाश्लिष्यत्कम्पिनी पतिम् ॥६९॥
पद्मो जगाद तां देवि मा भैषीः शुभमानसे । उपगुह्य मुनेः पादौ तिष्ठ सर्वभयच्छिदौ ॥७०॥
[2]इत्युक्त्वा पादयोः कान्तां मुनेरासाद्य लाङ्गली । लक्ष्मीधरकुमारेण साकं सन्नाहमाश्रितः ॥७१॥
सजलाविव जीमूतौ गर्जितौ तौ महाप्रभौ । [1]निर्घातमिव मुञ्चन्तौ समास्फालयतां धनुः ॥७२॥
ततस्तौ सम्भ्रमी ज्ञात्वा रामनारायणाविति । सुरो वह्निप्रभाभिख्यस्तिरोधानमुपेयिवान् ॥७३॥
ज्योतिर्वरे[3] गते तस्मिन् समस्तं तद्विचेष्टितम् । सपदि प्रलयं [4]यातं जातं च विमलं नभः ॥७४॥
प्रातिहार्ये कृते ताभ्यामिच्छद्भ्यां परमं हितम् । उत्पन्नं केवलज्ञानं मुनिपुङ्गवयोः क्षणात् ॥७५॥
चतुर्विधास्ततो देवा नानायानसमाश्रिताः । समाजग्मुः प्रशंसन्तो मुदितास्तपसः फलम् ॥७६॥
प्रणम्य विधिना तत्र कृत्वा केवलपूजनम् । रचिताञ्जलयो देवा यथास्थानमुपाविशन् ॥७७॥
केवलज्ञानसम्भूतिसमाकृष्टसुरागमात् । [5]दोषादिनात्मकौ कालावभूतां भेदवर्जितौ ॥७८॥
भूमिगोचरिणो मर्त्यास्तथा विद्यामहाबलाः । उपविष्टा यथायोग्यं कृत्वा केवलिनो महम्[6] ॥७९॥
प्रसन्नमानसौ सद्यः कृत्वा केवलिपूजनम् । प्रणम्य सीतया साकं निविष्टौ रामलक्ष्मणौ ॥८०॥
अथ तत्क्षणसम्भूतपरमार्हासनस्थितौ । प्रणम्य साञ्जलिः पद्मः पप्रच्छैवं महामुनी ॥८१॥

क्षोभको प्राप्त हो गया और पर्वतकी चट्टानें हिल उठीं ॥६६-६७॥ यह सब हो रहा था परन्तु उन महामुनियोंको इस व्यर्थकी चेष्टाका कुछ भी भान नहीं था, उनका ज्ञानोत्पादक प्रयत्न उस समय अन्तरङ्गमें युक्त ध्यानमग्न था ॥६८॥ अच्छे-अच्छे पुरुषोंको भय उत्पन्न करनेवाला ऐसा वृत्तान्त देख सीता नृत्य छोड़ कॉंपती हुई पतिसे लिपट गई ॥६९॥ तब रामने कहा कि हे देवि ! हे शुभ मानसे ! भयभीत मत हो। सब प्रकारको भय दूर करनेवाले मुनियोंके चरणोंका आश्रय ले बैठ जाओ ॥७०॥ यह कहकर रामने सीताको मुनिराजके चरणोंके समीप बैठाया और स्वयं लक्ष्मण कुमारके साथ, युद्धके लिए तैयार हो गये ॥७१॥ तदनन्तर सजल मेघके समान गरजनेवाले एवं महा कान्तिके धारक राम लक्ष्मणने अपने-अपने धनुष टङ्कोरे सो ऐसा जान पड़ा मानो वज्र ही छोड़ रहे हो ॥७२॥ तदनन्तर 'ये बलभद्र और नारायण हैं' ऐसा जानकर वह अग्निप्रभ देव घबड़ाकर तिरोहित हो गया ॥७३॥ उस ज्योतिषी देवके चले जानेपर उसकी सबकी सब चेष्टाएँ तत्काल विलीन हो गईं और आकाश निर्मल हो गया ॥७४॥

अथानन्तर परम हितकी इच्छा करनेवाले राम-लक्ष्मणके द्वारा प्रतिहारीका कार्य सम्पन्न होनेपर अर्थात् उपसर्ग दूर किये जानेपर दोनों मुनियोंको क्षणभरमें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥७५॥ तदनन्तर नाना प्रकारके वाहनोंपर बैठे, हर्षसे भरे तथा तपके फलकी प्रशंसा करते हुए चारों निकायके देव आ पहुँचे ॥७६॥ वहाँ विधिपूर्वक प्रणामकर तथा केवलज्ञानकी पूजाकर सब देव लोग हाथ जोड़े हुए यथास्थान बैठ गये ॥७७॥ उस समय केवलज्ञानकी उत्पत्तिसे खिंचे हुए देवोंका समागम होनेसे रात-दिन रूप काल भेदसे रहित हो गया अर्थात् वहाँ रात दिनका व्यवहार समाप्त हो गया ॥७८॥ भूमिगोचरी मनुष्य तथा विद्यारूपी महाबलको धारण करनेवाले विद्याधर-सभी लोग केवलियोंकी पूजाकर यथायोग्य स्थानपर बैठ गये ॥७९॥ प्रसन्न चित्तके धारक राम-लक्ष्मण भी सीताके साथ शीघ्र ही केवलियोंकी पूजाकर यथास्थान बैठ गये ॥८०॥

अथानन्तर तत्क्षण उत्पन्न हुए परमोत्तम सिंहासनों पर विराजमान केवलज्ञानी महा-

१. ज्ञानकर्म = ज्ञानोत्पादिका क्रिया, अन्तः आभ्यन्तरे इति टिप्पणी पुस्तके । २. इत्युक्त्वा म० । १. वज्रम् । ३. ज्योतिर्वासम् म० । ४. आर्तं म०, क० । ५. रात्रिदिवसरूपौ । ६. पूजाम् ।

भगवन्तौ कुतो नक्त केनाय वा[1]मुपद्रव । अथवा स्वस्य युवयोरिद जात हित परम् ॥८२॥
त्रिकालगोचर विश्व विदन्तावपि तौ समम् । गिर या[2]मूचतु (गिरायामूचतु) साम्यपरिणाममितौ क्रमात् ॥८३॥
नगर्यां पद्मिनीनाम्नि राजा विजयपर्वत । गुणसस्योत्तमक्षेत्र भामिनी यस्य धारिणी ॥८४॥
अमृतस्वरसज्ञोऽस्य दूत शास्त्रविशारद । राजकर्तव्यकुशलो लोकविद् गुणवत्सल ॥८५॥
उपयोगेति भार्यास्य द्वौ तस्या कुक्षिसम्भवौ । [3]उदितो मुदिताख्यश्च व्यवहारविशारदौ ॥८६॥
असौ दूतोऽन्यदा राज्ञा प्रहितो दूतकर्मणा । प्रवास सेवितु सक्त स्वामिरक्तमतिर्भृशम् ॥८७॥
वसुभूति· सम तेन सखा तद्भक्तजीवित । निर्गतस्तत्प्रियासक्तिनिष्ठो दुष्टेन चेतसा ॥८८॥
सुप्त तमसिना[4] हत्वा निवृत्तां नगरी [5] पुन । जनायावेदयत्तेन किलाह विनिवर्तित· ॥८९॥
उपयोगा जगादैव जहि मे तनयावपि । विश्रब्ध येन तिष्ठाव इति बध्वा निवेदितम् ॥९०॥
त्वरित चोदितायासौ वृत्तान्तो विनिवेदित· । सा हि तेन सम श्वश्र्व्या[6] सङ्ग ज्ञातवती पुरा ॥९१॥
ब्राह्मण्या वसुभूतेश्च रतिकार्यसमीर्ष्यया । कथित तत्तथाभूत परमाकुलचित्तया ॥९२॥
बभूव चोदितस्यापि सन्दिग्ध विदित पुरा । मुदितस्य च खड्गस्य दर्शनात् स्फुटतां गतम् ॥९३॥
ततो रोषपरीतेन हत सन्नुदितेन स । कु[7]द्विजो म्लेच्छता प्राप क्रूरकर्मपरायण· ॥९४॥

मुनियोंको नमस्कार कर रामने हाथ जोड़ इस प्रकार पूछा ॥८१॥ कि हे भगवन् ! रात्रिके समय आप दोनों अथवा अपने ही ऊपर यह उपसर्ग किसने किया था और आप दोनोंमें परस्पर अति स्नेह किस कारण हुआ ? ॥८२॥ यद्यपि दोनों महामुनि त्रिकालविषयक समस्त पदार्थोंको एक साथ जानते थे, तो भी साम्यपरिणामको प्राप्त हुए दोनों महामुनि दिव्य ध्वनिमें क्रमसे बोले ॥८३॥ उन्होंने कहा कि—

पद्मिनी नामा नगरीमें राजा विजयपर्वत रहता था। गुणरूपी धान्यकी उत्पत्तिके लिए उत्तम क्षेत्रके समान उसकी धारिणी नामकी स्त्री थी ॥८४॥ राजा विजयपर्वतके एक अमृतस्वर नामका दूत था जो शास्त्रज्ञानमें निपुण था, राजकर्तव्यमें कुशल था, लोकव्यवहारका ज्ञाता तथा गुणोंमें स्नेह करनेवाला था ॥८५॥ उसकी उपयोगा नामकी स्त्री थी और उसके उदरसे उत्पन्न हुए उदित तथा मुदित नामके दो पुत्र थे। ये दोनों ही पुत्र व्यवहारमें अत्यन्त कुशल थे ॥८६॥ किसी समय राजाने अमृतस्वरको दूत सम्बन्धी कार्यसे बाहर भेजा, सो स्वामीके कार्यमें अत्यन्त अनुरक्त बुद्धिको धारण करनेवाला अमृतस्वर प्रवासके लिए गया ॥८७॥ उसके साथ उसीके भोजनसे जीवित रहनेवाला वसुभूति नामका मित्र भी गया। वसुभूति अत्यन्त दुष्ट चित्त था तथा अमृतस्वर की स्त्रीमें आसक्त था ॥८८॥ वह सोते हुए अमृतस्वरको तलवारसे मारकर नगरीमें वापिस लौट आया और आकर उसने लोगोंको बताया कि अमृतस्वरने मुझे लौटा दिया है ॥८९॥ अमृतस्वरकी स्त्री उपयोगाने वसुभूतिसे कहा कि हमारे दोनों पुत्रोंको भी मार डालो जिससे फिर हम दोनों निश्चिन्ततासे रह सकेंगे। सासका यह कहना उसकी बहूने जान लिया इसलिए उसने यह सब समाचार शीघ्र ही उदितके लिए बता दिया, यथार्थमें वह बहू 'सासका वसुभूतिके साथ संगम है' यह पहलेसे जानती थी ॥९०–९१॥ वसुभूतिकी खास स्त्री उसकी इस रतिक्रियासे सदा ईर्ष्या रखती थी तथा उसका चित्त अत्यन्त व्याकुल रहता था इसलिए उसने यह समाचार उदित की स्त्रीसे कहा था ॥९२॥ उदितको भी पहलेसे कुछ-कुछ सन्देह था और मुदित भी इस बातको पहलेसे जानता था फिर वसुभूतिके पास तलवार देखनेसे सब बात स्पष्ट हो गई ॥९३॥ तदनन्तर क्रोधसे युक्त होकर उदितने उसे मार डाला जिससे क्रूरकर्ममें तत्पर रहनेवाला वह कुब्राह्मण म्लेच्छपर्यायको प्राप्त हुआ ॥९४॥

---

१. युवयोः ज०, क० । २. गिरया । ३. उदितमुदितनामधेयौ । ४. छुरिकया । ५. निवृत्तिनगरीं म० । ६. श्वश्र्व्या म० । ७. मृत्वा च म० ।

अन्यदा प्रथित क्षोण्या गणेशो मतिवर्धन । विहरन् पद्मिनी प्राप श्रमणः सुमहातपा ॥९५॥
अनुद्धरेति विख्याता धर्म्यध्यानपरायणा । महत्तरा तदा चासीदार्यिका गणपालिनी ॥९६॥
वसन्ततिलकाभिख्ये तत्रोद्याने सुसुन्दरे । सङ्घेन सहितस्तस्थौ चतुर्भेदेन सद्भुवि ॥९७॥
अथोद्यानस्य सम्भ्रान्ता पालका किङ्करा भृशम् । नृप व्यज्ञापयन्नेव भूमिविन्यस्तपाणयः ॥९८॥
अग्रतो भृगुरत्युग्र शार्दूल पृष्ठतो नृप । वद क शरण यामो नाशो न सर्वथोदित ॥९९॥
भद्रा किं किमिति [1]ब्रूथेत्युक्ता नृपतिनागदन् । नाथोद्यानभुव प्राप्य श्रमणानां गण स्थित ॥१००॥
यद्येन वारयामोऽत शाप ध्रुवमवाप्नुम । न चेत्ते जायते कोप इति न सङ्कटो महान् ॥१०१॥
कल्पोद्यानसमच्छायमुद्यान ते प्रसादत. । नरेन्द्र कृतमस्माभिरप्रवेश्य पृथग्जनै[2] ॥१०२॥
नैव वारयितु शक्यास्तपस्तेजोतिदुर्गमा । त्रिदशैरपि दिग्वस्त्रा किमुतास्मादशैर्जनै ॥१०३॥
मा भैष्ट ततो राजा कृत्वा किङ्करसान्त्वनम् । उद्यान प्रस्थितो युक्तो विस्मयेनातिभूरिणा ॥१०४॥
ऋद्ध्या च परया युक्तो वन्दिभि कृतनिस्वन । उद्यानभुवमासीदत् प्रतापप्रकट क्षितीट् ॥१०५॥
ददर्श च महाभागान् वनरेणुसमुक्षितान् । मुक्तियोग्यक्रियायुक्तान् प्रशान्तहृदयान् मुनीन् ॥१०६॥
प्रतिमावस्थितान् कांश्चित् प्रलम्बितभुजद्वयान् । षष्ठाष्टमादिभिस्तीव्रैरुपवासैर्विशोषितान् ॥१०७॥

अथानन्तर किसी समय मुनिसंघके स्वामी मतिवर्धन नामक महातपस्वी आचार्य पृथिवी पर विहार करते हुए पद्मिनी नगरी आये ॥९५॥ उसी समय धर्मध्यानमे तत्पर रहनेवाली, अतिशय श्रेष्ठ और आर्यिकाओंके सघकी रक्षा करनेवाली अनुद्धरा नामकी गणिनी भी विद्यमान थीं ॥९६॥ चतुर्विध संघसे सहित मतिवर्धन आचार्य वहाँ आकर उत्तम भूमिसे युक्त वसन्ततिलक नामक उद्यानमे ठहर गये ॥९७॥ तदनन्तर उद्यानकी रक्षा करनेवाले किङ्कर अत्यन्त व्यग्र हो राजाके पास पहुँचे और पृथ्वी पर हाथ रखकर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे कि हे नाथ! आगे तो बडी ऊँची ढालू चट्टान है और पीछे व्याघ्र है बताइये हम किसकी शरणमे जावे। हमारा तो सब प्रकारसे विनाश उपस्थित हुआ है ॥९८-९९॥ 'भले आदमियो! क्या? क्या??, क्या कह रहे हो' इस प्रकार राजाके कहने पर किङ्करोंने कहा कि हे नाथ! मुनियोंका एक सघ उद्यानकी भूमिमे आकर ठहर गया है ॥१००॥ यदि इस संघको हम मना करते हैं तो निश्चित ही शापको प्राप्त होते है और यदि नहीं मना करते हैं तो आपको क्रोध उत्पन्न होता है, इस प्रकार हम लोगों पर बडा सकट आ पडा है ॥१०१॥ हे राजन्! आपके प्रसादसे हम लोगोंने वह उद्यान कल्पवृक्षोंके उद्यानके समान बना रक्खा है, उसमे साधारण-पामर मनुष्य प्रवेश नही कर सकते ॥१०२॥ जो तपके तेजसे अत्यन्त दुर्गम है ऐसे निर्ग्रन्थ मुनियोको देव भी रोकनेमे समर्थ नही है फिर हमारे जैसे मनुष्योकी बात ही क्या है? ॥१०३॥

तदनन्तर 'भयभीत मत होओ' इस प्रकार किङ्करोको सान्त्वना देकर बहुत भारी आश्चर्यसे युक्त हुआ राजा उद्यानकी ओर चला ॥१०४॥ जो बहुत भारी सम्पदासे युक्त था, बन्दीजन जिसकी स्तुति करते जाते थे, तथा जो अतिशय प्रतापी था, ऐसा राजा चलकर उद्यानभूमिमें पहुँचा ॥१०५॥ वहाँ जाकर उसने महाभाग्यवान् मुनियोंके दर्शन किये। वे मुनि वनकी धूलिसे व्याप्त थे, मुक्तिके योग्य क्रियाओमें तत्पर थे तथा अत्यन्त प्रशान्त चित्त थे ॥१०६॥ उनमेसे कितने ही मुनि दोनो भुजाओंको नीचे की ओर लटका कर प्रतिमाके समान अवस्थित थे, तथा वेला-तेला आदि कठिन उपवासोसे उनके शरीर शुष्क हो रहे थे ॥१०७॥ कितने ही स्वाध्यायमें तत्पर हो भ्रमरोंके समान मधुरध्वनिसे गुनगुना रहे थे और कितने ही स्वाध्यायमें

१. ब्रूतेत्युक्त्वा नृपतिनागद म० । २. पामरजनैः । पृथुस्तनै. (?) म० ।

स्वाध्यायनिरतानन्यान् [1]षडङ्घ्रिमधुरध्वनीन् । तन्निवेशितचेतस्कान् पाणिपादसमाहितान् ॥१०८॥
अवलोक्य मुनीनित्थं [2]भग्नगर्वाङ्कुरोऽभवत् । अवतीर्य गजाद् भावी ननाम जयपर्वतः ॥१०९॥
क्रमेण प्रणमन् साधूनाचार्यं समुप[3]गतः । प्रणम्य पादयोरूचे भोगे सद्बुद्धिमुद्वहन् ॥११०॥
नरप्रधानदीप्तिस्ते [4]यथैव शुभलक्षणा । तथा कथं न ते भोगा रताः पादतलस्थिता ॥१११॥
जगाद मुनिमुख्यस्तं का ते [5]मतिरियं तनौ । स्थास्नुतासङ्गताऽलीका संसारपरिवर्धिनी ॥११२॥
करिबालकर्णान्तचपलं ननु जीवितम् । मानुष्यकं च कदलीसारसाम्यं बिभर्त्यदः ॥११३॥
स्वप्नप्रतिममैश्वर्यं सक्तं च सह बान्धवैः । इति ज्ञात्वा रतिः कात्र[6] चिन्त्यमानातिदुःखदे ॥११४॥
नरकप्रतिमे घोरे दुर्गन्धे कृमिसङ्कुले । रक्तश्लेष्मादिसरसि प्रभूताशुचिकर्दमे ॥११५॥
उषितोऽनेकशो जीवो गर्भवासेऽतिसङ्कटे । तथा न शङ्कते मोहमहाध्वान्तसमावृतः ॥११६॥
धिगत्यन्ताशुचिं देहं सर्वाशुभनिधानकम् । क्षणनश्वरमत्राणं कृतघ्नं मोहपूरितम् ॥११७॥
स्नसाजालकसंश्लिष्टमतिच्छातत्वगावृतम् । अनेकरोगवि[7]हतं जरागमजुगुप्सितम् ॥११८॥
एवंधर्मिणि देहेऽस्मिन् ये कुर्वन्ति जना धृतिम् । तेभ्यश्चैतन्यमुक्तेभ्यः स्वस्ति सञ्जायते कथम् ॥११९॥
शरीरिसार्थं एतस्मिन् परलोकप्रवासिनि । [8]मुष्णन्तः प्रशमं लोकं तिष्ठन्तीन्द्रियदस्यवः ॥१२०॥
रमते जीवनृपतिः कुमतिप्रमदावृतः । [9]अवस्कन्देन मृत्युस्तं कदर्थयितुमिच्छति ॥१२१॥

चित्त लगाकर पद्मासनसे विराजमान थे ॥१०८॥ इस प्रकारके मुनियोंको देख कर राजाका गर्वरूपी अङ्कुर भग्न हो गया तथा उसने हाथीसे नीचे उतर कर मुनियोंको नमस्कार किया । राजाका नाम विजयपर्वत था ॥१०९॥ भोगोंमें समीचीन बुद्धिको धारण करनेवाला राजा क्रम-क्रमसे सब मुनियोंको नमस्कार करता हुआ आचार्यके पास पहुँचा और उनके चरणोंमें प्रणाम कर इस प्रकार बोला कि हे नरश्रेष्ठ ! तुम्हारी शुभ लक्षणोंसे युक्त जैसी दीप्ति है वैसे भोग आपके चरणतलमें स्थित क्यों नहीं है ? ॥११०-१११॥ आचार्यने उत्तर दिया कि तेरे शरीरमें यह क्या बुद्धि है ? तेरी वह बुद्धि शरीरको स्थिर समझनेवाली है सो झूठी है और संसारको बढ़ानेवाली है ॥११२॥ निश्चयसे यह जीवन हस्तिशिशुके कानोंके समान चञ्चल है तथा मनुष्यका यह जीतव्य केलेके सारकी सदृशता धारण करता है ॥११३॥ यह ऐश्वर्य और बन्धुजनोंका समागम स्वप्नके समान है, ऐसा जानकर इनमें क्या रति करना है ? इन ऐश्वर्य आदिका ज्यों-ज्यों विचार करो त्यों-त्यों ये अत्यन्त दुःखदायी ही मालूम होते हैं ॥११४॥ जो नरकके समान है, अत्यन्त भयङ्कर है, दुर्गन्धिसे भरा है, कीड़ोंसे युक्त है, रक्त तथा कफ आदिका मानो सरोवर है, जहाँ अत्यन्त अशुचि पदार्थोंकी कीच मच रही है तथा जो अत्यन्त संकीर्ण है ऐसे गर्भमें इस जीवने अनेकों बार निवास किया है, फिर भी महामोहरूपी अन्धकारसे आवृत हुआ यह प्राणी उससे भयभीत नहीं होता ॥११५-११६॥ जो सर्व प्रकारके अशुचि पदार्थोंका भाण्डार है, क्षण भरमें नष्ट हो जानेवाला है, जिसकी कोई रक्षा नहीं कर सकता, जो कृतघ्न है, मोहसे पूरित है, नसोंके समूहसे वेष्टित है, अत्यन्त पतली चर्मसे घिरा है, अनेक रोगोंसे खण्डित है, और बुढ़ापाके आगमनसे निन्दित है, ऐसे इस शरीरको धिक्कार है ॥११७-११८॥ जो मनुष्य ऐसे शरीरमें धैर्य धारण करते हैं, चैतन्य अर्थात् विचाराविचारकी शक्तिसे रहित उन मनुष्योंका कल्याण कैसे हो सकता है ? ॥११९॥ यह आत्मारूपी बनजारा परलोकके लिए प्रस्थान कर रहा है, सो लोगोंको जबरदस्ती लूटनेवाले ये इन्द्रियरूपी चोर उसे रोक कर बैठे हैं ॥१२०॥ यह जीवरूपी राजा कुबुद्धि रूपी स्त्रीसे घिरकर क्रीड़ा कर रहा है और मृत्यु उसे अचानक ही

१. भ्रमरमधुरध्वनीन् । स्वनान् ख०, म० । २ रुग्ण म० । ३. समुपागतं म० । ४. ऐश्वर्यं म० । ५. क्वात्र म० । ६. सता शुभ-म० । ७. विहितं म०, ख० । ८. मुषन्तः म०, ज० । ९. अवस्कन्धेन म० ।

मनो विषयमार्गेषु मत्तद्विरदविभ्रमम् । वैराग्यबलिना शक्य रोद्धु ज्ञानाङ्कुशश्रिता ॥१२२॥
परस्त्रीरूपसस्येषु बिभ्राणा लोभमुत्तमम् । अमी हृषीकतुरगा धृतमोहमहाजवा ॥१२३॥
शरीररथमुन्मुक्ता पातयन्ति कुवर्त्मसु । चित्तप्रग्रहमत्यन्त योग्य कुरुत तद्दृढम् ॥१२४॥
नमस्यत जिन भक्त्या स्मरतानारत तथा । ससारसागर येन समुत्तरत निश्चितम् ॥१२५॥
मोहारिकण्टक हित्वा तप सयमहेतिभि[1] । लोकाग्रनगर प्राप्य राज्य कुरुत निर्भया ॥१२६॥
जैन [2]व्याकरण श्रुत्वा सुधीविजयपर्वत । त्यक्त्वा विपुलमैश्वर्यं बभूव मुनिपुङ्गव ॥१२७॥
तावपि भ्रातरौ तस्मिन् श्रुत्वा भक्त्या जिनश्रुतिम् । प्रव्रज्य सुतपोभारौ सन्नतावाटतुर्महीम् ॥१२८॥
[3]सम्मेद च व्रजन्तौ ताविष्टनिर्वाणवन्दनौ । कथञ्चिन्मार्गतो भ्रष्टावरण्यानी समाश्रितौ ॥१२९॥
वसुभूतिचरेणाथ रौद्रम्लेच्छेन वीक्षितौ । अतिक्रुद्धेन चाहूतौ गिराक्रोशकठोरया[4] ॥१३०॥
जिवासन्त तमालोक्य ज्यायान्मुदितमब्रवीत् । मा भैषीर्भ्रातरद्य त्व समाधान समाश्रय ॥१३१॥
म्लेच्छोऽय हन्तुमुद्युक्तो दृश्यते नौ दुराकृति । चिराभ्याससमृद्धाया क्षान्तेरद्य विनिश्चय ॥१३२॥
प्रत्युवाच स त भीति का नौ जिनवचस्थयो । नून मूढतयास्माभिरप्यय प्रापितो वधम् ॥१३३॥
एव तौ विहितालापौ सविचार समाश्रितौ । प्रत्याख्यान शरीरादे प्रतिमायोगमागतौ ॥१३४॥
समीपता च सम्प्राप्तो म्लेच्छो हन्तु समुद्यत । आलोक्य दैवयोगेन रौनेशेन निवारित. ॥१३५॥
राम पप्रच्छ तेनैतौ व्यापादयितुमीप्सितौ । सेनाधिपेन निर्मुक्तौ रक्षितौ केन हेतुना ॥१३६॥

दुःखी करना चाहती है ॥१२१॥ विषयोके मार्गमे मदोन्मत्त हाथीके समान दौड़ता हुआ यह मन ज्ञानरूपी अङ्कुशको धारण करनेवाले वैराग्यरूपी बलवान् पुरुषके द्वारा ही रोका जा सकता है ॥१२२॥ जो शरीररूपी धान्यमे उत्तम लोभको धारण कर रहे है तथा जो महा मोहरूपी वेग को धारणकर लम्बी चौकडी भर रहे है ऐसे ये इन्द्रियरूपी घोड़े शरीररूपी रथको कुमार्गमे गिरा देते है,इसलिए मन रूपी लगामको अत्यन्त दृढ़ करो॥१२३-१२४॥ भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार करो और निरन्तर उन्हीका स्मरण करो जिससे निश्चय पूर्वक ससार-सागरको पार कर सको ॥१२५॥ तप और सयमरूपी शस्त्रोंके द्वारा मोहशत्रुरूपी कटकको नष्टकर मोक्षरूपी नगरको प्राप्त करो तथा निर्भय होकर वहाँका राज्य करो॥१२६॥ इस प्रकार जैनाचार्यका व्याख्यान सुनकर उत्तम बुद्धिको धारण करनेवाला राजा विजयपर्वत विशाल वैभवका परित्याग कर श्रेष्ठ मुनि हो गया ॥१२७॥

दूतके पुत्र दोनो भाई उदित और मुदित भक्तिपूर्वक जिनवाणी सुनकर दीक्षित हो गये और उत्तम तपको धारण करते हुए एक साथ पृथिवी पर विहार करने लगे ॥१२८॥ निर्वाण क्षेत्रकी वन्दनाकी अभिलाषा रखते हुए वे सम्मेदाचलको जा रहे थे, सो किसी तरह मार्ग भूलकर एक महाअटवीमे जा पहुँचे ॥१२९॥ वसुभूतिका जीव मरकर उसी अटवीमे दुष्टम्लेच्छ हुआ था, सो उसने देखते ही अत्यन्त क्रुद्ध होकर कठोर वाणीसे उन्हें बुलाया ॥१३०॥ उसे मारनेके लिए उत्सुक देख बड़े भाई उदितने मुदितसे कहा कि हे भाई! भयभीत मत हो, इस समय समाधि धारण करो, चित्त स्थिर करो ॥१३१॥ दुष्ट आकृतिको धारण करनेवाला यह म्लेच्छ हम दोनोको मारनेके लिए तत्पर दिखाई देता है सो हम लोगोने चिरकालके अभ्याससे जिस क्षमाको समृद्ध बनाया है आज उसकी परीक्षाका अवसर है ॥१३२॥ मुदितने बड़े भाईको उत्तर दिया कि जिनेन्द्र भगवान्के वचनोमें स्थिर रहनेवाले हम लोगोको भय किस बातका है? निश्चयसे हम लोगोने भी इसका वध किया होगा ॥१३३॥ इस प्रकार वार्तालाप करते हुए दोनो भाई विचार पूर्वक खड़े हो गये और शरीर आदिसे ममता छोड़ प्रतिमा योगको प्राप्त हुए ॥१३४॥ तदनन्तर मारनेकी इच्छा रखता हुआ वह भील उनके पास आया परन्तु दैवयोगसे भीलोंके सेनापतिने उसे देख लिया जिसे मना कर दिया ॥१३५॥ यह सुन, रामने केवलीसे पूछा

१. हेतुभिः म० । २. व्याख्यान । ३. सम्मोद ख० । ४.क्रोशकुठारया म० ।

केवस्यास्यात्[1] समुद्भूता भारतीति भवान्तरे । सुरप कर्षकश्चास्ता यक्षस्थाने सहोदरौ ॥१३७॥
लुब्धकेनाहृतो जीव शकुन्तिर्ग्राममन्यदा । ताभ्या कारुण्ययुक्ताभ्या दत्वा मूल्य विमोचित ॥१३८॥
ततोऽसौ शकुनो मृत्वा बभूव म्लेच्छभूपति । सुरप कर्षकश्चैतावुदितो मुदितस्तथा ॥१३९॥
पक्षीभवन्नसौ यस्मादेताभ्या रक्षित पुरा । तस्मात् सेनापतिर्भूयो ररक्षासाविमौ मुनी ॥१४०॥
लुब्धको जीवमोक्षेण वसुभूतिर्द्विजोत्तम । सञ्जातो कर्मयोगेन मनुष्यभवमुत्तमम् ॥१४१॥
यद्यथा निर्मित पूर्वं तद्योग्य जायतेऽधुना । ससारवाससक्ताना जीवाना गतिरीदृशी ॥१४२॥
किमधीतैरिहानर्थग्रन्थैरौशनसादिभि[2] । एकमेव हि कर्तव्य सुकृत सुखकारणम् ॥१४३॥
नि सृतावुपसर्गात्तौ मुनी कर्मानुभावत । निर्वाणसदन प्राप्तावकार्ष्टां जिनवन्दनाम् ॥१४४॥
एव तौ चारुधामानि पर्यट्य समय चिरम् । रत्नत्रय समाराध्य मृत्वा स्वर्गमुपागतौ ॥१४५॥
निन्द्ययोनिषु पर्यट्य वसुभूति सुकृच्छ्रत. । मनुष्यत्व समासाद्य तापसव्रतमाश्रित. ॥१४६॥
कृत्वा बालतप कष्ट कालधर्मेण सङ्गतः । अग्निकेतुरिति ख्यात क्रूरो ज्योति सुरोऽभवत् ॥१४७॥
तथास्ति भरतक्षेत्रे नाम्नारिष्टमहापुरम् । प्रियव्रत इति ख्यात पुरुभोगोऽत्र पार्थिव. ॥१४८॥
महादेव्यावुभे तस्य योषिद्गुणसमन्विते । काञ्चनाभा प्रसिद्धैका पद्मावत्यपरोदिता ॥१४९॥
च्युतौ तौ सुन्दरौ नाकाज्जातौ पद्मावतीसुतौ । नाम्ना रत्नरथोऽन्यश्च विचित्ररथसञ्ज्ञक ॥१५०॥
उत्पन्न' कनकाभाया ज्योतिर्देव. परिच्युत । अनुन्धर इति ख्याति गुणैस्ते चावनिं गता ॥१५१॥
राज्य पुत्रेषु निक्षिप्य षड्दिनानि जिनालये । कृतसलेखनः सम्यक् स्वर्गं यात प्रियव्रत ॥१५२॥

कि भील इन्हें क्यों मारना चाहता था औरसेनापतिने किस कारणसे छुड़ा कर इनकी रक्षा की ॥१३६॥ तब केवली भगवान्के मुखसे इस प्रकारकी दिव्यध्वनि प्रकट हुई कि भवान्तरमे यक्षस्थान नामक नगरमे सुरप और कर्षक नामके दो भाई रहते थे ॥१३७॥ एक दिन एक शिकारी किसी पक्षीको पकड़ कर उस गॉवमे ले आया सो दयासे युक्त होकर सुरप और कर्षकने मूल्य देकर उसे छुड़ा दिया ॥१३८॥ तदनन्तर वह पक्षी मर कर म्लेच्छ राजा हुआ और सुरप तथा कर्षक मर कर उदित तथा मुदित हुए ॥१३९॥ चूँकि पक्षी अवस्थामे इन दोनोने पहले इसकी रक्षा की थी इसलिए पक्षीने भी सेनापति होकर इन दोनो मुनियोकी रक्षा की ॥१४०॥ शिकारीका जीव मर कर कर्मयोगसे उत्तम मनुष्य पर्याय पाकर वसुभूति नामका ब्राह्मण हुआ ॥१४१॥ यह जीव पूर्व भवमे जैसा करता है इस भवमे उसके अनुरूप ही उत्पन्न होता है । ससारी प्राणियोकी ऐसी ही दशा है ॥१४२॥ यहाँ निरर्थक शुक्रादि निर्मित शास्त्रोके पढ़नेसे क्या होता है ? सुखके कारणभूत एक पुण्यका ही सचय करना चाहिए ॥१४३॥ पुण्यके प्रभावसे उपसर्गसे निकले हुए दोनो मुनियोने निर्वाण क्षेत्र—सम्मेदाचल पहुँच कर जिन-वन्दना की ॥१४४॥ इस प्रकार अनेक उत्तमोत्तम स्थानोमे भ्रमण कर तथा चिरकाल तक रत्नत्रयकी आराधना कर मर कर दोनो मुनि स्वर्ग गये ॥१४५॥ और वसुभूति अनेक खोटी योनियोमे भ्रमण कर बड़ी कठिनाईसे मनुष्यभव को प्राप्त हुआ, सो वहाँ उसने तापसके व्रत धारण किये ॥१४६॥ तदनन्तर दु खदायी बाल तप कर वह मरा और अग्निकेतु नामका दुष्ट ज्यौतिषी देव हुआ ॥१४७॥

तदनन्तर इसी भरतक्षेत्रमे एक अरिष्टपुर नामा नगर है जहाँ प्रियव्रत नामका महाभोगवान् राजा राज्य करता था ॥१४८॥ उसकी स्त्रियोके गुणोंसे सहित दो महादेवियाँ थी एक काञ्चनाभा और दूसरी पद्मावती ॥१४९॥ उदित और मुदितके जीव स्वर्गसे चयकर रानी पद्मावतीके रत्नरथ और विचित्ररथ नामके सुन्दर पुत्र हुए ॥१५०॥ वसुभूतिका जीव जो ज्यौतिषी देव हुआ था वह प्रियव्रत राजाकी दूसरी महादेवी काञ्चनाभाके अनुन्धर नामका पुत्र हुआ । पृथिवी पर आये हुए तीनों पुत्र अपने गुणोसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए ॥१५१॥ राजा प्रियव्रत पुत्रोंके ऊपर राज्य

१. केवलिमुखात् । २ अयं श्लोकः क०, ख०, ज० प्रतिषु नास्ति ।

राज्ञोऽन्यस्य सुता नाम्ना श्रीप्रभा श्रीप्रभेव सा । लब्धा रत्नरथेनेष्टा कनकाभाङ्गजेन च ॥१५३॥
लब्धा रत्नरथेनैषा ततो द्वेषमुपागत । अनुन्धरो मही तस्य विनाशयितुमुद्यत ॥१५४॥
ततो रत्नरथेनासौ विचित्रस्यन्दनेन च । निर्जित्य समरे पञ्च दण्डान् प्राप्य निराकृत ॥१५५॥
खलीकारात्तत पूर्वजन्मवैराच्च कोपत । जटावल्कलधारी स तापसोऽभूद् विषाङ्घ्रिवत् ॥१५६॥
भुक्त्वा राज्य चिर काल सोदरौ तु प्रबोधिनौ । प्रव्रज्य सुतप कृत्वा स्वर्गलोकमुपागतौ ॥१५७॥
तौ महातेजसौ तत्र सुख प्राप्य सुरोचितम् । च्युतौ सिद्धार्थनगरे क्षेमङ्करमहीभृत ॥१५८॥
उत्पन्नौ विमलाख्याया महादेव्या सुसुन्दरौ । देशभूषण इत्याद्यो द्वितीय कुलभूषण ॥१५९॥
विद्यार्जनोचितौ तौ च क्रीडन्तौ तिष्ठतो गृहे । नाम्ना सागरघोषश्च विद्वान् भ्राम्यन्नुपागत ॥१६०॥
राज्ञा च सगृहीतस्य तस्य पार्श्वेऽखिला कला । शिक्षितौ तावुदारेण विनयेन समन्वितौ ॥१६१॥
[1]स्वजन नैव तौ कञ्चिज्जानीतस्तद्गतात्मकौ । कर्तव्य हि तयो सर्वं विद्याशालागत[2] तदा ॥१६२॥
उपाध्यायेन चानीतौ सुचिरात्तु पितुरन्तिकम् । दृष्ट्वा योग्यौ नरेन्द्रेण यथाकाम स पूजित ॥१६३॥
आवयो किल दारार्थं पित्रा सामन्तकन्यका । आनायिता इति श्रोत्रपथ वार्ता तयोर्गता ॥१६४॥
ततस्तौ परया द्युत्या बाह्याली गन्तुमुद्यतौ । वातायनस्थिता कन्या पुरशोभामपश्यताम् ॥१६५॥
तत्सङ्गमार्थमन्योन्य मानसेऽकुरुता वधम् । ततश्च वन्दिनो वक्त्रादिति शब्द समुत्थित ॥१६६॥

छोड़ जिनालयमे छह दिनकी उत्तम सल्लेखना धारण कर स्वर्ग गया ॥१५२॥ अथानन्तर एक राजाकी पुत्री श्रीप्रभा जो कि यथार्थमे श्रीप्रभा अर्थात् लक्ष्मीके समान प्रभाकी धारक थी, रत्नरथने उससे व्याह करलिया । इसी पुत्रीको काञ्चनाभाका पुत्र अनुन्धर भी चाहता था। वह द्वेष रखकर उसकी भूमिको उजाड़ करनेके लिए उद्यत हो गया ॥१५३-१५४॥ तब रत्नरथ और विचित्ररथने उसे युद्धमे जीत कर तथा पॉच प्रकारके दण्ड देकर देशसे निकाल दिया ॥१५५॥ अनुन्धर इस अपमान से तथा पूर्वभव सम्बन्धी बैरसे कुपित होकर जटा और बल्कलको धारण करनेवाला विषवृक्षके समान तापसी हो गया ॥१५६॥

इधर रत्नरथ और विचित्ररथ दोनो भाई चिरकाल तक राज्य भोगकर प्रबोधको प्राप्त हुए सो दीक्षा ले उत्तम तप धारण कर स्वर्ग लोकमे उत्पन्न हुए ॥१५७॥ महातेजको धारण करनेवाले दोनो भाई वहॉ देवोके योग्य उत्तम सुख भोगकर वहॉसे च्युत हुए और सिद्धार्थ नगरके राजा क्षेमङ्करकी विमला नामक महादेवीके दो सुन्दर पुत्र हुए। प्रथम पुत्रका नाम देशभूषण और दूसरे पुत्रका नाम कुलभूषण था ॥१५८-१५९॥ विद्या उपार्जन करनेकी योग्य अवस्थामे वर्तमान दोनो भाई घर पर क्रीडा करते रहते थे । एक दिन भ्रमण करता हुआ एक सागरसेन नामका महाविद्वान् वहॉ आया, सो राजाने उसे रख लिया । उत्कृष्ट विनयसे युक्त दोनो भाइयोने उस विद्वान्के पास समस्त कलाएँ सीखी ॥१६०-१६१॥ दोनो पुत्रोंका विद्यामे इतना चित्त लगा कि वे अपने परिवारके लोगोको भी नहीं जानते थे । यथार्थमे उनका सम्पूर्ण चित्त विद्या और विद्यालयमे ही लगा रहता था ॥१६२॥ उपाध्याय चिर कालके बाद पुत्रोको निपुण बनाकर पिताके पास ले गया सो पिताने पुत्रोको योग्य देख उपाध्यायका यथायोग्य सन्मान किया ॥१६३॥ तदनन्तर पिताने हम दोनोके विवाहके लिए राजा कन्याएँ बुलवाई है यह समाचार उनके कर्णमार्ग तक पहुँचा ॥१६४॥

तदनन्तर परम कान्तिसे युक्त दोनो भाई एक दिन नगरके बाहर जानेके लिए उद्यत हुए सो उन्होंने झरोखेमे बैठी नगरकी शोभा स्वरूप एक कन्या देखी ॥१६५॥ उस कन्याका समागम प्राप्त करनेके लिए दोनो ही भाइयोने अपने मनमे परस्पर एक दूसरेके वध करनेका विचार किया। तदनन्तर वन्दीके मुखसे उसी समय यह शब्द निकला ॥१६६॥ कि विमला देवीके साथ वह

१. स्वजनेनैव म० । २. विद्याशीलागत ब० । विद्याशालगत म० ।

साक विमलया देव्या श्रीमान् क्षेमङ्करो नृप । चिर जयति यस्यैतौ तनयौ त्रिदशोपमा ॥१६७॥
वातायनस्थितैषापि कन्यका कमलोत्सवा । जयति भ्रातरावेतौ यस्याश्चारुगुणोत्कटौ ॥१६८॥
ततस्तो तद्गिरो ज्ञात्वा सोदर्यावयारिति । वैराग्य परम प्राप्ताविति चिन्तामुपागतो ॥१६९॥
धिग्धिग्धिगिदमत्यन्त पापमस्माभिरीहितम् । अहो मोहस्य दारुण्य सोदरा येन काङ्क्षिता ॥१७०॥
चिन्तयित्वा प्रमादेन दु खमस्मैमाकर्मीदृशम् । कुर्वन्ति ये सदा कार्यं तेषा त्वत्यन्तसाहसम् ॥१७१॥
असारोऽयमहोऽत्यन्त ससारो दु खपूरित । यत्र नामेदृशा भावा जायन्ते पापकर्मणाम् ॥१७२॥
कुतोऽप्यपुण्यत क्षिप्र चेतनो नरक व्रजेत । सम्प्राप्य बोधमस्माभि सद्वृत्तश्चित्रमुत्तमम् [1] ॥१७३॥
इति सञ्चिन्त्य सन्त्यज्य मातर दु खमूर्च्छिताम् । स्नेहाकुल च पितर दीक्षा दैगम्बरी [2] श्रितौ ॥१७४॥
नभोविहरणी लब्धि प्राप्य तौ सुतपोधनौ । आहिण्डाता जगन्नानाजिनतीर्थाभिपूजितम् [3] ॥१७५॥
क्षेमङ्करनरेशस्तु तच्छोकानलदीपित । युगपत्सकल त्यक्त्वाऽऽहार [4] पञ्चत्वमागत [5] ॥१७६॥
भवाद्दारभ्य [6] पूर्वोक्तात स एव हि पितावयो । तेन नो प्रति वात्सल्य तस्य नित्यमनुत्तमम् ॥१७७॥
गरुडाधिपतिश्चारौ जात ख्याता महत्वत । सुन्दरोऽद्भुतविक्रान्तो महालोचनसञ्ज्ञक ॥१७८॥
क्षुब्ध स्वासनकम्पेन प्रयुज्यावधिमूर्जित । आगतोऽत्र स्थितो भाति व्यन्तरामरससदि ॥१७९॥
अनुन्धरस्तु विहरस्तापसाचारतत्पर । कौमुदीनगरी यात शिष्यसङ्घेन वेष्टित ॥१८०॥
नरेश सुमुखस्तत्र रतवत्यस्य भामिनी । कान्ता शतप्रधानत्व प्राप्ता परमसुन्दरी ॥१८१॥

राजा क्षेमङ्कर सदा जयवन्त रहे जिसके कि देवोंके समान ये दो पुत्र है ॥१६७॥ तथा झरोखेमे बैठी यह कमलोत्सवा नामकी कन्या भी धन्य है जिसके कि सुन्दर गुणोसे उत्कट ये दो भाई है ॥१६८॥ तदनन्तर वन्दीके कहनेसे 'यह हमारी बहिन है' ऐसा जानकर परम वैराग्यको प्राप्त हुए दोनो भाई इस प्रकार विचार करने लगे कि ॥१६९॥ अहो ! हम लोगोके द्वारा इच्छित इस भारी पापको धिक्कार है, धिक्कार है, धिक्कार है । अहो ! मोहकी दारुणता देखो कि जिससे हमने बहिन ही की इच्छा की ॥१७०॥ हम लोग तो प्रमादसे ही ऐसा विचार कर दु खी हो रहे है फिर जो जान-बूझकर सदा ऐसा कार्य करते है उनका तो बहुत भारी साहस ही कहना चाहिये ॥१७१॥ अहो ! दु खसे भरा यह ससार बिलकुल ही असार है जिसमे पापी मनुष्योंके ऐसे विचार उत्पन्न होते है ॥१७२॥ किसी पापके उदयसे सहसा कार्य करनेवाला प्राणी नरक जा सकता है, पर हम लोग तो सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रको पाकर भी नरक जाना चाहते हैं, यह बडा आश्चर्य है ॥१७३॥ ऐसा विचारकर दु खसे मूर्च्छित माता और स्नेहसे आकुल पिताको छोड़कर दोनोने दैगम्बरी दीक्षा धारण कर ली ॥१७४॥ उत्तम तपरूपी धनको धारण करनेवाले दोनो मुनियोंने आकाशगामिनी ऋद्धि प्राप्त कर जगत्के नाना तीर्थ क्षेत्रोमे विहार किया ॥१७५॥ राजा क्षेमङ्कर उस शोकाग्निसे दग्ध हो कर एक साथ समस्त आहार छोड मृत्युको प्राप्त हुआ ॥१७६॥ राजा क्षेमङ्कर पहले कहे हुए भवसे ही लेकर हम दोनोका पिता होता आया है इसलिए हम दोनोके प्रति उसका निरन्तर भारी स्नेह रहता था ॥१७७॥ अब वह मरकर भवनवासी देवोमे सुपर्ण कुमार जातिके देवोका अधिपति, प्रसिद्ध, सुन्दर अद्भुत-पराक्रमका धारी महालोचन नामका देव हुआ है ॥१७८॥ वह बली अपने आसनके कम्पित होनेसे क्षुभित हो अवधि ज्ञानके द्वारा सब जान कर यहाँ आया है तथा व्यन्तर देवोकी सभामे बैठा है ॥१७९॥

इधर तपस्वियोका आचार पालन करनेमें तत्पर अनुंधर, शिष्य समूहके साथ विहार करता हुआ कौमुदी नगरीमे आया ॥१८०॥ वहाँका राजा सुमुख था और रतवती उसकी स्त्री थी

१. -भि: सद्वृत्तश्चित्तमुत्तमम् म० । २ दैगम्बरीम् । ३ जगन्मान्याजिनतीर्थाभिपूजिताम् म० । ४. हारे म० । ५. मृत्युम् । ६ सर्वदारभ्य म० ।

अवरुद्धा च सच्चेष्टा मदनेति विलासिनी । पताका मदनेनेव जित्वा लोकमुपार्जिता ॥१८२॥
साधुदत्तमुने पार्श्वे सम्यग्दर्शनमैदसौ । तत्प्राप्येतरतीर्थानि तृणतुल्यान्यमन्यत ॥१८३॥
तस्याः पुरोऽथ रहसि कदाचिदवदन्नृपः । अहोऽसौ तापसः स्थानं महतां तपसामिति ॥१८४॥
ततो मदनयाऽवाचि कीदृग्नाथेदृशां तपः । मिथ्यादृशामविज्ञानलोकदम्भनकारिणाम् ॥१८५॥
तच्छ्रुत्वा भूपतिस्तस्यै क्रुद्धः सा चागदत् पुनः । मा रुष पश्यनाथेमं मेऽचिरा पादवर्तिनम् ॥१८६॥
इत्युक्त्वा स्वगृहं गत्वा शिक्षयित्वा मनोहरम् । आत्मजां नागदत्ताख्यां प्रैषयत्तापसाश्रमम् ॥१८७॥
तस्मै सैकान्तयाताय योगस्थाय सुविभ्रमा । आस्थितामरकन्येव परमाकल्पधारिणी ॥१८८॥
वातेहिताम्बरव्याजादूरुकाण्डमदर्शयत् । मारस्यान्तःपुरस्थानं लावण्यरसनिर्भरम् ॥१८९॥
समाधानोपदेशेन कुङ्कुमद्रवपिञ्जरम् । मारवारणकुम्भाभं तथा वक्षसिजद्वयम् ॥१९०॥
कुसुमग्रहणव्याजात् स्रस्तनीविरतेर्गृहम् । नाभिमण्डलमुत्तेजः कक्षोद्देशं च सुन्दरी ॥१९१॥
अज्ञानयोगमेतस्य भित्त्वा लोचनमानसे । अपसृते प्रदेशेषु तेषु तस्याः सुबन्धने ॥१९२॥
ताडितः स्मरबाणैश्च समुत्थाय[1] समाकुलः । गत्वा शनैरपृच्छत्तां त्वं बाले कात्र वर्तसे ॥१९३॥
सन्ध्याकालेऽत्र ये केचित् प्राणिनः क्षुद्रका अपि । आलयं स्वं निषेवन्ते ननु त्वं सुकुमारिका ॥१९४॥
साबोचन्मधुरैर्वर्णैर्भिन्दन्ती हृदयस्थलीम् । लीलया बाहुलतिकामुन्नयन्ती मुखं प्रति ॥१९५॥
चलन्नीलोत्पलच्छाये धारयन्ती विलोचने । किञ्चिद्दैन्यमिव प्राप्ता बहुविस्फुरिताधरा ॥१९६॥

जो सैकड़ों स्त्रियोंमें प्रधान तथा परम सुन्दरी थी ॥१८१॥ उसी राजाके उत्तम चेष्टाको धारण करने वाली एक मदना नामकी विलासिनी (वेश्या) स्त्री थी, जो ऐसी जान पड़ती थी मानो संसार को जीत कर कामदेवके द्वारा प्राप्त की हुई पताका ही हो ॥१८२॥ उस मदनाने साधुदत्त मुनिके पास सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था जिसे पाकर वह अन्यधर्मोंको तृणके समान तुच्छ मानती थी ॥१८३॥ अथानन्तर किसी दिन राजाने मदनाके सामने कहा कि अहो! यह तापस महातपोंका स्थान है ॥१८४॥ यह सुन मदनाने कहा कि हे नाथ! इन मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी तथा लोगोंको ठगने वाले लोगोंका तप कैसा? ॥१८५॥ यह सुन राजा उसके लिए क्रुद्ध हुआ पर उसने फिर कहा कि हे नाथ! क्रोध मत कीजिए तथा इसे मेरे चरणोंमें वर्तमान देखिए ॥१८६॥ यह कह कर तथा घर जाकर उसने अपनी नागदत्ता नामकी सुन्दरी पुत्रीको सिखा कर उस तापसके आश्रममें भेजा ॥१८७॥ सुन्दर हावभाव और उत्तम वेष-भूषाको धारण करनेवाली नागदत्ता देवकन्याके समान जान पड़ती थी। वह एकान्तमें योग लेकर बैठे हुए उस तापसके पास जाकर खड़ी हो गई ॥१८८॥ हवासे हिलते हुए वस्त्रके बहाने उसने कामदेवके अन्तःपुरके समान, सौन्दर्य रससे भरे अपने ऊरू दिखाये ॥१८९॥ समाधानके बहाने केशरके द्रवसे पीले तथा कामदेवके गण्डस्थलकी तुलना धारण करनेवाले दोनों स्तन प्रकट किये ॥१९०॥ पुष्प ग्रहणके बहाने नीवी ढीलीकर जघन स्थान दिखाया, देदीप्यमान नाभिमण्डल और सुन्दर बगले भी दिखलाई ॥१९१॥ उस तापसके नेत्र और मन अज्ञानपूर्ण योगका भेदन कर उस नागदत्ताके उन-उन प्रदेशों पर पड़ने लगे तथा वहीं बन्धनसे युक्त हो गये ॥१९२॥ तदनन्तर कामके बाणोंसे ताडित तपस्वी अत्यन्त व्याकुल होता हुआ उठकर उसके पास गया और धीरेसे उससे पूछने लगा कि हे बाले! तू कौन है? और यहाँ कहाँ आई है? ॥१९३॥ इस सन्ध्याके समय छोटे-मोटे प्राणी भी अपने घर रहते हैं फिर तू तो अत्यन्त सुकुमार है ॥१९४॥ नागदत्ता मधुरवर्णोंसे उसका हृदयस्थल भेदती, लीलापूर्वक भुजलताको मुखकी ओर ऊपर उठाती, चञ्चल नील कमलके समान कान्तिके धारक नेत्रोंको धारण करती, कुछ-कुछ

[1] समुच्छ्राय म० ।

श्रृणु नाथ ! दयागार ! शरणागतवत्सल ! । अम्बयाऽहं विना दोषादद्य निर्वासिता गृहात् ॥१९७॥
काषायप्रावृता चाहं भवदीयामिमां स्थितिम् । आचरामि प्रसादं मे कुरु नाथानुमोदनात् ॥१९८॥
शुश्रूषां भवतः कृत्वा दिवा नक्तं च भक्तया । इह लोको मया लब्धः परलोकश्च जायते ॥१९९॥
किं तद्धर्मार्थकामेषु न यद्भवति लभ्यते । निधानमसि काम्यानां मया पुण्येन वीक्षितः ॥२००॥
इति सम्भाषिते तस्या विज्ञाय प्रगुणं मनः । स्मरेण दह्यमानोऽसावब्रवीदिति विक्लवः[1] ॥२०१॥
भद्रे कोऽहं प्रसादस्य प्रसीद त्वं ममोत्तमे । भजस्व भक्तिमेषोऽहं यावज्जीवं करोमि ते ॥२०२॥
इत्युक्त्वालिङ्गितुं क्षिप्रं तं प्रसारितबाहुकम् । अगदीत् पाणिना कन्या वारयन्तीति सादरा[2] ॥२०३॥
न वर्तते इदं कर्तुं कन्याहं विधिवर्जिता । पृच्छ मे[3] मातरं गत्वा गृहेऽस्मिन् दृश्यतोरणे ॥२०४॥
परा कारुण्ययुक्तेयं भवतः शेमुषी यथा । एतां प्रसादयावश्यं तुभ्यमेषा ददाति माम् ॥२०५॥
एवमुक्तस्तया साकं त्वरया व्याकुलक्रमः । वेश्माविशद्विलासिन्याः सवितर्यस्तमागते ॥२०६॥
[4]मन्मथाकृष्टनिःशेषहृषीकविषयो ह्यसौ । किञ्चिद्वेत्ति स्म नोपायं [5]विशन्वारीमिव द्विपः ॥२०७॥
न श्रृणोति स्मरग्रस्तो न जिघ्रति न पश्यति । न जानात्यपरस्पर्शं न बिभेति न लज्जते ॥२०८॥
आश्चर्यं[6] मोहतः कष्टमनुतापं प्रपद्यते । अन्धो निपतितः कूपे यथा पन्नगसेविते ॥२०९॥
वेश्याचरणयोश्चासौ कृत्वा विलुठितं शिरः । याचते कन्यकां पूर्वसञ्जितश्चाविशन्नृपः ॥२१०॥

दीनताको प्राप्त होती तथा अधरोष्ठको बार-बार हिलाती हुई बोली ॥१९५–१९६॥ कि हे नाथ ! हे दयाके आधार ! हे शरणागत वत्सल ! सुनिये, आज मेरी माताने मुझे अपराधके बिना ही घरसे निकाल दिया है ॥१९७॥ सो हे नाथ ! अब मैं गेरुआ वस्त्र धारणकर आपकी इस वृत्तिका आचरण करूँगी, आप अनुमति देकर मुझपर प्रसाद कीजिये ॥१९८॥ रात-दिन आपकी सेवा करनेसे मेरा यह लोक तथा परलोक दोनों ही सुधर जावेंगे ॥१९९॥ धर्म अर्थ और काममें ऐसा कौन पदार्थ है जो आपके पास प्राप्त न हो सके, आप समस्त मनोरथोंके भाण्डार हैं। पुण्यसे ही आपके दर्शन हुए हैं ॥२००॥ इस प्रकार कहने पर उसका मन वशीभूत जान कामसे जलता हुआ तापस व्याकुल होता हुआ इस प्रकार बोला ॥२०१॥ कि हे भद्रे ! प्रसाद करनेके लिए मैं कौन होता हूँ ? हे उत्तमे ! तुम्हीं मुझपर प्रसाद करो, स्वीकृत करो, मैं जीवन पर्यन्त तुम्हारी भक्ति करूँगा ॥२०२॥ ऐसा कहकर उसने आलिङ्गन करनेके लिए शीघ्र ही अपनी भुजा पसारी तब आदरके साथ उसे हाथसे रोकती हुई कन्याने कहा ॥२०३॥ कि यह करना उचित नहीं है, मैं कुमारी कन्या हूँ जिसका तोरण दिखाई दे रहा है, ऐसे इस घरमें जाकर मेरी मातासे पूछो ॥२०४॥ आपकी बुद्धिके समान वह परम दयासे युक्त है, उसे प्रसन्न करो वह अवश्य ही मुझे तुम्हारे लिए दे देगी ॥२०५॥ इस प्रकार नागदत्ताके कहने पर वह सूर्यास्तके अनन्तर अटपटे पैर रखता हुआ उसके साथ वेश्याके घर गया ॥२०६॥ जिसके समस्त इन्द्रियोंके विषय कामसे आकृष्ट हो चुके थे, ऐसा वह तापस वारी (बन्धन) में प्रवेश करनेवाले हाथीके समान कुछ भी उपाय नहीं जानता था ॥२०७॥ सो ठीक ही है, क्योंकि कामसे ग्रस्त मनुष्य न सुनता है, न सूंघता है, न देखता है, न दूसरेका स्पर्श जानता है, न डरता है और न लज्जित ही होता है ॥२०८॥ जिस प्रकार अन्धा मनुष्य साँपोंसे भरे कुएँमें गिरकर कष्ट और सन्तापको प्राप्त होता है उसी प्रकार यह कामी मनुष्य मोहवश कष्ट और सन्तापको प्राप्त होता है, यह आश्चर्यकी बात है ॥२०९॥ तदनन्तर वह तापस वेश्याके चरणोंमें शिर झुकाकर कन्याकी याचना करता है और उसी समय

१. विलुवः म० । २ विशारदा म० । ३. पृच्छाव म० । ४. तत्कथा- म० । ५ विशत्वारीं म० । विशन्वारी ख० । ६. आचार्यं म० ब० ।

स्थापितो बन्धयित्वाऽसौ राज्ञा नक्तं समीक्षितः । खलीकारं प्रभाते च प्रकटं प्रापितः परम् ॥२११॥
ततोऽपमाननिर्दग्धः परं दुःखं समुद्वहन् । भ्राम्यन् महीं मृतः क्लेशयोनिषु भ्रमणं स्थितः ॥२१२॥
ततः कर्मानुभावेन मनुष्यभवमागतः । दारिद्र्यपङ्कनिर्मग्नं जनादरविवर्जितम् ॥२१३॥
गर्भस्थ एव चैतस्मिन् विदेशं जनको गतः । उद्वेजितः कुटुम्बिन्या कलहक्रूरवाक्यया ॥२१४॥
कुमारे च हता माता म्लेच्छेन विषयाहतौ । दुःखं च परमं प्राप्तः सर्वबन्धुविवर्जितः ॥२१५॥
ततस्तापसतां प्राप्य कृत्वा बालतपः परम् । ज्योतिर्लोकं समारुह्य नाम्ना वह्निप्रभोऽभवत् ॥२१६॥
अनन्तवीर्यनामाथ केवली सेवितः सुरैः । इत्यन्तेवासिना पृष्टो धर्मचिन्तागतात्मना ॥२१७॥
मुनिसुव्रतनाथस्य तीर्थेऽस्मिन् भवता समः । कोऽन्योऽनुभविता भव्यो लोकस्योत्तरकारणम् ॥२१८॥
सोऽवोचन्मयि निर्वाणं गतेऽत्र श्रमणाश्रितौ । देशभूषण इत्येको द्वितीयः कुलभूषणः ॥२१९॥
भवितारौ जगत्सारौ केवलज्ञानदर्शिनौ । यौ समाश्रित्य लोकोऽयं तरिष्यति भवार्णवम् ॥२२०॥
सोऽपि वह्निप्रभस्तस्माच्छ्रुत्वा केवलिनो मुखात् । अवस्थानं निजं यातो दध्यौ केवलिभाषितम् ॥२२१॥
अन्यदावधिना ज्ञात्वा योगिनाविह नौ गिरौ । अनन्तवीर्यसर्वज्ञमिथ्यावाक्यं करोम्यहम् ॥२२२॥
एवमुक्त्वाभिमानेन परमेणातिमोहितः । आगतः पूर्ववैरेण कर्तुं परमुपद्रवम् ॥२२३॥
चरमाङ्गधरं दृष्ट्वा स भवन्तमतिद्रुतम् । सुरेन्द्रकोपभीत्या च तिरोधानमुपागतः ॥२२४॥
नारायणसमेतेन प्रातिहार्ये त्वया कृते । केवलज्ञानमस्माकं जातं घातिपरिक्षये ॥२२५॥

पूर्वसंकेतानुसार राजा प्रवेश करता है ॥२१०॥ राजाने उसे बँधवा कर रात्रिभर रक्खा और सवेरे छान-बीन कर सबके समक्ष उसका परम तिरस्कार किया ॥२११॥ तदनन्तर अपमानसे जला तापस परम दुःखको धारण करता हुआ पृथ्वी पर भ्रमण करता रहा और अन्तमें मरकर दुःखदायी योनियोंमें भटकता रहा ॥२१२॥ तदनन्तर कर्मोंके प्रभावसे मनुष्य भवको प्राप्त हुआ सो दरिद्रतारूपी कीचड़में निमग्न तथा लोगोंके आदरसे रहित नीच कुलमें उत्पन्न हुआ ॥२१३॥ जब वह गर्भमें था तभी कलहके समय क्रूर वचन कहनेवाली स्त्रीसे उद्विग्न होकर इसका पिता परदेश चला गया था ॥२१४॥ तथा जब वह बालक ही था तभी म्लेच्छोंके द्वारा देश पर आक्रमण होनेसे इसकी माता मर गई । इस तरह सर्व बन्धुओंसे रहित होकर वह परम दुःखको प्राप्त होता रहा ॥२१५॥ तदनन्तर तापस होकर तथा कठिन बालतपकर ज्यौतिष लोकमें अग्निप्रभ नामक देव हुआ ॥२१६॥

अथानन्तर एक समय धर्म की चिन्तामें जिसका मन लग रहा था ऐसे शिष्यने देवोंके द्वारा सेवित अनन्तवीर्य नामा केवलीसे पूछा कि हे नाथ ! मुनिसुव्रत भगवान्‌के इस तीर्थमें आपके समान ऐसा दूसरा कौन भव्य होगा जो संसार समुद्रसे पार होनेका कारण होगा ॥२१७–२१८॥ तब अनन्तवीर्य केवलीने उत्तर दिया कि मेरे मोक्ष चलेजानेके बाद मुनियोंकी इस भूमिमें एक देशभूषण और दूसरा कुलभूषण इस प्रकार दो केवली होंगे । ये जगत्‌के सारभूत तथा केवलज्ञान और दर्शनके धारक होंगे । इनका आश्रय लेकर भव्यजीव संसार-सागरसे पार होंगे २१९–२२०॥ वह अग्निप्रभदेव केवलीके मुखसे यह सुनकर तथा उन्हींके कथनका ध्यान करता हुआ अपने स्थानपर चला गया ॥२२१॥ एक दिन अवधिज्ञानसे वह हम दोनों मुनियोंको इस पर्वतपर विद्यमान जानकर 'मैं अनन्तवीर्यसर्वज्ञके वचन मिथ्या करता हूँ' इस प्रकार कहकर तीव्र मोहसे मोहित होता हुआ पूर्व वैरके कारण परम उपद्रव करनेके लिए यहाँ आया ॥२२२–२२३॥ सो चरमशरीरी आपको देखकर तथा इन्द्रके क्रोधसे भयभीत हो शीघ्र ही तिरोधानको प्राप्त हुआ अर्थात् भाग गया ॥२२४॥ तुम बलभद्र हो और लक्ष्मण नारायण सो इसके साथ तुमने हमारा उपसर्ग दूर किया अतः घातिया कर्मोंका क्षय होनेपर हमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ

६. देशाघाते सति ।

इति गत्यागती श्रुत्वा प्राणिनां वैरकारिणाम् । वैरानुबन्धमुत्सृज्य स्वस्था भवत जन्तवः ॥२२६॥
महापूतमिति श्रुत्वा वचनं केवलीरितम् । मुहुः सुरासुरा नेमुस्ते भीता भवदुःखतः ॥२२७॥
तावच्च गरुडाधीशः परमं सम्पदं श्रितः । नत्वा केवलिनः पादौ शीर्षकञ्जार्पितालिकः ॥२२८॥
ऊचे रघुकुलोद्योतं विलसन्मणिकुण्डलम् । स्निग्धां प्रसारयन् दृष्टिं प्रेमतर्पितमानसः ॥२२९॥
प्रातिहार्यं कृतं येन त्वया मत्सुनयोः परम् । ततस्तुष्टोऽस्मि याचस्व वस्तु यत्तेऽभिरोचते ॥२३०॥
क्षणं चिन्तागतः स्थित्वा जगाद रघुनन्दनः । त्वयासुरप्रसन्नेन स्मर्तव्या वयमापदि ॥२३१॥
साधुसेवाप्रसादेन फलमेतदुपागतम् । अङ्गीकर्तव्यमस्माभिर्भवद्वारविनिर्गतम् ॥२३२॥
एवमस्त्विति तेनोक्ते दध्मुः शङ्खान् दिवौकसः । भेर्यश्च मेघनिनदा सानुवाद्याः समाहताः ॥२३३॥
साधुपूर्वभवं श्रुत्वा संवेगं परमं श्रिताः । प्राव्रजन्जना केचिदन्येऽणुव्रतमाश्रिताः ॥२३४॥

इन्दुवदनावृत्तम्

देशकुलभूषणमुनी तु जगदर्च्यौ सर्वभवदुःखमलसङ्गमविमुक्तौ ।
ग्रामपुरपर्वतमटम्बपरिरम्यान् बभ्रमतुरुत्तमगुणैरुपचिन्तागान् ॥२३५॥
देशकुलभूषणमहामुनिभवं ये वृत्तमतिपूतमिदमुत्कटसुभावाः ।
[3]श्रोत्रवचसोर्विषयतामुपनयन्ते ते रविनिभा दुरितमाशु विसृजन्ति ॥२३६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते देशकुलभूषणोपाख्यानं नामैकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥३९॥

है ॥२२५॥ इस प्रकार वैर करनेवाले प्राणियोंकी गति आगतिको सुनकर हे प्राणियो ! परस्परका वैर छोड़ स्वस्थ होओ अर्थात् आत्मस्वरूपमें लीन होओ ॥२२६॥ इस प्रकार केवली भगवान्‌के द्वारा उच्चरित महापवित्र वचन सुनकर संसारके दुःखोंसे भयभीत हुए सुर और असुरोंने उन्हें बार बार नमस्कार किया ॥२२७॥

इतनेमें ही परम ऐश्वर्यको प्राप्त सुवर्ण कुमारोंके पतिने हाथ जोड़कर मस्तकसे लगा केवली भगवान्‌के चरणकमलमें नमस्कार कर देदीप्यमान मणिमय कुण्डलोंके धारक रामसे कहा। उस समय वह गरुडेन्द्र रामकी ओर स्नेह पूर्ण दृष्टि डाल रहा था तथा प्रेमसे उसका मन सन्तुष्ट हो रहा था ॥२२८-२२९॥ उसने कहा कि चूँकि तुमने हमारे पुत्रोंकी परम सेवा की है इसलिए मैं तुम पर प्रसन्न हूँ तुम्हें जो वस्तु रुचती हो वह माँग लो ॥२३०॥ राम क्षणभर चिन्ता करते हुए चुपचाप बैठे रहे। तदनन्तर बोले कि हे देव ! यदि प्रसन्न हो आपत्तिके समय हम लोगोंका स्मरण रखना ॥२३१॥ साधुसेवाके प्रसादसे ही यह प्राप्त हुआ कि आप जैसे सत्पुरुषोंके साथ मिलाप हुआ तथा संसारके द्वारसे निकलनेका मार्ग मिला ॥२३२॥ 'ऐसा ही हो' इस प्रकार गरुडेन्द्रके कहने पर देवोंने शङ्ख फूँके तथा अनेक प्रकारके वादित्रोंके साथ मेघोंके समान शब्द करनेवाली भेरियाँ बजाईं ॥२३३॥ मुनियोंके पूर्वभव सुन कर परम संवेगको प्राप्त हुए कितने ही लोगोंने दीक्षा धारण कर ली और कितने ही लोग अणुव्रतोंके धारी हुए ॥२३४॥ जगत्‌के द्वारा पूजनीय तथा संसारके समस्त दुःखरूपी मलके समागमसे रहित देशभूषण, कुलभूषण केवली उत्तम गुणोंसे युक्त ग्रामपुर पर्वत तथा मटम्ब आदि रमणीय स्थानोंमें विहारकर धर्मका उपदेश देने लगे ॥२३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जो देशभूषण, कुलभूषण, महामुनियोंके इस अतिशय पवित्र चरित्रको उत्तम भावोंसे युक्त हो सुनते हैं तथा कथन कर दूसरोंको सुनाते हैं वे सूर्यके समान देदीप्यमान होकर शीघ्र ही पापोंका त्याग करते हैं ॥२३६॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें देशभूषण कुलभूषण केवलीका व्याख्यान करनेवाला उनतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३९॥

---

१ हस्तकमलार्पितभालः । २ भेर्यश्च म० । ३ श्रोतवचसो म० ।

चत्वारिंशत्तमं पर्व

श्रुत्वा केवलिनः पद्ममन्त्यविग्रहधारिणम्[1] । स्तुत्वा सजयनिस्वानं प्रणेमुः सर्वपार्थिवाः ॥१॥
वंशस्थलपुरेशश्च महाचित्तः सुरप्रभः । सलक्ष्मणं सपत्नीकं पद्मनाभमपूजयत् ॥२॥
प्रासादशिखरच्छायाधवलीकृतपुष्करम्[2] । नावृणोन्नगरं[3] गन्तुं रामो राज्ञापि याचितः ॥३॥
वंशाद्रिशिखरे रम्ये हिमवच्छिखरोपमे[4] । समविस्तीर्णसद्वर्णरमणीयशिलातले ॥४॥
नानावृक्षलताकीर्णे नानाशकुनिनादिते । सुगन्धानिलसम्पूर्णे नानापुष्पफलाकुले ॥५॥
पद्मोत्पलवनाढ्याभिर्वापीभिरतिशोभिते । सर्वर्तुसहितोद्युक्त[5]वसन्तकृतसेवने ॥६॥
[6]सज्जिता परमा भूमिः शुद्धादर्शतलोपमा । दशार्धवर्णरजसा कल्पितानेकभक्तिका ॥७॥
कुन्दातिमुक्तकलता वकुलाः कमलानि च । यूथिका मल्लिका नागा अशोकाश्चारुपल्लवाः ॥८॥
एते चान्ये च भूयासश्चारुभासः सुगन्धयः । भावारम्यविलासाभिः प्रमदाभिः प्रकल्पिताः ॥९॥
बद्ध्वा परिकरं पुम्भिः सुविदग्धैः सुसम्भ्रमैः । मङ्गलालापसम्पन्नैः स्वामिभक्तिपरायणैः ॥१०॥
मेघकाण्डानि वस्त्राणि नानाचित्रधराणि च । प्रसारितानि रुद्राणि[7] वैजयन्तीशतानि च ॥११॥
किङ्किणीजालयुक्तानि मुक्तादामशतानि च । चामराणि विचित्राणि लम्बूषमणिपट्टिका ॥१२॥
दर्पणा बुद्बुदावल्यो विस्फुरद्भास्कराशवः । न्यस्तान्येतानि तुङ्गेषु तोरणेषु ध्वजेषु च ॥१३॥
अवनौ पूर्णकलशाः स्थापिता विधिसयुताः । हंसा इव निविष्टास्ते विरेजुर्नलिनीवने ॥१४॥

अथानन्तर केवली भगवान्‌के मुखसे रामको चरमशरीरी जानकर समस्त राजाओंने जयध्वनि के साथ स्तुति कर उन्हें नमस्कार किया ॥१॥ और उदार चित्तके धारक वंशस्थलपुर नगरके राजा सुरप्रभने लक्ष्मण तथा सीता सहित रामकी की भक्ति की ॥२॥ जो महलोंके शिखरोंकी कान्तिसे आकाशको धवल कर रहा था ऐसे नगरमें चलनेके लिए राजाने रामसे बहुत याचना की परन्तु उन्होंने स्वीकृत नहीं किया ॥३॥ तब जो अतिशय रमणीय था, हिमगिरिके शिखरके समान था, जहाँ एक समान लम्बे चौड़े अच्छे रङ्गके मनोहर शिलातल थे, जो नाना वृक्षों और लताओंसे व्याप्त था, नाना पक्षी जहाँ शब्द कर रहे थे, जो सुगन्धित वायुसे पूर्ण था, नाना प्रकारके पुष्पों और फलोंसे युक्त था, कमल और उत्पलके वनोंसे युक्त वापिकाओंसे जो अत्यन्त शोभित था, तथा सब ऋतुओंके साथ आकर वसन्त ऋतु जिसकी सेवा कर रही थी, ऐसे वंशधर पर्वतके शिखर पर शुद्ध दर्पणतलके समान उत्कृष्ट भूमि तैयार की गई। उस भूमि पर पाँच वर्णकी धूलि से अनेक चित्राम बनाये गये थे ॥४-७॥ अनेक प्रकारके भावोंसे रमणीय चेष्टाओंको धारण करनेवाली स्त्रियोंने वहाँ उसी पञ्चवर्णकी परागसे कुन्द, अतिमुक्तकलता, मौलश्री, कमल, जुही, मालती, नागकेशर और सुन्दर पल्लवोंसे युक्त अशोक वृक्ष, तथा इनके सिवाय सुन्दर कान्ति और सुगन्धिको धारण करनेवाले बहुतसे अन्य वृक्ष बनाये ॥८-९॥ चतुर, उत्तम चेष्टाओंके धारक, मङ्गलमय वार्तालापमें तत्पर और स्वामि भक्तिमें निपुण मनुष्योंने बड़ी तैयारीके साथ नाना चित्रोंको धारण करनेवाले बादली रङ्गके वस्त्र फैलाये, सैकड़ों सघन पताकाएँ फहराईं ॥१०-११॥ छोटी-छोटी घण्टियोंसे युक्त सैकड़ों मोतियोंकी मालाएँ, चित्र-विचित्र चमर, मणिमय फानूस, दर्पण, तथा जिनपर सूर्यकी किरणें प्रकाशमान हो रही थीं ऐसे अनेक छोटे-छोटे गोले ये सब ऊँचे-ऊँचे तोरणों तथा ध्वजाओंमें लगाये ॥१२-१३॥ पृथिवी पर

---

१ चरमशरीरिणम्। २. गगनम्। ३. आवृणोन्नगरं ख०। ४ हिमवच्छिशिरोपमे म०। ५. युक्ते म०। ६. सर्जिता म०। ७ सघनानि रुद्राणि म०।

यत्र यत्र पदन्यास करोति रघुनन्दन । तत्र तत्रोरुपद्मानि स्थापितानि महीतले ॥१५॥
शयनान्यासनै साक रचितानि यतस्तत । मणिकाञ्चनचित्राणि सुखस्पर्शधराण्यलम् ॥१६॥
सलवङ्गादिताम्बूल प्रवराण्यशुकानि च । महासुगन्धयो गन्धा भास्वन्त्याभरणानि च ॥१७॥
सूदगेहसमेतानि कन्दूशालाशतानि च । बहुभेदान्नपूर्णानि कृतयत्नानि सर्वत ॥१८॥
गुडेन सर्पिषा दध्ना भू क्वचिद् भाति पङ्किला । इति कर्तव्यताभाजा जनेनादरिणान्विता ॥१९॥
स्वाहारेण क्वचित्तृप्ता पथिका स्वेच्छया स्थिता । प्रसादयन्ति विश्रब्धा सङ्कथाबद्धगुल्मका ॥२०॥
क्वचिन्ना शेखरी भाति मदिरामत्तलोचन । क्वचित् सीमन्तिनी मत्ता वकुलामोदवाहिनी ॥२१॥
क्वचिन्नाट्य क्वचिद् गीत क्वचित्सुकृतसङ्कथा । क्वचित् कान्तै सम नार्यो रमन्ते चारुविभ्रमा ॥२२॥
दत्तप्रेङ्खा क्वचित् स्मेरै सलीलैर्विटपुङ्गवै । विलासिन्यो विराजन्ते गीर्वाणगणिकोपमा ॥२३॥
रामलक्ष्मणयोर्यानि रचितानि समीतयो । क्रीडाधामानि कस्तानि नरो वर्णयितु क्षम ॥२४॥
नानाभूषणयुक्ताङ्गौ सुमाल्याम्बरधारिणौ । यथेप्सितकृताहारौ श्रिया परमयान्वितौ ॥२५॥
सीता चाक्लिष्टसौभाग्या दुरितासङ्गवर्जिता । रमते तत्र चेष्टाभि शास्त्रदृष्टाभिरुज्ज्वलम् ॥२६॥
तत्र वशगिरौ राजन् रामेण जगदिन्दुना । निर्मापितानि चैत्यानि जिनेशाना सहस्रश ॥२७॥
महावष्टम्भसुस्तम्भा युक्तविस्तारतुङ्गता । गवाक्षहर्म्यवलभीप्रभृत्याकारशोभिता ॥२८॥
सतोरणमहाद्वारा सशाला परिखान्विता । सितचारुपताकाढ्या बृहद्घण्टारवाचिता ॥२९॥

जहाँ-तहाँ विधिपूर्वक पूर्ण कलश रक्खे गये थे जो कमलिनीके वनमे बैठे हुए हसोके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१४॥ श्रीराम जहाँ-जहाँ चरण रखते थे वहाँ-वहाँ पृथिवी तल पर बडे-बड़े कमल रख दिये गये थे ॥१५॥ जहाँ-तहाँ मणियो और सुवर्णसे चित्रित तथा अतिशय सुख-दायक स्पर्शको धारण करनेवाले आसन और सोनेके स्थान बनाये गये थे ॥१६॥ लवग आदिसे सहित ताम्बूल, उत्तम वस्त्र, महासुगन्धित गन्ध और देदीप्यमान आभूषण वहाँ जहाँ-तहाँ रक्खे गये थे ॥१७॥ जो सब ओरसे नाना प्रकारकी भोजन-सामग्रीसे युक्त थी तथा जिनमे रसोई घर अलगसे बनाया गया था ऐसी सैकडो भोजनशालाएँ वहाँ निर्मित की गई थीं ॥१८॥ वहाँ की भूमि कहीं गुड़, घी और दहीसे पकिल (कीचसे युक्त) होकर सुशोभित हो रही थी तो कही कर्तव्य पालन करनेमे तत्पर आदरसे युक्त मनुष्योसे सहित थी ॥१९॥ कही मधुर आहारसे तृप्त हुए पथिक अपनी इच्छासे बैठे थे तो कही निश्चिन्तताके साथ गोष्ठी बनाकर एक दूसरेको प्रसन्न कर रहे थे ॥२०॥ कही सेहरेको धारण करनेवाला और मदिराके नशामे झूमते हुए नेत्रोंसे युक्त मनुष्य दिखाई देता था तो कही मौलश्रीकी सुगन्धिको धारण करनेवाली नशासे भरी स्त्री दृष्टिगत होती थी ॥२१॥ कही नाट्य हो रहा था, कही संगीत हो रहा था, कहीं पुण्य चर्चा हो रही थी, ओर कहीं सुन्दर विलासोसे सहित स्त्रियाँ पतियोके साथ क्रीड़ा कर रही थी ॥२२॥ कहीं मुसकराते तथा लीलासे सहित विट पुरुष जिन्हें धक्का दे रहे थे, ऐसी देव नर्तकियोके समान वेश्याएँ सुशोभित हो रही थीं ॥२३॥ इस प्रकार सीता सहित रामलक्ष्मणके जो क्रीड़ास्थल बनाये गये थे उनका वर्णन करनेके लिए कौन मनुष्य समर्थ है ? ॥२४॥ जिनके शरीर नाना प्रकारके आभूषणोसे सहित थे, जो उत्तमोत्तम मालाएँ और वस्त्र धारण करते थे, जो इच्छानुसार क्रीड़ा करते थे ॥२५॥ और अखण्ड सौभाग्यको धारण करनेवाली तथा पापके समागमसे रहित सीता वहाँ शास्त्र निरूपित चेष्टाओसे उज्वल क्रीड़ा करती थी ॥२६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस वंशगिरि पर जगत्के चन्द्र स्वरूप रामने जिनेन्द्र भगवान्की हजारो प्रतिमाएँ बनवाईं थीं ॥२७॥ तथा जिनमें महामजबूत खम्भे लगवाये गये थे, जिनकी चौड़ाई तथा ऊँचाई योग्य थी, जो झरोखे, महलो तथा छपरी आदिकी रचनासे शोभित थे, जिनके बड़े-बड़े द्वार तोरणोंसे युक्त थे, जिनमें अनेक शालाएँ निर्मित थीं, जो परिखासे सहित थे, सफेद और

मृदङ्गवंशमुरजसङ्गीतोत्तमनिस्वनाः । झर्झरैरानकैः शङ्खभेरीभिश्च महारवाः ॥३०॥
सततारब्धनिःशेषरम्यवस्तुमहोत्सवाः । विरेजुस्तत्र रामीया जिनप्रासादपङ्क्तयः ॥३१॥
रेजिरे प्रतिमास्तत्र सर्वलोकनमस्कृताः । पञ्चवर्णा जिनेन्द्राणां सर्वलक्षणभूषिताः ॥३२॥
अन्यदाथ महीपालरामो राजीवलोचनः । लक्ष्मीधरमुवाचेदं क्रियते किमतः परम् ॥३३॥
इह सम्प्रेरितः कालः सुखेन परमे गिरौ । जिनचैत्यसमुत्थाना स्थापिता कीर्तिरुज्ज्वला ॥३४॥
अनेन भूभृता श्रेष्ठैरुपचारशतैर्हृता । अत्रैव[1] यदि तिष्ठामस्तदा कार्यं विनश्यति ॥३५॥
इह तावदलं भोगैरिति चिन्तयतोऽपि मे । न मुञ्चति क्षणमपि प्रवरा[2] भोगसन्ततिः ॥३६॥
इह यत् क्रियते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते । पुराकृतानां पुण्यानां इह सम्पद्यते फलम् ॥३७॥
अस्माकमत्र वसतां बिभ्रतां सुखसम्पदम् । अमी ये दिवसा यान्ति न तेषां पुनरागमः ॥३८॥
नदीनां चण्डवेगानामायुषो दिवसस्य च । यौवनस्य च सौमित्रे यद्गतं गतमेव तत् ॥३९॥
नद्याः कर्णरवायास्तु परतो रोमहर्षणम् । श्रूयते दण्डकारण्यं दुर्गमं क्षितिचारिभिः ॥४०॥
[3]भारती न विशत्याज्ञा तस्मिन् जनपदोज्झिते । तत्रार्णवतटं श्रित्वा विद्ध्मः क्वचिदालयम् ॥४१॥
यदाज्ञापयसीत्युक्ते कुमारेण ससम्भ्रमम् । सुरेन्द्रसदृशं भोगं मुक्त्वा ते निर्गतास्त्रयः ॥४२॥
अनुगत्य सुदूरं तौ बलोपेतः सुरप्रभः । कृच्छ्रान्निवर्तितस्ताभ्यां शोकी पुरमुपागतः ॥४३॥

सुन्दर पताकाओंसे युक्त थे, बड़े-बड़े घण्टाओंके शब्दसे व्याप्त थे, जिनमें मृदंग, बाँसुरी और मुरजका संगीतमय उत्तम शब्द फैल रहा था, जो झाँझों, नगाड़ों, शङ्खों और भेरियोंके शब्दसे अत्यन्त शब्दायमान थे और जिनमें सदा समस्त सुन्दर वस्तुओंके द्वारा महोत्सव होते रहते थे ऐसे रामके बनवाये जिनमन्दिरोंकी पंक्तियाँ उस पर्वत पर जहाँ-तहाँ सुशोभित हो रही थीं ॥२८–३१॥ उन मन्दिरोंमें सब लोगोंके द्वारा नमस्कृत तथा सब प्रकारके लक्षणोंसे युक्त पञ्चवर्णकी जिनप्रतिमाएँ सुशोभित थीं ॥३२॥

अथानन्तर एक दिन कमललोचन राजा रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा कि अब आगे क्या करना है ? ॥३३॥ इस उत्तम पर्वत पर समय सुखसे व्यतीत किया तथा जिनमन्दिरोंके निर्माणसे उत्पन्न उज्ज्वल कीर्ति स्थापित की ॥३४॥ इस राजाकी सैकड़ों प्रकारकी उत्तमोत्तम सेवाओंके वशीभूत होकर यदि यहीं रहते हैं तो संकल्पित कार्य नष्ट होता है ॥३५॥ यद्यपि मैं सोचता हूँ कि मुझे इन भोगोंसे प्रयोजन नहीं है तो भी यह उत्तम भोगोंकी सन्तति क्षण भरके लिए भी नहीं छोड़ती है ॥३६॥ जो कर्म इस लोकमें किया जाता है उसका उपभोग परलोकमें होता है और पूर्व भवमें किये हुए पुण्य कर्मोंका फल इस भवमें प्राप्त होता है ॥३७॥ यहाँ रहते तथा सुख-सम्पदाको धारण करते हुए हमारे जो ये दिन बीत रहे हैं उनका फिरसे आगमन नहीं हो सकता ॥३८॥ हे लक्ष्मण ! तीव्र वेगसे बहनेवाली नदियों, आयुके दिन और यौवनका जो अंश चला गया वह चला ही गया फिर लौटकर नहीं आता ॥३९॥ कर्णरवा नदीके उस पार रोमाञ्च उत्पन्न करनेवाला तथा भूमिगोचरियोंका जहाँ पहुँचना कठिन है ऐसा दण्डक वन सुना जाता है ॥४०॥ देशोंसे रहित उस वनमें भरतकी आज्ञाका प्रवेश नहीं है इसलिए वहाँ समुद्रका किनारा प्राप्त कर घर बनावेंगे ॥४१॥ 'जो आज्ञा हो' इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर राम-लक्ष्मण और सीता तीनों ही इन्द्र सदृश भोग छोड़कर वहाँसे निकल गये ॥४२॥ वंशस्थविलपुरका राजा सुरप्रभ अपनी सेनाके साथ बहुत दूर तक उन्हें पहुँचानेके लिए गया। राम-लक्ष्मण उसे बड़ी कठिनाईसे लौटा सके। तदनन्तर शोकको धारण करता हुआ वह अपने नगरमें वापिस आया ॥४३॥

---

१ ह्वदि म० । २. प्रवरो म० । ३. भरत सम्बन्धिनी । ४ तदा च्छ्रुत्वा म० (?) । ५. मुक्त्वा म० ।

उपजातिवृत्तम्

एषोऽपि तुङ्गः परमो महीध्रः श्रीमन्नितम्बो बहुधातुसानुः ।
विलिम्पतीभिः ककुभां समूहं भासार्चकाज्जैनगृहावलीभिः ॥४४॥
रामेण यस्मात्परमाणि तस्मिन् जैनानि वेश्मानि विधापितानि ।
निर्नष्टवशाद्रिवचाः स तस्माद्रविप्रभो रामगिरिः प्रसिद्धः ॥४५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते रामगिर्युपाख्यानं नाम चत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४०॥



इधर जिसकी मेखलाएँ शोभासे सम्पन्न थी, तथा जिसके शिखर अनेक धातुओंसे युक्त थे ऐसा यह ऊँचा उत्तम पर्वत दिशाओंके समूहको लिप्त करनेवाली जिनमन्दिरोंकी पङ्क्तिसे अतिशय सुशोभित होता था ॥४४॥ चूँकि उस पर्वत पर रामचन्द्रने जिनेन्द्र भगवान्‌के उत्तमोत्तम मन्दिर बनवाये थे इसलिए उसका वशाद्रि नाम नष्ट हो गया और सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला वह पर्वत 'रामगिरि'के नामसे प्रसिद्ध हो गया ॥४५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें रामगिरिका वर्णन करनेवाला चालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४०॥

४. अचकात् शुशुभे ।

एकचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथानरण्यनप्तारौ श्रीमन्तौ सीतयान्वितौ । दिदृक्षू दक्षिणाम्भोधिमायाता सुखभागिनो[1] ॥१॥
पुरग्रामसमाकीर्णानतीत्य विषयान् बहून् । प्रविष्टौ तौ महारण्य नानामृगसमाकुलम् ॥२॥
यस्मिन्न विद्यते पन्था स्थान नार्यनिषेवितम् । पुलिन्दानामपि प्रायो दुश्चर यन्नगाकुलम् ॥३॥
नानावृक्षलताकीर्णं महाविषमगह्वरम् । गुहान्धकारगम्भीर वहन्निर्झरनिम्नगम् ॥४॥
क्रोश क्रोश शनैस्तत्र गच्छन्तौ जानकीवशात् । निर्भयौ क्रीडनोद्युक्तो प्राप्तो कर्णरवा नदीम् ॥५॥
यस्यास्तटानि रम्याणि तृणैर्युक्तानि भूरिभि [2]समान्यायतदेशानि स्पर्शं बिभ्रति सौख्यदम् ॥६॥
अनत्युच्चैर्घनच्छायै फलपुष्पविभूषितै । रेजुस्तटद्रुमैस्तस्या समीपधरणीधरा ॥७॥
वनमेतदल चारु नदी चेति [3]निरूप्य तौ । रम्ये तत्र तरुच्छायेऽवस्थितौ सीतयान्वितौ ॥८॥
क्षण स्थित्वाऽतिरम्याणि सैकतान्यवगाह्य च । जलावगाहन चक्रुस्ते रम्यक्रीडयोचितम् ॥९॥
ततो मृष्टानि पक्वानि फलानि कुसुमानि च । यथेच्छमुपभुक्तानि तै. सुख कृतसङ्कथै ॥१०॥
तत्र भाण्डोपकरण सकल केकयीसुत । [4]मृदावशै पलाशैश्च विविधैराशु निर्ममे ॥११॥
अमीषु स्वादुचारूणि फलानि सुरभीणि च । वनजानि च सस्यानि राजपुत्री समस्करोत् ॥१२॥
अन्यदातिथिवेलायां गगनाङ्गणचारिणौ । प्रभापटलसवीतविग्रहौ चारुदर्शनौ ॥१३॥

अथानन्तर जिन्हे दक्षिण समुद्र देखनेकी इच्छा थी तथा जो निरन्तर सुख भोगते आते थे ऐसे श्रीमान् राम-लक्ष्मण सीताके साथ नगर और ग्रामोसे व्याप्त बहुत देशोंको पारकर नाना प्रकारके मृगोसे व्याप्त महावनमे प्रविष्ट हुए ॥१–२॥ ऐसे सघन वनमे प्रविष्ट हुए जिसमे मार्ग ही नही सूझता था, उत्तम मनुष्योंके द्वारा सेवित एक भी स्थान नहीं था, वनचारी भीलोंके लिए भी जहाँ चलना कठिन था, जो पर्वतोसे व्याप्त था, नाना प्रकारके वृक्ष और लताओसे सघन था, जिसमे अत्यन्त विषम गर्त थे, जो गुहाओंके अन्धकारसे गंभीर जान पड़ता था, और जहाँ झरने तथा अनेक नदियाँ बह रही थीं ॥३–४॥ उस वनमे वे जानकीके कारण धीरे-धीरे एक कोश ही चलते थे । इस तरह भयसे रहित तथा क्रीड़ा करनेमे उद्यत दोनो भाई उस कर्णरवा नदीके पास पहुँचे ॥५॥ जिसके कि किनारे अत्यन्त रमणीय, बहुत भारी तृणोंसे व्याप्त, समान, लम्बे-चौडे और सुखकारी स्पर्शको धारण करनेवाले थे ॥६॥ उस कर्णरवा नदीके समीपवर्ती पर्वत, किनारेके उन वृक्षोसे सुशोभित थे जो ज्यादा ऊँचे तो नही थे पर जिनकी छाया अत्यन्त घनी थी तथा जो फल और फूलोसे युक्त थे ॥७॥ यह वन तथा नदी दोनो ही अत्यन्त सुन्दर है ऐसा विचार कर वे एक वृक्षकी मनोहर छायामे सीताके साथ बैठ गये ॥८॥ क्षण भर वहाँ बैठकर तथा मनोहर किनारोपर अवगाहन कर वे सुन्दर क्रीड़ाके योग्य जलावगाहन करने लगे अर्थात् जलके भीतर प्रवेश कर जलक्रीडा करने लगे ॥९॥ तदनन्तर परस्पर सुखकारी कथा करते हुए उन सबने वनके पके मधुर फल तथा फूलोका इच्छानुसार उपभोग किया ॥१०॥ वहाँ लक्ष्मणने नाना प्रकारको मिट्टी, बाँस तथा पत्तोसे सब प्रकारके बर्तन तथा उपयोगी सामान शीघ्र ही बना लिया ॥११॥ इन सब बर्तनोमे राजपुत्री सीताने स्वादिष्ट तथा सुन्दर फल और वनकी सुगन्धित धानके भोजन बनाये ॥१२॥

किसी एक दिन अतिथि प्रेक्षणके समय सीताने सहसा सामने आते हुए सुगुप्ति और गुप्ति

---

१. सुखभोगिनौ म० । २. सामान्यायत-म० । ३. चैतौ निरूपितौ म० । ४. मृदावसैः म० ।

ज्ञानत्रितयसम्पन्नौ महाव्रतपरिग्रहौ । परेण तपसा युक्तौ दुःस्पृहामुक्तमानसौ ॥१४॥
मासोपवासिनौ वीरौ गुण्यौ शुभसमीहितौ । यच्छन्तौ नयनानन्दं[1] बुधचन्द्रमसाविव ॥१५॥
मुनी सुगुप्तिगुप्ताख्यावायान्तौ सम्मुखं भुवः[2] । यथोक्ताचारसम्पन्नौ सहसा सीतयेक्षितौ ॥१६॥
ततः प्रमदसम्भारविकसन्नेत्र[3] शोभया । दयिताय तया ख्यातमिति रोमाञ्चिताङ्गया ॥१७॥
पश्य पश्य नरश्रेष्ठ ! तपसा कृशविग्रहम् । दैगम्बरं परिश्रान्तं भदन्तयुगलं शुभम् ॥१८॥
क्व तत् क्व तत्प्रिये साध्वि पण्डिते चारुदर्शने । निर्ग्रन्थयुगलं दृष्टं भवत्या गुणमण्डने ॥१९॥
यन्निरीक्ष्य वरारोहे सुचिरं पापमर्जितम् । क्षणात् प्रणाशमायाति जनानां भक्तचेतसाम् ॥२०॥
इत्युक्ते रघुचन्द्रेण सीतोवाच ससम्भ्रमा । इमाविमाविति प्रीत्या स तदाभूत् समाकुलः ॥२१॥
ततो युगमितक्षोणीदेशविन्यस्तलोचनौ । मुनी प्रशान्तगमनौ सुसमाहितविग्रहौ ॥२२॥
अभ्युत्थानाभियानाभिस्तुष्टैः[4] प्रणमनादिभिः । दम्पतीभ्यां कृतावेतौ पुण्यनिर्झरपर्वतौ ॥२३॥
शुच्यङ्गया च वैदेह्या महाश्रद्धापरीतया । परिविष्टं तयोः[5] श्राद्धं रमणेन समेतया ॥२४॥
गवामरण्यजातानां महिषीणां च चारुणा । हैयङ्गवीनमिश्रेण पयसा तत्समुद्भवैः ॥२५॥
खर्जूरैरिङ्गुदैराम्रैर्नालिकेरै रसान्वितैः । बदराम्लातकाद्यैश्च वैदेह्या सुप्रसाधितैः ॥२६॥
आहार्यैर्विविधैः[6] शास्त्रदृष्टिशुद्धिसमन्वितैः । पारणां चक्रतुर्गृद्धासम्बन्धोज्झितचेतसौ ॥२७॥

नामके दो मुनि देखे। वे मुनि आकाशाङ्गणमे विहार कर रहे थे, कान्तिके समूहसे उनके शरीर व्याप्त थे, वे बहुत ही सुन्दर थे, मति श्रुत अवधि इन तीन ज्ञानोंसे सहित थे, महाव्रतोंके धारक थे, परम तपसे युक्त थे, खोटी इच्छाओंसे उनके मन रहित थे, उन्होंने एक मासका उपवास किया था, वे धीर-वीर थे, गुणोंसे सहित थे, शुभ चेष्टाके धारक थे, बुध और चन्द्रमाके समान नेत्रोंको आनन्द प्रदान करते थे और यथोक्त आचारसे सहित थे ॥१३-१६॥ तदनन्तर हर्षके भारसे जिसके नेत्रोंकी शोभा विकसित हो रही थी तथा जिसके शरीरमे रोमाञ्च उठ रहे थे ऐसी सीताने रामसे कहा कि हे नरश्रेष्ठ ! देखो देखो, तपसे जिनका शरीर कृश हो रहा है तथा जो अतिशय थके हुए मालूम होते है, ऐसे दिगम्बर मुनियोका यह युगल देखो ॥१७-१८॥ रामने सभ्रममे पड कर कहा कि हे प्रिये ! हे साध्वि ! हे पण्डिते ! हे सुन्दरदर्शने ! हे गुणमण्डने ! तुमने निर्ग्रन्थमुनियोका युगल कहाँ देखा ? कहाँ देखा ? ॥१९॥ वह युगल कि जिसके देखनेसे हे सुन्दरि ! भक्त मनुष्योंका चिरसञ्चित पाप क्षण भरमे नष्ट हो जाता है ॥२०॥ रामके इस प्रकार कहने पर सीताने सभ्रम पूर्वक कहा कि 'ये है, ये है'। उस समय राम कुछ आकुलताको प्राप्त हुए ॥२१॥

तदनन्तर युग प्रमाण पृथिवीमे जिनकी दृष्टि पड रही थी, जिनका गमन अत्यन्त शान्तिपूर्ण था और जिनके शरीर प्रमादसे रहित थे, ऐसे दो मुनियोको देखकर दम्पती अर्थात् राम और सीताने उठकर खड़े होना, समुख जाना, स्तुति करना, और नमस्कार करना आदि क्रियाओंसे उन दोनो मुनियोको पुण्यरूपी निर्झरके झरानेके लिए पर्वतके समान किया था ॥२२-२३॥ जिसका शरीर पवित्र था, तथा जो अतिशय श्रद्धासे युक्त थी ऐसी सीताने पतिके साथ मिलकर दोनो मुनियोंके लिए भोजन परोसा-आहार प्रदान किया ॥२४॥ वह आहार वनमे उत्पन्न हुई गायो और भैंसोंके ताजे और मनोहर घी, दूध तथा उनसे निर्मित अन्य मावा आदि पदार्थोंसे बना था ॥२५॥ खजूर, इङ्गुद, आम, नारियल, रसदार वेर तथा भिलामा आदि फलोंसे निर्मित था ॥२६॥ इस प्रकार शास्त्रोक्त शुद्धिसे सहित नाना प्रकारके खाद्य पदार्थोंसे उन मुनियोंने पारणा

---

१. नन्दो म० । २ भुवा म०, ख० । ३ विकशन्नेव म० । ४. यानाभिस्तुष्टः प्रणयनादिभि॰ म०, यानाभितुष्टि प्रणयनादिभिः ब० । ५ भोजन । ६. दृष्टिताडिता॰ म० ।

एवं च पर्युपास्यैतौ मुनी रामः प्रियान्वितः । समस्तभावसम्भारकृतनिर्ग्रन्थमाननः ॥२८॥
तावद्दुन्दुभयो नेदुर्गगनेऽदृष्टताडिताः । ववौ समीरणः स्वैरं घ्राणरञ्जनकारणम् ॥२९॥
साधु साध्विति देवानां मधुरो निस्वनोऽभवत् । ववर्ष पञ्चवर्णानि कुसुमानि नभस्तलम्[1] ॥३०॥
पात्रदानानुभावेन दिव्या सकलवर्णिका । पूरयन्ती नभोऽपप्तद्वसुधारा महाद्युतिः ॥३१॥
अथात्रैव वनोद्देशे गहनस्य महातरोः । निषण्णोऽग्रे महागृध्रः स्वेच्छयावस्थितोऽभवत् ॥३२॥
स दृष्ट्वाऽतिशयोपेतौ मुनी कर्मानुभावतः । बहूनात्मभवान् स्मृत्वा तत्त्वदैवमचिन्तयत् ॥३३॥
मनुष्यभावसुकरं प्रमत्तेन मया पुरा । विवेकिनापि न कृतं तपो धिग्मामचेतनम् ॥३४॥
भाव प्रतप्यसे किं त्वमधुना पापचेष्टितः । कमुपायं करोम्येतां कुत्सितां योनिमागतः ॥३५॥
अनुकूलारिभिः पापैर्मित्रशब्दन[2]धारिभिः । प्रेरितेन सता त्यक्तं धर्मरत्नं सदा मया ॥३६॥
सुभूरिचरितं पापमपकर्ण्य गुरूदितम् । मोहध्वान्तपरीतेन दह्ये यदधुना स्मरन् ॥३७॥
न किञ्चिदत्र बहुना चिन्तितेन प्रयोजनम् । गतिरन्या न मे लोके विद्यते दुःखसंक्षये ॥३८॥
एतौ प्रयामि शरणं साधू सर्वसुखावहौ । इतो मे परमार्थस्य प्राप्तिः सञ्जायते ध्रुवम् ॥३९॥
इति पूर्वभव[3]ध्यानात् परमं शोकमागतः । दर्शनाच्च महासाध्वोः प्रमोदं त्वरयान्वितः ॥४०॥
विधूय पक्षयुगलमश्रुसम्पूर्णलोचनः । पपात शाखिनो मूर्ध्नः प्रश्रयान्वितविभ्रमः ॥४१॥
नागाः सिंहादयोऽप्यत्र नादेन महतामुना । विदुद्रुवुरयं दुष्टः कथं तु न खगाधमः ॥४२॥

की। उन मुनियोंके चित्त भोजन विषयक गृध्रताके सम्बन्धसे रहित थे ॥२७॥ इस प्रकार समस्त भावोंसे मुनियोंका सन्मान करनेवाले राम इन दोनों मुनियोंकी सेवा कर सीताके साथ बैठे ही थे कि उसी समय आकाशमें अदृष्टजनोंसे ताडित दुन्दुभि बाजे बजने लगे, घ्राण इन्द्रियको प्रसन्न करनेवाली वायु धीरे-धीरे बहने लगी, 'धन्य, धन्य' इस प्रकार देवोंका मधुर शब्द होने लगा, आकाश पाँच वर्णके फूल बरसाने लगा और पात्रदानके प्रभावसे आकाशको व्याप्त करनेवाली, महाकान्तिकी धारक, सब रङ्गोंकी दिव्यरत्न वृष्टि होने लगी ॥२८-३१॥

अथानन्तर वनके इसी स्थानमें सघन महावृक्षके अग्रभाग पर एक बड़ा भारी गृध्र पक्षी स्वेच्छासे बैठा था ॥३२॥ सो अतिशय पूर्ण दोनों मुनिराजोंको देखकर कर्मोदयके प्रभावसे उसे अपने अनेक भव स्मृत हो उठे। वह उस समय इस प्रकार विचार करने लगा ॥३३॥ कि यद्यपि मैं पूर्व पर्यायमें विवेकी था तो भी मैंने प्रमादी बनकर मनुष्य भवमें करने योग्य तपश्चरण नहीं किया अतः मुझ अविवेकीको धिक्कार हो ॥३४॥ हे हृदय! अब क्यों संताप कर रहा है? इस समय तो इस कुयोनिमें आकर पाप चेष्टाओंमें निमग्न हूँ अतः क्या उपाय कर सकता हूँ? ॥३५॥ मित्र संज्ञाको धारण करनेवाले तथा अनुकूलता दिखानेवाले पापी बैरियोंसे प्रेरित हो मैंने सदा धर्मरूपी रत्नका परित्याग किया है ॥३६॥ मोहरूपी अन्धकारसे व्याप्त होकर मैंने गुरुओंका उपदेश न सुन जिस अत्यधिक पापका आचरण किया है उसे आज स्मरण करता हुआ ही जल रहा हूँ ॥३७॥ अथवा इस विषयमें बहुत विचार करनेसे कुछ भी प्रयोजन नहीं है क्योंकि दुःखोंका क्षय करनेके लिए लोकमें मेरी दूसरी गति नहीं है—अन्य उपाय नहीं है। मैं तो सब जीवोंको सुख देनेवाले इन्हीं दोनों मुनियोंकी शरणको प्राप्त होता हूँ। इनसे निश्चित ही मुझे परमार्थकी प्राप्ति होगी ॥३८-३९॥ इस प्रकार पूर्वभवका स्मरण होनेसे जो परम शोकको प्राप्त हुआ था तथा महामुनियोंके दर्शनसे जो अत्यधिक हर्षको प्राप्त था ऐसा शीघ्रतासे सहित, अश्रुपूर्ण नेत्रोंका धारक, एवं विनयपूर्ण चेष्टाओंसे सहित वह गृध्र पक्षी दोनों पङ्ख फड़फड़ाकर वृक्षके शिखरसे नीचे आया ॥४०-४१॥ यहाँ इस अत्यधिक कोलाहलसे हाथी तथा सिंहादिक

---

१ नभस्तले म० । २. शब्देन धारिभिः म० । ३. मेव ध्यानात् म० ।

हा मातः पश्यतामुष्य धाष्ट्यं गृध्रस्य पापिनः । चिन्तयित्वेति वैदेह्या कोपाकुलितचित्तया ॥४३॥
वार्यमाणोऽपि यत्नेन कृतनिष्ठुरशब्दया । मुनिपादोदकं पक्षी सोत्साहः पातुमुद्यतः ॥४४॥
पादोदकप्रभावेण शरीरं तस्य तत्क्षणम् । रत्नराशिसमं जातं परीतं चित्रतेजसा ॥४५॥
जातौ हेमप्रभौ पक्षौ पादौ वैडूर्यसन्निभौ । नानारत्नच्छविर्देहश्चञ्चुर्विद्रुमविभ्रमा ॥४६॥
ततः स्वमन्यथाभूतमवलोक्यं सुसम्मदः । विमुञ्चन्मधुरं नादं नर्तितुं स समुद्यतः ॥४७॥
देवदुन्दुभिनादोऽभावेव तस्यातिसुन्दरम्[1] । आतोद्यत्वं परिप्राप्तः स्वां[2] च वाणीं सुतेजसः ॥४८॥
मुञ्चन्नानन्दनेत्राम्भश्चक्रीकृत्य गुरुद्वयम् । शुशुभे कृतनृत्योऽसौ शिखी मेघागमे यथा ॥४९॥
विधिना [3]पारणां कृत्वा मुनी कृतयथोचितौ । वैडूर्यसदृशे राजन्नुपविष्टौ शिलातले ॥५०॥
पद्मरागाभनेत्रश्च पक्षी सङ्कुचितच्छदः । प्रणम्य पादयोः साधोः सुखं तस्थौ कृताञ्जलिः ॥५१॥
क्षणादग्निमिवालोक्य ज्वलन्तं तेजसा खगम् । पद्मो विकचपद्माक्षो विस्मयं परमं गतः ॥५२॥
प्रणम्य पादयोः साधुं गुणशीलविभूषणम् । अपृच्छदिति विन्यस्य मुहुर्नेत्रे पतत्रिणि ॥५३॥
भगवन्नयमत्यन्तं विरूपावयवः पुरा । कथं क्षणेन सञ्जातो हेमरत्नचयच्छविः ॥५४॥
अशुचिः सर्वमांसादो गृध्रोऽयं दुष्टमानसः । निपद्य पादयोः शान्तस्तव कस्मादवस्थितः ॥५५॥
सुगुप्तिश्रमणोऽवोचद् राजन् पूर्वमिहाभवत् । देशो जनपदाकीर्णो विषयः सुन्दरो महान् ॥५६॥

बड़े-बड़े जन्तु तो भाग गये पर यह दुष्ट नीच पक्षी क्यों नहीं भागा। हा मातः! इस पापी गृध्रकी धृष्टता तो देखो, इस प्रकार विचार कर जिसका चित्त क्रोधसे आकुलित हो रहा था तथा जिसने कठोर शब्दोंका उच्चारण किया था ऐसी सीताने यद्यपि प्रयत्नपूर्वक उस पक्षीको रोका था तथापि वह बड़े उत्साहसे मुनिराजके चरणोदकको पीने लगा ॥४२-४३॥ चरणोदकके प्रभावसे उसका शरीर उसी समय रत्नराशिके समान नाना प्रकारके तेजसे व्याप्त हो गया ॥४४॥ उसके दोनों पङ्ख सुवर्णके समान हो गये, पैर नील मणिके समान दिखने लगे, शरीर नाना रत्नोंकी कान्तिका धारक हो गया और चोंच मूँगाके समान दिखने लगी ॥४५॥ तदनन्तर अपने आपको अन्य रूप देख वह अत्यन्त हर्षित हुआ और मधुर शब्द छोड़ता हुआ नृत्य करनेके लिए उद्यत हुआ ॥४६॥ उस समय जो देव-दुन्दुभिका नाद हो रहा था वही उस तेजस्वीकी अपनी वाणीसे मिलता-जुलता अत्यन्त सुन्दर साजका काम दे रहा था ॥४७-४८॥ दोनों मुनियोंकी प्रदक्षिणा देकर हर्षाश्रुको छोड़ता हुआ वह नृत्य करनेवाला गृध्र पक्षी वर्षा ऋतुके मयूरके समान सुशोभित हो रहा था ॥४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! जिनका यथोचित सत्कार किया गया था ऐसे दोनों मुनिराज विधिपूर्वक पारणाकर वैडूर्यमणिके समान जो शिलातल था उस पर विराजमान हो गये ॥५०॥ और पद्मराग मणिके समान नेत्रोंका धारक गृध्र पक्षी भी अपने पङ्ख संकुचित कर तथा मुनिराजके चरणोंमें प्रणाम कर अञ्जली बाँध सुखसे बैठ गया ॥५१॥ विकसित कमलके समान नेत्रोंको धारण करनेवाले राम, क्षण भरमें तेजसे जलती हुई अग्निके समान उस गृध्र पक्षीको देखकर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥५२॥ उन्होंने पक्षीपर बार-बार नेत्र डालकर तथा गुण और शीलरूपी आभूषणको धारण करनेवाले मुनिराजके चरणोंमें नमस्कार कर उनसे इस प्रकार पूछा कि हे भगवन्! यह पक्षी पहले तो अत्यन्त विरूप शरीरका धारक था पर अब क्षण भरमें सुवर्ण तथा रत्न राशिके समान कान्तिका धारक कैसे हो गया? ॥५३-५४॥ महा अपवित्र, सब प्रकारका मांस खानेवाला तथा दुष्ट हृदयका धारक यह गृध्र आपके चरणोंमें बैठकर अत्यन्त शान्त कैसे हो गया है? ॥५५॥

तदनन्तर सुगुप्ति नामक मुनिराज बोले कि हे राजन्! पहले यहाँ नाना जनपदोंसे व्याप्त

१. सुन्दरीं म० । २ त्वा म० । ३. पारण म० ।

पत्तनग्रामसंवाहमटम्बपुटभेदनैः । घोषद्रोणमुखाद्यैश्च सन्निवेशैर्विराजितः ॥५७॥
कर्णकुण्डलनामात्र पुरमासीन् मनोहरम् । तस्मिन्नयमभूद्राजा प्रतापपरमोदयः ॥५८॥
चण्डविक्रमसम्पन्नो भग्नशात्रवकण्टकः । दण्डो मानमयः ख्यातो दण्डको नाम साधनी ॥५९॥
घृतार्थिना जलं तेन मथितं रघुनन्दन । धर्मश्रद्धापरीतेन धृतं पापागमो धिया ॥६०॥
देवी मस्करिणां तस्य [1]वरिवस्या पराभवत् । तेषामसावधीशेन सम्भोगं [2]समुपागता ॥६१॥
सोऽपि तस्याः परं वश्यस्तामेव दिशमाश्रयत् । स्त्रीचित्तहरणोद्युक्ताः किं न कुर्वन्ति मानवाः ॥६२॥
निष्क्रान्तेनान्यदा तेन नगरात् साधुरीक्षितः । प्रलम्बितभुजः श्रीमान् ध्यानसंरुद्धमानसः ॥६३॥
कृष्णसर्पो मृतस्तस्य [3]दिग्धाङ्गो विषलालया । कण्ठे निधापितस्तेन ग्रावदारुणचेतसा ॥६४॥
यावदेषोऽपनीतो न प्रदातुर्मम केनचित् । तावन्न संहरेयोगमिति ध्यात्वा मुनिः स्थितः ॥६५॥
अतीते गणरात्रे च पुनस्तेनैव वर्त्मना । निष्क्रामन् पार्थिवोऽपश्यत्तदवस्थं महामुनिम् ॥६६॥
ऋजुनैव च रूपेण गत्वा निकटतां भृशम् । अप्रच्छदपनेतारं किमेतदिति सोऽवदत् ॥६७॥
नरेन्द्र पश्य केनापि [4]नरकावासमार्गिणा । योगस्थस्य मुनेरस्य कण्ठे सर्पः समर्पितः ॥६८॥
यस्य सर्पस्य सम्पर्काद् विग्रहस्य समुद्गतम् । प्रतिबिम्बं शितिक्लिन्नं दुर्दर्शमतिभीषणम् ॥६९॥
मुनिं निःप्रतिकर्माणं दृष्ट्वा राजा तथाविधम् । प्रणम्याक्षमयद्यातास्ते च स्थानं यथोचितम् ॥७०॥
ततः प्रभृति सक्तोऽसौ कर्तुं भक्तिमनुत्तमाम् । निरम्बरमुनीन्द्राणां वारितोपद्रवक्रियः ॥७१॥

एक बहुत बड़ा सुन्दर देश था ॥५६॥ जो पत्तन, ग्राम, संवाह, मटम्ब, पुटभेदन, घोष और द्रोण मुख आदि रचनाओंसे सुशोभित था ॥५७॥ इसी देशमें एक कर्णकुण्डल नामका मनोहर नगर था जिसमें यह परम प्रतापी राजा था। यह तीव्र पराक्रमसे युक्त, शत्रुरूपी कटकोंका भग्न करनेवाला, महामानी एवं साधनसम्पन्न दण्डक नामका धारक था ॥५८-५९॥ हे रघुनन्दन! धर्मकी श्रद्धासे युक्त इस राजाने पापपोषक शास्त्रको समझकर बुद्धिपूर्वक धारण किया सो मानो इसने घृतकी इच्छासे जलका ही मन्थन किया ॥६०॥ राजा दण्डककी जो रानी थी वह परिव्राजकोंकी बड़ी भक्त थी क्योंकि परिव्राजकोंके स्वामीके द्वारा वह उत्तम भोगको प्राप्त हुई थी ॥६१॥ राजा दण्डक रानीके वशीभूत था इसलिए यह भी उसी दिशाका आश्रय लेता था, सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियोंका चित्त हरण करनेमें उद्यत मनुष्य क्या नहीं करते हैं? ॥६२॥ एक दिन राजा नगरसे बाहर निकला वहाँ उसने एक ऐसे साधुको देखा जो अपनी भुजाएँ नीचे लटकाये हुए थे, वीतराग लक्ष्मीसे सहित थे तथा जिनका मन ध्यानमें रुका हुआ था ॥६३॥ पाषाणके समान कठोर चित्तके धारक राजाने उन मुनिके गलेमें, विषमिश्रित लारसे जिसका शरीर व्याप्त था ऐसा एक मरा हुआ काला साँप डलवा दिया ॥६४॥ 'जब तक इस साँपको कोई अलग नहीं करता है तब तक मैं योगको संकुचित नहीं करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर वह मुनि उसी स्थान पर खड़े रहे ॥६५॥ तदनन्तर बहुत रात्रियाँ व्यतीत हो जानेके बाद उसी मार्गसे निकले हुए राजाने उन महामुनिको उसी प्रकार ध्यानारूढ देखा ॥६६॥ उसी समय कोई मनुष्य मुनिराजके गलेसे साँप अलग कर रहा था। राजा मुनिराजकी सरलतासे आकृष्ट हो उनके पास गया और साँप निकालनेवाले मनुष्यसे पूछता है कि 'यह क्या है?' इसके उत्तरमें वह मनुष्य कहता है कि राजन्! देखो, नरककी खोज करनेवाले किसी मनुष्यने इन ध्यानारूढ मुनिराजके गलेमें साँप डाल रक्खा है ॥६७-६८॥ जिस साँपके सम्पर्कसे इनके शरीरकी आकृति श्याम, खेदखिन्न, दुर्दर्शनीय तथा अत्यन्त भयङ्कर हो गई है ॥६९॥ कुछ भी प्रतिकार नहीं करनेवाले मुनिको उसी प्रकार ध्यानारूढ देख राजाने प्रणाम कर उनसे क्षमा माँगी और तदनन्तर वह यथास्थान चला गया ॥७०॥ उस समय से राजा दिगम्बर मुनियोंकी उत्तम भक्ति करनेमें तत्पर हो गया और उसने मुनियोंके सब उपद्रव–

१. वरिवश्या क०, ख०, ग०। २. समुपागतः म०। ३. लिप्तशरीरः। ४. नगरावास- म०।

देवीविटपरिव्राजा[1] ज्ञात्वान्यविषयं नृपम् । इदं क्रोधपरीतेन विधातुमभिवाञ्छितम् ॥७२॥
जीवितस्नेहमुत्सृज्य परदुःखाहितात्मकः । निर्ग्रन्थरूपभृद्देव्या सम्पर्कमभजत् पुनः ॥७३॥
ज्ञात्वा तदीदृशं कर्म राज्ञातिक्रोधमीयुषा । अमात्याद्युपदेशं च स्मृत्वा निर्ग्रन्थनिन्दनम् ॥७४॥
क्रूरकर्मभिरन्यैश्च प्रेरितः श्रमणाहितैः । आज्ञापयन् महर्षीणां यन्त्रनिष्पीडने नरान् ॥७५॥
गणाधिपसमेतोऽसौ समूहोऽम्बरवाससाम्[2] । यन्त्रनिष्पीडनैर्नीतः पञ्चतां पापकर्मणाम् ॥७६॥
बाह्यभूमिगतस्तत्र मुनिरेकः समाव्रजन् । इत्यवार्यत लोकेन केनचित् करुणावता ॥७७॥
भो भो निर्ग्रन्थ मागास्त्वं पूर्वनैर्ग्रन्थ्यमाश्रयन् । यन्त्रेणापीड्यसे तत्र द्रुतं कुरु पलायनम् ॥७८॥
यन्त्रेषु श्रमणाः सर्वे राज्ञा क्रुद्धेन पीडिताः । मागास्त्वमप्यवस्थां तां रक्ष धर्माश्रयं वपुः ॥७९॥
ततः क्षणमसौ सङ्घमृत्युदुःखेन शल्यितः । वज्रस्तम्भ इवाकम्पस्तस्थावव्यक्तचेतनः ॥८०॥
अथास्य शतदुःखेन प्रेरितः शमगह्वरात् । निरम्बरमहीध्रस्य निरगात् क्रोधकेसरी ॥८१॥
रक्ताशोकप्रकाशेन निखिलं तस्य चक्षुषः । तेजसा विहितं व्योम सन्ध्यामयमिवाभवत् ॥८२॥
कोपेन तप्यमानस्य मुनेः सर्वत्र विग्रहे । प्रस्वेदबिन्दवो जाताः प्रतिबिम्बितविष्टपाः ॥८३॥
ततः कालानलाकारो बहुलः कुटिलः पृथुः । हाकारेण मुखात्तस्य निरगात् पावकध्वजः[3] ॥८४॥
अनुलग्नश्च तस्याग्निरुज्जगाम निरन्तरम् । कृतं नभस्तलं येन निरिन्धनविदीपितम् ॥८५॥

कष्ट दूर कर दिये ॥७१॥ रानीके साथ गुप्त समागम करनेवाले परिव्राजकोंके अधिपतिने जब राजाके इस परिवर्तनको जाना तब क्रोधसे युक्त होकर उसने यह करनेकी इच्छा की ॥७२॥ दूसरे प्राणियोंको दुःख देनेमें जिसका हृदय लग रहा था ऐसे उस परिव्राजकने जीवनका स्नेह छोड़ निर्ग्रन्थ मुनिका रूप धर रानीके साथ संपर्क किया ॥७३॥ जब राजाको इस कार्यका पता चला तब वह अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हुआ। मन्त्री आदि अपने उपदेशमें निर्ग्रन्थ मुनियोंकी जो निन्दा किया करते थे वह सब इसकी स्मृतिमें झूलने लगा ॥७४॥ उसी समय मुनियोंसे द्वेष रखनेवाले अन्य दुष्ट लोगोंने भी राजाको प्रेरित किया जिससे उसने अपने सेवकोंके लिए समस्त मुनियोंको घानीमें पेलनेकी आज्ञा दे दी ॥७५॥ जिसके फलस्वरूप गणनायकके साथ-साथ जितना मुनियोंका समूह था वह सब, पापी मनुष्योंके द्वारा घानीमें पिलकर मृत्युको प्राप्त हो गया ॥७६॥ उस समय एक मुनि कहीं बाहर गये थे जो लौटकर उसी नगरीकी ओर आ रहे थे। उन्हें किसी दयालु मनुष्यने यह कह कर रोका कि हे निर्ग्रन्थ! हे दिगम्बरमुद्राके धारी! तुम अपने पहलेका निर्ग्रन्थवेष धारण करते हुए नगरीमें मत जाओ, अन्यथा घानीमें पेल दिये जाओगे, शीघ्र ही यहाँसे भाग जाओ ॥७७–७८॥ राजाने क्रुद्ध होकर समस्त निर्ग्रन्थ मुनियोंको घानीमें पिलवा दिया है तुम भी इस अवस्थाको प्राप्त मत होओ, धर्मका आश्रय जो शरीर है उसकी रक्षा करो ॥७९॥

तदनन्तर समस्त संघकी मृत्युके दुःखसे जिन्हें शल्य लग रही थी ऐसे वे मुनि क्षणभरके लिए वज्रके स्तम्भकी नाँई अकम्प—निश्चल हो गये। उस समय उनकी चेतना अव्यक्त हो गई थी अर्थात् यह नहीं जान पड़ता था कि जीवित हैं या मृत? ॥८०॥ अथानन्तर उन निर्ग्रन्थ मुनि-रूपी पर्वतकी शान्तिरूपी गुफासे सैकड़ों दुःखोंसे प्रेरित हुआ क्रोधरूपी सिंह बाहर निकला ॥८१॥ उनके नेत्रके अशोकके समान लाल-लाल तेजसे आकाश ऐसा व्याप्त हो गया मानो उसमें संध्या ही व्याप्त हो गई हो ॥८२॥ क्रोधसे तपे हुए मुनिराजके समस्त शरीरमें स्वेदकी बूँदें निकल आईं और उनमें लोकका प्रतिबिम्ब पड़ने लगा ॥८३॥ तदनन्तर उन मुनिराजने मुखसे 'हा' शब्द का उच्चारण किया उसीके साथ मुखसे धुआँ निकला जो कालाग्निके समान अत्यधिक कुटिल और विशाल था ॥८४॥ उस धुआँके साथ ऐसी ही निरन्तर अग्नि निकली कि जिसने ईन्धनके बिना

१. विटपरिव्राजी म० । २. वरवाससाम् म० । ३. अग्निः ।

उल्काभिर्नु जगद्व्याप्तं ज्योतिर्देवा पतन्ति नु । महाप्रलयकालो नु वह्निर्देवा नु रोपिता ॥८६॥
हा हा मात किमेतन्नु तापोऽयमतिदुस्सहः । चक्षुरुत्पाट्यते दीर्घसंदंशैरिव वेगिभिः ॥८७॥
मूर्तिनिर्मुक्तमेवैतद्गगनं कुरुते ध्वनिम् । वंशारण्यमिवोद्दीप्तं जीविताकर्षणोचितम् ॥८८॥
यावदेव ध्वनिर्लोके वर्ततेऽत्यन्तमाकुलः । वह्निस्तावदयं देशमनयद् भस्मशेषताम् ॥८९॥
नान्तःपुरं न देशो न पुराणि न च पर्वताः । न नद्यो नाप्यरण्यानि तदा न प्राणधारिणः ॥९०॥
महासंवेगयुक्तेन मुनिना चिरमर्जितम् । क्रोधाग्निनाखिलं दग्धं तपोऽन्यत् किमु शिष्यताम् ॥९१॥
यतोऽयं दण्डको देश आसीद्दण्डकपार्थिवः । तेनैव ध्वनिनाद्यापि दण्डकः परिकीर्त्यते ॥९२॥
काले महत्यतिक्रान्ते प्राप्ताया चारुता भुवि । एतेऽत्र पादपा जाताः पर्वताश्च सनिम्नगाः ॥९३॥
मुनेस्तस्य प्रभावेण सुराणामपि भीतिदम् । वनमेतदभूत् केव वार्ता विद्याबलाश्रिताम्[1] ॥९४॥
पश्चादिदं समाकीर्णं सिंहेन शरभादिभिः । नानाशकुनिवृन्दैश्च सस्यभेदैश्च भूरिभिः ॥९५॥
अद्याप्यस्योरुदावस्य श्रुत्वा शब्दं परं भयम् । व्रजन्ति मानवाः कम्पं वृत्तान्ते नु निबोधिनः ॥९६॥
संसारेऽतिचिरं भ्रान्त्वा दण्डको दुःखपूरितः । अयं गृध्रत्वमायातो वनेऽत्र रतिमागतः ॥९७॥
दृष्ट्वा सातिशयावेष नौ वनेऽत्र समागतौ । पापस्य कर्मणो हान्या प्राप्तः पूर्वभवस्मृतिम् ॥९८॥
योऽसौ परमया शक्त्या युक्तोऽभूद्दण्डको नृपः । सोऽयं पश्यत संजातः कीदृशः पापकर्मभिः ॥९९॥
इति विज्ञाय विरसं फलं कटुककर्मणः । कथं न सज्यते[2] धर्मे दुरिताच्च विरज्यते ॥१००॥

ही समस्त आकाशको देदीप्यमान कर दिया ॥८५॥ क्या यह लोक उल्काओंसे व्याप्त हो रहा है ? या ज्योतिष्क देव नीचे गिर रहे हैं ? या महा प्रलयकाल आ पहुँचा है ? या अग्निदेव कुपित हो रहे हैं ? हाय माता ! यह क्या है ? यह ताप तो अत्यन्त दुःसह है, ऐसा लगता है जैसे वेगशाली बड़ी-बड़ी संडाशियोंसे नेत्र उखाड़े जा रहे हों, यह अमूर्तिक आकाश ही घोर शब्द कर रहा है, मानो प्राणोंके खींचनेमें उद्यत बाँसोंका वन ही जल रहा है' इस प्रकार अत्यन्त व्याकुलतासे भरा यह शब्द जब तक लोकमें गूँजता है तब तक उस अग्निने समस्त देशको भस्म कर दिया ॥८६–८९॥ उस समय न अन्तःपुर, न देश, न नगर, न पर्वत, न नदियाँ, न जङ्गल और न प्राणी ही शेष रह गये थे ॥९०॥ महान् संवेगसे युक्त मुनिराजने चिरकालसे जो तप सञ्चित कर रक्खा था यह सबका शब्द क्रोधाग्निमें दग्ध हो गया—जल गया फिर दूसरी वस्तुएँ तो बचती ही कैसे ? ॥९१॥ यह दण्डक देश था तथा दण्डक ही यहाँका राजा था इसलिए आज भी यह स्थान दण्डक नामसे ही प्रसिद्ध है ॥९२॥ बहुत समय बीत जानेके बाद यहाँ की भूमि कुछ सुन्दरताको प्राप्त हुई है और ये वृक्ष, पर्वत तथा नदियाँ दिखाई देने लगी हैं ॥९३॥ उन मुनिके प्रभावसे यह वन देवोंके लिए भी भय उत्पन्न करनेवाला है फिर विद्याधरोंकी तो बात ही क्या है ? ॥९४॥ आगे चल कर यह वन सिंह अष्टापद आदि क्रूर जन्तुओं, नाना प्रकारके पक्षि-समूहों तथा अत्यधिक जङ्गली धान्योंसे युक्त हो गया ॥९५॥ आज भी इस वनकी प्रचण्ड दावानल का शब्द सुनकर मनुष्य पिछली घटनाका स्मरण कर भयभीत होते हुए काँपने लगते हैं ॥९६॥ राजा दण्डक बहुत समय तक संसारमें भ्रमण कर दुःख उठाता रहा अब गृध्रपर्यायको प्राप्त हो इस वनमें प्रीतिको प्राप्त हुआ है ॥९७॥ इस समय इस वनमें आये हुए अतिशय युक्त हम दोनोंको देखकर पापकर्मकी मन्दता होनेसे यह पूर्वभवके स्मरणको प्राप्त हुआ है ॥९८॥ जो दण्डक राजा पहले परम शक्तिसे युक्त था वह देखो, आज पापकर्मोंके कारण कैसा हो गया है ? ॥९९॥ इस प्रकार पाप कर्मका नीरस फल जान कर धर्ममें क्यों नहीं लगा जाय और पापसे क्यों नहीं

१. श्रिता म० । २. सृज्यते म० ।

दृष्टान्तः परकीयोऽपि शान्तेर्भवति कारणम् । असमञ्जसमात्मीयं किं पुनः स्मृतिमागतम् ॥१०१॥
पक्षिणं सयतोऽगादीन्मा भैर्पीरधुना द्विज । मा रोदीर्यद्यथा भाव्यं कः करोति तदन्यथा ॥१०२॥
आश्वासं गच्छ विश्रब्धः कम्पं मुञ्च सुखी भव । पश्य क्वेयमरण्यानी क्व रामः सीतयान्वितः ॥१०३॥
अवग्रहोऽस्मदीयः क्व क्व त्वमात्मार्थसङ्गतः । प्रबुद्धो दुःखसम्बोधः कर्मणामिदमीहितम् ॥१०४॥
इदं कर्म विचित्रत्वाद् विचित्रं परमं जगत् । अनुभूतं श्रुतं दृष्टं यथैव प्रवदाम्यहम् ॥१०५॥
पक्षिणः प्रतिबोधार्थं ज्ञात्वाकूतं च सीरिणः[1] । सुगुप्तिरवदत् स्वस्य सुगुप्ते शमकारणम् ॥१०६॥
अचलो नाम विख्यातो वाराणस्या[2] महीपतिः । गिरिदेवीति जायास्य गुणरत्नविभूषिता ॥१०७॥
त्रिगुप्त इति विख्यातो गुणनाम्नान्यदा मुनिः । पारणार्थं गृहं तस्याः प्रविष्टः शुद्धचेष्टितः ॥१०८॥
स तया परमां श्रद्धां दधत्या विधिपूर्विकाम् । तर्पितः परमान्नेन स्वयं व्यापारमुक्तया ॥१०९॥
समाप्ताशनकृत्यश्च पादन्यस्तोत्तमाङ्गया । पप्रच्छान्यापदेशेन स्वस्य पुत्रसमुद्भवम् ॥११०॥
नाथ सातिशयोऽयं मे गृहवासो भविष्यति । किं वा नेति प्रसादोऽयं क्रियतां निश्चयार्पणम्[3] ॥१११॥
वचोगुप्तिं ततो भित्त्वा राज्ञीभक्त्यनुरोधतः । तस्याश्चारुसमादिष्टं मुनिना तनयद्वयम् ॥११२॥
त्रिगुप्तस्य मुनेस्तस्य समादेशेऽनयत सुतौ । जातौ सुगुप्तिगुप्ताख्यौ पितृभ्यां तौ ततः कृतौ ॥११३॥
तौ च सर्वकलाभिज्ञौ कुमारश्रीसमन्वितौ । तिष्ठन्तौ विविधैर्भावै रममाणौ जनप्रियौ ॥११४॥
वृत्तान्तोऽयं च सञ्जातो गन्धवत्या[4] महीपतेः । पुरोहितस्य सोमस्य प्रियायास्तनयद्वयम् ॥११५॥

विरक्त हुआ जाय? ॥१००॥ दूसरेका उदाहरण भी शान्तिका कारण हो जाता है फिर यदि अपनी ही खोटी बात स्मरण आ जावे तो कहना ही क्या है? ॥१०१॥

रामसे इतना कहकर मुनिराजने गृध्रसे कहा कि हे द्विज! अब भयभीत मत होओ, रोओ मत, जो बात जैसी होनेवाली है उसे अन्यथा कौन कर सकता है? ॥१०२॥ धैर्य धरो, निश्चिन्त होकर कँपकपी छोड़ो, सुखी होओ, देखो यह महा अटवी कहाँ? और सीता सहित राम कहाँ? ॥१०३॥ हमारा पड़गाहन कहाँ? और आत्म कल्याणके लिए दुःखका अनुभव करते हुए तुम्हारा प्रबुद्ध होना कहाँ? कर्मोंकी ऐसी ही चेष्टा है ॥१०४॥ कर्मोंकी विचित्रताके कारण यह संसार अत्यन्त विचित्र है। जैसा मैंने अनुभव किया है, सुना है अथवा देखा है वैसा ही मैं कह रहा हूँ ॥१०५॥ पक्षीको समझानेके लिए रामका अभिप्राय जान सुगुप्ति मुनिराज अपनी दीक्षा तथा शान्तिका कारण कहने लगे ॥१०६॥

उन्होंने कहा कि वाराणसी नगरीमें एक अचल नामका प्रसिद्ध राजा था। उसकी गुणरूपी रत्नोंसे विभूषित गिरि देवी नामकी स्त्री थी ॥१०७॥ किसी एक दिन त्रिगुप्त इस सार्थक नामको धारण करनेवाले तथा शुद्ध चेष्टाओंके धारक मुनिराजने आहारके लिए उसके घर प्रवेश किया ॥१०८॥ सो विधि पूर्वक परम श्रद्धाको धारण करनेवाली गिरि देवीने अन्य सब कार्य छोड़ स्वयं ही उत्तम आहार देकर उन्हें संतुष्ट किया ॥१०९॥ जब मुनिराज आहार कर चुके तब उसने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर किसी दूसरेके बहाने अपने पुत्र उत्पन्न होनेकी बात पूछी ॥११०॥ उसने कहा कि हे नाथ! मेरा यह गृहवास सार्थक होगा या नहीं? इस बातका निश्चय कराकर प्रसन्नता कीजिये ॥१११॥ तदनन्तर मुनि यद्यपि तीन गुप्तियोंके धारक थे तथापि रानीकी भक्तिके अनुरोधसे वचनगुप्तिको तोड़कर उन्होंने कहा कि तुम्हारे दो सुन्दर पुत्र होंगे ॥११२॥ तदनन्तर उन त्रिगुप्त मुनिराजके कहे अनुसार दो पुत्र उत्पन्न हुए सो माता-पिताने उनके 'सुगुप्ति' और 'गुप्त' इस प्रकार नाम रक्खे ॥११३॥ वे दोनों ही पुत्र सर्व कलाओंके जानकार, कुमार लक्ष्मीसे सुशोभित, अनेक भावोंसे रमण करते तथा लोगोंको अत्यन्त प्रिय थे ॥११४॥

उसी समय यह दूसरा वृत्तान्त हुआ कि गन्धवती नामकी नगरीके राजाके सोम नामका

---

१ रामस्य। २. वाणारस्या म०। ३ निश्चयार्पणो म०। ४. गन्धावत्या म०।

सुकेतुरग्निकेतुश्च तयो प्रीतिरनुत्तमा । सुकेतुरन्यदा चाभूत् कृतदारपरिग्रह ॥११६॥
आवयोरधुना भ्रात्रो पृथक् शयनमेतया । क्रियते जाययावश्यमिति दु खमुपागत ॥
सुकेतु प्रतिबुद्ध सन् शुभकर्मानुभावत । अनन्तवीर्यपादान्ते श्रमणत्व समाश्रित[1] ।
अग्निकेतुर्वियोगेन भ्रातुरत्यन्तदु खित । वाराणस्यामभूदुग्रस्तापसो धर्मचिन्तया ॥११९॥
श्रुत्वा चैवविध त च भ्रातर स्नेहबन्धन । प्रतिबोधयितु वाञ्छन् सुकेतुर्गन्तुमुद्यत ॥१२०॥
स व्रजन् गुरुणावाचि सुकेतो कथयिष्यसि । वृत्तान्त सोदरायेम येनासावुपशाम्यति ॥१२१॥
कोऽसौ नाथेति तेनोक्ते गुरुरेवमुदाहरत । करिष्यति त्वया साक स जल्प दुष्टभावन ॥१२२॥
युवयो कुर्वतोर्जल्प जाह्नवीमागमिष्यति । चारुकन्या सम स्त्रीभिस्तिसृभिर्गौरविग्रहा ॥१२३॥
दिवसस्य गते यामे विचित्राशुकधारिणी । एभिश्चिह्नैर्विदित्वा ता भाषितव्यमिद त्वया ॥१२४॥
दृष्ट्वा ता वच्यसीद त्व ज्ञान चेदस्ति ते मते । वदैतस्या कुमार्या किं भवितेति शुभाशुभम् ॥१२५॥
अज्ञानोऽसौ विलक्ष सस्तापसस्त्वा भणिष्यति । भवान् जानात्विति त्व च वच्यस्येव सुनिश्चित ॥१२६॥
अस्त्यत्र प्रवरो नाम[2] वणिज सम्पदान्वित । तस्यैव दुहिता नाम्ना रुचिरेति प्रकीर्तिता ॥१२७॥
तृतीयेऽहनि पञ्चत्व वराकीय प्रपत्स्यते । ततोऽजा कम्बरग्रामे विलासस्य भविष्यति ॥१२८॥
वृकेण मारिता मेषी महिषी च तत पितु । मातुलस्य विलासस्य भविष्यति शरीरजा ॥१२९॥
एवमस्त्विति सम्भाष्य प्रणम्य प्रमदी[3] गुरुम् । सुकेतु क्रमत प्राप्तस्तापसाना निकेतनम् ॥१३०॥

पुरोहित था उसकी स्त्रीके सुकेतु और अग्निकेतु नामके दो पुत्र थे । उन दोनो ही पुत्रोमे अत्यधिक प्रेम था, उस प्रेमके कारण बडे होने पर भी वे एक ही शय्या पर सोते थे । समय पाकर सुकेतुका विवाह हो गया । जब स्त्री घर आई तब सुकेतु यह विचार कर बहुत दु खी हुआ कि इस स्त्रीके द्वारा अब हम दोनो भाइयोकी शय्या जुदी-जुदी की जा रही है ॥११५–११७॥ इस प्रकार शुभ कर्मके प्रभावसे प्रतिबोधको प्राप्त हो सुकेतु अनन्तवीर्य मुनिके पास दीक्षित हो गया ॥११८॥ भाईके वियोगसे अग्निकेतु भी बहुत दु खी हो धर्म संचय करनेकी भावनासे वाराणसीमे उग्र तापस हो गया ॥११९॥ स्नेहके बन्धनमे बँधे सुकेतुने जब भाईके तापस होनेका समाचार सुना तब वह उसे समझानेके अर्थ जानेके लिए उद्यत हुआ ॥१२०॥ जब वह जाने लगा तब गुरुने उससे कहा कि हे सुकेतो ! तुम अपने भाईसे यह वृत्तान्त कहना जिससे वह शीघ्र ही उपशान्त हो जायगा ॥१२१॥ 'हे नाथ ! वह कौन सा वृत्तान्त है' ? इस प्रकार सुकेतुके कहने पर गुरुने कहा कि दुष्ट भावनाको धारण करनेवाला तेरा भाई तेरे साथ वाद करेगा ॥१२२॥ सो जिस समय तुम दोनो वाद कर रहे होओगे उस समय गौरवर्ण शरीरको धारण करनेवाली एक सुन्दर कन्या तीन स्त्रियोके साथ गङ्गा आवेगी । वह दिनके पिछले प्रहरमे आवेगी तथा विचित्र वस्त्रको धारण कर रही होगी । इन चिह्नोसे उसे जानकर तुम अपने भाईसे कहना कि यदि तुम्हारे धर्ममे कुछ ज्ञान है तो बताओ इस कन्याका क्या शुभ अशुभ होनेवाला है ? ॥१२३–१२५॥ तब वह अज्ञानी तापसी लज्जित होता हुआ तुमसे कहेगा कि अच्छा तुम जानते हो तो कहो । यह सुन तुम निश्चयसे सुदृढ़ हो कहना कि इसी नगरमे एक सम्पत्तिशाली प्रवर नामका वैश्य रहता है यह उसीकी लड़की है तथा रुचिरा नामसे प्रसिद्ध है ॥१२६–१२७॥ यह बेचारी आजसे तीसरे दिन मर जायगी और कम्बर नामक ग्राममे विलास नामक वैश्यके यहाँ बकरी होगी । भेडिया उस बकरीको मार डालेगा जिससे गाडर होगी फिर मरकर उसीके घर भैंस होगी और उसके बाद उसी विलासके पुत्री होगी । वह विलास इस कन्याके पिताका मामा होता है ॥१२८–१२९॥ 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर तथा गुरुको प्रणामकर हर्षसे भरा सुकेतु क्रम-

१. समाश्रित म० । २. वणिक्पुत्रः । ३. हर्षयुक्तः ।

गुरुणा च यथादिष्टं तां दृष्ट्वा तमुदाहरत् । तथा वृत्तं च तत्सर्वं यातमग्ने समक्षताम् ॥१३१॥
ततोऽसौ विधुरा नाम्ना विलासस्य शरीरजा । याचिता श्रेष्ठिना लब्धा प्रवरेण मनोहरा ॥१३२॥
विवाहसमये प्राप्ते प्रवराय न्यवेदयत् । अग्निकेतुर्यथैषा ते दुहितासीद् भवान्तरे ॥१३३॥
विलासायापि ते सर्वे भवास्तेन निवेदिताः । श्रुत्वा तत्कन्यका जाता जातिस्मरणकोविदा ॥१३४॥
ततः प्रव्रजितुं वाञ्छा सा संवेगपराकरोत् । प्रवरश्च विलासेन व्यवहारं दुराशयः ॥१३५॥
सभायां पितुरस्माकं प्रवरे भङ्गतां गते । आर्यिकात्वमिता कन्या श्रमणत्वं च तापसः ॥१३६॥
वृत्तान्तमीदृशं श्रुत्वा वयं वैराग्यपूरिताः । सकाशेऽनन्तवीर्यस्य जैनेन्द्रव्रतमाश्रिताः ॥१३७॥
एवं मोहपरीतानां प्राणिनामतिभूरिशः । जायन्ते कुत्सिताचारा भवसन्ततिदायिनः ॥१३८॥
मातापितृसुहृन्मित्रभार्यापत्यादिकं जनः । सुखदुःखादिकं चायं विवर्तं लभते भवे ॥१३९॥
तच्छ्रुत्वा सुतरां पक्षी भीतोऽभूद् भवदुःखतः । चकार च मुहुः शब्दं धर्मग्रहणवाञ्छया ॥१४०॥
उक्तं च गुरुणा भद्र मा भैषीरधुना व्रतम् । गृहाण येन नो भूयः प्राप्यते दुःखसन्ततिः ॥१४१॥
प्रशान्तो भव मा पीडां[1] कार्षीः सर्वासुधारिणाम् । अनृतं स्तेयतां भार्यां परकीयां विवर्जय ॥१४२॥
एकान्तब्रह्मचर्यं वा गृहीत्वा सत्क्षमान्वितः । रात्रिभुक्तिं परित्यज्य भव शोभनचेष्टितः ॥१४३॥
प्रयतोऽह्नि[2] क्षपायां च जिनेन्द्रान् वह चेतसा[3] । उपवासादिकं शक्त्या सुधीर्नियममाचर ॥१४४॥

क्रमसे तापसोंके आश्रममें पहुँचा ॥१३०॥ गुरुने जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार उस कन्याको देखकर सुकेतुने अपने भाई अग्निकेतुसे कहा और वह सबका सब वृत्तान्त उसी प्रकार अग्निकेतुके सामने आ गया अर्थात् सच निकला ॥१३१॥

तदनन्तर वह कन्या जब मरकर चौथे भवमें विलासके विधुरा नामकी पुत्री हुई तब प्रवर नामक सेठने उस सुन्दरीकी याचना की और वह उसे प्राप्त भी हो गई ॥१३२॥ जब विवाहका समय आया तब अग्निकेतुने प्रवरसे कहा कि यह कन्या भवान्तरमें तुम्हारी पुत्री थी ॥१३३॥ यह कहकर उसने कन्याके वर्तमान पिता विलासके लिए भी उसके वे सब भव कह सुनाये। उन भवोंको सुनकर कन्याको जातिस्मरण हो गया ॥१३४॥ जिससे संसारसे भयभीत हो उसने दीक्षा धारण करनेका विचार कर लिया। इधर प्रवरने समझा कि विलास किसी छलके कारण मेरे साथ अपनी कन्याका विवाह नहीं कर रहा है इसलिए दूषित अभिप्रायको धारण करनेवाले प्रवरने हमारे पिताकी सभामें विलासके विरुद्ध अभियोग चलाया परन्तु अन्तमें प्रवरकी हार हुई, कन्या आर्यिका पदको प्राप्त हुई और अग्निकेतु तापस दिगम्बरमुनि बन गया ॥१३५-१३६॥ वृत्तान्तको सुनकर हमने भी विरक्त हो अनन्तवीर्य नामक मुनिराजके समीप जिनेन्द्र दीक्षा धारण कर ली ॥१३७॥ इस प्रकार मोही जीवोंसे संसारकी सन्ततिको बढ़ानेवाले अनेक खोटे आचरण हो जाया करते हैं ॥१३८॥ यह जीव अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार ही माता, पिता, स्नेही मित्र, स्त्री, पुत्र तथा सुख दुःखादिकको भव-भवमें प्राप्त होता है ॥१३९॥

यह सुनकर वह गृध्र पक्षी संसार सम्बन्धी दुःखोंसे अत्यन्त भयभीत हो गया और धर्म ग्रहण करनेकी इच्छासे बार-बार शब्द करने लगा ॥१४०॥ तब मुनिराजने कहा कि हे भद्र ! भय मत करो। इस समय व्रत धारण करो जिससे फिर यह दुःखोंकी सन्तति प्राप्त न हो ॥१४१॥ अत्यन्त शान्त हो जाओ, किसी भी प्राणीको पीड़ा मत पहुँचाओ, असत्य वचन, चोरी और परस्त्रीका त्याग करो अथवा पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण कर उत्तम क्षमासे युक्त हो रात्रि भोजनका त्याग करो, उत्तम चेष्टाओंसे युक्त होओ, बड़े प्रयत्नसे रात-दिन जिनेन्द्र भगवान्को हृदयमें धारण करो, शक्त्यनुसार विवेकपूर्वक उपवासादि नियमोंका आचरण करो, प्रमाद रहित होकर

१. पीडा म० । २. प्रयतोऽह्नि क्षिपाया च (?) म० । ३. बहुचेतसा म० ।

इन्द्रियाण्यप्रमत्तः सन्नुत्सुकान्यात्मगोचरे । कुरु युक्तव्यवस्थानि साधूनां भक्तितत्पर ॥१४५॥
इत्युक्तः[1] साञ्जलिः पक्षी शिरो विनमयन्मुहुः । कुर्वाणो मधुरं शब्दं जग्राह मुनिभाषितम् ॥१४६॥
श्रावकोऽयं विनीतात्मा जातोऽस्माकं विनोदकृत् । इत्युक्त्वा सस्मिता सीता तं कराभ्यां समस्पृशत्॥१४७॥
साधुभ्यामुक्तमित्येतं रक्षितुं वोऽधुनोचितम्[3] । तपस्वी शान्तचित्तोऽयं क्व वा गच्छतु पक्षभृत् ॥१४८॥
अस्मिन् सुगहनेऽरण्ये क्रूरप्राणिनिषेविते । सम्यग्दृष्टेः खगस्यास्य रक्षा कार्या त्वया सदा ॥१४९॥
ततो गुरुवचः प्राप्य सुतरां स्नेहपूर्णया । सीतयानुगृहीतोऽसौ परिपालनचिन्तया ॥१५०॥
पल्लवस्पर्शहस्ताभ्यां तं परामृशती सती । जनकस्याङ्गजा रेजे विनीता गरुडं यथा ॥१५१॥
निर्ग्रन्थपुङ्गवावेभिः स्तुतिपूर्वं नमस्कृतौ । बहूपकारिसञ्चारौ यातावात्मोचितं पदम् ॥१५२॥
नभः समुत्पतन्तौ तौ शुशुभाते महामुनी । दानधर्मसमुद्रस्य कल्लोलाविव पुष्कलौ ॥१५३॥
प्रभिन्नं वारणं तावद् वशीकृत्य वनोत्थितम् । आरुह्य लक्ष्मणः श्रुत्वा ध्वनिमागात् समाकुलः ॥१५४॥
रत्नकाञ्चनराशिं च दृष्ट्वा पर्वतसन्निधिम् । नानावर्णप्रभाजालसमुद्गतसुरायुधम् ॥१५५॥
विकसन्नयनाम्भोजमहाकौतुकपूरितः । कृतो विदितवृत्तान्तः पद्मेन मुदितात्मना ॥१५६॥
प्राप्तबोधिरसौ पक्षी नायासीत्तौ विना क्वचित् । निर्ग्रन्थवचनं सर्वं कुर्वन्नुद्यतमानसः ॥१५७॥
स्मर्यमाणोपदेशोऽसौ सीतयाणुव्रताश्रमे । पद्मलक्ष्मणमार्गेण रममाणोऽभ्रमन्महीम् ॥१५८॥

इन्द्रियोंको व्यवस्थित कर आत्मध्यानमें उत्सुक करो और साधुओंकी भक्तिमें तत्पर होओ ॥१४२–१४५॥ मुनिराजके इस प्रकार कहने पर गृध्र पक्षीने अञ्जलि बाँध बार-बार शिर हिलाकर तथा मधुर शब्दका उच्चारण कर मुनिराजका उपदेश ग्रहण किया ॥१४६॥ 'विनीत आत्माको धारण करनेवाला यह श्रावक हम लोगोंका विनोद करनेवाला हो गया' यह कह कर मन्दहास्य करनेवाली सीताने उस पक्षीका दोनों हाथोंसे स्पर्श किया ॥१४७॥ तदनन्तर दोनों मुनियोंने राम आदिको लक्ष्य कर कहा कि अब आप लोगोंको इसकी रक्षा करना उचित है क्योंकि शान्तचित्तको धारण करनेवाला यह बेचारा पक्षी कहाँ जायगा ? ॥१४८॥ क्रूर प्राणियोंसे भरे हुए इस सघन वनमें तुम्हें इस सम्यग्दृष्टि पक्षीकी सदा रक्षा करनी चाहिये ॥१४९॥ तदनन्तर गुरुके वचन प्राप्त कर अतिशय स्नेहसे भरी सीताने उसके पालनकी चिन्ता अपने ऊपर ले उसे अनुगृहीत किया अर्थात् अपने पास ही रख लिया ॥१५०॥ पल्लवके समान कोमल स्पर्शवाले हाथोंसे उसका स्पर्श करती हुई विनयवती सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो गरुडका ही स्पर्श कर रही हो ॥१५१॥

तदनन्तर जिनका भ्रमण अनेक जीवोंका उपकार करनेवाला था ऐसे दोनों निर्ग्रन्थ साधु, राम आदिके द्वारा स्तुतिपूर्वक नमस्कार किये जाने पर अपने योग्य स्थान पर चले गये ॥१५२॥ आकाशमें उड़ते हुए वे दोनों महामुनि ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो दानधर्मरूपी समुद्रकी दो बड़ी लहरें ही हों ॥१५३॥ उसी समय एक मदोन्मत्त हाथीको वशकर तथा उस पर सवार हो लक्ष्मण शब्द सुनकर कुछ व्यग्र होते हुए आ पहुँचे ॥१५४॥ नाना वर्णकी प्रभाओंके समूहसे जिसमें इन्द्रधनुष निकल रहा था ऐसी पर्वतके समान बहुत बड़ी रत्न तथा सुवर्णकी राशि देख कर जिनके नेत्रकमल विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यधिक कौतुकसे युक्त थे ऐसे लक्ष्मणको प्रसन्न हृदय रामने सब समाचार विदित कराया ॥१५५–१५६॥ जिसे रत्नत्रयकी प्राप्ति हुई थी तथा जो मुनिराजके समस्त वचनोंका बड़ी तत्परतासे पालन करता था ऐसा वह पक्षी राम और सीताके बिना कहीं नहीं जाता था ॥१५७॥ अणुव्रताश्रममें स्थित सीता जिसे बार-बार मुनियोंके उपदेशका स्मरण कराती रहती थी ऐसा वह पक्षी राम लक्ष्मणके मार्गमें रमण करता हुआ पृथ्वी

१. इत्युक्त्वा म० । २. इत्युक्ता म० । ३. वाधुनोचित म० ।

धर्मस्य पश्यतोदार्यं यदस्मिन्नेव जन्मनि । शाकपत्रोपमो गृध्रो जातस्तामरसोपमः ॥१५९॥
पुरा योऽनेकमांसादो दुर्गन्धोऽभूज्जुगुप्सितः । सोऽयं काञ्चनकुम्भाभः सुरभिः सुन्दरोऽभवत् ॥१६०॥
क्वचिद् वह्निशिखाकारः क्वचिद् वैडूर्यसंनिभः । क्वचिच्चामीकरच्छायो हरिन्मणिरुचिः क्वचित् ॥१६१॥
रामलक्ष्मणयोरग्रे स्थितोऽसौ बहुचाटुकः । बुभुजे साधु सम्पन्नमन्नं सीतोपसाधितम् ॥१६२॥
चन्दनेन स दिग्धाङ्गो हेमकिङ्किण्यलङ्कृतः । बिभ्राणः शकुनी रेजे रत्नांशुजटिलं शिरः ॥१६३॥
यस्मादंशुजटास्तस्य विरेजू रत्नहेमजाः । जटायुरिति तेनासावाहृतस्तैरतिप्रियः ॥१६४॥
जितहंसगतिं कान्तं चारुविभ्रमभूषितम् । तमन्यपक्षिणो दृष्ट्वा भयवन्तो विसिस्मियुः ॥१६५॥
त्रिसन्ध्यं सीतया साकं वन्दनामकरोदसौ । भक्तिप्रह्वो जिनेन्द्राणां सिद्धानां योगिनां तथा ॥१६६॥
तत्र प्रीतिं महाप्राप्ता जानकी करुणापरा । अप्रमत्ता सदा रक्षां कुर्वन्ती धर्मवत्सला ॥१६७॥

उपजातिवृत्तम्

आस्वादमानो निजयेच्छयासौ फलानि शुद्धान्यमृतोपमानि ।
जलं प्रशस्तं च पिबन्नरण्ये बभूव नित्यं सुविधिः पतत्री ॥१६८॥
सतालशब्दं जनकात्मजाया धर्माश्रयोच्चारितगीतिकायाम् ।
कृतानुगीत्या पतिदेवराभ्यां ननर्त हृष्टो [1]रविरुग्जटायुः ॥१६९॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते जटायूपाख्यानं नामैकचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४१॥

पर भ्रमण करता था ॥१५८॥ अहो ! धर्मका माहात्म्य देखो कि जो पक्षी इसी जन्ममे शाकपत्रके समान निष्प्रभ था वही कमलके समान सुन्दर हो गया ॥१५९॥ पहले जो अनेक प्रकारके मासको खानेवाला, दुर्गन्धित एवं घृणाका पात्र था वही अब सुवर्णकलशमें स्थित जलके समान मनोज्ञ एवं सुन्दर हो गया ॥१६०॥ उसका आकार कहीं तो अग्निकी शिखाके समान था, कहीं नीलमणिके सदृश था, कहीं स्वर्णके समान कान्तिसे युक्त था और कहीं हरे मणिके तुल्य था ॥१६१॥ राम लक्ष्मणके आगे बैठा तथा अनेक प्रकारके मधुर शब्द कहनेवाला वह पक्षी सीताके द्वारा निर्मित उत्तम भोजन ग्रहण करता था ॥१६२॥ जिसका शरीर चन्दनसे लिप्त था, जो स्वर्ण निर्मित छोटी-छोटी घंटियोंसे अलंकृत था तथा जो रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त शिरको धारण कर रहा था ऐसा वह पक्षी अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥१६३॥ यतश्च उसके शरीर पर रत्न तथा स्वर्णनिर्मित किरणरूपी जटाएँ सुशोभित हो रही थीं इसलिए राम आदि उसे 'जटायु' इस नामसे बुलाते थे। वह उन्हें अत्यन्त प्यारा था ॥१६४॥ जिसने हंसकी चालको जीत लिया था, जो स्वयं सुन्दर था और सुन्दर विलासोंसे जो युक्त था ऐसे उस जटायुको देखकर अन्य पक्षी भयभीत होते हुए आश्चर्यचकित रह जाते थे ॥१६५॥ वह भक्तिसे नम्रीभूत होकर तीनों संध्याओंमे सीताके साथ अरहन्त सिद्ध तथा निर्ग्रन्थ साधुओंको नमस्कार करता था ॥१६६॥ धर्मसे स्नेह करनेवाली दयालु सीता बड़ी सावधानीसे उसकी रक्षा करती हुई सदा उस पर बहुत प्रेम रखती थी ॥१६७॥ इस प्रकार वह पक्षी अपनी इच्छानुसार शुद्ध तथा अमृतके समान स्वादिष्ट फलोंको खाता और जङ्गलमे उत्तम जलको पीता हुआ निरन्तर उत्तम आचरण करता था ॥१६८॥ जब सीता तालका शब्द देती हुई धर्ममय गीतोंका उच्चारण करती थी और पति तथा देवर उसके स्वरमें स्वर मिलाकर साथ-साथ गाते थे तब सूर्यके समान कान्तिको धारण करनेवाला वह जटायु हर्षित हो नृत्य करता था ॥१६९॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमे जटायुका वर्णन करनेवाला इकतालीसवॉ पर्व समाप्त हुआ ॥४१॥

---

१. सूर्यसमप्रभाधारकः ।

द्विचत्वारिंशत्तमं पर्व

पात्रदानप्रभावेण ससीतौ रामलक्ष्मणौ । इहैव रत्नहेमादि[1]सम्पद्युक्तौ बभूवतुः ॥१॥
ततश्चामीकरानेकभक्तिविन्याससुन्दरम् । सुस्तम्भवेदिकागर्भगृहसङ्गतमुन्नतम् ॥२॥
स्थूलमुक्ताफलस्रग्भिर्विराजत्पवनायनम् । बुद्बुदादर्शलम्बूषखण्डचन्द्रादिमण्डितम् ॥३॥
शयनासनवादित्रवस्त्रगन्धादिपूरितम् । चतुर्भिर्वारणैर्युक्तं विमानप्रतिमं रथम् ॥४॥
आरूढा विचरन्त्येते प्रतिघातविवर्जिता । जटायुसहिता रम्ये वने सत्त्ववता नृणाम् ॥५॥
क्वचिद्दिनं क्वचित् पक्षं क्वचिन्मासं मनोहरे । यथेप्सितकृतक्रीडा प्रदेशे तेऽत्रतस्थिरे ॥६॥
निवासमत्र कुर्मोऽत्र कुर्म इत्यभिलाषिणः । महोक्षनवशष्पेच्छा विचेरुस्ते वनं सुखम् ॥७॥
महानिर्झरगम्भीरान् कांश्चिदुच्चावचान् बहून् । उत्तुङ्गपादपान् देशान् जग्मुरुल्लङ्घ्य ते शनैः ॥८॥
स्वेच्छया पर्यटन्तस्ते सिंहा इव भयोज्झिता[2] । मध्यं दण्डककक्षस्य प्रविष्टा भीरुदुःखदम् ॥९॥
विचित्रशिखरा यत्र हिमाद्रिगिरिसन्निभा । रम्या निर्झरनद्यश्च मुक्ताहारोपमा. स्थिता ॥१०॥
अश्वत्थैस्तिन्तिडीकाभिर्बदरीभिर्विभीतकैः । शिरीषैः कदलैर्लक्चैरक्षोटैः[3] सरलैर्धवैः ॥११॥
कदम्बैस्तिलकैर्लोध्रैरशोकैर्नीललोहितैः । जम्बूभिः पाटलाभिश्च चूतैराम्रातकैः शुभैः ॥१२॥
चम्पकैः कर्णिकारैश्च सालैस्तालैः प्रियङ्गुभिः । सप्तपर्णैस्तमालैश्च नागैर्नन्दिभिरर्जुनैः ॥१३॥
केसरैश्चन्दनैर्नीपैर्भूर्जैर्हिंगुलकैर्वटैः । सितासितैरगुरुभिः कुन्दै रम्भाभिरिङ्गुदैः ॥१४॥
पद्मकैर्मुचिलिन्दैश्च कुटिलैः पारिजातिकैः । बन्धूकैः केतकीभिश्च मधूकैः खदिरैस्तथा ॥१५॥

अथानन्तर पात्र दानके प्रभावसे सीता सहित राम लक्ष्मण इसी पर्यायमे रत्न तथा सुवर्णादि संपत्तिसे युक्त हो गये ॥१॥ तदनन्तर जो स्वर्णमयी अनेक बेल-बूटोके विन्याससे सुन्दर था, जो उत्तमोत्तम खम्भो वेदिका तथा गर्भगृहसे सहित था, ऊँचा था, जिसके झरोखे बडे-बड़े मोतियोकी मालासे सुशोभित थे, जो छोटे-छोटे गोले, दर्पण, फन्नूस, तथा खण्ड चन्द्र आदि सजावटकी सामग्रीसे अलकृत था, शयन, आसन, वादित्र, वस्त्र तथा गन्ध आदिसे भरा था, जिसमे चार हाथी जुते थे और जो विमानके समान था ऐसे रथ पर सवार होकर ये सब बिना किसी बाधाके जटायु पक्षीके साथ-साथ धैर्यशाली मनुष्योके मनको हरण करनेवाले वनमे विचरण करते थे ॥२–५॥ वे उस मनोहर वनमे इच्छानुसार क्रीडा करते हुए कहीं एक दिन, कहीं एक पक्ष और कहीं एक माह ठहरते थे ॥६॥ 'हम यहाँ निवास करेंगे' 'यहाँ ठहरेंगे' इस प्रकार कहते हुए वे किसी बड़े बैलकी नई घास खानेकी इच्छाके समान वनमे सुख पूर्वक विचरण करते थे ॥७॥ जो बडे-बड़े निर्झरोसे गम्भीर थे तथा जिनमे ऊँचे-ऊँचे वृक्ष लग रहे थे ऐसे कितने ही ऊँचे नीचे प्रदेशोको पार कर वे धीरे-धीरे जा रहे थे ॥८॥ सिंहोके समान निर्भय हो स्वेच्छासे घूमते हुए वे, भीरु मनुष्योंको भय देनेवाले दण्डक वनके उस मध्य भागमे प्रविष्ट हुए जहाँ हिमगिरिके समान विचित्र पर्वत थे तथा मोतियोके हारके समान सुन्दर निर्झर और नदियाँ स्थित थी ॥९–१०॥ जहाँका वन, पीपल, इमली, बैरी, बहेड़े, शिरीष, केले, राल, अक्षरोट, देवदारु, धौ, कदम्ब, तिलक, लोध, अशोक, नील और लाल रङ्गको धारण करनेवाले जामुन, गुलाब, आम, अंबाडा, चम्पा, कनेर, सागौन, ताल, प्रियङ्गु, सप्तपर्ण, तमाल, नागकेशर, नन्दी, कौहा, बकौली, चन्दन, नीप, भोजपत्र, हिंगुलक, बरगद, सफेद तथा काला अगुरु, कुन्द,

---

१. हेमाभि ज०, ख० । हेमानि म० । २. भयोज्झिता म० । ३. रक्षोटैः म० ।

मदनैर्खदिरैर्निम्बैः खजूरैश्छत्रकैस्तथा । नारिङ्गैर्मातुलिङ्गीभिर्दाडिमीभिस्तथासनैः ॥१६॥
नालिकेरैः कपित्थैश्च रसैरामलकैर्वनैः । शमीहरीतकीभिश्च कोविदारैरगस्तिभिः ॥१७॥
करञ्जकुष्टकालीयैरुत्कचैरजमोदकैः । कङ्कोलत्वग्लवङ्गीभिर्मरिचाजातिभिस्तथा ॥१८॥
चविभिर्धातकीभिश्च कुर्षकैरतिमुक्तकैः । पूगैस्ताम्बूलवल्लीभिरेलाभी रक्तचन्दनैः ॥१९॥
वेत्रैः श्यामलताभिश्च मेषशृङ्गैर्हरिद्रुभिः । पलाशैः स्पन्दनैर्बिल्वैश्चिरबिल्वैः समेथिकैः ॥२०॥
चन्दनैररडूकैश्च शाल्मलीबीजकैस्तथा । एभिरन्यैश्च भूरुहैस्तदरण्यं विराजितम् ॥२१॥
सस्यैर्बहुप्रकारैश्च स्वयम्भूतैः रसोत्तमैः । पुण्ड्रेक्षुभिश्च विस्तीर्णाः प्रदेशास्तस्य सङ्कुलाः ॥२२॥
चित्रपादपसङ्घातैर्नानावल्लीसमाकुलैः । अशोभत वनं वाढं द्वितीयमिव नन्दनम् ॥२३॥
मन्दमारुतनिक्षिप्तैः पल्लवैरतिकोमलैः । [1]ननर्तेवाटवी तोषात् पद्माद्यागमजन्मनः ॥२४॥
वायुतो ह्रियमाणेन रजसाभ्युत्थितेव च । आलिलिङ्गे च सद्गन्धवाहिना नित्ययायिना ॥२५॥
अगायदिव भृङ्गाणां झङ्कारेण मनोहरम् । जहासेव सितं रम्यं शैलनिर्झरशीकरैः ॥२६॥
[2]जीवजीवकभेरुण्डहंससारसकोकिलाः । मयूरश्येनकुररा शुककौशिकसारिकाः ॥२७॥
कपोतभृङ्गराजश्च भारद्वाजादयस्तथा । अरमन्त द्विजास्तस्मिन् प्रयुक्तकलनिस्वनाः ॥२८॥
कोलाहलेन रम्येण तद्वनं तेन सम्भ्रमि । जगाद स्वागतमिव प्राप्तकर्तव्यदक्षिणम् ॥२९॥
कुतः किं राजपुत्रीति कस्मिन्नागच्छ साध्विति । इतिकोमलभारत्या सञ्जजल्पुरिव द्विजाः ॥३०॥
सितासितारुणाम्भोजसञ्छन्नैरतिनिर्मलैः । सरोभिर्वीक्षितुमिव प्रवृत्तं सुकुतूहलात् ॥३१॥
फलभारनतैरग्रैर्ननामेव महादरम्[3] । मुमोचानन्दनिश्वासमिव सद्गन्धवायुना ॥३२॥

रम्भा, इंगुआ, पद्मक, मुचकुन्द, कुटिल, पारिजातक, दुपहरिया, केतकी, महुआ, खैर, मैनार, खदिर, नीम, खजूर, छत्रक, नारंगी, बिजौरे, अनार, असन, नारियल, कैथा, रसोद, आँवला, शमी, हरड, कचनार, करञ्ज, कुष्ट, कालीय, उत्कच, अजमोद, कंकोल, दालचीनी, लौंग, मिरच, चमेली, चव्य, आँवला, कुर्षक, अतिमुक्तक, सुपारी, पान, इलायची, लालचन्दन, बेत, श्यामलता, मेढासिंगी, हरिद्रु, पलाश, तेंदू, बेल, चिरोल, मेथी, चन्दन, अरडूक, सेम, बीजसार, इनसे तथा इनके सिवाय अन्य वृक्षोंसे सुशोभित था ॥११–२१॥ उस वनके लम्बे चौड़े प्रदेश स्वयं उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके धान्यो तथा रसीले पौंडो और ईखोसे व्याप्त थे ॥२२॥ नाना प्रकारकी लताओंसे युक्त विविध वृक्षोंके समूहसे वह वन ठीक दूसरे नन्दनवनके समान सुशोभित हो रहा था ॥२३॥ मन्द-मन्द वायुसे हिलते हुए अत्यन्त कोमल किसलयोंसे वह अटवी ऐसी जान पड़ती थी मानो राम आदिके आगमनसे उत्पन्न हर्षसे नृत्य ही कर रही हो ॥२४॥ वायुके द्वारा हरण की हुई परागसे वह अटवी ऊपर उठी हुई सी जान पड़ती थी और उत्तम गन्धको धारण करनेवाली वायु मानो उसका आलिङ्गन कर रही थो ॥२५॥ वह भ्रमरोंकी झंकारसे ऐसी जान पड़ती थी मानो मनोहर गान ही गा रही हो और पहाड़ी निर्झरोंके उड़ते हुए जलकणोंसे ऐसी विदित होती थी मानो शुक्ल एवं सुन्दर हास्य ही कर रही हो ॥२६॥ चकोर, भेरुण्ड, हंस, सारस, कोकिला, मयूर, बाज, कुरर, तोता, उल्लूक, मैना, कबूतर, भृङ्गराज, तथा भारद्वाज आदि पक्षी मनोहर शब्द करते हुए उस अटवीमें क्रीड़ा करते थे ॥२७–२८॥ पक्षियोंके उस मधुर कोलाहलसे वह वन ऐसा जान पड़ता था मानो प्राप्त कार्यमें निपुण होनेसे संभ्रमके साथ सबका स्वागत ही कर रहा हो ॥२९॥ कलरव करते हुए पक्षी कोमलवाणीसे मानो यही कह रहे थे कि हे साध्वि ! राजपुत्रि ! तुम कहाँसे आ रही हो और कहाँ आई हो ॥३०॥ सफ़ेद, नीले तथा लाल कमलोंसे व्याप्त अतिशय निर्मल सरोवरोंसे वह वन ऐसा जान पड़ता था मानो कुतूहल वश देखनेके लिए उद्यत ही हुआ हो ॥३१॥ फलोंके भार से झुके हुए अग्र भागोंसे वह वन ऐसा

१. अटवी ननर्त इव। २. जीवजीवश्चकोरकः। ३. महीधर म०।

वसन्ततिलकावृत्तम्

नानामृगक्षतजपानसुरक्तवक्त्रो दर्पोद्धुर कपिलनेत्रमरीचिवक्त्र[1] ।
मूर्धोपनीतलसदुज्ज्वलवालपुच्छो व्याघ्रो नखै खनति पादपमेष मूले ॥४१॥

मन्दाक्रान्ता

अन्त कृत्वा शिशुगणमिमे कामिनीभिः समेत
दूरन्यस्तप्रचलनयना भूरिश सावधाना ।
किञ्चिद्दूर्वाग्रहणचतुरा प्रान्तयाता. कुरङ्गा
पश्यन्ति त्वा विपुलनयनालम्बिन कौतुकेन ॥४२॥

आर्यावृत्तम्

सुन्दरि पश्य वराह दंष्ट्रान्तरलग्नमुस्तमुन्नतसत्त्वम् ।
अभिनवगृहीतपङ्क गच्छन्त मन्थर सघोणम् ॥४३॥

वशस्थवृत्तम्

अय प्रयत्नादिव चित्रितांगको विनातिवर्णैर्बहुभि सुलोचने ।
भजत्यतिक्रीडनमर्भकै सम वनैकदेशे तृणभाजि चित्रक' ॥४४॥

दोधकवृत्तम्

श्येनयुवैष लघुभ्रमपक्षो दूरत एव निरूप्य समन्तात् ।
स्वापमितस्य पर शरभस्य[2] स्तेनयति द्रुतमामिषमास्यात्[3] ॥४५॥

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

कमलजालकराजितमस्तक ककुदमुन्नतमाचलित वहन् ।
अयमुदात्तरवोऽत्र विराजते [4]सुरभिपुत्रपतिर्वरविभ्रम. ॥४६॥

तथा धीरेसे जमुहाई लेकर फिर भी उसी तरह निर्भय बैठा है ॥४०॥ इधर नाना मृगोका रुधिर पान करनेसे जिसका मुख अत्यन्त लाल हो रहा है, जो अहंकारसे फूल रहा है, जिसका मुख नेत्रोंकी पीली-पीली कान्तिसे युक्त है, तथा चमकीले बालोसे युक्त जिसकी पूँछ पीछेसे घूमकर मस्तकके समीप आ पहुँची है ऐसा यह व्याघ्र नाखूनोके द्वारा वृक्षके मूलभागको नाखूनोसे खोद रहा है ॥४१॥ जिन्होंने स्त्रियोंके साथ-साथ अपने बच्चोके समूहको बीचमे कर रक्खा है, जिनके चञ्चल नेत्र बहुत दूर तक पड़ रहे है, जो अत्यधिक सावधान है, जो कुछ-कुछ दूर्वाके ग्रहण करनेमे चतुर है और कौतुक वंश जिनके नेत्र अत्यन्त विशाल हो गये हैं ऐसे ये हरिण समीपमे आकर तुम्हें देख रहे हैं॥४२॥ हे सुन्दरि ! धीरे-धीरे जाते हुए उस वराह को देखो, जिसकी दाँढोमे मोथा लग रहा है, जिसका बल अत्यन्त उन्नत है, जिसने अभी हाल नई कीचड़ अपने शरीरमे लगा रक्खी है, तथा जिसकी नाक बहुत लम्बी है ॥४३॥ हे सुलोचने ! प्रयत्नके बिना ही जिसका शरीर नाना प्रकारके वर्णोंसे चित्रित हो रहा है ऐसा यह चीता इस तृणबहुल बनके एक देशमे अपने बच्चोंके साथ अत्यधिक क्रीड़ा कर रहा है ॥४४॥ इधर जिसके पङ्ख जल्दी जल्दी घूम रहे है ऐसा यह तरुण बाज पक्षी दूरसे ही सब ओर देखकर सोते हुए शरभके मुखसे बड़ी शीघ्रताके साथ मांसको छीन रहा है ॥४५॥ इधर जिसका मस्तक कमल जैसी आवर्तसे सुशोभित है, जो कुछ-कुछ हिलती हुई ऊँची काँदौरको धारण कर रहा है, जो विशाल शब्द कर रहा है तथा जो उत्तम विभ्रमसे सहित है

---

१. दक्षः म० । २. तै नयति म० । ३. मत्स्यात् म० । ४ अनड्वान् ।

स्रक्च्छन्द

क्वचिदिदमतिघनवरनगकलितं क्वचिदणुबहुविधतृणपरिनिचितम् ।
क्वचिदपगतभयमृगगुरुपटलं क्वचिदतिभययुतरुरुहितगहनम् ॥४७॥

चण्डीच्छन्दः

क्वचिदुरुमदगजपातितवृक्षं क्वचिदभिनवतरुजालकयुक्तम् ।
क्वचिदलिकुलकलझङ्कृतरम्यं क्वचिदतिखररवसम्भृतकक्षम् ॥४८॥

प्रमाणिकावृत्तम्

क्वचिद्विभ्रान्तसत्त्वकं क्वचिद्विश्रब्धसत्त्वकम् । क्वचिन्निरम्बुगह्वरं क्वचिद्विस्रस्तगह्वरम् ॥४९॥

तोटकच्छन्दः

अरुणं धवलं कपिलं हरितं बलितं निभृतं सरवं विरवम् ।
विरलं गहनं सुभगं विरसं, तरुणं पृथुकं विषमं सुसमम् ॥५०॥
इदं तद्दण्डकारण्यं प्रसिद्धं दयिते वनम् । पश्यानेकविधं कर्मप्रपञ्चमिव जानकि ॥५१॥
[1]नगोऽयं दण्डको नाम [2]शृङ्गालीढाम्बराङ्गणः । सुवक्त्रे यस्य नाम्नेदं दण्डकारण्यमुच्यते ॥५२॥
तुङ्गया शिखरेष्वस्य[3] प्रभया धातुजन्मना । रक्तया पुष्पपद्येव प्रावृतं भाति पुष्करम् ॥५३॥
अस्य गह्वरदेशेषु पश्यौषधिमहाशिखाः । निर्वातस्थप्रदीपाभा दूरध्वस्ततमश्चयाः ॥५४॥

शालिनीच्छन्द

अस्मिन्नुच्चैर्निर्झरा सम्पतन्तस्ताराराबा ग्रावसङ्घातसक्ताः ।
मुक्ताकारान् सीकरानुत्सृजन्तो राजन्त्येते स्पष्टभासानुकाराः ॥५५॥

ऐसा यह बैल सुशोभित हो रहा है ॥४६॥ कहीं तो यह वन उत्तमोत्तम सघन वृक्षोंसे युक्त है, कहीं छोटे-छोटे अनेक प्रकारके तृणोंसे व्याप्त है, कहीं निर्भय मृगोंके बड़े-बड़े झुण्डोंसे सहित है, कहीं अत्यन्त भयभीत कृष्णमृगोंके लिए सघन झाड़ियोंसे युक्त है ॥४७॥ कहीं अतिशयमदोन्मत्त हाथियोंके द्वारा गिराये हुए वृक्षोंसे सहित है, कहीं नवीन वृक्षोंके समूहसे युक्त है, कहीं भ्रमर-समूहकी मनोहारी झंकारसे सुन्दर है, कहीं अत्यन्त तीक्ष्ण शब्दोंसे भरा हुआ है ॥४८॥ कहीं प्राणी भयसे इधर-उधर घूम रहे हैं, कहीं निश्चिन्त बैठे हैं, कहीं गुफाएँ जलसे रहित हैं, कहीं गुफाओंसे जल बह रहा है ॥४९॥ कहीं यह वन लाल है, कहीं सफेद है, कहीं पीला है, कहीं हरा है, कहीं मोड़ लिये हुए है, कहीं निश्चल है, कहीं शब्दसहित है, कहीं शब्दरहित है, कहीं विरल है, कहीं सघन है, कहीं सुन्दर है, कहीं नीरस—शुष्क है, कहीं तरुण—हराभरा है, कहीं विशाल है, कहीं विषम है, और कहीं अत्यन्त सम है ॥५०॥ हे प्रिये जानकि ! देखो यह प्रसिद्ध दण्डकवन कर्मोंके प्रपञ्चके समान अनेक प्रकारका हो रहा है ॥५१॥ हे सुमुखि ! शिखरोंके समूहसे आकाशरूपी आँगनको व्याप्त करनेवाला यह दण्डक नामका पर्वत है जिसके नामसे ही यह वन दण्डक वन कहलाता है ॥५२॥ इस पर्वतके शिखर पर गेरू आदि धातुओंसे उत्पन्न हो ऊँची उठनेवाली लाल-लाल कान्तिसे आच्छादित हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता है मानो लाल फूलोंके समूहसे ही व्याप्त हो रहा हो ॥५३॥ इधर इस पर्वतकी गुफाओंमें दूरसे ही अन्धकारके समूहको नष्ट करनेवाली देदीप्यमान औषधियोंकी बड़ी-बड़ी शिखाएँ वायुरहित स्थानमें स्थित दीपकोंके समान जान पड़ती हैं ॥५४॥ इधर पाषाण-खण्डोंके बीच अत्यधिक शब्दके साथ बहुत ऊँचेसे पड़नेवाले ये झरने मोतियोंके समान जलकणोंको छोड़ते हुए सूर्यकी किरणोंके

---

१. पर्वत. । २. शृङ्गैरालीढमम्बराङ्गणं येन सः । ३. शिखरेष्वस्य म० ।

विद्युन्मालावृत्तम्

अस्योद्देशा शुभ्रा केचित् केचिन्नीला रक्ता केचित् ।
दृश्यन्तेऽमी वृक्षैर्व्याप्ता प्रान्ते कान्तेऽत्यन्त कान्ता ॥५६॥

प्रमाणिकाछन्दः

अमी समीरणेरिते वरोष्ठि वृक्षमस्तके । विभान्ति गह्वरे लवा रवे करा क्वचित् क्वचित् ॥५७॥

रुचिरावृत्तम्

अय क्वचित् फलभरनम्रपादप क्वचित् स्थितै कुसुमपटैरलकृत ।
क्वचित् खगै कलरवकारिभिश्रितो विभात्यल वरमुखि दण्डको गिरि ॥५८॥

कोकिलकच्छन्दः

इह चमरीगणोऽयमतिदुष्टमृगोपगत प्रियतरवालिधि प्रियतमैरनुयातपथ ।
अनतिविसृष्टमन्दगतिरिन्दुरुचि पुरुष प्रविशति गह्वर न पृथुकाहितचञ्चलदृक् ॥५९॥

स्रग्धरावृत्तम्

एषा नीला शिला स्यात्तिमिरसुपचित कन्दराणां मुखेषु
स्यादेतत् किं विहाय स्फटिकमणिशिला किन्नु वृक्षान्तरस्था ।
एष स्याद् गण्डशैल किमुत गजपति सेवते गाढनिद्रा
कान्ते क्षोणीधरेऽस्मिन्नतिसदृशतया दुर्गमा भूविभागा. ॥६०॥

एषा क्रौञ्चरवा नाम नदी जगति विश्रुता । जल यस्या प्रिये [1]वीध्र त्वदीयमिव चेष्टितम् ॥६१॥

अश्वललितच्छन्द

मृदुमरुदीरयङ्कुरमल तटस्थतरपुष्पसहितधरम् । भवशयनीयरूपसुभग सुकेशि जलमत्र राजतितराम् ॥६२॥

साथ मिलकर सुशोभित हो रहे है ॥५५॥ हे कान्ते ! इस पर्वतके कितने ही प्रदेश सफेद है, कितने ही नील हैं, कितने ही लाल है, और कितने ही वृक्षावलीसे व्याप्त हो कर अत्यन्त सुन्दर दिखाई देते है ॥५६॥ हे वरोष्ठि ! सघनवनमे वायुसे हिलते हुए वृक्षोके अग्रभाग पर कहीं-कहीं सूर्यकी किरणे ऐसी सुशोभित होती है मानो उसके खण्ड ही हो ॥५७॥ हे सुमुखि ! जो कही तो फलोंके भारसे झुके हुए वृक्षोके समूहसे युक्त है, कहीं पडे हुए पुष्प रूपी वस्त्रोसे सुशोभित है, और कहीं कलरव करनेवाले पक्षियोसे व्याप्त है ऐसा यह दण्डक वन अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥५८॥ इधर, जिसे अपनी पूँछ अधिक प्यारी है, जिसके वल्लभ पीछे-पीछे दौड़े चले आ रहे हैं, जो चन्द्रमाके समान सफेद कान्तिका धारक है, और जो अपने बच्चो पर चञ्चल दृष्टि डाल रहा है ऐसा यह चमरीमृगोका समूह दुष्ट जीवोंके द्वारा उपद्रुत होने पर भी अपनी मन्दगतिको नहीं छोड़ रहा है तथा बाल टूट जानेके भयसे कठोर एवं सघन झाडीमे प्रवेश नही कर रहा है ॥५९॥ हे कान्ते ! इधर इस पर्वतकी गुफाओंके आगे यह क्या नील शिला रखी है ? अथवा अन्धकारका समूह व्याप्त है, ? इधर यह वृक्षोंके मध्यमें आकाश स्थित है अथवा स्फटिक मणिकी शिला विद्यमान है ? और इधर यह काली चट्टान है या कोई बडा हाथी गाढ़ निद्राका सेवन कर रहा है इस तरह अत्यन्त सादृश्यके कारण इस पर्वतके भूभागो पर चलना कठिन जान पड़ता है ॥६०॥ हे प्रिये ! यह वह क्रौञ्चरवा नामकी जगत्-प्रसिद्ध नदी है कि जिसका जल तुम्हारी चेष्टाके समान अत्यन्त उज्ज्वल है ॥६१॥ हे सुकेशि ! जो मन्द-मन्द वायुसे प्रेरित होकर

१. वीध्र विमलम् वीड म० ।

भद्रकच्छन्द

हंसकुलाभफेनपटलप्रभिन्नबहुपुष्पपुञ्जकलितम् । भृङ्गनिनादपूरितवना क्वचिद् विकटसङ्कटोपलचयै ॥६३॥

(?) छन्द

ग्राहसहस्रचारविषमा क्वचिच्च पुरुवेगसङ्गतजला ।
घोरतपस्विचेष्टिसमा क्वचिच्च वहति प्रशान्ततुरियम् ॥६४॥

पुष्पिताग्रावृत्तम्

परमशितिशिलौघरश्मिभिन्न क्वचिदनुलग्नसितोपलांशुयुक्तम् ।
जलमिह सितदन्ति भाति बाढ हरिहरयोरिव सङ्गत शरीरम् ॥६५॥

वंशपत्रपतितम्

रक्तशिलौघरश्मिनिचिता क्वचिदियममला भाति समुद्यदर्कसमये दिगिव सुरपते ।
भिन्नजला क्वचिच्च हरितैरुपलकरचयै शैवलशङ्कयागमकृतो विरसयति खगान् ॥६६॥

हरिणीवृत्तम्

कमलनिकरेष्वत्र स्वेच्छकृतातिकलस्वन निभृतपवनासङ्गान् कम्पेष्वभीक्ष्णकृतभ्रमम् ।
परमसुरभेर्गन्धाद् वक्त्रात्तवेव समुद्गतान् मधुकपटल कान्ते त्वीव विभाति रजोरुणम् ॥६७॥

शिखरिणीच्छन्द

विपिक्त पाताले क्वचिदिह जल मुक्तवहन पर गम्भीरत्व वहति दयिते ते मन इव ।
क्वचिन्नीलाम्भोजैरनतिचलितैः षट्पदचितैर्विभर्त्यच्छिच्छाया प्रवरवनितालोकनभवाम् ॥६८॥

लहरा रहा है, जो तटपर स्थित वृक्षोंके पुष्प-समूहको धारण कर रहा है और जो कैलासके समान शुक्लरूपसे सुन्दर है ऐसा इस नदीका जल अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥६२॥ यह जल कहीं तो हंस समूहके समान उज्ज्वल फेन समूहसे युक्त है, कहीं टूट-टूटकर गिरे हुए फूलोंके समूहसे सहित है, कहीं भ्रमरोंके समूहसे इसका कमल वन पूरित है और कहीं यह बड़े-बड़े सघन पाषाणोंके समूहसे उपलक्षित है ॥६३॥ यह नदी कहीं तो हजारों मगरमच्छोंके संचारसे विषम है, कहीं इसका जल अत्यन्त वेगसे सहित है और कहीं यह घोर तपस्वी-साधुओंकी चेष्टाके समान अत्यन्त प्रशान्त भावसे बहती है ॥६४॥ हे शुक्ल दाँतोंको धारण करनेवाली सीते ! इस नदीका जल एक ओर तो अत्यन्त नील शिला समूहकी किरणोंसे मिश्रित होकर नीला हो रहा है तो दूसरी ओर समीपमें स्थित सफेद पाषाणखण्डोंकी किरणोंसे मिलकर सफेद हो रहा है इस तरह यह परस्पर मिले हुए हरिहर–नारायण और महादेवके शरीरके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥६५॥ लाल-लाल शिलाखण्डोंकी किरणोंसे व्याप्त यह निर्मल नदी, कहीं तो सूर्योदयकालीन पूर्व दिशाके समान सुशोभित हो रही है और कहीं हरे रगके पाषाण-खण्डकी किरणोंके समूहसे जलके मिश्रित होनेसे शेवालकी शङ्कासे आनेवाले पक्षियोंको विरस कर रही है ॥६६॥ हे कान्ते ! इधर निरन्तर चलनेवाली वायुके सङ्गसे हिलते हुए कमल-समूह पर जो इच्छानुसार अत्यन्त मधुर शब्द कर रहा है, निरन्तर भ्रमण कर रहा है और उसकी परागसे जो लाल वर्ण हो रहा है ऐसा भ्रमरोंका समूह तुम्हारे मुखसे निकली सुगन्धिके समान उत्कृष्ट सुगन्धिसे उन्मत्त हुआ अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥६७॥ हे दयिते ! जो अतिशय स्वच्छ

---

१ ६२ तमे श्लोक अश्वललितच्छन्दसः पादद्वयम् । ६३ तमे च श्लोके भद्रकच्छन्दसः पादद्वयम् । उभयत्रार्धार्ध एव श्लोको विद्यते । अथवा उभयोर्मेलने उपजातिच्छन्दो भवति । किन्तु विभिन्नजातिषूपजातिवृत्तप्रायो न दृश्यते । २. लोचनभुवम् म० ।

चतुष्पदिकावृत्तम्

अत्र विभाति व्योमगवृन्दं बहुविधजलभववनकृतचरणम् ।
प्रेमनिबद्धं तारविरावं क्वचिदतिमदवशपरिचितकलहम् ॥६९॥
सैकतमस्या राजति चेदं सवनितखगकुलकृतपदपद्धति ।
त्वज्जघनस्य प्राप्तसुसमत्वं गतघनसुरपथशशधरवदने ॥७०॥

मत्तमयूरच्छन्दः

एषा यातानेकविलासाकुलिताम्बुस्तोयाधीशं वीचिवरभ्रूरतिकान्ता ।
तद्वच्चारुस्फीतगुणौघं शुभचेष्टं[1] विश्वप्रसुन्दरमुत्तमशीला भरतेशम् ॥७१॥

रुचिरावृत्तम्

इमे प्रिये फलकुसुमैरलङ्कृतास्तटीरुहो विविधविहङ्गसङ्कुला ।
निरन्तराः सजलघनौघसन्निभा इमामिता रतिमिव कर्तुमावयोः ॥७२॥

अपरवक्त्रच्छन्दः

इति निगदति राघवोत्तमे परमविचित्रपदार्थसङ्गतम् ।
प्रमदभरवशगता सती जनकसुता निजगाद सादरम् ॥७३॥

प्रहर्षिणीवृत्तम्

नद्येषा विमलजला तरङ्गरम्या हंसाद्यैः खगनिवहैः कृताभिलापा ।
एतस्या प्रियतम ते मनोगतं चेत्तोयेऽस्या किमिति रतिक्षणं न कुर्मः ॥७४॥

है तथा बहाव छोड़कर पाताल तक भरा है ऐसा इस नदीका जल कहीं तो तुम्हारे मनके समान परम गाम्भीर्यको धारण कर रहा है और कहीं भ्रमरोंसे व्याप्त तथा कुछ-कुछ हिलते हुए नील कमलोंसे उत्तम स्त्रीके देखनेसे समुत्पन्न नेत्रोंकी शोभा धारण कर रहा है ॥६८॥ इधर कहीं जो नाना प्रकारके कमलवनोंमें विचरण कर रहा है, प्रेमसे युक्त है, उच्च शब्द कर रहा है और तीव्र मदसे विवश हो जो परस्पर कलह कर रहा है ऐसा पक्षियोंका समूह सुशोभित हो रहा है ॥६९॥ मेघरहित आकाशमें विद्यमान चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मुखको धारण करनेवाली हे प्रिये ! इधर जिस पर स्त्रियों सहित क्रीडा करनेवाले पक्षियोंके समूहने अपने चरण-चिह्न बना रक्खे हैं ऐसा इस नदीका यह बालुमय तट तुम्हारे नितम्बस्थलकी सदृशता धारण कर रहा है ॥७०॥ जिस प्रकार अनेक उत्तम विलासों—हावभाव रूप चेष्टाओंसे सहित तरङ्गके समान उत्तम भौंहोंसे युक्त एवं उत्तम शीलको धारण करनेवाली सुभद्रा सुन्दर एवं विस्तृत गुणसमूहसे युक्त, शुभ चेष्टाओंके धारक तथा संसारमें सर्वसुन्दर भरत चक्रवर्तीको प्राप्त हुई थी उसी प्रकार अनेक विलासों—पक्षियोंके संचारसे युक्त जलको धारण करनेवाली, भौंहोंके समान उत्तम तरङ्गोंसे युक्त, अतिशय मनोहर यह नदी, अत्यन्त सुन्दर तथा विस्तृत गुण समूहसे सहित शुभ चेष्टासे युक्त एवं जगत्सुन्दर लवणसमुद्रको प्राप्त हुई है ॥७१॥ हे प्रिये ! जो फल और फूलोंसे अलंकृत हैं, नाना प्रकारके पक्षियोंसे व्याप्त है, निरन्तर है तथा जलसे भरे मेघ-समूहके समान जान पड़ते हैं ऐसे ये किनारेके वृक्ष हम दोनोंको प्रीति उत्पन्न करनेके लिए ही मानो इस नदी कूलमें प्राप्त हुए हैं ॥७२॥ इस प्रकार जब रामने अत्यन्त विचित्र शब्द तथा अर्थसे सहित वचन कहे तब हर्षित होती हुई सीताने आदरपूर्वक कहा ॥७३॥ कि हे प्रियतम ! यह नदी विमल जलसे भरी है, लहरोंसे रमणीय है, हंसादि पक्षियोंके समूह इसमें इच्छानुसार क्रीड़ा

१ अत्र चतुर्थचरणे छन्दोभङ्गः, पाठस्तूपलब्धपुस्तकेष्वेव विध एव ।

वियोगिनीच्छन्द

अथ राजसुतासमीरितं तद्वाक्यं राघवगोत्रचन्द्रमा ।
अनुजानुगतोऽभिनन्दनात् भेजे रम्यभुवं रथालयात् ॥७५॥
पूर्वं चक्रे लक्ष्मीनाथः स्नपनमभिनवधृतगजपतिवनपथपरिचितश्रमप्रतिनोदनम् ।
तस्मादूर्ध्वं नानास्वादप्रवरकिसलयकुसुमसमुच्चयमुचिता च परिक्रियाम् ॥७६॥

(?)

पश्चात् स्रोतःसंसक्ताग्रद्रुमनिवहपरिचलनकरणवरसहितमतुलं विचेष्टितमीप्सितम् ।
रामेणामा स्नातुं सक्तो विविधजलविहृतिविषयपरमविधिसमुपचितं गुणाकरमानसः ॥७७॥

पृथ्वीवृत्तम्

सफेनवलया लसत्प्रकटवीचिमालाकुला विमर्दितसितासितारुणपयोजपत्राचिता ।
समुद्गतकलस्वनातिरहसङ्गमासेविता समं रघुकुलेन्दुना रतिमिवाकरोदापगा ॥७८॥

वियोगिनीवृत्तम्

विनिमज्ज्य सुदूरयायिना बिसिनीखण्डतिरोहितात्मना ।
पुनराशुसमागमाश्रिता रघुपुत्रेण रता नृपात्मजा ॥७९॥
मुक्त्वा नानाकृत्यासङ्गं कुसुमवनचरणजरजोविराजिगरुद्भृतम् ।
गत्वा क्षिप्रं तीरोद्देशं त्वरितकृतविविधरसिता पुरोगतयोषितः ॥८०॥
तेषां द्रष्टुं सक्ताः श्रेष्ठामपरविषयगमनरहितं विधाय मनो भृशम् ।
तिर्यञ्चोऽपि ह्येते रम्यं परुषकृतिरहितमनसां विदन्ति समीहितम् ॥८१॥

कर रहे हैं और आपका मन भी इसमें लग रहा है तो इसके जलमें हम लोग भी क्यों नहीं क्षणभर क्रीड़ा करें ॥७४॥

तदनन्तर छोटे भाई लक्ष्मणके साथ-साथ रामने सीताके वचनोंका समर्थन किया और सब रथरूपी घरसे उतर कर मनोहर भूमि पर आये ॥७५॥ सर्वप्रथम लक्ष्मणने नवीन पकड़े हुए हाथीको जङ्गली मार्गोंके बीच चलनेसे उत्पन्न हुई थकावटको दूर करनेवाला स्नान कराया। उसके बाद उसे नाना प्रकारके स्वादिष्ट उत्तमोत्तम कोमल पत्ते और फूलोंका समूह इकट्ठा किया तथा उसकी योग्य परिचर्या की ॥७६॥ तदनन्तर जिनका मन नाना प्रकारके गुणोंकी खान था ऐसे लक्ष्मणने रामके साथ-साथ नदीमें स्नान करना प्रारम्भ किया। वे कभी जलके प्रवाहमें आगे बढ़े हुए वृक्षोंके समूह पर चढ़कर जलमें कूदते थे, कभी अनुपम चेष्टाएँ करते थे और कभी नाना प्रकारकी जलक्रीड़ा सम्बन्धी उत्तमोत्तम विधियोंका प्रयोग करते थे ॥७७॥ जो फेनके वलय अर्थात् समूह अथवा फेनरूपी चूड़ियोंसे सहित थी, जो प्रकट उठती हुई तरङ्गरूपी मालाओंसे युक्त थी, जो मसले हुए सफेद नीले और लाल कमलपत्रोंसे व्याप्त थी, जिसमें मधुर शब्द उत्पन्न हो रहा था और जो एकान्त समागमसे सेवित थी ऐसी वह नदीरूपी स्त्री ऐसी जान पड़ती थी मानो रघुकुलके चन्द्र—रामचन्द्रके साथ उपभोग ही कर रही हो ॥७८॥ रामचन्द्रजी पानीमें गोता-मार बहुत दूर लम्बे जाकर कमल वनमें छिप गये तदनन्तर पता चलने पर शीघ्र ही सीता उनके पास जाकर क्रीड़ा करने लगी ॥७९॥ पहले जो हंसादि पक्षी अपनी स्त्रियोंके साथ जलमें क्रीड़ा कर रहे थे और कमलोंके वनमें विचरण करनेसे उत्पन्न परागसे जिनके पङ्ख सुशोभित हो रहे थे वे अब शीघ्र ही किनारों पर आकर नाना प्रकारके मधुर शब्द करने लगे तथा नाना कार्यों की आसक्ति छोड़कर तथा मनको विषयान्तरसे रहित कर राम-लक्ष्मण-सीताकी श्रेष्ठ जलक्रीडा देखने लगे, सो ठीक ही है क्योंकि ये तिर्यञ्च भी कोमल चित्तके धारक मनुष्योंकी मनोहर चेष्टाको

पुष्पिताग्रावृत्तम्

अतिमधुररवं करामिघातैर्मुरजरवादपि सुन्दरं विचित्रम् ।
अनुगतदयितो रघुप्रधानः सलिलमवादयदन्वितः सुगीत्या ॥८२॥
परितोऽकरोद्भ्रमणमस्य जलरमणसक्तचेतसोदारचतुरकरणेऽनुगतक्रियस्य [1]हलहेतेर्लक्ष्मणः ।
अतिवेगवान् पुनरपेतजवनिपुणचारतत्परो भ्रातृगुणनिरतधीः परमः समुद्रवचापलक्षितः ॥८३॥

मालिनीवृत्तम्

इति सुविमललीलः स्वेच्छयाम्भोविहारं प्रमदमुपनयन्तं तीरभाजां मृगाणाम् ।
रघुपतिरनुभूय भ्रातृदारानुयातो गजपतिरिव तीरं सेवितुं सम्प्रवृत्तः ॥८४॥

वंशस्थवृत्तम्

शरीरयातं च विधाय वर्तनं महाप्रशस्तैर्वनजन्मवस्तुभिः ।
स्थिता लतामण्डपरुद्धभास्करे सुरा इवामी कृतचित्रसत्कथाः ॥८५॥
सीतापतिस्ततोऽवोचदिति विश्रब्धमानसः । जटायुमूर्धकरया सीतयाऽलङ्कृतान्तिकः ॥८६॥
सन्त्यस्मिन् विविधा भ्रातर्द्रुमाः स्वादुफलान्विताः । सरितः स्वच्छतोयाश्च मण्डपाश्च लतात्मकाः ॥८७॥
अनेकरत्नसम्पूर्णो दण्डकोऽयं महागिरिः । प्रदेशैर्विविधैर्युक्तः परक्रीडनकोचितैः ॥८८॥
उपकण्ठेऽस्य नगरं विदध्मः सुमनोहरम् । नैजिकीर्वनसम्भूता गृह्णीमो महिषीस्तथा ॥८९॥
अस्मिन्नगोचरेऽन्येषामरण्येऽत्यन्तसुन्दरे । विषयावासनं कुर्मः परमा धृतिरत्र मे ॥९०॥
[2]स्वस्मिन्निहितचेतस्के नूनं शोकवशाकृते । [3]स्वहितैः स्वजनैः सर्वैः परिवर्गसमन्वितैः ॥९१॥

समझते हैं—जानते हैं ॥८०-८१॥ तदनन्तर रामने सीताके साथ-साथ उत्तम गीत गाते हुए हथेलियोके आघातसे जलका बाजा बजाया। उस जलवाद्यका शब्द मृदङ्गके शब्दसे भी अधिक मधुर सुन्दर और विचित्र था ॥८२॥ उस समय रामका चित्त जलक्रीडामे आसक्त था तथा वे स्वयं नाना प्रकारकी उत्तम चतुर चेष्टाओंके करनेमे तत्पर थे। भाईके स्नेहसे भरे एवं समुद्रघोष धनुषसे सहित लक्ष्मण उनके चारो ओर चक्कर लगा रहे थे। यद्यपि लक्ष्मण अत्यन्त वेगसे युक्त थे तो भी उस समय वेगको दूरकर सुन्दर चालके चलनेमे तत्पर थे ॥८३॥ इस प्रकार उज्ज्वल लीलाको धारण करनेवाले राम भाई और स्त्रीके साथ, तटपर स्थित मृगोको हर्ष उपजानेवाली जलक्रीड़ा इच्छानुसार कर गजराजके समान किनारे पर आनेके लिए उद्यत हुए ॥८४॥ स्नानके बाद वनमे उत्पन्न हुई अतिशय श्रेष्ठ वस्तुओंके द्वारा शरीरवृत्ति अर्थात् भोजन कर वे अनेक प्रकारकी कथाएँ करते हुए जहाँ लताओंके मण्डपसे सूर्यका संचार रुक गया था ऐसे दण्डक वनमे देवोके समान आनन्दसे बैठ गये ॥८५॥ तदनन्तर जटायुके मस्तक पर हाथ रखे हुई सीता जिनके पास बैठी थी ऐसे राम निश्चिन्त चित्त हो इस प्रकार बोले ॥८६॥ कि हे भाई! यहाँ स्वादिष्ट फलोसे युक्त नाना प्रकारके वृक्ष है, स्वच्छ जलसे भरी नदियाँ है और लताओंसे निर्मित नाना मण्डप है ॥८७॥ यह दण्डक नामका महापर्वत अनेक रत्नोंसे परिपूर्ण तथा उत्तम क्रीड़ाके योग्य नाना प्रदेशोंसे युक्त है॥८८॥हम लोग इस पर्वतके समीप अत्यन्त मनोहर नगर बनाये और वनमे उत्पन्न हुई पोषण करनेवाली अनेक भैंसे रख ले॥८९॥ जहाँ दूसरोंका आना कठिन है ऐसे इस अत्यन्त सुन्दर वनमें हम लोग देश बसाये क्योकि यहाँ मुझे बड़ा संतोष हो रहा है ॥९०॥ जिनका चित्त हम लोगोमे लग रहा है और जो निरन्तर शोकके वशीभूत रहती हैं ऐसी अपनी माताओंको, अपना हित करनेवाले समस्त परिकर एवं परिवारके

१. रामस्य । २. अस्मिन् म० । ३ सहितैः म० ।

प्रजानय जनन्यौ नौ त्वरितं न न नाथवा । तिष्ठ सुन्दर नैव मे मानसं शुद्धिमश्नुते ॥९२॥
स्वयमेव गमिष्यामि शरत्समयसङ्गमे । प्रतिजाग्रद्भवान् सीतामिह स्थास्यति यत्नवान् ॥९३॥
ततो लक्ष्मीधरे नम्रे प्रस्थितेऽवस्थिते तथा । प्रेमार्द्रीकृतचेतस्कः पुनः पद्मो जगाविति ॥९४॥
समयेऽस्मिन्नतिक्रान्ते दीप्तभास्करदारुणे । प्राप्तोऽत्यन्तमयं भीमः कालः सम्प्रति जालदः[1] ॥९५॥
क्षुब्धाकूपारनिर्घोषाश्चलाञ्जननगोपमाः । दिशोऽन्धकारयन्त्येते विद्युद्वन्तो[2] बलाहकाः ॥९६॥
निरन्तरं तिरोधाय गगनं घनविग्रहाः । मुञ्चन्ति कं यथा देवा रत्नराशिं जिनोद्भवे ॥९७॥

उपजातिवृत्तम्

विगाय तुङ्गानचलान् महान्तो धाराभिरुच्चैर्ध्वनयः पयोदाः ।
नभोङ्गणेऽमी निभृतं चरन्तः क्षणप्रभासङ्गमिनो विभान्ति ॥९८॥

वंशस्थवृत्तम्

पयोमुचः केचिदमी विपाण्डुराः समीरिता वेगवता नभस्वता ।
भ्रमन्ति निष्णातमसंयतात्मनां मनोविशेषा इव यौवनश्रिताः ॥९९॥
अथ सस्यभुवं मुक्त्वा मेघो भूभृति वर्षति । अनिश्चितविशेषः सन् कुपात्रे द्रविणी यथा ॥१००॥

मालिनीवृत्तम्

अतिजवमिह काले सिन्धवः सम्प्रवृत्ता विषमतमविहारोदारपङ्का धरित्री ।
जलपरिमलशीतो वाति चण्डश्च वायुर्न तव गमनयुक्तं तेन मन्ये सुभाव ॥१०१॥

साथ, जाओ शीघ्र ही ले आओ अथवा नहीं-नहीं ठहरो, यह ठीक नही है इसमे मेरा मन शुद्धताको प्राप्त नही हो रहा है ॥९१–९२॥ शरद् ऋतु आने पर मै स्वयं जाऊँगा, तुम सीताके प्रति सावधान रहकर यत्न सहित यहीं ठहरना ॥९३॥ तदनन्तर रामकी पहली बात सुनकर लक्ष्मण बडी नम्रतासे जाने लगे थे पर दूसरी बात सुनकर रुक गये। उसी समय जिनका चित्त प्रेमसे आर्द्र हो रहा था ऐसे रामने पुनः कहा कि देदीप्यमान सूर्यसे दारुण यह ग्रीष्म काल तो व्यतीत हुआ अब यह अत्यन्त भयंकर वर्षा काल उपस्थित हुआ है ॥९४–९५॥ जो क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान गर्जना कर रहे है तथा जो चलते-फिरते अञ्जनगिरिके समान जान पड़ते है ऐसे बिजलीसे युक्त ये मेघ दिशाओको अन्धकारसे युक्त कर रहे है ॥९६॥ जिस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्‌के जन्मके समय देव रत्नराशिकी वर्षा करते है उसी प्रकार मेघोका शरीर धारण करनेवाले देव निरन्तर रूपसे आकाशको आच्छादित कर जल छोड रहे है—पानी बरसा रहे है ॥९७॥ जो स्वयं महान् है, अत्यधिक गर्जना करनेवाले है, जो अपनी मोटी धाराओंसे पर्वतोको और भी अधिक उन्नत कर रहे हैं, जो आकाशाङ्गणमे निरन्तर विचरण कर रहे है तथा जिनमे बिजली चमक रही है ऐसे ये मेघ अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं ॥९८॥ वेगशाली वायुके द्वारा प्रेरित ये कितने ही सफेद मेघ असंयमी मनुष्योंके तरुण हृदयोंके समान इधर-उधर घूम रहे है ॥९९॥ जिस प्रकार विशेषताका निश्चय नहीं करनेवाला धनाढ्य मनुष्य कुपात्रके लिए धन देता है उसी प्रकार यह मेघ धान्यकी भूमि छोड़कर पर्वत पर पानी बरसा रहा है ॥१००॥ इस समय बड़े वेगसे नदियाँ बहने लगी है, अत्यधिक कीचड़से युक्त हो जानेके कारण पृथिवी पर विहार करना दुर्भर हो गया है और जलके सम्बन्धसे शीतल तीक्ष्ण वायु चलने लगी है इसलिए

---

१ जलदानामयं जालदः मेघसम्बन्धी । २ विद्युत् ।

इति निगदति पद्मे केकयीसूनुरूचे
प्रवदसि यदधीशस्त्व तथाहं करोमि ।
विविधरसकथाभि सुन्दरे स्वाश्रये ते
रविपरिचयमुक्त कालमस्थु सुखेन ॥१०२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दण्डकारण्यनिवासाभिधान नाम द्विचत्वारिंशत्तम पर्व ॥४२॥



हे भद्र ! तुम्हारा जाना ठीक नही है ॥१०१॥ इस प्रकार रामके कहने पर लक्ष्मण बोले कि आप स्वामी हो जैसा कहते हो वैसा ही मै करता हूॅ । इस तरह अपने सुन्दर निवास स्थलमें वे नाना प्रकारकी स्नेहपूर्ण कथाएँ करते हुए सूर्यके परिचयसे रहित वर्षा काल तक सुखसे रहे ॥१०२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित, पद्मचरितमे दण्डक वनमे निवासका वर्णन करनेवाला बयालीसवॉ पर्व समाप्त हुआ ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशत्तमं पर्व

ततः शरदृतुर्जित्वा शशाङ्ककरपत्रिभिः । घनौघं विशदश्चक्रे[1] राज्यमाक्रान्तविष्टपः ॥१॥
विकसत्पुष्पसङ्घातान् पादपान् स्निग्धचेतसः । अलङ्कारोत्तमास्तस्य जगृहुः ककुबङ्गनाः ॥२॥
जीमूतमलनिर्मुक्तं भिन्नाञ्जनसमद्युति । अम्बुनेव चिरं धौतं रराज गगनाङ्गणम् ॥३॥
प्रावृट्कालगजो मेघकलशैर्धरिणीश्रियम् । अभिषिच्य गतः क्वापि विद्युत्कक्षाविराजितः ॥४॥
चिरात् कमलिनीगेहं प्राप्य [2]षट्पदभृतां गणाः । उद्भूतमधुरालापाः कामप्यापुः सुखासिकाम् ॥५॥
सिन्धवः स्वच्छकीलाला[3] उन्मज्जत्पुलिना पराम् । कान्तिमीयुः समासाद्य शरत्समयकामुकम् ॥६॥
वर्षावातविमुक्तानि चिरात्प्राप्य सुखासिकाम् । काननानि व्यराजन्त सङ्गतानीव निद्रया ॥७॥
सरांसि पङ्कजाढ्यानि समं [4]रोधस्समुत्थितैः । पादपैः पक्षिनादेन समालापमिवाभजन् ॥८॥
नानापुष्पकृतामोदा रजनीविमलाम्बरा । मृगाङ्कतिलकं भेजे सुकालेशमिवोषिता ॥९॥
केतकीसूतिरजसा पाण्डुरीकृतविग्रहः । ववौ समीरणो मन्दं मदयन् कामिनीजनम् ॥१०॥
इति प्रसन्नतां प्राप्ते काले सोत्साहविष्टपे । मृगेन्द्रगतिराश्लिष्टविक्रमैकमहारसः ॥११॥
[5]लब्ध्वानुमननं ज्येष्ठादाशानिहितवीक्षणः । कदाचिल्लक्ष्मणो भ्राम्यन्नेककस्तद्वनान्तिकम् ॥१२॥
अजिघ्रदामरं गन्धं विनीतपवनाहृतम् । अचिन्तयच्च कस्यैष भवेद्गन्धो मनोहरः ॥१३॥

अथानन्तर उज्जवल शरद् ऋतु, चन्द्रमाकी किरण रूपी वाणोंके द्वारा मेघसमूहको जीत कर समस्त विश्वमें व्याप्त होती हुई राज्य करने लगी ॥१॥ जिनका चित्त स्नेहसे भर रहा था ऐसी दिशा रूपी स्त्रियोंने उस शरद् ऋतुके स्वागतके लिए ही मानो खिले हुए पुष्पसमूहसे सुशोभित वृक्ष रूपी उत्तमोत्तम अलकार धारण किये थे ॥२॥ मेघरूपी मलसे रहित आकाश रूपी आंगन, मर्दित अञ्जनके समान श्यामवर्ण हो ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बहुत देर तक पानीसे धुल जानेके कारण ही स्वच्छ हो गया है ॥३॥ वर्षा काल रूपी हाथी, मेघरूपी कलशोंके द्वारा पृथिवी रूपी लक्ष्मीका अभिषेक कर बिजली रूपी कक्षाओंमें सुशोभित होता हुआ जान पड़ता है कहीं चला गया था ॥४॥ भ्रमरोंके समूह बहुत समय बाद कमलिनीके घर जा कर मधुरालाप करते हुए सुखसे बैठे थे ॥५॥ जिनके पुलिन धीरे-धीरे उन्मग्न हो रहे हैं ऐसी स्वच्छजलसे भरी नदियाँ शरत्कालरूपी वल्लभको पा कर परम कान्तिको प्राप्त हो रही थीं ॥६॥ वर्षा कालकी तीक्ष्ण वायुसे रहित वन चिरकाल बाद सुखसे बैठकर ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो निद्रासे सगत ही थे—नींद ही ले रहे थे ॥७॥ कमलोंसे युक्त सरोवर तटों पर उत्पन्न हुए वृक्षोंके साथ पक्षियोंके शब्दके बहाने मानो वार्तालाप ही कर रहे थे ॥८॥ जिसने नाना प्रकारके फूलोंकी सुगन्धि धारण की थी तथा जो आकाश रूपी स्वच्छ वस्त्रसे सुशोभित थी ऐसी रात्रि रूपी स्त्री उत्तमकाल रूपी पतिको पाकर मानो चन्द्रमा रूपी तिलकको धारण कर रही थी ॥९॥ केतकीके फूलोंसे उत्पन्न परागके द्वारा जिसका शरीर शुक्लवर्ण हो रहा था ऐसी वायु कामिनीजनोंको उन्मत्त करती हुई धीरे-धीरे बह रही थी ॥१०॥ इस प्रकार जिसमें समस्त संसार उत्साहसे युक्त था ऐसे उस शरत्कालके प्रसन्नताको प्राप्त होने पर सिंहके समान निर्भय विचरने वाले महापराक्रमी लक्ष्मण बड़े भाई रामसे आज्ञा प्राप्त कर दिशाओंकी ओर दृष्टि डालते हुए किसी समय अकेले ही उस दण्डक वनके समीप घूम रहे थे ॥११-१२॥ उसी समय उन्होंने विनयी पवनके द्वारा लाई हुई दिव्य सुगन्धि सूँघी। उसे सूँघते ही वे विचार करने लगे

---

१. विशद चक्रे म० । २ भ्रमराणाम् । ३. निर्मलजलयुक्ताः । ४. रोधसमुत्थितैः । ५. लब्धानुगमनं म० ।

पादपाना किमेतेषां स्फुटकुसुमधारिणाम् । आहोस्विन्मम देहस्य कुसुमोत्करशायिन ॥१४॥
वैदेह्या सङ्गतो राम किमुतोपरि तिष्ठति । किंवा कश्चित्समायातो भवेदत्र त्रिविष्टपी[1] ॥१५॥
ततो मगधराजेन्द्र पप्रच्छ श्रमणोत्तमम् । भगवन् कस्य गन्धोऽसौ चक्रे विस्मयन हरे[2] ॥१६॥
ततो गणधरोऽवोचज्ज्ञानलोकविचेष्टित । सन्देहतिमिरादित्य पापधूलीसमीरणः ॥१७॥
द्वितीयस्य जिनेन्द्रस्य ध्वनिर्वासससमागमे । विद्याधराय विभ्राय[3] याताय शरणं विभुम् ॥१८॥
राक्षसानामधीशेन महाभीमेन धीमता । [4]अम्भोदवाहनायासीत्कृपयेत्युदितो वर ॥१९॥
विपुले राक्षसद्वीपे त्रिकूट नाम पर्वतम् । मेघवाहनविश्रब्धो गच्छ दक्षिणसागरे ॥२०॥
जम्बूद्वीपस्य जगतीमिमामाश्रित्य दक्षिणम् । लङ्केति नगरी तत्र रक्षोभिर्विनिवेशिता ॥२१॥
रहस्यमिदमेकं च विद्याधर पर शृणु । जम्बूभरतवर्षस्य दक्षिणाशा समाश्रयत् ॥२२॥
आश्रित्योत्तर तीर लवणस्य महोदधे । वसुन्धरोदरस्थानस्वभावार्पितमायतम् ॥२३॥
योजनस्याष्टम भाग दण्डकाद्रौ गुहाश्रयम् । अधोगत्वा महाद्वार प्रविश्य मणितोरणम् ॥२४॥
अलङ्कारोदय नाम स्थित पुरमनुत्तमम् । स्थानीयशतधर्मस्थं दिव्यदेशं निरीक्ष्यते ॥२५॥
नानाप्रकाररत्नांशुसन्तानपरिराजितम् । विस्मयोत्पादने शक्तमपि त्रिदिवसद्मनाम् ॥२६॥
अप्रतर्क्यं गगनगैर्दुर्गं[5] विद्याविवर्जितैः । सर्वकामगुणोपेत विचित्रालयसङ्कुलम् ॥२७॥
परचक्रसमाक्रान्तो यद्यापत्सु कदाचन । भवेर्दुर्गं समासृत्य तिष्ठेस्त्व निर्भयस्तत ॥२८॥
इत्युक्तस्तेन यातोऽसौ यो विद्याधरबालक । लङ्कापुरीमभूत्तस्मात् सन्तानोऽनेकपुङ्गव' ॥२९॥

कि यह मनोहर गन्ध किसकी होनी चाहिए ? ॥१३॥ क्या यह गन्ध विकसित फूलोंको धारण करने वाले इन वृक्षों की है अथवा पुष्पसमूह पर शयन करने वाले मेरे शरीर की है ? ॥१४॥ अथवा ऊपर सीताके साथ श्रीराम विराजमान है ? या कोई देव यहाँ आया है ? ॥१५॥

तदनन्तर मगधदेशके सम्राट् राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे पूछा कि हे भगवन् ! वह किसकी गन्ध थी जिसने लक्ष्मणको आश्चर्य उत्पन्न किया था ॥१६॥ तदनन्तर लोगोंकी चेष्टाओं को जानने वाले, संदेह रूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए सूर्य एवं पाप रूपी धूलिको उड़ानेके लिए वायु स्वरूप गणधर भगवान् बोले ॥१७॥ कि द्वितीय जिनेन्द्र श्री अजितनाथके समवसरण मे मेघवाहन नामका विद्याधर भयभीत हो कर प्रभुकी शरणमे आया था । उस समय राक्षसोंके अधिपति बुद्धिमान् महाभीमने करुणा वश मेघवाहनके लिए इस प्रकार वर दिया था ॥१८-१९॥ कि हे मेघवाहन ! दक्षिण समुद्रमे एक विशाल राक्षस द्वीप है उसी द्वीपमे त्रिकूट नामका पर्वत है सो तू निश्चिन्त हो कर उसी त्रिकूट पर्वत पर चला जा । वहाँ जम्बूद्वीपकी जगती (वेदिका) का आश्रय कर दक्षिण दिशामे राक्षसोंने एक लङ्का नामकी नगरी बसाई है । वहाँ ही तू निवास कर । हे विद्याधर ! इसके साथ ही एक रहस्य-गुप्त वार्ता और सुन । जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रकी दक्षिण दिशामे लवण समुद्रके उत्तर तटका आश्रय कर पृथिवीके भीतर एक लम्बा चौड़ा स्वाभाविक स्थान है जो योजनके आठवे भाग विस्तृत है । दण्डक पर्वतके गुफाद्वारसे नीचे जाने पर मणिमय तोरणोंसे देदीप्यमान एक महाद्वार मिलता है उसमे प्रवेश करने पर अलंकारोदय नामका एक उत्कृष्ट सुन्दर नगर दिखाई देता है ॥२०-२५॥ वह नगर नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणोंके समूहसे सुशोभित है तथा देवोंको भी आश्चर्य उत्पन्न करनेमे समर्थ है । आकाशमे गमन करने वाले विद्याधर उसका विचार ही नहीं कर सकते तथा विद्यासे रहित मनुष्योंके लिए वह अत्यन्त दुर्गम है । वह सब प्रकारके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले गुणोंसे सहित है तथा विविध प्रकारके भवनोंसे व्याप्त है ॥२६-२७॥ यदि कदाचित् तू आपत्तिके समय परचक्रके द्वारा आक्रान्त हो तो उस दुर्गका आश्रय कर निर्भय निवास करना ॥२८॥ इस प्रकार

१ देवः । २. लक्ष्मणस्य । ३. भीताय । ४. मेघवाहनाय । ५. दुःखेन गन्तु शक्यम् ।

यथावस्थितभावाना श्रद्धान परम सुखम् । मिथ्याविकल्पितार्थाना ग्रहण दु खमुत्तमम् ॥३०॥
विद्याभृता सुराणा च ज्ञेयो भेदो विचक्षणै । तिलपर्वतयोस्तुल्य शक्तिकान्त्यादिभिर्गुणै ॥३१॥
पङ्कचन्दनयोर्यद्वदथवोपलरत्नयो । तद्वत् खेचरलोकस्य देवलोकस्य चान्तरम् ॥३२॥
गर्भवासपरिक्लेशमनुभूय विधेर्वशात् । तत समुपजायन्ते विद्यामात्रोपजीविन ॥३३॥
क्षेत्रवशसमुद्भूता खे चरन्तीति खेचरा. । अमराणा स्वभावस्तु मनोज्ञोऽस्य विबुध्यताम् ॥३४॥
सुरूपशुचिसर्वाङ्गा गर्भवासविवर्जिता । मासास्थिक्लेदरहिता देवा अनिमिषेक्षणा ॥३५॥
जरारोगविहीनाश्च सतत यौवनान्विता । उदारतेजसा युक्ता सुखसौभाग्यसागरा ॥३६॥
स्वभावविद्यासम्पन्ना अवधिज्ञानलोचना । कामरूपधरा धीरा स्वच्छन्दगतिधारिण ॥३७॥
अमी लङ्काश्रिता राजन् न देवा न च राक्षसा । रक्षन्ति रक्षसा क्षेत्रमाहूतास्तेन राक्षसाः ॥३८॥
तद्वशानुक्रमो ज्ञेयो युगानामन्तरै सह । पारम्पर्याद् व्यतिक्रान्त कालो नैकार्णवोपम ॥३९॥
रक्ष प्रभृतिषु श्लाघ्येष्वतीतेषु बहुष्वपि । खण्डत्रयाधिपस्तस्य रावणोऽभवदन्वये ॥४०॥
भगिनी दुर्नखा तस्य रूपेणाप्रतिमा[1] भुवि । प्राप्तस्तया महावीर्यो रमण खरदूषण ॥४१॥
चतुर्दशसहस्राणि नृणा तस्य महात्मनाम् । प्रतीतो दूषणाख्यश्च सेनाधिपतिरूर्जित. ॥४२॥
दिक्कुमार इवोदारो धरणीजठरे स्थितम् । अलङ्कारपुर तस्य स्थानमासीन्महौजस ॥४३॥
शम्बूको नाम सुन्दश्च सुतौ तस्य बभूवतु । बन्धुतश्च दशग्रीवाद् भुवि गौरवमाप स ॥४४॥

महाभीम राक्षसेन्द्रके कहने पर जो विद्याधर बालक, लकापुरी गया था उसीसे अनेक उत्तमोत्तम सन्तति उत्पन्न हुई ॥२९॥ जो पदार्थ जिस प्रकार अवस्थित है उनका उसी प्रकार श्रद्धान करना सो परम सुख है और मिथ्याकल्पित पदार्थोंका ग्रहण करना सो अत्यधिक दु ख है ॥३०॥ विद्याधरों और देवोके बीच बुद्धिमान् मनुष्योको शक्ति, कान्ति आदि गुणोंके कारण तिल तथा पर्वतके समान भारी भेद समझना चाहिए ॥३१॥ जिस प्रकार कीचड़ और चन्दन तथा पाषाण और रत्नमें भेद है उसी प्रकार विद्याधर और देवोमे भेद है ॥३२॥ विद्याधर तो गर्भवासका दु ख भोगकर बादमे कर्मोदयकी अनुकूलतासे विद्यामात्रके धारक होते हैं। ये विद्याधरोके क्षेत्र-विजयार्ध पर्वत पर तथा उनके योग्य कुलोमे उत्पन्न होते है तथा आकाशमे चलते है इसलिए खेचर कहलाते है। परन्तु देवोंका स्वभाव ही मनोहर है ॥३३–३४॥ देव, सुन्दर रूप तथा पवित्र शरीरके धारक है, गर्भावाससे रहित है, मास हड्डी तथा स्वेद आदिसे दूर है और टिमकार रहित नेत्रोंके धारक है ॥३५॥ वे वृद्धावस्था तथा रोगोसे रहित हैं, सदा यौवनसे सहित रहते हैं, उत्कृष्ट तेजसे युक्त, सुख और सौभाग्यके सागर, स्वाभाविक विद्याओंसे सम्पन्न, अवधिज्ञानरूपी नेत्रोंके धारक, इच्छानुसार रूप रखनेवाले, धीर, वीर और स्वच्छन्द गतिसे विचरण करनेवाले है ॥३६–३७॥ हे राजन्! लंकामे रहनेवाले विद्याधर न देव है और न राक्षस है किन्तु राक्षस द्वीपकी रक्षा करते है इसलिए राक्षस कहलाते है ॥३८॥ अनेक युगान्तरोके साथ उनके वंशका अनुक्रम चला आता है और उसी अनुक्रम-परम्पराके अनुसार अनेक सागर प्रमाण काल व्यतीत हो चुका है ॥३९॥ राक्षस आदि बहुतसे प्रशंसनीय उत्तमोत्तम विद्याधर राजाओंके व्यतीत हो चुकने पर उसी वंशमे तीन खण्डका स्वामी रावण उत्पन्न हुआ है ॥४०॥ उसकी एक दुर्नखा नामकी बहिन है जो पृथ्वी पर अपने सौन्दर्यकी उपमा नही रखती। उसने महाशक्तिशाली खरदूषण नामक पति प्राप्त किया है ॥४१॥ अतिशय बलवान् खरदूषण चौदह हजार प्रमाण मनुष्योका विश्वासप्राप्त सेनापति है ॥४२॥ वह दिक्कुमार-भवनवासी देवके समान उदार है। पृथ्वीके मध्यमे स्थित अलंकारपुर नामका नगर उस महाप्रतापीका निवास स्थान है ॥४३॥ उसके शम्बूक और सुन्द नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। साथ ही वह अपने सम्बन्धी रावणसे भी

१ रूपेण प्रतिमा म० ।

गुरुभिर्वार्यमाणोऽपि मृत्युपाशावलोकित । शम्बूकः सूर्यहासार्थं प्राविशद्भीषण वनम् ॥४५॥
यथोक्तमाचरन् राजन्नाराधयितुमुद्यत । एकान्नभुग्विशुद्धात्मा ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय ॥४६॥
असमाप्तोपयोगस्य यो मे दृष्टिपथे स्थित । वध्योऽसाविति भाषित्वा वशस्थलमुपाविशत् ॥४७॥
दण्डकारण्यभागान्त ता च क्रौंचरवा नदीम् । सागरस्योत्तर तीर सम्प्राप्यासाववस्थित ॥४८॥
नीत्वा द्वादशवर्षाणि ततोऽस्यासिरुद्गत । ग्राह्य सप्तदिन स्थित्वा हन्यात्साधकमन्यथा ॥४९॥
कैकसेया[1] सुतस्नेहाद्द्रष्टुमागात् क्षणे क्षणे । अपश्यच्चासिमुद्भूत काले देवैरधिष्ठितम् ॥५०॥
प्रसन्नवदना भर्तुर्निजगाद यथाविधि । शम्बूकस्य महाराज सिद्ध तद्योगकारणम् ॥५१॥
आगमिष्यति मे पुत्रो मेरु कृत्वा प्रदक्षिणम् । अहोभिस्त्रिभिरद्यापि नियमो न समाप्यते ॥५२॥
एव मनोरथ सिद्ध दध्यो चन्द्रनखा सदा । लक्ष्मणश्च तमुद्देश सम्प्राप्त पर्यटन् वने ॥५३॥
सहस्रामरपूज्यस्य सद्गन्धस्य स्वभावत । अनन्तस्यादिहीनस्य खड्गरत्नस्य तस्य स ॥५४॥
दिव्यगन्धानुलिप्तस्य दिव्यस्रग्भूषितस्य च । गन्धो भास्करहासस्य लक्ष्मीधरमुपेयिवान् ॥५५॥
लक्ष्मणो विस्मय प्राप्त परित्यज्य क्रियान्तरम् । अयासीद् गन्धमार्गेण केसरीव भयोज्झित ॥५६॥
अपश्यच्च तरुच्छन्न प्रदेशमतिदुर्गमम् । लताजालावलीरुद्ध तुङ्गपाषाणवेष्टितम् ॥५७॥
मध्ये च गहनस्यास्य सुसम धरणीतलम् । विचित्ररत्ननिर्माणमर्चित कनकाम्बुजै ॥५८॥
मध्ये तस्यापि विपुल वशस्तम्ब[2] समुत्थितम् । सोधर्ममिव सद्द्रष्टुमविज्ञातकुतूहलम् ॥५९॥

पृथ्वी पर गौरवको प्राप्त हुआ था ॥४४॥ जिसे मृत्युका फन्दा देख रहा था ऐसे शम्बूकने गुरुजनोंके द्वारा रोके जाने पर भी सूर्यहास नामा खड्ग प्राप्त करनेके लिए भयङ्कर वनमे प्रवेश किया ॥४५॥ हे राजन्! वह यथोक्त आचरण करता हुआ सूर्यहास खड्गको प्राप्त करनेके लिए उद्यत हुआ। वह एक अन्न खाता है, निर्मल आत्माका धारक है, ब्रह्मचारी है और इन्द्रियोंको जीतने वाला है, ॥४६॥ 'उपयोग' पूर्ण हुए विना जो मेरी दृष्टिके सामने आवेगा वह मेरे द्वारा वध्य होगा' इस प्रकार कहकर वह वंशस्थल पर्वत पर वंशकी एक झाडीमे जा बैठा ॥४७॥ वह दण्डक वनके अन्तमे क्रौञ्चरवा नदी और समुद्रके उत्तर तटके बीच जो स्थान है वहाँ अवस्थित है ॥४८॥ तदनन्तर बारह वर्ष व्यतीत होने पर वह सूर्यहास नामा खड्ग प्रकट हुआ जो सात दिन ठहर कर ग्रहण करने योग्य होता है अन्यथा सिद्ध करनेवालेको ही मार डालता है ॥४९॥ दुर्नखा (चन्द्रनखा) पुत्रके स्नेहसे उसे बार-बार देखनेके लिए उस स्थान पर आती रहती थी सो उसने उसी क्षण उत्पन्न हुए उस देवाधिष्ठित सूर्यहास खड्गको देखा ॥५०॥ जिसका मुख प्रसन्नतासे भर रहा था ऐसी दुर्नखाने अपने पति खरदूषणसे कहा कि हे महाराज! मेरा पुत्र मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा देकर तीन दिनमे आ जावेगा क्योंकि उसका नियम आज भी समाप्त नहीं हुआ है ॥५१-५२॥ इस प्रकार इधर शम्बूककी माता चन्द्रनखा, सिद्ध हुए मनोरथका सदा ध्यान कर रही थी उधर लक्ष्मण वनमे घूमते हुए उस स्थान पर जा पहुँचे ॥५३॥ एक हजार देव जिसकी पूजा करते थे, जिसकी स्वाभाविक उत्तम गन्ध थी, जिसका न आदि था न अन्त था, जो दिव्यगन्धसे लिप्त था और दिव्यमालाओंसे जो अलंकृत था ऐसे उस सूर्यहास नामक खड्गरत्नकी गन्ध लक्ष्मण तक पहुँची ॥५४-५५॥ आश्चर्यको प्राप्त हुए लक्ष्मण अन्य कार्य छोड़कर जिस मार्गसे गन्ध आ रही थी उसी मार्गसे सिंहके समान निर्भय हो चल पड़े ॥५६॥ वहाँ जाकर उन्होंने वृक्षोंसे आच्छादित, लताओंके समूहसे घिरा तथा ऊँचे-ऊँचे पाषाणोंसे वेष्टित एक अत्यन्त दुर्गम स्थान देखा ॥५७॥ इसी वनके बीचमे एक समान पृथ्वीतल था जो चित्र-विचित्र रत्नोंसे बना था तथा सुवर्णमय कमलोंसे अर्चित था ॥५८॥ उसी समान धरातलके मध्यमें एक बाँसोका

१. दुर्नखा, चन्द्रनखा। २. वशस्तं वशमुत्थित म० (?)।

अथान्ते तस्य निस्त्रिंश विस्फुरत्करमण्डलम् । सर्वांचकवन येन प्रदीप्तमिव लक्ष्यते ॥६०॥
नष्टशङ्कस्तमादाय लक्ष्मीमाञ्जातविस्मय । जिज्ञासुस्तीक्ष्णतामस्य त वेणुस्तम्बमच्छिनत् ॥६१॥
गृहीतसायक दृष्ट्वा त सर्वास्तत्र देवता. । अस्माक स्वाम्यसीत्युक्त्वा सनमस्यमपूजयन् ॥६२॥
अथावोचत भीतेश किञ्चिदस्राकुलेक्षण । सौमित्रिश्चिरयत्यद्य क्व नु यातो भविष्यति ॥६३॥
भद्रोत्तिष्ठ जटायु ख दूरमुत्पत्य सद्रुतम् । लक्ष्मीधरकुमारस्य निपुणान्वेषण कुरु ॥६४॥
इत्युक्त [1]करुण यावत् करोत्यु पतितु खग । [2]अङ्गुलीं तावदायस्य जनकस्याङ्गजावदत् ॥६५॥
अथ कुङ्कुमपङ्केन लिप्ताङ्गो नाथ लक्ष्मणः । चित्रमाल्याम्बरधर समायाति स्वलङ्कृत ॥६६॥
गृहीतश्चायमेतेन मण्डलाग्रो महाप्रभ । राजतेऽत्यन्तमेतेन शैल केसरिणा यथा ॥६७॥
दृष्ट्वा तमीदृश रामो विस्मयव्याप्तमानस । अमह. प्रमद रोद्धुमुत्थाय परिषस्वजे ॥६८॥
पृष्टश्च लक्ष्मण कृत्स्न स्ववृत्तान्तमवेदयत् । स्थिताश्च ते विचित्राभि सङ्कथाभिर्यथासुखम् ॥६९॥
दृष्ट्वा प्रतिदिन खड्ग सुत च नियमस्थितम् । यायासीत् सा दिने तस्मिन् कैकसेय्यागतैकका ॥७०॥
अपश्यच्च [3]विसाराणा वन [4]कृत्तमशेषत । अचिन्तयच्च यात क्व पुत्र स्थित्वाटवीमिमाम् ॥७१॥
स्थितश्च यत्र ससिद्धमसिरत्नमिद वनम् । छिन्दानेन परीक्षार्थं न युक्त सुनुना कृतम् ॥७२॥
तावच्चास्तस्थितादित्यमण्डलप्रतिम शिर । सत्कुण्डल कबन्ध च ददर्श स्थाणुमध्यगम् ॥७३॥

विस्तृत स्तम्भ (भिड़ा) था जो किसी अज्ञात कुतूहलके कारण सौधर्मस्वर्गको देखनेके लिए ही मानो ऊँचा उठा हुआ था ॥५९॥

अथानन्तर उस बाँसोके स्तम्बमे देदीप्यमान किरणोके समूहसे सुशोभित एक खड्ग दिखाई दिया जिससे बाँसोके साथ-साथ समस्त वन प्रज्ज्वलित-सा जान पड़ता था ॥६०॥ आश्चर्यचकित लक्ष्मणने नि शङ्क हो वह खड्ग ले लिया और उसकी तीक्ष्णताकी परख करनेके लिए उसी वश-स्तम्बको उन्होने काट डाला ॥६१॥ खड्गधारी लक्ष्मणको देखकर वहाँ सब देवताओने 'आप हमारे स्वामी हो' यह कहकर नमस्कारके साथ-साथ उनकी पूजा की ॥६२॥

अथानन्तर जिनके नेत्र कुछ कुछ आँसुओसे भर रहे थे ऐसे रामने यह कहा कि आज लक्ष्मण बड़ी देर कर रहा है कहाँ गया होगा ? ॥६३॥ हे भद्र जटायु ! उठो और शीघ्र ही आकाशमे दूर तक उड़कर लक्ष्मणकुमारकी अच्छी तरह खोज करो ॥६४॥ इस प्रकार रामके करुणापूर्वक कहने पर जटायु उडनेकी तैयारी करता है कि इतनेमे सीता अङ्गुली ऊपर उठाकर कहती है ॥६५॥ कि जिनका शरीर केशरकी पङ्कसे लिप्त है, जो नाना प्रकारकी मालाओं और वस्त्रोको धारण कर रहे है तथा जो अलंकारोसे अलंकृत हैं ऐसे लक्ष्मण यह आ रहे हैं ॥६६॥ इन्होने यह महादेदीप्यमान खड्ग ले रक्खा है और इससे ये सिहसे पर्वतके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहे है ॥६७॥ लक्ष्मणको वैसा देख रामका मन आश्चर्यसे व्याप्त हो गया तथा वे हर्षको रोकनेके लिए असमर्थ हो गये जिससे उन्होंने उठकर उनका आलिङ्गन किया ॥६८॥ पूछने पर लक्ष्मणने अपना सब वृत्तान्त बतलाया। इस तरह राम लक्ष्मण और सीता—तीनो प्राणी नाना प्रकारकी कथाएँ करते हुए सुखसे वहाँ ठहरे ॥६९॥

अथानन्तर जो चन्द्रनखा प्रति दिन खड्गको तथा नियममें स्थित पुत्रको देख जाती थी उस दिन वह अकेली ही वहाँ आई ॥७०॥ आते ही उसने बाँसोके उस समस्त वनको सब ओरसे कटा देखा। वह विचार करने लगी कि पुत्र इस अटवीमे रहकर अब कहाँ चला गया ? ॥७१॥ जिस वनमे यह रहा तथा जहाँ यह खड्ग रत्न सिद्ध हुआ परीक्षाके लिए उसी वनको काटते हुए पुत्रने अच्छा नही किया ॥७२॥ इतनेमे ही उसने अस्ताचल पर स्थित सूर्यमण्डलके समान

१. करण म० । २ तावत् अङ्गुली आयस्य उत्थानखेदेन युक्ता कृत्वा । ३. वशानाम् । ४. छिन्नम् ।

उपकार. कृतस्तस्या परमो मूर्च्छया क्षणम् । पुत्रमृत्युसमुत्थेन यन्न दु खेन पीडिता[1] ॥७४॥
तत. सञ्ज्ञा समासाद्य हाकारमुखर मुखम् । उत्क्षिप्य कृच्छ्रतो दृष्टि तत्र मूर्धन्यपातयत् ॥७५॥
विललाप च शोकार्ता गलदस्राकुलेक्षणा । कुररीवैकिकारण्ये हृदयाघातकारिणी ॥७६॥
स्थितो द्वादशवर्षाणि दिनाना च चतुष्टयम् । पुत्रो मे हा पर क्षान्त न विधे[2] दिवसत्रयम् ॥७७॥
कृतान्तापकृत किं ते मया परमनिष्ठुर । येन [3]दृष्टनिधि पुत्र सहसा विनिपातित ॥७८॥
अपुण्यया मया नूनमन्यजन्मनि बालक । कस्या अपहृतो मृत्यु तत्प्रत्यागतमद्य ते ॥७९॥
मयापि पुत्र जातोऽसि कथमेता स्थिति गत. । ईदृशोऽपि प्रयच्छैका वाचमार्तिविनाशिनीम् ॥८०॥
एहि वत्स निज रूप प्रतिपद्य मनोहरम् । अमङ्गलमिद मायाक्रीडन न विराजते ॥८१॥
स्फुट यातोऽसि हा वत्स परलोक विधेर्वशात् । अन्यथा चिन्तितं कार्यमिदमुद्भूतमन्यथा ॥८२॥
अनुष्ठित त्वया मातु प्रतिकूल न जातुचित् । अधुना कारणोन्मुक्त किमिद विनयोज्झितम्[4] ॥८३॥
संसिद्धसूर्यहासश्चेदजीविष्यस्त्वमत्र ते । अस्थास्यत् क. पुरो लोके चन्द्रहासवृतो यथा ॥८४॥
भजता चन्द्रहासेन पद मम सहोदरे । सूर्यहासस्य न क्षान्त नूनमात्मविरोधिन ॥८५॥
एकक भीषणेऽरण्ये निर्दोष नियमस्थितम् । कुशत्रो कस्य हन्तु त्वा मूढस्य प्रसृत कर ॥८६॥
अदीर्घोपेक्षिता तेन भवन्त निघ्नतोदिता । क्व गमिष्यति पापोऽसौ साम्प्रत हतचेतन ॥८७॥
विलापमिति कुर्वाणा कृत्वाङ्के सुतमुत्तमम् । चुचुम्बे विद्रुमच्छायलोचना करसङ्गतम् ॥८८॥

निष्प्रभ, तथा कुण्डलोसे युक्त शिर और एक ठूठके बीच पड़ा हुआ पुत्रका धड देखा ॥७३॥ उसी क्षण मूर्च्छाने उसका परम उपकार किया जिससे पुत्रकी मृत्युसे उत्पन्न दु खसे वह पीड़ित नहीं हुई । सचेत होने पर हा हा कारसे मुखर शिर ऊपर उठाकर उसने बड़ी कठिनाईसे पुत्रके शिर पर दृष्टि डाली ॥७४-७५॥ झरते हुए आँसुओसे जिसके नेत्र आकुलित थे तथा जो अपनी छाती कूट रही थी ऐसी शोकसे पीड़ित चन्द्रनखा, वनमे अकेली कुररीके समान विलाप करने लगी ॥७६॥ मेरा पुत्र बारह वर्ष और चार दिन तक यहाँ रहा । हाय दैव ! इसके आगे तूने तीन दिन सहन नही किये ॥७७॥ हे अतिशय निष्ठुर दैव ! मैंने तेरा क्या अपकार किया था जिससे पुत्रको निधि दिखाकर सहसा नष्ट कर दिया ॥७८॥ निश्चय ही मुझ पापिनीने अन्य जन्ममे किसीका पुत्र हरा होगा इसीलिए तो मेरा पुत्र मृत्युको प्राप्त हुआ है ॥७९॥ हे पुत्र ! तू मुझसे उत्पन्न हुआ था फिर ऐसी दशाको कैसे प्राप्त हो गया ? अथवा इसी अवस्थामे तू दु.खको दूर करनेवाला एक वचन तो मुझे दे—एक बार तो मुझसे बोल ॥८०॥ आओ वत्स ! अपना मनोहर रूप धरकर आओ । यह तेरी अमङ्गल रूप छलक्रीड़ा अच्छी नहीं लगती ॥८१॥ हाय वत्स ! भाग्य वश तू स्पष्ट ही परलोक चला गया है । यह कार्य अन्य प्रकारसे सोचा था और अन्य प्रकार हो गया ॥८२॥ तूने कभी भी माताके प्रतिकूल कार्य नही किया है अब यह अकारण विनयका त्याग क्यो कर रहा है ? ॥८३॥ सूर्यहास खड्ग सिद्ध होने पर यदि तू जीवित रहेगा तो इस संसारमे चन्द्रहाससे आवृतकी तरह ऐसा कौन पुरुष है जो तेरे सामने खड़ा हो सकेगा ? ॥८४॥ चन्द्रहास खड्ग मेरे भाईके पास है सो जान पड़ता है उसने अपने विरोधी सूर्यहास खड्गको सहन नहीं किया है ॥८५॥ तू इस भयंकर वनमे अकेला रहकर नियमका पालन करता था किसीका कुछ भी अपराध तूने नहीं किया था फिर भी किस मूर्ख दुष्ट शत्रुका हाथ तुझे मारनेके लिए आगे बढ़ा ? ॥८६॥ तुम्हें मारते हुए उस शत्रुने शीघ्र ही प्रकट होनेवाली अपनी उपेक्षा प्रकट की है । अब वह अविचारी पापी कहाँ जावेगा ? ॥८७॥ इस प्रकार उत्तम पुत्रको गोदमें रखकर विलाप करते-करते जिसके नेत्र मूँगाके समान लाल हो गये थे ऐसी चन्द्रनखाने

---

१. पुत्रमृत्युसमुत्थेन दु खेन परिपीडिता म० । २. हे दैव ! । ३. दृष्टिनिधिः म० । ४. विनियोज्झितम् म० ।

ततः क्षणात् परित्यज्य शोकं नष्टास्रसन्ततिः । गृहीत्वा परमं क्रोधमुत्थाय स्फुरिताननां ॥८९॥
सञ्चरन्ती तमुद्देशं स्वैरं मार्गानुलक्षितम् । निरैक्षत युवानौ तौ चित्तबन्धनकारिणौ ॥९०॥
विनाशमगमत्तस्याः क्रोधोऽसौ तादृशोऽपि सन् । आदेश इव तस्याभूत् स्थाने रागरसः परः ॥९१॥
ततोऽचिन्तयदेताभ्यां नराभ्याममिलाषिणम् । वृणोमि नरमित्युच्चैरूमिकं दधती मनः ॥९२॥
इति सञ्चिन्त्य ससाधुकन्याकल्पं समाश्रिता । हृदयेनातुरात्यन्तं भावगह्वरवर्तिना ॥९३॥
हंसीव पद्मिनीखण्डे महिषीव महाह्रदे । सस्ये सारङ्गबालेव तत्राभूत् साभिलाषिणी ॥९४॥
भञ्जन् करशाखाना कुर्वन्ती स्फुटनिस्वनम् । उपविश्य किलोद्विग्ना पुन्नागस्य तलेऽरुदन् ॥९५॥
अतिदीनकृतारावा धूसरा वनरेणुना । दृष्ट्वा तां रामरमणी कृपावष्टब्धमानसा ॥९६॥
उत्थायान्तिकमागत्य करामर्शनतत्परा । मा भैषीरिति भाषित्वा गृहीत्वा पाणिपल्लवे ॥९७॥
किञ्चित् किल त्रपाभाजं मलिनांशुकधारिणीम् । सान्त्वयन्ती शुभैर्वाक्यै रमणान्तिकमानयत् ॥९८॥
ततः पद्मो जगादैतां का त्वं श्वापदसेविते । एकाकिनी वने कन्ये चरसीहातिदुःखिता ॥९९॥
ततः सम्भाषणं प्राप्य स्फुटं तामरसेक्षणा । जगाद भ्रमरौघस्य वाचानुकृतिमेतया ॥१००॥
पुरुषोत्तम मे माता निःसंज्ञाया मृतिं गता । तद्भवेन च शोकेन तातोऽपि विनिपातितः ॥१०१॥
साहं पूर्वकृतात् पापाद् बन्धुभिः परिवर्जिता । प्रविष्टा दण्डकारण्यं वैराग्यं दधती परम् ॥१०२॥
पश्य पापस्य माहात्म्यं यद्वाञ्छन्त्यपि पञ्चताम् । अरण्येऽस्मिन् महाभीमे व्यालैरपि विवर्जिता ॥१०३॥

हाथमे लेकर पुत्रका चुम्बन किया ॥८८॥ तदनन्तर क्षण एकमे शोक छोड़कर वह उठी । उसके अश्रुओंकी धारा नष्ट हो गई और तीव्र क्रोध धारण करनेसे उसका मुख दमकने लगा ॥८९॥ वह मार्गके समीपमे ही स्थित उस स्थान पर इच्छानुसार इधर-उधर घूमने लगी । उसी समय उसने चित्तको बाँधनेवाले दोनो तरुण—रामलक्ष्मणको देखा ॥९०॥ उन्हे देखते ही उसका वैसा तीव्र क्रोध नष्ट हो गया और आदेशके समान उसके स्थान पर परम राग रूपी रस आ जमा ॥९१॥ इसके बाद उसने ऐसा विचार किया कि इन दोनो पुरुषोमेसे मैं अपने इच्छुक पुरुषको वरूँगी इस प्रकार उसके मनमे ऊँची तरङ्गे उठने लगी ॥९२॥ऐसा विचार कर वह कन्याभावको प्राप्त हुई । वह उस समय भाव रूपी गुफामे वर्तमान हृदयसे अत्यन्त आतुर हो रही थी ॥९३॥ जिस प्रकार हंसी कमलिनीके झुण्डमे, महिषी (भैंस) महासरोवरमे और हरिणी धान्यमे अभिलाषासे युक्त होती है उसी प्रकार वह भी राम-लक्ष्मणमे अभिलाषासे युक्त हो गई ॥९४॥ वह हाथकी अङ्गुलियाँ चटखाती हुई भयभीत मुद्रामे पुन्नाग वृक्षके नीचे बैठकर रोने लगी ॥९५॥ जो अत्यन्त दीन शब्द कर रही थी, तथा वनकी धूलिसे धूसरित थी ऐसी उस कन्याको देख सीताका हृदय दयासे द्रवीभूत हो गया ॥९६॥ वह उठकर उसके पास गई तथा शरीर पर हाथ फेरने लगी । तदनन्तर 'डरो मत' यह कहकर उसका हाथ पकड़ कर पतिके पास ले आई । उस समय वह कुछ-कुछ लज्जित हो रही थी, तथा मलिन वस्त्रको धारण किये हुई थी । सीता उसे शुभ वचनोसे सान्त्वना दे रही थी ॥९७–९८॥

तदनन्तर रामने उससे कहा कि हे कन्ये ! जङ्गली जानवरोसे भरे इस वनमे अतिशय दुःखसे युक्त तू कौन अकेली विचरण कर रही है ? ॥९९॥ तदनन्तर संभाषण प्राप्त कर जिसके नेत्र कमलके समान खिल रहे थे ऐसी वह कन्या भ्रमर समूहका अनुकरण करने वाली वाणीसे बोली ॥१००॥ कि हे पुरुषोत्तम ! मूर्च्छा आने पर मेरी माता मर गई और उसके उत्पन्न शोकसे पिता भी मर गये ॥१०१॥ इस तरह पूर्वोपार्जित पापके कारण बन्धुजनोसे रहित हो परम वैराग्य को धारण करती हुई मैं इस दण्डकवनमे प्रविष्ट हुई थी ॥१०२॥ पापका माहात्म्य तो देखो कि

१ मच्छायस्फुरिताननां (?) म० । २ यथा व्याकरणे कस्यचित् स्थाने कश्चित् आदेशो भवति तद्वत् । ३. सीता ।

चिरान्मानुषनिर्मुक्ते भ्रमन्त्यास्मिन् वने मया । भवन्त साधवो दृष्टा क्षयात् पापस्य कर्मण ॥१०४॥
जनोऽविदितपूर्वो यो जने बध्नाति सौहृदम् । अनाहूतश्च सामीप्य व्रजति त्रपयोज्झितः ॥१०५॥
अनादृत प्रभूत च भाषते शून्यमानस । उत्पादयति विद्वेष कस्य नासौ क्रमोज्झित ॥१०६॥
एवभूतापि नो [1]यावत्प्राणान् मुञ्चामि[2] सुन्दर । तावदद्यैव मामिच्छ दु खिताया दया कुरु ॥१०७॥
न्यायेन सङ्गता साध्वी सर्वोपप्लववर्जिताम् । को वा नेच्छति लोकेऽस्मिन् कल्याणप्रकृतिस्थितिम् ॥१०८॥
श्रुत्वा तद्वचन तस्यास्त्रपया परिवर्जितम् । परस्पर समालोक्य स्थितौ तूष्णीं नरोत्तमौ ॥१०९॥
सर्वशास्त्रार्थबोधाम्बुक्षालित हि तयोर्मन । कृत्याकृत्यविवेकेषु मलमुक्त प्रकाशते ॥११०॥
निर्मुक्तदु खनिश्वास गच्छामीति तयोदिते । पद्मनाभादिभि सोक्ता यथेष्ट क्रियतामिति ॥१११॥
तस्यां प्रयातमात्रायां [3]तदाशालीनताहृतौ । ससीतौ विस्मितौ वीरौ स्मेरवक्त्रौ बभूवतु ॥११२॥
अन्तर्हत्य च सक्रुद्धा समुत्पत्य त्वरावती । याता चन्द्रनखा धाम निज शोकसमाकुला ॥११३॥
शोभयापहृतस्तस्या लक्ष्मणस्तरलेक्षण । पुनरालोकनाकाङ्क्षो विरहादाकुलोऽभवत् ॥११४॥
[4]उत्थायान्यापदेशेन रामदेवसकाशत । अटवी पादपद्माभ्या बभ्रामान्वेषणातुर ॥११५॥
अचिन्तयच्च खिन्नात्मा वाष्पव्याकुललोचन । आत्मन्यनादृतप्रीतिरिति तत्प्रेमनिर्भर ॥११६॥
रूपयौवनलावण्यगुणपूर्णा घनस्तनी । मदनाविष्टनागेन्द्रवनितासमगामिनी ॥११७॥
आयान्त्येव सती कस्माद्दृष्टमात्रा न सा मया । स्तनोपपीडनाश्लेष परिरब्धा हतात्मना ॥११८॥

मै यद्यपि मृत्युकी इच्छा करती हूँ फिर भी इस महाभयकर वनमे दुष्ट जीव भी मुझे छोड़ देते है ॥१०३॥ चिरकालसे इस निर्जन वनमे भ्रमण करती हुई मैंने पापकर्मके क्षयसे आज आप सज्जनो के दर्शन किये हैं ॥१०४॥ जो पहलेका अपरिचित मनुष्य किसी मनुष्यसे मैत्रीभाव प्रकट करता है, विना बुलाया निर्लज्ज हो उसके पास जाता है तथा विना आदरके शून्यचित्त हो अधिक भाषण करता है वह क्रमहीन मनुष्य किसे द्वेष नहीं उत्पन्न करता ? ॥१०५-१०६॥ ऐसी होने पर भी हे सुन्दर ! जब तक मै प्राण नही छोड़ती हूँ तब तक आज ही मुझे चाहो, मेरी इच्छा करो मुझ दु खिनी पर दया करो ॥१०७॥ जो न्यायसे संगत है, साध्वी है, सर्व प्रकार की बाधाओंसे रहित है, तथा जिसकी कल्याण रूप प्रकृति है ऐसी कन्याको इस ससारमे कौन नही चाहता ? ॥१०८॥ राम-लक्ष्मण उसके लज्जाशून्य वचन सुनकर परस्पर एक दूसरेको देखते हुए चुप रह गये ॥१०९॥ समस्त शास्त्रोके अर्थ ज्ञानरूपी जलसे धुला हुआ उनका निर्मल मन करने योग्य तथा नहीं करने योग्य कार्योमे अत्यन्त प्रकाशित हो रहा था ॥११०॥ दु:ख भरी श्वास छोड़कर जब उसने कहा कि मै जाती हूँ तब राम आदिने उत्तर दिया कि 'जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो' ॥१११॥ उसके जाते ही उसकी आकुलीनतासे प्रेरित हुए शूरवीर राम-लक्ष्मण सीताके साथ आश्चर्यसे चकित हो हँसने लगे ॥११२॥

तदनन्तर शोकसे व्याकुल चन्द्रनखा मनमार क्रुद्ध हो उड़कर शीघ्र ही अपने घर चली गई ॥११३॥ लक्ष्मण उसकी सुन्दरतासे हरे गये थे इसलिए उनके नेत्र चञ्चल हो रहे थे वे उसे पुनः देखनेकी इच्छा करते हुए विरहसे आकुल हो गये ॥११४॥ वे किसी अन्य कार्यके बहाने रामके पाससे उठकर चन्द्रनखाकी खोजमे व्यग्र होते हुए पैदल ही वनमे भ्रमण करने लगे ॥११५॥ जिनका हृदय अत्यन्त खिन्न था, जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे, जिन्होंने अपने आपके विषयमें प्रकट हुए चन्द्रनखाके प्रेमकी उपेक्षा की थी तथा जो उसके प्रेमसे परिपूर्ण थे ऐसे लक्ष्मण इस प्रकार विचार करने लगे कि जो रूप यौवन सौन्दर्य तथा अनेक गुणोसे परिपूर्ण थी, जिसके स्तन अतिशय सघन थे और जो कामोन्मत्त हस्तिनीके समान चलती थी ऐसी उस

१. भूतापितो (?) म० । २. मुञ्चति म० । ३ तस्य. अशालीनता अकुलीनता तया हृतौ । ४. उत्थायाज्ञायदेशेन म० । अन्यव्याजेन ।

[1]अयोगमोहितं चेतश्च्युतं कर्तव्यवस्तुनः । साम्प्रतं [2]शोकशिखिना दह्यते मे निरङ्कुशम् ॥११९॥
जाता सा विषये कस्मिन् कस्य वा दुहिता भवेत् । यूथभ्रष्टा मृगीवेयं कुतः प्राप्ता सुलोचना ॥१२०॥
सञ्चिन्त्येति कृतभ्रान्तिस्तामपश्यन् समाकुलः । मेने तद्वनमाकाशपुष्पतुल्यं समन्ततः ॥१२१॥

मालिनीवृत्तम्

अविदितपरमार्थैरेवमर्थेन हीनं न खलु विमलचित्तैः कार्यमारम्भणीयम् ।
अविषयकृतचित्ता [2]तत्समासक्तिमुक्ता दधति परमशोकं बालवद्बुद्धिहीनाः ॥१२२॥
किमिदमिह मनो मे किं नियोज्यं तदिष्टं कथमनुगतकृत्यैः प्राप्यते शं मनुष्यैः ।
इति कृतमतिरुच्चैर्यो विवेकस्य कर्ता रविरिव विमलोऽसौ राजते लोकमार्गे ॥१२३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते शम्बूकवधाभिख्यानं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४३॥

सतीका मैने आते तथा दिखनेके साथ ही स्तनोको पीडित करनेवाला आलिङ्गन क्यो नही किया ॥११६-११८॥ उसके वियोगसे मोहित हुआ मेरा चित्त कर्तव्य वस्तु—करने योग्य कार्यसे च्युत होता हुआ इस समय शोकरूपी अग्निके द्वारा निर्बाध रूपसे जल रहा है ॥११९॥ वह किस देशमे उत्पन्न हुई है ? किसकी पुत्री है ? यह उत्तम नेत्राकी धारक झुण्डसे बिछुडी हरिणी के समान यहाॅ कहाॅसे आई थी ? ॥१२०॥ इसप्रकार विचार कर जो इधर-उधर भ्रमण कर रहे थे तथा उसे न देख कर जो अत्यन्त व्याकुल थे ऐसे लक्ष्मणने उस वनको सब ओर से आकाश-पुष्पके समान माना था ॥१२१॥ गौतम स्वामी कहते है कि हे राजन्! निर्मल चित्तके धारक मनुष्योंको इस तरह परमार्थके जाने विना निरर्थक कार्य प्रारम्भ नही करना चाहिये। क्योंकि जो बालकोंके समान निर्बुद्धि मनुष्य अयोग्य विषयमे चित्त लगाते है वे उसकी प्राप्तिसे रहित हो परम शोकको धारण करते हैं ॥१२२॥ 'यह क्या है ? इसमें मुझे मन क्यो लगाना चाहिये ? वह इष्ट क्यो है ? और करने योग्य कार्योंका अनुसरण करने वाले मनुष्य ही सुख-शान्ति प्राप्त कर पाते हैं, इस प्रकार विचार कर जो उत्कृष्ट विवेकका कर्ता होता है वह सूर्यकी तरह निर्मल होता हुआ लोकके मार्गमे सुशोभित होता है ॥१२३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमे शम्बूकके बधका वर्णन करने वाला तैतालीसवाॅ पर्व समाप्त हुआ ॥४३॥

१. अथोग मे द्दत (?) म० । २. सत्समाशक्तिमुक्ता ।

चतुश्चत्वारिंशत्तमं पर्व

अनिच्छयाथ विध्वस्ते [1]खरध्वा मनोभवे । दु खपूर पुन प्राप्तो भग्नरोधो[2] यथा नदः ॥१॥
चकार व्याकुलीभूता विविध परिदेवनम् । शोकपावकतप्ताङ्गा विवत्सा [3]बहुला यथा ॥२॥
वहन्ती चापमान त क्रोधदैन्यस्थमानसा । विगलद्भूरिनेत्राम्बुर्दूषणेन निरैक्ष्यत ॥३॥
ता विनष्टधृति दृष्ट्वा धरणीधूलिधूसराम् । प्रकीर्णकेशसम्भारा शिथिलीभूतमेखलाम् ॥४॥
नखविक्षतकक्षोरूकुचक्षोणी सशोणिताम् । कर्णाभरणनिर्मुक्ता हारलावण्यवर्जिताम् ॥५॥
विच्छिन्नकञ्चुका भ्रष्टस्वभावतनुतेजसम् । आलोडिता गजेनेव नलिनी [4]मदवाहिना ॥६॥
पप्रच्छ परिसान्त्व्यैष कान्ते शीघ्र निवेदय । अवस्थामिमका केन प्रापितासि दुरात्मन. ॥७॥
अद्येन्दुरष्टम कस्य मृत्युना कोऽवलोकित । गिरे स्वपिति क श्रृङ्गे मूढ क्रीडति कोऽहिना ॥८॥
कोऽन्ध कूप समापन्नो दैव कस्याशुभावहम् । मत्क्रोधाग्नावथ दीप्ते शलभ क पतिष्यति ॥९॥
धिक् त पशुसम पाप विवेकत्यक्तमानसम् । अपवित्रसमाचार लोकद्वितयदूषितम् ॥१०॥
अल रुदित्वा नान्येव काचित्त्व प्राकृताबला । स्पृष्टा येनासित शस वाडवाग्निशिखासमा ॥११॥
अद्यैव त दुराचार कृत्वा हस्ततलाहतम् । नेष्ये प्रेतगतिं सिहो यथा नाग निरकुशम् ॥१२॥
एवमुक्ता विसृज्यासौ रुदित कृच्छ्रत' परात् । अस्रक्लिन्नालकाच्छन्नगण्डागादीत् सगद्गदम् ॥१३॥

अथानन्तर जब अनिच्छासे चन्द्रनखाका काम नष्ट हो गया तब तटको भग्न करनेवाले नदके समान दु खका पूर उसे पुन प्राप्त हो गया ॥१॥ जिसका शरीर शोक रूपी अग्निसे संतप्त हो रहा था ऐसी चन्द्रनखा, मृतवत्सा गायके समान व्याकुल होकर नाना प्रकारका विलाप करने लगी ॥२॥ जो पूर्वोक्त अपमानको धारण कर रही थी, जिसका मन क्रोध और दीनतामे स्थित था तथा जिसके नेत्रोसे अश्रु झर रहे थे ऐसी चन्द्रनखाको खरदूषणने देखा ॥३॥ जिसका धैर्य नष्ट हो गया था, जो पृथिवीकी धूलिसे धूसरित थी, जिसके केशोका समूह बिखरा हुआ था, जिसकी मेखला ढीली हो गई थी, जिसकी बगलो जाँघो तथा स्तनोकी भूमि नखोसे विक्षत थी, जो रुधिरसे युक्त थी, जिसके कर्णाभरण गिर गये थे, जो हार और लावण्यसे रहित थी, जिसकी चोली फट गई थी, जिसके शरीरका स्वाभाविक तेज नष्ट हो गया था, और जो मदोन्मत्त हाथीके द्वारा मर्दित कमलिनीके समान जान पड़ती थी ऐसी चन्द्रनखाको सान्त्वना देकर खरदूषणने पूछा कि हे प्रिये ! शीघ्र ही बताओ तुम किस दुष्टके द्वारा इस अवस्थाको प्राप्त कराई गई हो ? ॥७॥ आज किसका आठवाँ चन्द्रमा है मृत्युके द्वारा कौन देखा गया है ? पहाड़की चोटी पर कौन सो रहा है और कौन मूर्ख सर्पके साथ क्रीड़ा कर रहा है ? ॥८॥ कौन अन्धा कुएमे आकर पड़ा है ? किसका दैव अशुभ है ? और मेरी प्रज्ज्वलित क्रोधाग्निमे कौन पतङ्ग बन कर गिरना चाहता है ? ॥९॥ जिसका मन विवेकसे रहित है जो अपवित्र आचरण करनेवाला है और जिसने दोनो लोकोको दूषित किया है उस पशु तुल्य पापीको धिक्कार है ॥१०॥ रोना व्यर्थ है तुम अन्य साधारण स्त्रीके समान थोड़े ही हो वडवानलकी शिखाके समान जिसने तुम्हें छुआ है उसका नाम कहो ॥११॥ निरङ्कुश हाथीको सिंहके समान मै आज ही उसे हस्ततलसे पीसकर यमराजके घर भेज दूँगा ॥१२॥ इस प्रकार कहनेपर कड़े कष्टसे रोना छोड़कर वह गद्गद वाणीमें बोली। उस समय उसके कपोल

---

१. चन्द्रनखायाः । २ भग्नरोधा, भग्न रोधो यस्यासौ । भग्नरोधो म० । ३. गौरिव । ४. मदवाहिनी म० ।

वनान्तरस्थितं पुत्रं द्रष्टुं यातास्मि साम्प्रतम् । अपश्यन्तं च केनापि प्रत्यग्रच्छिन्नमूर्धकम् ॥१४॥
ततः शोणितधाराभिर्निःसृताभिर्निरन्तरम् । प्रदीप्तमिव तन्मूले लक्ष्यते कीचकस्थलम् ॥१५॥
प्रशान्ताऽवस्थितं[1] हत्वा मे केनापि सुपुत्रकम् । खड्गरत्नं समुत्पन्नं प्राप्तं पूजासमन्वितम् ॥१६॥
साहं दुःखसहस्राणां भाजनं भाग्यवर्जिता । तन्मूर्धानं निधायाङ्के विप्रलापं प्रसेविता ॥१७॥
तावच्च तेन दुष्टेन शम्बूकवधकारिणा । उपगूढास्मि बाहुभ्यां कर्तुं किमपि वाञ्छिता ॥१८॥
उक्तोऽपि मुञ्च मुञ्चेति घनस्पर्शवशङ्गतः । न मुञ्चति हतात्मा मां कोऽपि नीचकुलोद्गतः ॥१९॥
नखैर्विलुप्य दन्तैश्च तेनाहं विजने वने । एतिकां प्रापितावस्थां क्वाबला क्व पुमान् बली ॥२०॥
तथापि पुण्यशेषेण केनापि परिरक्षिता । अविखण्डितचारित्रा कृच्छ्रादद्य विनिःसृता ततः ॥२१॥
सर्वविद्याधराधीशस्त्रिलोकक्षोभकारणः । भ्राता मे रावणः ख्यातः शक्रेणाप्यपराजितः ॥२२॥
खरदूषणनामा त्वं भर्ता कोऽपि विवर्ण्यसे । सम्प्राप्तास्मि तथाप्येतामवस्थां दैवयोगतः ॥२३॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा शोकक्रोधसमाहतः[2] । स्वयं महाजवो गत्वा दृष्ट्वा व्यापादितं सुतम् ॥२४॥
सम्पूर्णेन्दुसमानोऽपि पूर्वं सारङ्गलोचनः । बभूव भीषणाकारो मध्यग्रीष्मार्कसन्निभः ॥२५॥
आगतश्च द्रुतं भूयः प्रविश्य भवनं निजम् । सुहृद्भिः सहितश्चक्रे स्वल्पकालप्रधारणम् ॥२६॥
तत्र केचिद्द्रुतं प्रोचुः सचिवाः कर्कशाशयाः । राजकीयमभिप्रायं बुद्ध्वा सेवापरायणाः ॥२७॥
शम्बूकः साधितो येन खड्गरत्नं च हस्तितम् । असावुपेक्षितो राजन् वद किं न करिष्यति ॥२८॥

आँसुओंसे भीग रहे थे तथा बिखरे हुए बालोंसे आच्छन्न थे ॥१३॥ उसने कहा कि मैं अभी वनके मध्यमें स्थित पुत्रको देखनेके लिए गई थी सो मैंने देखा कि उसका मस्तक अभी हाल किसीने काट डाला है ॥१४॥ निरन्तर निकली हुई रुधिरकी धाराओंसे वंशस्थलका मूल भाग अग्निसे प्रज्वलितके समान दिखाई देता है ॥१५॥ शान्तिसे बैठे हुए मेरे सुपुत्रको किसीने मारकर पूजाके साथ-साथ प्राप्त हुआ वह खड्गरत्न ले लिया है ॥१६॥ जो हजारों दुःखोंका पात्र तथा भाग्यसे हीन है ऐसी मैं पुत्रके मस्तकको गोदमें रखकर विलाप कर रही थी ॥१७॥ कि शम्बूकका वध करनेवाले उस दुष्टने दोनों भुजाओंसे मेरा आलिङ्गन किया तथा कुछ अनर्थ करनेकी इच्छा की ॥१८॥ यद्यपि मैंने उससे कहा कि मुझे छोड़-छोड़ तो भी वह कोई नीच कुलोत्पन्न पुरुष था इसलिए गाढ स्पर्शके वशीभूत हुए उसने मुझे छोड़ा नहीं ॥१९॥ उसने उस निर्जन वनमें नखों तथा दाँतोंसे छिन्न-भिन्न कर मुझे इस दशाको प्राप्त कराया है सो आप ही सोचिये कि अबला कहाँ और बलवान् पुरुष कहाँ ? ॥२०॥ इतना सब होने पर भी किसी अवशिष्ट पुण्यने मेरी रक्षा की और मैं चारित्रको अखण्डित रखती हुई बड़े कष्टसे आज उससे बचकर निकल सकी हूँ ॥२१॥ जो समस्त विद्याधरोंका स्वामी है, तीन लोकके क्षोभका कारण है, और इन्द्र भी जिसे पराजित नहीं कर सका ऐसा प्रसिद्ध रावण मेरा भाई है तथा तुम खरदूषण नाम धारी अद्भुत पुरुष मेरे भर्ता हो फिर भी दैव योगसे मैं इस अवस्थाको प्राप्त हुई हूँ ॥२२-२३॥

तदनन्तर चन्द्रनखाके वचन सुनकर शोक और क्रोधसे ताड़ित हुए महावेगशाली खरदूषणने स्वयं जाकर पुत्रको मरा देखा ॥२४॥ यद्यपि वह मृगके समान नेत्रोंको धारण करनेवाला और पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल था तो भी पुत्रको मरा देख ग्रीष्म ऋतुके मध्याह्न कालीन सूर्यके समान भयंकर हो गया ॥२५॥ उसने शीघ्र ही वापिस आकर और अपने भवनमें प्रवेश कर मित्रोंके साथ स्वल्पकालीन मन्त्रणा की ॥२६॥ उनमेंसे कठोर अभिप्रायके धारक तथा सेवामें तत्पर रहनेवाले कितने ही मन्त्री राजाका अभिप्राय जानकर शीघ्र ही कहने

१. प्रशान्तोऽवस्थितं म० । २. समाहितः म० ।

ऊचुरन्ये विवेकस्था नाथ नेदं लघुक्रियम्[1] । समन्तान् ढौकयाशेषान् रावणाय च कथ्यताम् ॥२९॥
यस्यासिरत्नमुत्पन्नं सुसाध्यः स कथं भवेत् । तस्मात् सङ्घातकार्येऽस्मिंस्त्वरा[2] कर्तुं न युज्यते ॥३०॥
गुरुवाक्यानुरोधेन राक्षसाधिपसंविदे । दूतः सम्प्रेषितस्तेन युवा लङ्कां महाजवः ॥३१॥
राजधैर्यात् कुतोऽप्येष चिरं यावदवस्थितः । रावणस्यान्तिके दूतः कार्यसाधनतत्परः ॥३२॥
तीव्रक्रोधपरीतात्मा तावच्च खरदूषणः । अभाषत पुनः पुत्रगुणप्रेषितमानसः ॥३३॥
मायाविनिहतैः क्षुद्रैर्जन्तुभिर्भूमिगोचरैः । दिव्यसेनार्णवः क्षुब्धस्तरितुं नैव शक्यते ॥३४॥
धिगिदं शौर्यमस्माकं सहायान् यदि वाञ्छति । द्वितीयोऽपि कथं बाहुरिष्यते मम बाहुना ॥३५॥
इत्युक्त्वा परमं बिभ्रदभिमानं त्वरान्वितः । उत्पपात सुहृन्मध्यादाकाशं स्फुरिताननः ॥३६॥
तमेकान्तपरं दृष्ट्वा सन्नद्धानि क्षणान्तरे । चतुर्दशसहस्राणि सुहृदां निर्ययुः पुरात् ॥३७॥
तस्य राक्षससैन्यस्य श्रुत्वा वादित्रनिस्वनम् । क्षुब्धसागरनिर्घोषं मैथिली त्रासमागता ॥३८॥
किं किमेतदहो नाथ प्राप्तमित्युद्गतस्वनः । आलिङ्गितिस्म जीवेशं वल्ली कल्पतरुं यथा ॥३९॥
न भेतव्यं न भेतव्यं इति तां परिसान्त्व्य सः । अचिन्तयदयं कस्य भवेच्छब्दः सुदुर्द्धरः ॥४०॥
रवः किमेष सिंहस्य भवेज्जलधरस्य वा । आहोस्विदम्बुनाथस्य पूरयत्यखिलं नभः ॥४१॥
उवाच च प्रिये नूनममी चतुरगामिनः । नादिनः प्रचलत्पक्षा राजहंसा नभोऽङ्गणे ॥४२॥

लगे कि जिसने शम्बूकको मारा है तथा खड्गरत्न हथिया लिया है। हे राजन्! यदि उसकी उपेक्षाकी जायगी तो वह क्या नहीं करेगा? ॥२७-२८॥ कुछ विवेकी मन्त्री इस प्रकार बोले कि हे नाथ! यह कार्य जल्दी करनेका नहीं है इसलिए सब सामन्तोको बुलाओ और रावणको भी खबर दी जाय ॥२९॥ जिसे खड्गरत्न प्राप्त हुआ है वह सुखपूर्वक वशमे कैसे किया जा सकता है? इसलिए मिलकर समूहके द्वारा करने योग्य इस कार्यमे उतावली करना ठीक नहीं है ॥३०॥

तदनन्तर उसने गुरुजनोंके वचनोंके अनुरोधसे रावणको खबर देनेके लिए एक तरुण तथा वेगशाली दूत लङ्काको भेजा ॥३१॥ उधर कार्य सिद्ध करनेमे तत्पर रहनेवाला वह दूत, किसी राज्यधैर्यके कारण चिर काल तक रावणके पास बैठा रहा ॥३२॥ इधर तीव्र क्रोधसे जिसकी आत्मा व्याप्त हो रही थी तथा जिसका मन पुत्रके गुणोंमे बार-बार जा रहा था ऐसा खरदूषण पुनः बोला कि मायासे रहित क्षुद्र भूमिगोचरी प्राणियोके द्वारा, क्षोभको प्राप्त हुआ दिव्य सेना रूपी सागर नहीं तैरा जा सकता ॥३३-३४॥ हमारी इस शूरवीरताको धिक्कार है जो अन्य सहायकोंकी वाञ्छा करती है। मेरी वह भुजा किस कामकी जो अपनी ही दूसरी भुजाकी इच्छा करती है ॥३५॥ इस प्रकार कहकर जो परम अभिमानको धारण कर रहा था तथा क्रोधके कारण जिसका मुख कम्पित हो रहा था ऐसा शीघ्रतासे भरा खरदूषण मित्रोंके बीचसे उठकर आकाशमे जा उड़ा ॥३६॥ उसे हठमें तत्पर देख उसके चौदह हजार मित्र जो पहलेसे तैयार थे क्षण भरमें नगरसे बाहर निकल पड़े ॥३७॥ राक्षसोंकी उस सेनाके, क्षोभको प्राप्त हुए सागरके समान शब्दवाले वादित्रोंका शब्द सुनकर सीता भयको प्राप्त हुई ॥३८॥ हे नाथ! यह क्या है? क्या है? इस प्रकार शब्दोंका उच्चारण करती हुई वह भर्तारसे उस प्रकार लिपट गई जिस प्रकार कि लता कल्प वृक्षसे लिपट जाती है ॥३९॥ 'नहीं डरना चाहिए नहीं डरना चाहिए' इस प्रकार उसे सान्त्वना देकर रामने विचार किया कि यह अत्यन्त दुर्धर शब्द किसका होना चाहिए? ॥४०॥ क्या यह सिंहका शब्द है या मेघकी ध्वनि है अथवा समुद्रकी गर्जना समस्त आकाशको व्याप्त कर रही है ॥४१॥ उन्होंने सीतासे कहा कि हे प्रिये! जान पड़ता है ये मनोहर गमन

१. लघुक्रियः म० । २ त्वया म० ।

किं वा दुष्टद्विजा केचिदन्ये त्वद्भयकारिणः । समर्पय प्रिये चापं प्रलयं प्रापयाम्यमून् ॥४३॥
अथासन्नत्वमागच्छद् विविधायुधसङ्कुलम् । वातेरिताभ्रवृन्दाभं निरीक्ष्य सुमहद्बलम् ॥४४॥
जगाद राघवः किं नु नन्दीश्वरममी सुराः । जिनेन्द्रान् वन्दितुं भक्त्या प्रस्थिताः स्युर्महौजसः ॥४५॥
आहो वंशस्थलं छित्त्वा हत्वा कमपि मानवम् । असिरत्ने गृहीतेऽस्मिन् प्राप्ता मायाविवैरिणः ॥४६॥
दुश्शीलया तया नूनं स्त्रिया मायाप्रवीणया । निजाः संक्षोभिता एते स्युरस्मद् दुष्कृतिं प्रति ॥४७॥
नात्र युक्तमवज्ञातुं सैन्यमभ्यर्णतामितम् । इत्युक्त्वा कवचे दृष्टिं कार्मुके च न्यपातयत् ॥४८॥
ततस्तमञ्जलिं कृत्वा सुमित्रातनयोऽगदत् । मयि स्थिते न संरम्भस्तव देव विराजते ॥४९॥
सरक्ष राजपुत्रीं त्वं प्रत्यरातिं व्रजाम्यहम् । ज्ञेया च सिंहनादेन मम यद्यापदुद्भवेत् ॥५०॥
इत्युक्त्वा कङ्कटच्छन्न[1] समुपात्तमहायुधः । योद्धुमभ्युद्यतः श्रीमाँल्लक्ष्मणः प्रत्यरिस्थितः[2] ॥५१॥
दृष्ट्वा तमुत्तमाकारं वीरं पुरुषपुङ्गवम् । पर्यस्तृणन् विहायःस्था जलदा इव पर्वतम् ॥५२॥
शक्तिमुद्गरचक्राणि कुन्तबाणांश्च खेचरैः । परिकीर्णान्यसौ सम्यक् शस्त्रैरेव न्यवारयत् ॥५३॥
निरुध्य सर्वशस्त्राणि खेचरैः प्रहितानि सः । वज्रदण्डान् शरान् मोक्तुं प्रवृत्तो व्योमगाहिनः ॥५४॥
एककेनैव सा तेन विद्याधरमहाचमूः । रुद्धा बाणैः [3]कदिच्छेव विज्ञानैः संयतात्मना ॥५५॥
माणिक्यशकलाङ्कानि राजमानानि कुण्डलैः । पेतुः शिरांसि खाद् भूमिं[4] खसर[5] कमलानि वा ॥५६॥
शैलाभा द्विरदाः पेतुरश्वैः सह महाभटाः । कुर्वन्ते निनदं भीमं सदष्टरदवाससः[6] ॥५७॥

करनेवाले तथा पङ्खोंको हिलानेवाले राजहंस पक्षी आकाशरूपी आँगनमे शब्द करते हुए जा रहे है ॥४२॥ अथवा तुझे भय उत्पन्न करनेवाले कोई दूसरे दुष्ट पक्षी ही जा रहे है । हे प्रिये ! धनुष देओ, जिससे मै इन्हें प्रलयको प्राप्त करा दूँ ॥४३॥ तदनन्तर नाना प्रकारके शस्त्रोंसे युक्त, वायुसे प्रेरित मेघ समूहके समान दीखनेवाली बड़ी भारी सेनाको समीपमे आती देख रामने कहा कि क्या ये महा तेजके धारक देव भक्ति पूर्वक जिनेन्द्र देवकी वन्दना करनेके लिए नन्दीश्वर द्वीपको जा रहे हैं ॥४४-४५॥ अथवा बाँसके भिडेको छेदकर तथा किसी मनुष्यको मारकर यह खड्गरत्न लक्ष्मणने लिया है सो मायावी शत्रु ही आ पहुँचे है ॥४६॥ अथवा जान पड़ता है कि उस दुराचारिणी मायाविनी स्त्रीने हम लोगोको दुःख देनेके लिए आत्मीय जनोंको क्षोभित किया है ॥४७॥ अब निकटमे आई हुई सेनाकी उपेक्षा करना उचित नहीं है ऐसा कहकर रामने कवच और धनुष पर दृष्टि डाली ॥४८॥ तब लक्ष्मणने हाथ जोड़कर कहा कि हे देव ! मेरे रहते हुए आपका क्रोध करना शोभा नही देता ॥४९॥ आप राजपुत्रीकी रक्षा कीजिए और मै शत्रुकी ओर जाता हूँ । यदि मुझपर आपत्ति आवेगी तो मेरे सिंहनादसे उसे समझ लेना ॥५०॥ इतना कहकर जो कवचसे आच्छादित हैं तथा जिसने महाशस्त्र धारण किये है ऐसे लक्ष्मण युद्धके लिए तत्पर हो शत्रुकी ओर मुखकर खडे हो गये ॥५१॥ उत्तम आकारके धारक, मनुष्योमे श्रेष्ठ तथा अतिशय शूरवीर उन लक्ष्मणको देखकर आकाशमें स्थित विद्याधरोंने उन्हें इस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि मेघ किसी पर्वतको घेर लेते है ॥५२॥ विद्याधरोंके द्वारा चलाये हुए शक्ति, मुद्गर, चक्र, भाले और बाणोका लक्ष्मणने अपने शस्त्रोंसे अच्छी तरह निवारण कर दिया ॥५३॥ तदनन्तर वे विद्याधरोंके द्वारा चलाये हुए समस्त शस्त्रोको रोककर उनकी ओर वज्रमय बाण छोडनेको तत्पर हुए ॥५४॥ अकेले लक्ष्मणने विद्याधरोकी वह बडी भारी सेना अपने बाणोसे उस प्रकार रोक ली जिस प्रकार कि मुनि विशिष्ट ज्ञानके द्वारा खोटी इच्छाको रोक लेते हैं ॥५५॥ मणिखण्डोंसे युक्त तथा कुण्डलोंसे सुशोभित शत्रुओंके शिर, आकाशरूपी सरोवरके कमलोंके समान कट-कटकर आकाशसे पृथिवी पर गिरने लगे ॥५६॥ पर्वतोंके समान

१. छन्नसमुपात्त- म० । २ प्रत्यरिं म० । ३. कुत्सिता इच्छा कदिच्छा 'कोः कत्तत्पुरुषेऽचि' इति कुस्थाने कदादेशः । ४ भूमिः । ५ गगनसरोवरकमलानि इव शिरांसि । ६. सदष्टौष्ठाः इत्यर्थः, सदष्टरववाससः म० ।

अयमस्य महान् लाभो निघ्नतस्तस्य तानभूत् । यदूर्ध्वगै[1] शरैर्योधान्[2] विव्याध सहवाहनान् ॥५८॥
अत्रान्तरे परिप्राप्त पुष्पकस्थो दशानन । क्रुद्धः कृताशयो हन्तु शम्बूकवधकारिणम् ॥५९॥
अपश्यच्च महामोहसम्प्रवेशनकारिणीम् । रत्यरत्योः समुद्धर्त्री[3] साक्षाल्लक्ष्मीमिव स्थिताम् ॥६०॥
चन्द्रमःकान्तवदना बन्धूकाभवराधराम्[4] । तनूदरी च लक्ष्मीं च जलजच्छदलोचनाम्[5] ॥६१॥
महेभकुम्भशिखरप्रोत्तुङ्गविपुलस्तनीम् । यौवनोदयसम्पन्ना सर्वस्त्रीगुणसद्गताम् ॥६२॥
सहितामिव कामेन कान्तिज्या दृष्टिसायकाम् । निजा चापलतां हन्तु सुखेनैव यथेप्सितम् ॥६३॥
सर्वस्मृतिमहाचारी रूपातिशयवर्तिनीम् । सीता मनोभवोदारज्वरग्रहणकारिणीम् ॥६४॥
तस्यामीक्षितमात्राया क्रोधोऽस्य प्रलय गत । अजायतापरो भावश्चित्रा हि मनसो गति ॥६५॥
अचिन्तयच्च कि नाम जीवित मेऽनया विना । अयुक्तस्यानया का वा श्रीर्मदीयस्य वेश्मन ॥६६॥
इमामप्रतिमाकारा ललिता नवयौवनाम् । हराम्यद्यैव यावन्नो कश्चिज्जानात्युपागतम् ॥६७॥
आरब्धु प्रसभ कार्यं न मे शक्तिर्न विद्यते । किन्त्विदमीदृश वस्तु यत्कौपीनत्वमर्हति ॥६८॥
निवेदयन् गुणास्तावल्लोकेऽल याति लाघवम् । ईदृशान् कि पुनर्दोषान् ख्यापयन्ना प्रियो भवेत् ॥६९॥
वितत्य सकल लोक शशाङ्ककरनिर्मला । कीर्तिर्व्यवस्थिता माभूत् सैव सति मलीमसा ॥७०॥
तस्मादकीर्तिसम्भूतिमकुर्वन् स्वार्थतत्पर । रह प्रयत्नमारेभे लोको हि परमो गुरुः ॥७१॥

बड़े-बड़े हाथी घोड़ोके साथ-साथ नीचे गिरने लगे तथा ओठोको डसनेवाले बड़े-बड़े योद्धा भयकर शब्द करने लगे ॥५७॥ उन सबको मारते हुए लक्ष्मणको यह बड़ा लाभ हुआ कि वे ऊपरकी ओर जानेवाले बाणोसे योद्धाओको उनके वाहनोके साथ ही छेद देते थे अर्थात् एक ही प्रहारमे वाहन और उनके ऊपर स्थित योद्धाओको नष्ट कर देते थे ॥५८॥

तदनन्तर इसी बीचमे शम्बूकके वधकर्त्ताको मारनेके लिए विचार करनेवाला, क्रोधसे भरा रावण पुष्पक विमानमे बैठकर वहाँ आया ॥ ५९ ॥ आते ही उसने महामोहमे प्रवेश करानेवाली तथा रति और अरतिको धारण करनेवाली साक्षात् लक्ष्मीके समान स्थित सीताको देखा ॥६०॥ उस सीताका मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर था, वह बन्धूक पुष्पके समान उत्तम ओष्ठोको धारण करनेवाली थी, कृशाङ्गी थी, लक्ष्मीके समान थी, कमलदलके समान उसके नेत्र थे ॥६१॥ किसी बड़े हाथीके गण्डस्थलके अग्रभागके समान उन्नत तथा स्थूल स्तन थे, वह यौवनके उदयसे सम्पन्न तथा समस्त स्त्री गुणोसे सहित थी ॥६२॥ वह ऐसी जान पड़ती थी मानो इच्छित पुरुषको अनायास ही मारनेके लिए कामदेवके द्वारा धारण की हुई अपनी धनुषरूपी लता ही हो। कान्ति ही उस धनुष रूपी लताकी डोरी थी और नेत्र ही उसपर चढ़ाये हुए बाण थे ॥६३॥ वह सबकी स्मृतिको चुरानेवाली थी, अत्यन्त रूपवती थी और कामरूपी महाज्वरको उत्पन्न करनेवाली थी ॥६४॥ उसे देखते ही रावणका क्रोध नष्ट हो गया और दूसरा ही भाव उत्पन्न हो गया सो ठीक ही है क्योकि मनकी गति विचित्र है ॥६५॥ वह विचार करने लगा कि इसके बिना मेरा जीवन क्या है ? और इसके बिना मेरे घरकी शोभा क्या है ? ॥६६॥ इसलिए जब तक कोई मेरा आना नहीं जान लेता है तब तक आज ही मैं इस अनुपम, नवयौवना सुन्दरीका अपहरण करता हूँ ॥६७॥ यद्यपि इस कार्यको बलपूर्वक सिद्ध करनेकी शक्ति मुझमे विद्यमान है किन्तु यह कार्य ही ऐसा है कि छिपानेके योग्य है ॥६८॥ लोकमे अपने गुणोको प्रकट करनेवाला मनुष्य भी अत्यधिक लघुताको प्राप्त होता है फिर जो इस प्रकारके दोषोंको प्रकट करनेवाला है वह प्रिय कैसे हो सकता है ? ॥६९॥ मेरी चन्द्रमाकी किरणोके समान निर्मल कीर्ति समस्त ससारमे व्याप्त होकर स्थित है सो वह ऐसा काम करने पर मलिन न हो जाय ॥७०॥ इसलिए अकीर्तिकी

१ यदर्धगै. म० । २ योद्धान् म० । ३ समुद्धात्री म० । ४. धराधरा म० । ५. जलदच्छद- म० ।

इति ध्यात्वावलोकिन्या विद्ययोपायमञ्जसा । विवेद हरणे तस्यास्तेषां नामकुलादि यत् ॥७२॥
अयं स लक्ष्मणः ख्यातो बहुभिः कृतरोधनः । अयं स रामः सीतेयं सा गुणैः परिकीर्तिता ॥७३॥
अमुष्य व्यसनं कृत्वा सिंहनादं स धन्विनः । गरुत्मानिव गृध्रस्य सीतां पेशीमिवाददे ॥७४॥
जायावैर[1]प्रदीप्तोऽयमजय्यः खरदूषणः । शक्त्यादिभिः क्षणादेतौ भ्रातरौ मारयिष्यति ॥७५॥
महाप्रकृष्टपूरस्य नदस्योदा[2]ररंहसः । तटयोः पातने शक्तिं केन न प्रतिपद्यते ॥७६॥
इति सञ्चिन्त्य कामार्तः शिशुवत्स्वल्पमानसः । विषवन्मरणोपायं हरणं प्रति निश्चितः ॥७७॥
शस्त्रान्धकारिते जाते तयोरथ महाहवे । कृत्वा सिंहरवं रामरामेति च मुहुर्जगौ ॥७८॥
तं च सिंहरवं श्रुत्वा स्फुटं लक्ष्मणभाषितम् । प्रीत्यारतिम[3]यात् पद्मो व्याकुलीभूतमानसः ॥७९॥
निर्माल्यैर्जानकीं सम्यक् प्रच्छाद्यात्यन्तभूरिभिः । क्षणमेकं प्रिये तिष्ठ मा भैषीरिति सन्नदन् ॥८०॥
वयस्यवनितां तावज्जटायू रक्ष यत्नतः । किञ्चिदस्मत्कृतं भद्र स्मरस्युपकृतं यदि ॥८१॥
इत्युक्त्वा वार्यमाणोऽपि शकुनैः क्रन्दनाकुलैः । सतीं मुक्त्वा जनेऽरण्ये वेगवान् प्राविशद् रणम् ॥८२॥
अत्रान्तरे समागत्य विद्यालोकेन कोविदः । सीतामुत्क्षिप्य बाहुभ्यां नलिनीमिव वारणः ॥८३॥
कामदाहगृहीतात्मा विस्मृताशेषधर्मधीः । आरोपयितुमारेभे पुष्पकं गगनस्थितम् ॥८४॥

उत्पत्तिको बचाता हुआ वह स्वार्थसिद्ध करनेमे तत्पर हो एकान्तमे प्रयत्न करता है सो ठीक ही है क्योंकि लोक परमगुरु है अर्थात् संसारके प्राणी बडे चतुर है ॥७१॥ इस प्रकार विचारकर उसने अवलोकिनी विद्याके द्वारा सीताके हरण करनेका वास्तविक उपाय जान लिया। राम-लक्ष्मण तथा सीताके नाम कुल आदि सबका उसे ठीक ठीक ज्ञान हो गया ॥७२॥ जिसे अनेक लोग घेरे हुए है ऐसा यह वह लक्ष्मण है, यह राम है, और यह गुणोसे प्रसिद्ध सीता है ॥७३॥ इसके बाद उस रावणने इस धनुर्धारी रामके लिए आपत्तिस्वरूप सिंहनाद करके सीताको ऐसे पकड़ लिया जैसे गरुडपक्षी गीधके मुखकी मासपेशीको ले लेता है ॥७४॥ स्त्रीके बैरसे अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हुआ यह खरदूषण अजेय है तथा शक्ति आदि शस्त्रोसे इन दोनों भाइयोको क्षणभरमे मार डालेगा ॥७५॥ जिसमें बहुत बडा पूर चढ रहा है तथा जिसका वेग अत्यन्त तीव्र है ऐसे नदमे दोनो तटोको गिरानेकी शक्ति है यह कौन नही मानता है ? ॥७६॥ ऐसा विचारकर कामसे पीड़ित तथा बालकके समान विवेकशून्य हृदयको धारण करनेवाले रावणने सीताके हरण करनेका उस प्रकार निश्चय किया कि जिस प्रकार कोई मारनेके लिए विषपान-का निश्चय करता है ॥ ७७॥

अथानन्तर जब लक्ष्मण और खरदूषणके बीच शस्त्रोंके अन्धकारसे युक्त महायुद्ध हो रहा था तब रावणने सिंहनादकर बार-बार राम ! राम ! इस प्रकार उच्चारण किया ॥७८॥ उस सिंहनादको सुनकर रामने समझा कि यह लक्ष्मणने ही किया है ऐसा विचारकर वे प्रीतिवश व्याकुलित चित्त हो अरतिको प्राप्त हुए ॥७९॥ तदनन्तर उन्होंने सीताको अत्यधिक मालाओसे अच्छी तरह ढक दिया और कहा कि हे प्रिये ! तुम क्षणभर यहाँ ठहरो भय मत करो ॥८०॥ सीतासे इतना कहनेके बाद उन्होंने जटायुसे भी कहा कि हे भद्र ! यदि तुम मेरे द्वारा किये हुए उपकारका स्मरण रखते हो तो मित्रकी स्त्रीकी प्रयत्न पूर्वक रक्षा करना ॥८१॥ इतना कहकर यद्यपि क्रन्दन करनेवाले पक्षियोने उन्हें रोका भी था तो भी वे निर्जन वनमे सीताको छोड़कर वेगसे युद्धमे प्रविष्ट हो गये ॥८२॥

इसी बीचमे विद्याके आलोकसे निपुण रावण, कपालिनीको हाथीके समान दोनो भुजाओं-से सीताको उठाकर आकाशमे स्थित पुष्पक विमानमे चढ़ानेका प्रयत्न करने लगा। उस समय

१ जायावीरः ख० । २ नदस्योद्दार-म० । ३. प्रीत्या + अरतिम् + अयात् ।

ह्रियमाणामथ प्रेक्ष्य स्वामिनो वनितां प्रियाम् । संरम्भवह्निदीप्तात्मा समुत्पत्य महाजवः ॥८५॥
तीक्ष्णकोटिभिरत्यन्तं जटायुर्नखलाङ्गलैः[1] । दाशाननमुरः[2] क्षेत्रं चकर्षासृक्समाद्रितम् ॥८६॥
परुषैश्छदनान्तैश्च वातसम्पाटितांशुकैः । जघान जवनैर्भूयः सर्वकायमलं बलः ॥८७॥
इष्टवस्तुविघातेन रावणः कोपवानथ । हत्वा हस्ततलेनैव महीतलमजीगमत् ॥८८॥
ततोऽसौ परुषाघाताद् विकलीभूतमानसः । कुर्वन् केकायितं दुःखी खगो मूर्च्छामुपागतः ॥८९॥
ततो निर्विघ्नमारोप्य पुष्पकं जनकात्मजाम् । जानानः सङ्गतं कामं रावणः स्वेच्छया ययौ ॥९०॥
ज्ञात्वापहृतमात्मानं रामरागातिशायनात् । सीता शोकवशीभूता विललापार्तनिस्वनात्[3] ॥९१॥
ततः स्वपुरुषासक्तहृदयां कृतरोदनाम् । दृष्ट्वा सीतामभूत् किञ्चिद् विरागीव दशाननः ॥९२॥
अचिन्तयच्च मे कास्था कृतेऽन्यस्यैव कस्यचित् । यदियं रौति सक्तासुः करुणं विरहाकुला ॥९३॥
कीर्तयन्ती गुणान् भूयः साधूनामभिसम्मतान् । पुरुषान्तरसम्बन्धानतिशोकपरायणा ॥९४॥
तत्किमेतेन खड्गेन मूढां[4] व्यापादयाम्यमूम् । अथवा न स्त्रियं हन्तुं मम चेतः प्रवर्तते ॥९५॥
न प्रसादयितुं शक्यः क्रुद्धः शीघ्रं नरेश्वरः । अभीष्टं लब्धुमथवा[5] द्युतिर्वा कीर्तिरेव वा ॥९६॥
विद्या वाभिमता लब्धुं परलोकक्रियापि वा । प्रिया वा मनसो भार्या यद्वा किञ्चित् समीहितम् ॥९७॥
साधूनामग्रतः पूर्वं व्रतमेतन्मयार्जितम् । अप्रसन्ना न भोक्तव्या परस्य स्त्रीमयेति च ॥९८॥

उसकी आत्मा कामकी दाहसे दग्ध हो रही थी तथा उसने समस्त धर्म बुद्धिको भुला दिया था ॥८३–८४॥ तदनन्तर स्वामीकी प्रिय वनिताको हरी जाती देख जिसकी आत्मा क्रोधाग्निसे प्रज्वलित हो रही थी ऐसा जटायु वेगसे आकाशमे उडकर खूनसे गीले रावणके वक्ष स्थल रूपी खेतको अत्यन्त तीक्ष्ण अग्रभागको धारण कनेवाले नख रूपी हलोंके द्वारा जोतने लगा ॥८५–८६॥ तत्पश्चात् अतिशय बलवान् जटायुने वायुके द्वारा वस्त्रोंको फाड़नेवाले कठोर तथा वेगशाली पङ्खोंके आघातसे रावणके समस्त शरीरको छिन्न-भिन्न कर डाला ॥८७॥ तदनन्तर इष्ट वस्तुमे बाधा डालनेसे क्रोधको प्राप्त हुए रावणने हस्ततलके प्रहारसे ही जटायुको मारकर पृथ्वीतल पर भेज दिया अर्थात् नीचे गिरा दिया ॥८८॥ तदनन्तर कठोर प्रहारसे जिसका मन अत्यन्त विकल हो रहा था ऐसा दुःखसे भरा जटायु पक्षी के-के करता हुआ मूर्च्छित हो गया ॥८९॥ तत्पश्चात् बिना किसी विघ्न-बाधाके सीताको पुष्पक विमान पर चढाकर कामको ठीक जाननेवाला रावण इच्छानुसार चला गया ॥९०॥ सीताका राममे अत्यधिक राग था इसलिए अपने आपको अपहृत जान शोकके वशीभूत हो वह आर्तनाद करती हुई विलाप करने लगी ॥९१॥ तदनन्तर अपने भर्तामे जिसका चित्त आसक्त था ऐसी सीताको रोती देख रावण कुछ विरक्त-सा हो गया ॥९२॥ वह विचार करने लगा कि इसके हृदयमे मेरे लिए आदर ही क्या है यह तो किसी दूसरेके लिए ही करुणरुदन कर रही है उसमे ही इसके प्राण आसक्त है तथा उसीके विरहसे आकुल हो रही है ॥९३॥ सत्पुरुषोंको इष्ट हैं ऐसे अन्य पुरुष सम्बन्धी गुणोंका बार-बार कथन करती हुई यह अत्यन्त शोकके धारण करनेमें तत्पर है ॥९४॥ तो क्या इस खड्गसे इस मूर्खाको मार डालूँ अथवा नहीं, स्त्रीको मारनेके लिए मेरा चित्त प्रवृत्त नहीं होता ॥९५॥ अथवा अधीर होनेकी बात नहीं है क्योंकि जो राजा कुपित होता है उसे शीघ्र ही प्रसन्न नही किया जा सकता। इसीप्रकार इष्ट वस्तुका पाना, कान्ति अथवा कीर्तिका प्राप्त करना अभीष्ट विद्या, पारलौकिकी क्रिया, मनको आनन्द देनेवाली भार्या अथवा और भी जो कुछ अभिलषित पदार्थ हैं वे सहसा प्राप्त नहीं हो जाते—उन्हें प्राप्त करनेके लिए समय लगता ही है ॥९६–९७॥ मैंने साधुओंके समक्ष पहले यह

---

१. नखरूपहलैः । २. दशाननस्येदं दाशाननम् । दशानन-म०, ख० । ३. निस्वनान् म० । ४. मूढा म० । ५. अभीष्टाल्लभ । अभीष्टलब्ध ज० ।

रक्षन्निदं व्रतं तस्मात् प्रसादं प्रापयाम्यमुम् । भविष्यत्यनुकूलेयं कालेन मम सम्पदा ॥९९॥
इति सञ्चिन्त्य तामङ्कात्तले स्वस्मिन्नतिष्ठिपत् । प्रतीक्षते हि तत्कालं मृत्युः कर्मप्रचोदितः ॥१००॥
अथेषुवारिधाराभिराकुलं रणमण्डलम् । प्रविष्टं राममालोक्य सुमित्रातनयोऽगदत् ॥१०१॥
हा कष्टं देव कस्मात् त्वं भूमिमेतामुपागतः । एकाकी मैथिलीं मुक्त्वा विपिने विघ्नसङ्कुले ॥१०२॥
तेनोक्तस्त्वद्ध्वनं श्रुत्वा प्राप्तोऽस्मि त्वरयान्वितः । सोऽवोचद् गम्यतां शीघ्रं न साधु भवता कृतम् ॥१०३॥
सर्वथा परमोत्साहो जय त्वं बलिनं रिपुम् । इत्युक्त्वा शङ्कया युक्तो जानकीं प्रति चञ्चलः ॥१०४॥
क्षणान्निवर्तते यावत् तावत्तत्र न दृश्यते । सीतेति हतवच्चेतो रामश्च्युतममन्यत ॥१०५॥
हा सीते इति भाषित्वा मूर्च्छितो धरणीमगात् । [1]भर्त्रा तेन परिष्वक्ता सा बभूव विभूषिता ॥१०६॥
संज्ञां प्राप्य ततो दृष्टिं निक्षिपन् वृक्षसङ्कुले । इति प्रेमपरीतात्मा जगादात्यन्तमाकुलः ॥१०७॥
अयि देवि क्व यातासि प्रयच्छ वचनं द्रुतम् । चिरं किं प्रतिहासेन दृष्टासि तरुमध्यगा ॥१०८॥
एह्यागच्छ-(प्र)-यातोऽस्मि कार्यं कोपेन किं प्रिये । जानास्येव चिरं [2]कोपात्तव देवि न मे सुखम् ॥१०९॥
एवं कृतध्वनिर्भ्राम्यन् प्रदेशं तं सुगह्वरम् । गृध्रं मुमूर्षुमैक्षिष्ट कृतकेकास्वनं शनैः ॥११०॥
ततोऽत्यन्तविषण्णात्मा म्रियमाणस्य पक्षिणः । कर्णजापं ददौ प्राप्तस्स तेनामरकायताम् ॥१११॥
तस्मिन् [3]कालगते पद्मः शोकार्तः केवले वने । वियोगदहनव्याप्तः पुनर्मूर्च्छामशिश्रियत् ॥११२॥

नियम लिया था कि जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी मुझपर प्रसन्न नहीं रहेगी मैं उसका उपभोग नहीं करूँगा ॥९८॥ इसलिए इस व्रतकी रक्षा करता हुआ मै इसे प्रसन्नताको प्राप्त कराता हूँ संभव है कि यह समय पाकर मेरी सम्पदाके कारण मेरे अनुकूल हो जावेगी ॥९९॥ ऐसा विचार कर रावणने सीताको गोदसे हटा कर अपने समीप ही बैठा दिया सो ठीक ही है क्योंकि कर्मसे प्रेरित मृत्यु उसके योग्य समयकी प्रतीक्षा करती ही है ॥१००॥

अथानन्तर बाणरूपी जलकी धाराओंसे आकुल युद्धके मैदानमे रामको प्रविष्ट देख लक्ष्मण ने कहा ॥१०१॥ कि हाय देव ! बड़े दुःखकी बात है आप विघ्नोंसे व्याप्त वनमे सीताको अकेली छोड़ इस भूमिमे किस लिये आये ? ॥१०२॥ रामने कहा कि मै तुम्हारा शब्द सुनकर शीघ्रतासे यहाँ आया हूँ । इसके उत्तरमे लक्ष्मणने कहा कि आप शीघ्र ही चल जाइये आपने अच्छा नहीं किया ॥१०३॥ 'परम उत्साहसे भरे हुए तुम बलवान् शत्रुको सब प्रकारसे जीतो' इस प्रकार कह कर शङ्कासे युक्त तथा चञ्चलचित्तके धारक राम जानकीकी ओर वापिस चले गये ॥१०४॥ जब राम क्षणभरमे वहाँ वापिस लौटे तब उन्हें सीता नहीं दिखाई दी । इस घटनासे रामने अपने चित्तको नष्ट हुआ-सा अथवा च्युत हुआ-सा माना ॥१०५॥ हा सीते ! इस प्रकार कहकर राम मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े और भर्ताके द्वारा आलिङ्गित भूमि सुशोभित हो उठी ॥१०६॥ तदनन्तर जब संज्ञाको प्राप्त हुए तब वृक्षोंसे व्याप्त वनमे इधर-उधर दृष्टि डाल हुएते प्रेमपूर्ण आत्माके धारक राम, अत्यन्त व्याकुल होते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥१०७॥ कि हे देवि ! तुम कहाँ चली गई हो ? शीघ्र ही वचन देओ । चिरकाल तक हँसी करनेसे क्या लाभ है ? मैंने तुम्हें वृक्षोंके मध्य चलती हुई देखा है ॥१०८॥ हे प्रिये ! आओ-आओ, मै प्रयाण कर रहा हूँ, क्रोध करनेसे क्या प्रयोजन है ? हे देवि ! तुम यह जानती ही हो कि दीर्घकाल तक तुम्हारे क्रोध करनेसे मुझे सुख नहीं होता है ॥१०९॥ इस प्रकार शब्द करने तथा गुफाओंसे युक्त उस स्थानमें भ्रमण करते हुए रामने धीरे-धीरे कें-कें करते हुए मरणोन्मुख जटायुको देखा ॥११०॥ तदनन्तर अत्यन्त दुःखित होकर रामने उस मरणोन्मुख पक्षीके कानमें णमोकार मन्त्रका जाप दिया और उसके प्रभावसे वह पक्षी देवपर्यायको प्राप्त हुआ ॥१११॥ वियोगाग्निसे व्याप्त राम उस पक्षी

१ भर्ता म० । २. कोपस्तव म० । ३. काले गते म० ।

समाश्वस्य च सर्वत्र न्यस्य दृष्टि ममाकुल । दीन कलाप नैराश्याद् भूतेनेवार्तमानस ॥११३॥
रन्ध्र प्राप्य वने भीमे हा केनास्मि दुरात्मना । हरता जानकी कष्ट हतो दुष्करकारिणा ॥११४॥
दर्शयस्तामथोत्सृष्टा हरन् शोकमशेषत । को नाम बान्धवत्व मे वनेऽस्मिन् परमेष्यति ॥११५॥
भो वृक्षाश्चम्पकच्छाया सरोजदललोचना । सुकुमाराङ्घ्रिका भीरुस्वभावा वरगामिनी ॥११६॥
चित्तोत्सवकरी पद्मरजोगन्धिमुखानिला । अपूर्वा यौषिती सृष्टिर्दृष्टा स्यात् काचिदङ्गना ॥११७॥
कथ निरुत्तरा यूयमित्युक्त्वा तद्गुणैर्हृतः । पुनर्मूर्छापरीतात्मा धरणीतलमागमत् ॥११८॥
समाश्वास्य च सक्रुद्धो वज्रावर्त महाधनु. । आरोप्यास्फालयन्मुक्तटङ्कारपुरुनिस्वनम् ॥११९॥
सिंहाना भीतिजनन नृसिंह सिंहनिस्वनम् । मुमोच मुहुरत्युग्रमुत्कर्णद्विरदश्रुतम् ॥१२०॥
भूयो विषादमागत्य त्यक्तचापोत्तरीयकम् । उपविश्य प्रमाद स्व शुशोच फलित क्षणात् ॥१२१॥
दु श्रुत्य दुर्विमर्शेण भजता त्वरिता गतिम् । धर्मधीरिव मूढेन हारिता हा मया प्रिया ॥१२२॥
मानुषत्व परिभ्रष्ट गहने भवसङ्कटे । प्राप्तुमत्यद्भुत भूय प्राणिनाशुभकर्मणा ॥१२३॥
त्रैलोक्यगुणवद्रत्न पतित निम्नगापतौ । लभेत क पुनर्धन्य कालेन महताप्यलम् ॥१२४॥
वनितामृतमेतन्मे कराङ्कस्थ महागुणम् । प्रनष्ट सङ्गति भूय केनोपायेन यास्यति ॥१२५॥
वनेऽस्मिन् जननिर्मुक्ते कस्य दोष प्रदीयते । नून मत्त्यागकोपेन क्वापि याता तपस्विनी ॥१२६॥

के मरने पर शोकसे पीड़ित हो निर्जन वनमे पुन मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥११२॥ जब सचेत हुए तब सब ओर दृष्टि डालकर निराशताके कारण व्याकुल तथा खिन्न चित्त होकर करुण विलाप करने लगे ॥११३॥ वे कहने लगे कि हाय-हाय भयङ्कर वनमे छिद्र पाकर कठोर कार्य करनेवाले किसी दुष्टने सीताका हरण कर मुझे नष्ट किया है ॥११४॥ अब बिछुडी हुई उस सीताको दिखा कर समस्त शोकको दूर करता हुआ कौन व्यक्ति इस वनमे मेरे परम बान्धवपनेको प्राप्त होगा ॥११५॥ हे वृक्षो ! क्या तुमने कोई ऐसी स्त्री देखी है ? जिसकी चम्पाके फूलके समान कान्ति है, कमलदलके समान जिनके नेत्र हैं, जिसका शरीर अत्यन्त सुकुमार है, जो स्वभावसे भीरु है, उत्तम गतिसे युक्त है, हृदयमे आनन्द उत्पन्न करनेवाली है, जिसके मुखकी वायु कमलकी परागके समान सुगन्धित है तथा जो स्त्रीविषयक अपूर्व सृष्टि है ॥११६–११७॥ अरे तुम लोग निरुत्तर क्यो हो ? इस प्रकार कह कर उसके गुणोंसे आकृष्ट हुए राम पुन' मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े ॥११८॥ जब सचेत हुए तब कुपित हो वज्रावर्त नामक महाधनुषको चढ़ाकर टङ्कारका विशाल शब्द करते हुए आस्फालन करने लगे । उसी समय नरश्रेष्ठ रामने बार-बार अत्यन्त तीक्ष्ण सिंहनाद किया । उनका वह सिंहनाद सिंहोंको भय उत्पन्न करनेवाला था तथा हाथियोंने कान खड़े कर उसे डरते-डरते सुना था ॥११९–१२०॥ पुन विषादको प्राप्त होकर तथा धनुष और उत्तरच्छदको उतारकर बैठ गये और तत्काल ही फल देनेवाले अपने प्रमादके प्रति शोक करने लगे ॥१२१॥ हाय-हाय जिस प्रकार मोही मनुष्य धर्मबुद्धिको हरा देता है उसी प्रकार लक्ष्मणके सिंहनादको अच्छी तरह नहीं श्रवणकर विचारके बिना ही शीघ्रतासे जाते हुए मैंने प्रियाको हरा दिया है ॥१२२॥ जिस प्रकार संसाररूपी वनमें एक बार छूटा हुआ मनुष्य भव, अशुभकार्य करनेवाले प्राणीको पुनः प्राप्त करना कठिन है उसी प्रकार प्रियाका पुन' पाना कठिन है । अथवा समुद्रमे गिरे हुए त्रिलोकी मूल्यरत्नको कौन भाग्यशाली मनुष्य दीर्घकालमे भी पुनः प्राप्त कर सकता है ? ॥१२३–१२४॥ यह महागुणोसे युक्त वनितारूपी अमृत मेरे हाथमे स्थित होने पर भी नष्ट हो गया है सो अब पुनः किस उपायसे प्राप्त हो सकेगा ? ॥१२५॥ इस निर्जन वनमे किसे दोष दिया जाय ? जान पड़ता है कि मैं उसे छोड़कर गया था इसी क्रोधसे वह बेचारी कहीं चली

१ नैष स्याद् भ० । २ हर म० । ३. सुकुमाराङ्घ्रिका म० । ४. मुक्त टङ्कारनिस्वन म० ।

अरण्ये निर्मनुष्येऽस्मिन्कमुपेत्य प्रसाद्य च । पृच्छामि दुष्कृताचारो यो मे वार्तां निवेदयेत् ॥१२७॥
इयं ते प्राणतुल्येति चेतः श्रवणयोः परम् । कुर्यात्प्रह्लादनं को मे वचसामृतदायिना ॥१२८॥
दयावानीदृशः कोऽस्मिन् लोके पुरुषपुङ्गवः । यो मे स्मितानना[1] कान्ता दर्शयेदघवर्जिताम् ॥१२९॥
हृदयागारमुद्दीप्तं कान्ताविरहवह्निना । उदन्तजलदानेन[2] को मे निर्वापयिष्यति ॥१३०॥
इत्युक्त्वा परमोद्विग्नो महीनिहितलोचनः । अस्मकृत् किमपि ध्यायंस्तस्थौ निश्चलविग्रहः ॥१३१॥
अथ नात्यन्तदूरस्थचक्रवाकीस्वनं कलम् । समाकर्ण्य दृशं तस्याः श्रवणं च न्यधापयत् ॥१३२॥
अचिन्तयच्चामुष्याद्रेस्तत्सङ्गे गन्धसूचितम् । किमिदं पङ्कजवनं भवेद्याता कुतूहलात् ॥१३३॥
दृष्टपूर्वं मनोहारि नानाकुसुमसङ्कुलम् । स्थानं हरितचेतोऽस्याः कदाचित्क्षणमात्रकम् ॥१३४॥
जगाम च तमुद्देशं यावच्चक्राह्वसुन्दरी । मया विना क्व यातीति पुनरुद्वेगमागमत् ॥१३५॥
भो भो महीधराधीश ! धातुभिर्विविधैश्चित ! सूनुर्दशरथस्य त्वां पद्माख्यः परिपृच्छते ॥१३६॥
विपुलस्तननम्राङ्गी बिम्बोष्ठी हंसगामिनी । [3]सन्नितम्बा भवेद् दृष्टा सीता मे मनसः प्रिया ॥१३७॥
दृष्टादृष्टेति किं वक्षि ब्रूहि ब्रूहि क्व सा क्व सा । केवलं निगदस्येव प्रतिशब्दोऽयमीदृशः ॥१३८॥
इत्युक्त्वा पुनरभ्यासीत् किमदृष्टेन चोदिता । कृतान्तशत्रुणा बाला समासन्ना सती सती ॥१३९॥
चण्डोर्मिमालयाऽत्यन्तं वेगवत्याविवेकया । कान्ता हृता भवेन्नद्या विद्येव दुरितेच्छया ॥१४०॥

गई है ॥१२६॥ मैं पापाचारी इस निर्जन वनमें किसके पास जाकर तथा उसे प्रसन्न कर पूछूँ जो मुझे प्रियाका समाचार बता सके ॥१२७॥ "यह तुम्हारी प्राणतुल्य प्रिया है" इस प्रकार अमृतको प्रदान करनेवाले वचनसे कौन पुरुष मेरे मन और कानोंको परम आनन्द प्रदान कर सकता है ? ॥१२८॥ इस संसारमें ऐसा कौन दयालु श्रेष्ठ पुरुष है जो मेरी मुसकुराती हुई निष्पाप कान्ताको मुझे दिखला सकता है ? ॥१२९॥ प्रियाके विरहरूपी अग्निसे जलते हुए मेरे हृदय-रूपी घरको कौन मनुष्य समाचाररूपी जल देकर शान्त करेगा ? ॥१३०॥ इस प्रकार कह कर जो परम उद्वेगको प्राप्त थे, पृथ्वीपर जिनके नेत्र लग रहे थे, और जिनका शरीर अत्यन्त निश्चल था ऐसे राम बार-बार कुछ ध्यान करते हुए बैठे थे ॥१३१॥

अथानन्तर कुछ ही दूरीपर उन्होंने चकवीका मनोहर शब्द सुना सो सुनकर उस दिशामें दृष्टि तथा कान दोनों ही लगाये ॥१३२॥ वे विचार करने लगे कि इस पर्वतके समीप ही गन्धसे सूचित होनेवाला कमल वन है सो क्या वह कुतूहल वश उस कमल वनमें गई होगी ? ॥१३३॥ नाना प्रकारके फूलोंसे व्याप्त तथा मनको हरण करनेवाला वह स्थान उसका पहलेसे देखा हुआ है सो संभव है कि वह कदाचित् क्षणभरके लिए उसके चित्तको हर रहा हो ॥१३४॥ ऐसा विचारकर वे उस स्थानपर गये जहाँ चकवी थी। फिर 'मेरे बिना वह कहाँ जाती है' यह विचारकर वे पुनः उद्वेगको प्राप्त हो गये ॥१३५॥ अब वे पर्वतको लक्ष्यकर कहने लगे कि हे नाना प्रकारकी धातुओंसे व्याप्त पर्वतराज ! राजा दशरथका का पुत्र पद्म (राम) तुमसे पूछता है ॥१३६॥ कि जिसका शरीर स्थूल स्तनोंसे नम्रीभूत है, जिसके ओंठ बिम्बके समान हैं। जो हंसके समान चलती है तथा जिसके उत्तम नितम्ब हैं ऐसी मनको आनन्द देनेवाली सीता क्या आपने देखी है ? ॥१३७॥ उसी समय पर्वतसे टकराकर रामके शब्दोंकी प्रतिध्वनि निकली जिसे सुनकर उन्होंने कहा कि क्या तुम यह कह रहे हो कि हाँ देखी है देखी है तो बताओ वह कहाँ है ? कहाँ है ? कुछ समय बाद निश्चय होनेपर उन्होंने कहा कि तुम तो केवल ऐसा ही कहते हो जैसा कि मैं कह रहा हूँ जान पड़ता है यह इस प्रकारकी प्रतिध्वनि ही है ॥१३८॥ इतना कहकर वे पुनः विचार करने लगे कि वह सती बाला दुर्दैवसे प्रेरित होकर कहाँ गई

---

१ स्मिताननः म०, ब० । २. समाचाररूपसलिलदानेन । ३. सन्नितम्बं म० ।

किंवाऽत्यन्तक्षुधार्तेन नितान्तक्रूरचेतसा । [1]इभारिणा भवेद्भुक्ता साधुवर्गस्य वत्सला ॥१४१॥
पशोर्भीमैककार्यस्य सिंहस्योत्केसरस्य सा । म्रियते दृष्टिमात्रेण [2]नखादिस्पर्शनाद्विना ॥१४२॥
भ्राता मम मृधे भीमे लक्ष्मणः संशयं श्रितः । सीतया विरहश्चायं तेन जानामि नो रतिम् ॥१४३॥
जीवलोकमिमं वेद्मि सकलं प्राप्तसंशयम् । जानामि च पुनः शून्यमहो दुःखस्य चित्रता ॥१४४॥
दुःखस्य यावदेकस्य नावसानं व्रजाम्यहम् । द्वितीयं तावदायातमहो दुःखार्णवो महान् ॥१४५॥
खञ्जपादस्य खण्डोऽस्य हिमदग्धस्य पावकः । स्खलितस्यातटे पातः प्रायोऽनर्था बहुत्वगाः ॥१४६॥
ततः पर्यट्य विपिने पश्यन्मृगगरुत्मतः । विवेश स्वाश्रयं भूयः श्रिया शून्यमरण्यकम् ॥१४७॥
अत्यन्तदीनवदनः कृत्वा [3]निर्ज्यां धनुर्लताम् । सितश्लक्ष्णपटच्छिन्नस्तस्थौ पर्यस्य भूतले ॥१४८॥
भूयो भूयो बहु ध्यायन् क्षणनिश्चलविग्रहः । निराशतां परिप्राप्तः सूत्कारमुखराननः ॥१४९॥

अतिरुचिराच्छन्दः

महानरानिति पुरुदुःखलंघितान् पुराकृतादसुकृतकर्मजृम्भणात् ।
अहो जना भृशमवलोक्य दीयतां मतिः सदा जिनवरधर्मकर्मणि ॥१५०॥

होगी ? जिस प्रकारकी इच्छा विद्याको हर लेती है उसी प्रकार जिसमे बड़ी बड़ी तीक्ष्ण तरङ्गे उठ रही हैं। जो अत्यन्त वेगसे बहती है तथा जिसमे विवेक नहीं है ऐसी नदी ने कहीं प्रियाको नहीं हर लिया हो ॥१३९-१४०॥ अथवा अत्यन्त भूखसे पीड़ित तथा अतिशय क्रूर चित्तके धारक किसी सिंहने साधुओंके साथ स्नेह करनेवाली उस प्रियाको खा लिया है ॥१४१॥ जिसका कार्य अत्यन्त भयंकर है तथा जिसकी गर्दनके बाल खडे हुए हैं ऐसे सिंहके देखने मात्रसे नखादिके स्पर्शके बिना ही वह मर गई होगी ॥१४२॥ मेरा भाई लक्ष्मण भयंकर युद्धमे संशयको प्राप्त है और इधर यह सीताके साथ विरह आ पड़ा है इससे मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता ॥१४३॥ मै इस समस्त संसारको संशयमे पड़ा जानता हूँ अथवा ऐसा जान पड़ता है कि समस्त संसार शून्य दशाको प्राप्त हुआ है सो ठीक ही है क्योंकि दुःखकी बड़ी विचित्रता है ॥१४४॥ जब तक मै एक दुःखके अन्तको प्राप्त नही हो पाता हूँ तब तक दूसरा दुःख आ पड़ता है। अहो ! यह दुःख रूपी सागर बहुत विशाल है ॥१४५॥ प्रायः देखा जाता है कि जो पैर लगड़ा होता है उसीमे चोट लगती है, जो वृक्ष तुषारसे सूख जाता है उसीमे आग लगती है और जो फिसलता है वही गर्तमे पड़ता है प्रायः करके अनर्थ बहु सख्यामें आते है ॥१४६॥ तदनन्तर वनमे भ्रमण कर मृग और पक्षियोको देखते हुए राम अपने रहनेके स्थान स्वरूप वनमे पुनः प्रविष्ट हुए। वह वन उस समय सीताके बिना शोभासे शून्य जान पड़ता था ॥१४७॥

तदनन्तर जिनका मुख अत्यन्त दीन था तथा जिन्होंने सफेद और महीन वस्त्र ओढ़ रक्खा था ऐसे राम धनुषको डोरी रहितकर पृथिवी पर पड़ रहे ॥१४८॥ वे बार-बार बहुत देर तक ध्यान करते रहते थे, क्षण-क्षणमें उनका शरीर निश्चल हो जाता था, वे निराशताको प्राप्त थे तथा सूत्कार शब्दसे उनका मुख शब्दायमान हो रहा था ॥१४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो जनो ! इस प्रकार पूर्वोपार्जित पाप कर्मके उदयसे बड़े-बड़े पुरुषोको अतिशय दुःखी

---

१. सिंहेन । २. नखाहि म० । ३ निष्ठा म० ।

न ये भवप्रभवविकारसङ्गते पराङ्मुखा जिनवचनान्युपासते ।
वशीकृतान् शरणविवर्जितानमून् तपत्यलं स्वकृतरवि सुदुस्सह ॥१५१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते सीताहरणरामविलापाभिधानं नामचतुश्चत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४४॥



देख, जिनेन्द्र कथित धर्ममें सदा बुद्धि लगाओ ॥१५०॥ जो मनुष्य संसार सम्बन्धी विकारोंकी संगतिसे दूर रहकर जिनेन्द्र भगवान्के वचनोंकी उपासना नहीं करते हैं उन शरणरहित तथा इन्द्रियोंके वशीभूत मनुष्योंको अपना पूर्वोपार्जित कर्मरूपी दुःसह सूर्य सदा संतप्त करता रहता है ॥१५१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें सीताहरण और राम-विलापका वर्णन करनेवाला चवालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशत्तमं पर्व

एतस्मिनन्तरे[1] प्रात पूर्वशिष्टो विराधित । समेत सचिवैश्शूरै[2] सन्नद्ध शस्त्रसकुल. ॥१॥
एकाकिनमसौ ज्ञाता युद्धयमान महानरम् । [3]स्वार्थससिद्धिसभूति दीप्यमान महौजसा ॥२॥
जानु क्षितितले न्यस्य मूर्द्धन्यस्तकरद्वय । अब्रवीदिति नम्राङ्ग परम विनय वहन् ॥३॥
नाथ ! भक्तोऽस्मि ते किञ्चिद्विज्ञाप्य श्रूयता मम । त्वद्विधाना हि ससर्गो निकारक्षयकारणम् ॥४॥
[4]कृतार्धभाषणस्यास्य कर विन्यस्य मस्तके । पृष्ठतस्तिष्ठ माभैर्षारित्यवोचत लक्ष्मण ॥५॥
तत प्रणम्य भूयोऽसौ महाविस्मयसङ्गत. । जगाद क्षणसञ्जातमहातेजा प्रिय वच ॥६॥
महाशक्तिमिम शत्रु त्वमेक विनिवारय । रणाजिरे भटान् शेषान् निधन प्रापयाम्यहम् ॥७॥
इत्युक्त्वा [5]दौषण सैन्य तेन शीघ्र विराधितम्[6] । अधावद् बलसम्पन्न[7] प्रह्लल्द्धेतिसहति ॥८॥
उवाच च चिरात् सोऽह[9] चन्द्रोदरनृपात्मज । प्राप्तो विराधित ख्यातो रणातिथ्यसमुत्सुक ॥९॥
केदानी गम्यते साधु स्थीयता युद्धशौण्डिकै । अद्य तद्व प्रदास्यामि यत्कृतान्तोऽतिदारुणः ॥१०॥
इत्युक्ते वैरसम्पन्नो भटानामतिसङ्कुल । बभूव शस्त्रसम्पात सुमहान् जनसक्षय ॥११॥
पत्तय पत्तिभिर्लग्ना सादिन सादिभि समम् । गजिनो गजिभि सत्रा रथिनो रथिभि सह ॥१२॥

अथानन्तर इसी बीचमे जिसका पहले उल्लेख किया गया था ऐसा खरदूषणका शत्रु विराधित, मन्त्रियो और शूर-वीरोसे सहित अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो वहाँ आया ॥१॥ उसने महातेजसे देदीप्यमान लक्ष्मणको अकेला युद्ध करते देख महापुरुष समझा और यह निश्चय किया कि इससे हमारे स्वार्थकी सिद्धि होगी ॥२॥ पृथिवीतल पर घुटने टेककर तथा मस्तकपर दोनो हाथ लगाकर परम विनयको धारण करनेवाले विराधितने नम्र होकर इस प्रकार कहा कि हे नाथ ! मै आपका भक्त हूँ मुझे आपसे कुछ निवेदन करना है सो सुनिये क्योंकि आप जैसे महापुरुषोकी संगति दु:खक्षयका कारण है ॥३-४॥ विराधित आधी-बात ही कह पाया था कि लक्ष्मणने उसके मस्तकपर हाथ रखकर कहा कि हमारे पीछे खड़े हो जाओ ॥५॥

तदनन्तर जो महा आश्चर्यसे युक्त था और जिसे तत्काल महातेज उत्पन्न हुआ था ऐसा विराधित पुन. प्रणामकर प्रिय वचन बोला कि इस महाशक्तिशाली एक शत्रु-खरदूषणको तो आप निवारण करो और युद्धके ऑगनमे जो अन्य योद्धा है मै उन सबको मृत्यु प्राप्त कराता हूँ ॥६-७॥ इतना कहकर उसने शीघ्र ही खरदूषणकी सेनाको नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। वह सेनाके साथ लहलहाते शस्त्रोके समूहसे युक्त हो खरदूषणकी सेनाकी ओर दौड़ा ॥८॥ उसने सामने जाकर कहा कि मै राजा चन्दोदरका पुत्र विराधित युद्धमे आतिथ्य पानेके लिए उत्सुक हुआ चिरकाल बाद आया हूँ ॥९॥ अब कहाँ जाइयेगा ? जो युद्धमे शूर-वीर है वे अच्छी तरह खड़े हो जावें। आज मैं आप लोगोंको वह फल दूगा जो कि अत्यन्त दारुण-कठोर यमराज देता है ॥१०॥ इतना कहते ही दोनो ओरके योद्धाओमे बैर भरा तथा मनुष्योका सहारा करनेवाला बहुत भारी शस्त्रोका संपात होने लगा—दोनो ओरसे शस्त्रोकी वर्षा होने लगी ॥११॥ पैदल पैदलोसे, घुड़सवार घुड़सवारोंसे, गजसवार गजसवारोसे और रथसवार रथसवारोके

---

१. नगरे म० । २ श्वरैः म० । ३. सार्थसम्पद् विसम्भूर्तिं म०,ब० । ४. कृतार्धभीषणस्य-म० । ५. दूषणस्येदं दौषणम् । ६. विराधितः क०, ख०, ज० । ७. सम्पन्न म० । ८. प्रज्वलद्धेतिसततिः ।' ९. वच: सोत्साह म० ।

परस्परकृताह्वानैरति[1] सहर्षविभिर्भटैः । सकुलैर्जनितै युद्धे [2]कृत्तान्योन्यमहायुधैः ॥१३॥
रणाजिरे परं तेजो भजमानो नवं नवम् । दिव्यकार्मुकमुद्यम्य शरच्छन्नदिगम्बरः ॥१४॥
खरेण सह संग्रामं चक्रे परमभैरवम् । लक्ष्मीधरः शुनासीरः स्वामिनेव सुरद्विषाम् ॥१५॥
ततः क्रोधपरीतेन खरेण खरनिस्वनम् । अवाचि लक्ष्मणः [3]सत्ये स्फुरल्लोहितचक्षुषा ॥१६॥
ममात्मजमुदासीनं हत्वा परमचापल । कान्ताकुचौ च संमृश्य पापाद्यापि क्व गम्यते ॥१७॥
अद्य ते निशितैर्बाणैर्जीवितं नाशयाम्यहम् । कृत्वा तथाविधं कर्म फलं तस्यानुभूयताम् ॥१८॥
अत्यन्तक्षुद्र निर्लज्ज परस्त्रीसङ्गलोलुप । ममाभिमुखतां गत्वा परलोकं व्रजाधुना ॥१९॥
ततस्तैः परुषैर्वाक्यैः समुद्दीपितमानसः । उवाच लक्ष्मणो वाचा पूरयन् सकलं नभः ॥२०॥
किं वृथा गर्जसि क्षुद्र दु[4]खेचर शुना समः । अहं नयामि तत्र त्वां यत्र ते तनयो गतः ॥२१॥
इत्युक्त्वावस्थितं व्योम्नि विरथं खरदूषणम् । चकार लक्ष्मणः छिन्नचापकेतुं च निःप्रभम् ॥२२॥
ततोऽसौ पतितः क्षोण्यां नभस्तः क्रोधलोहितः । प्रक्षीणेष्विव पुण्येषु ग्रहस्तरलविग्रहः ॥२३॥
खड्गांशुली[5]ढदेहश्च सौमित्रिं प्रत्यधावत । असिरत्नं समाकृष्य सोऽप्यस्याभिमुखं ययौ ॥२४॥
इत्यासन्नं तयोरासीच्चित्रं [6]युद्धं भयानकम् । मुमुचुः स्वःस्थिता देवाः सपुष्पान् साधुनिस्वनान् ॥२५॥
तावच्छिरसि संक्रुद्धो दूषणस्य न्यपातयत् । सूर्यहासं यथार्थाख्यं लक्ष्मणोऽक्षतविग्रहः ॥२६॥

साथ भिड़ गये ॥१२॥ तदनन्तर जो परस्पर एक दूसरेको बुला रहे थे, जो अत्यन्त हर्षित हो रहे थे जो अत्यन्त सकुल-व्यग्र थे और जिन्होंने एक दूसरेके बड़े-बड़े शस्त्र काट दिये थे ऐसे योद्धाओंके द्वारा उधर महायुद्ध हो रहा था इधर रणके मैदानमें नवीन नवीन परम तेजको धारण करनेवाला लक्ष्मण, दिव्यधनुष उठाकर बाणोंसे दिशाओं और आकाशको व्याप्त करता हुआ खरके साथ उस तरह अत्यन्त भयंकर युद्ध कर रहा था जिस तरह कि इन्द्र दैत्येन्द्रके साथ करता था ॥१३-१५॥ तदनन्तर क्रोधसे व्याप्त एवं चञ्चल और लाल-लाल नेत्रोंको धारण करनेवाले खरदूषणने कठोर शब्दोंमें लक्ष्मणसे कहा कि हे अतिशय चपल पापी! मेरे निर्बैर पुत्रको मार कर तथा मेरी स्त्रीके स्तनोंका स्पर्शकर अब तू कहाँ जाता है? ॥१६-१७॥ आज तीक्ष्ण बाणोंसे तेरा जीवन नष्ट करता हूँ तूने जैसा कर्म किया है वैसा फल भोग ॥१८॥ हे अत्यन्त क्षुद्र! निर्लज्ज! परस्त्री संगका लोलुप! अब मेरे सन्मुख आकर परलोकको प्राप्त हो ॥१९॥

तदनन्तर उन कठोर वचनोंसे जिनका मन प्रदीप्त हो रहा था ऐसे लक्ष्मणने समस्त आकाशको गुंजाते हुए निम्नांकित वचन कहे। उन्होंने कहा कि रे क्षुद्र विद्याधर! तू कुत्तेके समान व्यर्थ ही क्यों गरज रहा है? मैं जहाँ तेरा पुत्र गया है वहीं तुझे पहुँचाता हूँ ॥२०-२१॥ इतना कहकर लक्ष्मणने आकाशमें स्थित खरदूषणको रथरहित कर दिया, उसका धनुष और पताका काट डाली तथा उसे निष्प्रभ कर दिया ॥२२॥ तदनन्तर जिस प्रकार पुण्यके क्षीण होने पर चञ्चल शरीरको धारण करनेवाला ग्रह पृथिवीपर आ पड़ता है उसी प्रकार क्रोधसे लाल लाल दीखनेवाला खरदूषण आकाशसे पृथिवीपर नीचे आ पड़ा ॥२३॥ खड्गकी किरणोंसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था ऐसा खरदूषण लक्ष्मणकी ओर दौड़ा और लक्ष्मण भी सूर्यहास खड्ग खींचकर उसके सामने जा डटे ॥२४॥ इस प्रकार उन दोनोंमें निकटसे नाना प्रकारका भयंकर युद्ध हुआ तथा स्वर्गमें स्थित देवोंने साधु साधु-धन्य धन्य शब्दोंके साथ साथ उनपर पुष्पोंकी वर्षा की ॥२५॥ उसी समय अखण्डित शरीरके धारक लक्ष्मणने कुपित हो खरदूषणके सिरपर

१ ग्विति म० । २. कृतान्योन्य म० । ३. युद्धे । ४ दुष्ट. खेचरः दुःखेचरस्तत्सम्बुद्धौ हे दुःखेचर ।
५. लीनदेहश्च म० । ६. चित्रयुद्धं म० ।

निर्जीव पतित क्षोण्या बभूव खरदूषण । आलेख्यैरविसङ्काशो यद्वत्स्वर्गच्युतोऽमर ॥२७॥
अथवा दयितो रत्या निश्चेष्टीभूतविग्रह । रत्नपर्वतखण्डो वा दिग्गजेन निपातित· ॥२८॥
अथ सेनापतिर्नाम्ना दूषण· [1]खारदूषण । विरथ कर्तुमारेभे चन्द्रोदरनृपात्मजम् ॥२९॥
लक्ष्मणेनेषुणा तावद्गाढ मर्मणि[2] ताडित· । घूर्णमानो गतो भूमि समाश्वासनमाप्नुत ॥३०॥
दत्वा विराधितायाथ तद्बल खारदूषणम् । प्रययौ लक्ष्मण प्रीत प्रदेश पद्मसंश्रितम् ॥३१॥
यावत्पश्यति त सुप्त भूमौ सीताविवर्जितम् । जगौ चोत्तिष्ठ कि नाथ याता क्व वद जानकी ॥३२॥
उत्थाय सहसा दृष्ट्वा लक्ष्मण निर्व्रणाङ्गकम् । किञ्चित्प्रमोदमायात परिष्वजनतत्पर: ॥३३॥
जगाद भद्र नो वेद्मि देवी केनापि कि हृता । उत सिंहेन निर्भुक्ता न दृष्टात्र गवेषिता ॥३४॥
पाताल किं भवेत्सीता नभ शिखरमेव वा । उद्वेगेन विलीना वा सुकुमारशरीरिका ॥३५॥
तत क्रोधपरीताङ्गो विषादी लक्ष्मणोऽगदत् । देवोद्वेगानुबन्धेन न किञ्चिदपि कारणम् ॥३६॥
नून दैत्येन केनापि हृता केनापि जानकी । म्रियमाणामिमा लप्स्ये कर्तव्योऽत्र न सशय ॥३७॥
परिसान्त्व्योत्तमैर्वाक्यैर्विविधै श्रुतिपेशलै । विमलेनाम्भसा तस्य मुख प्राक्षालयन् सुधी ॥३८॥
श्रुत्वा तावदल तार शब्दमुत्तानिताानन । अपृच्छत् [3]श्रीधर राम सम्भ्रम किञ्चिदापयन् ॥३९॥
किमेषा नर्दति क्षोणी गगनात्किमय ध्वनि । कि कृत भवता पूर्व शत्रुशेष भयोज्झितम् ॥४०॥

यथार्थ नामवाला सूर्यहास खड्ग गिराया ॥२६॥ जिससे वह निर्जीव होकर चित्र लिखित सूर्यके समान उस तरह पृथिवीपर आ पडा जिस तरह कि स्वर्गसे च्युत हुआ कोई देव पृथिवीपर आ पड़ता है ॥२७॥ पृथिवीपर पडा निर्जीव खरदूषण ऐसा जान पड़ता था मानो निश्चेष्ट शरीरका धारक कामदेव ही हो अथवा दिग्गजके द्वारा गिराया हुआ रत्नगिरिका एक खण्ड ही हो ॥२८॥

तदनन्तर खरदूषणका दूषण नामक सेनापति चन्द्रोदर राजाके पुत्र विराधितको रथ रहित करनेके लिए उद्यत हुआ ॥२९॥ उसी समय लक्ष्मणने उसके मर्मस्थलमे बाणसे इतनी गहरी चोट पहुँचाई कि बेचारा घूमता हुआ पृथिवीपर आ गिरा और तत्काल मृत्युको प्राप्त हो गया ॥३०॥ तदनन्तर खरदूषणकी वह समस्त सेना विराधितके लिए देकर प्रीतिसे भरे लक्ष्मण उस स्थानपर गये जहाँ श्रीराम विराजमान थे ॥३१॥ जाते ही लक्ष्मणने सीता सहित रामको पृथिवीपर सोते हुए देखा। देखकर लक्ष्मणने कहा कि हे नाथ! उठो और कहो कि सीता कहाँ गई हैं? ॥३२॥ राम सहसा उठ बैठे और लक्ष्मणको घाव रहित शरीरका धारक देख कुछ हर्षित हो उनका आलिङ्गन करने लगे ॥३३॥ उन्होंने लक्ष्मणसे कहा कि हे भद्र! मै नही जानता हूँ कि देवीको क्या किसीने हर लिया है या सिंहने खा लिया है। मैंने इस वनमे बहुत खोजा पर दीखी नही ॥३४॥ उसे कोई पातालमे ले गया है या आकाशके शिखरमे पहुँचा दी गई है अथवा वह सुकुमाराङ्गी भयके कारण विलीन हो गई है ॥३५॥

तदनन्तर जिनका शरीर क्रोधसे व्याप्त था ऐसे लक्ष्मणने विषाद युक्त होकर कहा कि हे देव! उद्वेगकी परम्परा बढ़ाने से कुछ प्रयोजन नहीं है ॥३६॥ जान पड़ता है कि जानकी किसी दैत्यके द्वारा हरी गई है सो कोई भी क्यो नहीं इसे धारण किये हो मै अवश्य ही प्राप्त करूँगा इसमे संशय नही करना चाहिए ॥३७॥ इस प्रकार कानोको प्रिय लगनेवाले विविध प्रकारके वचनोंसे सान्त्वना देकर बुद्धिमान लक्ष्मणने निर्मल जलसे रामका मुख धुलाया ॥३८॥ तदनन्तर उस समय अतिशय उच्च शब्द सुन कुछ-कुछ संभ्रमको धारण करनेवाले रामने ऊपरकी ओर मुखकर लक्ष्मणसे पूछा कि क्या यह पृथिवी शब्द कर रही है या आकाशसे यह शब्द आ रहा है? क्या तुमने पहले मेरे द्वारा छोड़े हुए शत्रुको शेष रहने दिया है? ॥३९-४०॥

---

१. खर दूषण· म०, क० । २. कर्मणि म० । ३. लक्ष्मणम् ।

सुमित्राजस्ततोऽवोचन्नाथाऽत्र हि महाहवे । उपकारो महान् काले खेचरेण कृतो मम ॥४१॥
चन्द्रोदरसुत सोऽय विराधित इति श्रुत । प्रस्तावे दैवतेनैव हितेन परिढोकित ॥४२॥
चतुर्विधेन महता बलेनास्य सुचेतस । आगच्छतो महानेप शब्द श्रुतिमुपागत ॥४३॥
विश्रब्धचेतयोर्यावत् कथेय वर्त्तते तयो । तावन्महाबलोपेत. परिप्राप विराधित ॥४४॥
ततो जयजयस्वान कृत्वा विरचिताञ्जलि । जगाद खेचरस्वामी प्रणतै सचिवै समम् ॥४५॥
स्वामी त्व परमोऽस्माभिश्चिरात् प्राप्तो नरोत्तम । अत प्रदीयतामाज्ञा नाथ कर्तव्यवस्तुनि ॥४६॥
इत्युक्तो लक्ष्मणोऽभाणीत् साधो श्रृणु सुवर्तनम् । गुरो. केनापि मे पत्नी हृता दुर्नयवर्तिना ॥४७॥
तया विरहित सोऽय पद्म शोकवशीकृत । यदि नाम त्यजेत् प्राणास्तावद्वह्नि विशाम्यहम् ॥४८॥
एतत्प्राणदृढासक्तात् भद्र प्राणानवैहि मे । ततोऽत्र प्रकृते किञ्चित्कर्तव्य कारण परम् ॥४९॥
ततो नतानन किञ्चित्खगप्रभुरचिन्तयत् । कृत्वापि श्रममेत मे कष्टमाशा न पूरिता ॥५०॥
सुख सवसता स्वेष्ट नानावनविहारिणा । पश्यात्मा योजित. कष्टे कथ सशयगह्वरे ॥५१॥
दुःखार्णवतट प्राप्तो या या गृह्णाम्यह लताम् । दैवेनोन्मूल्यते सा सा कृत्स्न विधिवश जगत् ॥५२॥
तथाप्युत्साहमाश्रित्य कर्तव्य समुपागतम् । करोमि कुर्वतो भद्रमभद्र वास्वकर्मजम् ॥५३॥
इति ध्यात्वावहीरूप भजन्नुत्साहसस्तुतम् । जगाद सचिवान् धीरो वचसा स्फुटतेजसा ॥५४॥
पत्नी महानरस्यास्य नीता यदि महीतलम् । अथाकाश गिरि वारि स्थल वा विपिन पुरम् ॥५५॥
गवेषयत यत्नेन सर्वाशासुसम ततः । यदिच्छत कृतार्थाना तद्दास्यामि महाभटा ॥५६॥

तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हे नाथ ! इस महायुद्धमें विद्याधरने समय पर मेरा बड़ा उपकार किया है। वह विद्याधर राजा चन्द्रोदरका पुत्र विराधित है जो हितकारी दैवके द्वारा ही मानो अवसर पर मेरे समीप भेजा गया था ॥४१–४२॥ उत्तम हृदयको धारण करनेवाला वह विद्याधर चार प्रकारकी बड़ी भारी सेनाके साथ आपके पास आ रहा है सो यह महान् शब्द उसीका सुनाई दे रहा है ॥४३॥ इधर विश्वस्त चित्तके धारक राम-लक्ष्मणके बीच जब तक यह कथा चलती है तब तक बड़ी भारी सेनाके साथ विराधित वहाँ आ पहुँचा ॥४४॥ तदनन्तर विद्याधरोंके राजा विराधितने नम्रीभूत मन्त्रियोंके साथ-साथ हाथ जोड़कर तथा जय-जय शब्दका उच्चारण कर कहा कि आप मनुष्योंमे उत्तम उत्कृष्ट स्वामी चिरकाल बाद प्राप्त हुए हो सो करने योग्य कार्यके विषयमे मुझे आज्ञा दीजिये ॥४५–४६॥ इस प्रकार कहने पर लक्ष्मणने कहा कि हे सज्जन ! सुनो किसी दुराचारीने मेरे अग्रज-रामकी पत्नी हर ली है सो उससे रहित राम, शोकके वशीभूत हो यदि प्राण छोड़ते हैं तो मै निश्चय ही अग्निमे प्रवेश करूँगा ॥४७–४८॥ क्योंकि हे भद्र ! तुम यह निश्चित जानो कि मेरे प्राण इन्हींके प्राणोंके साथ मजबूत बँधे हुए हैं इसलिए इस विषयमे कुछ उत्तम उपाय करना चाहिए ॥४९॥ तब विद्याधरोंका राजा विराधित नीचा मुखकर कुछ विचार करने लगा कि अहो ! इतना श्रम करने पर भी मेरी आशा पूर्ण नहीं हुई ॥५०॥ मै पहले सुखसे इच्छानुसार निवास करता था फिर स्थानभ्रष्ट हो नाना वनोंमें भ्रमण करता रहा। अब मैने अपने आपको इनकी शरणमें सौंपा सो देखो ये स्वयं कष्टकारी संशयके गर्तमें पड़ रहे है ॥५१॥ दु:खरूपी सागरके तटको प्राप्त हुआ मैं जिस-जिस लताको पकड़ता हूँ सो दैवके द्वारा वही-वही लता उखाड़ दी जाती है, वास्तवमे समस्त ससार कर्मोंके आधीन है ॥५२॥ यद्यपि ये अपने कर्मके अनुसार हमारा भला या बुरा कुछ भी करें तो भी मै उत्साह धारण कर इनके इस उपस्थित कार्यको अवश्य करूँगा ॥५३॥ इस प्रकार अन्तरङ्गमे विचार कर उत्साहको धारण करते हुए धीर वीर विराधितने तेज पूर्ण वचनोंमें मन्त्रियोंसे कहा

---

१ अवसरे, प्रस्तवे म० । २. परिप्राप्तो म० । ३ अग्रजस्य । ४. -माप्नुत्य म० । ५. भजमुत्साहमसस्तुगम् ब० । ६ गवेषयतो म० ।

इत्युक्ता सम्मदोपेता सन्नद्धा परमौजसः । नानाकल्पा खगा जग्मुर्दिशो दश यशोर्थिनः ॥५७॥
अथार्कजटिनः सूनुर्नाम्ना रत्नजटी खगः । खड्गी द्रागिति शुश्राव दूरतो रुदितध्वनिम् ॥५८॥
आशां च भजमानस्तामाकर्णदिति निस्वनम्[1] । हा राम हा कुमारेति जलधेरूर्ध्वमम्बरे ॥५९॥
[2]परिदेवननिस्वानं श्रुत्वा तं सपरिस्फुटम् । समुत्पपात तं देशं विमानं यावदीक्षते ॥६०॥
अस्योपरि परिक्रन्दं कुर्वन्तीमितिविह्वलाम्[3] । वैदेहीं स समालोक्य बभाण क्रोधपूरितः ॥६१॥
तिष्ठ तिष्ठ महापाप दुष्ट विद्याधराधम । कृत्वापराधमीदृक्षं क्व त्वया गम्यतेऽधुना ॥६२॥
दयिता रामदेवस्य प्रभामण्डलसोदराम् । मुञ्च शीघ्रमभीष्टं ते जीवितं यदि दुर्मते ॥६३॥
ततो दशाननोऽन्येनमाक्रोश्य परुषस्वनम् । युद्धे समुद्यतः क्रुद्धो विह्वलीभूतमानसः ॥६४॥
पुनश्चाचिन्तयद्युद्धे [4]प्रवृत्ते सति विह्वला । मयानिरूपिता सीता कदाचित्पञ्चतां भजेत् ॥६५॥
आकुला [5]रक्षता चैतां परमव्याकुलात्मना । न व्यापादयितुं शक्यः क्षुद्रोऽप्येष नभश्चरः ॥६६॥
इति सञ्चिन्त्य सम्भ्रान्तश्लथमौल्युत्तराम्बरः । [6]खस्थस्य रत्नजटिनो बली[7] विद्यामपाहरत् ॥६७॥
अथ रत्नजटी त्रस्तः किञ्चिन्मन्त्रप्रभावतः । पपात शनकैरुल्कास्फुलिङ्ग इव मेदिनीम् ॥६८॥
समुद्रजलमध्यस्थं कम्बुद्वीपं समाश्रितः । आयुर्वर्तनसामर्थ्याद्भग्नपोतो यथा वणिक् ॥६९॥
निश्चलश्च क्षणं स्थित्वा समुच्छ्वस्यायतं भृशम् । कम्बुपर्वतमारुह्य दिशाचक्रं व्यलोकयत् ॥७०॥

कि इन महामानवकी पत्नी, महीतल, आकाश, पर्वत, जल, स्थल, वन अथवा नगरमें कहीं भी ले जाई गई हो यत्नपूर्वक समस्त दिशाओंमें सब ओरसे उसकी खोज करो। हे महायोद्धाओ ! खोज करने पर तुम लोग जो चाहोगे वह प्रदान करूँगा ॥५४–५६॥ इस प्रकार कहने पर हर्षसे युक्त, अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित, परम तेजके धारक, नाना प्रकारकी वेष-भूषासे सुशोभित और यशके इच्छुक विद्याधर दशों दिशाओंमें गये ॥५७॥

अथानन्तर अर्कजटीके पुत्र रत्नजटी नामक खड्गधारी विद्याधरने दूरसे शीघ्र ही रोनेका शब्द सुना ॥५८॥ जिस दिशासे रोनेका शब्द आ रहा था उसी दिशामें जाकर उसने समुद्रके ऊपर आकाशमें 'हा राम ! हा कुमार लक्ष्मण !' इस प्रकारका शब्द सुना ॥५९॥ विलापके साथ आते हुए उस अत्यन्त स्पष्ट शब्दको सुनकर जब वह उस स्थानकी ओर उड़ा तब उसने एक विमान देखा ॥६०॥ उस विमानके ऊपर विलाप करती हुई अतिशय विह्वल सीताको देखकर वह क्रोध-युक्त हो बोला कि अरे ठहर-ठहर, महापापी दुष्ट नीच विद्याधर ! ऐसा अपराध कर अब तू कहाँ जाता है ? ॥६१–६२॥ हे दुर्बुद्धे ! यदि तुझे जीवन इष्ट है तो रामदेवकी स्त्री और भामण्डलकी बहिनको शीघ्र ही छोड़ ॥६३॥ तदनन्तर कर्कश शब्द कहनेवाले रत्नजटीके प्रति कर्कश शब्दोंका उच्चारण कर क्रोधसे भरा तथा विह्वल चित्तका धारक रावण युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥६४॥ फिर उसने विचार किया कि 'युद्ध होने पर मैं इस विह्वल सीताको देख नहीं सकूँगा और उस दशामें सम्भव है कि यह कदाचित् मृत्युको प्राप्त हो जाय और यदि इस घबड़ाई हुई सीताकी रक्षा भी करता रहूँगा तो अत्यन्त व्याकुल चित्त होनेके कारण, यद्यपि यह विद्याधर क्षुद्र है तो भी मेरे द्वारा मारा नहीं जा सकेगा' ॥६५–६६॥ इस प्रकार विचार कर हड़बड़ाहटके कारण जिसके मुकुट और उत्तरीय वस्त्र शिथिल हो गये थे ऐसे बलवान् रावणने आकाशमें स्थित रत्नजटी विद्याधर की विद्या हर ली ॥६७॥

अथानन्तर भयभीत रत्नजटी किसी मन्त्रके प्रभावसे उल्काके तिलगोंके समान धीरे-धीरे पृथ्वी पर आ पड़ा ॥६८॥ जिसका जहाज डूब गया है ऐसे वणिक्के समान वह आयुका अस्तित्व शेष रहनेके कारण समुद्र जलके मध्यमें स्थित कम्बुनामक द्वीपमें पहुँचा ॥६९॥ वहाँ वह क्षणभर

१. -यति निस्वनम् म० । २. यदि देवेन म० । ३. मतिविह्वलाम् म० । ४. प्रवर्ते म० । ५. रक्षिता म० ।
६. स्वस्थस्य म० । ७. बलवान् रावणः ।

ततः समुद्रवातेन शिशिरत्वमुपेयुषा । [1]अपनीतश्रमस्वेदः समाशश्वासदुःखितः ॥७१॥
[2]येऽप्यन्येऽन्वेषणं कर्तुं गतास्तेऽन्विष्य शक्तितः । राघवस्यान्तिकं प्राप्ताः प्रणष्टवदनौजसः ॥७२॥
तेषां ज्ञात्वा मनः शून्यं महीविन्यस्तचक्षुषाम् । पद्मो जगाद दीर्घोष्णं निश्वस्य म्लानलोचनः ॥७३॥
निजां शक्तिमसुञ्चद्भिर्भवद्भिः साधुखेचराः । अस्मत्कार्ये कृतो यत्नो दैवं तु प्रतिकूलकम् ॥७४॥
तिष्ठत स्वेच्छयेदानीं यात वा स्वं समाश्रयम् । [3]वाडवास्यगतं रत्नं करात् किं पुनरीक्ष्यते ॥७५॥
नूनं सर्वं कृतं कर्म प्रापणीयं फलं मया । तत्कर्तुमन्यथा शक्यं न भवद्भिर्मयापि वा ॥७६॥
विमुक्तं बन्धुभिः कष्टं [4]विकृष्टं वनमाश्रितम् । अनुकम्पा न तत्रापि जनिता दैवशत्रुणा ॥७७॥
मन्ये यथानुबन्धेन लग्नोऽयं विधिरुद्धतः । तथैतस्मात्परं दुःखं किं नामान्यत्करिष्यति ॥७८॥
परिदेवनमारब्धे कर्तुमेवं नराधिपे । वीरं विराधितोऽवोचत् परिसान्त्वनपण्डितः ॥७९॥
विषादमतुलं देव किमेवमनुसेवसे । स्वल्पैरेव दिनैः पश्य प्रियामनघविग्रहाम् ॥८०॥
शोको हि नाम कोऽप्येष विषभेदो महत्तमः । नाशयत्याश्रितं देहं का कथान्येषु वस्तुषु ॥८१॥
तस्मादवलम्ब्यतां धैर्यं महापुरुषसेवितम् । भवद्विधा विवेकानां भवनं क्षेत्रमुत्तमम् ॥८२॥
जीवन् पश्यति भद्राणि धीरश्चिरतरादपि । [5]ग्रही ह्रस्वमतिर्भद्रं कृच्छ्रादपि न पश्यति ॥८३॥
कालो नैष विषादस्य दीयतां कारणे मनः । [6]औदासीन्यमिहानर्थं कुरुते परमं पुरा ॥८४॥

निश्चल बैठा फिर बार-बार लम्बी साँस लेकर वह कम्बु पर्वत पर चढ़कर दिशाओंकी ओर देखने लगा ॥७०॥ तदनन्तर समुद्रकी शीतलवायुसे जिसका परिश्रम और पसीना दूर हो गया था ऐसा दुःखी रत्नजटी कुछ सतुष्ट हुआ ॥७१॥ जो अन्य विद्याधर सीताकी खोज करनेके लिए गये थे वे शक्तिभर खोज कर रामके समीप वापिस पहुँचे उस समय प्रयोजनकी सिद्धि नहीं होनेसे उनके मुखका तेज नष्ट हो गया था ॥७२॥ जिनके नेत्र पृथ्वी पर लग रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंका मन शून्य जान कर म्लाननेत्रोंके धारक रामने लम्बी और गरम साँस भरकर कहा कि हे धन्य विद्याधरो! आप लोगोंने अपनी शक्ति न छोड़ते हुए हमारे कार्यमें प्रयत्न किया है पर मेरा भाग्य ही विपरीत है ॥७३–७४॥ अब आपलोग अपनी इच्छानुसार बैठिये अथवा अपने-अपने घर जाइये। जो रत्न हाथसे छूटकर बडवानलमें जा गिरता है वह क्या फिर दिखाई देता है? ॥७५॥ निश्चय ही जो कुछ कर्म मैंने किया है उसका फल प्राप्त करने योग्य है उसे न आप लोग अन्यथा कर सकते हैं और न मैं भी अन्यथा कर सकता हूँ ॥७६॥ मैंने भाई-बन्धुओंसे रहित, कष्टकारी दूरवर्ती वनका आश्रय लिया सो वहाँ भी भाग्यरूपी शत्रुने मुझपर दया नहीं की ॥७७॥ जान पड़ता है कि यह उत्कट दुर्दैव मेरे पीछे लग गया है सो इससे अधिक दुःख और क्या करेगा? ॥७८॥ इस प्रकार कहकर राम विलाप करने लगे तब सान्त्वना देनेमें निपुण विराधितने बड़ी धीरतासे कहा कि हे देव! आप इस तरह अनुपम विषाद क्यों करते हैं? आप थोड़े ही दिनोंमें निष्पाप शरीरकी धारक प्रियाको देखेंगे ॥७९–८०॥ यथार्थमें यह शोक कोई बड़ा भारी विषका भेद है जो आश्रित शरीरको नष्ट कर देता है अन्य वस्तुओंकी तो चर्चा ही क्या है? ॥८१॥ इसलिए महापुरुषोंके द्वारा सेवित धैर्यका अवलम्बन कीजिए आप जैसे उत्तम-पुरुष विवेककी उत्पत्तिके उत्तम क्षेत्र हैं ॥८२॥ धीरवीर मनुष्य यदि जीवित रहता है तो बहुत समय बाद भी कल्याणको देख लेता है और जो तुच्छ बुद्धिका धारी अधीर मनुष्य है वह कष्ट भोगकर भी कल्याणको नहीं देख पाता है ॥८३॥ यह विषाद करनेका समय नहीं है कार्य करनेमें मन दीजिये क्योंकि उदासीनता बड़ा अनर्थ करनेवाली है ॥८४॥

१ अपरीतश्रमस्वेदसमासश्वासदुःखितः म०। २. यथा स्वन्वेषण म०। ३. वाडवास्या गत म०, ब०। ४. विदूर। ५. ग्रही ख०। ६. उदासीन म०।

विद्याधरमहाराजे निहते खरदूषणे । अर्थान्तरमनुप्राप्तं दुरन्तमवधार्यताम् ॥८५॥
किष्किन्धेन्द्रेन्द्रजिद्वीरौ भानुकर्णस्तथैव च । त्रिशिरा क्षोभणो भीम क्रूरकर्मा महोदर ॥८६॥
एवमाद्या महायोधा नानाविद्यामहौजसः । यास्यन्ति साम्प्रत क्षोभं मित्रस्वजनदुःखतः ॥८७॥
नानायुद्धसहस्रेषु सर्वे[1]ऽमी लब्धकीर्तयः । विजयार्धनगावासखगेन्द्रेणाप्यसाधिताः ॥८८॥
पवनस्यात्मजः ख्यातो यस्य वानरलक्षितम् । केतु दूरात् समालोक्य विद्रवन्ति[2] द्विषां गणाः[3] ॥८९॥
तस्याभिमुखतां प्राप्य दैवयोगात् सुरा अपि । [4]त्यजन्ति विजये बुद्धिं स हि कोऽपि महाशयः ॥९०॥
तस्मादुत्तिष्ठ ननु स्थानमलङ्काराख्यमाश्रिताः । भामण्डलस्वसुर्वार्तां स्वस्थीभूता लभामहे ॥९१॥
तद्धि न पुरमायातमन्वयेन रसातले । तत्र दुर्गे स्थिताः कार्यं चिन्तयामो यथोचितम् ॥९२॥
इत्युक्ते चतुरैरश्वैश्चतुर्भिर्युक्तमुत्तमम् । भास्वरं रथमारुह्य प्रस्थितौ रघुनन्दनौ ॥९३॥
शुशुभाते तदात्यन्तं न तौ पुरुषसत्तमौ । सीतया रहितौ [5]सम्यग्दृष्ट्या बोधशमाविव ॥९४॥
चतुर्विधमहासैन्यसागरेण समावृतः । त्वरावानग्रतस्तस्थौ चन्द्रोदरनृपात्मजः ॥९५॥
तावच्चन्द्रनखासूनुर्नगरद्वारनिःसृतम् । कृतयुद्धं पराजित्य प्रविष्टः परमं पुरम् ॥९६॥
तत्र देवनिवासाभे पुरे रत्नसमुज्ज्वले[6] । यथोचितं स्थितं चक्रुः खरदूषणवेश्मनि ॥९७॥
तस्मिन्नमरसद्माभे भवने रघुनन्दनः । सीताया गमनाल्लेभे धृतिं तु न मनागपि ॥९८॥
अरण्यमपि रम्यत्वं याति कान्तासमागमे । कान्तावियोगदग्धस्य सर्वं विन्ध्यवनायते ॥९९॥

विद्याधरो के राजा खरदूषणके मारे जाने पर दूसरी बात हो गई है और जिसका फल अच्छा नहीं होगा ऐसा आप समझ लीजिए ॥८५॥ किष्किन्धापुरी का राजा सुग्रीव, इन्द्रजित्, भानुकर्ण, त्रिशिरा, क्षोभण, भीम, क्रूरकर्मा और महोदर आदि बड़े-बडे योद्धा जो नाना विद्याओंके धारक तथा महा तेजस्वी है इस समय अपने मित्र-खरदूषणके कुटुम्बी जनोंके दुःखसे क्षोभको प्राप्त होगे ॥८६-८७॥ इन सब योद्धाओंने नाना प्रकारके हजारो युद्धोमे सुयश प्राप्त किया है तथा विजयार्ध पर्वत पर रहनेवाला विद्याधरोका राजा भी इन्हे वश नही कर सकता ॥८८॥ पवनञ्जयका पुत्र हनुमान् अतिशय प्रसिद्ध है जिसकी वानर चिह्नित ध्वजा देखकर शत्रुओंके झुण्ड दूरसे ही भाग जाते है ॥८९॥ दैव योगसे देव भी उसका सामना कर विजयकी अभिलाषा छोड देते है यथार्थमे वह कोई अद्भुत महा यशस्वी पुरुष है ॥९०॥ इसलिए उठिये अलकारपुर नामक सुरक्षित स्थानका आश्रय ले वही निश्चिन्ततासे रहकर भामण्डलकी बहिनका समाचार प्राप्त करे ॥९१॥ वह अलकारपुर पृथिवीके नीचे है और हम लोगोकी वंश परम्परासे चला आया है उसी दुर्गम स्थानमे स्थित रहकर हम लोग यथा योग्य कार्यकी चिन्ता करेंगे ॥९२॥ इस प्रकार कहने पर चार चतुर घोड़ोंसे जुते हुए उत्तम देदीप्यमान रथ पर सवार होकर राम-लक्ष्मणने प्रस्थान किया ॥९३॥ जिस प्रकार सम्यग्दर्शनसे रहित ज्ञान और चारित्र सुशोभित नही होते हैं उसी प्रकार उस समय सीतासे रहित राम और लक्ष्मण सुशोभित नही हो रहे थे ॥९४॥ चार प्रकारकी महासेना रूपी सागरसे घिरा विराधित शीघ्रता करता हुआ उनके आगे स्थित था ॥९५॥ जब तक वह पहुँचा तब तक चन्द्रनखाका पुत्र नगरके द्वारसे निकल कर युद्ध करने लगा सो उसे पराजित कर वह परम सुन्दर नगरके भीतर प्रविष्ट हुआ ॥९६॥ वह नगर देवोंके निवास स्थानके समान रत्नोसे देदीप्यमान था। वहाँ जाकर विराधित तथा राम लक्ष्मण खरदूषणके भवनमे यथायोग्य निवास करने लगे ॥९७॥ यद्यपि वह भवन देवभवनके समान था तो भी राम सीताके चले जानेसे वहाँ रञ्च मात्र भी धैर्यको प्राप्त नही होते थे— वहाँ उन्हें सीताके बिना बिलकुल भी अच्छा नहीं लगता था ॥९८॥ स्त्रीके समागममे वन भी

१ सर्वे सम्प्राप्तकीर्तयः म० । २ विद्रवति म० । ३. गणः म० । ४. त्यजति विषये म० । ५. सम्यग्दृष्टिर्बोध-म० । ६. समाकुले म० ।

षट्चत्वारिंशत्तमं पर्व

तत्रासावुत्तमे तुङ्गे विमानशिखरे स्थितः । स्वैरं स्वैरं व्रजन् रेजे रावणो दिवि भानुवत् ॥१॥
सीतायाः शोकतप्ताया म्लानं वीक्ष्यास्यपङ्कजम् । रतिरागविमूढात्मा दध्यौ किमपि रावणः ॥२॥
[1]अश्रुदुर्दिनवक्त्रायाः सीतायाः कृपणं परम् । नानाप्रियशतान्यूचे पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ॥३॥
मारस्यात्यन्तमृदुभिर्हतोऽहं कुसुमेषुभिः । म्रिये यदि ततः साध्वि नरहत्या भवेत्तव ॥४॥
वक्त्रारविन्दमेतत्ते सकोपमपि सुन्दरि । राजते चारुभावानां सर्वथैव हि चारुता ॥५॥
प्रसीद देवि भृत्यास्ये सकृच्चक्षुर्विधीयताम् । त्वच्चक्षुःकान्तितोयेन स्नातस्यापैतु मे श्रमः ॥६॥
यदि दृष्टिप्रसादं मे न करोषि वरानने । एतेन पादपद्मेन सकृत् ताडय मस्तके ॥७॥
भवत्या रमणोद्याने किं न जातोऽस्म्यशोककः । सुलभा यस्य ते श्लाघ्या पादपद्मतलाहतिः ॥८॥
कृशोदरि गवाक्षेण विमानशिखरस्थिता । दिशः पश्य प्रयातोऽस्मि वियदूर्ध्वं रवेरपि ॥९॥
कुलपर्वतसंयुक्तां[2] समेरुं सहसागराम्[3] । पश्य क्षोणीमिमां देवि शिल्पिनेव विनिर्मिताम्[4] ॥१०॥
एवमुक्ता सती सीता पराचीनत्थवस्थिता । अन्तरे तृ[5]णमाधाय जगादारुचिताक्षरम् ॥११॥
[6]अवसर्प ममाङ्गानि मा स्पृश पुरुषाधम । निन्द्याक्षरामिमां वाणीमीदृशीं भाषसे कथम् ॥१२॥

अथानन्तर विमानके ऊँचे शिखर पर बैठा इच्छानुसार गमन करता हुआ रावण आकाशमे सूर्यके समान सुशोभित हो रहा था ॥१॥ रति सम्बन्धी रागसे जिसकी आत्मा विमूढ हो रही थी ऐसा रावण शोक-सतप्त सीताके मुरझाये हुए मुख-कमलका ध्यान कर रहा था—उसी ओर देख रहा था ॥२॥ जिसके मुखसे निरन्तर अश्रुओंकी वर्षा हो रही थी ऐसी सीताके आगे-पीछे तथा बगलमे खडा होकर रावण बडी दीनताके साथ नाना प्रकारके सैकड़ो प्रिय वचन बोलता था ॥३॥ वह कहता था कि मै कामदेवके अतिशय कोमल पुष्पमयी बाणोसे घायल होकर यदि मर जाऊँगा तो हे साध्वि ! तुझे नरहत्या लगेगी ॥४॥ हे सुन्दरि ! तेरा यह मुखारविन्द क्रोध सहित होने पर भी सुशोभित हो रहा है सो ठीक ही है क्योंकि जो सुन्दर हैं उनमे सभी प्रकारसे सुन्दरता रहती है ॥५॥ हे देवि ! प्रसन्न होओ और इस दासके मुख पर एक बार चक्षु डालो । तुम्हारे चक्षुकी कान्ति रूपी जलसे नहाने पर मेरा सब श्रम दूर हो जायगा ॥६॥ हे सुमुखि ! यदि दृष्टिका प्रसाद नही करती हो—आँख उठाकर मेरी ओर नहीं देखती हो तो इस चरण-कमलसे ही एक बार मेरे मस्तक पर आघात कर दो ॥७॥ मै तुम्हारे मनोहर उद्यानमे अशोक वृक्ष क्यो नहीं हो गया ? क्योकि वहाँ तुम्हारे इस चरण-कमलका प्रशंसनीय तल प्रहार सुलभ रहता ॥८॥ हे कृशोदरि ! विमानकी छत पर बैठकर झरोखेसे जरा दिशाओंको तो देखो मै सूर्यसे भी कितने ऊपर आकाशमे चल रहा हूँ ॥९॥ हे देवि ! कुलाचलो, मेरु पर्वत और सागरसे सहित इस पृथिवीको देखो । यह ऐसी जान पडती है मानो किसी कारीगरके द्वारा ही बनाई गई हो ॥१०॥ इस प्रकार कहने पर पीठ देकर बैठी हुई सीता बीचमे तृण रखकर निम्नाङ्कित अप्रिय वचन बोली ॥११॥

उसने कहा कि हे नीच पुरुष ! हट, मेरे अङ्ग मत छू । तू इस प्रकारकी यह निन्दनीय वाणी

---

१ अस्तु दुर्दिनवक्त्रायाः म० । २ संयुक्त म० । ३ सहसागरम् म० । ४ विनिर्मितम् म० । ५. व्रण- म० । ६ अपसार्य म० ।

पापात्मकमनायुष्यमस्वर्ग्यमयशस्करम् । असदीहितमेतत्ते विरुद्ध भयकारि च ॥१३॥
परदारान् समाक्राड्क्षन् महादु खमवाप्स्यसि । पश्चात्तापपरीताङ्गो भस्मच्छन्नानलोपमम् ॥१४॥
महता मोहपकेन तवोपचितचेतस । मुधा धर्मोपदेशोऽयमन्धे नृत्यविलासवत् ॥१५॥
इच्छामात्रादपि क्षुद्र बद्ध्वा पापमनुत्तमम् । नरके वासमासाद्य कष्ट वर्त्तनमाप्स्यसि ॥१६॥
रूक्षाक्षराभिधानाभि पर वाणीभिरित्यपि । मदनाहतचित्तस्य प्रेमास्य न निवर्त्तते (न्यवर्त्तत) ॥१७॥
तत्र दूषणसग्रामे निवृत्ते परमप्रिया । [1]शुकहस्तप्रहस्ताद्याः सोद्वेगा स्वाम्यदर्शनात् ॥१८॥
चलत्केतुमहाखण्ड कुमारार्कसमप्रभम् । विमान वीक्ष्य दाशास्य मुदितास्त ढुढौकिरे ॥१९॥
प्रदानैर्दिव्यवस्तूना सम्मानैश्चाटुभि [2] परै. । नाभिश्च भृत्यसम्पद्भिरग्राह्या जनकात्मजा ॥२०॥
[3]शक्नोति सुखधी पातु क शिखामाशुशुक्षणे । को वा नागवधूमूर्ध्नि स्पृशेद् रत्नशलाकिकाम् ॥२१॥
कृत्वा करपुट मूर्ध्नि दशाङ्गुलिसमाहितम् । ननाम रावण सीता निन्दितोऽपि तृणाग्रवत् ॥२२॥
महेन्द्रसदृशैस्तावद्विभवै सचिवैर्भृशम् । नानादिग्भ्य समायातैरावृतो रक्षसा पति ॥२३॥
जय वर्धस्व नन्देति शब्दै श्रवणहारिभि । उपगीत परिप्राप्तो लङ्कामाखण्डलोपम ॥२४॥
अचिन्तयच्च रामस्त्री सोऽयं विद्याधराधिप । यत्राचरत्यमर्यादा तत्र कि शरण भवेत् ॥२५॥
यावत्प्राप्नोमि नो वार्ता भर्तु' कुशलवर्तिन' । तावदाहारकार्यस्य प्रत्याख्यानमिद मम ॥२६॥

क्यों बोल रहा है ? ॥१२॥ तेरी यह दुष्ट चेष्टा पाप रूप है, आयुको कम करनेवाली है, नरकका कारण है अपकीर्तिको करनेवाली है, विरुद्ध है तथा भय उत्पन्न करनेवाली है ॥१३॥ परस्त्रीकी इच्छा करता हुआ तू महादु खको प्राप्त होगा तथा भस्मसे आच्छादित अग्निके समान पश्चात्ताप-से तेरा समस्त शरीर व्याप्त होगा ॥१४॥ अथवा तेरा चित्त पापरूपी महापङ्कसे व्याप्त है अत तुझे धर्मका उपदेश देना उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार कि अन्धेके सामने नृत्यके हाव-भाव दिखाना व्यर्थ होता है ॥१५॥ अरे नीच ! परस्त्रीकी इच्छा मात्रसे तू बहुत भारी पाप बाँधकर नरकमे जायगा और वहाँ कष्टकारी अवस्थाको प्राप्त होगा ॥१६॥ इस प्रकार यद्यपि सीताने कठोर अक्षरोसे भरी वाणीके द्वारा रावणका तिरस्कार किया तो भी कामसे आहत चित्त होनेके कारण उसका प्रेम दूर नही हुआ ॥१७॥

वहाँ खरदूषणका युद्ध समाप्त होनेपर भी स्वामी रावणका दर्शन न होनेसे परम स्नेहके भरे शुक हस्त प्रहस्त आदि मन्त्री परम उद्वेगको प्राप्त हो रहे थे सो जब उन्होने हिलती हुई पताकासे सुशोभित प्रात कालीन सूर्यके समान रावणका बिमान आता देखा तब वे हर्षित होकर उसके पास गये ॥१८-१९॥ उन्होने दिव्य वस्तुओकी भेंट देकर सम्मान प्रदर्शित कर तथा अति-शय प्रिय वचन कहकर रावणकी अगवानी की तो भी भृत्योकी उन सम्पदाओसे सीता वशीभूत नहीं हुई ॥२०॥ ससारमे ऐसा कौन चतुर मनुष्य है जो अग्निशिखाका पान कर सके अथवा नागिनके शिरपर स्थित रत्नमयी शलाकाका स्पर्श कर सके ॥२१॥ यद्यपि सीताने तृणके अग्रभाग-के समान रावणका तिरस्कार किया था तो भी वह दशो अङ्गुलियोसे सहित अञ्जलि शिरपर धारण-कर उसे बार-बार नमस्कार करता था ॥२२॥ नाना दिशाओसे आये हुए तथा इन्द्रके समान-पूर्ण वैभवको धारण करनेवाले मन्त्रियोने जिसे घेर लिया था और 'जय हो, बढ़ते रहो, समृद्धि-मान् होओ' इत्यादि कर्ण प्रिय वचनोसे जिसकी स्तुति हो रही थी ऐसे इन्द्रतुल्य रावणने लंकामे प्रवेश किया ॥२३-२४॥ उस समय सीताने विचार किया कि यह विद्याधरोंका राजा ही जहाँ अमर्यादाका आचरण कर रहा है वहाँ दूसरा कौन शरण हो सकता है ? ॥२५॥ फिर भी मेरा यह

१ शुकहस्ताद्याः सोद्वेगाः बभ्राम० म०, ब० । २. स्वाडुभि म० । ३ शक्नोतिसुखधीः म० ।

उदीचीन प्रतीचीन तत्रास्ति परमोज्ज्वलम् । गीर्वाणरमण ख्यातमुद्यान स्वर्गसन्निभम् ॥२७॥
तत्र [1]कल्पतरुच्छायमहापादपसकुले । स्थापयित्वा रह सीता विवेश स्वनिकेतनम् ॥२८॥
तावदद्दूषणपञ्चत्वादग्रतोऽस्य महामुचम् । अष्टादश सहस्राणि विप्रलेपुर्महास्वरम् ॥२९॥
भ्रातुश्चन्द्रनखा पादौ समुत्योन्मुक्तकण्ठकम् । अभाग्या हा हतास्मीति विललापास्तदुर्दिनम् ॥३०॥
रमणात्मजपञ्चत्ववह्निनिर्दग्धमानसाम् । विलपन्तीमिमा भूरि जगादैव सहोदर ॥३१॥
अल वत्से रुदित्वा ते प्रसिद्ध कि न विद्यते । जगत्प्राग्विहित सर्व प्राप्नोत्यत्र न सशय ॥३२॥
अन्यथा क्व महीचारा जना क्षुद्रकशक्तय । क्वायमेवविधो भर्ता भवत्या व्योमगोचर ॥३३॥
मयेदमर्जित पूर्व [2]व्यक्त न्यायागत फलम् । इति ज्ञात्वा शुच कर्तु कस्य मर्त्यस्य युज्यते ॥३४॥
नाकाले म्रियते कश्चिद्वज्रेणापि समाहत । मृत्युकालेऽमृत जन्तोर्विषता प्रतिपद्यते ॥३५॥
येन व्यापादितो वत्से समरे खरदूषण । अन्येषा वाहितेच्छाना मृत्युरेष भवाम्यहम् ॥३६॥
स्वसारमेवमाश्वास्य दत्तादेशो जिनार्चने । दह्यमानमना वासभवन रावणोऽविशत् ॥३७॥
तत्रादरनिराकाक्ष तल्पविक्षिप्तविग्रहम् । सोन्मादकेशरिच्छाय नि श्वसन्तमिवोरगम् ॥३८॥
भर्तार दु खयुक्तेव भूषणादरवर्जिता । महादरमुवाचैवमुपसृत्य [3]मयात्मजा ॥३९॥
किं नाथाकुलता धत्से खरदूषणमृत्युना । न विषादोऽस्ति शूराणामापत्सु महतीष्वपि ॥४०॥

नियम है कि जब तक भर्ताका कुशल समाचार नही प्राप्त कर लेती हूँ तब तक मेरे आहार कार्यका त्याग है ॥२६॥

तदनन्तर पश्चिमोत्तर दिशामे विद्यमान अतिशय उज्ज्वल, स्वर्गके समान सुन्दर देवारण्य नामक उद्यान है सो कल्पवृक्षके समान कान्तिवाले बडे-बडे वृक्षोंसे व्याप्त उस उद्यानमे एक जगह सीताको ठहराकर रावण अपने महलमे चला गया ॥२७-२८॥ इतनेमे ही खरदूषणके मरणका समाचार पाकर रावणकी अठारह हजार रानियॉ बहुत भारी शोकके कारण महाशब्द करती हुई रावणके सामने विलाप करने लगी ॥२९॥ चन्द्रनखा भाईके चरणोंमे जाकर तथा गला फाड-फाडकर 'हाय-हाय मैं अभागिनी मारी गई' इस तरह अश्रुवर्षासे दुर्दिनको पराजित करती हुई विलाप करने लगी ॥३०॥ पति और पुत्रकी मृत्युरूपी अग्निसे जिसका मन जल रहा था ऐसी अत्यधिक विलाप करती हुई चन्द्रनखासे भाई—रावणने इस प्रकार कहा ॥३१॥ कि हे वत्से ! तेरा रोना व्यर्थ है । यह क्या प्रसिद्ध नहीं है कि ससारके प्राणी पूर्वभवमे जो कुछ करते है उस सबका फल अवश्य ही प्राप्त होता है इसमें सशय नहीं है ॥३२॥ यदि ऐसा नही है तो क्षुद्रशक्तिके धारक भूमिगोचरी मनुष्य कहाँ और तुम्हारा ऐसा आकाशगामी भर्ता कहाँ ? ॥३३॥ 'मैने यह सब पूर्वमे सञ्चित किया था सो उसीका यह न्यायागत फल प्राप्त हुआ है' ऐसा जानकर किसी मनुष्यको शोक करना उचित नहीं है ॥३४॥ जब तक मृत्यु का समय नहीं आता है तब तक वज्रसे आहत होने पर भी कोई नहीं मरता है और जब मृत्युका समय आ पहुँचता है तब अमृत भी जीवके लिए विष हो जाता है ॥३५॥ हे वत्से ! जिसने युद्धमे खरदूषणको मारा है उसके साथ अन्य सब शत्रुओंके लिए मै मृत्युस्वरूप हूँ अर्थात् मै उन सबको मारूँगा ॥३६॥ इस प्रकार बहिनको आश्वासन तथा जिनेन्द्र देवकी अर्चाका उपदेश देकर जिसका मन जल रहा था ऐसा रावण निवासगृहमे चला गया ॥३७॥ वहाँ जाकर रावण आदरकी प्रतीक्षा किये बिना ही शय्या पर जा पड़ा । उस समय वह उन्मत्तसिहके समान अथवा सॉस भरते हुए सर्पके समान जान पड़ता था ॥३८॥ भर्ताको ऐसा देख, दु खयुक्त की तरह आभूषणोंके आदरसे रहित मन्दोदरी बड़े आदरसे उसके पास जाकर इस प्रकार बोली ॥३९॥ कि हे नाथ ! क्या खरदूषणकी मृत्युसे आकुलताको धारण कर रहे हो ? परन्तु यह ठीक नही है क्योंकि शूरवीरोंको बड़ी-बड़ी आप-

१. तरुतलच्छाये महीपादप- म० । २ सर्वं म० । ३ मन्दोदरी ।

पुरानेकत्र सग्रामे सुहृदस्ते क्षय गता । न च शोचिता जातु दूषण किन्तु शोचसि ॥४१॥
आसन्महेन्द्रसंग्रामे श्रीमालिप्रमुखा नृपा । बान्धवास्त क्षय याता शोचितास्ते न जातुचित ॥४२॥
अभूतपूर्वशोकस्त्वमासीदपि महापदि । शोक कि वहस्यद्यानी जिज्ञासामि विभो वद ॥४३॥
[1]ततो महोदर स्वैर निश्वस्योवाच रावण । तदर किञ्चित्परित्यज्य धारितो दारिताक्षरम् ॥४४॥
शृणु सुन्दरि सद्भावमेक ते कथयाम्यहम् । स्वामिन्यसि ममासूना सर्वदा कृतवाञ्छिता ॥४५॥
यदि वाञ्छसि जीवन्त मा ततो देवि नार्हसि । कोप कर्तुं ननु प्राणा मूल सर्वस्य वस्तुन ॥४६॥
ततस्तथैवमित्युक्ते शपथैर्विनियम्य ताम् । विलक्ष इव किञ्चिन्म रावण समभाषत ॥४७॥
यदि सा वेधस सृष्टिरपूर्वा[3] दु खवर्णना । सीता पति न मा वष्टि ततो मे नास्ति जीवितम् ॥४८॥
लावण्य यौवन रूप माधुर्य चारुचेष्टितम् । प्राप्य ता सुन्दरीमेका[4] कृतार्थत्वमुपागतम् ॥४९॥
ततो मन्दोदरी कष्टा ज्ञात्वा तस्य दशामिमाम् । विहसन्ती जगादैव विस्फुरद्दन्तचन्द्रिका ॥५०॥
इद नाथ महाश्चर्य वरो यत् कुरुतेऽर्थनम् । अपुण्या साबला नून या त्वा नार्थयते स्वयम् ॥५१॥
अथवा निखिले लोके सैवैका परमोदया । या त्वया मानकूटेन याच्यते परमापदा[5] ॥५२॥
केयूररत्नजटिलैरिमै करिकरोपमै । आलिङ्ग्य बाहुभि कस्माद् बलात् कामयसे न ताम् ॥५३॥
सोऽवोचद्देवि विज्ञाप्यमस्त्यत्र शृणु कारणम् । प्रसभ येन गृह्णामि न ता सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥५४॥

स्त्रियोमे भी विषाद नही होता ॥४०॥ पहले अनेक सग्रामोमे तुम्हारे मित्र क्षयको प्राप्त हुए हैं उन सबका तुमने शोक नही किया किन्तु आज खरदूषणके प्रति शोक कर रहे हो ? ॥४१॥ राजा इन्द्रके संग्राममे श्रीमाली आदि अनेक राजा जो तुम्हारे बन्धुजन थे क्षयको प्राप्त हुए थे पर उन सबका तुमने कभी शोक नही किया ॥४२॥ पहले बडी-बडी आपत्तिमे रहने पर भी तुम्हे किसीका शोक नहीं हुआ पर इस समय क्यो शोकको धारण करते हो यह मै जानना चाहती हूँ सो हे स्वामिन् इसका कारण बतलाइये ॥४३॥

तदनन्तर महान् आदरसे युक्त रावण साँस लेकर तथा कुछ शय्या छोड़कर कहने लगा। उस समय उसके अक्षर कुछ तो मुखके भीतर रह जाते थे और कुछ बाहर प्रकट होते थे ॥४४॥ उसने कहा कि हे सुन्दरि ! सुनो एक सद्भावकी बात तुमसे कहता हूँ तुम मेरे प्राणोकी स्वामिनी हो और सदा मैने तुम्हें चाहा है ॥४५॥ यदि मुझे जीवित रहने देना चाहती हो तो हे देवि ! क्रोध करना योग्य नही है, क्योकि प्राण ही तो सब वस्तुओके मूल कारण है ॥४६॥ तदनन्तर 'ऐसा ही है' इस प्रकार मन्दोदरीके कहने पर उसे अनेक प्रकारकी शपथोसे नियममे लाकर कुछ कुछ लज्जित होते हुए की तरह रावण कहने लगा ॥४७॥ कि जिसका वर्णन करना कठिन है ऐसी विधाता की अपूर्व सृष्टि स्वरूप वह सीता यदि मुझे पति रूपसे नहीं चाहती है तो मेरा जीवन नही रहेगा ॥४८॥ लावण्य, यौवन, रूप, माधुर्य और सुन्दर चेष्टा सभी उस एक सुन्दरीको पाकर कृतकृत्यताको प्राप्त हुए हैं ॥४९॥

तदनन्तर रावणकी इस कष्टकर दशाको जानकर हँसती तथा दाँतोकी कान्तिरूपी चाँदनीको फैलाती हुई मन्दोदरी इस प्रकार बोली कि हे नाथ ! यह बडा आश्चर्य है कि वर याचना कर रहा है। जान पड़ता है कि वह स्त्री पुण्य हीन है जो स्वयं आपसे प्रार्थना नहीं कर रही है ॥५०-५१॥ अथवा समस्त ससारमे वही एक परम अभ्युदयको धारण करनेवाली है। जिसकी कि तुम्हारे जैसे अभिमानी पुरुष बड़ी दीनतासे याचना करते हैं ॥५२॥ अथवा बाजूबन्दके रत्नोसे जटिल तथा हाथीकी सूँडकी उपमा धारण करनेवाली इन भुजाओसे बलपूर्वक आलिङ्गन कर क्यो नही उसे चाह लेते हो ? ॥५३॥ इसके उत्तरसे रावणने कहा कि हे देवि !

---

१ तत सहोदरः म० । २ धारिता दारितोक्षरम् (?) । ३. -रसर्वा म० । ४ -मेता ख० । ५ परमा यदा ख० ।

आसीदनन्तवीर्यस्य मूले भगवतो मया । आत्तमेकं व्रतं साक्षाद्देवि निर्ग्रन्थसंसदि ।।५५।।
तेन देवेन्द्रवन्द्येन व्याख्यातमिदमीदृशम् । तथा निवृत्तिरेकापि ददाति परमं फलम् ।।५६।।
जन्तूनां दुःखभूयिष्ठभवसन्ततिसारिणाम् । पापान्निवृत्तिरल्पापि संसारोत्तारकारणम् ।।५७।।
येषां विरतिरेकापि कुतश्चिन्नोपजायते[1] । नरास्ते जर्जरीभूतकलशा इव निर्गुणाः ।।५८।।
मनुष्याणां पशूनां च तेषां यत् किञ्चिदन्तरम् । येषां न विद्यते कश्चिद्विरामो मोक्षकारणम् ।।५९।।
शक्त्या मुञ्चत पापानि गृह्णीत सुकृतं धनम् । जात्यन्धा इव संसारे न भ्राम्यथ यतश्चिरम् ।।६०।।
एवं भगवतो वक्त्रकमलान्निर्गतं वचः । मधु पीत्वा नराः केचिद्गगनाम्बरतां[3] गताः ।।६१।।
सागारधर्मंमपरे श्रिता विकलशक्तयः । कर्मानुभावतः सर्वे न भवन्ति समक्रियाः ।।६२।।
एकेन साधुना तत्र प्रोक्तोऽहं सौम्यचेतसा । दशानन गृहाणैकां निवृत्तिमिति शक्तितः ।।६३।।
धर्मरत्नोज्ज्वलद्वीपं प्राप्तः शून्यमनस्करः । कथं व्रजसि विज्ञानी गुणसंग्रहकोविदः ।।६४।।
इत्युक्तेन मया देवि प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । देवासुरमहर्षीणां प्रत्यक्षमिति भाषितम् ।।६५।।
यावन्नेच्छति मां नारी परकीया मनस्विनी । प्रसभं सा मया तावन्नाभिगम्यापि दुःखिना ।।६६।।
एतच्चाप्यभिमानेन गृहीतं[2] दयिते व्रतम् । का मां किल समालोक्य साध्वी मानं करिष्यति ।।६७।।
अतो न तां स्वयं देवि गृह्णामि सुमनोहराम् । सकृज्जल्पन्ति राजानः प्रत्यवायोऽन्यथा महान् ।।६८।।
यावन्मुञ्चामि नो प्राणान् तावत् सीता प्रसाद्यताम् । भस्मभावङ्गते गेहे कूपखानश्रमो वृथा ।।६९।।

मै जिस कारण उस सर्वाङ्ग सुन्दरीको जबर्दस्ती ग्रहण नही करता हूँ इसमे निवेदन करने योग्य कारण है उसे सुनो ॥५४॥ हे देवि! मैंने अनन्तवीर्य भगवान्‌के समीप निर्ग्रन्थ मुनियोंकी सभामें साक्षात् एक व्रत लिया था ॥५५॥ इन्द्रोंके द्वारा वन्दनीय अनन्तवीर्य भगवान्‌ने एक बार ऐसा व्याख्यान किया कि एक वस्तुका त्याग भी परम फल प्रदान करता है ॥५६॥ दु:खोंसे भरी भव-परम्परामें भ्रमण करनेवाले प्राणियोंके पापसे थोडी भी निवृत्ति हो जावे तो वह उनके संसारसे पार होनेका कारण हो जाती है ॥५७॥ जिन मनुष्योंके किसी पदार्थके त्यागरूप एक भी नियम नहीं है वे फूटे घटके समान निर्गुण हैं ॥५८॥ उन मनुष्यो और पशुओंमे कुछ भी अन्तर नही है जिनके कि मोक्षका कारणभूत एक भी नियम नहीं है ॥५९॥ हे भव्य जीवो! शक्तिके अनुसार पाप छोड़ो और पुण्यरूपी धनका संचय करो जिससे जन्मान्ध मनुष्योंके समान चिर काल तक संसारमे परिभ्रमण न करना पड़े ॥६०॥ इस प्रकार भगवान्‌के मुख कमलसे निकले हुए वचनरूपी मकरन्दको पीकर कितने ही मनुष्य निर्ग्रन्थ अवस्थाको प्राप्त हुए और हीनशक्तिको धारण करनेवाले कितने ही लोग गृहस्थधर्मको प्राप्त हुए सो ठीक ही है क्योंकि कर्मोदयके कारण सब एक समान क्रियाके धारक नहीं होते ॥६१–६२॥ उस समय सौम्य चित्तके धारक एक मुनिराजने मुझसे कहा कि हे दशानन! शक्तिके अनुसार तुम भी एक नियम ग्रहण करो ॥६३॥ तुम धर्मरूपी उज्ज्वल रत्नद्वीपको प्राप्त हुए हो सो विज्ञानी तथा गुणोंके संग्रह करनेमें निपुण होकर भी खाली मन एवं खाली हाथ क्यों जाते हो ॥६४॥ इस प्रकार कहनेपर हे देवि! मैंने मुनिराजको प्रणामकर सुर असुर तथा मुनियोंके समक्ष इस तरह कहा कि जब तक मानवती परस्त्री मुझे स्वयं नहीं चाहेगी तब तक दुखी होनेपर भी मैं बलपूर्वक उसका सेवन नहीं करूँगा ॥६५–६६॥ हे प्रिये! मैंने यह व्रत भी इस अभिमान से ही लिया था कि मुझे देखकर कौन पतिव्रता मान करेगी? ॥६७॥ इसलिए हे देवि! मैं उस मनोहराङ्गीको स्वयं नहीं ग्रहण करता हूँ क्योंकि राजा एक बार ही कहते हैं अन्यथा बहुत भारी बाधा आ पड़ती है ॥६८॥ अत: जब तक मैं प्राण नहीं छोड़ता हूँ तब तक सीताको प्रसन्न करो

१. कुतश्चिरूप जायते म० । २ गृहीत म० । ३ दिगम्बरताम् ।

ततस्त तादृश ज्ञात्वा सञ्जातकरुणोदया । बभाण रमणी नाथ स्वल्पमेतत् समीहितम् ॥७०॥
तत किञ्चिन्मधुस्वादविलासवशवर्तिनी । सा देवरमणोद्यान जगाम कमलेक्षणा ॥७१॥
तदाज्ञा प्राप्य सम्पद्भिरष्टादशमहौजसाम् । दशाननवरस्त्रीणां सहस्राण्यनुवव्रजु ॥७२॥
मन्दोदरी क्रमात्प्राप्य सीतामेवमभाषत । समस्तनयविज्ञानकृतमण्डनमानसा ॥७३॥
अयि सुन्दरि हर्षस्य स्थाने कस्माद्विषीदसि । त्रैलोक्येऽपि हि सा धन्या पतिर्यस्या दशानन ॥७४॥
सर्वविद्याधराधीश पराजितसुराधिपम् । त्रैलोक्यसुन्दर कस्मात्पति नेच्छसि रावणम् ॥७५॥
नि.स्व क्ष्मागोचर कोऽपि तस्यार्थे दु खितासि किम् ।
सर्वलोकवरिष्ठस्य स्वस्य सौख्य विधीयताम् ॥७६॥
आत्मार्थं कुर्वत कर्म सुमहासुखसाधनम् । दोषो न विद्यते कश्चित्सर्वं हि सुखकारणम् ॥७७॥
मयेति गदित वाक्य यदि न प्रतिपद्यते । ततो यद्भविता तत्ते शत्रुभि प्रतिपद्यताम् ॥७८॥
बलीयान् रावण स्वामी प्रतिपक्षविवर्जित. । कामेन पीडित. कोप गच्छेत्प्रार्थनभञ्जनात् ॥७९॥
यौ रामलक्ष्मणौ नाम तव कावपि सम्मतौ । तयोरपि हि सन्देह क्रुद्धे सति दशानने ॥८०॥
प्रतिपद्यस्व तत् क्षिप्र विद्याधरमहेश्वरम् । ऐश्वर्यं परम प्राप्ता[2] सौरी लीला समाश्रय ॥८१॥
इत्युक्ता बाष्पसम्भारगद्गदोद्गीर्णवर्णिका । जगाद जानकी जातजललोचनधारिणी ॥८२॥
वनिते सर्वमेतत्ते विरुद्ध वचन परम् । सतीनामीदृश वक्त्रात्कथ निर्गन्तुमर्हति ॥८३॥
इदमेव शरीर मे छिन्द भिन्द्राथवा हत । भर्तुं पुरुषमन्य तु न करोमि मनस्यपि ॥८४॥

क्योंकि घरके भस्म हो जाने पर कूप खुदानेका श्रम व्यर्थ है ॥६९॥

तदनन्तर रावणको वैसा जान जिसे दया उत्पन्न हुई थी ऐसी मन्दोदरी बोली कि हे नाथ ! यह तो बहुत छोटी बात है ॥७०॥ तत्पश्चात् कुछ मधुर विलासोंकी वशवर्तिनी कमललोचना मन्दोदरी देवारण्य नामक उद्यानमें गई ॥७१॥ उसकी आज्ञा पाकर रावणको अठारह हजार मानवती स्त्रियाँ भी वैभवके साथ उसके पीछे चलीं ॥७२॥ समस्त नय-नीतियोंके विज्ञानसे जिसका मन अलंकृत था ऐसी मन्दोदरीने क्रम-क्रमसे सीताके पास जाकर इस प्रकार कहा ॥७३॥ कि हे सुन्दरि ! हर्षके स्थानमें विषाद क्यों कर रही हो ? वह स्त्री तीनों लोकोंमें धन्य है जिसका कि रावण पति है ॥७४॥ जो समस्त विद्याधरोंका अधिपति है, जिसने इन्द्रको पराजित कर दिया है, तथा जो तीनों लोकोंमें अद्वितीय सुन्दर है ऐसे रावणको तुम पतिरूपसे क्यों नहीं चाहती हो ? ॥७५॥ तुम्हारा पति कोई निर्धन भूमिगोचरी मनुष्य है सो उसके लिए इतना दुखी क्यों हो ? सर्व लोकसे श्रेष्ठ अपने आपको सुखी करना चाहिए ॥७६॥ अपने लिए महासुखके साधनभूत कार्यके करनेवालेको कोई दोष नहीं है क्योंकि मनुष्यके सब प्रयत्न सुखके लिए ही होते हैं ॥७७॥ इस प्रकार मेरे द्वारा कहे हुए वचन यदि तुम स्वीकृत नहीं करती हो तो फिर जो दशा होगी वह तुम्हारे शत्रुओंको प्राप्त हो ॥७८॥ रावण अतिशय बलवान् तथा शत्रुसे रहित है प्रार्थना भङ्ग करने पर वह काम पीड़ित हो क्रोधको प्राप्त हो जायगा ॥७९॥ जो राम लक्ष्मण नामक कोई पुरुष तुझे इष्ट है सो रावणके कुपित होने पर उन दोनोंका भी सन्देह ही है ॥८०॥ इसलिए तुम शीघ्र ही विद्याधरोंके अधिपति रावणको स्वीकृत करो और परम ऐश्वर्यको प्राप्त हो देवो सम्बन्धि लीलाको धारण करो ॥८१॥

इस प्रकार कहने पर जिसके मुखसे वाष्पभारके कारण गद्गद वर्ण निकल रहे थे तथा जो अश्रुपूर्ण नेत्र धारण कर रही थी ऐसी सीता बोली कि हे वनिते ! तेरे ये सब वचन अत्यन्त विरुद्ध हैं। पतिव्रता स्त्रियोंके मुखसे ऐसे वचन नहीं निकल सकते हैं ? ॥८२-८३॥ मेरे इस

---

१. कोऽय । २ सुराणामिय सौरी ता देवसम्बन्धिनीम् ।

सनत्कुमाररूपोऽपि यदि वाखण्डलोपम । नरस्तथापि न भर्तुरन्य नेच्छामि सर्वथा ॥८५॥
युष्मान्ब्रवीमि सक्षेपाद्दारान् सर्वानिहागतान् । यथा ब्रूत तथा नैतत्करोमि कुरुतेप्सितम् ॥८६॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्त स्वयमेव दशाननः । सीता मदनतापार्तो [1]गङ्गावेणीमिव द्विप ॥८७॥
समीपीभूय चोवाच पर करुणया गिरा । किञ्चिद्विहसित कुर्वन्मुखचन्द्र महादर ॥८८॥
[2]मा यासीर्देवि सत्रास भक्तोऽह तव सुन्दरि । शृणु विज्ञाप्यमेकं मे प्रसीदावहिता भव ॥८९॥
वस्तुना केन हीनोऽह जगत्त्रितयवर्तिना । न मा वृणोषि यद्योग्यमात्मन पतिमुत्तमम् ॥९०॥
इत्युक्त्वा स्प्र[3]ष्टुकाम त सीतावोचत्ससम्भ्रमा । [4]अपसर्प ममाङ्गानि मा स्पृश पापमानस ॥९१॥
उवाच रावणो देवि त्यज कोपाभिमानताम् । प्रसीद दिव्यभोगाना शचीव स्वामिनी भव ॥९२॥
सीतोवाच कुशीलस्य विभवा केवल मलम् । जनस्य साधुशीलस्य दारिद्र्यमपि भूषणम् ॥९३।
चारुवशप्रसूताना जनाना [5]शीलहारत: । लोकद्वयविरोधेन शरण मरण वरम् ॥९४॥
परयोषित्कृताशस्य तवेद जीवित मुधा । शीलस्य पालन कुर्वन् यो जीवति स जीवति ॥९५॥
एव तिरस्कृतो माया कर्तुं प्रववृते द्रुतम् । नेशुर्देव्य परित्रस्ता सञ्जात सर्वमाकुलम् ॥९६॥
एतस्मिन्नन्तरे जाते भानुर्मायाभयादिव । सम किरणचक्रेण प्रविवेशास्तगह्वरम् ॥९७॥
प्रचण्डैर्विगलद्गण्डै करिभिर्घनबृंहितै । भीपिताप्यगमत्सीता शरण न दशाननम् ॥९८॥

शरीरको तुम लोग चाहे छेद डालो, भेद डालो अथवा नष्ट कर दो परन्तु अपने भर्ताके सिवाय अन्य पुरुषको मनमे भी नही ला सकती हूँ ॥८४॥ यद्यपि मनुष्य सनत्कुमारके समान रूपका धारक हो अथवा इन्द्रके तुल्य हो तो भी भर्ताके सिवाय अन्य पुरुषकी मैं किसी तरह इच्छा नही कर सकती ॥८५॥ मै यहाँ आई हुई तुम सब स्त्रियोंसे सक्षेपमे इतना ही कहती हूँ कि तुम लोग जो कह रही हो वह मै नहीं करूँगी तुम जो चाहो सो करो ॥८६॥

इसी बीचमे जिस प्रकार हाथी गङ्गाकी धाराके पास पहुँचता है उसी प्रकार कामके सतापसे दु खी रावण स्वयं सीताके पास पहुँचा ॥८७॥ और पासमे स्थित हो मुखरूपी चन्द्रमा-को कुछ कुछ हास्यसे युक्त करता हुआ बड़े आदरके साथ अत्यन्त दयनीय वाणीमे बोला कि हे देवि ! भयको प्राप्त मत होओ, हे सुन्दरि ! मै तुम्हारा भक्त हूँ, मेरी एक प्रार्थना सुनो, प्रसन्न होओ और सावधान बनो ॥८८–८९॥ बताओ कि मैं तीनो लोकोमे वर्तमान किस वस्तुसे हीन हूँ जिससे तुम मुझे अपने योग्य उत्तम पति स्वीकृत नहीं करती हो ॥९०॥ इतना कहकर रावणने स्पर्श करनेकी चेष्टा प्रकट की तब सीताने हड़बड़ा कर कहा कि पापी हृदय ! हट मेरे अङ्गोका स्पर्श मतकर ॥९१॥ इसके उत्तरमे रावणने कहा कि हे देवि ! क्रोध तथा अभिमान छोड़ो, प्रसन्न होओ और इन्द्राणीके समान दिव्य भोगोकी स्वामिनी बनो ॥९२॥ सीताने कहा कि कुशील मनुष्यकी सम्पदाएँ केवल मल है और सुशील मनुष्यकी दरिद्रता भी आभूषण है ॥९३॥ उत्तम कुलमे उत्पन्न हुए मनुष्योको शीलकी हानिकर दोनो लोकोके विरुद्ध कार्य करनेसे मरणकी शरणमे जाना ही अच्छा है ॥९४॥ तू परस्त्रीकी आशा रखता है अत. तेरा यह जीवन वृथा है। जो मनुष्य शीलकी रक्षा करता हुआ जीता है वास्तवमे वह जीता है ॥९५॥

इस प्रकार तिरस्कारको प्राप्त हुआ रावण शीघ्र ही माया करनेके लिए प्रवृत्त हुआ। सब देवियाँ भयभीत होकर भाग गईं और वहाँका सब कुछ आकुलतासे पूर्ण हो गया ॥९६॥ इसी बीचमे सूर्य, किरण समूहके साथ साथ अस्ताचलकी गुहामे प्रविष्ट हो गया सो मानो रावणकी मायाके भयसे ही प्रविष्ट हो गया था ॥९७॥ जो अत्यन्त क्रोधसे युक्त थे, जिनके गण्डस्थलसे मद चू रहा था तथा जो अत्यधिक गर्जना कर रहे थे ऐसे हाथियोसे डराये जानेपर भी सीता

---

१. गङ्गाप्रवाहम्। २. मायासीद्देवि म० । ३ प्रष्टुकाम् म० । ४. अपसार्य म० । ५ शीलहारितः म० ।

दंष्ट्राकरालदशनैर्व्याघ्रैर्दु सहनि.स्वनै । भीषितात्यगमत्सीता शरण न दशाननम् ॥९९॥
चलत्केसरसङ्घातैः सिंहैरुग्रनखाङ्कुशैः । भीषितात्यगमत्सीता शरण न दशाननम् ॥१००॥
ज्वलत्स्फुलिङ्गभीमाक्षैर्लसज्जिह्वैर्महोरगैः । भीषितात्यगमत्सीता शरण न दशाननम् ॥१०१॥
व्यात्ताननैः कृतोत्पातपतनैः क्रूरवानरैः । भीषितात्यगमत्सीता शरण न दशाननम् ॥१०२॥
तम पिण्डासितैस्तुङ्गैर्वेतालैः कृतहुङ्कृतैः । भीषितात्यगमत्सीता शरण न दशाननम् ॥१०३॥
एव नानाविधैरुग्रैरुपसर्गैः क्षणोद्गतैः । भीषितात्यगमत्सीता शरण न दशाननम् ॥१०४॥
तावच्च समतीताया विभावर्या भयादिव । जिनेन्द्रवेश्मसूत्तस्थौ शङ्खभेर्यादिनि स्वन ॥१०५॥
उद्घाटितकपाटानि द्वाराणि वरवेश्मनाम् । प्रभाते गतनिद्राणि लोचनानीव रेजिरे ॥१०६॥
सन्ध्यया रञ्जिता प्राची दिगत्यन्तमराजत । कुङ्कुमस्येव पङ्केन भानोरागच्छत कृता ॥१०७॥
नैश ध्वान्त समुत्सार्य कृत्वेन्दु विगतप्रभम् । उदयाय सहस्रांशु पङ्कजानि न्यबोधयत् ॥१०८॥
ततो विमलता प्राप्ते प्रभाते चलपक्षिणि[1] । विभीषणादय प्रापुर्दशास्य प्रियबान्धवा ॥१०९॥
खरदूषणशोकेन ते निर्वाक्यनताननाः । सवाष्पलोचना भूमौ समासीना यथोचितम् ॥११०॥
तावत्पटान्तरस्थाया रुदत्या शोकनिर्भरम् । शुश्राव योषित शब्द मनोभेद विभीषण ॥१११॥
जगाद व्याकुल किञ्चिदपूर्वेयमिहाङ्गना । का नाम करुण रौति स्वामिनेव वियोजिता ॥११२॥

रावणकी शरणमे नही गई ॥९८॥ जिनके दाँत दाढोसे अत्यन्त भयंकर दिखाई देते थे और जो दु सह शब्द कर रहे थे ऐसे व्याघ्रोके द्वारा डराये जानेपर सीता रावणकी शरणमे नही गई ॥९९॥ जिनकी गरदनके बाल हिल रहे थे तथा जिनके नखरूपी अकुश अत्यन्त तीक्ष्ण थे ऐसे सिंहोके द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावणकी शरणमे नही गई ॥१००॥ जिनके नेत्र देदीप्यमान तिलगो के समान भयंकर थे तथा जिनकी जिह्वाएँ लपलपा रही थी ऐसे बड़े-बडे साँपोके द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावणकी शरणमे नही गई ॥१०१॥ जिनके मुख खुले हुए थे, जो बार-बार ऊपरकी ओर उडान भरते थे तथा नीचेकी ओर गिरते थे ऐसे वानरोके द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावणकी शरणमे नही गई ॥१०२॥ जो अन्धकारके पिण्डके समान काले थे, ऊँचे थे, तथा हुंकार कर रहे थे ऐसे वेतालोके द्वारा डराये जानेपर भी सीता रावणके शरणमे नही गई ॥१०३॥ इस प्रकार क्षण-क्षण मे किये जानेवाले नानाप्रकारके भयंकर उपसर्गोके द्वारा डराये जानेपर सीता रावणकी शरणमे नहीं गई ॥१०४॥

तदनन्तर भयसे ही मानो रात्रि व्यतीत ही गई और जिन मन्दिरोमे शङ्ख भेरी आदिका शब्द होने लगा ॥१०५॥ प्रभात होते ही बड़े-बडे महलोके द्वार सम्बन्धी किवाड़ खुल गये सो उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो निद्रा-रहित नेत्र ही उन्होने खोले हो ॥१०६॥ सन्ध्यासे रँगी हुई पूर्व दिशा अत्यन्त सुशोभित हो रही थी और उससे ऐसी जान पडती थी मानो आनेवाले सूर्यकी अगवानीके लिए कुङ्कुमके पङ्कसे ही लिप्त की गई हो ॥१०७॥ रात्रि सम्बन्धी अन्धकारको नष्टकर तथा चन्द्रमाको निष्प्रभ बनाकर सूर्य उदित हुआ और कमलोको विकसित करने लगा ॥१०८॥ तदनन्तर जिसमे पक्षी उड़ रहे थे ऐसे प्रात कालकी निर्मलताको प्राप्त होनेपर विभीषण आदि प्रिय बान्धव रावणके समीप पहुँचे ॥१०९॥ खरदूषणके शोकसे जिसके मुख चुपचाप नीचेकी ओर झुक रहे थे तथा जिनके नेत्र अश्रुओसे युक्त थे ऐसे वे सब यथायोग्य भूमिपर बैठ गये ॥११०॥ उसी समय विभीषणने पटके भीतर स्थित शोकके भारसे रोती हुई स्त्रीका हृदय-विदारक शब्द सुना ॥१११॥ सुनकर व्याकुल होते हुए विभीषणने कहा कि यह यहाँ कौन अपूर्व स्त्री करुण शब्द कर रही है ऐसा जान पड़ता है मानो यह पतिके साथ वियोगको प्राप्त हुई

१. चलाः पक्षिणो यस्मिन्, तस्मिन् ।

शब्दोऽयं शोकसम्भूतमस्या कम्पं समुत्थणम् । निवेदयति देहस्य दुःखसम्भारवाहिनः ॥११३॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य सीता तारतरस्वनम् । रुरोद सज्जनस्याग्रे नूनं शोकः प्रवर्द्धते ॥११४॥
जगौ च बाष्पपूर्णास्याप्रस्खलन्निर्गताक्षरम्[1] । इह को मे देव बन्धुस्त्वं यत्पृच्छसि वत्सल ॥११५॥
सुता जनकराजस्य स्वसा भामण्डलस्य च । काकुत्स्थस्याहकं पत्नी सीता दशरथस्नुषा ॥११६॥
वार्तान्वेषी गतो यावद्भर्ता मे भ्रातुराहवे । रन्ध्रेऽह तावदेतेन हृता कुत्सितचेतसा ॥११७॥
यावन्न मुञ्चति प्राणान् रामो विरहितो मया । भ्रातरस्मै द्रुतं तावन्नीत्वा मामर्पयोदितः ॥११८॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य क्रुद्धचेता विभीषणः । जगाद विनयं बिभ्रद् भ्रातरं गुरुवत्सलः ॥११९॥
आशीविषाग्निभूतेयं मोहाद् भ्रातः कुतस्त्वया । परनारी समानीता सर्वथा भयदायिनी ॥१२०॥
बालबुद्धिरपि स्वामिन् विज्ञाप्य श्रूयतां मम । दत्तो हि मम देवेन प्रसादो वचनं प्रति ॥१२१॥
भवत्कीर्तिलताजालैर्जटिलं वलयं दिशाम् । मा धाक्षीदयशोदावः[2] प्रसीद स्थितिकोविद ॥१२२॥
परदाराभिलाषोऽयमयुक्तोऽतिभयङ्करः । लज्जनीयो जुगुप्स्यश्च लोकद्वयनिषूदनः[3] ॥१२३॥
धिक्शब्दः प्राप्यते योऽयं सज्जनेभ्यः समन्ततः[4] । सोऽयं विदारणे शक्तो हृदयस्य सुचेतसाम् ॥१२४॥
जानन् सकलमर्यादां विद्याधरमहेश्वरः । ज्वलन्तमुल्मुकं कस्मात्करोषि हृदये निजे ॥१२५॥
यो ना परकलत्राणि पापबुद्धिर्निषेवते । नरकं स विशत्येष लोहपिण्डो यथा जलम् ॥१२६॥

है ॥११२॥ इसका यह शब्द दुःखके भारको धारण करनेवाले शरीरके शोकोत्पन्न-उत्कट कम्पनको सूचित कर रहा है ॥११३॥ इस प्रकार विभीषणके उक्त शब्द सुनकर सीता और भी अधिक रोने लगी सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनके आगे शोक बढ़ता है ॥११४॥ उसने अश्रुपूर्ण मुखसे टूटे-फूटे अक्षर प्रकट करते हुए कहा कि हे देव ! यहाँ मेरा बन्धु तू कौन है ? जो इस प्रकार स्नेहके साथ पूछ रहा है ॥११५॥ मैं राजा जनककी पुत्री, भामण्डलकी बहिन, रामकी पत्नी और दशरथकी पुत्रवधू सीता हूँ ॥११६॥ मेरा भर्ता कुशल वार्ता लेनेके लिए जबतक भाईके युद्धमें गया था तब तक छिद्र देख इस दुष्टहृदयने मेरा हरण किया है ॥११७॥ मुझसे बिछुड़े राम जब तक प्राण नहीं छोड़ देते हैं हे भाई ! तब तक मुझे शीघ्र ही ले जाकर उन्हें सौंप दे ॥११८॥ इस प्रकार सीताके शब्द सुनकर विभीषणका चित्त कुपित हो उठा । तदनन्तर विनयको धारण करनेवाले गुरुजन-स्नेही विभीषणने भाईसे कहा कि हे भाई ! आशीविषसर्पकी विषरूपी अग्निके समान सब प्रकारसे भय उत्पन्न करनेवाली यह पर-नारी तू मोहवश कहाँसे ले आया है ? ॥११९-१२०॥ हे स्वामिन् ! यद्यपि मैं बालबुद्धि हूँ तो भी मेरी प्रार्थना श्रवण कीजिये वचनके विषयमें आपने मुझपर प्रसन्नता की है अर्थात् मुझे वचन कहने की स्वतन्त्रता दी है ॥१२१॥ हे मर्यादाके जाननेमें निपुण ! यह दिशाओंका समूह आपकी कीर्तिरूपी लताओंके जालसे व्याप्त हो रहा है सो इसे अपयशरूपी दावानल जला न दे अतः प्रसन्न हूजिए ॥१२२॥ यह परस्त्रीकी अभिलाषा अनुचित है, अत्यन्त भयङ्कर है, लज्जा उत्पन्न करनेवाली है, घृणित है और दोनों लोकोंको नष्ट करनेवाली है ॥१२३॥ सर्वत्र सज्जनोंसे यह धिक् शब्द प्राप्त होता है वही सहृदय मनुष्योंके हृदयके विदारण करनेमें समर्थ है अर्थात् लोकनिन्दा विचारवान् मनुष्योंके हृदयको भेदन करनेवाली है ॥१२४॥ आप तो समस्त मर्यादाको जाननेवाले, विद्याधरोंके अधिपति हैं फिर इस जलते हुए उल्मुकको अपने हृदयपर क्यों रख रहे हो ? ॥१२५॥ जो पाप-बुद्धि मनुष्य परस्त्रियोंका सेवन करता है वह विनयसे उस तरह नरकमें प्रवेश करता है जिस तरह कि लोहका पिण्ड जलमें प्रवेश करता है ॥१२६॥

१. पूर्णास्यात्सबलं निर्गताक्षरम् म० । २. अपकीर्तिदवाग्निः 'वने च वनवह्नौ च दवो दाव इहेष्यते' इत्यमरः । ३ विनाशकः म० । ४. समं ततः म० ।

तच्छ्रुत्वा रावणोऽवोचत् किं तद्द्रव्यं महीतले । भ्रातर्यस्यास्मि न स्वामी परकीयं कुतो मम ॥१२७॥
इत्युक्त्वा विकथां कर्तुं प्रारेभे भिन्नमानसः । लब्धान्तरश्च मारीचो महानीतिरवोचत ॥१२८॥
जानन्नपि कथं सर्वं लोकवृत्तं दशानन । अकरोरीदृशं कर्म मोहस्येदं विचेष्टितम् ॥१२९॥
सर्वथा प्रातरुत्थाय पुरुषेण सुचेतसा । कुशलाकुशलं स्वस्य चिन्तनीयं विवेकतः ॥१३०॥
निरपेक्षं प्रवृत्तेऽस्मिन् वक्तुमेवं महामतौ । सभायाः क्षोभनं कुर्वन्नुत्तस्थौ रक्षसां प्रभुः ॥१३१॥
त्रिजगन्मण्डनाभिख्यमारुरोह च वारणम्[1] । महर्द्धिभिश्च सामन्तैर्वाहारूढैः समावृतः ॥१३२॥
पुष्पकाग्रं समारोप्य सीतां शोकसमाकुलाम् । पुरः कृत्वा महाभूत्या प्रययौ नगरीदिशा ॥१३३॥
कुन्तासितोमरच्छत्रध्वजाद्यर्पितपाणयः[2] । अग्रतः पुरुषा सस्तु कृतसम्भ्रमनिस्वनाः ॥१३४॥
चलिताश्चञ्चलग्रीवाः स्थूरीपृष्ठाः सहस्रशः । चञ्चत्खुराननक्षुण्णक्षितयश्चारुसादिनः ॥१३५॥
प्रचण्डनिस्वनद्घण्टाः कृतजीमूतगर्जिताः । प्रचेलुर्वेत्तृभिर्नुन्ना गण्डशैलसमा गजाः ॥१३६॥
अट्टहासान् विमुञ्चन्तः कृतनानाविचेष्टिताः । स्फोटयन्त इवाकाशं प्रजग्मुर्मानवाः पुरः ॥१३७॥
सहस्रसंख्यतूर्याणां ध्वनिना पूरयन् दिशः । लङ्कां दशाननोऽविक्षन् मणिकाञ्चनतोरणाम् ॥१३८॥
सम्पद्भिरेवमाद्याभिर्वृतोऽप्यत्यन्तचारुभिः । सीता दशाननं मेने तृणादपि जघन्यकम् ॥१३९॥
अकल्मषं स्वभावेन वैदेहीमानसं नृप । न शक्यं लोभमाने[3]तु लेपमम्बु यथाम्बुजम् ॥१४०॥

यह सुनकर रावणने कहा कि हे भाई ! पृथिवीतल पर वह कौन पदार्थ है जिसका मै स्वामी न होऊँ ? अतः मेरे लिए यह परकीय वस्तु कैसे हुई ? ॥१२७॥ इस प्रकार कहकर उस भिन्न हृदयने विकथाएँ करना प्रारम्भ कर दिया। तदनन्तर अवसर पाकर महानीतिज्ञ मारीच बोला ॥१२८॥ कि हे दशानन ! लोकका सब वृत्तान्त जानते हुए भी तुमने ऐसा कार्य क्यो किया ? यथार्थमे यह मोहकी ही चेष्टा है ॥१२९॥ बुद्धिमान मनुष्यको सब तरहसे प्रातःकाल उठकर विवेक पूर्वक अपने हिताहितका विचार करना चाहिए ॥१३०॥ इस प्रकार महाबुद्धिमान् मारीच जब निरपेक्ष भावसे यह सब कह रहा था तब बीचमे ही सभाके क्षोभको करता हुआ रावण उठकर खडा हो गया ॥१३१॥ तदनन्तर बड़ी-बड़ी ऋद्धियो और अश्वारूढ सामन्तोसे घिरा हुआ रावण त्रिलोकमण्डन नामक हाथी पर सवार हो गया ॥१३२॥ वह शोकसे व्याकुल सीताको पुष्पक विमान पर चढ़ा कर तथा आगे कर बड़े वैभवसे नगरी की ओर चला ॥१३३॥ भाले, खड्ग, तोमर, छत्र तथा ध्वजा आदि जिनके हाथमे थे और जो सभ्रम पूर्वक जोरदार नारे लगा रहे थे ऐसे पुरुष आगे-आगे चल रहे थे ॥१३४॥ जिनकी ग्रीवाएँ चञ्चल थी, जो सुशोभित खुरोके अग्रभागसे पृथिवीको खोद रहे थे तथा जिनपर मनोहर सवार बैठे हुए थे ऐसे हजारो घोड़े चल पड़े ॥१३५॥ जिनके घण्टे प्रचण्ड शब्द कर रहे थे, जो मेघोके समान गर्जना कर रहे थे, जिन्हें महावत प्रेरित कर रहे थे और जो गण्डशैल-काली चट्टानोवाले पर्वतोके समान जान पड़ते थे ऐसे हाथी चलने लगे ॥१३६॥ जो अट्टहास छोड़ रहे थे अर्थात् ठहाका मार कर हँस रहे थे, नाना प्रकारकी चेष्टाएँ कर रहे थे और आकाशको फोड़ते हुए से जान पडते थे ऐसे मनुष्य उसके आगे-आगे जा रहे थे ॥१३७॥ इस प्रकार हजारो तुरहियोके शब्दसे दिशाओको पूर्ण करता हुआ रावण मणि तथा स्वर्णनिर्मित तोरणोंसे अलंकृत लंका नगरीमे प्रविष्ट हुआ ॥१३८॥ यद्यपि रावण इस प्रकारकी अत्यन्त सुन्दर सम्पदाओंसे घिरा हुआ था तो भी सीता उसे तृणसे भी तुच्छ समझती थी ॥१३९॥ स्वभावसे ही निर्मल सीताके मनको रावण उस तरह लोभ प्राप्त करानेके लिए समर्थ नही हो सका जिस प्रकारकी पानी कमलको लेप प्राप्त करानेके लिए समर्थ नहीं होता है ॥१४०॥

१. रावणः म० । २ ध्वजादर्पित म०, ब० । ३ लोभमाने तु लेपमम्बु यथाम्बुजम् म० ।

समन्तकुसुमं तावन्नानातरुलताकुलम् । प्रमदाख्यं वनं सीता नीता नन्दनसुन्दरम् ॥१४१॥
स्थितं फुल्लनगस्योर्ध्वं दृष्ट्वा यद् दृष्टिबन्धनम् । उन्मादो मनसस्तुङ्गो देवानामपि जायते ॥१४२॥
गिरिः सप्तभिरुद्यानैर्वेष्टितः स्वायतैः स च । रराज भद्रशालाद्यैः सूर्यावर्त्त इवोज्ज्वलः ॥१४३॥
एकदेशानहं तस्य विविधाद्भुतसङ्कुलान् । नामतः सम्प्रवक्ष्यामि तव राजन् निबोध्यताम् ॥१४४॥
प्रकीर्णकं जनानन्दं सुखसेव्यं समुच्चयम् । चारणप्रियसञ्ज्ञं च निबोधं प्रमदं तथा ॥१४५॥
प्रकीर्णकं महीपृष्ठे जनानन्दं ततः परम् । यत्रानिषिद्धसञ्चारो जनः क्रीडति नागरः[1] ॥१४६॥
तृतीयेऽलं वने रम्ये मृदुपादपसङ्कुले । घनवृन्दप्रतीकाशे सरिद्वापीमनोहरे ॥१४७॥
दशव्यामायता वृक्षा रविमार्गोपरोधिनः । केतकीयूथिकोपेतास्ताम्बूलीकृतसङ्गमाः ॥१४८॥
निरुपद्रवसञ्चारे तत्रोद्यानसमुच्चये । विलसन्ति विलासिन्यः क्वचिद्देशे च सन्नराः ॥१४९॥
चारणप्रियमुद्यानं मनोज्ञं पापनाशनम् । स्वाध्यायनिरता यत्र श्रमणा व्योमचारिणः ॥१५०॥
तस्योपरि समारुह्य [2]ययुपृष्ठमनिन्दितम् । सुखारोहणसोपानं दृश्यते प्रमदाभिधम् ॥१५१॥
स्नानक्रीडोचिता रम्या वाप्योऽस्मिन् पद्मशोभिताः । प्रपाः सभाश्च विद्यन्ते रचितानेकभूमयः ॥१५२॥
नारिङ्गमातुलिङ्गाद्यैः[3] फलैर्यत्र निरन्तराः । खर्जूरैर्नालिकेरैश्च तालैरन्यैश्च वेष्टिताः ॥१५३॥
तत्र च प्रमदोद्याने सर्वा एवागजातयः । कुसुमस्तवकैश्छन्ना गीयन्ते मत्तषट्पदैः ॥१५४॥

अथानन्तर जिसमें सब ओरसे फूल फूल रहे थे, जो नानाप्रकारके वृक्ष और लताओंसे युक्त था तथा जो नन्दन वनके समान सुन्दर था ऐसे प्रमद नामक वनमें सीता ले जाई गई ॥१४१॥ फूलोंके पर्वतके ऊपर स्थित तथा दृष्टिको बाँधनेवाले जिस प्रमदवनको देखकर देवोंके मनमें भी अत्यधिक उन्माद उत्पन्न हो जाता है ॥१४२॥ अत्यन्त लम्बे-लम्बे सात उद्यानोंसे घिरा हुआ वह पर्वत ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो भद्रशाल आदि वनोंसे घिरा अतिशय उज्ज्वल सुमेरु पर्वत ही हो ॥१४३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! अनेक आश्चर्योंसे भरे हुए उसके एक देशरूप जो सघन वन हैं हम उनके नाम कहते हैं सो सुनो ॥१४४॥ उस पर्वत पर जो सात वन हैं उनके नाम इस प्रकार हैं—१ प्रकीर्णक २ जनानन्द ३ सुखसेव्य ४ समुच्चय ५ चारण-प्रिय ६ निबोध और प्रमद ॥१४५॥ इनमेंसे प्रकीर्णक नामका वन पृथ्वीतल है पर उसके आगे जनानन्द नामका वह वन है जिसमें कि वे ही मनुष्य क्रीडा करते हैं जिनका कि आना जाना निषिद्ध नहीं है अन्य लोग नहीं ॥१४६॥ उसके ऊपर चलकर तीसरा सुखसेव्य नामका वन है जो कोमल वृक्षोंसे व्याप्त है, मेघ समूहके समान है, तथा नदियों और वापिकाओंसे मनोहर है। उस वनमें सूर्यके मार्गको रोकनेवाले, केतकी और जूहीसे सहित तथा पानकी लताओंसे लिपटे दशवेमां प्रमाण लम्बे-लम्बे वृक्ष हैं ॥१४७-१४८॥ उसके ऊपर उपद्रव रहित गमनागमनसे युक्त समुच्चय नामका चौथा वन है जिसमें कहीं हाव-भावको धारण करनेवाली स्त्रियाँ सुशोभित हैं तो कहीं उत्तमोत्तम मनुष्य सुशोभित हो रहे हैं ॥१४९॥ उसके ऊपर चारणप्रिय नामक पांचवाँ पापापहारी मनोहर वन है जिसमें चारणऋद्धिधारी मुनिराज स्वाध्यायमें तत्पर रहते हैं ॥१५०॥ [उसके ऊपर छठवाँ निबोध नामका वन है जो ज्ञानका निवास है] और उसके आगे चढ़कर प्रमद नामका सातवाँ वन है जो घोड़ेके पृष्ठके समान उत्तम तथा सुखसे चढ़नेके योग्य सीढ़ियोंसे युक्त दिखाई देता है ॥१५१॥ इस प्रमद वनमें स्नानक्रीड़ाके योग्य, कमलोंसे सुशोभित मनोहर वापिकाएँ हैं, स्थान स्थान पर पानीयशालाएँ और अनेक खण्डोंसे युक्त सभागृह विद्यमान हैं ॥१५२॥ जहाँ खजूर, नारियल, ताल तथा अन्य वृक्षोंसे घिरे एवं फलोंसे लदे नारिङ्ग और बीजपूर आदिके वृक्ष हैं ॥१५३॥ उस प्रमद

१. नागरः म० । २. ययुः पृष्ठ-म० । ३. मातुल्लिङ्गाद्यैः म० ।

कुर्वन्तीव[1] लतालीला कोमलैः पल्लवैः करैः । घूर्णिता मन्दवातेन फलपुष्पमनोहरा ॥१५५॥
सारङ्गदयिताभिश्च प्रलम्बाम्बुदशोभिनः । समस्तर्तुकृतच्छाया[2] सेव्यन्ते घनपादपाः ॥१५६॥
विभूतिं तस्य तां वाप्यः सहस्रच्छदनाननाः । आलोकन्त इवातृप्ता असितोत्पललोचनैः ॥१५७॥
गहनान् कोकिलालापान् नृत्यन्त्यो मन्दवायुना । दीर्घिका विहसन्तीव राजहंसकदम्बकैः ॥१५८॥
प्रमदाभिख्यमुद्यानं सर्वभोगोत्सवावहम् । अत्र किं बहुनोक्तेन स्याद्वरं नन्दनादपि ॥१५९॥
अशोकमालिनी नाम पत्रपद्मविराजिता । वापी कनकसोपाना विचित्राकारगोपुरा ॥१६०॥
मनोहरैर्गृहैर्भाति गवाक्षाद्युपशोभितैः । सल्लतालिङ्गितप्रान्तैर्निर्झरैश्च सशीकरैः ॥१६१॥
तत्राशोकतरुच्छन्ने स्थापिता शोकधारिणी । देशे शक्रालयाद् भ्रष्टा स्वयं श्रीरिव जानकी ॥१६२॥
तस्मिन् दशाननोक्ताभिः स्त्रीभिरन्तरवर्जितम् । सीता प्रसाद्यते वस्त्रगन्धालङ्कारपाणिभिः ॥१६३॥
दिव्यैः सनर्त्तनैर्गीतैर्वाक्यैश्चामृतहारिभिः । अनुनेतुं न सा शक्या सम्पदा चामराभया ॥१६४॥
उपर्युपरि सरक्तो दूतीं विद्याधराधिपः । प्राहिणोद्धि स्मरोदारदावज्वालाकुलीकृतः ॥१६५॥
[3]दूति सीतां व्रज ब्रूहि दशास्यमनुरक्तकम् । न साम्प्रतमवज्ञातुं प्रसीदेत्यानिभाषते ॥१६६॥
गताऽऽगता च सा तस्मै वदतीति वितेजसे । देव साहारमुत्सृज्य स्थिता त्वां वृणुते कथम् ॥१६७॥

नामक उद्यानमें वृक्षोंकी सब जातियाँ विद्यमान हैं जो कि फूलोंसे आच्छादित हैं और मदोन्मत्त भ्रमर जिनपर गुञ्जार करते हैं ॥१५४॥ वहाँ मन्द-मन्द वायुसे हिलती और फलों तथा फलोंसे मनोहर लता अपने कोमल पल्लवोंसे ऐसी जान पड़ती है मानो हाथ चलाती हुई नृत्य ही कर रही हो ॥१५५॥ वहाँ नीचे लटकते हुए मेघोंके समान सुशोभित तथा समस्त ऋतुओंमें छाया उत्पन्न करनेवाले सघन वृक्षोंकी हरिणियाँ सदा सेवा करती हैं—उनके नीचे विश्राम लेती हैं ॥ १५६॥ कमलरूपी मुखोंसे सहित वहाँकी वापिकाएँ नील कमल रूपी नेत्रोंके द्वारा उस वनकी उस विभूतिको मानो अतृप्त होकर ही सदा देखती रहती हैं ॥१५७॥ जहाँ मन्द-मन्द वायुसे नृत्य करती हुई वापिकाएँ राजहंस पक्षियोंके समूहसे ऐसी जान पडती हैं मानो कोकिलाओंके आलापसे युक्त सघन वनोंकी हँसी ही कर रही हों ॥१५८॥ इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या ? इतना ही बहुत है कि समस्त भोगों और उत्सवोंको धारण करनेवाला वह प्रमद नामक उद्यान नन्दन वनसे भी अधिक सुन्दर है ॥१५९॥

उस प्रमद वनमें अशोक मालिनी नामकी वापी है जो कि कमल पत्रोंसे सुशोभित है, स्वर्णमय सोपानोंसे युक्त है, और विचित्र आकार वाले गोपुरसे अलकृत है ॥१६०॥ इसके सिवाय वह प्रमद वन झरोखे आदिसे अलकृत तथा उत्तमोत्तम लताओंसे आलिङ्गित मनोहर गृहों और जल कणोंसे युक्त निर्झरोंसे सुशोभित है ॥१६१॥ उस प्रमद वनके अशोक वृक्षसे आच्छादित एक देशमें बैठी शोकवती सीता ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वर्गसे गिरी साक्षात् लक्ष्मी हो ॥१६२॥ वहाँ रावणकी आज्ञानुसार वस्त्र, गन्ध तथा अलकारोंको हाथोंमें धारण करनेवाली स्त्रियाँ निरन्तर सीताको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करती थीं ॥१६३॥ किन्तु नृत्य सहित दिव्य सगीतों, अमृतके समान मनोहर वचनों और देवतुल्य सम्पदाके द्वारा सीता अनुकूल नहीं की जा सकी ॥१६४॥ इतने पर भी कामरूपी दावानलकी प्रचण्ड ज्वालाओंसे व्याकुल हुआ रागी रावण एकके बाद एक दूती भेजता रहता था ॥१६५॥ वह कहता था कि हे दूति ! जाओ और सीतासे कहो कि अब अनुरागसे भरे रावणकी उपेक्षा करना उचित नहीं है अतः प्रसन्न होओ ॥१६६॥ दूती सीताके पास जाती और वापिस आकर तेजरहित रावणसे कहती कि हे देव !

---

१ कुर्वन्ती ज०, ख० । २ सेवन्ते म० । ३. दूति म० ।

न जल्पति निषण्णाङ्गा नालं कायेन चेष्टते । न ददाति महाशोका दृष्टिमस्मासु जानकी ॥१६८॥
अमृतादपि सुस्वादै पयःप्रभृतिभिः श्रितम् । सुगन्धि वृणुते नान्नं विचित्रं बहुवर्णकम् ॥१६९॥
ततो मदनदीप्ताग्निज्वालालीढः समन्ततः । आर्त्तो व्यचिन्तयत्[1] भूरि मग्नोऽसौ व्यसनार्णवे ॥१७०॥
शोचन्नुन्मुक्तदीर्घोष्णनिश्वासानिलसन्ततिः । शुष्यन्मुखः पुनः किञ्चिद्गायत्यविदिताक्षरम् ॥१७१॥
स्मरप्रालेयनिर्दग्धं धुनाति मुखपङ्कजम् । मुहुः किमपि सञ्चिन्त्य स्मयते क्षणनिश्चलः ॥१७२॥
अनुबन्धमहादाहाः समस्ता[2]वयवानलम् । क्षिपत्यविरतं भूमौ कुट्टिमायां विवर्त्तकः ॥१७३॥
उत्तिष्ठति पुनः शून्यः सेवते निजमासनम् । निःक्रामति पुनर्दृष्ट्वा जनं प्रतिनिवर्त्तते ॥१७४॥
नागेन्द्र इव हस्तेन सर्वदिङ्मुखगामिना । आस्फालयति निःशङ्कं कुट्टिमं कम्पमानयन् ॥१७५॥
स्मरन् सीतां मनोयातामात्मानं पौरुषं विधिम् । निरपेक्षमुपालब्धु[3] साश्रुनेत्रः प्रवर्त्तते ॥१७६॥
किञ्चिदाह्वयते दत्तहुङ्कारश्चातिकैर्जनैः । तूष्णीमास्ते पुनः किं किमिति शून्यं प्रभाषते ॥१७७॥
सीता सीतेति कृत्वास्यमुत्तानं भाषते मुहुः । तिष्ठत्यवाङ्मुखो भूयो नखेन विलिखन् महीम् ॥१७८॥
करेण हृदयं मार्ष्टि बाहुमूर्द्धानमीक्षते । पुनर्मुञ्चति हुङ्कारं तल्पं मुञ्चति सेवते ॥१७९॥
दधाति हृदये पद्मं पुनर्दूरं निरस्यति । मुहुः पठति[4] शृङ्गारं गगनाङ्गणमीक्षते[5] ॥१८०॥

वह तो आहार छोड़कर बैठी है तुम्हें किस प्रकार स्वीकृत करे ॥१६७॥ वह चुपचाप बैठी है, न कुछ बोलती है, न शरीरसे कुछ चेष्टा करती है और न महाशोकसे युक्त होनेके कारण हम लोगोंपर दृष्टि ही डालती है ॥१६८॥ अमृतसे भी अधिक स्वादिष्ट, दूध, आदिसे युक्त, सुगन्धित, तथा अनेक वर्णका विचित्र भोजन उसे दिया जाता है पर वह स्वीकृत नहीं करती है ॥१६९॥ दूतीकी बात सुनकर जो सब ओरसे कामरूपी प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त था तथा दुःखरूपी सागरमें निमग्न था ऐसा रावण अत्यधिक दुःखी होता हुआ पुनः चिन्तामें पड़ जाता था ॥१७०॥ वह कभी लम्बी तथा गरम श्वासोच्छ्वासकी वायुको छोड़ता हुआ शोक करता था तो कभी मुख सूख जानेसे अस्पष्ट अक्षरों द्वारा कुछ गाने लगता था ॥१७१॥ वह कामरूपी तुषारसे जले हुए मुखकमलको बार-बार हिलाता था और कभी क्षणभरके लिए निश्चल बैठकर तथा कुछ सोचकर हँसने लगता था ॥१७२॥ वह रत्नखचित फर्शपर लोटता और महादाह से युक्त समस्त अवयवोंको बार-बार फैलाता था ॥१७३॥ फिर उठकर खड़ा हो जाता, कभी शून्य हृदय हो अपने आसनपर जा बैठता, कभी बाहर निकलता और किसी मनुष्यको देखकर फिर लौट जाता ॥१७४॥ जिस प्रकार हाथी सब दिशाओंमें जानेवाली सूँड़से किसीका आस्फालन करता है उसी प्रकार रावण भी निःशङ्क हो सब दिशाओंमें घूमनेवाले अपने हाथसे कम्पित करता हुआ फर्शको आस्फालन करता था अर्थात् फर्शपर घुमा घुमाकर हाथ पटकता था और उससे फर्शको कंपित करता था ॥१७५॥ वह मनमें आई हुई सीताका स्मरण करता हुआ अपने पुरुषार्थ, तथा निरपेक्ष भाग्यको उलाहना देनेके लिए प्रवृत्त होता था और उस समय उसके नेत्रोंसे अश्रु निकलने लगते थे ॥१७६॥ वह किसीको बुलाता था और समीपवर्ती लोग जब हुँकार देते थे तब चुप रह जाता था तदनन्तर बार-बार क्या है ? क्या है ? इस प्रकार बिना किसी लक्ष्यके बकता रहता था ॥१७७॥ वह कभी मुखको ऊपर कर 'सीता सीता' इस प्रकार बार-बार चिल्लाता था और कभी मुख नीचा कर नखसे पृथिवीको खोदता हुआ चुप बैठा रहता था ॥१७८॥ वह कभी हाथसे वक्षःस्थलको साफ करता था, कभी भुजाओंके अग्रभागको देखता, कभी हुंकार छोड़ता कभी विस्तर पर जा लेटता था ॥१७९॥ कभी हृदय पर कमल

१. विचिन्तयद् म० । २. स्मरतावयवानवम् म० । ३. -मुपालब्ध म० । ४. यतति म० । ५. -मीक्ष्यते म० ।

हस्तं हस्तेन संस्पृश्य हन्ति पादेन मेदिनीम् । निश्वासदहनश्याममाकृष्याधरमीक्ष्यते ॥१८१॥
धत्ते कहकह स्वानं केशान् वर्त्तयति श्लथम् । कोपेन दुस्सहां दृष्टिं क्वचिदेव विमुञ्चति ॥१८२॥
जृम्भातानीकृतोरस्को बाष्पाच्छादितलोचन । बाहुतोरणमुद्यम्य भिनत्ति स्फुटदङ्गुलि ॥१८३॥
अंशकान्तेन हृदयं वीजयत्याहितेक्षणम् । कुसुमैः कुरुते रूपं पुनर्नाशयति द्रुतम् ॥१८४॥
चित्रयत्यादरी सीतां द्रवयत्यश्रुभिः पुनः । दीनं क्षिपति हाकारान् नन्न मामेति जल्पति ॥१८५॥
एवमाद्याः क्रियाः क्लिष्टा मदनग्रहपीडितः । करोति करुणालापं चित्रं हि स्मरचेष्टितम् ॥१८६॥
तस्य स्मराग्निना दीप्तं हृदयेन समं वपुः । अनुबन्धमहाधूपं ज्वलत्याशाकृतेन्धनम् ॥१८७॥
अचिन्तयच्च हा कष्टं कामवस्थामहं गतः । येनेदमपि शक्नोमि न वोढुं स्वशरीरकम् ॥१८८॥
दुर्गसागरमध्यस्था बृहद्विद्याधरा मया । जिताः सहस्रशो युद्धे किमिदं वर्ततेऽधुना ॥१८९॥
सर्वत्र जगति ख्यातलोकपालपरिच्छदः । बन्दीगृहमुपानीतो महेन्द्रोऽपि पुरा मया ॥१९०॥
अनेकयुद्धनिर्भग्ननराधिपकदम्बक[3] । सोऽहं सम्प्रति मोहेन भस्मीकर्तुं प्रवर्तितः ॥१९१॥
चिन्तयन्निदमन्यच्च कामाचार्यवशंगतः । आस्तां तावदसौ राजन्निदमन्यद्विबुध्यताम् ॥१९२॥
आकुलो मन्त्रिभिः साकं महामन्त्रविशारदः । विभीषणः समारेभे निरूपयितुमीदृशम् ॥१९३॥
स हि रावणराष्ट्रस्य धुरं धत्ते गतश्रमः । समस्तशास्त्रबोधाम्बुधौतनिर्मलमानसः ॥१९४॥

रखता, कभी उसे दूर फेंक देता, कभी बार-बार शृङ्गारका पाठ करता—शृङ्गार भरे शब्दोंका उच्चारण करता और कभी आकाशकी ओर देखने लगता था ॥१८०॥ कभी हाथसे हाथका स्पर्शका पैरसे पृथिवीको ताड़ित करता था, कभी श्वासोच्छ्वास रूपी अग्निसे काले पड़े हुए अधरोष्ठको खींच कर देखता था ॥१८१॥ कभी 'कह कह' शब्द करता था, कभी केशोंको खोल कर फैलाता था, कभी किसी पर क्रोधसे दुःसह दृष्टि छोड़ता था ॥१८२॥ कभी जिमुहाई लेते समय वक्षःस्थलको फुलाकर आगेको उभार लेता था, कभी नेत्रोंको आँसुओंसे आच्छादित करता था, कभी भुजाओंका तोरण ऊपर उठा अंगुलियाँ चटकाता हुआ उसे तोड़ता था ॥१८३॥ कभी हृदयकी ओर दृष्टि डालकर वस्त्रके अञ्चलसे हवा करता था, कभी फूलोंसे रूप बनाता और फिर उसे शीघ्र ही नष्ट कर देता था ॥१८४॥ कभी आदरके साथ सीताका चित्र बनाता और फिर उसे आँसुओंसे गीला करता था, कभी दीनताके साथ हा हाकार करता और कभी 'न, न' 'मा, मा' शब्दोंका उच्चारण करता था ॥१८५॥ इस प्रकार कामरूपी ग्रहसे पीडित रावण अनेक प्रकारकी चेष्टाएं करता तथा करुणापूर्ण वार्तालाप करता था सो ठीक ही है क्योंकि कामकी चेष्टा विचित्र होती है ॥१८६॥ जिसमें वासनारूपी महाधूम उठ रहा था, तथा आशा जिसमें ईंधन बन रही थी ऐसा उसका शरीर कामाग्निसे दीप्त हो हृदयके साथ जल रहा था ॥१८७॥ वह कभी विचार करता कि हाय मैं किस अवस्थाको प्राप्त हो गया जिससे अपने इस शरीरको भी धारण करनेके लिए समर्थ नहीं रहा ॥१८८॥ मैंने दुर्गम समुद्रके बीचमें रहनेवाले हजारों बड़े-बड़े विद्याधर युद्धमें जीते हैं पर इस समय यह क्या हो रहा है ? ॥१८९॥ जिसका लोकपालरूपी परिकर समस्त संसारमें प्रसिद्ध था ऐसे राजा इन्द्रको भी मैंने पहले बन्दीगृहमें डाल रक्खा था तथा अनेक युद्धोंमें जिसने राजाओंके समूहको पराजित किया था ऐसा मैं इस समय मोहके द्वारा भस्मीभूत हो रहा हूँ ॥१९०-१९१॥ गौतम-कहते हैं कि हे राजन् ! यह तथा अन्यवस्तुओंका चिन्तवन करता हुआ रावण कामरूपी आचार्यके वशीभूत हो रहा था सो यह रहने दो अब दूसरी बात सुनो ॥१९२॥

अथानन्तर आकुलतासे भरा तथा बड़ी-बड़ी मन्त्रणा करनेमें निपुण विभीषण मन्त्रियोंके साथ बैठकर इस प्रकार निरूपण करनेके लिए तत्पर हुआ ॥१९३॥ यथार्थमें समस्त शास्त्रोंके ज्ञान

---

१. माकृष्याधर- म० । २. केशाद्वर्तयति म० । ३. कदम्बकम् म० । ४. महामन्त्रिविशारदः ख० ।

रावणस्य हि तत्तुल्यो न हितो विद्यते परः । तस्य सर्वोपयोगेन चिन्तनीये स वर्तते ॥१९५॥
उवाचासावहो वृद्धा राजनीत्थं व्यवस्थिते । उपक्षिपत कर्तव्यमस्माकमधुनोचितम् ॥१९६॥
विभीषणोदितं श्रुत्वा सम्भिन्नमतिरभ्यधात् । अतः परं वदामः किं गतं कार्यमकार्यताम् ॥१९७॥
स्वामिनो दशवक्त्रस्य सहसा दैवयोगतः । दक्षिणोपपतितो बाहुः खरदूषणलक्षकः ॥१९८॥
विराधितोऽपरः कोऽपि कारणं यो न कस्यचित् । सोऽद्य गोमायुतां मुक्त्वा[1] केसरित्वं समाश्रितः ॥१९९॥
भव्यतां पश्यतामुष्य साधुकर्मोदयादिमाम् । लक्ष्मणस्याहवे यातो बन्धुतां यत्सुचेष्टितः ॥२००॥
एतेऽपि बलिनः सर्वे मानिनः कपिकेतवः । भवन्त्याक्रान्तितो वश्या निर्भृत्यास्तु न जातुचित् ॥ २०१॥
अमीषामन्य आकारो मानसं त्वन्यथा स्थितम् । भुजङ्गानामिवात्यन्तमन्तरे दारुणं विषम् ॥२०२॥
नेता वानरमौलीनामनङ्गकुसुमापतिः । पक्षेण भजते पक्षं सुग्रीवस्य मरुत्सुतः ॥२०३॥
ततः पञ्चमुखोऽवोचद्विधायानादरस्मितम् । खरदूषणवृत्तेन गणितेनेह को गुणः ॥२०४॥
वृत्तान्तेनामुना कस्य सन्त्रासोऽकीर्तिरेव च । भवत्येव हि शूराणामीदृशी समरे गतिः ॥२०५॥
[2]वातेनापहृते सिन्धोः कणे का न्यूनता भवेत् । रावणस्य बलं स्फीतं किं दूषणसमीहया ॥२०६॥
व्रीडां व्रजति मे चेतः कुर्वतः सम्प्रधारणम् । क्वायं दशाननः स्वामी क्वान्ये केऽपि वनौकसः ॥२०७॥
सूर्यहासधरेणापि क्रियते लक्ष्मणेन किम् । विराधितः क्व नामैव यस्येच्छामनुवर्तते ॥२०८॥

जलसे धुलकर जिसका मन अत्यन्त निर्मल हो गया था तथा जो सब प्रकारके श्रमको सहन करनेवाला था ऐसा विभीषण ही रावणके राष्ट्रका भार धारण करनेवाला था ॥१९४॥ विभीषण-के समान रावणका हित करनेवाला दूसरा मनुष्य नहीं था। वह उसके करने योग्य समस्त कार्योंमें सर्व प्रकारका उपयोग लगाकर सदा जागरूक रहता था॥१९५॥ विभीषणने मन्त्रियोंसे कहा कि अहो वृद्धजनो ! राजाकी ऐसी चेष्टा होनेपर अब हम लोगोंका क्या कर्तव्य है सो कहो ॥१९६॥ विभीषणका कथन सुनकर सभिन्नमति बोला कि इससे अधिक और क्या कहें कि सब कार्य अकार्यताको प्राप्त हो गया है अर्थात् सब कार्य गड़बड़ हो गया है ॥१९७॥ स्वामी दशाननकी दक्षिण भुजाके समान जो खरदूषण था वह दैवयोगसे सहसा नष्ट हो गया ॥१९८॥ वह विराधित नामका विद्याधर जो कि किसीके लिए कुछ भी नहीं था वह आज शृगालपना छोड़कर सिंहपनेको प्राप्त हुआ है ॥१९९॥ पुण्य कर्मके उदयसे प्राप्त हुई इसकी इस भव्यताको तो देखो कि उत्तम चेष्टाओंको धारण करनेवाला यह युद्धमें लक्ष्मणकी मित्रताको प्राप्त हो गया ॥२००॥ इधर ये सभी वानरवंशी भी अभिमानी तथा बलवान् हो रहे हैं सो ये आक्रमणसे ही वशमें हो सकते हैं बिना आक्रमणके कभी वशीभूत नहीं हो सकते ॥२०१॥ इनका आकार कुछ दूसरा ही है और मन दूसरे ही प्रकारका स्थित है जिस प्रकार साँपोंके बाह्यमें तो कोमलता रहती है और भीतर दारुण विष रहता है ॥२०२॥ खरदूषणकी पुत्री अनंग-कुसुमाका पति हनुमान् इस समय वानर वंशियोंका नेता बन रहा है और वह खासकर सुग्रीव-का ही पक्ष लेता है। इस प्रकार संभिन्नमतिके कह चुकने पर पचमुख मन्त्री अनादर पूर्वक हँसता हुआ बोला कि यहाँ खरदूषणका वृत्तान्त गिननेसे अर्थात् उसकी मृत्युका सोच करनेसे क्या लाभ है ? ॥२०३-२०४॥ इस वृत्तान्तसे किसेभय तथा किसकी अपकीर्ति है ? अर्थात् किसीकी नहीं क्योंकि युद्धमें शूर वीरोंकी ऐसी गति होती ही है ॥२०५॥ वायुके द्वारा समुद्रकी एक कणिका हरलेने पर समुद्रमें क्या न्यूनता आ गई ? अर्थात् कुछ भी नहीं। रावणका बल बहुत है, उसके दोष देखनेसे क्या। ऐसी बात सोचते हुए मेरे मनमें लज्जा आती है। कहाँ यह जगत्का स्वामी रावण और कहाँ अन्य वनवासी ? ॥२०६-२०७॥ लक्ष्मण यद्यपि सूर्यहास खड्गको धारण करनेवाला है तो भी उससे क्या और विराधित उसकी इच्छानुकूल प्रवृत्ति करता है—उसका

१. मुक्त्वा म० । २. 'वातेनापहृते सिन्धोः कणिकान्यूनता भवेत्' म० ।

मृगेन्द्राधिष्ठितात्मानमपि काननसङ्गतम्। दन्दह्यते न किं दावो गिरिं परमदुःसहम् ॥२०९॥
सहस्रमतिनामाथ सचिवोऽनन्तरं जगौ। सूचयन् विरसं वाक्यं पूर्वं मस्तककम्पनात् ॥२१०॥
मानोद्धतैरिमैर्वाक्यैरर्थहीनैः किमीरितैः। मन्त्रणीयं हि सम्बद्धं स्वामिने हितमिच्छता ॥२११॥
स्वल्प इत्यनया बुद्ध्या कार्यावज्ञा न वैरिणि। कालं प्राप्य कणो वह्नेर्दहेत् सकलविष्टपम् ॥२१२॥
अश्वग्रीवो महासैन्यः ख्यातः सर्वत्र विष्टपे। स्वल्पेनापि त्रिपृष्ठेन निहतो रणमूर्धनि ॥२१३॥
तस्मात्क्षेपविनिर्मुक्तमियं परमदुर्गमा। नगरी क्रियतां लङ्का मतिसन्दोहशालिभिः ॥२१४॥
सुघोराणि प्रसार्यन्तां यन्त्राण्येतानि सर्वतः। तुङ्गप्राकारकूटेषु दृश्यतां च कृताकृतम् ॥२१५॥
सन्मानैर्बहुभिः शश्वत् सेव्यो जनपदोऽखिलः। स्वजनाव्यतिरेकेण दृश्यतां प्रियवादिभिः ॥२१६॥
सर्वोपायविधानेन[1] रक्ष्यतां प्रियकारिभिः। राजा दशाननो येन [2]सुखतां प्रतिपद्यते ॥२१७॥
प्रसाद्यतां सुविज्ञानैर्मैथिली परमैः प्रियैः। मधुरैर्वचनैर्दानैः [3]क्षीरैरहिवधूरिव ॥२१८॥
सुग्रीवः कैष्कुनगरमन्याश्च भटपुङ्गवान्। बहिः स्थापयतोद्युक्तान्नगर्या रक्षकारिणः ॥२१९॥
एवंकृते न ते भेदं जानन्ति बहिराहिताः। कार्ये नियोगदानाच्च जानन्ति स्वामिनं प्रियम् ॥२२०॥
एवं दुर्गतरे जाते कार्ये सर्वत्र सर्वतः। को जानाति हृता सीता स्थितामत्रापरत्र वा ॥२२१॥
रहितश्चानया रामो ध्रुवं प्राणान् विमोक्ष्यति। यस्येयमीदृशी कान्ता वर्तते विरहे प्रिया ॥२२२॥
रामे च पञ्चतां प्राप्ते शोकविक्लवमानसः। एकाकी क्षुद्रयुक्तो वा सौमित्रिः किं करिष्यति ॥२२३॥

मित्र है इससे भी क्या ? ॥२०८॥ क्योंकि वन सहित एक अत्यन्त दुःसह पर्वत यद्यपि सिंहसे सहित हो तो भी क्या उसे दावानल जला नहीं देता ? ॥२०९॥

तदनन्तर माथा हिलाकर पूर्व कथित वचनोंको नीरस बताता हुआ सहस्रमति मन्त्री बोला कि मानसे भरे इन निरर्थक वचनोंके कहनेसे क्या लाभ है ? स्वामीका हित चाहनेवाले व्यक्तिको ऐसी मन्त्रणा करनी चाहिए जो प्रकृत बातसे सम्बन्ध रखनेवाली हो ॥२१०–२११॥ 'वह छोटा है' ऐसा समझकर शत्रुकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये क्योंकि समय पाकर अग्निका एक कण समस्त संसारको जला सकता है ॥२१२॥ बड़ी भारी सेनाका स्वामी अश्वग्रीव समस्त संसारमें प्रसिद्ध था तो भी रणके अग्रभागमें छोटेसे त्रिपृष्ठके द्वारा मारा गया था ॥२१३॥ इसलिए बिना किसीके विलम्बके इस लंका नगरीको बुद्धिमान् मनुष्योंके द्वारा अत्यन्त दुर्गम बनाया जावे ॥२१४॥ ये महाभयानक यन्त्र सब दिशाओंमें फैला दिये जावें। अत्यन्त उन्नत प्राकारके शिखरों पर चढ़कर 'क्या किया गया क्या नहीं किया गया' इसकी देख रेख की जाय ॥२१५॥ अनेक प्रकारके सन्मानोंसे समस्त देशकी निरन्तर सेवा की जाय और मधुर वचन बोलनेवाले राज्याधिकारी सब लोगोंको अपने कुटुम्बीजनोंसे अभिन्न देखें ॥२१६॥ प्रिय करनेवाले मनुष्य सब प्रकारके उपायोंसे राजा दशाननकी रक्षा करें जिससे वह सुखको प्राप्त हो सके ॥२१७॥ जिस प्रकार दूधके द्वारा सर्पिणीको प्रसन्न किया जाता है उसी प्रकार उत्तम चातुर्य, परम प्रिय मधुर वचनों और इष्ट वस्तुओंके दानके द्वारा सीताको प्रसन्न किया जाय ॥२१८॥ किष्कु नगरके स्वामी सुग्रीव तथा नगरीकी रक्षा करनेमें उद्यत अन्य उत्तम योद्धाओंको नगरके बाहर रखा जावे ॥२१९॥ ऐसा करने पर बाहर रखे हुए सुग्रीवादि अन्तरका भेद नहीं जान सकेंगे और कार्य सौंपा जानेके कारण वे यह समझते रहेंगे कि स्वामी हम पर प्रसन्न हैं ॥२२०॥ इस तरह जब यहाँका प्रत्येक कार्य सब जगह सब ओरसे अत्यन्त दुर्गम हो जायगा तब कौन जान सकेगा कि हरी हुई सीता यहाँ है या अन्यत्र है ? ॥२२१॥ सीताके बिना राम निश्चित ही प्राण छोड़ देगा। क्योंकि जिसकी ऐसी प्रिय स्त्री विरहमें रहेगी वह जीवित रह ही कैसे सकेगा ॥२२२॥ जब राम मृत्युको प्राप्त हो जायगा तब शोकसे दुःखी अकेला अथवा क्षुद्र सहायकोंसे युक्त

१ विदानेन ख० । २. मुख्यता ख० । ३ क्षारैरहि-ख० ।

अथवा रामशोकेन मरणं तस्य निश्चितम् । दीपप्रकाशयोर्यद्वदनयोः सङ्गतं परम् ॥२२४॥
अपराधाब्धिमग्नः सन् यास्यति क्व विराधितः । सुग्रीवस्यापि वाश्वन्त श्रूयते लोकतः परम् ॥२२५॥
माया सुग्रीवसन्देहकारिणी यश्च नाशयेत् । दशवक्त्रेश्वरादस्य कोऽसौ लोके भविष्यति ॥२२६॥
तस्मात्तद्दुर्गमसिद्धौ स नाथं भजतेतराम् । योगश्चाय विभोर्वाढं परिणामे शुभावहः ॥२२७॥
प्रकारेणामुना शत्रूनेतानन्याश्च जेष्यति । दशाननस्ततो यत्नः क्रियतामत्र वस्तुनि ॥२२८॥
एवं विमृश्य विद्वांसः प्रमोदान्वितमानसाः । यथास्वं निलयं जग्मुः कर्तव्यकृतनिश्चयाः ॥२२९॥
विभीषणेन यन्त्राद्यैः शालो दुर्गतरीकृतः । विद्याभिश्च विचित्राभिर्लङ्का गह्वरतारका ॥२३०॥

मन्दाक्रान्ता

कृत्यं किञ्चिद्विशदमनसामाप्तवाक्यानपेक्षं नाप्नैरुक्तं फलति पुरुषस्योज्झितं पौरुषेण ।
दैवापेतं पुरुषकरणं कारणं नेष्टसगे तस्माद्भव्या कुरुत यतनं सर्वहेतुप्रसादे ॥२३१॥
राजन्कर्मण्युदयसमयं सेवमाने जनानां नानाकारं कुशलवचनं नो विशत्येव चेतः ।
युक्ता तस्मात्स्थितिमनुनयन् कर्म्म कुर्यात्प्रशस्तं भूयो येन प्रतपति रविः शोकरूपो न कष्टः ॥२३२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मायाप्रकाराभिधानं नाम षट्चत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४६॥

लक्ष्मण क्या कर लेगा ? ॥२२३॥ अथवा रामके शोकसे उसका मरण होना निश्चित है क्योंकि इन दोनोंका समागम दीप और प्रकाशके समान अविनाभावी है ॥२२४॥ विराधित अपराधरूपी समुद्रमें मग्न है अतः कहाँ जावेगा ? अथवा जावेगा भी तो सुग्रीवके समीप जावेगा ऐसा लोगोंसे सुना जाता है ॥२२५॥ सुग्रीवका सन्देह उत्पन्न करनेवाली मायाको जो नष्ट कर सके ऐसा पुरुष संसारमें स्वामी दशाननसे बढ़कर दूसरा कौन होगा ? ॥२२६॥ इसलिए उस कठिन कार्यको सिद्ध करनेके लिए सुग्रीव, स्वामी-दशाननकी ही सेवा करेगा । और सुग्रीवके साथ दशाननका समागम होना फलकालमें शुभदायक होगा ॥२२७॥ इस विधिसे दशानन इन शत्रुओंको तथा अन्य लोगोंको भी जीत सकेंगे इसलिए इस विषयमें शीघ्र ही यत्न किया जावे ॥२२८॥ इस प्रकार विचार कर बुद्धिमान् मन्त्री, करने योग्य कार्यका निश्चय कर हर्षित चित्त होते हुए अपने-अपने घर गये ॥२२९॥ विभीषणने यन्त्र आदिके द्वारा कोटको अत्यन्त दुर्गम कर दिया तथा नाना प्रकारकी विद्याओंके द्वारा लङ्काको गह्वरों एवं पाशोंसे युक्त कर दिया ॥२३०॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! निर्मलचित्तके धारक मनुष्योंका कोई भी कार्य आप्त वचनोंसे निरपेक्ष नहीं होता अर्थात् आप्तके कहे अनुसार ही उनका प्रत्येक कार्य होता है । आप्त भगवान्ने मनुष्योंके लिए जो कार्य बतलाये हैं वे पुरुषार्थके बिना सफल नहीं होते और पुरुषार्थ दैवके बिना इष्ट सिद्धिका कारण नहीं होता इसलिए हे भव्यजीवो ! सो सबका कारण है उसके प्रसन्न करनेमें प्रयत्न करो ॥२३१॥ हे राजन् ! जब तक मनुष्योंके कर्मका उदय विद्यमान रहता है तब तक नानाप्रकारके कुशल वचन उनके चित्तमें प्रवेश नहीं करते हैं इसलिए अपनी योग्य स्थितिके अनुसार प्रशस्त-पुण्यकर्म करना चाहिए जिससे कि फिर शोकरूपी कष्टदायी सूर्य सन्ताप उत्पन्न न कर सके ॥२३२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित, पद्मपुराणमें रावणकी मायाके विविध रूपोंका वर्णन करनेवाला छियालिसवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥४६॥

---

१. श्रयते ब० क० । २. दैवोपेत । ३ यत्न म० । ४. सेव्यमाने म० । ५. नानाकारे म० ।

सप्तचत्वारिंशत्तमं पर्व

किष्किन्धेशस्ततो भ्राम्यन् कान्ताविरहदुःखित[1]। त प्रदेशमनुप्राप्तो निर्वृत्त यत्र सयुगम् ॥१॥
तत्राद्राक्षीद्रथान् भग्नान् गजांश्च गतजीवितान्। सामन्तानश्वसयुक्तान्निभिन्नच्छिन्नविग्रहान् ॥२॥
दह्यमानान् नृपान् कांश्चित् कांश्चिन्निश्वसितास्तथा। क्रियमाणानुमरणान् कान्ताभिपरान् भटान् ॥३॥
विच्छिन्नार्धभुजान् कांश्चित् कांश्चिदर्धोरुवर्जितान्। नि सृतान्त्रचयान् कांश्चित्काश्चिद्दलितमस्तकान् ॥४॥
गोमायुप्रावृतान् कांश्चित् खगै कांश्चिन्निषेवितान्। रुदिता[2] परिवर्गेण कांश्चिच्छादितविग्रहान् ॥५॥
किमेतदितिप्रष्टश्च तस्मै कश्चिदवेदयत्। सीताया हरण ध्वस्तौ जटायुखरदूषणौ ॥६॥
ततोऽभवद् भृश दु खी खरदूषणमृत्युत। किष्किन्धाधिपतिश्चिन्तामेतामगमदाकुल ॥७॥
कष्ट चिन्तितमेतन्मे किलास्मै बलशालिने। निवेद्य दयिताशोक मोचयामीति महाशया ॥८॥
विधानदन्तिना सोऽपि कथमाशामहाद्रुम। भग्नो मम विपुण्यस्य कथ शान्तिर्भविष्यति ॥९॥
किमञ्जनासुत गत्वा सादर सश्रयाम्यहम्। मद्रूपधारिणो येन मरण स करिष्यति ॥१०॥
उद्योगेन विमुक्तानां जनाना सुखिता कुत। तस्माद् दु खविनाशाय श्रयाम्युद्योगमुत्तमम् ॥११॥
अथवानेकशो दृष्टोऽनादर[3] स करिष्यति। नवोऽनुरागवन्द्यो हि चन्द्रो लोकस्य नान्यदा ॥१२॥
तस्मान् महाबल दीप्त महाविद्याविशारदम्। रावण शरण यामि स मे शान्ति करिष्यति ॥१३॥

अथानन्तर किष्किन्धापुरका स्वामी सुग्रीव स्त्रीके विरहसे दु खी हो भ्रमण करता हुआ जहाँ कि खरदूषण तथा लक्ष्मणका युद्ध हुआ था ॥१॥ वहाँ आकर उसने देखा कि कही टूटे हुए रथ पड़े है, कहीं मरे हुए हाथी पडे है, कही जिनके शरीर छिन्न-भिन्न हो गए है, ऐसे घोड़ोंके साथ सामन्त पड़े हैं ॥२॥ कही कोई राजा जल रहे है, कोई साँसे भर रहे है, कही जिनके पीछे स्त्रियाँ मर रही थीं ऐसे मरे हुए अनेक सुभट पड़े हैं ॥३॥ किन्हींकी आधी भुजा कट गई है, किन्हींकी आधी जाँघ टूट चुकी है, किन्हींकी आँतोंका समूह निकल आया है, किन्हींके मस्तक फट गये है, किन्हींको शृगाल घेरे हुए है, किन्हींको पक्षी खा रहे है और किन्हींके मृत शरीरको रोते हुए कुटुम्बीजन आच्छादित कर रहे है ॥४-५॥ 'यह क्या है ?' इस प्रकार पूछने पर किसीने उसे बताया कि सीताका हरण हो चुका है और जटायु तथा खरदूषण मारे गए है ॥६॥

तदनन्तर खरदूषणकी मृत्युसे किष्किन्धापति सुग्रीव बहुत दु खी हुआ, वह आकुल होता हुआ इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि हाय मैने विचार किया था कि 'मै इस बलशालीके लिए निवेदन कर स्त्री सम्बन्धी शोकसे छूट जाऊँगा' इसी बड़ी आशासे मै यहाँ आया था पर मेरे भाग्यरूपी हाथीने उस आशारूपी महावृक्षको कैसे गिरा दिया। हाय अब मुझ पापीको किस प्रकार शान्ति होगी ॥७-९॥ क्या अब मै आदरके साथ हनुमान्का आश्रय लूँ जिससे वह मेरे समान रूपको धारण करनेवाले मायामयी सुग्रीवका मरण कर सके ॥१०॥ उद्योगसे रहित मनुष्योंको सुख कैसे प्राप्त हो सकता है, इसलिए मै दु खका नाश करनेके लिए उत्तम उद्योगका आश्रय लेता हूँ ॥११॥ अथवा हनुमान्को अनेक बार देखा है अत वह अनादर करेगा क्योंकि नवीन चन्द्रमा ही लोगोंके द्वारा अनुरागके साथ वन्दनीय होता है अन्य समय नहीं है ॥१२॥ इसलिए महाबलवान, देदीप्यमान् और महाविद्याओंमे निपुण रावणकी शरणमे जाता हूँ वही

---

१. दुःखतः म०, क्रियमाणानुमरणाक्रान्ताभिरपरान् म०। २. रुदिता म०। ३. ऽनादरो म०।

अजानानो विशेषं वा क्रोधचोदितमानसः । दशाननः कदाचिन्नौ हन्तुं वाञ्छेदुभावपि ॥१४॥
मन्त्रदोषमसत्कारं दानं पुण्यं स्वशूरताम् । दुःशीलत्वं मनोदाहं दुर्मित्रेभ्यो न वेदयेत् ॥१५॥
तस्माद्येनैव संग्रामे निहितः खरदूषणः । तमेव शरणं यामि स मे शान्तिं करिष्यति ॥१६॥
तुल्यव्यसनताहेतोः कालोऽयमुपसर्पति । सद्भावं हि प्रपद्यन्ते तुल्यावस्था जना भुवि ॥१७॥
एवं विमृश्य सञ्जातचारुबुद्धिः समन्ततः । प्रजिघायादराद् दूतं प्रियं कर्तुं विराधितम् ॥१८॥
सुग्रीवागमने तेन ज्ञापितेऽभूद् विराधितः । सविस्मयः सतोषश्च चकार च मनस्यदः ॥१९॥
चित्रं सुग्रीवराजो मां ससैन्यः सन्निषेवते । अथवाश्रयसामर्थ्यात् पुंसां किं नोपजायते ॥२०॥
ततो दुन्दुभिनिर्घोषं समाकर्ण्य घनोपमम् । पातालनगरं जातं भयाकुलमहाजनम् ॥२१॥
ततो लक्ष्मीधरोऽपृच्छदतुराधाङ्गसम्भवम् । वद तूर्यनिनादोऽयं श्रूयते कस्य सहतः ॥२२॥
सोऽवोचच्छ्रूयतां देव महाबलसमन्वितः । नाथोऽयं कपिकेतूनां प्राप्तस्त्वां प्रेमतत्परः ॥२३॥
भ्रातरौ बालिसुग्रीवौ किष्किन्धानगराधिपौ । तिग्मांशुरजसः पुत्रौ प्रख्याताववनाविमौ ॥२४॥
वालीति योऽत्र विख्यातः शीलशौर्यादिभिर्गुणैः । अभिमानमहाशैलो नानसीद् दशवक्त्रकम् ॥२५॥
परं प्राप्य प्रबोधं स कृत्वा सुग्रीवसाच्छ्रियम् । तपोवनमुपाविक्षत्सर्वग्रन्थविवर्जितम् ॥२६॥
सुग्रीवोऽप्यभिसक्तात्मा सुताराया श्रियान्वितः । राज्ये निःकण्टके रेमे शचीयुक्तो यथा हरिः ॥२७॥

मुझे शान्ति प्रदान करेगा ॥१३॥ अथवा जिसका मन क्रोधसे प्रेरित हो रहा है ऐसा रावण, विशेषको न जानता हुआ कदाचित् हम दोनोको ही मारनेकी इच्छा करे तो उलटा अनर्थ हो जायगा ॥१४॥ इसके साथ नीति भी यह कहती है कि दुष्ट मित्रोंके लिये, मन्त्रदोष, असत्कार, दान, पुण्य, अपनी शूर-वीरता, दुष्ट स्वभाव और मनकी दाह नही बतलानी चाहिए ॥१५॥ इसलिये जिसने युद्धमे खरदूषणको मारा है उसीके शरणमे जाता हूँ, वही मेरे लिए शान्ति उत्पन्न करेगा ॥१६॥ रामको भी स्त्रीका विरह हुआ है और मै भी स्त्रीके विरहसे दुःखी हूँ इसलिये एक समान दुःख होनेसे यह समय उनके पास जानेके योग्य है क्योकि पृथिवी पर समान अवस्थावाले मनुष्य सद्भाव—पारस्परिक प्रीतिको प्राप्त होते है ॥१७॥ ऐसा विचारकर जिसे सब ओरसे उत्तम बुद्धि प्राप्त हुई थी ऐसे सुग्रीवने विराधितको अनुकूल करनेके लिये उसके पास अपना दूत भेजा ॥१८॥ जब दूतने सुग्रीवके आगमनका समाचार कहा तब विराधित आश्चर्य और संतोषसे युक्त होकर मनमे यह बिचार करने लगा कि आश्चर्य है सुग्रीव तो हमारे द्वारा सेवा करने योग्य है फिर भी वह हमारी सेवा कर रहा है सो ठीक ही है क्योकि आश्रयकी सामर्थ्यसे मनुष्योंके क्या नहीं होता है ? ॥१९-२०॥

तदनन्तर मेघके समान दुन्दुभिका शब्द सुनकर पाताल नगर, (अलंकार पुर), भयसे व्याकुल हैं महाजन जिसमे ऐसा हो गया ॥२१॥ तत्पश्चात् लक्ष्मणने विराधितसे पूछा कि कहो कि यह किसकी तुरहीका शब्द सुनाई दे रहा है ? ॥२२॥ इसके उत्तरमे विराधितने कहा कि हे देव ! यह महाबलसे सहित, वानरवंशियोंका स्वामी सुग्रीव प्रेमसे युक्त हो आपके पास आया है ॥२३॥ बालि और सुग्रीव ये दोनो भाई किष्किन्धा नगरीके स्वामी है, राजा सहस्ररश्मि रजके पुत्र है तथा पृथिवी पर अत्यन्त प्रसिद्ध है ॥२४॥ इनमें जो बालि नामसे प्रसिद्ध था वह शील, शूर-वीरता आदि गुणोसे विख्यात था तथा अभिमानके लिए मानो सुमेरु ही था, उसने रावणको नमस्कार नही किया था ॥२५॥ अन्तमें परम प्रबोधको प्राप्त हो तथा राज्यलक्ष्मी सुग्रीवके आधीन कर वह सर्वपरिग्रहसे रहित तपोवनमे प्रविष्ट हो गया ॥२६॥ सुग्रीव भी अपनी सुतारा नामक स्त्रीमे अत्यन्त आसक्त हो

१ बोधित-म० । २. आवाम् । ३ मुपसर्पणे ख०, ज० । ४. तुल्यावाञ्छा म० । ५ प्रख्यातौ + अवनौ = पृथिव्याम्, इमौ । ६. इन्द्रः ।

सुतो यस्याङ्गदाभिख्यः गुणरत्नविभूषितः । किष्किन्धौविषये यस्य सत्कथान्यविवर्जिता ॥२८॥
तयोरिय कथा यावद्वर्ततेऽनन्यचेतसोः । [1]तावत्सम्प्राप सुग्रीवः श्रीमत्पार्थिवकेतनम् ॥२९॥
ज्ञातश्चानुमतिं प्राप्य विवेशोचितमङ्गलम् । राजाधिकृतलोकेन परमं दर्शितादरः ॥३०॥
लक्ष्मीधरकुमाराद्यास्तं राजन् प्राप्तविस्मयाः । परिषस्वजिरे कान्त्या विकसद्वनाम्बुजाः ॥३१॥
उपविष्टाश्च विधिना जाम्बूनदमहीतले । योग्यं सम्भाषणं चक्रुरमृतोपमया गिरा ॥३२॥
निवेदितं ततो वृद्धैरिति पद्मसमर्हाक्षिते[3] । देव किष्किन्धनगरे सुग्रीवाख्योऽमर्नाश्वरः ॥३३॥
प्रभुर्महाबलो भोगी गुणवानतिसत्प्रियः । केनापि दुष्टमायेन खगेनानर्थमाहृतः ॥३४॥
एतस्याकृतिमाश्रित्य राज्यभोगं पुरं बलम् । सुतारां च गृहीतुं तां कोऽपि वाञ्छति दुर्मतिः ॥३५॥
एतस्य वचनस्यान्ते रामस्तत्सम्मुखोऽभवत् । अचिन्तयच्च मत्तोऽपि दुःखितो नाम विद्यते ॥३६॥
मयाद्य सदृशो मन्ये यदि वाधरता भजेत् । येनास्य दृश्यमानैकप्रतिपक्षेण बाधनम् ॥३७॥
अर्थोऽस्य दुस्तरोऽत्यन्तं कथमेतद्भविष्यति । हानिरेवंविधस्यैषा मद्विधः किं करिष्यति ॥३८॥
सुमित्रातनयोऽपृच्छत् कृत्स्नं दुःखस्य कारणम् । सुग्रीवस्य मनस्तुल्यं धीरं जाम्बूनदश्रुतिम् ॥३९॥
ततोऽसौ मन्त्रिणां मुख्यो जगाद विनयान्वितः । असत्सुग्रीवरूपस्य सत्सुग्रीवस्य चान्तरम् ॥४०॥

राज्य लक्ष्मी सहित निष्कण्टक राज्यमें इस प्रकार क्रीडा करता था जिस प्रकार कि इन्द्राणी सहित इन्द्र क्रीड़ा करता है ॥२७॥ उस सुग्रीवका गुणरूपी रत्नोंसे विभूषित अङ्गद नामका ऐसा पुत्र है कि किष्किन्धा देशमें जिसकी कथा अन्य कथाओंसे रहित है अर्थात् अन्य लोगोंकी कथा छोड़कर सम्पूर्ण किष्किन्धा देशमें उसी एककी कथा होती है ॥२८॥ इस प्रकार अनन्यचित्तके धारक लक्ष्मण तथा विराधितके बीच जब तक यह वार्ता चल रही थी कि तब तक सुग्रीव राजभवनमें आ पहुँचा ॥२९॥ राजाके अधिकारी लोगोंने ज्ञात होने पर उसके प्रति बहुत आदर दिखलाया। तदनन्तर अनुमति पाकर उसने मङ्गलाचारका अवलोकन करते हुए राज भवनमें प्रवेश किया ॥३०॥ हे राजन्! जिन्हें आश्चर्य प्राप्त हो रहा था तथा जिनके मुख कमल कान्तिसे खिल रहे थे ऐसे लक्ष्मण आदिने उसका आलिङ्गन किया ॥३१॥ शिष्टाचारके उपरान्त सब विधिपूर्वक स्वर्णमय पृथिवी तल पर बैठे और अमृततुल्य वाणीसे परस्पर वार्तालाप करने लगे ॥३२॥

तदनन्तर वृद्धजनोंने राजा रामचन्द्रके लिए परिचय दिया कि हे देव! यह किष्किन्ध नगरका राजा सुग्रीव है ॥३३॥ यह महा ऐश्वर्यशाली, महाबलवान्, भोगी गुणवान् तथा सज्जनो को अतिशय प्यारी है। परन्तु किसी दुष्ट मायावी विद्याधरने इसे अनर्थ—आपत्तिमें डाल दिया है ॥३४॥ कोई दुर्बुद्धि विद्याधर इसका रूप धर इसके राज्य भोग, नगर, सेना तथा इसकी प्रिया सुताराको भी ग्रहण करना चाहता है ॥३५॥ तदनन्तर वृद्धजनोंके उक्त वचन पूर्ण होनेके बाद राम, सुग्रीवके सन्मुख उसकी ओर देखने लगे। रामने मनमें विचार किया कि अरे! यह तो मुझसे भी अधिक दुःखी है ॥३६॥ यह मेरे समान है अथवा मैं समझता हूँ कि यह मुझसे भी कहीं अधिक हीनताको प्राप्त है क्योंकि इसका शत्रु तो इसके सामने ही बाधा पहुँचा रहा है ॥३७॥ इसका यह कार्य अत्यन्त कठिन है सो किस प्रकार होगा। इसकी यह बड़ी हानि हो रही है मेरा जैसा व्यक्ति क्या करेगा? ॥३८॥ लक्ष्मणने सुग्रीवके मनके समान जो जाम्बूनद नामक धीर-वीर मन्त्री था उससे दुःखका समस्त कारण पूछा ॥३९॥

तदनन्तर मन्त्रियोंमें मुख्य जाम्बूनदने बड़ी विनयसे मायामय सुग्रीव और वास्तविक

१. सम्प्राप्तः म० । २. विवेशे कृतमङ्गलः म० । ३ महीक्षितौ ख. । ४ माहतः म०, ब० । ५. मद्पेक्षयापि । ६. अधरता = हीनता । ७. लक्ष्मण- म० ।

राजन् दारुणानङ्गलतापाशवशीकृत । रूप रूपविश कोऽपि सम कृत्वास्य मायया ॥४१॥
अज्ञातो मन्त्रिवर्गस्य सर्वस्यात्मजनस्य च । सुग्रीवान्त पुर तुष्ट प्राविशत्पापचेतन ॥४२॥
प्रविशन्त च त दृष्ट्वा सुताराह्वा परा सती । महादेवी जगादास्यसमुद्विग्ना निज जनम् ॥४३॥
दुष्टविद्याधर कोऽपि सुग्रीवाकृतिरेषक । आयाति पापपूर्णात्मा चारुलक्षणवर्जित ॥४४॥
अभ्युत्थानादिकामस्य क्रियां माकार्ष्ट पूर्ववत् । केनापि तरणीयोऽयमभ्युपायेन दुर्णय ॥४५॥
अथाशङ्काविमुक्तात्मा गम्भीरो लीलयान्वित । गत्वा सुग्रीववद्भेजे सौग्रीव स वरासनम् ॥४६॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप बालिराजानुज क्रमात् । अद्राक्षीच्च जन दीनमप्राक्षीच्च समाकुल ॥४७॥
कस्मादय जनोऽस्माक म्लानवक्त्रेक्षणो भृशम् । विषाद वहते स्थाने स्थाने कृतसमागम ॥४८॥
किमङ्गदो गतो मेरु वन्दनार्थी चिरायति । कि वा प्रमादतो देवी कस्याप्युपगता रुषम् ॥४९॥
जन्ममृत्युजरात्युग्रनानासंसारदु खत । विभ्यद् विभीषण कि स्यात्तपोवनमुपागत ॥५०॥
चिन्तयन्निन्यतिक्रम्य द्वाराणि मणितेजसा । भासमानानि सर्वाणि सयुक्तानि सुतोरणै ॥५१॥
गीतजल्पितमुक्तानि सुप्तानीव समतत । शङ्कितद्वारपालानि प्रयातान्यन्यतामिव ॥५२॥
प्रासादप्रवरोत्सङ्गे विक्षिपन् दृष्टिमायताम् । अपश्यत्स्त्रीजनान्तस्थमात्माभ दुष्टखेचरम् ॥५३॥
दिव्यहाराम्बर दृष्ट्वा त शोभा दधत पुर । चित्रावतसक कान्त्या विकसद्वदनाम्बुजम् ॥५४॥

सुग्रीवका अन्तर बताया ॥४०॥ उसने कहा कि हे राजन् ! अतिशय दारुण कामरूपी लताके पाशसे विवश तथा सुताराके रूपसे मोहित कोई पापी विद्याधर मायासे इसका रूप बनाकर मन्त्रीवर्ग तथा समस्त परिजनोंके बिना जाने, सन्तुष्ट हो सुग्रीवके अन्तःपुरमे प्रविष्ट हुआ ॥४१–४२॥ उसे प्रवेश करते देख सुतारा नामकी परम सती महादेवीने भयभीत होकर अपने परिजनसे कहा कि जिसकी आत्मा पापसे पूर्ण है, तथा जो उत्तम लक्षणोसे रहित है ऐसा यह कोई दुष्ट विद्याधर सुग्रीवका वेष रखकर आता है अतः पहलेकी तरह तुम लोग इसका सत्कार नही करो। यह दुर्नयरूपी सागर किसी उपायसे तिरने योग्य है—पार करने योग्य है ॥४३–४५॥ तदनन्तर जिसकी आत्मा शङ्कासे रहित थी, जो गम्भीर था और लीलासे सहित था ऐसा वह मायामय विद्याधर सुग्रीवके समान जाकर उसके सिहासन पर आ बैठा ॥४६॥ इसी बीचमे बालिराजाका अनुज वास्तविक सुग्रीव, यथाक्रमसे वहाँ आया। आते ही उसने अपने परिजनको दीन देखकर व्यग्र हो उसने पूछा कि ये हमारे परिजन, अत्यन्त म्लानमुख एवं म्लाननेत्र होकर विषाद क्यो धारण कर रहे हैं तथा स्थान स्थान पर इकट्ठे हो रहे है ? ॥४७–४८॥ वन्दनाकी अभिलाषासे अङ्गद सुमेरु पर्वत पर गया था सो क्या आनेमे विलम्ब कर रहा है अथवा महादेवी प्रमादके कारण किसीपर रोषको प्राप्त हुई है ? ॥४९॥ अथवा जन्म मृत्यु और जरासे अत्यन्त उग्र संसारके नाना दु.खोसे भयभीत होकर विभीपण तपोवनको प्राप्त हुआ है ॥५०॥ इस प्रकार चिन्ता करता हुआ सुग्रीव, मणियोके तेजसे देदीप्यमान तथा उत्तमोत्तम तोरणोसे संयुक्त उन समस्त द्वारोको उल्लङ्घनकर महलके भीतर प्रविष्ट हुआ कि जो संगीतमय वार्तालापसे रहित थे, सब ओर से संतप्त हुएके समान जान पड़ते थे, जिनके द्वारपाल शङ्कासे युक्त थे तथा जो अन्यरूपताको प्राप्त हुएके समान ज्ञान पड़ते थे ॥ ५१–५२॥ जब उसने महलके उत्तम मध्यभागमे अपनी लम्बी दृष्टि डाली तो उसने स्त्री जनोके पास बैठे हुए अपनी ही समान आभावाले एक दुष्ट विद्याधरको देखा ॥५३॥ जो दिव्य हार और वस्त्रोको धारण कर रहा था, परम शोभाका धारक था, चित्र विचित्र आभूषणोंसे युक्त था, तथा कान्तिसे जिसका मुख कमल विकसित हो रहा था ऐसे दुष्ट विद्याधरको

१. वरणीयोऽय- म० । २. सुग्रीव । ३. प्रमादते म० । ४. बिम्यद्विषण्णः म० ।

क्रुद्धो जगर्ज सुग्रीवः प्रावृषेण्यघनोपमम् । दिङ्मुखेषु क्षिपन् भासमक्ष्णोः सन्ध्याघनारुणम् ॥५५॥
ततः सुग्रीवतुल्योऽपि कुर्वन् परुषगर्जितम् । उत्तस्थौ कोपरक्तास्यः करीव मदविह्वलः ॥५६॥
सदष्टोष्ठौ[1] महासत्त्वो दृष्ट्वा तौ योद्धुमुद्यतौ । साम्ना[2] निरुरुधुः क्षिप्रं श्रीचन्द्राद्याः सुमन्त्रिणः ॥५७॥
सुतारेति ततोऽवोचद् दुष्टोऽयं कोऽपि खेचरः । तुल्यः सर्वेण देहेन बलेन वचसा रुचा ॥५८॥
पत्युर्मम न तुल्यस्तु लक्षणैर्मनकागपि[3] । प्रासादशङ्खकुम्भाद्यैश्चिरमस्थितलक्षितैः ॥५९॥
भर्तुर्मे भूषिताङ्गस्य महापुरुषलक्षणैः । कस्यापि वाधमस्यास्य[4] वाजिवालेयतुल्यता ॥६०॥
श्रुत्वापीदं सुतारोक्तं सादृश्यहृतचित्तकैः[5] । मन्त्रिभिस्तदवज्ञातं निःस्वोक्तं धनिभिर्यथा ॥६१॥
एकीभूय च तैः सर्वैर्मन्त्रिभिर्मतिशालिभिः । गदितं सम्प्रधार्येदं सन्देहहृतमानसैः ॥६२॥
मद्यपस्यातिवृद्धस्य वेश्याव्यसनिनः[6] शिशोः । प्रमदानां च वाक्यानि जातु कार्याणि नो बुधैः ॥६३॥
अत्यन्तदुर्लभा लोके गोत्रशुद्धिस्तया विना । नितान्तपरमेणापि न राज्येन प्रयोजनम् ॥६४॥
सम्प्राप्य निर्मलं गोत्रं भव्यं शीलादिभूषितैः । तस्मादन्तःपुरं यत्नादिदं रक्ष्यं सुनिर्मलम् ॥६५॥
अकीर्तिरिति निन्द्येयमस्य नोत्पद्यते यथा । कुरुध्वमतियत्नेन विभज्य[7]खिलमेतयोः ॥६६॥
अङ्गः कृत्रिमसुग्रीवं पितृभ्रान्त्या समाश्रितः । अङ्गदः सत्यसुग्रीवं मातृवाक्यानुरोधतः ॥६७॥

सामने देख सुग्रीव, क्रुद्ध होकर सन्ध्याके मेघ समान लाल नेत्रोंकी कान्तिको दिशाओंमें फैलाता हुआ वर्षा ऋतुके मेघके समान गरजा ॥५४-५५॥ तदनन्तर सुग्रीवके समान रूपको धारण करनेवाला विद्याधर भी क्रोधसे रक्तमुख हो हाथीके समान मदसे विह्वल होता और कठोर गर्जना करता हुआ उठा ॥५६॥

अथानन्तर ओठोंको डसते हुए उन दोनों बलवानोंको युद्धके लिए उद्यत देख श्रीचन्द्र आदि मन्त्रियोंने शान्ति पूर्वक शीघ्र ही उन्हें रोक दिया ॥५७॥ तत्पश्चात् सुताराने कहा कि यह कोई दुष्ट विद्याधर है। यद्यपि समस्त शरीर, बल, वचन, और कान्तिसे तुल्य दिखता है परन्तु प्रसाद, शङ्ख, कलश, आदि लक्षणोंसे जो कि मेरे पतिके शरीरमें चिरकालसे स्थित हैं तथा जिन्हें मैंने अनेक बार देखा है किञ्चित् भी मेरे पतिके समान नहीं है ॥५८-५९॥ महापुरुषोंके लक्षणोंसे जिनका शरीर भूषित है ऐसे मेरे पतिकी तथा इस किसी नीचकी तुल्यता घोड़े और गधेकी तुल्यताके समान है ॥६०॥

तदनन्तर दोनोंकी सदृशताके कारण जिनके चित्त हरे गये थे ऐसे मन्त्रियोंने सुताराके इन शब्दोंको सुनकर भी उनकी उस तरह अवज्ञा कर दी जिस प्रकार कि धनी मनुष्य निर्धन मनुष्यके वचनोंकी अवज्ञा कर देते हैं ॥६१॥ संदेहने जिनका मन हर लिया था ऐसे उन बुद्धिशाली मन्त्रियोंने एकत्रित हो सलाह कर यह कहा कि मद्यपायी, अत्यन्त वृद्ध, वेश्या, व्यसनी, बालक और स्त्रियोंके वचन विद्वज्जनोंको कभी नहीं मानना चाहिए॥६२-६३॥ लोकमें गोत्रकी शुद्धि अत्यन्त दुर्लभ है इसलिए उसके बिना बहुत भारी राज्यसे भी प्रयोजन नहीं है ॥६४॥ निर्मल गोत्र पा कर ही शीलादि आभूषणोंसे विभूषित हुआ जाता है इसलिए इस निर्मल अन्तःपुरकी यत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिये ॥६५॥ जिस तरहसे सुग्रीव निन्दनीय अपकीर्ति न हो उस तरह इन दोनोंका सब विभाग कर अतियत्नपूर्वक काम करना चाहिए ॥६६॥ अङ्गनामका पुत्र पिताकी भ्रान्तिसे कृत्रिम-बनावटी सुग्रीवके पास गया और अङ्गद नामका पुत्र माताके

---

१. सदष्टौ म० । २ साम्ना म० । ३. मनागपि ईषदपि- 'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः' इत्यकच् । ४. वाद्यमस्यास्य म० । ५. वित्तकैः म० । ६. व्यसनस्य शिशोः म० । ७. विभिद्या- म० ।

सन्दिहाना निजे नाथे वयमप्यतिसाम्यत । सुतारावचनादेन पुरस्कृत्य व्यवस्थिता ॥६८॥
अक्षौहिण्यस्तत सप्त प्रभुमेकमुपाश्रिता । इतर चापि तावन्त्य सशयस्य वश गता ॥६९॥
पुरस्य दक्षिणे भागे सुग्रीव कृत्रिम कृत । उत्तरे तस्य सुग्रीव स्थापितश्च यथाविधि ॥७०॥
अकरोच्चन्द्ररश्मिश्च प्रतिज्ञामिति[1] सशये । बालिपुत्रो तत कुर्वन् सर्वत प्रतिपालनम् ॥७१॥
सुताराभवनद्वार यो व्रजेत्कश्चिदस्य स । प्रोद्धेन्दीवरशोभस्य वध्य खङ्गस्य मे ध्रुवम् ॥७२॥
तत कपिध्वजावेद स्थापितौ तावुभावपि । अपश्यन्तौ सुतारास्य निमग्नौ व्यसनार्णवे ॥७३॥
ततोऽग्र सत्यसुग्रीवो दयिताविरहाकुल । बहुश शोकहानार्थमगच्छत् खरदूषणम् ॥७४॥
पुनश्च मारुते पार्श्वमब्रवीच्च पुन पुन । परित्रायस्व दु खार्त प्रसाद कुरु बान्धव ॥७५॥
मदीय रूपमासाद्य मायया कोऽपि पापधी । कुरुते मे परा बाधा स गत्वा मार्यता द्रुतम् ॥७६॥
सुग्रीवस्य वच श्रुत्वा तदवस्थस्य शोकिन । अञ्जनातनय क्रोधाद्वाडवाग्निसमोऽभवत् ॥७७॥
विमान परमच्छायमप्रतीघातसञ्ज्ञितम् । नानालङ्कारभूयिष्ठ त्रिदशावाससन्निभम् ॥७८॥
उत्साह परम बिभ्रदारुह्य सचिवैर्वृत । किष्किन्धनगर प्राप स्वर्ग सुकृतभागिव ॥७९॥
श्रुत्वा प्राप्त हनूमन्तमसकौ विगतज्वर । आरुह्य द्विरद प्रीत सुग्रीव इव निर्ययौ ॥८०॥
त कपिध्वजमालोक्य पर सादृश्यमागतम् । विस्मितो वायुपुत्रोऽपि पतित सशयार्णवे ॥८१॥
अचिन्तयच्च सुव्यक्त सुग्रीवो द्वाविमो कथम् । एतयोः कतर हन्मि यद्विशेषो न लभ्यते ॥८२॥

वचनोंके अनुरोधसे सत्य सुग्रीवके पास गया ॥६७॥ हम लोग भी अत्यन्त सदृशताके कारण अपने स्वामीके विषयमे संदेशशील है परन्तु सुताराके कहनेसे इसीको आगे कर स्थित हैं ॥६८॥ सशयके वशमे पड़ी सात अक्षौहिणी सेनाएँ एक सुग्रीवके आश्रय गई और उतनी ही दूसरे सुग्रीवके अधीन हुई ॥६९॥ नगरके दक्षिण भागमे कृत्रिम सुग्रीव रक्खा गया और वास्तविक सुग्रीव नगरके उत्तर भागमे विधिपूर्वक स्थापित किया गया ॥७०॥ सब ओरसे रक्षा करनेवाले बालिके पुत्र चन्द्ररश्मिने सशय उपस्थित होने पर इस प्रकार की प्रतिज्ञा की कि इन दोनोंमे जो भी सुताराके भवनके द्वार पर जावेगा वह तरुण इन्दीवर—नीलकमलके समान सुशोभित मेरी खङ्गके द्वारा अवश्य ही बध्य होगा—मेरी तलवारके द्वारा मारा जायगा ॥७१–७२॥ तदनन्तर इस प्रकार रक्खे हुए दोनो सुग्रीव सुताराका मुख न देखते हुए व्यसनरूपी सागरमे निमग्न हो गये ॥७३॥

अथानन्तर स्त्रीके विरहसे आकुल सत्यसुग्रीव, शोक दूर करनेके लिए अनेक बार खर-दूषणके पास आया ॥७४॥ फिर हनुमान्‌के पास जाकर उसने बार-बार कहा कि हे बान्धव ! मैं दु.खसे पीडित हूँ अत मेरी रक्षा करो, प्रसन्न होओ ॥७५॥ कोई पापबुद्धि विद्याधर मायासे मेरा रूप रखकर मुझे अत्यन्त बाधा पहुँचा रहा है सो जाकर उसे शीघ्र ही मारो ॥७६॥ उस प्रकारकी अवस्थामे पड़े शोक युक्त सुग्रीवके वचन सुनकर हनुमान् क्रोधसे बडवानलके समान हो गया ॥७७॥ वह परम उत्साहको धारण करता हुआ मन्त्रियोंके साथ, अत्यन्त कान्तिमान्, नाना अलङ्कारोंसे प्रचुर, स्वर्गतुल्य अप्रतीघात नामक विमानमे सवार हो उस तरह किष्किन्ध नगर पहुँचा जिस तरह कि पुण्यात्मा मनुष्य स्वर्गमे पहुँचता है ॥७८–७९॥ हनुमान्‌को आया सुन वह शीघ्र ही हाथी पर सवार हो प्रसन्नताके साथ सुग्रीवकी तरह नगरसे बाहर निकला ॥८०॥ अत्यन्त सादृश्यको प्राप्त हुए उस कपिध्वजको देखकर हनुमान् भी विस्मित हो संशयरूपी सागरमे पड़ गया ॥८१॥ वह विचार करने लगा स्पष्ट ही ये दोनो सुग्रीव हैं जब तक कि

१. प्रतिज्ञातमसशये ख० ।

अविदित्वानयोर्भेदमुभयोर्वानरेन्द्रयोः । कदाचिद् वधिषं माऽहं[1] सुग्रीवं सुहृदां वरम् ॥८३॥
मुहूर्तं मन्त्रिभिः सार्धं विमृश्य च यथाविधि[2]। उदासीनतया देव मारुतिः स्वपुरं गतः ॥८४॥
निवृत्ते मरुतः पुत्रे सुग्रीवोऽभवदाकुलः । असौ च सदृशोऽमुष्य तथैवातिष्ठदाशया ॥८५॥
मायासहस्रसम्पन्नो महावीर्यो महोदयः । उल्कायुधोऽपि सन्देहं प्राप कष्टमिदं परम् ॥८६॥
निमग्नं संशयाम्भोधौ व्यसनग्राहसङ्कटे । न जानाम्यधुना देव क इमं तारयिष्यति ॥८७॥
कान्तावियोगदावेन प्रदीप्तं कपिकेतनम् । कृतज्ञं भज सुग्रीवं प्रसीद रघुनन्दन ॥८८॥
अयं शरणमायातो भवन्तं श्रितवत्सलम् । भवद्विधशरीरं हि परदुःखस्य नाशनम् ॥८९॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा विस्मयव्याप्तमानसाः । जाता पद्मादयः सर्वे धिगहोह्रीतिभाषिणः ॥९०॥
अचिन्तयच्च पद्मोऽतः[3] सखायं मम दुःखतः । जातोऽपरः समानेषु प्रायः प्रेमोपजायते ॥९१॥
एष प्रत्युपकारं मे यदि कर्तुं न शक्यति । निर्ग्रन्थश्रमणो भूत्वा साधयिष्यामि निर्वृतिम् ॥९२॥
एवं ध्यात्वानुराधाद्यैः[4] समं समन्त्र्य च क्षणम् । कपिमौलीन्द्रमाहूय पद्मनाभोऽभ्यभाषत ॥९३॥
सत्सुग्रीवो भवानन्यो वा सर्वथा त्वं मयेप्सितः । विजित्य भवतस्तुल्यं पदं यच्छामि ते निजम् ॥९४॥
तथाविधं पुरा राज्यं प्राप्य योगं सुतारया । सेवस्व मुदितोऽत्यन्तभग्ननिःशेषकण्टकम् ॥९५॥

विशेषता नही जान पडती है तब तक इन दो मे से एकको कैसे मारूँ ? ॥८२॥ इन दोनो वानर राजाओका अन्तर जाने बिना मै कदाचित् मित्रोमे श्रेष्ठ सुग्रीवको ही न मार बैठूँ ॥८३॥ इस प्रकार मुहूर्त भर मन्त्रियोके साथ विधिपूर्वक विचार कर उदासीन भावसे हनुमान् अपने नगरको वापिस चला गया ॥८४॥ हनुमान्के वापिस लौट जाने पर सुग्रीव बहुत व्याकुल हुआ । और जो इसके समान दूसरा मायावी सुग्रीव था वह आशा लगाये हुए उसी प्रकार स्थित रहा आया ॥८५॥ यद्यपि सुग्रीव हजारो प्रकारकी मायासे स्वय सम्पन्न है, महाशक्तिशाली है, महान् अभ्युदयका धारक है, और उल्कारूप अस्त्रोका धारक है तो भी सदेहको प्राप्त हो रहा है यह बड़े कष्टकी बात है ॥८६॥ हे देव ! व्यसनरूपी मगरमच्छोसे भरे हुए सशय रूपी सागरमे निमग्न इस सुग्रीवको कौन तारेगा यह नहीं जान पडता ॥८७॥ हे राघव ! स्त्री वियोग रूपी दावानलसे प्रदीप्त तथा कृत उपकारको माननेवाले इस कपिध्वज सुग्रीवकी सेवा स्वीकृत करो, प्रसन्न होओ ॥८८॥ यह आपको आश्रितवत्सल सुनकर आपकी शरण आया है, यथार्थमे आप जैसे महापुरुषका शरीर पर-दु खका नाश करनेवाला है ॥८९॥

तदनन्तर उसके वचन सुनकर जिनके हृदय आश्चर्यसे व्याप्त हो रहे थे ऐसे राम आदि कभी लोभ 'धिक्' 'अहो' 'ह्री' आदि शब्दोका उच्चारण करने लगे ॥९०॥ रामने विचार किया कि अब यह दु'खके कारण मेरा दूसरा मित्र हुआ है क्योकि प्राय कर समान मनुष्योमे ही प्रेम होता है ॥९१॥ यदि यह मेरा प्रत्युपकार करनेमें समर्थ नही होगा तो मै निर्ग्रन्थ साधु हो कर मोक्षका साधन करूँगा ॥९२॥ इस प्रकार ध्यान कर तथा विराधित आदिके साथ क्षण भर मन्त्रणा कर सुग्रीवको बुला रामने उससे कहा ॥९३॥ कि तुम चाहे यथार्थ सुग्रीव होओ और चाहे कृत्रिम सुग्रीव मैं तुम्हें चाहता हूँ और तुम्हारे सदृश जो दूसरा सुग्रीव है उसे मार कर तुम्हारा अपना पद तुम्हें देता हूँ ॥९४॥ तुम पहलेकी भाँति अपना राज्य प्राप्त कर समस्त शत्रुओंको निर्मूल करते हुए प्रसन्न हो सुताराके साथ समागमको प्राप्त होओ ॥९५॥

१. -द्विद्विषमहं म० । २. शृणु वत्सकम् म० । ३. पद्माभः ख०, ज०, क०, । ४. -नुरोधाद्यैः म० ।

यदि मे निश्चयोपेत प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् । सीता ता गुणसम्पूर्णां भद्रोपलभसे प्रियाम् ॥९६॥
कपिकेतुरुवाचेद यदि ता तव न प्रियाम् । सप्ताहाऽभ्यन्तरे वेद्मि विशामि ज्वलन तदा ॥९७॥
अमीभिरक्षरै पद्म: पर प्रह्लादमाश्रित । शशाङ्करश्मिसदृशैर्दधान· कुमुदोपमाम् ॥९८॥
प्रवाहेणामृतस्येव प्लावितो विकचानन. । रोमाञ्चनिर्भर देह बभार च समन्तत ॥९९॥
अन्योन्यस्य वय द्रोहरहिताविति चादरात् । [1]समय चक्रतुर्जैन तस्मिन्नेव जिनालये ॥१००॥
ततो रथवरारूढौ महासामन्तसेवितौ । किष्किन्धनगर तेन प्रयातौ रामलक्ष्मणौ ॥१०१॥
समीपीभूय दूतश्च प्रहित कपिमौलिना । निर्भर्त्सितश्च कूटेन सुग्रीवेणागत पुन ॥१०२॥
ततश्चालीकसुग्रीव सनह्य स्यन्दनस्थित । युद्धाय निर्ययौ क्रुद्ध पृथुसैन्यसमावृत ॥१०३॥
अथ कूटभटाटोप' सङ्कटश्चण्डनिस्वन । सम्प्रहारो महानासीद्प्रसलग्नसेनयो' ॥१०४॥
सुग्रीवमेव सुग्रीवो जगामोद्ग्रीवमुग्ररुट् । विद्याया करणासक्तो दृढ योद्धु समुद्यत ॥१०५॥
सम्प्रहारो महान् जातस्तयोश्चक्रेषुसायकै । अन्धकारीकृताकाशश्चिरमप्राप्तयो श्रमम् ॥१०६॥
अथ सुग्रीवमाहत्य गदयालीकवानरी । विज्ञाय मृत इत्येव तुष्ट परमुपाविशत् ॥१०७॥
निश्चेष्टविग्रहश्चाय सत्यशाखामृगध्वज. । निज शिबिरमानीत परिवार्य सुहृज्जनै ॥१०८॥

हे भद्र ! मैंने जो निश्चय किया है उसे प्राप्त करनेके बाद यदि तुम मेरी प्राणाधिका तथा गुणोंसे परिपूर्ण सीताका पता चला सके तो उत्तम बात है ॥९६॥ यह सुनकर सुग्रीवने कहा कि यदि मैं सात दिनके भीतर आपकी प्रियाका पता न चला दूँ तो अग्निमें प्रवेश करूँ ॥९७॥ चन्द्रमाकी किरणोंके समान सुग्रीवके इन अक्षरोंसे राम कुमुदकी उपमा धारण करते हुए परम आह्लादको प्राप्त हुए ॥९८॥ अमृतके प्रवाहसे तर हुए के समान उनका मुख-कमल खिल उठा तथा शरीर सब ओरसे रोमाञ्चोंसे व्याप्त हो गया ॥९९॥ हम दोनों परस्पर द्रोहसे रहित हैं—एक दूसरेके मित्र हैं इस प्रकार आदरके साथ उन दोनोंने उस जिनालयमें जिन-धर्मानुसार शपथ धारण की ॥१००॥

तदनन्तर महासामन्तोंसे सेवित रामलक्ष्मण सुग्रीवके साथ उत्तम रथ पर आरूढ हो किष्किन्ध नगरकी ओर चले ॥१०१॥ नगरके समीप पहुँच कर मुकुटमें वानरका चिह्न धारण करनेवाले सुग्रीवने दूत भेजा सो मायावी सुग्रीवके द्वारा तिरस्कृत होकर पुनः वापिस आ गया ॥१०२॥ तदनन्तर क्रोधसे भरा कृत्रिम सुग्रीव तैयार हो रथ पर बैठकर बड़ी सेनासे आवृत होता हुआ युद्धके लिए निकला ॥१०३॥ अथानन्तर जिनके आगे सेना लग रही थी ऐसे उन दोनोंमें महा युद्ध प्रारम्भ हुआ। उनका वह महा युद्ध कपटी योद्धाओंके विस्तारसे युक्त था, सकट पूर्ण था तथा तीक्ष्ण शब्दोंसे सहित था ॥१०४॥ जो तीक्ष्ण क्रोधका धारक था, तथा विद्याओंके करनेमें आसक्त था ऐसा सुग्रीव, अहंकारसे ग्रीवाको ऊपर उठानेवाले कृत्रिम सुग्रीवसे दृढ़ युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१०५॥ चिर काल तक युद्ध करनेके बाद भी जिनमें थकावटका अंश भी नहीं था ऐसे उन दोनों सुग्रीवोंमें महान् युद्ध हुआ। उनके उस युद्धमें चक्र-बाण तथा खड्ग आदि शस्त्रोंसे आकाशमें अन्धकार फैल रहा था ॥१०६॥

अथानन्तर कृत्रिम सुग्रीव, गदाके द्वारा सुग्रीवको चोट पहुँचा कर तथा 'यह मर गया' ऐसा समझ कर सतुष्ट होता हुआ नगरमें प्रविष्ट हुआ ॥१०७॥ इधर जिसका शरीर निश्चेष्ट

---

१. शपथं ।

अब्रवील्लब्धसंज्ञश्च नाथ हस्तमुपागत । जीवन्नेव कथं चौरः पुरं मम पुनर्गतः ॥१०९॥
नूनं न भवितव्यं मे दुःखस्यान्तेन राघव[1]। भवन्तमपि सम्प्राप्य किन्तु[2] कष्टमत परम् ॥११०॥
ततः पद्मप्रभोऽवोचद्भवतोर्युध्यमानयो । विशेषो न मया ज्ञातो न हतस्तेन ते समः ॥१११॥
अज्ञानदोषतो नाशं मा नैषीरस्त्वैव जातुचित् । सुहृद् जैनवाक्येन जनितं प्रियसङ्गमम् ॥११२॥
अथाहूतः पुनः प्राप्तः सुग्रीवप्रतिमो बली । संरम्भवह्निना दीप्तः पद्मेनाभिमुखीकृत ॥११३॥
अद्रिणेव स रामेण क्षोभितः सागरोपमः । निस्त्रशग्राहसङ्घातसञ्चारात्यन्तसङ्कुल ॥११४॥
लक्ष्मणेनैव सुग्रीव परिष्वज्य दृढं धृतः । स्त्रीवैरतः समीपं मा शत्रो कोपेन गादिति ॥११५॥
ततः ससार पद्माभ सुग्रीवाभं समाह्वयन् । ज्वलन् सग्रामसम्प्राप्तिजनितेनोरुतेजसा ॥११६॥
अथ पद्म समालोक्य शमापृच्छ्य च साधकम् । वैताली निःसृता विद्या नारीवोद्धतचेष्टिता ॥११७॥
सुग्रीवाकृतिनिर्मुक्तं वानराङ्कविवर्जितम् । सहसा साहसगतिमिन्द्रनीलनगोपमम् ॥११८॥
स्वभावमागतं दृष्ट्वा निःक्रान्तमिव कञ्चुकात् । शाखामृगध्वजाः सर्वे संक्षुभ्यैकत्वमाश्रिताः ॥११९॥
नानायुद्धाश्च संक्रुद्धा बलिनस्तमयूयुधन् । सोऽयं सोऽयमतिस्वानं कुर्वाणा पश्यतेति च ॥१२०॥
तेन तेजस्विना सैन्यं तद्द्विषामुरुशक्तिना । पुरस्कृतं दिशो भेजे यथा[3] तूलं नभस्वता ॥१२१॥

पड़ा था ऐसे यथार्थ सुग्रीवको उसके मित्र जन घेर कर अपने शिबिरमे ले आये ॥१०८॥ जब सचेत हुआ तब रामसे बोला कि नाथ! हाथमे आया चोर जीवित हो पुनः मेरे नगरमे कैसे चला गया ॥१०९॥ जान पड़ता है कि राघव! अब मेरे दुःखका अन्त नहीं होगा और फिर आपको प्राप्त कर भी। इससे बढकर कष्ट और क्या होगा? ॥११०॥ तत्पश्चात् रामने कहा कि मै युद्ध करते हुए तुम दोनोकी विशेषता नही जान सका था इसीलिए मैंने तुम्हारी सदृशता करनेवाले सुग्रीवको नहीं मारा है ॥१११॥ जिनागमका उच्चारणकर तू मेरा प्रिय मित्र हुआ है सो कहीं अज्ञानरूपी दोषसे तुझे ही नष्ट नही कर दू इस भयसे मै चुप रहा ॥११२॥

अथानन्तर उस कृत्रिम सुग्रीवको फिरसे ललकारा सो वह बलवान् क्रोधाग्निसे दीप्त होता हुआ पुनः आया तथा रामने उसका सामना किया ॥११३॥ जिस प्रकार पर्वतके द्वारा समुद्र क्षोभको प्राप्त होता है उसी प्रकार क्रूर योद्धारूपी मगरमच्छोके संचारसे अतिशय भरा हुआ वह समुद्र तुल्य कृत्रिम सुग्रीव रामके द्वारा क्षोभको प्राप्त हुआ ॥११४॥ इधर लक्ष्मणने वास्तविक सुग्रीवका दृढ आलिङ्गन कर उसे इस अभिप्रायसे रोक लिया कि कहीं यह स्त्रीके बैरके कारण क्रोधसे शत्रुके पास न पहुँच जावे ॥११५॥ तदनन्तर युद्धकी प्राप्तिसे उत्पन्न विशाल तेजसे देदीप्यमान राम, कृत्रिम सुग्रीवको ललकारते हुए आगे बढ़े ॥११६॥ अथानन्तर रामको आया देख सिद्ध करनेवालेसे पूछकर वैताली विद्या उसके शरीरसे इस प्रकार निकल गई कि जिस प्रकार उद्धत चेष्टाको धारण करनेवाली स्त्री निकल जाती है ॥ ११७॥ तत्पश्चात् जो सुग्रीवकी आकृतिसे रहित था, जिसका वानर चिह्न दूर हो चुका, जो इन्द्रनील मणिके समान जान पड़ता था, और जो आवरणसे निकले हुए के समान अपने स्वाभाविक रूपमे स्थित था ऐसे साहस गतिको देखकर सब वानरवंशी क्षुभित हो एकरूपताको प्राप्त हो गये ॥११८-११९॥ नाना-शस्त्रोसे सहित, क्रोध भरे बलवान् वानर 'यह वही है यह वही है देखो देखो' आदि शब्द करते हुए उससे युद्ध करने लगे ॥१२०॥ सो विशाल शक्तिके धारक उस तेजस्वीने शत्रुओकी उस

---

१. भदन्त- ख०। २. किन्तु म०। ३. नूनं म०।

तावत्ससायकं कृत्वा धनुरुद्धतविक्रमः । अधावत्पद्ममुद्दिश्य घनाघनचयोपमः ॥१२२॥
शरधारां क्षिपत्यस्मिन् भृशत्वाद्रहितान्तरम् । विधाय मण्डपं बाणैरस्थात् काकुस्थनन्दनः ॥१२३॥
समं साहसयानेन पद्मस्याभूत्परं मृधम् । आनन्दो हि स पद्मस्य चिरं यः कुरुते रणम् ॥१२४॥
ततः कृत्वा रणक्रीडां चिरमूर्जितविक्रमः । क्षुरप्रैरस्य कवचं चिच्छेद रघुनन्दनः ॥१२५॥
तितवाकारदेहोऽथ कृतस्तीक्ष्णैः शिलीमुखैः । गतः सुसाहसो भूमिमालिलिङ्ग गतप्रभः ॥१२६॥
समासाद्य च तं सर्वे कुतूहलिभिरीक्षितः । दृष्टः साहसयानोऽसाविति ज्ञातश्च निश्चितम् ॥१२७॥
ततः सभ्रातृकः पद्मः सुग्रीवः पर्यपूजयत् । स्तुतिभिश्चाभिरम्याभिस्तुष्टावोदात्तसम्मदः ॥१२८॥
पुरे कारयितुं शोभां परमां हतकण्टके । यातः कान्तासमायोगं समुत्कण्ठां वहन् पराम् ॥१२९॥
भोगसागरमग्नोऽसौ नैवाज्ञासीदहर्निशम् । [1]चिरदृष्टं सुताराया न्यस्तवान् शेषचेतनः ॥१३०॥
रात्रिमेकां बहिर्नीत्वा पद्माभप्रमुखा नृपाः । ऋद्ध्या प्रविश्य किष्किन्धं महाबलसमन्विताः ॥१३१॥
आनन्दोद्यानमाश्रित्य नन्दनश्रीविडम्बकम् । स्वेच्छयावस्थितिं चक्रुर्लोकपालसुरश्रियः ॥१३२॥
तस्या[2] वर्णनमेवातिवर्णनारम्यतापि तु[3] । उद्यानस्यान्यथा कोऽसौ शक्तस्तद्गुणवर्णने ॥१३३॥
रम्यं चैत्यगृहं तत्र न्यस्तचन्द्रप्रभार्चनम् । तद्विघ्नघ्नं प्रणम्यैतावासीनौ रामलक्ष्मणौ ॥१३४॥

सेनाको जब आगेकर खदेड़ा तब वह दिशाओंको उस प्रकार प्राप्त हुई जिस प्रकारकी पवनसे प्रेरित रूई प्राप्त होती है ॥१२१॥ उस समय उद्धत पराक्रम तथा मेघ समूहकी उपमा धारण करनेवाला साहसगति, धनुषपर बाण चढ़ाकर रामकी ओर दौड़ा ॥१२२॥ उधर जब वह लगातार बाण समूहकी वर्षा कर रहा था तब इधर राम भी बाणोंके द्वारा मण्डप बनाकर स्थित थे—राम भी घनघोर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ॥१२३॥ इस प्रकार रामका साहसगतिके साथ परम युद्ध हुआ सो ठीक ही है क्योंकि जो चिरकाल तक युद्ध करता था वह रामको आनन्ददायी होता था ॥१२४॥ तदनन्तर अत्यधिक पराक्रमके धारक रामचन्द्रने चिरकाल तक रणक्रीड़ाकर बाणोंसे उसका कवच छेद दिया ॥१२५॥ तत्पश्चात् तीक्ष्ण बाणोंसे जिसका शरीर चलनीके समान सछिद्र हो गया था ऐसे साहसगतिने प्रभा रहित हो पृथिवीका आलिङ्गन किया अर्थात् प्राण रहित हो पृथिवीपर गिर पड़ा ॥१२६॥ कुतूहलसे भरे सब विद्याधरोंने आकर उसे देखा तथा निश्चयसे जाना कि यह साहसगति ही है ॥१२७॥

तदनन्तर उत्कट हर्षके धारक सुग्रीवने भाई—लक्ष्मण सहित रामकी पूजा की तथा मनोहर स्तुतियोंसे स्तुति की ॥१२८॥ शत्रुरहित नगरमे परमशोभा करानेके लिए परम उत्कण्ठाको धारण करता हुआ वह स्त्रीके साथ समागमको प्राप्त हुआ ॥१२९॥ वह भोगरूपी सागरमे ऐसा मग्न हुआ कि रात-दिनका भी उसे ज्ञात नहीं रहा। वह चिरकाल बाद दिखा था अतः सुताराके लिए ही उसने अपनी समस्त चेतना समर्पित कर दी ॥१३०॥ महाबलसे सहित राम आदि प्रमुख राजाओंने एक रात्रि नगरसे बाहर बिता कर वैभवके साथ किष्किन्ध नगरमे प्रवेश किया ॥१३१॥ वहाँ लोकपाल देवोंके समान शोभाको धारण करनेवाले राम आदि प्रमुख राजा, नन्दनवनकी शोभाको विडम्बित करनेवाले आनन्द नामक उद्यानमे स्वेच्छासे ठहरे ॥१३२॥ उस उद्यानकी सुन्दरताका वर्णन नहीं करना ही उसकी सबसे बड़ी सुन्दरता थी अन्यथा उसके गुण वर्णन करनेमे कौन समर्थ है ? ॥१३३॥ उस उद्यानमे चन्द्रप्रभ भगवान्की प्रतिमासे सुशोभित मनोहर चैत्यालय था सो समस्त विघ्नोंको नष्ट करनेवाले चन्द्रप्रभ भगवान्को नमस्कार कर राम

---

१ चिर दृष्टः म० । २. स्य वर्णन-म० । ३. पितुः म० ।

बहिश्चैत्यालयस्यास्य चन्द्रोदरसुतादय । स्वसैन्यावासनं कृत्वा बभूवुर्विगतश्रमा ॥१३५॥
गुणश्रुत्यनुरागेण स्वयंवरणबुद्धय । त्रयोदश सुता पद्म सुग्रीवस्य ययुर्मुदा ॥१३६॥
चन्द्राभा नाम चन्द्रास्या द्वितीया हृदयावली । अन्या हृदयधर्मेति चेतस्मकटोपमा[1] ॥१३७॥
तुरीयानुन्धरो नाम्ना श्रीकान्ता श्रीरिवापरा । सुन्दरी सर्वतश्चित्तसुन्दरीत्यपरोदिता ॥१३८॥
अन्या सुरवती नाम सुरस्त्रीसमविभ्रमा । मनोवाहिन्यभिख्याता मनोवहनकोविदा ॥१३९॥
चारुश्रीरिति विख्याता चारुश्री परमार्थत । मदनोत्सवभूतान्या प्रसिद्धा मदनोत्सवा ॥१४०॥
अन्या गुणवती नाम गुणमालाविभूषिता । एका पद्मावती ख्याता बुद्धपद्मसमानना[2] ॥१४१॥
तथा जिनमतिर्नित्यं जिनपूजनतत्परा । एता कन्या समादाय ययौ तासा परिच्छद ॥१४२॥
प्रणम्य च जगौ राम नाथैतासा स्वयंवृतम् । शरण भव लोकेश कन्याना बन्धुरुत्तम ॥१४३॥
दुर्विदग्धै खगैर्माभूत् विवाहोऽस्माकमित्यलम् । जातमासा मन श्रुत्वा गोत्रस्यत्वानुपालकम् ॥१४४॥
ततो ह्रीभारनम्रास्या वशिता शोभया विभुम् । पद्माभमुपसप्राप्ता पद्माभा नवयौवना ॥१४५॥
विद्युद्वह्निसुवर्णाब्जगर्भभासा महीयसाम् । देहभासा विकासेन तासा रेजे नभस्तलम् ॥१४६॥
उपविश्य विनीतास्ता लावण्यान्वितविग्रहा । समीपे पद्मनाभस्य तस्थु पूजितचेष्टिता ॥१४७॥

लक्ष्मण वहाँ रहने लगे ॥१३४॥ चन्द्रोदरके पुत्र—विराधित आदि उस चैत्यालयके बाहर अपनी सेनाएँ ठहरा कर श्रमसे रहित हुए ॥१३५॥

तदनन्तर रामके गुण श्रवण कर अनुरागसे भरी सुग्रीवकी तेरह पुत्रियाँ स्वयंवरणकी इच्छासे हर्ष पूर्वक वहाँ आईं ॥१३६॥ वे तेरह पुत्रियाँ इस प्रकार थी—पहली चन्द्रमाके समान मुखवाली चन्द्रमा, दूसरी हृदयावली, तीसरी हृदयके लिए मङ्कटकी उपमा धारण करनेवाली हृदयधर्मा, चौथी अनुन्धरी, पाँचवी द्वितीय लक्ष्मीके समान श्रीकान्ता, छठवीं सर्वप्रकारसे सुन्दर चित्त सुन्दरी, सातवी देवाङ्गनाके समान विभ्रमको धारण करनेवाली सुरवती, आठवीं मन के धारण करनेमे निपुण मनोवाहिनी, नौवीं परमार्थमे उत्तम शोभाको धारण करनेवाली चारुश्री, दशवी मदनके उत्सवस्वरूप मदनोत्सवा, ग्यारहवीं गुणोकी मालासे विभूषित गुणवती, बारहवी विकसित कमलके समान मुखको धारण करनेवाली पद्मावती और तेरहवीं निरन्तर जिनपूजनमे तत्पर रहनेवाली जिनमती। इन सब कन्याओको लेकर उनका परिकर रामके पास आया ॥ १३७–१४२ ॥ रामको प्रणाम कर उसने कहा कि हे नाथ! आप इन सब कन्याओके स्वयंवृत शरण होओ। हे लोकेश! इन कन्याओके उत्तम बन्धु आप ही है ॥ १४३ ॥ गोत्रकी रक्षा करनेवाले आपका नाम सुनकर इन कन्याओका मन स्वभावसे ही ऐसा हुआ कि हमारा विवाह नीच विद्याधरोके साथ न हो ॥ १४४ ॥ तदनन्तर लज्जाके भारसे जिनके मुख नम्र हो रहे थे, जो शोभासे युक्त थी, जिनकी आभा कमलके समान थी तथा जो नव यौवनसे परिपूर्ण थीं ऐसी वे सब कन्याएँ राजा रामचन्द्रके पास आईं ॥१४५॥ बिजली, अग्नि, सुवर्ण तथा कमलके भीतरी दलके समान उनकी शरीरकी विपुल कान्तिके विकाससे आकाश सुशोभित होने लगा ॥१४६॥ विनीत, लावण्य युक्त शरीरकी धारक एवं प्रशस्त चेष्टाओसे युक्त वे सब कन्याएँ रामके पास आकर बैठ गईं ॥१४७॥

---

१ कण्टकोपमा म० । २. बुद्धपद्मा समानसा- म० ।

आर्य्याच्छन्दः

रमते क्वचिदपि चित्त पुरुषरवे पूर्वजन्मसम्बन्धात् ।
एषा भवपरिवर्त्ते सर्वेषा श्रेणिकावस्था ॥१४८॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्येप्रोक्ते पद्मपुराणे विटसुग्रीववधाख्यान नाम सप्तचत्वारिंशत्तम पर्व ॥४७॥



गौतम स्वामी कहते है कि हे श्रेणिक ! पुरुषोमे सूर्य समान रामचन्द्रका भी चित्त किन्हींमे रमणको प्राप्त हुआ सो यह दशा समस्त संसारी जीवो की है ॥१४८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमे बिट सुग्रीवके वधका कथन करनेवाला सैतालीसवॉ पर्व समाप्त हुआ ॥४७॥

अष्टचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथोपलालनं[1] तस्य वाञ्छन्त्यो वरकन्यकाः । बहुभेदाः क्रियाश्चक्रुर्देवलोकादिवागताः ॥१॥
वीणादिवादनैस्तासां गीतैश्चातिमनोहरैः । ललिताभिश्च लीलाभिर्हृतं तस्य न मानसम् ॥२॥
सर्वाकारसमानीतो विभवस्तस्य पुष्कलः । न भोगेषु मनश्चक्रे वैदेही प्रति सङ्गतम् ॥३॥
अनन्यमानसोऽसौ हि मुक्तनिःशेषचेष्टितः । सीतां मुनिरिव ध्यायन् सिद्धिमास्थान्महादरः[2] ॥४॥
न शृणोति ध्वनिं किञ्चिद् रूपं पश्यति नापरम् । जानकीमयमेवास्य सर्वं प्रत्यवभासते ॥५॥
न करोति कथामन्यां कुरुते जानकीकथाम् । अन्यामपि च पार्श्वस्थां जानकीत्यभिभाषते ॥६॥
वायसं पृच्छति प्रीत्या गिरैव[3] कलनादया । भ्राम्यता विपुलं देशं दृष्टा स्यात् मैथिली क्वचित् ॥७॥
सरस्युन्निद्रपद्मादिकिञ्जल्कालङ्कृताम्भसि । चक्राह्वमिथुनं दृष्ट्वा किञ्चित् सञ्चिन्त्य कुप्यति ॥८॥
सीताशरीरसम्पर्कशङ्कया बहुमानवत् । निमील्यलोचने किञ्चित् समालिङ्गति[4] मारुतम् ॥९॥
एतस्यां सा निषण्णेति वसुधां बहु मन्यते । जुगुप्सितस्तया[5] नूनमिति चन्द्रमुदीक्षते ॥१०॥
अचिन्तयच्च किं सीता मद्वियोगाग्निदीपिता । तामवस्थां भवेत् प्राप्ता स्यादस्या यापदैषिणाम् ॥११॥
किमियं जानकी नैषा लता मन्दानिलेरिता । किमशुकमिदं नैतच्चलत्पत्रकदम्बकम् ॥१२॥

अथानन्तर श्रीरामको प्रसन्न करनेकी इच्छा करती हुई वे उत्तम कन्याएँ नाना प्रकारकी क्रियाएँ करने लगी। वे कन्याएं ऐसी जान पड़ती थीं मानो स्वर्गलोकसे ही आई हो ॥१॥ वे कन्याएँ कभी वीणा आदि वादित्र बजाती थी, कभी अत्यन्त मनोहर गीत गाती थीं और कभी नृत्यादि ललित क्रीडाएँ करती थीं फिर भी उनकी इन चेष्टाओंसे रामका मन नहीं हरा गया ॥२॥ यद्यपि उन्हे सब प्रकारकी पुष्कल सामग्री प्राप्त थी तो भी सीताकी ओर आकर्षित मनको उन्होंने भोगोमें नही लगाया ॥३॥ जिस प्रकार मुनि मुक्तिका ध्यान करते है उसी प्रकार राम अन्य सब चेष्टाओंको छोडकर अनन्यचित्त हो आदरके साथ सीताका ही ध्यान करते थे ॥४॥ वे न तो उन कन्याओके शब्दोंको सुनते थे और न उनके रूपको ही देखते थे। उन्हें सब ससार सीतामय ही जान पड़ता था ॥५॥ वे एक सीताकी ही कथा करते थे और दूसरी कथा ही नहीं करते थे। यदि पासमे खड़ी किसी दूसरी स्त्रीसे बोलते भी थे तो उसे सीता समझकर ही बोलते थे ॥६॥ वे कभी मधुरवाणीमे कौएसे इस प्रकार पूछते थे कि हे भाई! तू तो समस्त देशमे भ्रमण करता है अत. तू ने कही सीताको तो नहीं देखी ॥७॥ खिले हुए कमल आदि पुष्पोंकी परागसे जिसका जल अलकृत था ऐसे सरोवरमे क्रीड़ा करते चकवा-चकवीके युगलको देखकर वे कुछ सोच-विचारमे पड़ जाते तथा क्रोध करने लगते ॥८॥ कभी नेत्र बन्दकर बड़े सम्मानके साथ वायुका यह विचारकर आलिङ्गन करते कि संभव है कभी इसने सीताका स्पर्श किया हो ॥९॥ इस पृथिवी पर सीता बैठी थी। यह सोचकर उसे धन्य समझते और चन्द्रमाको यह सोचकर ही मानो देखते थे कि यह उसके द्वारा अपनी आभासे तिरस्कृत किया गया था ॥१०॥ वे कभी यह विचार करने लगते कि सीता मेरी वियोगरूपी अग्निसे जलकर कहीं उस अवस्थाको तो प्राप्त नहीं हो गई होगी जो विपत्तिग्रस्त प्राणियोंकी होती है ॥११॥ क्या यह सीता है? मन्द मन्द वायुसे हिलती

---

१. लालस ख० । २. सिद्धिं मास्थान् म० । ३. गिरेव म० । ४. समालिङ्गत म० । ५. तथा म० ।

एते कि लोचने तस्या नैते पुष्पे [1]सषट्पदे । करोऽयं किं चलस्तस्या नायं प्रत्यग्रपल्लवः ॥१३॥
केशभारं मयूरीषु तस्या पश्यामि सुन्दरम् । अपर्याप्तशशाङ्के [2]च लक्ष्मीमलिकसम्भवाम् ॥१४॥
त्रिवर्णाम्भोजखण्डेषु श्रियं लोचनगोचराम् । शोणपल्लवमध्यस्थसितपुष्पेस्मितत्विषम् ॥१५॥
स्तबकेषु सुजातेषु कान्तिमत्सुस्तनश्रियम्[3] । जिनस्नपनवेदीनां शोभां मध्येषु मध्यमाम् ॥१६॥
तासामेवोर्द्ध्वभागेषु नितम्बभरताकृतिम् । ऊरुशोभां सुजातासु कदलीस्तम्भिकासु ताम् ॥१७॥
पद्मेषु चरणाभिख्या[4] स्थलसम्प्राप्तजन्मसु[5] । शोभा तु समुदायस्य तस्याः पश्यामि न क्वचित् ॥१८॥
चिरायति कथं सोऽपि सुग्रीवः कारणं नु किम् । [6]दृष्टा नाम भवेत् सीता किं तेन शुभदर्शिना ॥१९॥
मद्वियोगेन तप्ता वा विलीना तां सुशीलकाम् । ज्ञात्वा निवेदनेऽशक्तः किमसौ नैति दर्शनम् ॥२०॥
किं वा कृतार्थतां प्राप्त[7] प्राप्य[8] राज्यं पुनर्निजम् । स्वस्थीभूतो भवेद् दुःखं मम विस्मृत्य खेचरः ॥२१॥
एवं चिन्तयतस्तस्य बाष्पविप्लुतचक्षुषः । स्रस्तालसशरीरस्य विवेदावरजो[9] मनः ॥२२॥
ततः ससम्भ्रमः[10] स्वान्तः कोपारुणितलोचनः । ययौ सुग्रीवमुद्दिश्य नग्नासिविलसत्करः ॥२३॥
गच्छतस्तस्य वातेन जङ्घास्तम्भाप्तजन्मना । दोलायितामभूत् सर्वं महोत्पाताकुलं पुरम् ॥२४॥
वेगनिक्षिप्तनिःशेषराजाधिकृतमानवैः[11] । प्रविश्य तद्गृहं दृष्ट्वा सुग्रीवमिदमभ्यधात् ॥२५॥
आः पाप दयितादुःखनिमग्ने परमेश्वरे । भार्यया सहितः सौख्यं कथं भजसि दुर्मते ॥२६॥

हुई लता नहीं है ? क्या यह उसका वस्त्र है, चञ्चल पत्रोंका समूह नहीं है ? ॥१२॥ क्या ये उसके नेत्र हैं, भ्रमर सहित पुष्प नहीं है ? और क्या यह उसका चञ्चल हाथ है नूतन पल्लव नहीं है ? ॥१३॥ मै उसका सुन्दर केशपाश मयूरियोंमे, ललाटकी शोभा अर्धचन्द्रमे, नेत्रोंकी शोभा तीन रङ्गके कमलोंमे, मन्द मुसकानकी शोभा लाल-लाल पल्लवोंके मध्यमे स्थित पुष्पमे, स्तनोंकी शोभा कान्तिसम्पन्न उत्तम गुच्छोंमे, मध्यभागकी शोभा जिनाभिषेककी वेदिकाओंके मध्यभागमे, नितम्बकी स्थूल आकृति उन्हीं वेदिकाओंके ऊर्ध्वभागमे, ऊरुओंकी अनुपम शोभा केलेके सुन्दर स्तम्भोंमे, और चरणोंकी शोभा स्थलकमलों अर्थात् गुलाबके पुष्पोंमे देखता हूँ परन्तु इन सबके समुदाय स्वरूप सीताकी शोभा किसीमे नहीं देखता हूँ ॥१४–१८॥ वह सुग्रीव भी बिना कारण क्यों देर कर रहा है ? शुभ पदार्थोंको देखनेवाले उसने क्या किसीसे सीताका समाचार पूछा होगा ?॥१९॥ अथवा वह शीलवती मेरे वियोगसे सन्तप्त होकर नष्ट हो गई है ऐसा वह जानता है तो भी कहनेमे असमर्थ होता हुआ ही क्या दिखाई नहीं देता है ? ॥२०॥ अथवा वह विद्याधर अपना राज्य पाकर कृतकृत्यताको प्राप्त हो गया है तथा मेरा दुःख भूलकर अपने आनन्दमे निमग्न हो गया है ॥२१॥ इस प्रकार विचार करते-करते जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त हो गये थे तथा जिनका शरीर ढीला और आलस्य युक्त हो गया था ऐसे रामके अभिप्रायको लक्ष्मण समझ गये ॥२२॥

तदनन्तर जिनका चित्त क्षोभसे युक्त था, नेत्र क्रोधसे लाल थे, और जिनका हाथ नंगी तलवार पर सुशोभित हो रहा था ऐसे लक्ष्मण सुग्रीवको लक्ष्य कर चले ॥२३॥ उस समय जाते हुए लक्ष्मणकी जङ्घाओंरूपी स्तम्भोंसे उत्पन्न वायुके द्वारा समस्त नगर ऐसा कम्पायमान हो गया मानो महान् उत्पातसे आकुल होकर ही कम्पायमान हो गया हो ॥२४॥ राजाके समस्त अधिकारी मनुष्योंको अपने वेगसे गिराकर वे सुग्रीवके घरमे प्रविष्ट हो सुग्रीवसे इस प्रकार कहने लगे ॥२५॥ अरे पापी ! जब कि परमेश्वर–राम स्त्रीके दुःखमे निमग्न है तब रे दुर्बुद्धे ! तू स्त्रीके

---

१. पुष्पेषु षट्पदाः म० । २ शशाङ्केव म० । ३ नतश्रियम् (?) म० । ४. 'अभिख्या नामशोभयोः' इत्यमरः । ५ सम्प्रापनजन्मसु (?) म० । ६. दृष्ट्वा म० । ७. प्राप्ता म० । ८. प्राप्ये म० । ९. अनुजो लक्ष्मणः । १० ससभ्रम. स्वान्त. म० । ११. -मानवः म० ।

अह त्वा खेचरध्वाङ्क्ष भोगे दुर्ललित खल । नयामि तत्र नाथेन यत्र नीतस्त्वदाकृति ॥२७॥
एवमुग्रान् विमुञ्चन्त वर्णान् कोपकणानिव[1] । लक्ष्मीधर प्रणामेन सुग्रीव शममानयत् ॥२८॥
उवाच चेदमेक मे क्षम्यता देव विस्मृतम् । क्षुद्राणा हि भवत्येव मादृशा दुर्विचेष्टितम् ॥२९॥
तस्यार्घपाणयो दारा सम्भ्रान्ता कम्पमूर्तय । सम्प्रणामेन नि शेष जहुर्लक्ष्मणसम्भ्रमम् ॥३०॥
सज्जनाम्भोदवाक्तोयधारानिकरसङ्गतः । प्रयाति विलय क्वापि जनारणिभवोऽनल ॥३१॥
प्रणाममात्रसाध्यो हि महता चेतस शम । महद्भिरपि नो दानैरुपशाम्यन्ति दुर्जना ॥३२॥
प्रतिज्ञा स्मारयस्तस्य चक्रे लक्ष्मीधरः परम् । उपकार यथा योगी यक्षदत्तस्य मातरम् ॥३३॥
पप्रच्छ मगधाधीशो गणेश्वरमिहान्तरे । यक्षदत्तस्य वृत्तान्त नाथेच्छामि विवेदितुम् ॥३४॥
ततो गणधरोऽवोचच्छृणु श्रेणिकभूपते । चकार यक्षदत्तस्य यथा मातु स्मृतिं मुनि ॥३५॥
अस्ति क्रौञ्चपुर नाम नगर तत्र पार्थिव । यक्षसञ्ज्ञः प्रिया तस्य राजिलेति प्रकीर्तिता ॥३६॥
तत्पुत्रो यक्षदत्ताख्य स बाह्या विहरन् सुखम् । अपश्यत् परमा नारीं स्थिता दुर्विधपाटके ॥३७॥
स्मरेषुहतचित्तोऽसौ तामुद्दिश्य व्रजन्निशि । मुनिनावधियुक्तेन मैवमित्यभ्यभाषत ॥३८॥
ततस्त विद्युदुद्योतद्योतित वृक्षमूलगम् । ऐक्षतायननामान मुनि सायकपाणिक ॥३९॥
तमुपेत्य नतिं कृत्वा पप्रच्छ विनयान्वित । भगवन् कि त्वया मेति निषिद्ध कौतुक मम ॥४०॥

साथ सुखका उपभोग क्यो कर रहा है ? ॥२६॥ अरे दुष्ट ! नीच विद्याधर ! मैं तुझ भोगासक्तको वहाँ पहुँचाता हूँ जहाँ कि रामने तेरी आकृतिको धारण करनेवाले कृत्रिम सुग्रीवको पहुँचाया है ॥२७॥इस प्रकार क्रोधाग्निके कणोके समान उग्रवचन छोड़नेवाले लक्ष्मणको सुग्रीवने नमस्कार कर शान्त किया ॥२८॥ और कहा कि हे देव ! मेरी एक भूल क्षमा की जाय क्योकि मेरे जैसे क्षुद्र मनुष्योकी खोटी चेष्टा होती ही है ॥२९॥ जिनके शरीर कॉप रहे थे ऐसी सुग्रीवकी घबडाई हुई स्त्रियाँ हाथमे अर्घ ले-लेकर बाहर निकल आई और उन्होने अच्छी तरह प्रणाम कर लक्ष्मणके समस्त क्रोधको नष्ट कर दिया ॥३०॥ सो ठीक ही है क्योकि मनुष्यरूपी अरणिसे उत्पन्न हुई क्रोधाग्नि, सज्जनरूपी मेघ सम्बन्धी वचनरूपी जलधाराओके साथ मिलकर शीघ्र ही कही विलीन हो जाती है ॥३१॥ निश्चयसे महापुरुषोके चित्तकी शान्ति प्रणाममात्रसे सिद्ध हो जाती है जब कि दुर्जन बडे-बड़े दानोसे भी शान्त नहीं होते ॥३२॥ लक्ष्मणने प्रतिज्ञाका स्मरण कराते हुए सुग्रीवका उस तरह परम उपकार किया जिस तरह कि योगी अर्थात् मुनिने यक्षदत्तकी माताका किया था ॥३३॥

इसी बीचमे राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे पूछा कि हे नाथ ! मै यक्षदत्तका वृत्तान्त जानना चाहता हूँ ॥३४॥ तदनन्तर गणधर भगवान्ने कहा कि हे श्रेणिक भूपाल ! मुनिने जिस प्रकार यक्षदत्तकी माताको स्मरण कराया था वह कथा कहता हूँ सो सुनो ॥३५॥ एक क्रौञ्चपुर नामका नगर है उसमे यक्ष नामका राजा था और राजिला नामसे प्रसिद्ध उनकी स्त्री थी ॥३६॥ उन दोनोके यक्षदत्त नामका पुत्र था। एक दिन उसने नगरके बाहर सुखपूर्वक भ्रमण करते समय दरिद्रोकी वस्तीमे स्थित एक परमसुन्दरी स्त्री देखी ॥३७॥ देखते ही कामके बाणोसे उसका हृदय हरा गया सो वह रात्रिके समय उसके उद्देश्यसे जा रहा था कि अवधिज्ञानसे युक्त मुनिराजने 'मा अर्थात् नही' इस प्रकार उच्चारण किया ॥३८॥ तदनन्तर उसी समय बिजली चमकी सो उसके प्रकाशमे हाथमें तलवार धारण करनेवाले यक्षदत्तने एक वृक्षके नीचे बैठे हुए अयन नामक मुनिराजको देखा ॥३९॥ उसने बड़ी विनयसे उनके पास जाकर तथा नमस्कार कर उनसे पूछा कि हे भगवन् ! आपने 'मा' शब्दका

---

१. कणानि च म० ।

सोऽवोचद् या समुद्दिश्य प्रस्थित कामुको भवान् ।
सा ते माता ततस्ता मा यासी कर्मीति वारित ॥४१॥
सोऽवोचत् कथमित्याख्य ततोऽस्मिन् प्रस्तुत मुनि ।
मानसानि मुनीना हि सुदिग्धान्यनुकम्पया ॥४२॥
शृण्वस्ति मृत्तिकावत्या कनको नाम वाणिज ।
धूर्नाम्नि तस्य भार्याया बन्धुदत्त सुतोऽभवत् ॥४३॥
भार्या मित्रवती तस्य लतादत्तसमुद्भवा । कृत्वास्या गर्भमज्ञात पोतेन प्रस्थित पति ॥४४॥
श्वसुराभ्या ततो ज्ञात्वा गर्भं दुश्चरितेति सा । निराकृता पुरात् क्षिप्र दास्योत्पलिकया सह ॥४५॥
प्रस्थिता च पितुर्गेह सार्थेन महता समम् । सर्पेणोत्पलिकाद् दष्टा मृता च विपिनान्तरे ॥४६॥
तत सख्या विमुक्तासौ शीलमात्रसहायिका । इम क्रौञ्चपुर प्राप्ता महाशोकसमाकुला ॥४७॥
स्फीतदेवार्चकारामे[1] प्रसूता यावदम्बरम् । आरात् क्षालयितु याता शिशुस्तावद्धृतः शुना ॥४८॥
सुत स्वैर समादाय रत्नकम्बलवेष्टितम् । ददौ यक्षमहीपाय नीत्वा स ह्यस्य वल्लभ ॥४९॥
ततोऽनेन विपुत्राया राजिलाया समर्पित । सार्थो च यक्षदत्ताख्या प्रापितस्त्व स वर्तसे ॥५०॥
प्रत्यावृत्य च सम्भ्रान्तमपश्यन्ती प्रसूतकम् । विप्रलाप चिर चक्रे दु खान् मित्रवती परम् ॥५१॥
देवार्चकेन सा दृष्टा कृपया कृतसान्त्वना । त्व मे स्वसेति भाषित्वा स्वकेऽवस्थापितोटजे ॥५२॥
सहायरहितत्वेन त्रपयाकीर्तिभीतित । न सा गता पितुर्गेह तत्रैव निरता तत ॥५३॥

उच्चारण कर निषेध किसलिए किया। इसका मुझे बडा कौतुक है ? ॥४०॥ इसके उत्तरमे मुनिराने कहा कि आप कामी होकर जिसके उद्देश्यसे जा रहे थे वह आपकी माता है इसलिए 'मत जाओ' यह कहकर मैंने रोका है ॥४१॥ यक्षदत्तने फिर पूछा कि वह मेरी माता कैसे है ? इसके उत्तरमे मुनिराजने प्रकृत वार्ता कही सो ठीक ही है क्योकि मुनियोके मन अनुकम्पासे युक्त होते ही हैं ॥४२॥ उन्होने कहा कि सुनो, मृत्तिकावती नामक नगरीमे एक कनक नामका वणिक् रहता था, उसकी धुर् नामकी स्त्रीमे एक बन्धुदत्त नामका पुत्र हुआ था ॥४३॥ बन्धुदत्तकी स्त्रीका नाम मित्रवती था जो कि लतादत्तकी पुत्री थी। एक बार बन्धुदत्त अज्ञातरूपसे मित्रवतीको गर्भधारण करा कर जहाजसे अन्यत्र चला गया ॥४४॥ तदनन्तर सास-श्वसुरने गर्भका ज्ञान होने पर उसे दुश्चरिता समझ कर नगरसे निकाल दिया, सो गर्भवती मित्रवती, उत्पलिका नामक दासीको साथ ले एक बड़े बनजारोके सघके साथ अपने पिताके घरकी ओर चली। परन्तु जङ्गलके बीच उत्पलिकाको सॉपने डॅस लिया जिससे वह मर गई ॥४५-४६॥ तब वह सखीसे रहित, एक शीलव्रत रूपी सहायिकासे युक्त हो महाशोकसे व्याकुल होती हुई इस क्रौञ्चपुर नगरीमे आई ॥४७॥ यहॉ स्फीत नामक देवार्चकके उपवनमे उसने पुत्र उत्पन्न किया। तदनन्तर पुत्रको रत्नकम्बलमे लपेट कर जब तक वह समीपवर्ती सरोवरमे वस्त्र धोनेके लिए गई तब तक एक कुत्ता उस पुत्रको उठा ले गया ॥४८॥ वह कुत्ता राजाका पालतू प्यारा कुत्ता था इसलिए उसने रत्नकम्बलमे लिपटे हुए उस पुत्रको अच्छी तरह ले जाकर राजा यक्षके लिए दे दिया ॥४९॥ राजाने वह पुत्र अपनी पुत्र रहित राजिला नामकी रानीके लिए दे दिया तथा उसका यक्षदत्त यह सार्थक नाम रक्खा क्योकि यक्ष कुत्ताका नाम है और वह पुत्र उसके द्वारा दिया गया था। वही यक्षदत्त तू है ॥५०॥ जब मित्रवती लौटकर आई और उसने अपना पुत्र नही देखा तब वह दुःखसे चिरकाल तक बहुत विलाप करती रही ॥५१॥ तदनन्तर उपवनके स्वामी देवार्चकने उसे देख कर दया पूर्वक सान्त्वना दी और यह कह कर कि 'तू हमारी बहिन है' अपनी कुटीमे रक्खी ॥५२॥ सहायक न होनेसे, लज्जासे अथवा अपकीर्तिके भयसे वह फिर

---

१. रण्ये म० ।

सेयमत्यन्तशीलाढ्या जिनधर्मपरायणा । कुटीरे दुर्विधस्यास्ते भ्रमता या त्वयेक्षिता ॥५४॥
व्रजता बन्धुदत्तेन यद्दत्त रत्नकम्बलम् । अस्यांस्तद्यक्षभवने तिष्ठत्यद्यापि रक्षितम् ॥५५॥
इत्युक्तेन सयत नत्वा स्तुत्वा च हितकारिणम् । इयाय खड्गवानेव सम्भ्रमी यक्षसन्निधिम् ॥५६॥
ऊचे च तेऽसिनानेन छिनद्मि नियत शिरः । सत्यतो[1] यदि मे जन्म न शास्सि स्फुटकारणम् ॥५७॥
यथावद् वेदित तेन रत्नकम्बललक्षितम् । अद्य जरायुलेपेन तिष्ठत्यद्यापि दिग्धक. ॥५८॥
प्रथमाभ्या ततस्तस्य पितृभ्या सह सङ्गम । जातो महोत्सवोपेत महाविभवविस्मित ॥५९॥
कथित ते महाराज वृत्तान्तादिदमागतम् । अधुना प्रकृत[2] वक्ष्ये भवावहितमानस ॥६०॥
लक्ष्मीधर पुरस्कृत्य सुग्रीवस्त्वरित ययौ । समीप रामदेवस्य स तस्थौ विहितानति ॥६१॥
ततो विक्रमगर्वेण सदा प्रकटचेष्टितान् । आहूय किङ्करान् सर्वान् महाकुलसमुद्भवान् ॥६२॥
काश्चिदश्रुतवृत्तान्तान् महाभोग[3] हतास्मिकान् । वेदयन् विस्मयप्राप्तान् पद्मनिर्मितमद्भुतम् ॥६३॥
काश्चिद् विज्ञातवृत्तान्तान् प्रभुकार्यपरायणान् । जगौ प्रत्युपकाराय वाचा सन्मानयन्निदम् ॥६४॥
भो भो सुविभ्रमा सर्वे शृणुत [4]श्रीसमुत्सृता । सीतामुपलभध्व द्राक् क वर्तत इति स्फुटम् ॥६५॥
महीतले समस्तेऽस्मिन् पाताले खे जले स्थले । जम्बूद्वीपे पयोनाथे द्वीपे वा धातकीमति ॥६६॥
कुलपर्वतकुञ्जेषु काननान्तेषु मेरुषु । नगरेषु विचित्रेषु रम्येषु व्योमचारिणाम् ॥६७॥
गहनेषु समस्तेषु नानाविद्यापराक्रमा । जानीत दिक्षु सर्वासु सती भूविवरेषु च ॥६८॥

पिताके घर नही गई और वही रहने लगी ॥५३॥ वह अत्यन्त शीलवती तथा जिनधर्मके धारण करनेमे तत्पर रहती हुई दरिद्र देवार्चककी कुटीमे बैठी थी सो भ्रमण करते हुए तुमने उसे देखा ॥५४॥ उसके पति बन्धुदत्तने परदेशको जाते समय उसे जो रत्नकम्बल दिया था वह आज भी राजा यक्षके घरमे सुरक्षित रक्खा है ॥५५॥ इस प्रकार कहने पर उसने हितकारी मुनिराजको नमस्कार कर उनकी बहुत स्तुति की। तदनन्तर वह तलवार लिये ही शीघ्रतासे राजा यक्षके पास गया ॥५६॥ और बोला कि यदि तू मेरे जन्मका सच-सच कारण स्पष्ट नही बताता है तो मै इसी तलवारसे तेरा मस्तक काट डालूँगा ॥५७॥ इतना कहने पर राजा यक्षने सब कारण ज्यो-का-त्यो बतला दिया और साथ ही वह रत्नकम्बल दिखलाते हुए कहा कि यह अब भी जरायुके लेपसे लिप्त है ॥५८॥ तदनन्तर उसका अपने पूर्व माता-पिताके साथ समागम हो गया और महा वैभवसे आश्चर्यमे डालनेवाला बडा उत्सव हुआ ॥५९॥ गौतम स्वामी कहते है कि हे राजन्! प्रकरण आ जानेसे यह वृत्तान्त मैने तुझसे कहा अब फिर प्रकृत बात कहता हूँ सो सावधान होकर श्रवण कर ॥६०॥

तदनन्तर सुग्रीव, लक्ष्मणको आगे कर शीघ्र ही रामके समीप आया और नमस्कार कर खड़ा हो गया ॥६१॥ तत्पश्चात् उसने पराक्रमके गर्वसे सदा स्पष्ट चेष्टाओके करनेवाले एवं उच्च कुलोमें उत्पन्न समस्त किंकरोको बुलाकर जिन महाभोगी किङ्करोने यह वृत्तान्त नही सुना था उन्हें रामका अद्भुत कार्य बतला कर आश्चर्यसे चकित किया ॥६२–६३॥ तथा जो इस वृत्तान्तको जानते थे प्रभुका कार्य करनेमे तत्पर रहनेवाले उन किङ्करोका वचन द्वारा सन्मान करते हुए उनसे रामका प्रत्युपकार करनेके लिए यह कहा ॥६४॥ कि हे उत्तम विभ्रमोको धारण करनेवाले श्रीसम्पन्न समस्त पुरुषो! तुम लोग शीघ्र ही सीताका पता चलाओ कि वह कहाँ है? ॥६५॥ तुम लोग नाना प्रकारकी विद्याओ और पराक्रमसे युक्त हो अतः इस समस्त भूतलमे, पातालमे, आकाशमे, जलमें, थलमे, जम्बूद्वीपमे, समुद्रमे, धातकीखण्ड द्वीपमें, कुलाचलोके

१ 'सत्पथो यदि मे जन्म नास्ति त्व स्फुटकारणम्' म० । २. प्राकृते म० । ३. महामोहहतास्मिकान् म० । ४. श्रीमन्दुत्सवाः (?) म० ।

शेषामिव ततो मूर्ध्नि ते कृत्वाऽज्ञां प्रमोदिनः । उत्पत्य दिक्षु सर्वासु द्रुतं जग्मुरहंयवः[1] ॥६९॥
युवविद्याभृता लेखं नाययित्वा यथाविधि । ज्ञातनिःशेषवृत्तान्तो वैदेहोऽप्युपपादितः ॥७०॥
ततोऽसौ स्वसृदुःखेन नितान्तोद्विग्नमानसः । सुग्रीव इव रामस्य नितरां निभृतोऽभवत् ॥७१॥
स्वयमेव च सुग्रीवः पर्यटन् भानुवर्त्मना । तारानिकरचक्रेण सम्प्रवृत्तो गवेषणे ॥७२॥
दुष्टविद्याधरानेकपुरान्वेषणतत्परः । ध्वजं दूरात् समालोक्य समीरणविकम्पितम् ॥७३॥
जम्बूद्वीपमहीध्रस्य[2] शिखरेणोपलक्षितम् । नभस्तलं परं प्राप वलदंशुकपल्लवः[3] ॥७४॥
वियतोऽवतरद् वीक्ष्य विमानं भानुभासुरम् । उत्पाताशङ्कितो जातो रत्नकेशी समाकुलः ॥७५॥
आसीदनुसमालोक्य तदसावतिविह्वलः । वैनतेयात् परित्रस्तः सञ्चुकोच यथोरगः ॥७६॥
आसन्नं च परिज्ञाय ध्वजेन कपिलक्ष्मणम् । रत्नकेशी गतश्चिन्तामिति मृत्युभयाकुलः ॥७७॥
लङ्काधिपतिना नूनं क्रुद्धेन जनितागसा । प्रेषितो मद्विनाशाय सुग्रीवोऽयमुपागतः ॥७८॥
किं न प्रतिभये शीघ्रं मृतो रत्नाकराम्भसि । हा धिगत्रान्तरे द्वीपे मरणं समुपागतम्[4] ॥७९॥
मनोरथं पुरस्कृत्य विद्यावीर्यविवर्जितः । जीवितस्पृहयाविष्टः[5] प्रापयिष्यामि किन्त्वहम् ॥८०॥
इति चिन्तयतस्तस्य सम्प्राप्तो वानरध्वजः । द्योतयन् सहसा द्वीपं द्वितीय इव भास्करः ॥८१॥
तं धूसरसर्वाङ्गमालोक्य वनपांशुभिः । वानराङ्कध्वजोऽपृच्छदनुकम्पा[6]समुद्वहन् ॥८२॥

निकुञ्जोंमें, वनके अन्त भागोंमें, सुमेरु पर्वतोंमें, विद्याधरोंके चित्र-विचित्र मनोहर नगरोंमें, समस्त दिशाओंमें और भूमिके विवरों अर्थात् कन्दराओंमें सीताका पता चलाओ ॥६६–६८॥

तदनन्तर हर्षसे भरे अहंकारी वानर शेषाक्षतकी तरह सुग्रीवकी आज्ञाको शिरपर धारणकर शीघ्र ही उड़कर समस्त दिशाओंमें चले गये ॥६९॥ एक तरुण विद्याधरके द्वारा विधिपूर्वक पत्र भेजकर भामण्डलके लिए भी समस्त वृत्तान्तसे अवगत कराया गया ॥७०॥ तदनन्तर बहिनके दुःखसे भामण्डल अत्यन्त दुःखी हुआ और सुग्रीवके समान रामका अतिशय आज्ञाकारी हुआ ॥७१॥ सुग्रीव, स्वयं भी सीताकी खोज करनेके लिए ताराओंके समूहके साथ आकाशमार्गसे चला ॥७२॥ वह दुष्ट विद्याधरोंके अनेक नगरोंके बीच सीताकी खोज करनेमें तत्पर हुआ भ्रमण कर रहा था। तदनन्तर हवासे हिलती हुई ध्वजाको दूरसे देखकर वह जम्बूद्वीपके एक पर्वतके शिखरसे उपलक्षित आकाशमें पहुँचा। उस समय उसके वस्त्रका अञ्चल हवासे हिल रहा था ॥७३–७४॥ उस पर्वत पर रत्नकेशी विद्याधर रहता था, सो वह आकाशसे उतरते हुए सूर्यके समान देदीप्यमान सुग्रीवके विमानको देखकर उत्पातकी आशङ्कासे युक्त हो गया ॥७५॥ विमानको देखकर वह अत्यन्त विह्वल हो गया और जिस प्रकार गरुडसे भयभीत हो सर्प संकुचित होकर रह जाता है उसी प्रकार रत्नकेशी भी उस विमानसे भयभीत हो सकुचित होकर रह गया ॥७६॥ जब सुग्रीव बिलकुल निकट आ गया तब उसे उसकी ध्वजासे वानरवंशी जानकर रत्नकेशी मृत्युके भयसे व्याकुल होता हुआ इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥७७॥ जान पड़ता है कि मैंने लङ्काधिपति-रावणका अपराध किया था अतः कुपित होकर उसके द्वारा मुझे नष्ट करनेके लिए भेजा हुआ यह सुग्रीव आया है ॥७८॥ हाय मैं भय उत्पन्न करनेवाले लवण समुद्रमें गिर कर शीघ्र ही क्यों नहीं मर गया। मुझे धिक्कार है जिसे इस अन्य द्वीपमें मरण प्राप्त हुआ है—मरनेका अवसर प्राप्त हो रहा है ॥७९॥ मैं विद्याबलसे रहित होकर भी इच्छाओंको आगे कर जीवित रहनेकी इच्छासे युक्त हूँ सो देखूँ अब क्या प्राप्त करता हूँ ? ॥८०॥ इस प्रकार रत्नकेशी विचार कर ही रहा था कि इतनेमें द्वितीय सूर्यके समान द्वीपको प्रकाशित हुआ सुग्रीव वहाँ शीघ्र ही जा पहुँचा ॥८१॥ वनकी धूलिसे जिसका समस्त शरीर धूसर हो रहा था

१. अहंकारयुक्ताः। २. जम्बूद्वीपमहीन्द्रस्य म०। जम्बूद्वीपमहेन्द्रस्य क०। ३ पल्लवम् म०। ४. समुपागतः म०। ५. जीवितः स्पृहया म०। ६. -दनुकम्प- म०।

स त्वं रत्नजटी पूर्वमासीद् विद्यासमुन्नत । अवस्थामीदृशीं कस्मादधुना भद्र सङ्गत ॥८३॥
इत्युक्तोऽप्यनुकम्पेन सुग्रीवेण सुखाकरम् । सर्वाङ्गं कम्पयन् भीत्या दीनो रत्नजटी भृशम् ॥८४॥
मा भैषीर्भद्र मा भैषीरित्युक्तश्च पुन पुन । जगौ कृतानतिर्धीरमति प्रकटिताक्षरम् ॥८५॥
प्रतिपक्षी भवन् साधो रावणेन दुरात्मना । सीताहरणसक्तेन छिन्नविद्योऽहमीदृश ॥८६॥
जीविताशा समालम्ब्य कथञ्चिद्दैवयोगत । ध्वजमेत समुत्सृज्य स्थितोऽस्मि कपिपुङ्गव ॥८७॥
उपलब्धप्रवृत्तिश्च तोषोद्वेगं वहन् द्रुतम् । गृहीत्वा रत्नजटिनं सुग्रीव स्वपुरं ययौ ॥८८॥
समक्षं लक्ष्मणस्याथ महतां च खगामिनाम् । जगौ रत्नजटी पद्मं विनयी विहिताञ्जलि ॥८९॥
देव देवी नृशंसेन सती सीता दुरात्मना । हृता लङ्कापुरीन्द्रेण विद्या च मम कोपिन ॥९०॥
कुर्वन्ती सा महाक्रन्दं ध्वनिना चित्तहारिणा । मृगीव व्याकुलीभूता नीता तेन बलीयसा ॥९१॥
येनासीत् समरे भीमे निर्जित्य सुमहाबल । इन्द्रो विद्याभृतामीशो बन्दिग्रहमुपाहृत ॥९२॥
स्वामी भरतखण्डानां यस्त्रयाणां निरङ्कुश । कैलासोद्धरणे येन विशाल सङ्गतं यश ॥९३॥
सागरान्ता मही यस्य दासीवाज्ञां प्रतीच्छति । सुरासुरैर्न यो जेतुं सहतैरपि शक्यते ॥९४॥
श्रेष्ठेन विदुषा तेन धर्माधर्मविवेकिना । कर्मेदं निर्मितं क्रूरं मोहो जयति पापिनाम् ॥९५॥
तच्छ्रुत्वा विविधं विभ्रद्रसं काकुत्स्थनन्दन । अङ्गस्पृशं ददौ सर्वं सादरं रत्नकेशिने ॥९६॥
देवोपगीतसञ्ज्ञे च पुरे गोत्रक्रमागतम् । अन्वजानादधीशत्वं विच्छिन्नमरिभिश्चिरम् ॥९७॥

ऐसे उस रत्नकेशीको देखकर दया धारण करते हुए सुग्रीवने पूछा ॥८२॥ कि तू रत्नजटी तो पहले विद्याओंसे समुन्नत था। हे भद्र! अब ऐसी दशाको किस कारण प्राप्त हुआ है? ॥८३॥ इस प्रकार दयाके धारक सुग्रीवने उससे सुखसमाचार पूछा तो भी भयके कारण उसका समस्त शरीर काँप रहा था तथा वह अत्यन्त दीन जान पडता था ॥८४॥ तदनन्तर सुग्रीवने जब उससे बार-बार कहा कि हे भद्र! भयभीत मत हो, भयभीत मत हो तब कहीं धैर्यधारण कर उसने नमस्कार किया और स्पष्ट अक्षरोंमे कहा कि हे सत्पुरुष! दुष्ट रावण सीताके हरनेमे तत्पर था उस समय मैंने उसका विरोध किया जिससे उसने मेरी विद्याएँ छीनकर मुझे ऐसा कर दिया ॥८५–८६॥ हे कपि श्रेष्ठ! दैवयोगसे जीवित रहनेकी आशासे मैं यहाँ इस ध्वजाको ऊपर उठाकर किसी तरह स्थित हूँ—रह रहा हूँ ॥८७॥ तदनन्तर समाचार प्राप्त हो जानेसे जो हर्षजन्य उद्वेगको धारण कर रहा था ऐसा सुग्रीव शीघ्र ही रत्नजटीको लेकर अपने नगरकी ओर गया ॥८८॥

अथानन्तर विनयसे भरे रत्नजटीने हाथ जोड़कर लक्ष्मण तथा अन्य बड़े बड़े विद्याधरोंके सामने रामसे कहा कि हे देव! अतिशय दुष्ट, लङ्कापुरीके राजा क्रूर रावणने पतिव्रता सीतादेवीको तथा क्रोध करनेवाले मुझ रत्नजटीकी विद्याको हरा है ॥८९–९०॥ जो चित्तको हरण करनेवाली ध्वनिसे महारुदन करती हुई मृगीके समान व्याकुल हो रही थी ऐसी सीताको वह बलवान् हर कर ले गया है ॥९१॥ जिसने भयङ्कर संग्राममे अत्यन्त बलवान्, विद्याधरोंके अधिपति इन्द्रको जीतकर कारागारमें डाला था ॥९२॥ जो भरतक्षेत्रके तीन खण्डोंका अद्वितीय स्वामी है, जिसने कैलास पर्वतके उठानेमे विशाल यश प्राप्त किया है, समुद्रान्त पृथ्वी दासीके समान जिसकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करती है, सुर तथा असुर मिलकर भी जिसे जीतनेके लिए समर्थ नहीं हैं, जो विद्वानोंमे श्रेष्ठ है तथा धर्म—अधर्मके विवेकसे युक्त है, उसी रावणने यह क्रूर कार्य किया है सो कहना पड़ता है कि पापी जीवोंका मोह बड़ा प्रबल है ॥९३–९५॥ यह सुनकर नाना प्रकारके स्नेहको धारण करते हुए रामने आदरके साथ रत्नजटीके लिए अपने शरीरका स्पर्श दिया अर्थात् उसका आलिङ्गन किया ॥९६॥ और देवोपगीत नामक नगरका स्वामित्व रत्नजटीके वंशपरम्परासे चला आता था पर बीचमे शत्रुओंने छीन लिया था सो उसे उसका स्वामित्व प्रदान किया—

पुनः पुनरपृच्छच्च वार्त्तामालिङ्ग्य तं नृपः । पुनः पुनर्जगादासौ प्रमोदव्याकुलाक्षरः ॥९८॥
ततः समुत्सुकः पद्मः पर्यपृच्छदतिद्रुतम् । लङ्कापुरी कियद्दूरे विवेदयत खेचराः ॥९९॥
इत्युक्तास्ते गता मोहं निश्चलीभूतविग्रहाः । अवाङ्मुखा गतच्छाया बभूवुर्वाग्विवर्जिताः ॥१००॥
अभिप्रायं ततो ज्ञात्वा विशीर्णहृदयास्तके । अवज्ञामन्दया दृष्ट्या राघवेन विलोकिताः ॥१०१॥
अथ भीतिपरित्रस्ता ज्ञाताः स्म इति लज्जिताः । ऊचुर्धीरं मनः कृत्वा करकुड्मलमस्तकाः ॥१०२॥
यदीय देव नामापि कथञ्चित्समुदीरितम् । ज्वरमानयति त्रासाद्वदामस्तस्य पुरः कथम् ॥१०३॥
क वयं क्षुद्रसामर्थ्याः क च लङ्कामहेश्वरः । त्यजानुबन्धमेतस्मिन् ज्ञाते सम्प्रति वस्तुनि ॥१०४॥
अथावश्यमिदं वस्तु श्रोतव्यं श्रूयतां प्रभो । कोऽत्र दोषः समक्षं ते किञ्चिद्वक्तुं हि शक्यते ॥१०५॥
अस्त्यत्र लवणाम्भोधौ क्रूरग्राहसमाकुले । प्रख्यातो राक्षसद्वीपः प्रभूताद्भुतसङ्कुलः ॥१०६॥
शतानि सप्त विस्तीर्णो योजनानां समन्ततः । परिक्षेपेण तान्येव साधिकान्येकविंशतिः ॥१०७॥
मध्ये मन्दरतुल्योऽस्य त्रिकूटो नाम पर्वतः । योजनानि [1]नवोत्तुङ्गपञ्चाशद्विपुलत्वतः ॥१०८॥
हेमनानामणिस्फीतः शिलाजालावलीचितः । आसीत्तोयदवाहस्य[2] दत्तो नाथेन रक्षसाम् ॥१०९॥
तस्य कूल्यैर्द्रुमैश्चित्रै[3] शिखरे कृतभूषणे । लङ्केति नगरी भाति मणिरत्नमरीचिभिः ॥११०॥
विमानसदृशैः रम्यैः प्रासादैः स्वर्गसन्निभैः । मनोहरैः प्रदेशैश्च क्रीडनादिक्रियोचितैः ॥१११॥
त्रिंशद् योजनमानेन परिच्छिन्ना समन्ततः । महाप्राकारपरिखा द्वितीयेव[4] वसुन्धरा ॥११२॥

वहाँका राजा बनाया ॥९७॥ राम, बार-बार आलिङ्गन कर उससे यह समाचार पूछते थे और वह हर्षसे स्खलित होते हुए अक्षरोमे बार-बार उक्त समाचार सुनाता था ॥९८॥

तदनन्तर अत्यन्त उत्सुकतासे भरे रामने शीघ्र ही पूछा कि हे विद्याधरो ! बतलाओ कि लंका कितनी दूर है ? ॥९९॥ इस प्रकार रामके कहने पर सब विद्याधर मोहको प्राप्त हो गये उनके शरीर निश्चल हो रहे तथा वे नम्रमुख, कान्तिहीन और वचनोसे रहित हो गये ॥१००॥ तदनन्तर जिनके हृदय भयसे विशीर्ण हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरोका अभिप्राय जानकर रामने उनकी ओर अवज्ञापूर्ण दृष्टिसे देखा ॥१०१॥ तत्पश्चात् 'हम श्रीराम की दृष्टिमे भयभीत जाने गये है' इस विचारसे जो लज्जित हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरोने हाथ जोड मस्तकसे लगा मनको धीर कर कहा कि ॥१०२॥ हे देव ! किसी तरह उच्चारण किया हुआ जिसका नाम ही भयसे ज्वर उत्पन्न कर देता है उसके विषयमे हम आपके सामने क्या कहें ? ॥१०३॥ क्षुद्र शक्तिके धारक हम लोग कहाँ और लंकाका स्वामी रावण कहाँ ? अतः इस समय आप इस जानी हुई वस्तुकी हठ छोड़िए ॥१०४॥ अथवा हे प्रभो ! यह सुनना आवश्यक ही है तो सुनिए कहनेमे क्या दोष है ? आपके समक्ष तो कुछ कहा जा सकता है ॥१०५॥ दुष्ट मगरमच्छोंसे भरे हुए इस लवणसमुद्रमे अनेक आश्चर्यकारी स्थानोसे युक्त प्रसिद्ध राक्षसद्वीप है ॥१०६॥ जो सब ओरसे सात योजन विस्तृत है तथा कुछ अधिक इक्कीस योजन उसकी परिधि है ॥१०७॥ उसके बीचमे सुमेरु पर्वतके समान त्रिकूट नामका पर्वत है जो नौ योजन ऊँचा और पचास योजन चौड़ा है ॥१०८॥ सुवर्ण तथा नाना प्रकारके मणियोसे देदीप्यमान एवं शिलाओंके समूहसे व्याप्त है। राक्षसोके इन्द्र भीमने मेघवाहनके लिए वह दिया था ॥१०९॥ तट पर उत्पन्न हुए नाना प्रकारके चित्र-विचित्र वृक्षोसे सुशोभित उस त्रिकूटाचलके शिखर पर लङ्का नामकी नगरी है जो मणि और रत्नोकी किरणो तथा स्वर्गके विमानोके समान मनोहर महलो एवं क्रीड़ा आदिके योग्य सुन्दर प्रदेशोसे अत्यन्त शोभायमान है ॥११०-१११॥ जो सब ओरसे

---

१. नवोत्तुङ्गपञ्च- म० । २. मेघवाहनस्य । ३. कल्पद्रुमैः ख० । ४. द्वितीयेन म० ।

ततोऽनादरतस्तेषामेकैकं वीक्ष्य लक्ष्मणः । अभाणीदूर्जितं वाक्यं घनाघनघनस्वनः ॥१२८॥
सत्यं यदीदृशः ख्यातः शक्तिमान् दशवक्त्रकः । तत् किमश्राव्यनामा[1] स्वमसौ स्त्रीतस्करो भवेत् ॥१२९॥
दाम्भिकस्यातिभीतस्य मोहिनः पापकर्मणः । रक्षोऽधमस्य तस्यास्ति कुतः स्वल्पापि शूरता ॥१३०॥
अब्रवीत्पद्मनाभश्च किमुक्तेनेह भूरिणा । वार्तागमोऽपि दुःप्रापो दिष्टया लब्धो मया स च ॥१३१॥
चिन्त्यमस्त्यपरं नात्र क्षोभ्यतां राक्षसाधमः । जायतामुचितं भावि फलं कर्मानिलेरितम् ॥१३२॥
अथैनमूचिरे वृद्धाः क्षणं स्थित्वेव सादराः । शोकं जहीहि पद्माभ भवास्माकमधीश्वरः ॥१३३॥
विद्याधरकुमारीणां गुणैरप्सरसामिव । भव भर्ता भ्रमन् लोके वियुक्ताशेषदुःखधीः ॥१३४॥
पद्मोऽवदन्न मेऽन्याभिः प्रमदाभिः प्रयोजनम् । विजयन्ते महालीला यदि शच्या अपि स्त्रियः ॥१३५॥
प्रीतिश्चेन्मयि युष्माकमस्ति कापि नभश्चराः । अनुकम्पापि वा सीतां ततो दर्शयत द्रुतम् ॥१३६॥
जाम्बूनदस्ततोऽवोचत्प्रभो मूढग्रहस्त्वया । त्यज्यतां क्षुद्रवन्मा भूर्मयूर इव दुःखितः ॥१३७॥
अस्ति वेणातटे गेही नाम्ना सर्वरुचिः किल । सुतो विनयदत्तोऽस्य गुणपूर्णासमुद्भवः ॥१३८॥
विशालभूतिसंज्ञश्च वयस्योऽस्यातिवल्लभः । तद्भार्यायां समासक्तो गृहलक्ष्म्यां दुरात्मकः ॥१३९॥
तस्या एव च वाक्येन विद्रुतिच्छद्मना वनम् । नीत्वा विनयदत्तं स बबन्धोपरि शाखिनः ॥१४०॥
बध्वा च तं ततो गेहं क्रूरकर्मा हताशयः । विधाय चोत्तरं किञ्चिदवतस्थे कृतार्थवत् ॥१४१॥

समर्थ है ? अर्थात् कोई नहीं । इसलिए यह कथा ही छोड़िये कोई दूसरा उपाय सोचिये ॥१२७॥

तदनन्तर अनादरसे उनमे प्रत्येककी ओर देखकर मेघके समान गम्भीर शब्दको धारण करनेवाले लक्ष्मणने इस प्रकार बलपूर्ण वचन कहे कि यदि रावण सचमुच ही ऐसा प्रसिद्ध बलवान् है तो जिसका नाम भी श्रवण करने योग्य नहीं रहता ऐसा स्त्रीका चोर क्यों होता ? ॥१२८-१२९॥ वह तो कपटी, भीरु, मोही, पापकर्मा नीच राक्षस है उसमे थोड़ी भी शूर वीरता कहाँ है ? ॥१३०॥ रामने भी कहा कि इस विषयमे अधिक कहनेसे क्या ? जिस समाचारका मिलना भी दुष्कर था वह समाचार दैवकी अनुकूलतासे हमने प्राप्त कर लिया है ॥१३१॥ इसलिए अब दूसरी बात सोचनेकी आवश्यकता नही है, अब तो उस नीच राक्षसको क्षोभित किया जाय । कर्मरूपी वायुसे प्रेरित हुआ उचित ही फल होगा ॥१३२॥

अथानन्तर क्षण भर ठहर कर वृद्ध लोगोने आदर पूर्वक कहा कि पद्माभ ! शोक छोड़ो, हमारे स्वामी होओ, गुणोसे अप्सराओंकी समानता करनेवाली विद्याधर कुमारियोंके भर्ता होओ तथा सब दुःख छोड़कर आनन्दसे लोकमे भ्रमण करो ॥१३३-१३४॥ रामने उत्तर दिया कि मुझे अन्य स्त्रियोंसे प्रयोजन नहीं है भले ही वे स्त्रियाँ इन्द्राणीकी महालीलाको जीतती हों ॥१३५॥ हे विद्याधरो ! यदि आप लोगोंकी मुझ पर कुछ भी प्रीति अथवा दया है तो शीघ्र ही सीताको दिखाओ ॥१३६॥ तदनन्तर जाम्बूनदने कहा कि हे प्रभो ! इस मूर्ख हठको छोड़ो जिस प्रकार कृत्रिम मयूरके विषयमे क्षुद्रनामा मनुष्य दुःखी हुआ था उस तरह तुम दुःखी मत होओ ॥१३७॥ मैं यह कथा कहता हूँ सो सुनो—

वेणातट नामक नगरमें सर्वरुचि नामका एक गृहस्थ रहता था । उसके गुणपूर्णा नामक स्त्रीसे उत्पन्न विनयदत्त नामका पुत्र था ॥१३८॥ विनयदत्तका एक विशालभूति नामक अत्यन्त प्यारा मित्र था सो वह पापी, विनयदत्तकी स्त्री गृहलक्ष्मीमे आसक्त हो गया ॥१३९॥ एक दिन उसी स्त्रीके कहनेसे विशालभूति विनयदत्तको भ्रमण करनेके छलसे वनमे ले गया और उसे वृक्षके ऊपर बाँध आया ॥१४०॥ दुष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाला क्रूरकर्मा विशाल भूति

---

१ तत्किमश्राव्य नाम-म० ।

अत्रान्तरे तमुद्देशं दिग्मूढः प्रच्युतः पथः। आजगामि भ्रमन् खिन्नः क्षुद्रोऽपश्यच्च तं तरुम् ॥१४२॥
घनच्छायाकृतश्रद्धस्तस्याधश्च जगाम सः। क्वणितं वाश्रृणोन्मन्दमुन्मुखश्च व्यलोकयत् ॥१४३॥
यावत्पश्यति तं बद्धं निविडं दृढरज्जुभिः। अत्यन्ततुङ्गशाखाग्रे निश्चेष्टीकृतविग्रहम् ॥१४४॥
आरुह्य तेन मुक्तः सोऽनुकम्पासक्तचेतसा। गतो विनयदत्तस्तु स्वं तेनैव समाश्रयम् ॥१४५॥
स्वजनस्योत्सवे [1]जातो महानन्दसमुत्कटः। विशालभूतिरालोक्य तं च दूरात्पलायितः ॥१४६॥
क्षुद्रस्याथ शिखी जातु शिखिपत्रमयोऽन्यथा। रमणो वात्यया नीतः सम्प्राप्तो राजसूनुना ॥१४७॥
तन्निमित्तं महाशोकः क्षुद्रो मित्रमभाषत। मां चेदिच्छसि [2]जीवन्तं यच्छ तन्मे मयूरकम् ॥१४८॥
बद्धस्तथाविधो वृक्षे मया त्वं परिमोचितः। अस्योपकारमुख्यस्य प्रतिदानं प्रयच्छ मे ॥१४९॥
ततो विनयदत्तस्तमुवाचान्यमयूरकम्। गृहाण मणिरत्नं वा कुतस्त्वं ते ददाम्यहम् ॥१५०॥
सोऽवोचद्दीयतां मह्यं स एवेति पुनः पुनः। मूढस्तथाविधो जातो भवानपि नरोत्तम ॥१५१॥
राजपुत्रकरं प्राप्ता कृत्रिमासौ मयूरिका। कथं लभ्या वधो यस्माल्लभ्यते यत्र तत्परैः ॥१५२॥
त्रिवर्णाम्भोजनेत्राणां कन्यानां कनकत्विषाम्। पीवरस्तनकुम्भानां विशालजघनश्रियाम् ॥१५३॥
वक्त्रकान्तिजितेन्दूनां पूर्णानां चारुभिर्गुणैः। पतिर्भव महाभोगं प्रसीद रघुनन्दन ॥१५४॥

घर आकर कृतकृत्यकी तरह आनन्दसे रहने लगा तथा पूछने पर विनयदत्तके विषयमें कुछ इधर-उधरका उत्तर देकर चुप हो जाता ॥१४१॥ इसी बीचमें क्षुद्र नामका एक मनुष्य दिशा भूलकर मार्गसे च्युत हो भ्रमण करता हुआ खेदखिन्न हो वहाँसे निकला और उसने उस वृक्षको देखा ॥१४२॥ वृक्षकी सघन छाया देखकर विश्राम करनेकी इच्छासे वह वृक्षके नीचे गया। वहाँ उसने विनयदत्तके कराहनेका मन्द-मन्द शब्द सुन ऊपरको मुख उठाकर देखा ॥१४३॥ तो उसे अत्यन्त ऊँची शाखाके अग्रभाग पर मजबूत रस्सियोंसे बँधा हुआ निश्चेष्ट शरीरका धारक विनयदत्त दिखा ॥१४४॥ जिसका चित्त दयामें आसक्त था ऐसे क्षुद्र नामक पुरुषने ऊपर चढ़कर उसे बन्धन मुक्त किया। तदनन्तर विनयदत्त नीचे उतर उस क्षुद्रको साथ ले अपने घर चला गया ॥१४५॥ विनयदत्तके आनेसे उसके घरमें महान् आनन्दसे युक्त उत्सव हुआ और विशालभूति उसे देख दूर भाग गया ॥१४६॥ क्षुद्र, विनयदत्तके घर रहने लगा उसके पास मयूरपत्रका बना हुआ एक मयूरका खिलौना था सो वह खिलौना एक दिन हवामें उड़ गया और राजाके पुत्रको मिल गया ॥१४७॥ उस कृत्रिम मयूरके निमित्त बहुत भारी शोक करता हुआ क्षुद्र, अपने मित्रसे बोला कि हे मित्र! यदि मुझे जीवित चाहते हो तो मेरा वह कृत्रिम मयूर मुझे देओ ॥१४८॥ मैंने तुझे उस तरह वृक्ष पर बँधा हुआ छोड़ा था सो इस मुख्य उपकारका बदला मेरे लिए देओ ॥१४९॥ तब विनयदत्तने उससे कहा कि तुम उसके बदले दूसरा मयूर ले लो अथवा मणि या रत्न ले लो तुम्हारा वह मयूर कहाँसे दूँ ॥१५०॥ इसके उत्तरमें वह बार-बार यही कहता था कि नहीं, मेरे लिए तो वही मयूर देओ। सो क्षुद्र तो मूर्ख होकर उस प्रकार हठ करता था पर आप तो नरोत्तम होकर भी ऐसी हठ कर रहे हैं ॥१५१॥ आप ही कहो कि राजपुत्रके हाथमें पहुँची कृत्रिम मयूरी कैसे प्राप्त हो सकती थी। राजपुत्रसे तो केवल माँगनेवालोंको मृत्यु ही मिल सकती थी ॥१५२॥ इसलिए हे रघुनन्दन! सीताकी इच्छा छोड़ो और जिनके नेत्र सफेद काले तथा लाल रङ्गके हैं, जिनकी कान्ति सुवर्णके समान है, जिनके स्तनकलश अत्यन्त स्थूल हैं, जिनके जघनकी शोभा विशाल है, जिन्होंने मुखकी कान्तिसे चन्द्रमाको जीत लिया है तथा जो अनेक सुन्दर गुणोंसे युक्त है ऐसी कन्याओंके पति होकर महाभोग भोगो, प्रसन्न होओ ॥१५३-१५४॥

---

१. -स्योत्सवे जाती म०। २. जीवितं म०।

अनुबन्धमिद हास्य त्यज दु खविवर्धनम् । मयूरगष्पशोकार्तो माभू क्षुद्रकवद् बुध ॥१५५॥
सर्वदा सुलभा पुस शिखिशष्पोपमा[1] स्त्रिय.[2] । ब्रवीमि राघव त्वाह प्राज्ञै. शोको न धार्यते ॥१५६॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत्परमो वाक्यवर्त्मनि । जाम्बूनदेदश नेदमिदमेतादृश शृणु ॥१५७॥
आसीद्गृहपति ख्यातः पुरे कुसुमनामनि । प्रभवाख्य प्रिया तस्य यमुनेति प्रकीर्तिता ॥१५८॥
धनबन्धुगृहक्षेत्रपशुप्रभृतय. सुता । पालान्तास्तस्य सेवन्ते शब्दानामन्तमागता' ॥१५९॥
अन्वर्थसज्ञकास्ते च कुटुम्बार्थं सदोद्यता । कुर्वन्ति कर्मविश्रान्ति[3] क्षणमप्यनुपागता ॥१६०॥
आत्मश्रेयोभिधानश्च सुतोऽस्यैवाखिलाधरः[4] । पुण्योदयादसौ भोगान् भुक्ते देवकुमारवत् ॥१६१॥
[5]भ्रातृभि स पितृभ्या च चिर कटुभिरक्षरै[6] । निर्भर्त्सितोऽन्यदा यातो मानी बाह्यापरिभ्रमन् ॥१६२॥
सुकुमारशरीरोऽसौ निर्वेद परम गत. । कर्म कर्तुमशक्तात्मा मरण स्वस्य वाञ्छति ॥१६३॥
पूर्वकर्मानुभावेन प्रेरित कथिकश्च तम् । समागत्याभणीदेव श्रूयतामयि मानव ॥१६४॥
पृथुस्थाधिपस्याह सुभानुरिति नन्दनः । गोत्रिकाक्रान्तदेश सन् कुर्वन्नैमित्त[7]भाषितम् ॥१६५॥
पर्यटन् वसुधामेता दैवात् कूर्म्मपुर गत. । आचार्येणाभियोग्येन सङ्ग प्राप्तोऽस्मि तत्र च ॥१६६॥
अयोमयामिद तेन दत्त मे वलय शुभम् । मार्गदुखाभिभूताय कारुण्याकारचेतसा ॥१६७॥
एतच्च सर्वरोगाणा शमन बुद्धिवर्धनम् । ग्रहोरगपिशाचादिवशीकरणमुत्तमम् ॥१६८॥

इस हास्यजनक दु.खवर्धक हठको छोडो और हे विद्वन् ! क्षुद्रके समान मयूर रूपी तृणके शोकसे पीडित नही होओ ॥१५५॥ मयूररूपी तृणके समान स्त्रियाँ पुरुषको सदा सुलभ है इसलिए हे रावव ! मै आपसे कह रहा हूँ। बुद्धिमान् मनुष्य कभी शोक धारण नही करते ॥१५६॥

तदनन्तर वचनोके मार्गमे अतिशय निपुण लक्ष्मणने कहा कि हे जाम्बूनद ! यह बात ऐसी नही है किन्तु ऐसी है सो सुनो ॥१५७॥ कुसुमपुर नामक नगरमे एक प्रभव नामका प्रसिद्ध गृहस्थ रहता था उसकी स्त्रीका नाम यमुना था ॥१५८॥ उन दोनोके धनपाल, बन्धुपाल, गृहपाल, क्षेत्रपाल और पशुपाल नामके पाँच पुत्र थे ॥१५९॥ ये सभी पुत्र सार्थक नाम वाले थे और कुटुम्बके पालनके लिए सदा तत्पर रहते थे तथा क्षणभरके लिए भी अपने कार्यसे विश्राम नही लेते थे ॥१६०॥ इन सबसे छोटा आत्मश्रेय नाम कुमार था सो वह पुण्योदयसे देवकुमारके समान भोग भोगता था ॥१६१॥ कुछ करता नही था इसलिए भाई तथा माता पिता निरन्तर कटुक अक्षरों द्वारा उसका तिरस्कार करते रहते थे। एक दिन वह मानी घरसे निकलकर नगरके बाहर चला गया ॥१६२॥ अत्यन्त सुकुमार शरीरका धारक था इसलिए कुछ कर सकनेके लिए समर्थ नहीं था अत. परम निर्वेदको प्राप्त हो आत्मघात करने की इच्छा करने लगा ॥१६३॥ उसी समय पूर्व कर्मोदयसे प्रेरित हुआ एक पथिक उसके पास आकर बोला के हे मनुष्य ! सुन ॥१६४॥ मैं पृथुस्थान नगरके राजाका पुत्र सुभानु हूँ निमित्तज्ञानीके आदेशका पालन करता हुआ मै अब तक अनेक देशोमें भ्रमण करता हूँ ॥१६५॥ इस पृथ्वीपर भ्रमण करता हुआ मै दैवयोगसे कूर्म्मपुर नामा नगरमें पहुँचा वहाँ एक उत्तम आचार्यके साथ समागमको प्राप्त हुआ ॥१६६॥ मै मार्गके दुःखसे दुःखी था इसलिए दयालु चित्तके धारक उन आचार्यने मुझे यह लोहेका कड़ा दिया था ॥१६७॥ यह कड़ा समस्त रोगोको शान्त करनेवाला तथा बुद्धिको

---

१ शिशिशिष्योपमाः म० । २. श्रियः म० । ३ विश्रान्ति लक्षमप्यनु म० । ४. खिला धरा म० । ५. मातृभिः । ६. कटुकैरक्षरैः म० । ७ निमित्त ब० ।

नैमित्तादिष्टकालस्य सम्प्राप्तश्च ममावधि । आत्मीयमधुना राज्य कर्तुं यामि निज पुरम् ॥१६९॥
राज्यस्थस्य प्रमादाश्च जायन्ते गणनोज्झिता । एतच्चच्छिद्रमासाद्य नियत नाशकारणम् ॥१७०॥
[1]गृहाणैतत्ततस्तुभ्य यच्छामि वलय पुरम् । उपसर्गविनिर्मुक्त यदि वाञ्छसि जीवितम् ॥१७१॥
लब्धस्य च पुनर्दान शसन्ति सुमहाफलम् । यशश्च प्राप्यते लोके पूजयन्ति च त जना ॥१७२॥
ततस्तमेवमित्युक्त्वा [2]गृहीत्वाङ्गदमायसम् । आत्मश्रेयो गतो धाम सुभानुश्च निज निजम् ॥१७३॥
यावत्पत्नी नरेन्द्रस्य दष्टा [3]श्वसनभोजिना । निश्चेष्टा दग्धुमानीता चितोद्देशे[4] स पश्यति ॥१७४॥
कटकस्य प्रसादेन तस्य लोहमयस्य ताम् । जीवयित्वा पर प्रापदसो पूजा नरेन्द्रत. ॥१७५॥
महान्तस्तस्य सञ्जाता भोगा परमसौख्यदा । सर्वबन्धुसमेतस्य पुण्यकर्मानुभावत ॥१७६॥
उत्तरीयांशुकस्योर्ध्वं निधाय वलय सर । प्रविष्टो यावदादाय गोधेरोऽनश्यदुद्धत[5] ॥१७७॥
महातरोरधस्तावत् प्रविवेश विल महत् । शिलानिकरसञ्छन्न निर्हार घोरनिस्वनम् ॥१७८॥
तेन गोधेरशब्देन किल नित्यप्रवृत्तिना । बभूव स्थानमप्येतत्प्रलयाशङ्किमानसम् ॥१७९॥
आत्मश्रेयस्ततो वृक्षमुन्मूल्य स शिलाघनम् । गोधेर नाशयित्वा त निधान प्राप्य साङ्गदम् ॥१८०॥
आत्मश्रेय:सम पद्म सीता वलयमूर्तिवत् । प्रमादवच्च कौसीद्य शब्दस्तच्छब्दवद्द्विषो ॥१८१॥
महानिधानवल्लङ्का गोधेरो दशवक्त्रक । जनास्त इव निर्भीता यूय भवत साम्प्रतम् ॥१८२॥

बढ़ानेवाला है और ग्रह उरग पिशाच आदिका उत्तम वशीकरण है ॥१६८॥ निमित्तज्ञानीने मुझे भ्रमण करनेके लिए जो समय बताया था अब उसकी अवधि आ गई है इसलिए मै अपना राज्य करनेके लिए अपने नगरको जाता हूँ ॥१६९॥ राज्य कार्यमे स्थिर रहनेवाले पुरुषके अगणित प्रमाद होते रहते है और किसी प्रमादको पाकर यह कडा निश्चित ही नाशका कारण बन सकता है ॥१७०॥ इसलिए यदि तू उपसर्ग रहित जीवन चाहता है तो इस उत्तम कड़ेको ले ले मै तुझे देता हू ॥१७१॥ अपने लिए प्राप्त हुई वस्तुका दूसरेके लिए दे देना महाफलकारक है, उससे यश प्राप्त होता है और लोग उसकी पूजा करते है ॥१७२॥ तदनन्तर उससे 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर तथा लोहेका कडा लेकर आत्मश्रेय अपने घर चला गया और सुभानु भी अपने नगर चला गया ॥१७३॥ इतनेमे ही राजाकी पत्नीको साँपने डँस लिया था जिससे वह निश्चेष्ट हो गई थी तथा जलानेके लिए श्मशानमे लाई गई थी । आत्मश्रेयने उसे देखा ॥१७४॥ और देखते ही उस लोह निर्मित कड़ेके प्रसादसे उसे जिलाकर उसने राजासे बहुत सन्मान प्राप्त किया ॥१७५॥ अब पुण्य कर्मके प्रभावसे उसके लिए समस्त बन्धुओंके साथ साथ परम सुख देनेवाले बड़े बड़े भोग प्राप्त हो गये ॥१७६॥ एक बार उसने उस कड़ेको उत्तरीय वस्त्रके ऊपर रखकर जब तक सरोवरमे प्रवेश किया तब तक एक उद्दण्ड गुहेरा उसे लेकर चला गया ॥१७७॥ वह गुहेरा एक महावृक्षके नीचे बने हुए अपने बड़े बिलमे घुस गया । उसका वह शिलाओंके समूह से आच्छादित, प्रवेश करनेके अयोग्य तथा भयकर शब्दसे युक्त था ॥१७८॥ वह गुहेरा उस बिलमे बैठकर निरन्तर शब्द करता रहता था जिससे उस बिलको देख मनमे प्रलयकी आशका होती थी ॥१७९॥ तदनन्तर आत्मश्रेयने शिलाओंसे सघन उस वृक्षके मूलको उखाड़कर तथा गुहेरको मारकर कड़ेके साथ साथ उसका सब खजाना ले लिया ॥१८०॥ सो राम तो आत्मश्रेयके समान है, सीता कडेके समान है, लाभकी इच्छा प्रमादके समान है, शत्रुका शब्द गुहेरेके शब्दके समान है, लंका महानिधानके समान है, रावण गुहेरेके समान है, इसलिए हे विद्याधरो ! तुम सब इस समय निर्भय होओ ॥१८१-१८२॥

१ गृहाण तत्त्वतस्तुभ्य ज० । २ गृहीताङ्गद म० । ३. श्वसनभोगिना म० । नागेनेत्यर्थः । ४. श्मसाने । ५. दूरवंतः म० ।

तच्छ्रुत्वा समुपाख्यान जितजाम्बूनदोदितम् । बहवो विस्मयापन्ना बभूवु स्मितकारिण ॥१८३॥
जाम्बूनदादय सर्वे तत कृत्वा प्रधारणम् । इदमूचु पुन पद्म शृणु राजन् समाहित ॥१८४॥
अनन्तवीर्ययोगीन्द्र सम्प्रणम्य पुरा मुदा । रावणेनात्मनो मृत्यु परिपृष्ट. समादिशत् ॥१८५॥
यो निर्वाणशिला पुण्यामतुलामर्चिता सुरै । समुद्यता स ते मृत्यो कारणत्व गमिष्यति ॥१८६॥
सर्वज्ञोक्त निशम्यैतद्चिन्तयदसाविदम् । भविता पुरुष कोऽसौ ता यश्चालयितु क्षम. ॥१८७॥
नास्त्येव मरणे हेतुर्ममेत्युक्त भवत्यद । वचोयुक्तिर्विचित्रा हि विदुषामर्थदेशने ॥१८८॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवोचद्गच्छामो न चिर हितम् । ईक्षामहे शिला सैद्धी भव्याना रोमहर्षणीम् ॥१८९॥
रहस्यमेतत्सन्मन्त्र्य सुनिश्चित्य समन्तत । सर्वे ते गन्तुमुद्युक्ता प्रमादपरिवर्जिता ॥१९०॥
जाम्बूनदो महाबुद्धिः किष्किन्धाधिपतिस्तथा । विराधितोऽर्कमाली च नलनीलौ विचक्षणौ ॥१९१॥
सपुरस्कारमारोप्य विमाने रामलक्ष्मणौ । सम्प्रयाता द्रुत व्योम्नि रात्रौ तमसि गह्वरे ॥१९२॥
अवतेरु समीपे च यत्र सा सुमनोहरा । शिला परमगम्भीरा सुरासुरनमस्कृता ॥१९३॥
उपसस्रुश्च ते सर्वे मस्तकन्यस्तपाणय । आशारक्षानवस्थाप्य[1] प्रयातान् सुसमाहितान् ॥१९४॥
सुगन्धिभिर्महाम्भोजै पूर्णेन्दुपरिमण्डलै । अन्यैश्च कुसुमैश्चित्रैरर्चिता तैरसौ शिला ॥१९५॥
सितचन्दनदिग्धाङ्गा कुंकुमांशुकधारिणी । धृतालङ्करणा भाति सा शचीव मनोरमा ॥१९६॥

इस प्रकार जाम्बूनदके कथनको खण्डित करनेवाला लक्ष्मणका उपाख्यान सुन बहुत लोग आश्चर्यको प्राप्त हो मन्दहास्य करने लगे ॥१८३॥ तत्पश्चात् जाम्बूनद आदि सभी विद्याधर परस्परमे विचारकर रामसे यह कहने लगे कि हे राजन्! एकाग्र चित्त होकर सुनिये ॥१८४॥ पहले एक बार रावणने हर्षपूर्वक अनन्तवीर्यनामा योगीन्द्रको नमस्कार कर उनसे अपनी मृत्युका कारण पूछा था सो उन योगीन्द्रने कहा था कि जो देवोके द्वारा पूजित, अनुपम, पुण्यमयी निर्वाण शिला—कोटिशिलाको उठावेगा वही तेरी मृत्युका कारण होगा ॥१८५–१८६॥ सर्वज्ञके यह वचन सुन रावणने विचार किया कि ऐसा कौन पुरुष होगा जो उसे चलानेके लिए समर्थ होगा ॥१८७॥ भगवान्‌के कहनेका तात्पर्य यह है कि मेरे मरणका कोई भी कारण नही है सो ठीक ही है क्योकि अर्थके प्रकट करनेमे विद्वानोकी वचन योजना विचित्र होती है ॥१८८॥

तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हमलोग अभी चलते है विलम्ब करना हितकारी नही है, अन्यजीवोको आनन्द देने वाली सिद्धशिलाके अभी दर्शन करेगे ॥१८९॥ तत्पश्चात् सबलोग परस्परमे मन्त्रणा कर तथा सब ओरसे निश्चय कर प्रमाद छोड लक्ष्मणके साथ जानेके लिए उद्यत हुए ॥१९०॥ महाबुद्धिमान् जाम्बूनद, किष्किन्धाका स्वामी—सुग्रीव, विराधित, अर्कमाली, अतिशय विद्वान् नल और नील, सन्मानके साथ राम और लक्ष्मणको विमान पर बैठा कर रात्रिके सघन अन्धकारमे शीघ्र ही आकाशमार्गसे चले ॥१९१–१९२॥ और जहाँ वह अत्यन्त मनोहर परम गम्भीर एव सुर असुरोके द्वारा नमस्कृत सिद्धशिला पासमे थी वहाँ उतरे ॥१९३॥ तदनन्तर सावधान चित्त हो कर आगे गये हुए दिशारक्षकों को नियुक्त कर वे सब हाथ जोड़ मस्तकसे लगा उस सिद्धशिलाके समीप गये ॥१९४॥ वहाँ जाकर उन्होंने अत्यन्त सुगन्धित तथा पूर्ण चन्द्रमाके बिम्बके समान सुशोभित बड़े-बड़े कमलों तथा नाना प्रकारके अन्य पुष्पोसे उस शिलाकी पूजा की ॥१९५॥ जिसके ऊपर सफेद चन्दनका लेप लगाया गया था, जो केशर रूप वस्त्रको धारण कर रही थी, तथा जो नाना अलंकारोसे अलंकृत थी ऐसी वह शिला उस समय इन्द्राणीके

---

१. दिक्पालान् ।

तस्या सिद्धान्नमस्कृत्य शिरस्थकरकुड्मला[1] । भक्त्या प्रदक्षिणं चक्रुः क्रमेण विधिपण्डिता ॥१९७॥
तत परिकरं बद्ध्वा सौमित्रिर्विनयं वहन् । नमस्कारपरो भक्त स्तुतिं कर्तुं समुद्यत ॥१९८॥
जयशब्द समुद्घोष्य प्रहृष्टा वानरध्वजा । स्तोत्रं परिपठन्तीदमुत्तमं सिद्धमङ्गलम् ॥१९९॥
स्थितांस्त्रैलोक्यशिखरे स्वयं परमभास्वरे । स्वरूपभूतया स्थित्या पुनर्जन्मविवर्जितान् ॥२००॥
भवार्णवसमुत्तीर्णांश्चि श्रेयस[2] समुद्भवान् । आधारान्मुक्तिसौख्यस्य केवलज्ञानदर्शनान् ॥२०१॥
अनन्तवीर्यसम्पन्नान् स्वभावसमवस्थितान् । सुसमीचीनतायुक्तांश्चि शेषक्षीणकर्मण ॥२०२॥
अवगाहनधर्मोक्तानमूर्तान् सूक्ष्मतायुज । गुरुत्वलघुतामुक्तानसख्यातप्रदेशिन ॥२०३॥
अप्रमेयगुणाधारान् क्रमादिपरिवर्जितान् । साधारणान् स्वरूपेण स्वार्थकाष्ठामुपागतान् ॥२०४॥
सर्वथा शुद्धभावांश्च ज्ञातज्ञेयान्निरञ्जनात् । दग्धकर्ममहाकक्षान् विशुद्धध्यानतेजसा ॥२०५॥
तेजःपटपरीतेन भक्तितो वज्रपाणिना । सस्तुतान् भवभीतेन चक्रवर्त्यादिभिस्तथा ॥२०६॥
ससारधर्मनिर्मुक्तान् सिद्धधर्मसमाश्रितान् । सर्वान् वन्दामहे सिद्धान् सर्वसिद्धिसमावहान् ॥२०७॥
अस्या च ये गता सिद्धिं शिलाया शीलधारिण । उपगीताः पुराणेषु सर्वकर्मविवर्जिता ॥२०८॥
जिनेन्द्रसमता याता कृतकृत्या महौजस । मङ्गलस्मरणेनैतान् भक्त्या वन्दामहे मुहु ॥२०९॥

समान मनोहर जान पड़ती थी ॥१९६॥ उस शिलासे जो सिद्ध हुए थे उन्हें नमस्कार कर जिन्होंने हाथ जोड़ मस्तकसे लगाये थे तथा जो सब प्रकारकी विधि विधानमें निपुण थे ऐसे उन सब लोगोंने भक्ति पूर्वक क्रमसे उस शिलाकी प्रदक्षिणा दी ॥१९७॥

तदनन्तर विनयको धारण करने वाले, नमस्कार करनेमें तत्पर एवं भक्तिसे भरे लक्ष्मण कमर कस कर स्तुति करनेके लिए उद्यत हुए ॥१९८॥ हर्षसे भरे वानरध्वज राजा, जय-जय शब्दका उच्चारण कर सिद्ध भगवान्‌के निम्नाङ्कित स्तोत्रको पढ़ने लगे ॥१९९॥ स्तोत्र पढ़ते हुए उन्होंने कहा कि हम उन सिद्ध परमेष्ठियोंको नमस्कार करते हैं कि जो अतिशय देदीप्यमान तीन लोकके शिखर पर स्वयं विराजमान हैं, आत्माको स्वरूपभूत स्थितिसे युक्त हैं तथा पुनर्जन्मसे रहित हैं ॥२००॥ जो ससार सागरसे पार हो चुके हैं, परमकल्याणसे युक्त हैं, मोक्ष सुखके आधार हैं तथा केवलज्ञान और केवलदर्शनसे सहित हैं ॥२०१॥ जो अनन्त बलसे युक्त हैं, आत्मस्वभावमें स्थित हैं, श्रेष्ठतासे युक्त हैं, और जिनके समस्त कर्म क्षीण हो चुके हैं ॥२०२॥ जो अवगाहन गुणसे युक्त हैं, अमूर्तिक हैं, सूक्ष्मत्व गुणसे सहित हैं, गुरुता और लघुतासे रहित तथा असख्यातप्रदेशी हैं ॥२०३॥ जो अपरिमित—अनन्तगुणोंके आधार हैं, क्रम आदिसे रहित हैं, आत्मस्वरूपकी अपेक्षा सब समान हैं और जो आत्म प्रयोजनकी अन्तिम सीमाको प्राप्त हैं—कृतकृत्य हैं ॥२०४॥ जिनके भाव सर्वथा शुद्ध हैं जिन्होंने जानने योग्य समस्त पदार्थोंको जान लिया है, जो निरञ्जन—कर्म कालिमासे रहित हैं और निर्मल ध्यान शुक्लध्यान रूपी अग्निके द्वारा जिन्होंने कर्मरूपी महाअटवीको भस्म कर दिया है ॥२०५॥ संसार से भयभीत तथा तेज रूपी पटसे परिवृत इन्द्र तथा चक्रवर्ती आदि महापुरुष जिनकी स्तुति करते हैं ॥२०६॥ जो संसार रूप धर्मसे रहित हैं, सिद्ध रूप धर्मको प्राप्त हैं तथा जो सब प्रकारकी सिद्धियोंको धारण करने वाले हैं ऐसे समस्त सिद्ध परमेष्ठियोंको हम नमस्कार करते हैं ॥२०७॥ शीलको धारण करने वाले जो भी पुरुष इस शिलासे सिद्धिको प्राप्त हुए हैं पुराणोंमें जिनका कथन है, जो सर्व कर्मोंसे रहित हैं, जिनेन्द्र देवकी समानताको प्राप्त हुए हैं, कृतकृत्य हैं तथा जो महा प्रतापके धारक हैं उन सबको हम भक्ति पूर्वक मङ्गल स्मरण करते हुए बार-बार वन्दना करते हैं

१. शिरसि करकुड्मला. म० । २. निःश्रेयसः समुद्भवान् ।

एत्र च सुचिरं [1]स्तुत्वा पुनरेव बभाषिरे । लक्ष्मीधरं समुद्दिश्य स्थापितैकाग्रमानसा ॥२१०॥
शिलायामिह ये सिद्धा ये चान्ये हतकिल्विषा । ते विघ्नसूदना सर्वे भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२११॥
अर्हन्तो मङ्गलं सन्तु तव सिद्धाश्च मङ्गलम् । मङ्गलं साधव सर्वे मङ्गलं जिनशासनम् ॥२१२॥
इति मङ्गलनिस्वानैर्विहायस्तलचारिणाम् । शिलामचालयत् क्षिप्रं लक्ष्मणो विमलद्युति ॥२१३॥
सा लक्ष्मणकुमारेण नानालङ्कारभूषणा । केयूरकान्तबाहुभ्या धृता कुलवधूरिव ॥२१४॥
अथान्तरिक्षे देवाना महाशब्दो महानभूत् । सुग्रीवाद्याश्च राजेन्द्रा विस्मय परमं ययु ॥२१५॥
तत सिद्धान् प्रमोदाढ्या प्रणम्य भयवर्जितान् । सम्मेदशिखरस्थं च जिनेन्द्रं मुनिसुव्रतम् ॥२१६॥
[2]निषद्या ऋषभाद्यानामभ्यर्च्य च यथाविधि । सकलं भरतक्षेत्रं बभ्रमुस्ते प्रदक्षिणम् ॥२१७॥
सायाह्ने सौम्यवपुषो दिव्यैर्यानैर्मनोजवै । कृताभिवन्दना शब्दैर्जयनन्दादिभिर्भृशम् ॥२१८॥
परिवार्य महावीर्यं रामं लक्ष्मणसङ्गतम् । किष्किन्धनगरं प्रापुर्विविशुश्च महर्द्धयः ॥२१९॥
शयिताश्च यथास्थानं विस्मितेनान्तरात्मना । एकीभूय पुन प्रीता इत्यन्योन्य बभाषिरे ॥२२०॥
वीक्षध्वं वासरै स्वल्पै पृथिव्यां राज्यमेतयो । नि शेषै कण्टकैर्मुक्तं शक्तिं धारयतो पराम् ॥२२१॥
सा निर्वाणशिला येन चालयित्वा समुद्धृता । उत्सादयत्ययं क्षिप्रं रावणं नात्र सशय ॥२२२॥
तथापरे वच प्राहु कैलासो येन भूधर । तदा समुद्धृत सोऽयं शिलोधारस्य किं समं ॥२२३॥
आहुरन्ये समुद्धार कैलासस्य कृतो यदि । विद्याबलयतस्तत्र विस्मयः कस्य जायते ॥२२४॥

॥२०८-२०९॥ इस प्रकार चिर काल तक स्तुति कर एकाग्रचित्तके धारण उन विद्याधरोंने लक्ष्मण को लक्ष्यकर कहा कि इस शिलासे जो सिद्ध हुए हैं तथा अन्य जिन पुरुषोंने पापकर्म नष्ट किये हैं वे सब विघ्न विनाशक तुम्हारे लिए मङ्गलस्वरूप हो ॥२१०-२११॥ अरहन्त भगवान् तुम्हारे लिए मङ्गलस्वरूप हों, सिद्ध परमेष्ठी मगलरूप हों। सर्वसाधु परमेष्ठी मंगल स्वरूप हों और जिन शासन मङ्गलरूप हो ॥२१२॥ इसप्रकार विद्याधरोंकी मङ्गलध्वनिके साथ, महातेजको धारण करने वाले लक्ष्मणने शीघ्र ही उस शिलाको हिला दिया ॥२१३॥ तदनन्तर लक्ष्मण कुमारने कुलवधूके समान नाना अलंकारोंसे सुशोभित उस शिलाको बाजूबन्दोंसे सुशोभित अपनी भुजाओंसे ऊपर उठा लिया ॥२१४॥ उसी समय आकाशमे देवोंका महाशब्द हुआ और सुग्रीव आदि राजा परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥२१५॥

तदनन्तर हर्षसे भरे सब लोग भयसे रहित सिद्ध परमेष्ठियों, सम्मेद शिखर पर विराजमान श्री मुनिसुव्रत नाथ जिनेन्द्रकी तथा ऋषभ आदि तीर्थकरोंके निर्वाणस्थान कैलाश आदिकी विधिपूर्वक पूजा कर समस्त भरत क्षेत्रमे घूमे ॥२१६-२१७॥ तदनन्तर वन्दना करनेके बाद सौम्यशरीरके धारक तथा महा वैभवसे सम्पन्न सब लोगोंने सायंकालके समय मनके समान वेगशाली दिव्य विमानों द्वारा 'जय' 'नन्द' आदि शब्दोंके साथ महापराक्रमी राम लक्ष्मणको घेर कर किष्किन्धनगरमे प्रवेश किया ॥२१८-२१९॥ सब ने यथा स्थान शयन किया। तदनन्तर आश्चर्य चकित चित्तसे एकत्रित हो सब बड़ी प्रसन्नतासे परस्पर इस प्रकार कहने लगे ॥२२०॥ कि तुम लोग परम शक्तिको धारण करने वाले इन दोनोंका कुछ ही दिनोंमें पृथिवी पर समस्त कण्टकों अर्थात् शत्रुओंसे रहित राज्य देखोगे ॥२२१॥ जिसने उस निर्वाण शिलाको चला कर उठा लिया ऐसा यह लक्ष्मण शीघ्र ही रावणको मारेगा इसमें संशय नही है ॥२२२॥ कुछ लोग इस प्रकार कहते लगे कि उस समय जिसने कैलाश उठाया था ऐसा रावण क्या इस शिला उठाने वालेके समान है ? ॥२२३॥ कुछ अन्यलोग कहने लगे कि यदि रावणने कैलाश पर्वत उठाया था

१. श्रुत्वा म० । २. स्थानानि ।

एके च वचनं प्रोचुः किं विवादैरिमैर्मुधा । जगद्धिताय सन्ध्यर्थं किं नोपायो निरूप्यते ॥२२५॥
तस्मादानीयतां सीता समभ्यर्च्य दशाननम् । राघवायार्पयिष्यामि विग्रहे किं प्रयोजनम् ॥२२६॥
सङ्ग्रामे तारको नष्टो मेरुकश्च महाबलः । कृतवीर्यसुताद्याश्च महासैन्यसमन्विताः ॥२२७॥
एते खण्डत्रयाधीशा महाभागा महौजसः । अन्ये हि बहवो नष्टा रणे सामन्ततः परम् ॥२२८॥
अन्योन्यमभिमन्त्र्यैव विद्याविधिविशारदाः । राघवं विनयोपेताः सम्भूय ययुरादरात् ॥२२९॥
सुग्रीवाद्याः समासीना नयनानन्दकारिणम् । विरेजुः परितो राममम‍रेन्द्रमिवामराः ॥२३०॥
पद्मनाभस्ततोऽवोचत् किमद्याप्यवलम्ब्यते । मया विनान्तरे द्वीपे दुःखं तिष्ठति मैथिली ॥२३१॥
दीर्घसूत्रत्वमुत्सृज्य[1] क्षिप्रमद्यैव सर्वथा । त्रिकूटगमने सद्भिः क्रियते न किमुद्यमः ॥२३२॥
तमूचुर्मन्त्रिणो वृद्धा नयविस्तरकोविदाः । संशयेनात्र किं देव कथ्यतामेकनिश्चयः ॥२३३॥
किं त्वमिच्छसि वैदेहीं विरोधमथ रक्षसाम् । विजयः प्राप्यते दुःखं नाथ सदृशविग्रहः ॥२३४॥
भरतस्य त्रिखण्डस्य प्रतिपक्षोज्झितः प्रभुः । सागरद्वीपविख्यात एक एव दशाननः ॥२३५॥
शङ्कितो धातकीद्वीपो द्योतिषामपि भीतिदः । जाम्बूद्वीपे परं प्राप्तो महिमानं खगाधिपः ॥२३६॥
शल्यभूतोऽस्य[2] विश्वस्य कृतानेकाद्भुतक्रियः । ईदृशो राक्षसो राम कथं संसाध्यते त्वया ॥२३७॥
तस्माद्बुद्धिं रणे त्यक्त्वा यद् वयं संवदामहे । प्रसीद क्रियतां देव तदेवोद्यच्छ शान्तये ॥२३८॥
मा भूत्तस्मिन् कृतक्रोधे जगदेतन्महाभयम् । विध्वस्तप्राणिसङ्घातं नष्टनिःशेषसत्क्रियम्[3] ॥२३९॥

तो इससे क्या हुआ क्योंकि विद्याबलके रहते हुए उसके इस कार्यमें किसे आश्चर्य हो सकता है ? ॥२२४॥ कुछ लोग यह भी कहने लगे कि इन व्यर्थके विवादोंसे क्या लाभ है ? जगत्का कल्याण करनेके लिए सन्धिका उपाय क्यों नहीं बताया जाता है ? ॥२२५॥ इसलिए रावणकी पूजा कर सीताको लाया जावे उसे हम रामके लिये सौंप देंगे फिर युद्धका क्या प्रयोजन है ? ॥२२६॥ संग्राममें तारक, महाबलवान् मेरुक और बड़ी-बड़ी सेनाओंसे सहित कृतवीर्यके पुत्र आदि मारे गये हैं ॥२२७॥ ये सभी तीन खण्डके स्वामी महाभागवान् तथा महाप्रतापी थे। इनके सिवाय और भी अनेक राजा रणमें सब ओर नष्ट हुए हैं ॥२२८॥

इस प्रकार विद्याओंके प्रयोग करनेमें निपुण सब लोग परस्पर सलाहकर विनय सहित आदर पूर्वक मिलकर रामके पास आये ॥२२९॥ नेत्रोंको आनन्द उत्पन्न करने वाले रामके चारों ओर बैठे हुए सुग्रीव आदि राजा उस समय उस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि अमरेन्द्रके चारों ओर देव सुशोभित होते हैं ॥२३०॥ तदनन्तर रामने कहा कि अब और किसकी अपेक्षा की जा रही है ? दूसरे द्वीपमें सीता मेरे बिना दुःखी होती होगी ॥२३१॥ शीघ्र ही दीर्घसूत्रताको छोड़कर आज ही आप लोग त्रिकूटाचल पर चलनेके लिए उद्यम क्यों नहीं करते हैं ? ॥२३२॥ तब नीतिके विस्तारमें निपुण वृद्ध मन्त्रियोंने कहा कि हे देव ! इस विषयमें संशयकी क्या बात है ? निश्चय बताइए कि ॥२३३॥ आप सीताको चाहते हैं या राक्षसोंके साथ युद्ध ? यदि युद्ध चाहते हैं तो विजय कठिनाईसे प्राप्त होगी क्योंकि राक्षसोंका और आपका यह युद्ध सदृश युद्ध—बराबरी वालोंका युद्ध नहीं है ॥२३४॥ क्योंकि रावण द्वीप और सागरोंमें प्रसिद्ध, तीन खण्ड भरतका शत्रुरहित एक—अद्वितीय ही प्रभु है ॥२३५॥ धातकीखण्ड नामा दूसरा द्वीप भी उससे शङ्कित रहता है, वह ज्योतिषी देवोंको भी भय उत्पन्न करने वाला है तथा जम्बूद्वीपमें परम महिमाको प्राप्त अद्वितीय विद्याधरोंका स्वामी है ॥२३६॥ जो समस्त संसारके लिए शल्य स्वरूप है, तथा जिसने अनेक अद्भुत कार्य किये हैं ऐसा राक्षस हे राम ! तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥२३७॥ इसलिए हे देव ! रणकी भावना छोड़ हम लोग जो कह रहे हैं वही कीजिए, प्रसन्न हूजिये और शान्तिके लिए उद्योग कीजिए ॥२३८॥ उसके कुपित होनेपर यह

१ दीर्घसूत्रं त्वं म० । २. शिल्पभूतोऽस्य । ३. सक्रियम् म० ।

योऽसौ विभीषण ख्यातः स्तस्य ब्रह्मा स कीर्तितः । क्रूरकर्मनिवृत्तात्मा भावितोऽणुव्रतैर्दृढम् ॥२४०॥
अलङ्घ्यवचनं तस्य कुरुते खेचराधिपः । तयोर्हि परमा प्रीतिरन्तरायविवर्जिता ॥२४१॥
बोधितस्तेन दाक्षिण्याद् यशःपालनतोऽपि वा । लज्जया वा विदेहस्य तनयां प्रेषयिष्यति ॥२४२॥
विज्ञापनवचोयुक्तिकुशलो नयपेशलः । अन्विष्यतामरं कश्चित्प्रसादी रावणस्य यः ॥२४३॥
ततो महोदधिर्नाम्ना[1] ख्यातो विद्याधराधिपः । अब्रवीदेष वृत्तान्तो भवता नागतः श्रुतिम्[2] ॥२४४॥
यन्त्रैर्बहुजनध्वंसैर्लङ्काऽगम्या निरन्तरम् । कृतातिशयदुःप्रेक्षा सुभीमात्यन्तगह्वरा ॥२४५॥
एषां मध्ये न पश्यामि महाविद्यं नभश्चरम् । लङ्कां गत्वा द्रुतं भूयो यः समर्थो निवर्तितुम् ॥२४६॥
पवनञ्जयराजस्य श्रीशैलः प्रथितः सुतः । विद्यासत्त्वप्रतापाढ्यो बलोत्तुङ्गः[3] स याच्यताम् ॥२४७॥
समं दशाननेनास्य विद्यतेऽजर्यमुत्तमम्[4] । युक्तं करोत्यसौ साम्यं निर्विघ्नं पुरुषोत्तमः ॥२४८॥
प्रतिपन्नैस्ततः सर्वैरेवमस्त्विति सादरैः । मारुतेरन्तिकं दूतः श्रीभूतिः प्रहितो द्रुतम् ॥२४९॥
शक्तिं दधतापि परां प्राप्यापि परं प्रबोधमारभ्ये[5] । भवितव्यं नयरतिना[6] रविरिव काले स यात्युदयम् ॥२५०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे कोटिशिलाक्षेपणाभिधानं नाम अष्टचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४८॥

संसार महाभयसे युक्त न हो, प्राणियोंके समूहका विध्वंस न हो तथा समस्त उत्तम क्रियाएँ नष्ट न हों ॥२३९॥ रावणका भाई विभीषण अत्यन्त प्रसिद्ध है, मानो स्वयं ब्रह्मा ही है। वह दुष्टता पूर्ण कार्योंसे सदा दूर रहता है और अणुव्रतोंका दृढतासे पालन करता है ॥२४०॥ उसके वचन अलंघ्य है वह जो कहता है रावण वही करता है। यथार्थमें उन दोनोंमें निर्बाध परम प्रेम है ॥२४१॥ विभीषण उसे समझावेगा इसलिए, अथवा उदारतासे, अथवा कीर्ति रक्षा के अभिप्रायसे अथवा लज्जाके कारण रावण सीताको भेज देगा ॥२४२॥ इसलिए शीघ्र ही किसी ऐसे पुरुषकी खोज की जाय जो निवेदन करनेवाले वचनोंकी योजनामें कुशल हो, नीति-निपुण हो और रावणको प्रसन्न करनेवाला हो ॥२४३॥

तदनन्तर महोदधि नामसे प्रसिद्ध विद्याधरोंके राजाने कहा कि क्या यह वृत्तान्त आप लोगोंके श्रवणमें नहीं आया ॥२४४॥ कि लंका अनेक जनोंका विघात करनेवाले यन्त्रोंसे निरन्तर अगम्य कर दी गई है, उसका देखना भी कठिन है तथा अत्यन्त भयङ्कर गम्भीर गर्तोंसे युक्त हो गई है ॥२४५॥ इन सबके बीचमें मैं महाविद्याओंके धारक एक भी ऐसे विद्याधरको नहीं देखता हूँ कि जो लंका जाकर शीघ्र ही पुनः लौटनेके लिए समर्थ हो ॥२४६॥ हाँ, पवनञ्जय राजाका पुत्र श्रीशैल विद्या, सत्त्व और प्रतापसे सहित है तथा अतिशय बलवान् है सो उससे याचना की जाय ॥२४७॥ इसका दशाननके साथ उत्तम सम्बन्ध भी है इसलिए यदि इसे भेजा जाय तो यह श्रेष्ठ पुरुष निर्विघ्न रूपसे शान्ति स्थापित कर सकता है ॥२४८॥ तदनन्तर सब विद्याधरोंने 'एवमस्तु' कहकर महोदधि विद्याधरका प्रस्ताव स्वीकृत कर श्रीशैल (हनुमान्) के पास शीघ्र ही श्रीभूति नामका दूत भेजा ॥२४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि परम शक्तिके धारक राजाको भी प्रारम्भ करने योग्य कार्यके विषयमें परम विवेकको प्राप्तकर नीतिज्ञ होना चाहिए क्योंकि ऐसा राजा ही सूर्यके समान समय आनेपर अभ्युदयको प्राप्त होता है ॥२५०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें कोटिशिला उठानेका वर्णन करनेवाला अड़तालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४८॥

---

१ महोदधिनाम्ना म० । २. भवता श्रुतिं न आगतः । ३ बालोत्तुङ्ग. म । बलात्तुङ्ग ख० । ४ अजर्यं सङ्गतं । विद्यते नय मुत्तम ख०, म० । ५. बोध म० मारम्भे. म० । ६. नरपतिना ख० ।

एकोनपञ्चाशत्तमं पर्व

ततो नभः समुत्पत्य जगामासौ मरुज्जव । अत्युत्तुङ्गैर्गृहैः पूर्णं श्रीपुरं श्रीनिकेतनम् ॥१॥
तत्र हेमद्रवन्यस्तलेप्यतेज समुज्ज्वलम् । कुन्दाभवलभीशोभि रत्ननिर्मितगोपुरम् ॥२॥
मुक्तादामसमाकीर्णं वातायनविराजितम् । उद्यानाकीर्णपर्यन्तं प्राविशन्मारुतेर्गृहम् ॥३॥
अपूर्वलोकसङ्घातं पश्यतस्तस्य साद्भुतम् । मनोगतागतं भूयो गतं कृच्छ्रेण धीरताम् ॥४॥
प्रविष्टे मारुतेर्गेहं तस्मिन् दूते ससम्भ्रमे । अनङ्गकुसुमोत्पातं जगामेन्दुनखात्मजा ॥५॥
सस्पन्दं दक्षिणं चक्षुरवधार्यं व्यचिन्तयत् । प्राप्तव्यं विधियोगेन कर्म कर्तुं न शक्यते ॥६॥
क्षुद्रशक्तिसमासक्ता मानुपास्तावदासताम् । न सुरैरपि कर्माणि शक्यन्ते कर्तुमन्यथा ॥७॥
वेदितागमनस्तावद् दूतो नर्मदया सभाम् । प्रस्वेदकणसम्पूर्णं प्रतीहार्या प्रवेशित ॥८॥
जगादाथ यथावृत्तं निःशेषं प्रणताननः । दण्डकाद्रिं समायाता पद्मनाभादय पुरा ॥९॥
शम्बूकस्य वधं युद्धं विषमं खरदूषणम् । पञ्चतागमनं तस्य मानवैरुत्तमैः सह ॥१०॥
ततो निशम्य तां वार्ता शोकविह्वलविग्रहा । अनङ्गकुसुमा मूर्च्छामुपेता मुकुलेक्षणा ॥११॥
चान्दनेन द्रवेणैता सिच्यमाना क्रियोज्झिताम् । विलोक्यान्तःपुराम्भोधिः परमं क्षोभमागत ॥१२॥
वीणातन्त्रीसहस्राणां प्राप्तानां कोणताडनम् । क्रन्दन्तीनां समं रम्यो ध्वनिः स्त्रीणां समुद्गत ॥१३॥

तदनन्तर—वायुके समान वेगका धारक श्रीभूति दूत, आकाशमे उड़कर अत्यन्त ऊँचे-ऊँचे महलोंसे परिपूर्ण, लक्ष्मीके घर स्वरूप श्रीपुर नगरमे पहुँचा ॥१॥ वहाँ जाकर उसने श्रीशैलके उस भवनमे प्रवेश किया जो स्वर्णमय पानीके लेपसे उत्पन्न तेजसे अत्यन्त देदीप्यमान था, कुन्दके समान उज्ज्वल अट्टालिकाओंसे सुशोभित था, रत्नमयी शिखरोंसे जगमगा रहा था, मोतियोंकी मालाओंसे व्याप्त था, झरोखोंसे सुशोभित था, और जिसका समीपवर्ती प्रदेश बाग-बगीचोंसे व्याप्त था ॥२-३॥ वहाँ लोगोंकी अपूर्व भीड़ तथा आश्चर्यकारी अत्यधिक यातायात देख श्रीभूतिका मन बड़ी कठिनाईसे धीरताको प्राप्त हुआ ॥४॥ जब आश्चर्यमे पड़े हुए श्रीभूति दूतने हनुमान्‌के घरमे प्रवेश किया तब चन्द्रनखाकी पुत्री अनङ्गकुसुमा उत्पातको प्राप्त हुई ॥५॥ दक्षिण नेत्रको फड़कते देख उसने विचार किया कि दैव योगसे जो कार्य जैसा होना होता है उसे अन्यथा नहीं किया जा सकता ॥६॥ हीन शक्तिके धारक मनुष्य तो दूर रहे देवोंके द्वारा भी कर्म अन्यथा नहीं किये जा सकते ॥७॥ तदनन्तर अनंगकुसुमाकी प्रहासिका सखीने जिसके आगमन की सूचना दी थी, और स्वेदके कणोंसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था ऐसे उस श्रीभूति दूतको प्रतीहारीने सभाके भीतर प्रविष्ट कराया ॥८॥

अथानन्तर नम्र मुख होकर उसने सब वृत्तान्त ज्योंका त्यों इस प्रकार सुनाया कि राम आदि दण्डक वनमे आये, शम्बूकका वध हुआ, खरदूषणके साथ विषम युद्ध हुआ, और उत्तम मनुष्योंके साथ खरदूषण मारा गया ॥९-१०॥ तदनन्तर यह वार्ता सुन अनंगकुसुमा शोकसे विह्वल शरीर हो मूर्च्छित हो गई तथा उसके नेत्र निमीलित हो गये ॥११॥ उसका हलन-चलन बन्द हो गया तथा चन्दनके द्रवसे उसे सींचा जाने लगा, यह देख समस्त अन्तःपुर रूपी सागर परम क्षोभको प्राप्त हुआ ॥१२॥ अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियाँ एक साथ रुदन करने लगीं सो उनके

---

१. श्रीभूतिः ।

अनङ्गकुसुमा कृच्छ्राल्लम्भिता प्राणसङ्गमम् । अश्रुसिक्तस्तनी तारं विललापातिदुःखिता ॥१४॥
हा तात क्व प्रयातोऽसि प्रयच्छ वचनं मम । हा भ्रात किमिदं जातं दीयतां दर्शनं सकृत् ॥१५॥
वनेऽतिभीषणे कष्टं रणाभिमुखतां गत । भूगोचरैः कथं तात मरणत्वमुपाहृत ॥१६॥
शोकाकुलजनाकीर्णे जाते श्रीशैलवेश्मनि । नीतो नर्मदया दूतः प्रदेशं वचनोचितम् ॥१७॥
पितुर्भ्रातुश्च दुःखेन तप्ता चन्द्रनखात्मजा । कृच्छ्रेण शमनं नीता सद्भिः प्रशमकोविदैः ॥१८॥
जिनमार्गप्रवीणासौ बुद्ध्वा संसारसंस्थितिम् । लोकाचारानुकूलत्वाच्चक्रे प्रेतक्रियाविधिम् ॥१९॥
अन्येद्युर्दूतमाहूय पवनञ्जयनन्दनः । अपृच्छच्छोकसंस्पृष्टः मौललोकसमावृतः ॥२०॥
निःशेषं दूत यद्वृत्तं तन्निवेदय साम्प्रतम् । इत्युक्त्वा कारणं मृत्योः खरदूषणमस्मरत् ॥२१॥
ततोऽस्य क्रोधसंरुद्धसर्वाङ्गस्य महाद्युते । भ्रूस्तरङ्गवती रेजे तडिल्लेखेव चञ्चला ॥२२॥
ततस्त्रासपरीताङ्गो मुहुर्दूतः प्रतापवान् । जगाद मधुरं प्राज्ञः कोपविध्वंसकारणम् ॥२३॥
ज्ञातमेव हि देवस्य किष्किन्धाधिपतेः परम् । दयिताद् दुःखमुत्पन्नं तत्समाकारहेतुकम् ॥२४॥
आर्तस्तेन स दुःखेन पद्मं शरणमागमत् । प्रतीक्ष्य सोऽर्तिविध्वंसं किष्किन्धनगरं गतः ॥२५॥
सुग्रीवाकृतिचौरेण समं तत्र महानभूत् । चिरं श्रान्तमहायोधः संग्रामः श्वसुरस्य ते ॥२६॥
उत्थाय पद्मनाभेन ततो भूयो महौजसा । तस्याहूतस्य नष्टासौ वेताली स्तेयकारणम् ॥२७॥
ततः साहसगत्याख्यः स्वस्वभावं समाश्रितः । विज्ञातो रामनिर्मुक्तैर्मृत्युं नीतः शिलीमुखैः ॥२८॥

रुदनका शब्द ऐसा उठा मानो वीणाओंके हजारों तार कोणके ताड़नको प्राप्त हो एक साथ शब्द करने लगे हों ॥१३॥ तदनन्तर अनंगकुसुमा बड़े कष्टसे प्राणोंके समागमको प्राप्त हुई अर्थात् सचेत हुई। सचेत होने पर अश्रुओंसे स्तनोंको सिक्त करती तथा अतिशय दुःख प्रकट करती हुई वह जोर-जोरसे विलाप करने लगी ॥१४॥ वह कहने लगी कि हाय तात! तुम कहाँ गये मुझे वचन देओ—मुझसे वार्तालाप करो। हाय भाई! यह क्या हुआ? एक बार तो दर्शन देओ ॥१५॥ हे तात! अत्यन्त भयंकर वनमें रणके सन्मुख हुए तुम भूमिगोचरियोंके द्वारा मरणको कैसे प्राप्त हो गये? ॥१६॥ इस प्रकार जब श्रीशैलका भवन शोकाकुल मनुष्योंसे भर गया तब अनंगकुसुमाकी नर्मदा—सखी दूतको बात करने योग्य स्थान पर ले गई ॥१७॥ पिता और भाईके दुःखसे संतप्त चन्द्रनखाकी पुत्री अनंगकुसुमा, सान्त्वना देनेमें निपुण सत्पुरुषोंके द्वारा बड़ी कठिनाईसे शान्तिको प्राप्त कराई गई ॥१८॥ जिन मार्गमें प्रवीण अनंगकुसुमाने संसारकी स्थिति जानकर लोकाचारके अनुकूल पिताकी मरणोत्तर क्रिया की ॥१९॥

अथानन्तर दूसरे दिन शोकसे व्याप्त तथा मन्त्री आदि मौलवर्गसे परिवृत श्रीशैल—हनुमान्‌ने दूतको बुलाकर पूछा कि 'हे दूत! खरदूषणकी मृत्युका जो कुछ कारण हुआ है वह सब कहो, यह कह कर हनुमान् खरदूषणका स्मरण करने लगा ॥२०-२१॥ तदनन्तर क्रोधसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था ऐसे महादीप्तिमान् हनुमान्‌की फड़कती हुई भौंह चञ्चल बिजली की रेखाके समान जान पड़ती थी ॥२२॥ तत्पश्चात् भयसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था ऐसे महाप्रतापी बुद्धिमान्‌ने हनुमान्‌का क्रोध दूर करनेवाले निम्नाङ्कित मधुर वचन कहे ॥२३॥ उसने कहा कि हे देव! आपको यह तो विदित ही है कि किष्किन्धाके अधिपति सुग्रीवको उसीके समान रूप धारण करनेवाले साहसगति विद्याधरके कारण स्त्रीसम्बन्धी दुःख उपस्थित हुआ था ॥२४॥ उस दुःखसे दुखी हुआ सुग्रीव रामकी शरणमें आया था और राम भी उसका दुःख नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा कर किष्किन्धनगर गये थे ॥२५॥ वहाँ आपके श्वसुर-सुग्रीवका, उसकी आकृतिके चौर—कृत्रिम सुग्रीवके साथ बड़े-बड़े योद्धाओंको थका देनेवाला चिरकाल तक महायुद्ध हुआ ॥२६॥ तदनन्तर महातेजस्वी रामने उठकर उसे ललकारा। उन्हें देखते ही चोरीका कारण जो वेतालीविद्या थी वह नष्ट हो गई ॥२७॥ तब साहसगति अपने असली स्वरूपको

तच्छ्रुत्वा विगतक्रोधो जात पवननन्दन । पुनरुक्त जगो तुष्ट विकसन्मुखपङ्कज ॥२९॥
कृत कृतमहो साधु प्रिय यन्मेन न परम् ।यत्सुग्रीवकुल मज्जदकीर्तौ क्षिप्रमुद् धृतम् ॥३०॥
हेमकुम्भोपम गोत्र अयश कूपगह्वरे । निमज्जद्गुणहस्तेन तेन सन्मतिनोद्धृतम् ॥३१॥
एवमादिपर भूरि प्रशसन् रामलक्ष्मणो । कस्मिन्नपि ममज्जासौ सारसौख्यमहार्णवे ॥३२॥
श्रुत्वा पङ्कजरागाया पितु शोकपरिक्षयम् । उत्सव सुमहान् जातो दानपूजादिसस्तुत ॥३३॥
उद्वेगानन्दसम्पन्न हतच्छायसमुज्ज्वलम् । श्रीशैलभवन जात रसद्वयसमुत्कटम् ॥३४॥
एव विषमता प्राप्ते स्वजने पावनञ्जयि । किञ्चित्समत्वमादाय किष्किन्धाभिमुख ययौ ॥३५॥
ऋध्याभिगच्छतस्तस्य बलेनात्यर्थभूरिणा । जगादन्यदिवोद्भूतमाकाशपरिवर्जितम् ॥३६॥
विमान सुमहत्तस्य[1] मणिरत्नसमुज्ज्वलम् । प्रभा दिवसरत्नस्य[2] जहार स्वमरीचिभि ॥३७॥
गच्छन्त त महाभाग्य शतशो बन्धुपार्थिवा । अनुजग्मु सुनासीर यथा त्रिदशपुङ्गवा ॥३८॥
अग्रत पृष्ठतश्चास्य पार्श्वतश्च जयस्वनै । गच्छता खेचरेन्द्राणामासीच्छब्दमय नभ ॥३९॥
चित्रमासीद्यदश्वानां विहायस्तलगामिनाम् । मनोहारी गजाना च विलास स्वतनूचित ॥४०॥
महातुरङ्गसयुक्तैः रथैरुच्छ्रितकेतुभि । विहायसस्तल जात मन्ये कल्पनगाकुलम् ॥४१॥
सितानामातपत्राणा मण्डलेन महीयसा । जात [3]कुमुदखण्डानामिव पूर्ण वियत्तलम् ॥४२॥

प्राप्त हो गया, सबकी पहिचानमे आया और रामके द्वारा छोड़े हुए वाणोसे मृत्युको प्राप्त हुआ ॥२८॥ यह सुनकर हनुमान् क्रोधरहित हो गया। प्रसन्नतासे उसका मुखकमल खिल उठा और सतुष्ट हो कर उसने बार-बार कहा कि अहो! रामने बहुत अच्छा किया, मुझे बहुत अच्छा लगा जो उन्होने अपकीर्तिमे डूबते हुए सुग्रीवके कुलका शीघ्र ही उद्धार कर लिया। ॥२९-३०॥ स्वर्ण कलशके समान सुग्रीवका कुल अपयश रूपी कूपके गर्तमे पड़कर डूब रहा था सो उत्तम बुद्धिके धारक रामने गुण रूपी रस्सी हाथमे ले उसे निकाला है ॥३१॥ इस प्रकार रामलक्ष्मणकी अत्यधिक प्रशंसा करता हुआ हनुमान् किसी अद्भुत श्रेष्ठ सुखरूपी सागरमे निमग्न हो गया ॥३२॥

हनुमान्की दूसरी स्त्री सुग्रीवकी पुत्री पद्मरागा थी सो पिताके शोकका क्षय सुनकर उसे बड़ा हर्ष हुआ उसने दान पूजा आदिके द्वारा महा उत्सव किया ॥३३॥ उस समय हनुमान्के भवनमे एक ओर तो शोक मनाया जा रहा था और दूसरी ओर हर्ष प्रकट किया जा रहा था। वह एक ओर तो कान्तिसे शून्य हो रहा था और दूसरी ओर देदीप्यमान हो रहा था। इस प्रकार दो स्त्रियोके कारण वह दो प्रकारके रससे युक्त था ॥३४॥ इस प्रकार जब कुटुम्बके लोग विषमताको प्राप्त हो रहे थे तब हनुमान कुछ-कुछ मध्यस्थताको धारण कर किष्किन्धानगरकी ओर चला ॥३५॥ वैभवके साथ जाते हुए हनुमान्की बहुत बडी सेनासे उस समय संसार आकाशसे रहित होनेके कारण ऐसा जान पड़ता था मानो दूसरा ही उत्पन्न हुआ हो ॥३६॥ मणियो और रत्नोंसे जगमगाता हुआ उसका बड़ा भारी विमान, अपनी किरणोंसे सूर्यकी प्रभाको हर रहा था ॥३७॥ जाते हुए उस महाभाग्यशालीके पीछे सैकड़ो मित्रराजा उस प्रकार चल रहे थे जिस प्रकार कि इन्द्रके पीछे उत्तमोत्तम देव चलते है ॥३८॥ उसके आगे पीछे और दोनो ओर चलने वाले विद्याधर राजाओकी जयध्वनिसे आकाश शब्दमय हो गया था ॥३९॥ आकाशतलमें चलने वाले उसके घोड़ोसे आश्चर्य उत्पन्न हो रहा था तथा हाथियोकी अपने शरीरके अनुरूप मनोहारी चेष्टा प्रकट हो रही थी ॥४०॥ जिनमे बडे-बड़े घोड़े जुते हुए थे तथा जिन पर पताकाएं फहरा रही थी ऐसे रथोंसे उस समय आकाशतल ऐसा जान पडता था मानो कल्पवृक्षोसे व्याप्त ही हो ॥४१॥ धवल छत्रोके विशाल समूहसे आकाशतल ऐसा जान पड़ता था मानो कुमुदोके

१. सुमहत् तस्य । २. सूर्यस्य । ३. च कुन्द म० ।

गम्भीरो दौन्दुभो धीरो ध्वानो ध्वस्तापरध्वनि । चक्रवाल दिशा व्याप्य प्रतिध्वनिघन स्थित ॥४३॥
सङ्कुल चलता तेन सैन्येन गगनाङ्गणम् । खण्डखण्डैरिवच्छन्नमन्तरेषु व्यलोक्यते ॥४४॥
भासा भूषणजातानां बहुवर्णयुजा चयै[1] । विशिष्टशिल्पिना रक्त नभो वस्त्रमिवाभवत् ॥४५॥
ध्वनि मारुतितूर्यस्य श्रुत्वा सन्नह्य गह्वरम् । तोष कपिध्वजा प्रापु शिखिनोऽब्दध्वनि यथा ॥४६॥
कृतापणमहाशोभ ध्वजमालासमाकुलम् । रत्नतोरणसयुक्त किष्किन्धनगर कृतम् ॥४७॥
बहुभि पूज्यमानोऽसौ विभवैस्त्रिदशोपमै । विवेश नगर सद्म सुग्रीवस्य च पुष्कलम् ॥४८॥
सुग्रीवेण प्रतीष्टश्च यथार्हं रचितादर । कथित चाखिल तस्य पद्मनाभादिचेष्टितम् ॥४९॥
अनेनैव ततो युक्ता सुग्रीवाद्या नरेश्वरा । धारयन्त पर हर्षं पद्मनाभमुपाययु ॥५०॥
अपश्यच्च नरश्रेष्ठ त लक्ष्मीवरपूर्वजम् । नीलकुञ्चितसूक्ष्मातिस्निग्धकेश मरुत्सुत ॥५१॥
लक्ष्मीलताविपक्ताङ्ग कुमारमिव भास्करम् । शशाङ्कमिव लिम्पन्त [2]कान्तिपङ्केन पुष्करम्[3] ॥५२॥
नयनाना समानन्द मनोहरणकोविदम् । अपूर्वकर्मणा सर्गं स्वर्गादिव समागतम् ॥५३॥
उज्ज्वलद्विशुद्धरुक्माम्बुरुहगर्भसमप्रभम् । [4]मनोज्ञा गतनासाग्र सङ्गतश्रवणद्वयम्[5] ॥५४॥
मूर्तिमन्तमिवानङ्ग पुण्डरीकनिभेक्षणम् । चापानतभ्रुव पूर्णशारदेन्दुनिभाननम् ॥५५॥
बिम्बप्रवालरक्तोष्ठ कुन्दश्वेतद्विजावलिम् । कम्बुकण्ठ मृगेन्द्राभवक्षोभाज महाभुजम् ॥५६॥

समूहसे ही व्याप्त हो ॥४२॥ दूसरोंकी ध्वनिको नष्ट करने वाला उसकी दुन्दुभिका धीर गम्भीर शब्द दिशाओंके मण्डलको व्याप्त कर स्थित था तथा उसकी जोरदार प्रतिध्वनि उठ रही थी ॥४३॥ उसकी चलती हुई सेनासे व्याप्त आकाशाङ्गण ऐसा दिखाई देता था मानो बीच-बीचमें खण्ड-खण्डोंसे आच्छादित हो ॥४४॥ उसके नाना प्रकारके भूषणोंके समूहकी कान्तिसे रँगा हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो किसी विशिष्ट—कुशल शिल्पीके द्वारा रँगा वस्त्र ही हो ॥४५॥ हनुमान्की तुरहीका गम्भीर शब्द श्रवण कर सब वानरवंशी इस प्रकार संतोषको प्राप्त हुए जिस प्रकार कि मेघका शब्द सुनकर मयूर सतोषको प्राप्त होते है ॥४६॥ उस समय किष्किन्ध नगरके बाजारोमे महाशोभा की गई, ध्वजाओं तथा मालाओंसे नगर सजाया गया और रत्नमयी तोरणोंसे युक्त किया गया ॥४७॥ देवोंके समान अनेक विद्याधरोंने बड़े वैभवसे जिसकी पूजा की थी ऐसा हनुमान् सुग्रीवके विशाल महलमे प्रविष्ट हुआ ॥४८॥ सुग्रीवने यथायोग्य आदरकर उसका सम्मान किया तथा राम आदिकी समस्त चेष्टाएँ उसके समक्ष कहीं ॥४९॥ तदनन्तर हनुमान्से युक्त सुग्रीव आदि राजा परमहर्षको धारण करते हुए रामके समीप आये ॥५०॥ तत्पश्चात् हनुमान्ने उन श्रीरामको देखा तो मनुष्योमे श्रेष्ठ थे, लक्ष्मणके अग्रज थे, जिनके केश काले, घुँघराले, सूक्ष्म तथा अत्यन्त स्निग्ध थे ॥५१॥ जिनका शरीर लक्ष्मीरूपी लतासे आलिङ्गित था, जो बालसूर्यके समान जान पड़ते थे अथवा जो कान्तिरूपी पङ्कके द्वारा आकाशको लिप्त करते हुए चन्द्रमाके समान सुशोभित थे ॥५२॥ जो नेत्रोंको आनन्द देनेवाले थे, मनके हरण करनेमे निपुण थे, अपूर्व कर्मोंकी मानो सृष्टि ही थे और स्वर्गसे आये हुएके समान जान पडते थे ॥५३॥ देदीप्यमान निर्मल स्वर्ण-कमलके भीतरी भागके समान जिसकी प्रभा थी, जिनकी नासाका अग्रभाग मनोहर था, जिनके दोनों कर्ण उत्तम सुडौल अथव सज्जनोंको प्रिय थे ॥५४॥ जो मूर्तिधारी कामदेवके समान जान पड़ते थे, जिनके नेत्र कमलके समान थे, जिनकी भौंह चढ़े हुए धनुषके समान नम्रीभूत थी, जिनका मुख शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके समान था ॥५५॥ जिनका ओठ बिम्ब अथवा मूँगा या किसलयके समान

---

१. वयै॰ म० । २. कान्तिपद्मेन । ३. पुष्कलम् ख० । ४ मनोज्ञा गतनासाग्र । ५. सङ्गत श्रवणद्वयम् म० ।

श्रीवत्सकान्तिसम्पूर्णमहाशोभस्तनान्तरम् । गम्भीरनाभिवत्क्षाममध्यदेशविराजितम् ॥५७॥
प्रशान्तगुणसम्पूर्णं नानालक्षणभूषितम् । सुकुमारकरं वृत्तपीवरोरुद्वयस्तुतम् ॥५८॥
कूर्मपृष्ठमहातेज सुकुमारक्रमद्वयम् । चन्द्राकुरारुणच्छायानखपङ्क्तिसमुज्ज्वलम् ॥५९॥
अक्षोभ्यसत्त्वगम्भीरं वज्रसङ्घातविग्रहम् । सर्वसुन्दरसन्दोहमिव कृत्वा विनिर्मितम् ॥६०॥
महाप्रभावसम्पन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम् । प्रियाङ्गनावियोगेन बालसिंहमिवाकुलम् ॥६१॥
शच्येव रहितं शक्रं रोहिण्येव विना विधुम्। रूपसौभाग्यसम्पन्नं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥६२॥
शौर्यमाहात्म्यसंयुक्तं मेधादिगुणसंयुतम् । एवंविधं समालोक्य मारुतिः क्षोभमागतः ॥६३॥
अचिन्तयच्च सम्भ्रान्तस्तत्प्रभाववशीकृतः । तच्छरीरप्रभाजालसमालिङ्गितविग्रहः ॥६४॥
श्रीमानयमसौ राजा रामो दशरथात्मजः । यस्येह लक्ष्मणो भ्राता लोकश्रेष्ठः स्थितो वशे ॥६५॥
यस्यालोक्य तदा सङ्ख्ये[1] छत्रं शीतांशुसन्निभम् । सा साहसगतेर्माया वैताली परिनिःसृता ॥६६॥
दृष्ट्वा वज्रधरं पूर्वं हृदयं यन्न कम्पितम् । तदद्य मम दृष्ट्वैनं सक्षोभं परमं गतम् ॥६७॥
इति विस्मयमापन्नः समनुस्मृत्य तान् गुणान् । ससार पावनि[3] पद्म श्रीमदम्भोजलोचनम् ॥६८॥
दूरादुत्थाय दृष्ट्वैव पद्मलक्ष्मीधरादिभिः । असौ प्रहृष्टचेतोभिः परिष्वक्तो यथाक्रमम् ॥६९॥
परस्परं समालोक्य सम्भाष्य विनयोचितम् । उपधानविचित्रेषु [4]स्वासनेष्ववतस्थिरे ॥७०॥

लाल था जिसकी दाँतोंकी पंक्ति कुन्द कुसुमके समान शुक्ल थी, कण्ठ शङ्खके समान था, जो सिंहके समान विस्तृत वक्षःस्थलके धारक थे, महाभुजाओंसे युक्त थे ॥५६॥ जिनके स्तनोंका मध्यभाग श्रीवत्स चिह्नकी कान्तिसे परिपूर्ण महाशोभाको धारण करनेवाला था, जो गम्भीर नाभिसे युक्त तथा पतली कमरसे सुशोभित थे ॥५७॥ जो प्रशान्त गुणोंसे युक्त थे, नाना लक्षणोंसे विभूषित थे, जिनके हाथ अत्यन्त सुकुमार थे, जिनकी दोनों जाँघे गोल तथा स्थूल थीं ॥५८॥ जिनके दोनों चरण कछुवेके पृष्ठभागके समान महातेजस्वी तथा सुकुमार थे, जो चन्द्रमाकी किरणरूपी अङ्कुरोंसे लाल लाल दीखनेवाली नखावलीसे उज्ज्वल थे ॥५९॥ जो अक्षोभ्य धैर्यसे गम्भीर थे, जिनका शरीर मानो वज्रका समूह ही था, अथवा समस्त सुन्दर वस्तुओंको एकत्रितकर ही मानो जिनकी रचना हुई थी ॥६०॥ जो महाप्रभावसे युक्त थे, न्यग्रोध अर्थात् वट-वृक्षके समान जिनका मण्डल था, जो प्रिय स्त्रीके विरहके कारण बालसिंहके समान व्याकुल थे ॥६१॥ जो इन्द्राणीसे रहित इन्द्रके समान, अथवा रोहिणीसे रहित चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे, जो रूप तथा सौभाग्य दोनोंसे युक्त थे, समस्त शास्त्रोंमे निपुण थे ॥६२॥ शूर-वीरताके माहात्म्यसे युक्त थे तथा मेधा-सद्बुद्धि आदि गुणोंसे युक्त थे। ऐसे श्रीरामको देखकर हनुमान् क्षोभको प्राप्त हुआ ॥६३॥

तदनन्तर जो रामके प्रभावसे वशीभूत हो गया था और उनके शरीरकी कान्तिके समूहसे जिसका शरीर आलिङ्गित हो रहा था ऐसा हनुमान् संभ्रममे पड विचार करने लगा ॥६४॥ कि यह वही दशरथके पुत्र लक्ष्मीमान् राजा रामचन्द्र हैं, लोकश्रेष्ठ लक्ष्मण जैसा भाई जिनका आज्ञाकारी है ॥६५॥ उस समय युद्धमे जिनका चन्द्रतुल्य छत्र देखकर साहसगति की वह वैताली विद्या निकल गई ॥६६॥ मेरा जो हृदय पहले इन्द्रको देखकर भी कम्पित नहीं हुआ वह आज इन्हें देखकर परम क्षोभको प्राप्त हुआ है ॥६७॥ इस प्रकार आश्चर्यको प्राप्त हुआ हनुमान् इनके गुणोंका अनुसरण कर कमललोचन रामके पास पहुँचा ॥६८॥ जिनका चित्त हर्षित हो रहा था ऐसे राम, लक्ष्मण आदिने इसे देख दूरसे ही उठाकर यथाक्रमसे इसका आलिङ्गन किया ॥६९॥ परस्पर इक दूसरेको देखकर तथा विनयके योग्य वार्तालापकर सब

१ युद्धे । २. सर्वं म० । ३. पवनस्यापत्यं पुमान् पावनिः हनुमान् । ४ स्वासनेष्ववतस्थिते ।

तत्र भद्रासने रम्ये स्थितः काकुत्स्थनन्दनः । केयूरभूषितभुजो ज्वलल्लक्ष्म्या समन्ततः ॥७१॥
[1]स्वच्छनीलाम्बरधरश्चूडामणिरिवोज्ज्वलः । रराज वरहारेण सोडुचन्द्र इवोद्गतः ॥७२॥
दिव्यपीताम्बरधरो हारकेयूरकुण्डली । सुमित्रातनयो रेजे सतडिज्जलदो यथा ॥७३॥
वानराभोगमुकुटः[2] सुरवारणविक्रमः । अभात्सुग्रीवराजोऽपि लोकपाल इवोर्जितः ॥७४॥
विराधितः कुमारोऽपि सौमित्रेः पृष्ठतः स्थितः । अलक्ष्यत नृसिंहस्य चक्ररत्नमिवौजसा[3] ॥७५॥
हनूमानप्यलं रेजे पद्मनाभस्य धीमतः । समीपे पूर्णचन्द्रस्य स्फीतो बुध इवोदितः ॥७६॥
[4]सुगन्धिमाल्यवस्त्राद्यैरलङ्कारैश्च भूषितौ । अङ्गाङ्गदाव[5]भासेतां यमवैश्रवणाविव ॥७७॥
नलनीलप्रभृतयः शतशोऽन्ये च पार्थिवाः । आसीना रेजुरत्यन्तमावृत्य रघुनन्दनम् ॥७८॥
पद्मसद्गन्धताम्बूलगन्धसङ्गतमारुता । विभूषणकृतोद्योता सा सभेन्द्रसभोपमा ॥७९॥
विस्मित्य सुचिरं रामं प्रीतः पावनिरब्रवीत् । समक्षं न गुणा ग्राह्या भवतो रघुनन्दन ॥८०॥
इहापि निखिले लोके दृश्यते स्थितिरीदृशी । किमपि प्रियवक्तृणां प्रत्यक्षगुणकीर्तनम्[6] ॥८१॥
आसीद्यस्याधिमाहात्म्यं श्रुतमस्माभिरूर्जितम् । दृष्टः सत्त्वहितः स त्वं सत्त्ववान् चक्षुषा स्वयम् ॥८२॥
सर्वसौन्दर्ययुक्तस्य गुणरत्नाकरस्य ते । शुभ्रेण यशसा राजन् जगदेतदलङ्कृतम् ॥८३॥

नाना प्रकार तालियोंसे सुशोभित अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये ॥७०॥ वहाँ जो उत्तम आसनपर विराजमान थे जिनकी भुजा बाजूबन्दसे सुशोभित थी, जो लक्ष्मीके द्वारा सब ओरसे देदीप्यमान् थे जो स्वच्छ नीलवस्त्र धारण किये हुए थे तथा उत्तम हारसे सुशोभित थे ऐसे श्रीराम नक्षत्र सहित उदित हुए चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे ॥७१-७२॥ दिव्य पीताम्बरको धारण करने वाले तथा हार केयूर और कुण्डलोंसे अलंकृत लक्ष्मण बिजली सहित मेघके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७३॥ जिसका सुविस्तृत मुकुट वानरके चिह्नसे युक्त था, तथा देवगज—ऐरावतके समान जिसका पराक्रम था ऐसा सुग्रीवराजा भी अतिशय बलवान् लोकपालके समान सुशोभित हो रहा था ॥७४॥ लक्ष्मणके पीछे बैठा विराधित कुमार भी अपने तेजसे ऐसा दिखाई देता था मानो नारायणके समीप रक्खा हुआ चक्ररत्न ही हो ॥७५॥ अतिशय बुद्धिमान् रामचन्द्रके समीप हनुमान् भी ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो पूर्णचन्द्रके समीप उदित हुआ अत्यन्त देदीप्यमान् बुधग्रह ही हो ॥७६॥ सुगन्धित माला तथा वस्त्रादि एवं अलंकारोंसे अलंकृत अङ्ग और अङ्गद यम तथा वैश्रवणके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७७॥ इनके सिवाय रामको घेर कर बैठे हुए नल नील आदि सैकड़ों अन्य राजा भी उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥७८॥ नाना प्रकारकी उत्तम गन्धसे युक्त ताम्बूल तथा सुगन्धित अन्य पदार्थोंके समागमसे जहाँ वायु सुगन्धित हो रही थी तथा जहाँ आभूषणोंके द्वारा प्रकाश फैल रहा था ऐसी वह सभा इन्द्रकी सभा के समान जान पड़ती थी ॥७९॥

तदनन्तर चिरकाल तक आश्चर्यमें पड़कर प्रीतियुक्त हनुमान्‌ने रामसे कहा कि हे राघव! यद्यपि आपके गुण आपके ही समक्ष नहीं कहना चाहिए क्योंकि इस लोकमें भी ऐसी ही रीति देखी जाती है फिर भी प्रत्यक्ष ही आपके गुण कथन करनेकी उत्कट लालसा है सो ठीक ही है क्योंकि जो प्रिय वक्ता हैं उन्हें प्रत्यक्ष ही गुणोंका कथन करना अद्भुत आह्लादकारी होता है ॥८०-८२॥ जिनका बलपूर्ण लोकोत्तर माहात्म्य हमने पहलेसे सुन रक्खा था उन प्राणि हितकारी धैर्यशाली आपको मैं स्वयं नेत्रोंसे देख रहा हूँ ॥८२॥ हे राजन्! आप सम्पूर्ण सौन्दर्यसे युक्त हैं,

---

१. स्वस्थ म० । २. मुकुटसुखारण म० । ३. -मिवौजसः म० । ४. सुगन्ध्य म० । ५. ववासन्तौ म० ख०, क० । ६. कीर्तिराम ख० ।

धनुर्लम्भोदये लब्ध सहस्रामररक्षिते । सीतास्वयम्वरेऽस्माभि· श्रुतस्तव पराक्रम ॥८४॥
पिता दशरथो यस्य यस्य भामण्डल सुहृत्। भ्राता यस्य च सौमित्रि स त्व राम जगत्पति· ॥८५॥
अहो शक्तिरहोरूपमेप नारायण स्वयम् । समुद्रावर्तचापेशो यस्त्वाज्ञाकरणे रत ॥८६॥
अहो धैर्यमहो त्यागो यत्पितु पालयन् वच । महाप्रतिभयाकार प्रविष्टो दण्डक वनम् ॥८७॥
एतन्न कुरुते बन्धुस्तुष्टश्च त्रिदशाधिप । अहो त्वया नाथ कृत यदस्माकमतिप्रियम् ॥८८॥
सुग्रीवरूपसम्पन्न हत्वा सगति साहसम् । यत्कपिध्वजवशस्य कलङ्को दूरमुज्झित· ॥८९॥
विद्याबलविधिज्ञैर्यद्यस्य मायामय वपु । अस्माभिरपि नो सह्य दुर्जय च विशेषत ॥९०॥
तेन सुग्रीवरूपेण गृहीतु प्लावग बलम् । दर्शनादेव युष्माक तद्रूप तस्य नि सृतम् ॥९१॥
कर्तुं प्रत्युपकार यो न शक्तोऽत्युपकारिण । सुलभा भावशुद्धिं स तस्मै न कुरुते कुत ॥९२॥
का तस्य बुद्धिर्न्यायेषु भवेदेकमपि क्षणम् । य· कृतस्योपकारस्य विशेष नावबुध्यते ॥९३॥
स्वपाकादपि पापीयान् लुब्धकादपि निर्घृण । असम्भाष्य सता नित्य योऽकृतज्ञो नराधम ॥९४॥
स्वशरीरमपि त्यक्त्वा सत्य वयमनन्यगाः । सर्वे समुद्यता कर्तुमुपकार तव प्रभो ॥९५॥
गत्वा प्रबोधयिष्यामि त्रिकूटाधिपति बुधम् । तव पत्नीं महाबाहो त्वरावानानयाम्यहम् ॥९६॥
सीताया वदनाम्भोज प्रसन्नेन्दुमिवोदितम् । सन्देहेन विनिर्मुक्त शीघ्र पश्यसि राघव ॥९७॥

तथा गुणरूपी रत्नोकी आकर अर्थात् खान अथवा समुद्र है। आपके शुक्ल यशसे यह ससार अलंकृत हो रहा है ॥८३॥ हे नाथ ! वज्रावर्त धनुषकी प्राप्तिसे जिसका अभ्युदय हुआ था तथा एक हजार देव जिसकी रक्षा करते थे ऐसे सीताके स्वयवरमे आपको जो पराक्रम प्राप्त हुआ था वह सब हमने सुना है ॥८४॥ दशरथ जिनका पिता है, भामण्डल जिनका मित्र है, और लक्ष्मण जिनका भाई है, ऐसे आप जगत्के स्वामी राजा राम है ॥८५॥ अहो ! आपकी शक्ति अद्भुत है, अहो ! आपका रूप आश्चर्यकारी है कि सागरावर्त धनुषका स्वामी नारायण स्वय ही जिनकी आज्ञा पालन करनेमे तत्पर है ॥८६॥ अहो ! आपका धैर्य आश्चर्यकारी है, अहो ! आपका त्याग अद्भुत है जो पिताके वचनका पालन करते हुए आप महाभय उत्पन्न करनेवाले दण्डक वनमे प्रविष्ट हुए है ॥८७॥ हे नाथ ! आपने हम लोगोका जो उपकार किया है वह न तो भाई ही कर सकता है और न संतुष्ट हुआ इन्द्र ही ॥८८॥ आपने सुग्रीवका रूप धारण करनेवाले साहसगतिको युद्धमे मारकर वानरवंशका कलंक दूर किया है ॥८९॥ विद्याबलकी विधिके जाननेवाले हम लोग भी जिसके मायामय शरीरको सहन नहीं कर सकते थे तथा हम लोगोके लिए भी जिसका जीतना कठिन था उस सुग्रीव रूपधारी साहसगतिने वानर वंशी सेनाको प्राप्त करनेके लिए कितना प्रयत्न किया परन्तु आपके दर्शनमात्रसे उसका वह रूप निकल गया ॥९०–९१॥ जो अत्यन्त उपकारी मनुष्यका प्रत्युपकार करनेके लिए समर्थ नहीं है वह उसके विषयमें भावशुद्धि क्यो नहीं करता अर्थात् उसके प्रति अपने परिणाम निर्मल क्यों नहीं करता जब कि यह भावशुद्धि बिलकुल ही सुलभ है ॥९२॥ जो मनुष्य, किये हुए उपकार की विशेषताको नही जानता है उसकी एक क्षणके लिए भी न्यायमे बुद्धि कैसे हो सकती है ? ॥९३॥ जो नीच मनुष्य अकृतज्ञ है वह चाण्डालसे भी अधिक पापी है, शिकारीसे भी अधिक निर्दय है और सत्पुरुषोसे निरन्तर वार्तालाप करनेके लिए भी योग्य नहीं है ॥९४॥ हे प्रभो ! हम सब किसी अन्य की शरणमे न जाकर आपकी ही शरणमे आये है और सचमुच ही अपना शरीर छोड़कर भी आपका उपकार करनेके लिए उद्यत है ॥९५॥ हे महाबाहो ! मैं जाकर रावणको समझाऊँगा। वह बुद्धिमान् है अतः अवश्य समझेगा और मैं शीघ्र ही आपकी पत्नीको वापिस ले आता हूँ ॥९६॥ हे राघव !

---

१ धनुर्लाभाद्द्वये लब्धे म० ।

मन्त्री जाम्बूनदोऽवोचत्ततो वाक्यं परं हितम् । वत्स वत्स मरुत्पुत्र त्वमेकोऽस्माकमाश्रयः ॥९८॥
अप्रमत्तेन गन्तव्यं लङ्कां रावणपालिताम् । न विरोधः क्वचित् कार्यः कदाचित् केनचित्सह ॥९९॥
एवमस्त्विति सम्भाष्य तं सम्प्रस्थितमुन्नतम् । विलोक्य परमां प्रीतिं पद्मनाभः समागमत् ॥१००॥
पुनः पुनः समाहूय मारुतिं[1] चारुलक्षणम् । सर्वादरं जगादेदं स्फीता[2] राजीवलोचनः ॥१०१॥
मद्वाक्यादुच्यतां सीता त्वद्वियोगात् स राघवः । अधुना विन्दते साध्वि न मनोनिर्वृतिं क्वचित् ॥१०२॥
अत्यन्तं तदहं मन्ये हतं पौरुषमात्मनः । प्रतिरोधं प्रपन्नासि वर्तमानेऽपि यन्मयि ॥१०३॥
वेद्मि निर्मलशीलाढ्या यथा त्वं मदनुव्रता । जीवितं[3] वाञ्छसि त्यक्तुं मद्वियोगेन दुःखिता ॥१०४॥
अलं तथापि सद्वक्त्रे दुःसमाधानमृत्युना । धार्यन्तां मैथिलि[4] प्राणा न जीवं त्यक्तुमर्हसि ॥१०५॥
दुर्लभः सङ्गमो भूयः पूजितः सर्ववस्तुषु । ततोऽपि दुर्लभो धर्मो जिनेन्द्रवदनोद्गतः ॥१०६॥
दुर्लभादप्यलं तस्मान्मरणं सुसमाहितम् । तस्मिन्नसति जन्मेदं तुषनिःसारमीक्षितम् ॥१०७॥
इदं च प्रत्ययोत्पादि प्रियायै मम जीवतः । सततं सस्तुतं देवमङ्गुलीयकमुत्तमम् ॥१०८॥
वायुपुत्र द्रुतं गत्वा सीतायास्तं महाप्रभम् । ममापि प्रत्ययकरं चूडामणिमिहानय ॥१०९॥
यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा रत्नवानरमौलिभृत् । कृताञ्जलिपुटो नत्वा सौमित्रिं च समाञ्जलिः[5] ॥११०॥
बहिर्विनिर्ययौ हृष्टः पूर्यमाणो विभूतिभिः । क्षोभयन् तेजसा सर्वं सुग्रीवभवनाजिरम् ॥१११॥

इसमें संदेह नहीं कि तुम उदित हुए चन्द्रमाके समान निर्मल सीताका मुखकमल शीघ्र ही देखोगे ॥९७॥

तदनन्तर सुग्रीवके मन्त्री जाम्बूनदने परम हितकारी वचन कहे कि हे वत्स हनुमन् ! हम लोगोंका आधार एक तू ही है ॥९८॥ अतः तुझे सावधान होकर रावणके द्वारा पालित लंका जाना चाहिए और कहीं कभी किसीके साथ विरोध नहीं करना चाहिए ॥९९॥ 'एवमस्तु'—'ऐसा ही हो' यह कहकर उदार हनूमान् लंकाकी ओर प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हुआ सो उसे देख राम परम प्रीतिको प्राप्त हुए ॥१००॥ विदलित कमललोचन रामने सुन्दर लक्षणोंके धारक हनूमान्को बार-बार बुलाकर बड़े आदरके साथ यह कहा कि तुम मेरी ओरसे सीतासे कहना कि हे साध्वि ! इस समय राम तुम्हारे वियोगसे किसी भी वस्तुमें मानसिक शान्तिको प्राप्त नहीं हो रहे हैं—उनका मन किसी भी पदार्थमें नहीं लगता है ॥१०१–१०२॥ मेरे रहते हुए भी जो तुम अन्यत्र प्रतिरोध—रुकावटको प्राप्त हो रही हो सो इसे मैं अपने पौरुषका अत्यधिक घात समझता हूँ ॥१०३॥ तुम जिस प्रकार निर्मल शीलव्रतसे सहित हो तथा एक ही व्रत धारण करती हो उससे समझता हूँ कि तुम मेरे वियोगसे दुःखी होकर यद्यपि जीवन छोड़ना चाहती होगी पर हे सुमुखि ! तो भी खोटे परिणामोंसे मरना व्यर्थ है। हे मैथिलि ! प्राण धारण करो। जीवनका त्याग करना उचित नहीं है ॥१०४–१०५॥ सर्व वस्तुओंका पुनः उत्तम समागम प्राप्त होना दुर्लभ है और उससे भी दुर्लभ अरहन्त भगवान्‌के मुखारविन्दसे प्रकट हुआ धर्म है ॥१०६॥ यद्यपि उक्त धर्म दुर्लभ है तो भी समाधि-मरण उसकी अपेक्षा दुर्लभ है क्योंकि समाधि मरणके बिना यह जीवन तुषके समान साररहित देखा गया है ॥१०७॥ और प्रियाके लिए मेरे जीवित रहनेका प्रत्यय—विश्वास उत्पन्न हो जाये इसलिए यह सदा की परिचित उत्तम अंगूठी उसे दे देना ॥१०८॥ तथा हे पवनपुत्र ! तुम शीघ्र ही जाकर मुझे विश्वास उत्पन्न करनेवाला सीताका महा कान्तिमान् चूड़ामणि यहाँ ले आना ॥१०९॥ 'जैसी आज्ञा हो' यह कह कर रत्नमय वानरसे चिह्नित मुकुटको धारण करनेवाला हनुमान् राम तथा लक्ष्मणको हाथ जोड़ नमस्कार कर बाहर निकल आया। उस समय वह अत्यन्त हर्षित था, विभूतियोंसे युक्त था और अपने तेजसे सुग्रीवके भवन-

---

१. चारुतामरसेक्षणम् ज० । २ कमलनेत्रः स्फीतया राजीवलोचनः म० । ३. जीवितु म० । ४. मैथिली म० । ५. कृताञ्जलि. म० ।

सन्दिदेश च सुग्रीव यावदागमन मम । स्थातव्य तावदत्रैव प्रमादपरिवर्जिते ॥११२॥
विमान चारुशिखरमारूढो मारुतिस्तत । विभाति मस्तके मेरोश्चैत्यालय इवोज्ज्वल ॥११३॥
प्रययौ परया द्युत्या सितच्छत्रोपशोभितः । विलसद्धसंसङ्काशैश्चामरैरुपवीजित ॥११४॥
वायुशावसमैरश्वैर्जङ्गमाद्रिसमैर्गजै । सैन्यैस्त्रिदशसङ्काशैर्जगाम परितो वृतः ॥११५॥
एव युक्तो महाभूत्या रामादिभिरुदीक्षित । समाक्रम्य रवेर्मार्गमयासीत्सुनिरन्तरम् ॥११६॥

उपजातिवृत्तम्

पूर्णं जगत्तिष्ठति जन्तुवर्गैर्नानाविधैरुत्तमभोगयुक्तैः ।
कश्चित्तु तेषा परमार्थकृत्ये नियुज्यते यत्परम यशस्तत् ॥११७॥
कृत परेणाप्युपकारयोग स्मरन्ति नित्य कृतिनो मनुष्या ।
तेषां न तुल्यो भुवने शशाङ्को नवा कुबेरो न रविर्न शक्र ॥११८॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनुमत्प्रस्थान नाम एकोनपञ्चाशत्तम पर्व ॥४९॥

सम्बन्धी समस्त आंगनको क्षोभयुक्त कर रहा था ॥११०–१११॥ उसने सुग्रीवसे कहा कि जब तक मै न आ जाऊँ तब तक आप सबको यहीं सावधान होकर ठहरना चाहिए ॥११२॥

तदनन्तर हनुमान् सुन्दर शिखरसे युक्त विमान पर आरूढ हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसा कि सुमेरुके शिखर पर देदीप्यमान चैत्यालय सुशोभित होता है ॥११३॥ तत्पश्चात् उसने परम कान्तिसे युक्त हो प्रयाण किया । उस समय वह सफेद छत्रसे सुशोभित था और उड़ते हुए हंसोकी समानता करनेवाले चमर उस पर ढोरे जा रहे थे ॥११४॥ वह वायुके समान वेगशाली घोड़ो, चलते-फिरते पर्वतोके समान हाथियो और देवोके समान सैनिकोसे घिरा हुआ जा रहा था ॥११५॥ इस प्रकार जो महाविभूतिसे युक्त था, तथा राम आदि जिसे ऊपरको दृष्टिकर देख रहे थे, ऐसा वह हनूमान् सूर्यके मार्गका उल्लङ्घन कर निरन्तर आगे बढ़ा जाता था ॥११६॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! यह समस्त ससार नाना प्रकारके उत्तम भोगोसे युक्त जन्तुओसे भरा हुआ है उनमेसे कोई विरला पुरुष ही परमार्थरूप कार्यमे लगता है तथा परम यशको प्राप्त होता है ॥११७॥ जो उत्तम मनुष्य दूसरेके द्वारा किये हुए उपकारका निरन्तर स्मरण रखते है इस संसारमे उनके समान न चन्द्रमा है, न कुबेर है, न सूर्य है और न इन्द्र ही है ॥११८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित, पद्मपुराणमे हनूमान्के प्रस्थानका वर्णन करनेवाला उनचासवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४९॥

१ -द्धंश- म० । २. वायुवेग म० । ३. जगामाद्रि- म० ।

पञ्चाशत्तमं पर्व

अथासावाञ्जनो गच्छन्नम्बरे परमोदय । स्वसारमिव वैदेहीमानिनीषुरराजत[1] ॥१॥
सुहृदाज्ञाप्रवृत्तस्य विनीतस्य महात्मन । शुद्धभावस्य तस्यासीदुत्सव कोऽपि चेतस ॥२॥
पश्यत प्रौढया दृष्ट्या स्थितस्य रविगोचरे । दिशा मण्डलमस्यासीच्छरीरावयवोपमम् ॥३॥
लङ्का[2] जिगमिषोरस्य महेन्द्रनगरोपमम् । महेन्द्रनगर दृष्टेराभिमुख्यमुपागतम् ॥४॥
वेदिकापुण्डरीकाभै प्रासादैः शशिपाण्डुरै । पर्वतस्य स्थित मूर्ध्नि तद्विदूरे प्रकाशते ॥५॥
वज्रपाणेरिवामुष्य[3] तस्मिन् वालिपुरोपमे । न बभूवतरा प्रीति तस्मादेवमचिन्तयत् ॥६॥
इद शिखरिणो मूर्ध्नि तन्महेन्द्रपुर स्थितम् । महेन्द्रको नृपो यत्र दुर्मति सोऽवतिष्ठते ॥७॥
दु खतापितसर्वाङ्गा माता येनागता मम । निर्वासिता मयि प्राप्ते कुक्षिवास दुरात्मना ॥८॥
एषाऽसौ विजनेऽरण्ये गुहा यत्र स सन्मुनि । पर्यङ्कयोगयुक्तात्मा नाम्नामितगति स्थित[4] ॥९॥
अस्या भगवता तेन साधुवाक्यै कृपाकृता । माता मा जनिताश्वासा प्रसूता बन्धुवर्जिता ॥१०॥
श्रुत केसरिज कृच्छ्र श्रुत्वा [5]मातुरुपप्लवम् । साधोश्च सङ्गम सैषा रम्या रम्या च मे गुहा ॥११॥
मातर शरण प्राप्ता मम निर्वास्य य कृती । व्यसनप्रतिदानेन महेन्द्र किन्तु[6] त भजेत् ॥१२॥
अहयुरयमत्यन्त मां किल द्वेष्टि सन्ततम् । महेन्द्र (महेन्द्रो) गर्वमेतस्य तस्मादपनयाम्यहम् ॥१३॥

अथानन्तर परम अभ्युदयको धारण करनेवाला हनूमान् आकाशमे जाता हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बहिन सीताको लेनेके लिए भामण्डल ही जा रहा हो ॥१॥ मित्र—श्रीरामकी आज्ञामे प्रवृत्त, विनयवान्, उदाराशय एवं शुद्धभावके धारक हनुमान्के हृदयमे उस समय कोई अद्भुत आनन्द छाया हुआ था ॥२॥ सूर्यके मार्गमे स्थित हनूमान् जब प्रौढ़ दृष्टिसे दिङ्मण्डलकी ओर देखता था तब उसे दिङ्मण्डल शरीरके अवयवोके समान जान पड़ता था ॥३॥ लङ्काकी ओर जानेके लिए इच्छुक हनूमान्की दृष्टिके सामने राजा महेन्द्रका नगर आया जो इन्द्रके नगरके समान जान पड़ता था ॥४॥ वह नगर पर्वतके शिखर पर स्थित था तथा वेदिका पर स्थित सफेद कमलोके समान आभाको धारण करनेवाले चन्द्रतुल्य धवल भवनोके द्वारा दूरसे ही प्रकाशित हो रहा था ॥५॥ जिस प्रकार बालिके नगरमे इन्द्रको प्रीति नहीं हुई थी उसी प्रकार राजा महेन्द्रके उस नगरमे हनूमान्को कोई प्रीति उत्पन्न नहीं हुई अपितु उसे देखकर वह विचार करने लगा ॥६॥ कि यह पर्वतके शिखर पर राजा महेन्द्रका नगर स्थित है जिसमे कि वह दुर्बुद्धि राजा महेन्द्र निवास करता है ॥७॥ मेरे गर्भवासके समय दु खसे भरी मेरी माता इसके नगर आई पर इस दुष्टने उसे निकाल दिया ॥८॥ तब मेरी माता निर्जन वनकी उस गुफामे—जिसमे कि पर्यंक योगसे अमितगति नामा मुनि विराजमान थे—रही । इसी गुफामे उन दयालु मुनिराजने उत्तम वचनोके द्वारा उसे सान्त्वना दी और बन्धुजनोसे रहित अकेली रहकर उसने मुझे जन्म दिया ॥९-१०॥ इसी गुफामे माताको सिहसे उत्पन्न कष्ट प्राप्त हुआ था और इसी गुफामे उसे मुनिराजका सन्निधान प्राप्त हुआ था इसलिए यह गुफा मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥११॥ जो मेरी शरणागत माताको निकाल कर कृतकृत्य हुआ था उस महेन्द्रको अब मै कष्टका बदला देकर क्या उसकी सेवा करूँ ॥१२॥ यह महेन्द्र बड़ा अहंकारी है तथा मुझसे निरन्तर द्वेष रखता है इसलिए इसका गर्व अवश्य ही दूर करता हूँ ॥१३॥

१. -नभीषुः रराज सः म०, ब० । २. लङ्का म० । ३. मुख्यस् म० । ४. स्थिताः म० । ५. तुरुपप्लवम् म० । ६. किन्तु न थजेत् म०, क० ।

प्रलम्बाम्बुदवृन्दोरुनादा दुन्दुभयस्ततः । महालम्पाकभेर्यश्च पटहाश्च समाहताः ॥१४॥
ध्माताः शङ्खा जगत्कम्पा[1] भटैरुत्कटचेष्टितैः । युद्धशौण्डैः समुत्कुष्टं समुल्लासितहेतिभिः ॥१५॥
श्रुत्वा परबलं प्राप्तं महेन्द्रः सर्वसेनया । प्रत्यैच्छत विनिःक्रम्य मेघवृन्दमिवाचलः ॥१६॥
[2]सम्प्रहारैस्ततो लग्नैर्दृष्ट्वासीदन्निजं बलम् । चापमुद्यम्य माहेन्द्रिः प्राप्तश्छत्री रथस्थितः ॥१७॥
हनूमानिषुभिस्तस्य धनुस्तिसृभिरायतम् । चिच्छेद गुप्तिभिर्योगी यथामानं समुत्थितम् ॥१८॥
चापं यावद्द्वितीयं स गृह्णात्याकुलमानसः । शरैस्तावद्रथान्मुक्ताः प्रचण्डास्तस्य वाजिनः ॥१९॥
रथात्ते विगता शीघ्राश्चपला बभ्रमुर्भृशम् । हृषीकाणीव मनसो[3] मुक्तानि विषयैषिणः ॥२०॥
माहेन्द्रिरथ सम्भ्रान्तो विमानं वरमाश्रितः । तदप्यस्य शरैर्लूनं मतं दुष्टमतेरिव ॥२१॥
माहेन्द्रिर्मुदितो भूयो विद्याबलविकारगः । पतत्रिचक्रकनकैर्युयुधेऽलातभासुरैः ॥२२॥
विद्ययाऽनिलपुत्रोऽपि तं शस्त्रौघमवारयत् । यथात्मचिन्तया योगी परीषहकदम्बकम् ॥२३॥
निर्दयोन्मुक्तशस्त्रोऽसावास्तृणानो महाग्निवत् । गृहीतो वायुपुत्रेण गरुडेनेव पन्नगः ॥२४॥
प्राप्तरोधं सुतं दृष्ट्वा महेन्द्रः क्रोधलोहितः । रथी मारुतिमभ्यार रामं सुग्रीवरूपवत् ॥२५॥
[4]अर्काभस्यन्दनः सोऽपि हारिहारो धनुर्धरः । शूराणामग्रणी दीप्तो मातुः पितरमभ्यगात् ॥२६॥

तदनन्तर ऐसा विचार कर उसने घूमते हुए मेघ-समूहके समान उच्च शब्द करनेवाली दुन्दुभियाँ, महा विकट शब्द करनेवाली भेरियाँ और नगाड़े बजवाये ॥१४॥ उत्कट चेष्टाओंको धारण करनेवाले योद्धाओंने जगत्को कँपा देनेवाले शङ्ख फूँके तथा शस्त्रोंको चमकानेवाले रणवीर योद्धाओंने जोरसे गर्जना की ॥१५॥ पर बलको आया सुन, राजा महेन्द्र सर्व सेनाके साथ बाहर निकला और जिस प्रकार पर्वत, मेघसमूहको रोकता है उसी प्रकार उसने हनूमानके दलको रोका ॥१६॥ तदनन्तर लगी हुई चोटोंसे अपनी सेनाको नष्ट होती देख, छत्रधारी, तथा रथ पर बैठा हुआ राजा महेन्द्रका पुत्र धनुष तानकर सामने आया ॥१७॥ सो हनूमान् तीन बाण छोड़ कर उसके लम्बे धनुषको उस तरह छेद डाला जिस तरह कि मुनि तीन गुप्तियोंके द्वारा उठते हुए मानको छेद डालते है ॥१८॥ वह व्याकुल चित्त होकर जब तक दूसरा धनुष लेता है तब तक हनूमान्ने तीक्ष्ण बाण चलाकर उसके चञ्चल घोड़े रथसे छुडा दिये ॥१९॥ सो रथसे छूटे हुए वे चञ्चल घोड़े शीघ्र ही इधर उधर इस प्रकार घूमने लगे जिस प्रकार कि विषयाभिलाषी मनुष्यकी मनसे छूटी हुई इन्द्रियाँ इधर-उधर घूमने लगती है ॥२०॥ अथानन्तर महेन्द्रका पुत्र घबड़ा कर उत्तम विमान पर आरूढ हुआ सो हनूमान्के बाणोसे वह विमान भी उस तरह खण्डित हो गया जिस तरह कि किसी दुर्बुद्धिका मत खण्डित हो जाता है ॥२१॥ तदनन्तर विद्याके बलसे विकारको प्राप्त हुआ महेन्द्रपुत्र पुनः हर्षित हो अलातचक्रके समान देदीप्यमान बाण चक्र तथा कनक नामक शस्त्रोसे युद्ध करने लगा ॥२२॥ तब हनूमान्ने भी विद्याके द्वारा उस शस्त्र समूहको उस तरह रोका जिस तरह कि योगी आत्मध्यानके द्वारा परीषहोंके समूहको रोकता है ॥२३॥ तदनन्तर जो निर्दयताके साथ शस्त्र छोड़ रहा था और प्रचण्ड अग्निके समान सब ओरसे आच्छादित कर रहा था ऐसे महेन्द्र पुत्रको हनूमान्ने उस तरह पकड लिया जिस तरह कि गरुड़ सर्पको पकड़ लेता है ॥२४॥ पुत्रको पकड़ा देख क्रोधसे लाल होता हुआ महेन्द्र रथ पर सवार हो हनूमान्के सन्मुख उस तरह आया जिस तरह कि सुग्रीवका रूप धारण करनेवाला कृत्रिम सुग्रीव रामके सन्मुख आया था ॥२५॥

तदनन्तर जिसका रथ सूर्यके समान देदीप्यमान था, जो सुन्दर हारका धारक था, धनुर्धारी था, शूरोंमे श्रेष्ठ था तथा अतिशय देदीप्यमान था ऐसा हनूमान् भी माताके पिता राजा

---

१. जगत्पका म० । २ सम्प्रहारे ततो लग्ने ज० । ३. मुक्ता निर्विषयैषिणः म० । ४. अर्काभः स्पन्दनः म० ।

तयोरभून्महत्सख्य क्रकचासिशिलीमुखै । परस्परकृताघात वायुवश्याब्दयोरिव[1] ॥२७॥
सिंहाविव महारोषौ [2]तावुद्धतबलान्वितौ । ज्वलत्स्फुलिङ्गरक्ताक्षौ श्वसन्तौ भुजगाविव ॥२८॥
परस्परकृताक्षेपौ गर्वहासस्फुटस्वनौ । धिक् ते शौर्यमहोयुद्धमित्यादिवचनोद्यतौ ॥२९॥
चक्रतु परम युद्ध मायाबलसमन्वितौ । हाकारजयकारादि कारयन्तौ मुहुर्निजै ॥३०॥
महेन्द्रोऽथ महावीर्यो विक्रियाशक्तिसङ्गत । क्रोधस्फुरितदेहश्रीर्मुमोचायुधसहतिम् ॥३१॥
भुशुण्डीः परशून् बाणान् शतघ्नीर्मुद्गरान् गदा । शिखराणि[3] च शैलाना शालन्यग्रोधपादपान् ॥३२॥
एतैरन्यैश्च विविधैरायुधौघैर्मरुत्सुत । न विव्यथे यथा शैलो महामेघकदम्बकै ॥३३॥
तद्दिव्यमायया सृष्ट शस्त्रवर्ष महेन्द्रजम् । उल्काविद्याप्रभावेण वायुसूनुरचूर्णयत् ॥३४॥
उत्पत्य च रथे तस्य निपत्य सुमहाजव । ककुप्करिकराकारकराभ्या कृतरोधनम् ॥३५॥
मातामह समादाय बल बिभ्रदनुत्तमम् । दत्तसाधु[4]स्वन शूरै समारोहन्निज रथम् ॥३६॥
उल्कालाङ्गूलपाणि त दौहित्र परमोदयम् । प्रशशसतु समारब्धो महेन्द्र सौम्यया गिरा ॥३७॥
अहो ते वत्स माहात्म्य परमेतन्मया श्रुतम् । पूर्वमासीदिदानी तु नियत प्रत्यक्षगोचरम् ॥३८॥
आसीद्देवेन्द्रयुद्धेऽपि निर्जितो यो न केनचित् । विजयार्धनगस्योर्द्धमहाविद्यायुधाकुले ॥३९॥

महेन्द्रके सम्मुख गया ॥२६॥ तदनन्तर वायुके वशीभूत दो मेघोमे जिस प्रकार परस्पर टक्कर होती है उसी प्रकार उन दोनोमे करोत, खड्ग तथा बाणोके द्वारा परस्पर एक दूसरेका घात करनेवाला महायुद्ध हुआ ॥२७॥ जो सिंहोके समान महाक्रोधी तथा उत्कट बलसे सहित थे, जिनके नेत्र देदीप्यमान तिलगोके समान लाल थे, जो सर्पोंके समान सॉसे भर रहे थे—फुंकार रहे थे, जो एक दूसरेपर आक्षेप कर रहे थे, जिनके अहङ्कारपूर्ण हास्यका स्फुट शब्द हो रहा था, 'तेरी शूर-वीरताको धिक्कार है, अहो ! युद्ध करने चला है' जो इस प्रकारके शब्द कह रहे थे, जो मायाबलसे सहित थे और जो अपने पक्षके लोगोसे कभी हा हाकार कराते थे तो कभी जय-जयकार कराते थे ऐसे हनूमान् तथा राजा महेन्द्र दोनो ही चिरकाल तक परमयुद्ध करते रहे ॥२८–३०॥ तदनन्तर जो महाबलवान् था, विक्रिया शक्तिसे संगत था और क्रोधसे जिसके शरीरकी शोभा देदीप्यमान हो रही थी ऐसा महेन्द्र हनूमानके ऊपर शस्त्रोका समूह छोड़ने लगा ॥३१॥ भुशुण्डी, परशु, बाण, शतघ्नी, मुद्गर, गदा, पहाड़ोके शिखर और सागौन तथा वटके वृक्ष उसने हनूमान्पर छोड़े ॥३२॥ सो इनसे तथा नाना प्रकारके अन्य शस्त्रोके समूहसे हनूमान् उस तरह विचलित नहीं हुआ जिस प्रकार कि महामेघोंके समूहसे पर्वत विचलित नहीं होता है ॥३३॥ राजा महेन्द्रकी दिव्यमायासे उत्पन्न शस्त्रोकी उस वर्षाको पवन-पुत्र हनूमान्ने अपनी उल्का-विद्याके प्रभावसे चूर-चूर कर डाला ॥३४॥ और उसी समय वेगसे भरे, दिग्गजोंके शुण्डादण्डके समान विशाल हाथोंसे युक्त तथा उत्तम बलको धारण करनेवाले हनूमान्ने मातामह महेन्द्रके रथपर उछलकर उसे रोकनेपर भी पकड़ लिया। शूर वीरोंने उसे साधुवाद दिया और वह पकड़े हुआ मातामहको लेकर अपने रथपर आरूढ हो गया ॥३५–३६॥ वहॉ जिसकी विक्रियाकृत लाङ्गल और हाथोसे उल्काऍ निकल रही थीं तथा जो परम अभ्युदयको धारण करनेवाला था ऐसे दौहित्र–हनूमान्की वह महेन्द्र सौम्य वाणी द्वारा स्तुति करने लगा ॥३७॥ कि अहो वत्स ! तेरा यह उत्तम माहात्म्य यद्यपि मैंने पहलेसे सुन रक्खा था पर आज प्रत्यक्ष ही देख लिया ॥३८॥ विजयार्ध पर्वतके ऊपर महाविद्याओं तथा शस्त्रोसे आकुल इन्द्र

---

१. वायुवशागतमेघयोरिव । २. -मुद्धृतबलान्वितौ म० । ३. शिखरिणि च म० । ४. साधुः स्वन' म० ।

असौ प्रसन्नकीर्तिर्मे पुत्रो माहात्म्यसङ्गतः । त्वया पराजित प्राप्तो रोधु चित्रमिद परम् ॥४०॥
अहो पराक्रमो भद्र तव धैर्यमहो परम् । अहो रूपमनौपम्यमहो सग्रामशौण्डता ॥४१॥
प्रजातेन त्वया वत्स महानिश्चययोगिना । कुलमुद्योतित सर्वमस्मदीय सुकर्म्मणा ॥४२॥
विनयाद्यैर्गुणैर्युक्तो राशि परमतेजस । कल्याणमूर्तिरत्यर्थं कल्पवृक्षस्त्वमुद्गत ॥४३॥
जगतो गुरुभूतस्त्व बान्धवाना समाश्रय· । दु.खादित्यप्रतप्तानां समस्ताना घनाघन ॥४४॥
इति प्रशस्य त स्नेहाद्दुद्खाचश्चलत्कर । अजिघ्रन्मस्तके नम्र पुलकी परिषस्वजे ॥४५॥
प्रणम्य वायुपुत्रोऽपि तमार्यं विहिताञ्जलि· । अतितिक्षद्विनीतात्मा क्षणाद्यातोऽन्यतामिव ॥४६॥[1]
मया शिशुतया किञ्चिदार्य यत्ते[2] विचेष्टितम् । दोषमेव समस्त मे प्रतीच्य[3] क्षन्तुमर्हसि ॥४७॥
समस्त च समाख्यात तेनागमनकारणम् । पद्मागमादिक यावदात्मागमनमादृतम् ॥४८॥
अहमार्य गमिष्यामि त्रिकूटमतिकारणम् । त्व किष्किन्धपुर गच्छ कार्यं दाशरथे कुरु ॥४९॥
इत्युक्त्वा वायुसम्भूत· खमुत्पत्य ययौ सुखम् । त्रिकूटाभिमुख क्षिप्र सुरलोकमिवामर ॥५०॥
गत्वा महेन्द्रकेतुश्च तनया नयकोविद । प्रसन्नकीर्तिना सार्द्धं वत्सल· समपूजयत् ॥५१॥
मातापितृसमायोग सोदरस्य च दर्शनम् । अञ्जनासुन्दरी प्राप्य जगाम परमा धृतिम् ॥५२॥
महेन्द्र निभृत श्रुत्वा किष्किन्धाभिमुखोऽगमत् । विराधितप्रभृतयस्तोषमाययुरुत्तमम् ॥५३॥

विद्याधरके युद्धमे भी जो किसीके द्वारा पराजित नहीं हुआ था तथा जो माहात्म्यसे युक्त था ऐसा मेरा पुत्र प्रसन्नकीर्ति तुमसे पराजित हो बन्धनको प्राप्त हुआ, यह बड़ा आश्चर्य है ॥३९-४०॥ अहो भद्र ! तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है, तुम्हारा धैर्य परम आश्चर्यकारी है, अहो·तुम्हारा रूप अनुपम है और युद्धकी सामर्थ्य भी आश्चर्यकारी है ॥४१॥ हे वत्स ! निश्चयको धारण करनेवाले तुमने हमारे पुण्योदयसे जन्म लेकर हमारा समस्त कुल प्रकाशमान किया है ॥४२॥ तू विनयादि गुणोसे युक्त है, परम तेजकी राशि है, कल्याणकी मूर्ति है तथा कल्पवृक्षके समान उदयको प्राप्त हुआ है ॥४३॥ तू जगत्का गुरु है, बान्धवजनोका आधार है और दु.खरूपी सूर्यसे सन्तप्त समस्त मनुष्योके लिए मेघस्वरूप है ॥४४॥ इस प्रकार प्रशंसा कर स्नेहके कारण जिसके नेत्रोसे अश्रु छलक रहे थे तथा जिसके हाथ हिल रहे थे, ऐसे मातामह महेन्द्रने उसका मस्तक सूँघा और रोमाञ्चित हो उसका आलिङ्गन किया ॥४५॥ वायुपुत्र—हनूमान्ने भी हाथ जोड़कर उन आर्य-मातामहको प्रणाम किया तथा क्षमाके प्रभावसे विनीतात्मा होकर वह क्षणभरमे ऐसा हो गया मानो अन्य रूपताको ही प्राप्त हुआ हो ॥४६॥ उसने कहा कि हे आर्य ! मैंने लड़कपनके कारण आपके प्रति जो कुछ चेष्टा की है सो हे पूज्य ! मेरे इस समस्त अपराधको आप क्षमा करनेके योग्य है ॥४७॥ उसने रामचन्द्रके आगमनको आदि लेकर अपने आगमन तकका समस्त वृत्तान्त बड़े आदरके साथ प्रकट किया ॥४८॥ उसने यह भी कहा कि हे आर्य ! मै अत्यावश्यक कारणसे त्रिकूटाचलको जाता हूँ तब तक तुम किष्किन्धपुर जाओ और श्रीरामका काम करो ॥४९॥ इतना कह हनूमान् आकाशमें उड़कर शीघ्र त्रिकूटाचलकी ओर सुखपूर्वक इस प्रकार गया जिस प्रकार कि देव स्वर्गकी ओर जाता है ॥५०॥ नीति निपुण तथा स्नेहपूर्ण राजा महेन्द्र केतुने अपने प्रियपुत्र प्रसन्नकीर्तिके साथ जाकर पुत्री—अंजनाका सम्मान किया ॥५१॥ अंजना सुन्दरी, माता-पिताके साथ समागम तथा भाईका दर्शन प्राप्तकर परम धैर्यको प्राप्त हुई ॥५२॥ राजा महेन्द्रको आया सुनकर किष्किन्धाका पति सुग्रीव उसे लेनेके लिए सन्मुख गया तथा विराधित आदि उत्तम सन्तोषको प्राप्त हुआ ॥५३॥

---

१. क्षणाघातोऽन्यतामिव म० । २. दत्ते म० । ३. हे पूज्य ।

वंशस्थवृत्तम्

पुरा विशिष्टं चरितं कृतात्मनां सुचेतसामुत्तमचारुतेजसाम् ।
महात्मनामुन्नतगर्वशालिनो भवन्ति वश्याः पुरुषा बलान्विताः ॥५४॥
ततः समन्तादनुपाल्य मानसं जना यतध्वं सततं सुकर्मणि ।
फलं यदीयं समवाप्य पुष्कलं रवेः समानामुपयाथ दीप्तताम् ॥५५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे महेन्द्रदुहितासमागमाभिधानं नाम पञ्चाशत्तमं पर्व ॥५०॥



गौतम स्वामी कहते है कि कृतकृत्य, सुचेता, तथा उत्तम सुन्दर तेजको धारण करनेवाले पुण्यात्मा और जीवोका पूर्व चरित ही ऐसा विशिष्ट होता है कि उन्नत गर्वसे सुशोभित बलशाली मनुष्य उनके आधीन—आज्ञाकारी होते हैं ॥५४॥ इसलिए हे भव्यजनो ! सब ओरसे मनकी रक्षाकर सदा उस शुभ कार्यमे यत्न करो कि जिसका पुष्कल फल पाकर सूर्यके समान दीप्तताको प्राप्त होओ ॥५५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमे महेन्द्रकी पुत्रीके साथ समागमका वर्णन करनेवाला पचासवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५०॥

एकपञ्चाशत्तमं पर्व

श्रीशैलस्य वियत्युच्चैर्विमानस्थस्य गच्छत । बभूव सुगुणैर्युक्तो द्वीपो दधिमुखोऽन्तरे ॥१॥
यस्मिन् दधिमुख नाम प्रासादैर्दधिपाण्डुरैः । पुर परममायामि[1] चारुकाञ्चनतोरणम् ॥२॥
नवमेघप्रतीकाशैरुद्यानै कुसुमोज्वलै । प्रदेशा यस्य शोभन्ते सनक्षत्राम्बरोपमा ॥३॥
स्फटिकस्वच्छकलिला वाप्य. सोपानशोभिता । पद्मोत्पलादिभिश्छन्ना यत्र भान्ति क्वचित् क्वचित् ॥४॥
तस्मिन् विप्रकृष्टे[2] तु देशे नगरगोचरात् । बृहत्तृणलतावल्लीद्रुमकण्टकसङ्कटे ॥५॥
शुष्कागकृतसरोधे रौद्रश्वापदनादिते । [3]घोरेऽतिपरुषाकारे प्रचण्डानिलचञ्चले ॥६॥
पतितोदारवृक्षौघे महाभयसमावहे । विशुद्धक्षारसरसि कङ्कगृद्धादिसेविते ॥७॥
[4]दुर्वने विजने राजन्[5] साधुयुग्म नभश्चरम् । अष्टाह लम्बितभुज योगमुग्रमुपाश्रितम् ॥८॥
तस्य क्रोशचतुर्भागमात्रदेशे व्यवस्थिता । मनोज्ञनयना कन्या सितवस्त्रा जटाधरा ॥९॥
तप्यन्ते विधिवद्घोर तपस्तिस्त्र सुचेतसः । शोभालोकत्रयस्येव नवभूषणता गता[6] ॥१०॥
अथासौ साधुयुगल ग्रस्यमान महाग्निना । अञ्जनातनयोऽपश्यत् पादपद्वयनिश्चलम् ॥११॥
असमाप्तव्रता ताश्च कन्या लावण्यपूरिता । उद्गच्छद्धूमजालेन स्पृष्टा बहलवर्तिना ॥१२॥
अथातस्थौ सनिर्ग्रन्थौ युक्तयोगौ शिवस्पृहौ । त्यक्तारागादिसङ्गेच्छौ निरस्ताशुकभूषणौ ॥१३॥

अथानन्तर जब हनूमान् विमानमे बैठकर आकाशमें बहुत ऊँचे जा रहा था तब उत्तम गुणोसे युक्त दधिमुख नामक द्वीप बीचमे पड़ा ॥१॥ उस दधिमुख द्वीपमे एक दधिमुख नामका नगर था जो दहीके समान सफेद महलोसे सुशोभित तथा लम्बायमान स्वर्णके सुन्दर तोरणोसे युक्त था ॥२॥ नवीन मेघके समान श्याम तथा पुष्पोसे उज्ज्वल उद्यानोसे उसके प्रदेश ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रोसे सहित आकाशके प्रदेश ही हो ॥३॥ उस नगरमें जहाँ-तहाँ स्फटिकके समान स्वच्छ जलसे भरी, सीढ़ियोसे सुशोभित एवं कमल तथा उत्पल आदिसे आच्छादित वापिकाएँ सुशोभित थी ॥४॥ नगरसे दूर चलकर एक महाभयङ्कर वन मिला जो बड़े-बड़े तृणो, लताओं, वेलो, वृक्षो और काँटोसे व्याप्त था ॥५॥ वह वन सूखे वृक्षोसे घिरा था, भयङ्कर जङ्गली पशुओंके शब्दसे शब्दायमान था, भयङ्कर था, अत्यन्त कठोर था, प्रचण्ड वायुसे चञ्चल था, गिरे हुए बड़े-बड़े वृक्षोंके समूहसे युक्त था, महाभय उत्पन्न करनेवाला था, अत्यन्त खारे जलके सरोवरोसे सहित था, कङ्क, गृद्ध आदि पक्षियोसे सेवित था तथा मनुष्योसे रहित था। गौतमस्वामी कहते है कि हे राजन्! उस वनमें दो चारण ऋद्धिधारी मुनि आठ दिनका कठिन योग लेकर विराजमान थे। उनकी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रहीं थीं ॥६-८॥ उन मुनियोंसे पावकोश दूरी पर तीन कन्याएँ, जिनके नेत्र अत्यन्त मनोहर थे, जो शुक्लवस्त्रसे सहित थीं, जटाएँ धारण कर रहीं थी, शुद्ध हृदयसे युक्त थीं, तीन लोककी मानों शोभा थीं। और नूतन आभूषण स्वरूप थीं, विधिपूर्वक घोर तप कर रही थीं ॥९-१०॥

तदनन्तर हनुमान्ने देखा कि दोनो मुनि महाअग्निसे ग्रस्त हो रहे हैं और वृक्ष युगलके समान निश्चल खड़े है ॥११॥ जिनका व्रत समाप्त नहीं हुआ था तथा जो लावण्यसे युक्त थीं ऐसी वे तीनो कन्याएँ भी निकलते हुए अत्यधिक धूमसे स्पष्ट हो रही थीं ॥१२॥ उन्हें देख

१. -मायाति म० । २. विप्रकृष्टेन म० । ३. घोरे पतिरुषाकारे म० । ४. दुर्जने म० । ५. राजत् म० । ६. गतः म० । ७. उद्गमद्धूम- म० ।

प्रलम्बितमहाबाहू प्रशान्तवदनाकृती । [1]युगान्तार्पितसद्दृष्टी प्रतिमास्थानमाश्रितौ ।।१४।।
मृत्युजीवननिकाङ्क्षावनघौ शान्तमानसौ । समप्रियाप्रियासङ्गौ समपाषाणकाञ्चनौ ।।१५।।
दावेन[2] महता राजन् तेनात्यासन्नवर्तिना । अभिभूतौ समालोक्य वात्सल्यं कर्तुमुद्यतः ।।१६।।
आकृष्य सागरजलं मेघहस्तः ससम्भ्रमः । अवर्षदुन्नतो व्योम्नि परमं भक्तिसङ्गतः ।।१७।।
सुभृशं तेन वह्निः स वारिपूरेण नाशितः । महाक्रोध इवोद्भूतः क्षान्तिभावेन साधुना ।।१८।।
यावच्च कुरुते पूजां भक्त्या पवननन्दनः । तयोर्भदन्तयोर्नानापुष्पादिद्रव्यसम्पदा ।।१९।।
तावत्ता सिद्धससाध्या मेरुं कृत्वा प्रदक्षिणम् । तत्सकाशमनुप्राप्ता कुमार्यः सुमनोहरा ।।२०।।
प्रणेमुश्च समं तेन साधू[3] ध्यानपरायणौ । विनयान्वितया बुद्ध्या प्रशशंसुश्च मारुतिम् ।।२१।।
अहो जिनेश्वरे भक्तिर्व्रजता क्वापि यद्द्रुतम् । त्वया तात परित्राता वयं साधुसमाश्रयात् ।।२२।।
अस्मद्द्वारसमायातो महानयमुपप्लवः । स्तोकेनाशो न योगिभ्यामहो नो भवितव्यता ।।२३।।
अथाञ्जनात्मजोऽपृच्छद्देव सशुद्धमानसः । भवन्त्य इह निःशून्ये[4] का वनेऽत्यन्तभीषणे ।।२४।।
अवोचज्ज्यायसी तासां पुरे दधिमुखाह्वये । अत्र गन्धर्वराजस्य वयं तिस्रोऽमरासुताः ।।२५।।
प्रथमा चन्द्रलेखाख्या ज्ञेया विद्युत्प्रभा ततः । अन्या तरङ्गमालेति सर्वगोत्रस्य वल्लभा ।।२६।।

हनुमान्‌के हृदयमे उन सबके प्रति बड़ी आस्था उत्पन्न हुई । तदनन्तर जो योग अर्थात् ध्यानसे युक्त थे, मोक्ष की इच्छासे सहित थे, जिन्होंने रागादि परिग्रहकी इच्छा छोड़ दी थी, वस्त्र तथा आभूषण दूर कर दिये थे, भुजाएँ नीचेकी ओर लटका रक्खी थीं, जिनके मुखकी आकृति अत्यन्त शान्त थी, युगप्रमाण दूरी पर जिनकी दृष्टि पड़ रही थी, जो प्रतिमा योगसे विराजमान थे, जीवन और मरणकी आकाङ्क्षासे रहित थे, निष्पाप थे, शान्तचित्त थे, इष्ट अनिष्ट समागममे मध्यस्थ थे, तथा पाषाण और काञ्चनमे जो समभाव रखते थे ऐसे उन दोनो मुनियोको अत्यन्त निकटवर्ती बड़ी भारी दावानलसे आक्रान्त देख, हे राजन् ! हनूमान् वात्सल्यभाव प्रकट करनेके लिए उद्यत हुआ ।।१३–१६।। भक्तिसे भरे हनूमान्‌ने शीघ्रतासे समुद्रका जल खींच, मेघ हाथमे धारण किया और आकाशमे ऊँचे जाकर अत्यधिक वर्षा की ।।१७।। उस बरसे हुए जलप्रवाहसे वह दावाग्नि उस प्रकार शान्त हो गई जिस प्रकार कि उत्पन्न हुआ महाक्रोध, मुनिके क्षमाभावसे शान्त हो जाता है ।।१८।। भक्तिसे भरा हनूमान् जबतक नाना प्रकारकी पुष्पादि सामग्रीसे उन दोनो मुनियोकी पूजा करता है तब तक जिनके मनोरथ सिद्ध हो गये थे ऐसी वे तीनो मनोहर कन्याएँ मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देकर उसके पास आ गईं ।।१९–२०।। उन्होंने ध्यानमे तत्पर दोनो मुनियोको हनूमान्‌के साथ-साथ विनयपूर्वक नमस्कार किया तथा हनूमान्‌की इस प्रकार प्रशसा की कि अहो ! तुम्हारी जिनेन्द्रदेवमें बड़ी भक्ति है जो शीघ्रतासे कहीं अन्यत्र जाते हुए तुमने मुनियोके आश्रयसे हम सबकी रक्षा की ।।२१–२२।। हमारे निमित्तसे यह महा उपद्रव उत्पन्न हुआ था सो मुनियोको रञ्चमात्र भी प्राप्त नहीं हो पाया। अहो ! हमारी भवितव्यता धन्य है ।।२३।।

अथानन्तर पवित्र हृदयके धारक हनूमान्‌ने उनसे इस प्रकार पूछा कि इस अत्यन्त भयङ्कर निर्जन वनमें आपलोग कौन हैं ? ।।२४।। तदनन्तर उन कन्याओंमें जो ज्येष्ठ कन्या थी वह कहने लगी कि हम तीनों दधिमुख नगरके राजा गन्धर्वकी अमरानामक रानीकी पुत्रियाँ हैं ।।२५।। इनमे प्रथम कन्या चन्द्रलेखा, दूसरी विद्युत्प्रभा और तीसरी तरङ्गमाला है । हम सभी

---

१. युगान्तार्पित-म० । २. दानेन म० । ३. साधु म० । ४. कानने ख०, म० । कुवने क० ।

यावन्तो भुवने केचिद्विजयार्द्धादिसम्भवा । विद्याधरकुमारेन्द्रा कुलपुष्करभास्करा ॥२७॥
तेऽस्मदर्थे शिव क्वापि न विन्दन्तेऽर्थिनो भृशम् । दुष्टस्त्वङ्गारको नाम ताप धत्ते विशेषत ॥२८॥
अन्यदापरिपृष्टश्च तातेनाष्टाङ्गविन्मुनिः । स्थानेषु भगवन् केषु [1]भव्या दुहितरो मम ॥२९॥
सोऽवोचत् साहसगति यो हनिष्यति सयुगे । आसां कतिपयाहोभी रमणोऽसौ भविष्यति ॥३०॥
निशम्यामोघवाक्यस्य मुनेस्तद्वचन तत । अचिन्तयत् पिताऽस्माक विधाय स्मेरमाननम् ॥३१॥
कस्त्वसौ भविता लोके नरो वज्रायुधोपम । विजयार्धोत्तरश्रेणीश्रेष्ठ यो हन्ति साहसम् ॥३२॥
अथवा न मुनेर्वाक्य कदाचिज्जायतेऽनृतम् । इति विस्मयमाविष्टः पिता माता जनस्तथा ॥३३॥
चिर प्रार्थयमानोऽपि यदासौ लब्धवान्न [2]नः । तदास्मद्दुःखचिन्तास्थ. सञ्जातोऽङ्गारकेतुक ॥३४॥
तत प्रभृति चास्माकमयमेव मनोरथ । द्रक्ष्यामस्त कदा वीरमिति साहससूदनम् ॥३५॥
एतच्च वनमायाता दारुणद्रुमसङ्कटम् । मनोऽनुगामिनी नाम विद्या साधयितु [3]पराम् ॥३६॥
दिवसो द्वादशोऽस्माक वसन्तीनामिहान्तरे । प्राप्तस्य साधुयुग्मस्य वर्तते दिवसोऽष्टम ॥३७॥
अङ्गारकेतुना तेन वीक्षिताश्च दुरात्मना । ततस्तेनानुबन्धेन क्रोधेन पूरितोऽभवत् ॥३८॥
ततोऽस्माक वध कर्तुमेता दश दिश. क्षणात् । धूमाङ्गारकवर्षेण वह्निना पिञ्जरीकृता. ॥३९॥
षड्भि सवत्सरै साग्रैर्यद्दुःसाध्य प्रसाध्यते । दत्वाङ्गमुपसर्गस्य तदद्यैव हि साधितम् ॥४०॥
इहापदि महाभाग.नाभविष्यद् भवान् यदि । अधक्ष्याम हि योगिभ्यां सहारण्ये ततो ध्रुवम् ॥४१॥

अपने समस्त कुलके लिए अत्यन्त प्यारी हैं ॥२६॥ इस संसारमे अपने कुलरूपी कमलोको विकसित करनेके लिए सूर्यके समान, विजयार्ध आदि स्थानोमे उत्पन्न हुए जितने कुछ विद्याधर कुमार है वे सब हम लोगोंके अत्यन्त इच्छुक हो कहीं भी सुख नहीं पा रहे हैं। उन कुमारोमे अङ्गारक नामक दुष्ट कुमार विशेष रूपसे सन्तापको धारण कर रहा है ॥२७–२८॥ किसी एक दिन हमारे पिताने अष्टाङ्ग निमित्तके ज्ञाता मुनिराज से पूछा कि हे भगवन्! मेरी पुत्रियाँ किन स्थानोंमे जावेगीं ॥२९॥ इसके उत्तरमे मुनिराजने कहा था कि जो युद्धमे साहसगतिको मारेगा वह कुछ ही दिनोमे इनका भर्ता होगा ॥३०॥ तदनन्तर अमोघ वचनके धारक मुनिराजका वह वचन सुन हमारे पिता मुखको मन्द हास्यसे युक्त करते हुए विचार करने लगे कि ॥३१॥ संसारमे इन्द्रके समान ऐसा कौन पुरुष होगा जो विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमे श्रेष्ठ साहसगतिको मार सकेगा ॥३२॥ अथवा मुनिके वचन कभी मिथ्या नही होते यह विचार कर माता-पिता आदि आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥३३॥ चिरकाल तक याचना करने पर भी जब अंगारक हम लोगोको नहीं पा सका तब वह हम लोगोंको दु.ख देनेवाले कारणोकी चिन्तामें निमग्न हो गया ॥३४॥ उस समयसे लेकर हम लोगोका यही एक मनोरथ रहता है कि हम साहसगतिको नष्ट करनेवाले उस वीरको कब देखेगीं ॥३५॥ हम तीनों कन्याएँ मनोनुगामिनी नामक उत्तम विद्या सिद्ध करनेके लिए कठोर वृक्षोसे युक्त इस वनमे आई थीं ॥३६॥ यहाँ रहते हुए हम लोगोका यह बारहवाँ दिन है और इन दोनो मुनियोको आये हुए आज आठवाँ दिवस है ॥३७॥ तदनन्तर उस दुष्ट अंगारकेतुने हम लोगोको यहाँ देखा और उक्त पूर्वोक्त संस्कारके कारण वह क्रोधसे परिपूर्ण हो गया ॥३८॥ तत्पश्चात् हम लोगोका वध करनेके लिए उसने उसी क्षण दशों दिशाओको धूम तथा अंगारकी वर्षा करनेवाली अग्निसे पिञ्जर वर्ण—पीत वर्ण कर दिया ॥३९॥ जो विद्या छः वर्षसे भी अधिक समयमे बड़ी कठिनाईसे सिद्ध होती है वह विद्या उपसर्गका निमित्त पाकर आज ही सिद्ध हो गई ॥४०॥ हे महाभाग! यदि इस आपत्तिके समय आप यहाँ नहीं होते तो निश्चित ही हम सब दोनो मुनियोके साथ-साथ वनमें जल जातीं ॥४१॥

१. भर्ता म० । २. अस्मान् न सः म० । लब्धवान्न ताः ख० । ३. परम् म० ।

साधु साध्विति सस्मित्य ततो मारुतिरब्रवीत् । [1]भवतीना श्रम श्लाघ्य फलयुक्तश्च निश्चय ॥४२॥
अहो वो विमला बुद्धिरहो स्थाने मनोरथ. । अहो भव्यत्वमुत्तुङ्ग येन विद्या प्रसाधिता ॥४३॥
आख्यात च क्रमात् सर्वं यथावृत्त सविस्तरम् । पद्मागमादिक यावदात्मागमनकारणम् ॥४४॥
ततश्च श्रुतवृत्तान्तो गन्धर्वोऽमरया सह । समागतो महातेजास्तमुद्देश सहानुग ॥४५॥
नभश्चरसमायोगे देवागमनसन्निभे । क्षणेन तद्वन जात सर्वं नन्दनसुन्दरम् ॥४६॥
किष्किन्ध च पुर गत्वा भूत्या दुहितृभि समम् । शासने पद्मनाभस्य गन्धर्वो रतिमाश्रयत् ॥४७॥
ताश्च निस्सीमसौभाग्या विभूत्या परयान्विता । उपनिन्ये परा: कन्या रामायाक्लिष्टकर्मणे ॥४८॥
एताभिरपराभिश्च सेव्यमानो विभूतिभि । अपश्यन् जानकीं पद्मो मेने शून्या दिशो दश ॥४९॥

अतिरुचिरावृत्तम्

गुणान्वितैर्भवति जनैरलङ्कृता समस्तभू. शुभललितैः सुसुन्दरै ।
विना [2]जन मनसि कृतास्पद सदा व्रजत्यसौ गहनवनेन तुल्यताम् ॥५०॥
पुराकृतादतिनिचितात् समुत्कटाज्जन. परा रतिमनुयाति कर्मण. ।
ततो जगत्सकलमिद स्वगोचरे प्रवर्तते विधिरविणा प्रकाशते ॥५१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे पद्मस्य गन्धर्वकन्यालाभाभिधान नाम एकपञ्चाशत्तम पर्व ॥५१॥

तदनन्तर हनुमान्ने 'ठीक है' 'ठीक है' इस तरह मन्दहास पूर्वक कहा कि आप लोगोका श्रम प्रशंसनीय है तथा निश्चित ही फलसे युक्त है ॥४२॥ अहो ! तुम सबकी बुद्धि निर्मल है । अहो ! तुम सबका मनोरथ योग्य स्थानमे लगा । अहो ! तुम्हारी उत्तम होनहार थी जिससे यह विद्या सिद्ध की ॥४३॥ तत्पश्चात् हनूमान्ने रामके आगमनको आदि लेकर अपने यहाँ आने तक का समस्त वृत्तान्त ज्योका त्यो विस्तारके साथ क्रमपूर्वक कहा ॥४४॥ तदनन्तर समाचार सुन कर महा तेजस्वी गन्धर्व राजा अपनी अमरा नामकी रानी और अनुचरोके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥४५॥ इस प्रकार क्षण भरमे वह समस्त वन देवागमनके समान विद्याधरोका समागम होनेसे नन्दन वनके समान हो गया ॥४६॥ तदनन्तर राजा गन्धर्व पुत्रियोको साथ ले बड़े वैभवसे किष्किन्धपुर गया और वहाँ रामकी आज्ञामे रह कर प्रीतिको प्राप्त हुआ ॥४७॥ उसने असीम सौभाग्यकी धारक तथा परम विभूतिसे युक्त तीनो उत्कृष्ट कन्याएँ शान्त चेष्टाके धारक रामके लिये समर्पित की ॥४८॥ सो राम इन कन्याओसे तथा अन्य विभूतियोसे यद्यपि सेव्यमान रहते थे तथापि सीताको न देखते हुए वे दशो दिशाओंको शून्य मानते ॥४९॥ गौतम स्वामी कहते है कि यद्यपि समस्त भूमि गुणोसे सहित, शुभ चेष्टाओके धारक तथा अतिशय सुन्दर मनुष्योंसे अलंकृत रहे तो भी मनमे वास करनेवाले मनुष्यके विना वह भूमि गहन वन की तुल्यता धारण करती है ॥५०॥ पूर्वोपार्जित तथा तीव्र रूपसे बन्धको प्राप्त हुए उत्कट कर्मसे यह जीव परम रतिको प्राप्त होता है और उस रतिके कारण यह समस्त संसार अपने अधीन रहता है तथा कर्म रूपी सूर्यसे प्रकाशमान होता है ॥५१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्यकथित पद्मपुराणमें रामको गन्धर्व कन्याओंकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला इक्यावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५१॥

---

१ 'भवतीनां श्रमः' इत्यारभ्य 'अहो वो विमला बुद्धिरहो स्थाने मनोरथः' इत्यन्तः पाठः ख० पुस्तके नास्ति । २. जनैः म० ।

द्विपञ्चाशत्तमं पर्व

असौ पवनपुत्रोऽपि प्रतापाढ्यो महाबल । त्रिकूटाभिमुखोऽयासीत् सोमवन्मन्दर प्रति ॥१॥
अथास्य व्रजतो व्योम्नि सुमहाकार्मुकाकृतिम् । [1]वक्रमेध्याप्रतीकाश जातं सैन्य निरोधवत् [2] ॥२॥
उवाच [3]च गति केन मम सैन्यस्य विघ्निता [4] । अहो विज्ञायता क्षिप्र कस्येदमनुचेष्टितम् ॥३॥
कि स्यादसुरनाथोऽय चमरो गर्वपर्वत । आखण्डल शिखण्डी वा नैषामेकोऽपि युज्यते ॥४॥
प्रतिमा किन्तु जैनेन्द्री शिखरेऽस्य महीभृतः । भवेद् वा भगवान् कश्चिन्मुनिश्चरमविग्रह [5] ॥५॥
तस्य तद्वचन श्रुत्वा वितर्ककृतवर्त्तनम् । मन्त्री पृथुमतिर्नाम वाक्यमेतदुदाहरत् ॥६॥
निवर्त्तस्व [6]महाबुद्धे श्रीशैल ननु कि तव । क्रूरयन्त्रयुतो नाथ [7] मायाशालो मति गत ॥७॥
चक्षुस्ततो नियुज्यासावपश्यत्पद्मलोचन । दु प्रवेश महाशाल विरक्तस्त्रीमन समम् ॥८॥
अनेकाकारवक्त्राढ्य भीममाशालिकात्मकम् । त्रिदशैरपि दुर्लोक्य सर्वभक्ष्य प्रभासुरम् ॥९॥
सङ्कटोत्कटतीक्ष्णाग्रक्रकचावलिवेष्टितम् । रुधिरोद्गारजिह्वाग्रसहस्रविलसत्तटम् [8] ॥१०॥
स्फुरद्भुजङ्गविस्फारिफणाशूत्कारशब्दितम् । विषधूमान्धकारान्तज्वलदङ्गारदु सहम् ॥११॥
यस्त सर्पति मूढात्मा शौर्यमानसमुद्धत । निःक्रामति न भूयोऽसौ मण्डूकोऽहिमुखादिव ॥१२॥
लङ्काशालपरिक्षेप सूर्यमार्गसमुन्नतम् । दुर्लङ्घ्य दुर्निरीक्ष्य च सर्वदिक्षु सुयोजितम् ॥१३॥
युगान्तकालमेघौघनिर्घोषसमभीषणम् । हिंसाग्रन्थमिवात्यन्तपापकर्मविनिर्मितम् ॥१४॥

अथानन्तर प्रतापसे सहित महाबलवान् हनूमान् त्रिकूटाचलके सन्मुख इस प्रकार चला जिस प्रकार कि सुमेरुके सन्मुख सोम चलता है ॥ १ ॥ तदनन्तर आकाशमे चलते हुए हनूमान् की सेना अचानक रुककर किसी बड़े धनुषके समान हो गई और ऐसी जान पड़ने लगी मानो कुटिल मेघोका समूह ही हो ॥ २ ॥ यह देख, हनूमान्ने कहा कि मेरी सेनाकी गति किसने रोकी है ? अहो ! शीघ्र ही मालूम करो कि यह किसकी चेष्टा है ? ॥ ३ ॥ क्या यहाँ असुरोका इन्द्रचमर है, अथवा इन्द्र है या शिखण्डी है ? अथवा इनमेसे यहाँ एकका भी होना उचित नही जान पड़ता ॥ ४ ॥ किन्तु हो सकता है कि इस पर्वतकी शिखर पर जिनेन्द्र भगवान्‌की प्रतिमा हो, अथवा कोई ऐश्वर्यवान् चरम शरीरी मुनिराज विराजमान हो ॥ ५ ॥ तदनन्तर हनूमान्‌के वितर्कपूर्ण वचन सुनकर पृथुमति मन्त्रीने यह वचन कहे कि हे महाबुद्धिमन् श्रीशैल ! तुम शीघ्र ही लौट जाओ, तुम्हें इससे क्या प्रयोजन है ? यह आगे क्रूर यन्त्रोसे युक्त मायामयी कोट जान पड़ता है ॥ ६–७ ॥ तत्पश्चात् कमललोचन हनूमान्ने स्वय दृष्टि डालकर उक्त मायामयी महाकोटको देखा । वह कोट विरक्त स्त्रीके मनके समान दुष्प्रवेश था ॥ ८ ॥ अनेक आकारके मुखोसे सहित था, भयंकर पुतलियोसे युक्त था, सबको भक्षण करनेवाला था, देदीप्यमान था और देवोके द्वारा भी दुर्गम्य था ॥ ९ ॥ जिनके अग्रभाग संकटसे उत्कट तथा अत्यन्त तीक्ष्ण थे ऐसी करोतोकी श्रेणीसे वह कोट वेष्टित था, तथा उसके तट रुधिरको उगलनेवाली हजारो जिह्वाओके अग्रभागसे सुशोभित थे ॥ १० ॥ चञ्चल सर्पोंके तने हुए फणाओकी शूत्कारसे शब्दायमान था तथा जिनसे विषैला धूम रूपी अन्धकार उठ रहा था ऐसे जलते हुए अगारोसे दु:सह था ॥ ११ ॥ शूर वीरताके अहंकारसे उद्धत जो मनुष्य उस कोटके पास जाता है वह फिर उस तरह लौटकर नहीं आता जिस प्रकार कि साँपके मुखसे मेढक ॥ १२ ॥ यह लंकाके

---

१. चक्रे, मेध्या प्रतिकाश म० । २. तिरोभवत् म० । ३. खगति म० । ४. विघ्नता म० ।
५. मुमीश्वरमविग्रहः (?) म० । ६ महान् युद्धे ख० । ७. युतेनाय म०; ब० । ८. जिह्वाग्र म० ।

त दृष्ट्वा मारुतिर्दध्यावहो नाथेन रक्षसाम् । दाक्षिण्यमुज्झित पूर्वं मायाप्राकारकारिणा[2] ॥१५॥
उन्मूलयन्निद यन्त्र विद्याबलसमूर्जितम् । मानमुन्मूलयाम्यस्य ध्यानी मोहमल[3] यथा ॥१६॥
युद्धे च मानस कृत्वा तत्सैन्य [4]स्व महास्वनम् । गगने सागराकार समयेऽतिष्ठिपत् सुधी. ॥१७॥
विद्याकवचयुक्त च [5]कृत्वात्मान गदाकर. । विवेश सालिकावक्त्र राहुवक्त्र रविर्यथा ॥१८॥
तत कुक्षिगुहा तस्या परीतकैकसावृताम् । विद्यानखैरल तीक्ष्णै. केसरीव व्यपाटयत् ॥१९॥
निर्दयैश्च गदाघातैर्घोरघोषैरचूर्णयत् । घातिकर्मस्थिति यद्वद्ध्यानी भावै. सुनिर्मलैः ॥२०॥
अथाशालिकविद्याया यान्त्या भेद भयावहम् । समो नीलाम्बुवाहानामभूच्चटचटाध्वनि' ॥२१॥
तेन सम्भाव्यमानोऽसौ शालो नष्टोऽतिचञ्चल. । स्तोत्रेणेव जिनेन्द्राणा कलुषः कर्मसञ्चय. ॥२२॥
ततस्तन्निनद श्रुत्वा युगान्तजलदोन्नतम् । दृष्ट्वा विशीर्यमाण च यन्त्रप्राकारमण्डलम् ॥२३॥
[6]राजन् वज्रमुख क्रुद्ध शालरक्षाधिकारवान् । त्वरित रथमारुह्य सिंहो दावमिवाभ्यगात् ॥२४॥
ततोऽभिमुखमेतस्य वीक्ष्य मारुतनन्दनम् । नानायानयुधा योधा प्रचण्डा योद्धुमुद्यता ॥२५॥
बल [7]वाज्रमुख दृष्ट्वा प्रबल योद्धुमुद्यतम् । परम क्षोभमायात हनूमत्सैन्यमुत्थितम् ॥२६॥
किमत्र बहुनोक्तेन प्रवृत्त तत्तथा रणम् । यथा स्वामिकृते पूर्वं [8]सन्माननविमानने ॥२७॥

कोटका घेरा सूर्यके मार्ग तक ऊँचा है, दुर्लंघ्य है, दुर्निरीक्ष्य है, सब दिशाओंमें फैला है, प्रलय कालीन मेघसमूहकी गर्जनाके समान तीक्ष्ण गर्जनासे भयङ्कर है, तथा हिंसामय शास्त्रके समान अत्यन्त पापकर्मा जनोंके द्वारा निर्मित है ॥ १४॥ उसे देखकर हनूमान्‌ने विचार किया कि अहो ! मायामयी कोटका निर्माण करनेवाले रावणने अपनी पहलेकी सरलता छोड दी है ॥ १५ ॥ मैं विद्याबलसे बलिष्ठ इस यन्त्रको उखाड़ता हुआ इसके मानको उस तरह उखाड़ दूँगा, जिस तरह कि ध्यानी मनुष्य मोहको उखाड देता है ॥ १६ ॥

तदनन्तर बुद्धिमान् हनूमान्‌ने युद्धमे मन लगाकर अर्थात् युद्धका विचार कर अपनी गरजती हुई समुद्राकार सेनाको तो संकेत देकर आकाशमे खड़ा कर दिया और अपने स्वयं विद्यामय कवच धारणकर तथा गदा हाथमे ले पुतलीके मुखमें उस तरह घुस गया जिस तरह कि राहुके मुखमे सूर्य प्रवेश करता है ॥१७–१८॥ तत्पश्चात् चारों ओरसे हड्डियोंसे आवृत उस पुतलीकी उदररूपी गुहाको उसने सिंहकी भाँति विद्यामयी तीक्ष्ण नखोंसे अच्छी तरह चीर डाला ॥ १९ ॥ और भयंकर शब्द करनेवाले गदाके निर्दय प्रहारोंसे उसे उस प्रकार चूर-चूर कर डाला जिस प्रकार कि ध्यानी मनुष्य अपने अतिशय निर्मल भावोंसे घातिया कर्मोंकी स्थितिको चूर-चूर कर डालता है ॥ २० ॥ तदनन्तर भङ्गको प्राप्त होती हुई आशालिक विद्याका नील मेघोंके समान भयंकर चट-चट शब्द हुआ ॥ २१ ॥ उस शब्दसे यह अतिशय चंचल मायामय कोट इस प्रकार नष्ट हो गया जिस प्रकार कि जिनेन्द्र भगवान्‌की स्तुतिसे पापकर्मोंका समूह नष्ट हो जाता है ॥२२॥

तदनन्तर प्रलयकालके मेघोंके समान उन्नत उस शब्दको सुनकर तथा यन्त्रमय कोटको नष्ट होता देख, कोटकी रक्षाका अधिकारी वज्रमुख नामका राजा कुपित हो शीघ्र ही रथ पर आरूढ़ हो हनूमान्‌के सन्मुख उस प्रकार आया जिस प्रकार कि सिंह दावानलके सन्मुख जाता है ॥ २३–२४ ॥ तदनन्तर हनूमान्‌को उसके सन्मुख देख, नाना प्रकारके वाहनों और शस्त्रोंसे सहित प्रचण्ड योधा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥ २५ ॥ इधर वज्रमुखकी प्रबल सेनाको युद्धके लिए उद्यत देख परम क्षोभको प्राप्त हुई हनूमानकी सेना भी युद्धके लिए उठी ॥ २६ ॥ आचार्य कहते हैं कि इस विषयमे बहुत कहनेसे क्या ? उन दोनों सेनाओंमे उस तरह युद्ध हुआ जिस तरह कि पहले स्वामीके द्वारा किये हुए सम्मान और तिरस्कारमें होता है ॥ २७ ॥

---

१ -मूर्जित म० । २. -कारिणा म० । ३. मोहबल म०, ख० । ४. सुमहास्वन म० । ५. कृत्वा मान म० । ६ राजा म० । ७ वज्रमुख म० । ८. सस्मावन म०, ब० ।

स्वामिनो दृष्टिमार्गस्था. सुभटा. कृतगर्जिता । जीवितेष्वपि विस्नेहा बभूवु. किमिहोच्यताम् ॥२८॥
तत कपिध्वजैर्योधाश्चिरकृतमहाहवा । वज्रायुधस्य निर्भग्ना क्षणान्नेशुरितस्तत: ॥२९॥
चक्रेणानिलसूनुश्च तेजोऽहरत् विद्विषाम् । ऋक्षबिम्बमिवाकाशादपातयदरे शिर ॥३०॥
सख्ये पितुर्वधं दृष्ट्वा त लङ्कासुन्दरी तदा । नियम्य कृच्छ्रत. शोकममर्षविषदूषिता ॥३१॥
जवनाश्वरथारूढा कुण्डलोद्योतितानना । शरासनायतोरस्का कुञ्चितभ्रूलतायुगा ॥३२॥
उल्केव सङ्गतादित्यतेजोमण्डलधारिणी । धूमोद्गारसमायुक्ता घनप्राग्भारवर्तिनी ॥३३॥
सरम्भवशसम्फुल्ललोहिताम्भोजलोचना । क्रूरसदष्टबिम्बोष्ठी क्रुद्धेव श्री शचीपते. ॥३४॥
अधावद्दिशुमुद्धृत्य [1]कत्थमाना मनोहरा [2] । मया श्रीशैल दृष्टोऽसि तिष्ठ ते शक्तिरस्ति चेत् ॥३५॥
अद्य ते रावण· क्रुद्धो नभश्चरमहेश्वर. । करिष्यति यदेतत्ते करोमि हतचेष्टित [3] ॥३६॥
[4]इय यमालय पाप भवन्त प्रेषयास्यहम् । दिग्मूढ इव जातस्त्वमनिष्टस्थानगोचरः ॥३७॥
तस्यास्त्वरितमायान्त्या यावच्छत्रमपातयत् । बाणेन तावदेतस्य तया चाप द्विधा कृतम् ॥३८॥
सा यावद्गृह्णीच्छक्ति तावन्मारुतिना शरै· । नभश्छन्न समायान्ती भिन्ना शक्तिश्च सान्तरे ॥३९॥
सा विद्याबलगम्भीरा वज्रदण्डसमान् शरान् । परशुकुन्तचक्राणि शतघ्नीमुशलान् [5]शिला ॥४०॥
ववर्ष वायुपुत्रस्य रथे हिमवदुन्नते । विकाले वारिणो भेदान् मेघसन्ध्या यथोन्नता ॥४१॥

जो योद्धा स्वामीकी दृष्टिके मार्गमें स्थित थे अर्थात् स्वामी जिनकी ओर दृष्टि उठाकर देखता था वे योद्धा गर्जना करते हुए प्राणोका भी स्नेह छोड़ देते थे इस विषयमे अधिक क्या कहा जाय ? ॥ २८ ॥ तदनन्तर जिन्होने चिरकाल तक बड़े-बड़े युद्ध किये थे ऐसे वज्रायुद्धके योद्धा वानरोके द्वारा क्षणभरमे पराजित होकर इधर-उधर नष्ट हो गये—भाग गये ॥ २९ ॥ और हनूमान्‌ने चक्रके द्वारा शत्रुओंका तेज हर लिया तथा नक्षत्र बिम्बके समान शत्रुका शिर काटकर आकाशसे नीचे गिरा दिया ॥ ३० ॥ युद्धमे पिताका वध देख वज्रायुधकी पुत्री लंकासुन्दरी कठिनाईसे शोकको रोककर क्रोधरूपी विषसे दूषित हो हनूमान्‌की ओर दौड़ी । उस समय वह वेगशाली घोड़ोके रथ पर बैठी थी, कुण्डलोके प्रकाशसे उसका मुख प्रकाशित हो रहा था, धनुषके समान उसका वक्षःस्थल आयत था, उसकी दोनो भृकुटियॉ टेढ़ी हो रही थीं, वह ऐसी जान पड़ती थी मानो उल्का ही प्रकट हुई हो, वह सूर्यके समान तेजका मण्डल धारण कर रही थी, धूमके उद्गारसे सहित थी, अर्थात् उसके शरीरसे कुछ कुछ धुऑ-सा निकलता दिखता था और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो मेघसमूहके बीचमे विद्यमान थी, क्रोधके कारण उसके नेत्र फूले हुए लाल कमलोके समान जान पड़ते थे, वह क्रोधसे अपना ओठ चाब रही थी, तथा ऐसी जान पड़ती थी मानो क्रोधसे भरी इन्द्रकी लक्ष्मी ही हो ॥३१-३४॥ वह देखनेमे सुन्दर थी तथा अपनी प्रशंसा कर रही थी, इस तरह धनुष पर वाण चढ़ाकर वह दौड़ी और बोली कि अरे श्रीशैल ! मैंने तुझे देख लिया है, यदि तुझमे कुछ शक्ति है तो खड़ा रह ॥३५॥ आज कुपित हुआ विद्याधरोका राजा रावण तेरा जो कुछ करेगा रे नीच ! वही मै तेरा करती हूँ ॥३६॥ यह मैं तुझ पापीको यमराजके घर भेजती हूँ, तू दिग्भ्रान्तकी तरह आज इस अनिष्ट स्थानमे आ पड़ा है ॥३७॥ वेगसे आती हुई लंकासुन्दरीका छत्र जब तक हनूमान्‌ने नीचे गिराया तब तक उसने एक बाण छोड़ कर हनूमान्‌के धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥३८॥ लंकासुन्दरी जब तक शक्ति नामक शस्त्र उठाती है तब तक हनूमान्‌ने बाणोसे आकाशको आच्छादित कर दिया और आती हुई उसकी शक्तिको बीचमें ही तोड़ डाला ॥३९॥ विद्याबलसे गम्भीर लंकासुन्दरीने हनूमान्‌के हिमालयके समान ऊँचे रथपर वज्रदण्डके समान बाण, परशु, कुन्त, चक्र, शतघ्नी, मुसल तथा शिलाएँ उस प्रकार वरसाईं जिस प्रकार कि उत्पातके समय उन्न

१. कत्थमाना म० । २. मनोहरं ख०, ज०, क० । ३. हतचेष्टितः म० । ४. इम म० । ५. शिलान् म० ।

तथा नानायुधाटोपैः सर्ववेगसमीरितैः । आच्छाद्यत महातेजाः शुचिसूर्य इवाम्बुदैः ॥४२॥
विक्रान्तः स च शस्त्रौघमनिर्विण्णोऽन्तरस्थितम् । व्यपोहत निजैः शस्त्रैः मायाविधिविशारदः ॥४३॥
शरा शरैरलुप्यन्त तोमराद्याः स्वजातिभिः । शक्तयः शक्तिभिर्नुन्ना समोल्का दूरमुद्ययुः ॥४४॥
चक्रक्रकचसंवर्तकनकाटोपपिञ्जरम् । बभूव भीषणं व्योम विद्युद्भिरिव सङ्कुलम् ॥४५॥
ततः लङ्कासुन्दरी भूयो रूपेणालब्धसन्निभा । धीरा स्वभावतो राजन् लक्ष्मीः कमललोचना ॥४६॥
ज्ञानध्यानहरैः कान्तैर्दुर्द्धरैर्गुणसन्नतैः । लावण्याहतसौन्दर्यैर्मनोऽन्तर्भेदकोविदैः ॥४७॥
नेत्रचापविनिर्मुक्तैर्विव्यधे स्मरसायकैः । तथेतरधनुर्मुक्तैः शरैराकर्णसंहतैः ॥४८॥
विस्मये जगतः शक्ता सौभाग्यगुणगर्विता । तस्यालसक्रियस्यैव प्रविष्टा हृदयोदरम् ॥४९॥
शरशक्तिशतघ्नीभिर्न तथा समपीड्यत । यथा मदनबाणौघैर्मर्मदारणकारिभिः ॥५०॥
इयं मनोहराकारा ललितैर्विशिखैरपि । सबाह्याभ्यन्तरं हन्ति मामित्येवमचिन्तयत् ॥५१॥
वरमस्मिन् मृधे मृत्युः पूर्यमाणस्य सायकैः । अनया विप्रयुक्तस्य जीवितं न सुरालये ॥५२॥
चिन्तयत्येवमेतस्मिन् साप्यनङ्गेन चोदिता । त्रिकूटसुन्दरी कन्या करुणासक्तमानसा ॥५३॥
विकस्वरमनोदेहं तं पद्मच्छदलोचनम् । अबालेन्दुमुखं बालं किरीटन्यस्तवानरम् ॥५४॥
मूर्तियुक्तमिवानङ्गं सुन्दरं वायुनन्दनम् । हन्तुं समुद्यता शक्तिं सञ्जहार त्वरावती ॥५५॥

मेघावली नाना प्रकारके जल बरसाती है ॥४०–४१॥ उसके पूर्ण वेगसे छोड़े हुए नाना प्रकारके शस्त्र समूहसे महातेजस्वी हनूमान् उस तरह आच्छादित हो गया जिस प्रकार कि मेघोंसे आषाढ़का सूर्य आच्छादित हो जाता है ॥४२॥ इतना सब होने पर भी खेदसे रहित, पराक्रमी एवं मायाके विस्तारमें निपुण हनूमान्‌ने अपने शस्त्रोंके द्वारा उसके शस्त्र समूहको बीचमें ही दूर कर दिया ॥४३॥ उसके बाण बाणोंसे लुप्त हो गये, तोमर आदि तोमर आदिके द्वारा, तथा शक्तियाँ शक्तियोंके द्वारा खण्डित होकर उल्काओंके समान दूर जा गिरीं ॥४४॥ चक्र, क्रकच, संवर्तक तथा कनक आदिके विस्तारसे पीतवर्ण आकाश ऐसा भयंकर हो गया मानो बिजलियोंसे ही व्याप्त होगया हो ॥४५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! तदनन्तर रूपसे अनुपम, स्वभावसे धीर, कमललोचना, लक्ष्मीके समान लंकासुन्दरी, नेत्ररूपी धनुषसे छोड़े हुए कामके बाणों अर्थात् कटाक्षोंसे हनूमान्‌को उधर जुदा भेद रही थी और इधर अन्य धनुषसे छोड़े तथा कान तक खींचे हुए बाणोंसे जुदा भेद रही थी। लङ्कासुन्दरीके वे कामबाण, ज्ञान-ध्यानके हरनेवाले थे, मनोहर थे, दुर्धर थे, गुणोंसे युक्त थे, लावण्यके द्वारा सौन्दर्यको हरनेवाले थे, और मनके भीतर भेदनेमें निपुण थे ॥४६–४८॥ इस तरह जगत्‌को आश्चर्य करनेमें समर्थ तथा सौभाग्यरूपी गुणसे गर्वित लंकासुन्दरी हनूमान्‌के हृदयके भीतर प्रविष्ट होगई ॥४९॥ वह हनूमान्, बाण, शक्ति तथा शतघ्नी आदि शस्त्रोंसे उस प्रकार पीड़ित नहीं हुआ था जिस प्रकार कि सूर्यको विदारण करनेवाले कामके बाणोंसे पीड़ित हुआ था ॥५०॥ हनूमान् विचार करने लगा कि यह मनोहराकार की धारक, अपनी ललित चेष्टा रूपी बाणोंसे मुझे भीतर और बाहर दोनों ही स्थानों पर घायल कर रही है ॥५१॥ इस युद्धमें बाणोंसे भरकर मर जाना अच्छा है किन्तु इसके बिना स्वर्गमें भी जीवन बिताना अच्छा नहीं है ॥५२॥ इधर इस प्रकार हनूमान् विचार कर रहा था उधर जिसका मन दयामें आसक्त था तथा जो त्रिकूटाचलकी अद्वितीय सुन्दरी थी ऐसी कन्या लंका सुन्दरीने कामसे प्रेरित हो, देदीप्यमान मन तथा शरीरके धारक, कमलदललोचन, तरुण चन्द्रवदन, मुकुट पर वानरका चिह्न धारण करनेवाले, नवयौवनसे युक्त एवं मूर्तिधारी कामदेवके समान सुन्दर हनूमान्‌को मारनेके लिए उठाई हुई शक्ति

१. आषाढमाससूर्य इव । २. राजलक्ष्मीः म० । ३. त्वरावता म० ।

दध्यौ च मारयाम्येतं कथं दोषमपि श्रितम् । रूपेणानुपमानेन छिन्ते मर्माणि यो मम ॥५६॥
यद्यनेन समं सक्ता कामभोगोदयद्युतिम्[1] ।न निषेवे च लोकेऽस्मिन् ततो मे जन्म निष्फलम् ॥५७॥
अतः सत्पथमुद्दिश्य स्वनामाङ्कं हनूमते । प्रजिघाय शरं मुग्धा विह्वलेनान्तरात्मना ॥५८॥
पराजिता त्वया नाथ साहं मन्मथसायकैः । सुरैरपि न या शक्या जेतुं सङ्घातवर्तिभिः ॥५९॥
[2]प्रवाच्य मारुतिर्बाणमङ्कं स्वैरमुपागतम् । धृतिं परां परिप्राप्तो रथादरमवातरत् ॥६०॥
उपसृत्य च तां कन्यां मृगेन्द्रसमविक्रमः । कृत्वाङ्के गाढमालिङ्गत् कामो रतिमिवापराम् ॥६१॥
अथ [3]प्रशान्तवैरासावस्रदुर्दिनलोचना । तातप्रयाणशोकार्ता जगदे वायुसूनुना ॥६२॥
मा रोदीः सौम्यवक्त्रे[4] त्वमलं शोकेन भामिनि । विहिता गतिरेषैव क्षात्रधर्मे सनातने ॥६३॥
ननु ते ज्ञातमेवैतद्यथा राज्यविधौ स्थिताः । पित्रादीनपि निघ्नन्ति नराः कर्मबलेरिताः ॥६४॥
वृथा रोदिषि किन्त्वेतद्ध्यानमार्तं विवर्जय । अस्मिन् हि सकले लोके विहितं भुज्यते प्रिये ॥६५॥
निहितोऽयमनेनेति द्विडत्र व्याजमात्रकम् । आयुःकर्मानुभावेन प्राप्तकालो विपद्यते ॥६६॥
वचोभिरेभिरन्यैश्च मुक्तशोका व्यराजत । सहिता वातिना[5] यद्वदिन्दुना निर्घना निशा ॥६७॥
प्रेमनिर्झरपूर्णेन तयोरालिङ्गनेन सः । सङ्ग्रामजः श्रमो दूरमथायात सुचेतसोः ॥६८॥

शीघ्र ही संहृत करली—पीछे हटा ली ॥ ५३-५५ ॥ वह विचार करने लगी कि यद्यपि यह पिताके मारनेसे दोषी है तो भी जो अनुपम रूपसे मेरे मर्मस्थान विदार रहा है ऐसे इसे किस प्रकार मारूँ ? ॥ ५६ ॥ यदि इसके साथ मिलकर कामभोगरूपी अभ्युदयका सेवन न करूँ तो इस लोकमे मेरा जन्म लेना निष्फल है ॥ ५७ ॥ तदनन्तर विह्वल मनसे मुग्ध उस लंकासुन्दरीने समीचीन मार्गके उद्देश्यसे अपने नामसे अंकित एक बाण हनूमान्के पास भेजा ॥ ५८ ॥ उस बाणमे उसने यह भी लिखा था कि हे नाथ ! जो मैं इकट्ठे हुए देवोंके द्वारा भी नहीं जीती जा सकती थी वह मैं, आपके द्वारा कामके बाणोसे पराजित हो गई ॥ ५९ ॥ गोदमे आये हुए उस बाणको अच्छी तरह बाँच कर परम धैर्यको प्राप्त हुआ हनूमान् शीघ्र ही रथसे उतरा ॥ ६० ॥ और उसके पास जाकर सिंहके समान पराक्रमी हनूमान्ने उसे गोदमे बिठा उसका ऐसा गाढ आलिङ्गन किया मानो कामदेवने दूसरी रतिका ही आलिङ्गन किया हो ॥ ६१ ॥

तदनन्तर जिसका बैर शान्त हो गया था, जिसके नेत्रोंसे दुर्दिनकी भाँति अविरल अश्रुओकी वर्षा हो रही थी तथा जो पिताके मरण-सम्बन्धी शोकसे पीड़ित थी ऐसी उस लंकासुन्दरीसे हनूमान्ने कहा ॥ ६२ ॥ कि हे सौम्यमुखि ! रोओ मत । हे भामिनि ! शोक करना व्यर्थ है । सनातन क्षत्रिय धर्मकी तो यही रीति है ॥ ६३ ॥ यह तो तुम्हें विदित ही है कि राजकार्यमें स्थित मनुष्य, कर्मबलसे प्रेरित हो पिता आदिको भी मार डालते है ॥ ६४ ॥ व्यर्थ ही क्यो रोती हो ? इस आर्तध्यानको छोड़ो । हे प्रिये ! इस समस्त संसारमे अपना किया हुआ ही सब भोगते हैं अर्थात् जो जैसा करता है वैसा भोगता है ॥ ६५ ॥ 'यह शत्रु इसके द्वारा मारा गया' यह कहना तो छलमात्र है यथार्थमे तो आयुकर्मके प्रभावसे समय पाकर यह जीव मरता है ॥ ६६ ॥ इस प्रकार इन तथा अन्य वचनोंसे जिसका शोक छूट गया था ऐसी लंकासुन्दरी हनुमान् के साथ इस प्रकार सुशोभित हो रही थी जिस प्रकार कि मेघरहित रात्रि चन्द्रमाके साथ सुशोभित होती है ॥६७॥ तदनन्तर उत्तम हृदयके धारक उन दोनोंका संग्रामसे उत्पन्न हुआ श्रम, प्रेमरूपी निर्झरसे परिपूर्ण आलिङ्गनके द्वारा दूर भाग गया ॥६८॥

१. द्युतिः म० । कामभोगादय द्युतिम् ज० । २. प्रोवाच म० । ३. प्रशान्तवैरा + असौ + अस्रदुर्दिन । ४. सौम्यवस्त्रे म० । ५. वातस्यापत्य पुमान् वातिः, तेन हनूमता ।

ततो यत्र नभोदेशे स्तम्भिन्या विद्यया खगा । स्तम्भिता बलमत्रैव रचितावासमाश्रितम् ॥६९॥
सन्ध्यारक्ताभ्रसङ्काशं गीर्वाणनगरोपमम् । श्रीशैलस्य तदत्यन्तं शिविरं पर्यराजत ॥७०॥
गजवाजिविमानस्था रथस्थाश्च महानृपा । तत्पुरं ध्वजमालाढ्यं विविशुः पृष्टवातयः ॥७१॥
स्थितास्तत्र यथान्यायं लब्धोत्साहसमुत्सवाः । कथाभिरतिचित्राभिः शूरसङ्ग्रामजन्मभिः ॥७२॥
अथ तं त्वरितात्मानं वार्तिं गन्तुं समुद्यतम् । बाला विश्रब्धमप्राक्षीदिति प्रेमपरायणा ॥७३॥
विविधागोभिरापूर्णं श्रुतदुःसहविक्रमः । कान्त लङ्कां किमर्थं त्वं वद गन्तुं समुद्यतः ॥७४॥
तस्यै जगाद वृत्तान्तमशेषं वायुनन्दनः । कृत्यं प्रत्युपकारस्य बान्धवैरनुमोदितम् ॥७५॥
सीतया सह रामस्य भद्रे[1] भद्रसमागमः । हृतया राक्षसेन्द्रेण कर्तव्यः सर्वथा मया ॥७६॥
साऽब्रवीत् समतिक्रान्तं सौहार्दं तत्पुरातनम् । श्रद्धास्नेहक्षये नष्टा प्रदीपस्य यथा शिखा ॥७७॥
आसीद् [2]रथ्योपशोभाढ्यां ध्वजमालाकुलीकृताम् । प्राविशदादृतो लङ्कां भवान् दिवमिवामरः ॥७८॥
अधुना त्वयि दोषाढ्ये रावणश्चण्डशासनः । प्रकाशं व्रजति क्रोधं गृहीष्यति न संशयः ॥७९॥
यदोपलभ्यते चार्वी विशुद्धिः कालदेशयोः । विशुद्धात्मानमव्यग्रं तदा तं द्रष्टुमर्हसि ॥८०॥
एवमेवेति सोऽवोचद्यद्ब्रवीषि विचक्षणे । आकूतं तस्य विज्ञातुं गत्वा वाञ्छामि सुन्दरि ॥८१॥
कीदृशी वा सती सीता रूपेण प्रथिता भवेत् । चालितं मेरुवद्धीरं रावणस्य मनो यया ॥८२॥

तदनन्तर स्तम्भिनी विद्याके द्वारा आकाशके जिस प्रदेशमे विद्याधर रोक दिये गये थे प्रदेशमें आवास बनाकर वह सेना ठहराई गई ॥६९॥ सन्ध्याके रक्त मेघके समान दिखनेवाला उसी हनूमान्का वह शिविर देवनगरके तुल्य अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥७०॥ उस सेनामें जो बड़े-बड़े राजा थे उन्होंने हनूमान्से पूछकर हाथियों, घोड़ों, विमानों तथा रथोंपर सवार हो ध्वजाओंके समूहसे युक्त उस नगरमें प्रवेश किया ॥७१॥ वे शूर-वीरोंके सग्रामसे उत्पन्न नाना प्रकारकी कथाएँ करते हुए उस नगरमें उत्साह और उल्लासको प्राप्तकर यथायोग्य ठहरे ॥७२॥

अथानन्तर जिसका मन शीघ्रतासे युक्त था ऐसे हनूमान्को जानेके लिए उद्यत देख प्रेमसे भरी लङ्कासुन्दरीने एकान्तमे उससे पूछा कि ॥७३॥ हे नाथ! आप रावणके दुःसह पराक्रमकी बात सुन चुके हैं और स्वयं नाना अपराधोंसे परिपूर्ण है फिर किसलिए लंका जानेको उद्यत है सो तो कहो ॥७४॥ इसके उत्तरमें हनूमान्ने उसे सब वृत्तान्त कहा और यह बताया कि प्रत्युपकारका करना बन्धुजनोंके द्वारा अनुमोदित है ॥७५॥ हे भद्रे! राक्षसोंका इन्द्र रावण सीताको हर ले गया है सो उसके साथ रामका समागम मुझे अवश्य कराना है ॥७६॥ यह सुन लंकासुन्दरीने कहा कि रावणके साथ आपका जो पुराना सौहार्द था वह नष्ट हो चुका है जिस प्रकार नेत्रके नष्ट हो जानेसे दीपकी शिखा नष्ट हो जाती है उसी प्रकार आपके प्रति श्रद्धाके नष्ट हो जानेसे रावणका सौहार्द नष्ट हो गया है ॥७७॥ एक समय था कि जब आपमार्गोंकी शोभासे युक्त तथा ध्वजाओंकी पंक्तिसे अलंकृत लङ्कामे बड़े आदरके साथ उस तरह प्रवेश करते थे जिस तरह कि देव स्वर्गमे प्रवेश करता है ॥७८॥ परन्तु आज आप अपराधी होकर यदि लंकामे प्रकट रूपसे जाते हैं तो कठोर शासनको धारण करनेवाला रावण आपपर क्रोध ग्रहण करेगा इसमें संशय नहीं है ॥७९॥ अतः जिस समय देश और कालकी उत्तम शुद्धि-अनुकूलता प्राप्त हो तथा रावणका हृदय शुद्ध एव व्यग्रता रहित हो उस समय उसका साक्षात्कार करना योग्य है ॥८०॥ इसके उत्तरमें हनूमान्ने कहा कि विदुषि! तुमने जैसा कहा है यथार्थमें वैसा ही है। किन्तु हे सुन्दरि! मैं रावणका अभिप्राय जानना चाहता हूँ ॥८१॥ और यह भी देखना चाहता हूँ कि वह

१. भद्रे म० । २. रम्योपशोभाढ्या म० ।

एवमुक्त्वा मरुत्पुत्रस्तद्विन्यस्तमहाबलः । तया मुक्तो विवेकिन्या त्रिकूटाभिमुखं ययौ ॥८३॥

दोधकवृत्तम्

चित्रमिदं परमत्र नृलोके, यत्परिहाय भृशं रसमेकम् ।
तत्क्षणमेव विशुद्धशरीरं जन्तुरुपैति रसान्तरसङ्गम् ॥८४॥
कर्मविचेष्टितमेतदमुष्मिन् किन्त्वथवाद्भुतमस्ति निसर्गे ।
सर्वमिदं स्वशरीरनिबद्धं दक्षिणमुत्तरतश्च रवीहा[1] ॥८५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनूमल्लङ्कासुन्दरीकन्यालाभाभिधानं नाम द्विपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५२॥

सती सीता कैसी रूपवती है कि जिसने मेरुके समान धीर, वीर रावणका मन विचलित कर दिया है ॥८२॥ इस प्रकार कहकर तथा अपनी सेना उसीके पास छोड़कर हनूमान् उस विवेकवतीसे छूटकर त्रिकूटाचलकी ओर चला ॥८३॥

गौतम स्वामी कहते है कि हे राजन् ! इस संसारमे यह परम आश्चर्यकी बात है कि प्राणी एक रसको छोड़कर उसी क्षण विशुद्ध रूपको धारण करनेवाले दूसरे रसको प्राप्त हो जाता है ॥८४॥ सो इस ससारमे यह प्राणियोंके कर्मकी ही अद्भुत चेष्टा है। जिस प्रकार सूर्यकी गति कभी दक्षिण दिशाकी ओर होती है और कभी उत्तर दिशाकी ओर। उसी प्रकार प्राणियोंके शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाला यह सब व्यवहार कर्मकी चेष्टानुसार कभी इस रसरूप होता है और कभी उस रसरूप होता है ॥८५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमे हनूमान्‌की लंका-सुन्दरी कन्याकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला बावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५२॥

---

१. चरती हो म०, ब० ।

त्रिपञ्चाशत्तमं पर्व

मगधेन्द्र ततो वाति प्रभावोदयसङ्गत । लङ्का विवेश नि शङ्क स्वल्पानुगसमन्वित ॥१॥
द्वारे च रचिताभ्यर्चे विभीषणनिकेतनम् । विवेश योग्यमेतेन सम्मान च समाहृत ॥२॥
तत स्थित्वा क्षण किञ्चित् सस्पृष्टाभि' परस्परम् । वार्ताभिरिति सद्वाक्य व्याजहार मरुत्सुत ॥३॥
उचित किमिद कर्तुं [1]यद्वास्याद्धूपति. स्वयम् । कुरुते क्षुद्रवत्कश्चिच्चोरण परयोषित ॥४॥
मर्यादाना नृपो मूलमापगाना यथा नग । अनाचारे स्थिते तस्मिन् लोकस्तत्र प्रवर्तते ॥५॥
ईदृशे चरिते कृत्ये सर्वलोकविनिन्दिते । सहनीय समस्ताना दु.खमेष्यति नो ध्रुवम् ॥६॥
तत् क्षेमङ्करमस्माक हिताय जगता तथा । उच्यता रावण शीघ्र वचो न्यायानुपालकम् ॥७॥
यथा किल द्वये लोके निन्दनीय विचेष्टितम् । मा कार्षी जगतो नाथ कीर्तिविध्वसकारणम् ॥८॥
विमलं चरित लोके न केवलमिहेष्यते । किन्तु गीर्वाणलोकेऽपि रचिताञ्जलिभिः सुरैः ॥९॥
[2]कैकसीनन्दनोऽवोचद् बहुशोऽभिहितो मया । तत. प्रभृति नैवासौ मया सम्भाषते समम् ॥१०॥
तथापि भवतो वाक्यान् श्व समेत्य नरेश्वरम् । वक्तास्मि किन्तु दु'खेन [3]त्यक्ष्यत्येतदसौ ग्रहम् ॥११॥
अहोऽद्यैकादश जात सीताया [4]वल्यनोज्झने । तथापि विरति. काचिल्लङ्केन्द्रस्य न जायते ॥१२॥
तच्छ्रुत्वा वचन सद्य. महाकारुण्यसङ्गत । प्रमदाह्वयमुद्यान मारुतिर्गन्तुमुद्यत ॥१३॥
अपश्यच्च लताजालैस्तत्र[5]वैराकुलीकृतम् । अरुणै पल्लवैः व्याप्त वरस्त्रीकरचारुभि. ॥१४॥

अथानन्तर-गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मगधराज ! प्रभाव और अभ्युदयसे सहित तथा स्वल्प अनुचरोंसे युक्त हनूमान्ने निःशङ्क होकर लङ्कामे प्रवेश किया ॥१॥ वहाँ जिसके द्वारपर सत्कार किया गया था ऐसे विभीषणके महलमे प्रवेश किया और विभीषणने यथायोग्य उनका सन्मान किया ॥२॥ तदनन्तर वहाँ परस्पर इधर-उधरकी कुछ वार्ताएँ करते हुए क्षण भर ठहर कर हनूमान्ने इस प्रकारके सद्वचन कहे कि तीन खण्डका अधिपति किसी क्षुद्र मनुष्यकी तरह पर-स्त्रीकी चोरी करता है सो क्या ऐसा करना उचित है ? ॥३-४॥ जिस प्रकार पर्वत नदियोका मूल है उसी प्रकार राजा मर्यादाओका मूल है। यदि राजा स्वय अनाचारमे स्थित रहता है तो उसकी प्रजा भी अनाचारमे प्रवृत्ति करने लगती है ॥५॥ फिर ऐसा कार्य तो सर्वलोक विनिन्दित है—सब लोगोकी निन्दाका पात्र है। इसके करने पर सब लोगोको दुःख सहन करना पड़ता है और हम लोगोको तो निश्चित ही दु ख प्राप्त होता है ॥६॥ इसलिए हम सबके कल्याणके लिए तथा जगत्के हितके लिए शीघ्र ही रावणसे ऐसे वचन कहिये जो न्यायकी रक्षा करनेवाले हो ॥७॥ उन्हें बतलाइये कि हे जगत्के नाथ ! दोनो लोकोंमे निन्दनीय तथा कीर्तिको नष्ट करनेवाली चेष्टा मत कीजिये ॥८॥ निर्मल-निर्दोष चरित्रकी न केवल इस लोकमे चाह है अपितु स्वर्गलोकमे देव भी हाथ जोड़कर उसकी चाह करते है ॥९॥

तदनन्तर विभीषणने कहा कि मैंने रावणसे अनेक बार कहा है पर वह उस समयसे मेरे साथ बात ही नहीं करता है॥१०॥फिर भी आपके कहनेसे मै कल राजाके पास जाकर कहूँगा किन्तु यह निश्चित है कि वह बड़े दुःखसे ही इस हठको छोड़ेगा ॥११॥ यद्यपि आज सीताको आहार पानी छोड़े ग्यारहवाँ दिन है तथापि लङ्काधिपतिको कुछ भी विरति है—इस कार्यसे रञ्चमात्र भी विरक्तता नहीं है ॥१२॥ विभीषणके यह वचन सुन महा दयाभावसे युक्त हनूमान् प्रमदोद्यानमें जानेके लिए उद्यत हुआ ॥१३॥ जाकर उसने उस प्रमदोद्यानको देखा जो कि नई-नई लताओंके

१. त्रिखण्डभरताधिपः । २. विभीषणः । ३. त्यज्यते न ह्यसौ म० । ४. बल्लभोज्झने म० । ५. स्तत्र वैराकुलीकृतम् म० ।

भ्रमरप्रावृतैर्गुच्छैः सुजातैर्बद्धशेखरम् । फलैरानतशाखाग्रं किञ्चित् पवनकम्पितम् ॥१५॥
पद्मादिच्छादितैः स्वच्छैः सरोभिः सदलङ्कृतम् । भासुरं कल्पवल्लीभिः सङ्गताभिर्महातरुम् ॥१६॥
गीर्वाणकुरुदेशाभं प्रसूनरजसावृतम् । नन्दनस्य दधत्साम्यमनेकाद्भुतसङ्कुलम् ॥१७॥
ततो लीलां वहन् रम्यां वायू राजीवलोचनः । विवेश परमोद्यानं सीतादर्शनकाङ्क्षया ॥१८॥
प्रणिधाय च सर्वासु दिक्षु चक्षुरतित्वरम् । विविधद्रुमदेशेषु गहनेषु दलाद्भिः ॥१९॥
दृष्ट्वा च दूरतः सीतामन्यदर्शनवर्जितः । अचिन्तयदसौ सैषा रामदेवस्य सुन्दरी ॥२०॥
स्निग्धज्वलनसङ्काशा वाष्पपूरितलोचना । करविन्यस्तवक्त्रेन्दुर्मुक्तकेशी कृशोदरी ॥२१॥
अहो रूपमिदं लोके जिताशेषमनोहरम् । परमां ख्यातिमायातं सत्यवस्तुनिबन्धनम् ॥२२॥
[1]रहिता शतपत्रेण नास्या लक्ष्मीः समा भवेत् । दुःखार्णवं गताप्येषा सदृशी नान्ययोषिता ॥२३॥
निपत्य शिखरादद्रेरस्य मृत्युमुपैम्यहम् । विरहे पद्मनाभस्य धारयामि न जीवितम् ॥२४॥
कृतप्रचिन्तनामेव वैदेहीं पवनात्मजः । निःशब्दपादसम्पातः प्राप्तो रूपान्तरं दधत् ॥२५॥
ततोऽङ्गुलीयकं तस्या विससर्जाङ्कवाससि । सहसा सा तमालोक्य स्मेराऽभूत्पुलकाचिता ॥२६॥
[2]तस्यामेवमवस्थायां गत्वा नार्यस्त्वरान्विताः । तोषादवर्धयन् दिष्ट्या रावणं तत्परायणम् ॥२७॥

समूहसे व्याप्त था, उत्तम स्त्रियोंके हाथोंके समान सुन्दर लाल-लाल पल्लवोंसे युक्त था, भ्रमरोंसे आच्छादित सुन्दर गुच्छोंके द्वारा जिस पर सेहरा बँध रहा था, जहाँ फलोंके भारसे शाखाओंके अग्रभाग नम्रीभूत हो रहे थे, जो वायुके द्वारा कुछ-कुछ हिल रहा था, कमल आदिसे आच्छादित स्वच्छ सरोवरोंसे जो अलकृत था, जो बड़े-बड़े वृक्षोंसे लिपटी हुई कल्पलताओंसे देदीप्यमान था, जो देवकुरु प्रदेशके समान जान पड़ता था, फूलोंकी परागसे आवृत था, अनेक आश्चर्योंसे व्याप्त था तथा नन्दनवनकी समानता धारण कर रहा था ॥१४-१७॥ तदनन्तर मनोहर लीलाको धारण करता हुआ कमल लोचन हनूमान् सीताके दर्शनकी इच्छासे उस उत्कृष्ट उद्यानमे प्रविष्ट हुआ ॥१८॥ वहाँ जाकर उसने शीघ्र ही समस्त दिशाओंमे तथा पल्लवों आदिसे सघन नाना वृक्षोंके समूहमे दृष्टि डाली ॥१९॥ वहाँ दूरसे ही सीताको देखकर वह अन्य वस्तुओंके दर्शनसे रहित हो गया अर्थात् उसी ओर टकटकी लगाकर देखता रहा। तदनन्तर उसने विचार किया कि वह रामदेवकी सुन्दरी यही है ॥२०॥ यह स्निग्ध अग्निके समान है, इसके नेत्र आँसुओंसे भर रहे है, वह हथेलीपर मुखरूपी चन्द्रमाको रखे हुई है, केश इसके खुले हुए है तथा उदर इसका अत्यन्त कृश है ॥२१॥ उसे देखकर हनूमान् विचार करने लगा कि अहो! लोकमे इसका रूप समस्त मनोहर पदार्थोंको पराजित करने वाला है, परम ख्यातिको प्राप्त है तथा सत्य वस्तुओंका कारण है ॥२२॥ कमलसे रहित लक्ष्मी अर्थात् कमलसे निकली हुई साक्षात् लक्ष्मी इसकी बराबरी नहीं कर सकती। अहो! यह दुःखरूपी सागरमें निमग्न है तो भी अन्य स्त्रियोंके समान नहीं है ॥२३॥ वह इस प्रकार विचार कर रही थी कि मैं इस पर्वतके शिखरसे गिरकर मृत्युको प्राप्त कर सकती हूँ परन्तु रामके विरहमे जीवन नहीं धारण करूँगी ॥२४॥ इस प्रकार विचार करती हुई सीताके पास, हनूमान् चुपचाप पैर रखता हुआ दूसरा रूप धारण कर गया ॥२५॥

तदनन्तर हनूमान्‌ने सीताकी गोदके वस्त्रपर अंगूठी छोड़ी उसे देखकर वह सहसा हँस पड़ी तथा रोमाञ्चोंसे युक्त हो गई ॥२६॥ सीताकी ऐसी अवस्था होनेपर वहाँ जो स्त्रियाँ थीं उन्होने शीघ्रतासे जाकर सीताका समाचार जाननेमे तत्पर रहनेवाले रावणको शुभ समाचार

---

१. हरिता ख० । २. तस्यामेवावस्थाया म० ।

सन्तुष्टोऽङ्गगत ताभ्यो वस्त्ररत्नादिकं ददौ । श्रुत्वा स्मेरानना सीता सिद्धं कार्यं विचिन्तयन् ॥२८॥
विधातु महिमानं च किञ्चिदादिशदुत्सुकः । सुधापूरमिव प्राप्तः समुल्लासधरे हृदि ॥२९॥
स्वनाथवचनात् साध्वी सर्वान्त पुरसयुता । गता मन्दोदरी शीघ्रं यत्रासौ जनकात्मजा ॥३०॥
विकचास्यद्युति सीता दृष्ट्वा मन्दोदरी चिरात् । जगौ बाले त्वयाऽस्माकं परमोऽनुग्रहः कृत ॥३१॥
अधुना भज लोकेश रावणं शोकवर्जिता । सुराणा श्रीरिवाधीशं लब्धनि शेषसम्पदम् ॥३२॥
इत्युक्ता कुपितावोचद्यदीदं भवतीरितम् । पद्म. खेचरि जानाति म्रियते ते पतिर्ध्रुवम् ॥३३॥
वार्ता समागता भर्तुरिति तोषमुपागता । अकार्षं वदनं स्मेरं भजन्ती परमां धृतिम् ॥३४॥
इति ता वचनं श्रुत्वा राक्षसेशस्य योषित । ऊचु क्षुन्नववातेन लपत्येषेति सस्मिता ॥३५॥
ततः श्रेणिक वैदेही नितान्त तुङ्गया गिरा । परमं विस्मयं प्राप्ता जगादैव समुत्सुका ॥३६॥
गताया व्यसनं घोरमब्धिद्वीपे महाभये । कोऽयं सन्निहित साधुर्बन्धुभूतोऽतिवत्सलः ॥३७॥
ततो नभस्वत सूनुरेवमर्थितदर्शन । अभिप्रायमिमं चक्रे साधुतायुक्तमानसः ॥३८॥
परार्थं य पुरस्कृत्य पुन स्वं विनिगूहति । सोऽतिभीरुतयात्यन्त जायते निकृतो नर. ॥३९॥
परमापदि सीदन्त जन [१]सन्धारयन्ति ये । अनुकम्पनशीलाना तेषां जन्म सुनिर्मलम् ॥४०॥
हानि पुरुषकारस्य न चात्मनि निदर्शिते । प्रकाश्ये गुरुता याति जगति श्रीर्यशस्विनी ॥४१॥

सुना हर्षसे वृद्धिगत किया ॥२७॥ रावणने सन्तुष्ट होकर उन स्त्रियोंके लिए अपने शरीरपर स्थित वस्त्र तथा रत्न आदिक दिये और सीताको प्रसन्नमुखी सुन अपना कार्य सिद्ध हुआ समझा ॥२८॥ उसके हृदयमे इतना उल्लास हुआ मानो अमृतके पूरको ही प्राप्त हुआ हो। उसी समय उसने उत्सुक हो अनिर्वचनीय उत्सव करनेका आदेश दिया ॥२९॥ अपने पतिके कहनेसे पतिव्रता मन्दोदरी भी समस्त अन्त पुरके साथ शीघ्र ही वहाँ गई जहाँ सीता विद्यमान थी ॥३०॥ बहुत दिन बाद आज जिसके मुखकमलकी कान्ति विकसित हो रही थी ऐसी सीताको देख मन्दोदरीने कहा कि हे बाले! आज तूने हम सब पर बड़ा अनुग्रह किया है ॥३१॥ जिस प्रकार समस्त सम्पदाओसे युक्त देवेन्द्रकी लक्ष्मी सेवा करती है उसी प्रकार तू भी अब शोक रहित हो जगत्पति रावणकी सेवा कर ॥३२॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर सीताने कुपित होकर कहा कि हे विद्याधरि! यदि तेरा यह कहना राम जान पावे तो तेरा पति निश्चित ही मारा जावे ॥३३॥ आज मेरे भर्ताका समाचार आया है इसलिए सन्तोषको प्राप्त हो परम धैर्यको प्राप्त हुई हूँ और इसीलिए मैने मुखको मन्दहास्यसे युक्त किया है ॥३४॥ सीताके यह वचन सुनकर रावणकी स्त्रियाँ कहने लगी कि क्षुधाके कारण इसे वायुरोग हो गया है इसीलिए यह हँसती हुई ऐसा बक रही है ॥३५॥ गौतम स्वामी कहते है कि हे श्रेणिक! इसके बाद परम आश्चर्यको प्राप्त हुई सीताने अत्यन्त उत्सुक हो अतिशय उच्च वाणीमे इस प्रकार कहा कि जो समुद्रके भीतर विद्यमान महाभयदायक इस द्वीपमें कष्टको प्राप्त हुई है ऐसा मेरा कौन स्नेही उत्तम बन्धु यहाँ निकट आया है ॥३६-३७॥

तदनन्तर जिसके दर्शनकी प्रार्थनाकी गई थी तथा जिसका मन सज्जनतासे युक्त था ऐसे हनूमान्ने इस प्रकार विचार किया कि ॥३८॥ जो मनुष्य दूसरेका कार्य आगेकर अर्थात् पहलेसे स्वीकृतकर फिर अपने आपको छिपाता है वह अत्यन्त भीरु होनेके कारण नीच मनुष्य होता है ॥३९॥ और जो आपत्तिमे पड़े हुए दूसरे मनुष्यको आलम्बन देते हैं उन दयालु मनुष्योंका जन्म अत्यन्त निर्मल होता है ॥४०॥ इसके सिवाय अपने आपको प्रकटकर देनेमे पुरुषत्वकी कुछ हानि भी तो नही मालूम होती अपितु प्रकटकर देनेपर यशस्विनी लक्ष्मी संसारमे गौरवको प्राप्त होती है ॥४१॥ तदनन्तर हनूमान् भामण्डलकी नौई हजारो उत्तम स्त्रियोके बीच

१. साधारयन्ति म०, ख० ।

साहमस्यामवस्थायां निमग्ना कपिलक्षण । तुष्टा किं ते प्रयच्छामि हतेन विधिनान्विता ॥५८॥
ऊचे च वायुपुत्रेण दर्शनेनैव ते शुभे । अद्य मे सुलभं सर्वं जातं जगति पूजिते ॥५९॥
ततो मुक्ताफलस्थूलबाष्पबिन्दुचिताधरा । सीता श्रीरिव दुःखार्ता पप्रच्छ कपिलक्षणम् ॥६०॥
मकरग्राहनक्रादिक्षोभितं भीममर्णवम् । भद्र दुस्तरमुल्लङ्घ्य विस्तीर्णं कथमागतः ॥६१॥
अवस्था वा गतामेतां कार्यसंसिद्धिमागताम् । किमर्थं मामिहागत्य नयस्याश्वासमुत्तमम् ॥६२॥
लावण्यद्युतिरूपाढ्यः कान्तिसागरसंवृतः । श्रिया कीर्त्या च संयुक्तः प्रियो मे भद्र बान्धवः ॥६३॥
प्रदेशे स त्वया कस्मिन् प्राणनाथो[1] ममेक्षितः । सत्यं जीवति सद्रोऽत्र कच्चिल्लक्ष्मणसङ्गतः ॥६४॥
किं नु दुःखेचरैः संख्ये भीमैः व्यापादितोऽनुजः[2] । लक्ष्मणेनैव तुल्यः स्यात्पद्म पद्माभलोचनः ॥६५॥
किं वा मद्विरहादुग्रदुःखं नाथ समाश्रितः । संदिश्य भवतः किञ्चिद्वने लोकान्तरं गतः ॥६६॥
जिनेन्द्रविहिते मार्गे निःशेषग्रन्थवर्जितः । [3]तपस्यन् किमसावास्ते भवनिर्वेदपण्डितः ॥६७॥
शिथिलीभूतनिःशेषशरीरस्य वियोगतः । अङ्गुलीतश्च्युतं प्राप्तं त्वया स्यादङ्गुलीयकम् ॥६८॥
त्वया सह परिज्ञातिर्नासीदेव मम प्रभोः । कार्येण रहितः प्राप्तः कथं त्वं तस्य मित्रताम् ॥६९॥
न च प्रत्युपकाराय शक्ता तुष्टाप्यहं तव । अङ्गुलीयकमेतच्च समानीतं कृपावता ॥७०॥
एतत्सर्वं मम भ्रातः समाचक्ष्व विशेषतः । सत्येन श्रावितः पित्रोर्देवस्य च मनोजुषः[4] ॥७१॥
इति पृष्टः समाधानी शाखामृगकिरीटभृत् । शिरस्थकरराजीवो जगाद विकचेक्षणः ॥७२॥

हनूमान्‌से कहा कि हे कपिध्वज ! मैं इस अवस्थामे निमग्न तथा दुर्भाग्यसे युक्त हूँ । सन्तुष्ट होकर तुझे क्या दूँ ? ॥५७-५८॥ इसके उत्तरमे हनूमान्‌ने कहा कि हे शुभे—हे मङ्गलरूपिणि ! हे पूजिते ! आज आपके दर्शनसे ही मुझे संसारमे सब कुछ सुलभ हो गया है ॥५९॥ तदनन्तर मोतियोके समान बड़ी-बड़ी अश्रुओकी बूँदोसे जिसका ओठ व्याप्त हो रहा था तथा जो दुःखसे पीड़ित लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ऐसी सीताने हनूमान्‌से पूछा कि हे भद्र ! मकर—ग्राह तथा नाक आदिसे क्षोभित इस भयंकर दुस्तर तथा लम्बे-चौड़े समुद्रको लाँघकर तू किस प्रकार आया है ? ॥ इस अवस्था अथवा कार्यकी सिद्धिको प्राप्त हुई जो मैं हूँ सो मुझे यहाँ आकर तू किसलिए उत्तम धैर्य प्राप्त करा रहा है ॥६०-६२॥ हे भद्र ! तू लावण्य-कान्ति तथा रूपसे सहित, कान्तिरूपी सागरसे घिरा, तथा लक्ष्मी और कीर्तिसे युक्त मेरा प्यारा भाई ही है ॥६३॥ तूने मेरे प्राणनाथको कहाँ देखा था ? हे कुलीन ! क्या सचमुच ही मेरे प्राणनाथ, लक्ष्मणके साथ कहीं जीवित हैं ? ॥६४॥ ऐसा तो नहीं है कि उन भयंकर दुष्ट विद्याधरोके द्वारा युद्धमे छोटा भाई लक्ष्मण मारा गया हो और उस दुःखसे दुःखी हो कमललोचन राम भी उसीकी तुल्य अवस्थाको प्राप्त हो गये हों ॥६५॥ अथवा तुम्हें सन्देश देनेके बाद मेरे विरहसे अत्यन्त उग्र दुःखको प्राप्त हो नाथ, किसी वनमे लोकान्तरको प्राप्त हो गये हो ? ॥६६॥ अथवा वे संसारसे विरक्त रहनेमें निपुण थे अतः समस्त परिग्रहका त्यागकर जिनेन्द्र प्रणीत मार्गमे दीक्षित हो कहीं तपस्या करते हुए विद्यमान हैं ? ॥६७॥ अथवा वियोगके कारण जिनका समस्त शरीर शिथिल हो गया है ऐसे श्रीरामकी अँगुलीसे यह अँगूठी कहीं गिर गई होगी सो तुम्हें मिली है ? ॥६८॥ तुम्हारे साथ मेरे स्वामीका परिचय पहले नहीं था फिर विना कारण तू उनकी मित्रताको कैसे प्राप्त हो गया ? ॥६९॥ तू दयालु होकर यह अँगूठी लाया है सो सन्तुष्ट होकर भी मैं तेरा प्रत्युपकार करनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥७०॥ हे भाई ! तू अपने माता-पिता अथवा हृदयमें विद्यमान श्रीजिनेन्द्रदेवके कारण सत्य ही कथन करेगा ॥७१॥ इस प्रकार पूछे जानेपर चित्तकी एकाग्रतासे युक्त, वानर-चिह्नित मुकुटको धारण करनेवाला, तथा विकसित नेत्रोंसे सहित

१. प्राणनाथे म० । २. व्यापादितानुजः क०, ख० । ३. ते पश्यन् (?) म० । ४. मनोजुषा ब० धारणा-म० ।

सायके रविहासाख्ये लक्ष्मणेन निजीकृते । गत्वा चन्द्रनखानिष्टा रमणं समरोषयत् ॥७३॥
यावदाहूयते स्वामी रक्षसा सुमहाबल. । दूषणस्तावदायातो योद्धुं दाशरथिं द्रुतम् ॥७४॥
लक्ष्मणो दूषणेनामा युध्यते यावदुद्धतम् । तावद्दशमुखः प्राप्तस्तमुद्देशं बलान्वित ॥७५॥
धर्माधर्मविवेकज्ञ सर्वशास्त्रविशारद. । भवतीं वीक्ष्य स क्षुद्रो बभूव मनसो वश ॥७६॥
भ्रष्टनिःशेषनीतिश्च निस्सारीभूतचेतन । मायासिंहस्वनं चक्रे भवतीस्तेनकारणम् ॥७७॥
श्रुत्वा सिंहस्वनं पद्मो ययौ यावद्रणस्थितम् । लक्ष्मणं तावदेतेन पापेन त्वमिहाहृता ॥७८॥
प्रेषित' पद्मनाभश्च लक्ष्मणेन त्वरावता । गत्वा भूयस्तमुद्देशं न त्वामैक्षत सत्तमे ॥७९॥
ततश्चिरं वनं भ्रान्त्वा त्वद्गवेषणकारणम् । ईक्षाञ्चक्रे श्लथप्राणं मृत्य्वासन्नं जटायुषम् ॥८०॥
तस्मै दत्वा स जैनेन्द्री म्रियमाणाय देशनाम् । अवतस्थे वने दु'खी भवतीगतमानस ॥८१॥
गतश्च लक्ष्मण. पद्मं निहत्य खरदूषणम् । आनीता रत्नजटिना त्वत्प्रवृत्तिः प्रियस्य ते ॥८२॥
सुग्रीवरूपसंयुक्तः पद्मनाभेन साहस. । बलं हन्तुं समुद्युक्तो विद्यया वर्जितो हत. ॥८३॥
कृतस्यास्योपकारस्य कुलपावनकारिण' । अहं प्रत्युपकाराय प्रेषितो गुरुबान्धवैः ॥८४॥
प्रीत्या विमोचयामि त्वां विग्रहो नि प्रयोजन । कार्यसिद्धिरिहाभीष्टा सर्वथा नयशालिभि ॥८५॥
सोऽयं लङ्कापुरीनाथो घृणावान् विनयान्वित. । धर्मार्थकामवान् धीरो हृदयेन मृदु. परम् ॥८६॥
सौम्य. क्रौर्यविनिर्मुक्त. सत्यव्रतकृतस्थितिः । करिष्यति वचो नूनं मम त्वामर्पयिष्यति ॥८७॥

हनूमान्, हस्त-कमल जोड़ मस्तकसे लगा इस प्रकार कहनेलगा ॥७२॥ कि जब लक्ष्मणने सूर्यहास खड्ग अपने आधीनकर लिया और चन्द्रनखाको जब राम-लक्ष्मणने चाहा नहीं तब उसने अपने पति खरदूषणको रोषयुक्त कर दिया अर्थात् विपरीत भिड़ाकर उसे कुपित कर दिया ॥७३॥ सहायताके लिए जब तक महाबलवान् राक्षसोंके स्वामी—रावणको बुलाया तबतक खरदूषण शीघ्र ही युद्ध करनेके लिए रामके समीप आया ॥७४॥ उधर लक्ष्मण जब तक खरदूषणके साथ विकट युद्ध करता है तब तक इधर अतिशय बलवान् रावण उस स्थान पर आता है ॥७५॥ यद्यपि रावण धर्म अधर्मके विवेकको जाननेवाला एवं समस्त शास्त्रोंका विशारद था, तो भी वह क्षुद्र आपको देख मनके वशीभूत हो गया ॥७६॥ तदनन्तर जिसकी समस्त नीति भ्रष्ट हो गई थी और चेतना निःसार हो चुकी थी ऐसे उस रावणने आपको चुरानेके लिए मायामय सिंहनाद किया ॥७७॥ उस सिंहनादको सुन जब तक राम, युद्धमे स्थित लक्ष्मणके पास गये तब तक यह पापी तुम्हें हरकर यहाँ ले आया ॥७८॥ उधर लक्ष्मणने शीघ्र ही युद्धक्षेत्रसे रामको वापिस किया सो वहाँसे आकर जब वे पुन. उस स्थानपर आये तब हे पतिव्रते! उन्होंने तुम्हें नहीं देखा ॥७९॥ तदनन्तर तुम्हें खोजनेके लिए चिरकाल तक बनमें भ्रमण कर उन्होंने शिथिल प्राण एवं मरणासन्न जटायुको देखा ॥८०॥ तदनन्तर उस मरणोन्मुखके लिए जिनेन्द्र धर्मका उपदेश देकर वे दुःखी हो बनमें बैठ गये। उस समय उनका मन एक आपमे ही लग रहा था ॥८१॥

लक्ष्मण, खरदूषणको मारकर रामके पास आये और रत्नजटी तुम्हारे पतिके लिए तुम्हारा वृत्तान्त ले आया ॥८२॥ इसी बीचमे सुग्रीवके रूपसे युक्त साहस गति नामका विद्याधर रामको मारनेके लिए उद्यत हुआ परन्तु रामके प्रभावसे विद्यासे रहित होनेके कारण वह स्वयं मारा गया ॥८३॥ इस प्रकार रामने हमारे कुलको पवित्र करनेवाला यह जो महान् उपकार किया था उसका बदला चुकानेके लिए ही गुरुजनोंने मुझे भेजा है ॥८४॥ मैं तुम्हें प्रीतिपूर्वक छुड़वाता हूँ। युद्ध करना निष्प्रयोजन है क्योंकि नीतिज्ञ मनुष्योंको सब तरहसे कार्यकी सिद्धि करना ही संसारमे इष्ट है ॥८५॥ यह लंकापुरीका राजा रावण दयालु है, विनयी है, धर्म-अर्थ-कामरूप त्रिवर्गसे सहित है, धीर है, हृदयसे अत्यन्त कोमल है ॥८६॥ सौम्य है, क्रूरतासे रहित है और सत्यव्रतका पालनेवाला है, अतः निश्चित ही मेरा कहा करेगा और तुम्हें मेरे

कीर्तिरस्य निजा पाल्या धवला लोकविश्रुता । लोकापवादतश्चैष बिभेति नितरां कृती ॥८८॥
ततः परं परिप्राप्ता प्रमोदं जनकात्मजा । हनूमन्तमिदं वाक्यं जगाद विपुलेक्षणा ॥८९॥
पराक्रमेण धैर्येण रूपेण विनयेन च । कपिध्वजास्त्वया तुल्याः कियन्तो मत्प्रियाश्रिताः ॥९०॥
मन्दोदरी ततोऽवोचच्छूराः सत्त्वयशोऽन्विताः । गुणोत्कटा न शंसन्ति धीराः स्वं स्वयमुत्तमाः ॥९१॥
वैदेहि तव न ज्ञातं किमयं येन पृच्छसि । कपिध्वजः समानोऽस्य वास्येऽयस्मिन्न विद्यते ॥९२॥
विमानवाहनघण्टासंघट्टपरिमण्डले । रणे दशमुखस्यायं प्राप्तः साहाय्यकं परम् ॥९३॥
दशाननसहायत्वं कृतं येन महारणे । स हनूमानितिख्यातश्चाञ्जनातनयः परः ॥९४॥
महापदि निमग्नस्य दशवक्त्रस्य विद्विषः । खेटा मनोव्यधाभिख्या एकेनानेन निर्जिताः ॥९५॥
अनङ्गकुसुमा लब्धा येन चन्द्रनखात्मजा । गम्भीरस्य जनो यस्य सदा वाञ्छति दर्शनम् ॥९६॥
अस्य पौरसमुद्रस्य यः कान्तः शिशिरांशुवत् । सहोदरसमं वेत्ति यं लङ्कापरमेश्वरः ॥९७॥
हनूमानिति विख्यातः सोऽयं सकलविष्टपे । गुणैः समुन्नतो नीतो दूतत्वं क्षितिगोचरैः ॥९८॥
अहो परमिदं चित्रं निन्दनीयं विशेषतः । नीतः प्राकृतवत्कश्चिद्भूगोचैर्यद्भृत्यतामयम् ॥९९॥
इत्युक्ते वचनं वातिर्जगाद स्थिरमानसः । अहो परममूढत्वं भवत्येदमनुष्ठितम् ॥१००॥
सुखं प्रसादतो यस्य जीव्यते विभवान्वितः । अकार्यं वाञ्छतस्तस्य दीयते न मतिः कथम् ॥१०१॥
आहारं भोक्तुकामस्य विज्ञातं विषमिश्रितम् । मित्रस्य कृतकामस्य कथं न प्रतिषिध्यते ॥१०२॥

लिए सौंप देगा ॥८७॥ इसे अपनी लोकप्रसिद्ध उज्ज्वल कीर्तिकी भी तो रक्षा करना है अतः यह विद्वान् लोकापवादसे बहुत डरता है ॥८८॥

तदनन्तर परम हर्षको प्राप्त हुई विशाल लोचना सीता हनूमान्‌से यह वचन बोली कि पराक्रमसे, धैर्यसे, रूपसे और विनयसे तुम्हारी सदृशता धारण करनेवाले कितने वानरध्वज हमारे प्राणनाथके साथ हैं ? ॥८९-९०॥ तब मन्दोदरी बोली कि जो शूरवीर है, सत्त्व और यशसे सहित है, गुणोंसे उत्कट है तथा धीर-वीर है ऐसे उत्तम पुरुष स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं करते ॥९१॥ हे वैदेहि ! तू इसे क्या जानती नहीं है जिससे ऐसा पूछ रही है ? इस भरत क्षेत्र भरमें इसके समान दूसरा वानर ध्वज नहीं है ॥९२॥ विमानों तथा नाना प्रकारके वाहनोंके समूहकी जहाँ अत्यधिक भीड़ होती है ऐसे संग्राममें यह रावणकी परम सहायता करता है॥९३॥ जिसने महायुद्धमें रावणकी सहायता की है ऐसा यह हनूमान् इस नामसे प्रसिद्ध अञ्जनाका उत्कृष्ट पुत्र है ॥९४॥ एक बार रावण महा विपत्तिमें फँस गया था तब उसके ऐसे अनेक शत्रु विद्याधरोंको इसने अकेले ही मार भगाया था जिनके कि नाम सुननेमात्रसे मनको पीड़ा होती थी ॥९५॥ जिसने चन्द्रनखाकी पुत्री अनंग कुसुमा प्राप्त की है। जो इतना गम्भीर है कि मनुष्य सदा जिसके दर्शनकी इच्छा करते हैं ॥९६॥ जो यहाँके नागरिक जन रूपी समुद्रको वृद्धिङ्गत करनेके लिए चन्द्रमाके समान मनोहर है और लङ्काका अधिपति रावण जिसे भाईके समान समझता है ॥९७॥ ऐसा यह हनूमान् समस्त संसारमें प्रसिद्ध, उत्कृष्ट गुणोंका धारक है फिर भी भूमि गोचरियोंने इसे दूत बनाया है ॥९८॥ यह बड़े आश्चर्यकी बात है। इससे अधिक निन्दनीय और क्या होगा कि इसे साधारण मनुष्यके समान, भूमि गोचरियोंने दासता प्राप्त करायी है अर्थात् अपना दास बनाया है ॥९९॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर दृढचित्तके धारक हनूमान्‌ने इस प्रकार कहा कि अहो ! तुमने जो यह कार्य किया है सो परम मूर्खता की है ॥१००॥ जिसके प्रसादसे वैभवके साथ सुखपूर्वक जीवन बिताया जा रहा है वह यदि अकार्य करना चाहता है तो उसे सद्बुद्धि क्यों नहीं दी जाती है ? ॥१०१॥ इच्छा-नुसार काम करनेवाला मित्र यदि विषमिश्रित भोजन करना चाहता है तो उसे मना क्यों नहीं

भवितव्यं कृतज्ञेन जनेन सुखमीयुषा । वेत्ति स्वार्थं न यस्तस्य जीवितं पशुना समम् ॥१०३॥
मन्दोदरि परं गर्वं निःसारं वहसे मुधा । येदग्रमहिषी भूत्वा दूतीत्वमपि संश्रिता ॥१०४॥
क्व यातमधुना तत्ते सौभाग्यं रूपमुन्नतम् । अन्यस्त्रीगतचित्तस्य दूतीत्वं संश्रितासि यत् ॥१०५॥
प्राकृता परमा सा त्वं वर्त्तसे रतिवस्तुनि । महिषीत्वं न मन्येऽहं जाता गौरसि दुर्भगे ॥१०६॥
मन्दोदरी ततोऽवोचत् कोपालिङ्गितमानसा । अहो तव सदोषस्य प्रगल्भत्वं निरर्थकम् ॥१०७॥
दूतत्वेनागतं सीतां यदि त्वां वेत्ति रावणः । भवेत्प्रकरणं तत्ते जातं यन्नैव कस्यचित् ॥१०८॥
येनैवेन्दुनखानाथो दैवयोगेन मारितः । पुरस्कृत्य तमेवास्य कथं सुग्रीवकादयः ॥१०९॥
भृत्यत्वं दशवक्त्रस्य विस्मृत्य स्वल्पचेतसः । स्थिताः किमथवा कुर्युर्वराकाः कालचोदिताः ॥११०॥
अतिमूढहतात्मानो निर्लज्जाः क्षुद्रवृत्तयः । अकृतज्ञा वृथोत्सिक्ताः स्थितास्ते मृत्युसन्निधौ ॥१११॥
इत्युक्ते वचनं सीता जगौ कोपसमाश्रिता । मन्दोदरि सुमन्दा त्वमेव या कत्थसे वृथा ॥११२॥
शूरकोविदगोष्ठीषु कीर्त्यमानो न किं त्वया । प्रियो मे पद्मनाभोऽसौ श्रुतोऽत्यद्भुतविक्रमः ॥११३॥
वज्रावर्तधनुर्घोषं[1] श्रुत्वा यस्य रणागमे । भयज्वरितकम्पाङ्गाः सीदन्ति रणशालिनः ॥११४॥
लक्ष्मीधरोऽनुजो यस्य लक्ष्मीनिलयविग्रहः । शत्रुपक्षक्षयं कर्तुं समर्थो वीक्षणादपि ॥११५॥
किमत्र बहुनोक्तेन समुत्तीर्य महार्णवम् । पतिरेष समायाति लक्ष्मणेन समन्वितः ॥११६॥

किया जाता है ? ॥१०२॥ सुख प्राप्त करनेवाले मनुष्यको कृतज्ञ होना चाहिए । जो सुखदायकके लाभको नहीं समझता है उसका जीवन पशुके समान है ॥१०३॥ हे मन्दोदरि ! तुम व्यर्थ ही निःसार गर्व धारण करती हो जो पटराज्ञी होकर भी दूतीका कार्य कर रही हो ॥१०४॥ तुम्हारा वह सौभाग्य तथा उन्नतरूप इस समय कहाँ गया जो परस्त्रीसक्त पुरुषकी दूती बनने बैठी हो ? ॥१०५॥ जान पड़ता है कि तुम रतिकार्यके विषयमें अत्यन्त साधारण स्त्री हो गई हो । अब मैं तुममें महिषीत्व (पट्टरानी पना) नहीं मानता, हे दुर्भगे ! अब तो तुम गौ हो गई हो ॥१०६॥

तदनन्तर जिसका मन क्रोधसे आलिङ्गित हो रहा था ऐसी मन्दोदरीने कहा कि अहो ! अपराधी होकर भी तू निरर्थक प्रगल्भता बता रहा है—बढ़-बढ़कर बात कर रहा है ॥१०७॥ तू दूत बनकर सीताके पास आया है यदि यह बात रावण जान पायेगा तो तेरी वह दशा होगी जो किसीकी नहीं हुई होगी ॥१०८॥ जिसने दैव योगसे चन्द्रनखाके पति-खरदूषणको मारा है उसीको आगे कर ये क्षुद्रचेता सुग्रीवादि रावणकी दासता भूल एकत्रित हुए हैं, सो यमके प्रेरे ये नीच कर ही क्या सकते हैं ? ॥१०९-११०॥ जान पड़ता है कि जिनकी आत्मा अत्यन्त मूढ़तासे उपहत है, जो निर्लज्ज हैं, क्षुद्रचेष्टाके धारक हैं, अकृतज्ञ हैं, और व्यर्थ ही अहंकारमें फूल रहे हैं ऐसे वे सब मृत्युके निकट आ पहुँचे हैं ॥१११॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहने पर सीताने कुपित होकर कहा कि हे मन्दोदरि ! तू अत्यन्त मूर्ख है जो इस तरह व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा कर रही है ॥११२॥ शूरवीर तथा विद्वानोंकी गोष्ठीमें जिनकी अत्यन्त प्रशंसा होती है तथा जो अद्भुत पराक्रमके धारक हैं ऐसे मेरे पति रामका नाम क्या तूने नहीं सुना है ? ॥११३॥ रणके प्रारम्भमें जिनके वज्रावर्त धनुषका शब्द सुनकर युद्धमें निपुण मनुष्य ज्वरसे काँपते हुए दुःखी होने लगते हैं ॥११४॥ जिसके शरीरमें लक्ष्मीका निवास है ऐसा लक्ष्मण जिनका छोटा भाई है ऐसा भाई कि जो देखनेमात्रसे शत्रुपक्षका क्षय करनेमें समर्थ है ॥११५॥ इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? हमारा पति लक्ष्मणके साथ समुद्रको तैरकर

१. वज्रावर्तं धनुर्घोषं म० ।

पश्यात्मीय पति युद्धे स्वल्पकैरेव वासरैः । निहतं मम नाथेन जगदुत्कटतेजसा ॥११७॥
एषा 'गन्तासि वैधव्यं क्रन्दस्येषा चिरोज्झिता । या त्वं पापरतेभर्तुरनुकूलत्वमागता ॥११८॥
मयदैत्यात्मजा तीव्रमेवमुक्तातिकोपगा । परमं क्षोभमायाता कम्पमानाऽधराधरा ॥११९॥
एका नानासपत्नीनां सहस्रैः सम्भ्रमस्पृशाम् । अष्टादशभिरत्युग्रैः कोपकम्पितमूर्तिभिः ॥१२०॥
समं करतलैर्हन्तुमुद्यता वेगधारिभिः । निर्भर्त्सनमतिक्रूरैराक्रोशैः कुर्वती भृशम् ॥१२१॥
श्रीमांस्तावन्मरुत्पुत्रः समुत्थाय जवान्वितः । अवस्थितोऽन्तरे तासां सरितामिव भूधरः ॥१२२॥
ता दुःखहेतवः सर्वा वैदेहीं हन्तुमुद्यताः । वेदना इव वैद्येन श्रीशैलेन निवारिताः ॥१२३॥
पादताडितभूभागा विभूषादरवर्जिताः । ययुः क्रूराशयाः सर्वा वनितास्ता दशाननम् ॥१२४॥
आञ्जनेन ततः सीता प्रणिपत्य महादरम् । विज्ञापिता सुवाक्येन भोजनं प्रति साधुना ॥१२५॥
समर्थितप्रतिज्ञासौ सुनिर्मलमनोरथा । अभ्युपागच्छदाहारं कालदेशज्ञमानसा ॥१२६॥
ससागरा मही देवि रामदेवस्य शासने । वर्त्तते तेन नैवेदमन्नं सन्त्यक्तुमर्हसि ॥१२७॥
एवं हि बोधिता तेन वैदेही करुणावनिः । ऐच्छदन्नं यतः साध्वी सर्वाचारविचक्षणा ॥१२८॥
इरा नाम ततस्तेन चोदिता कुलपालिता । यथान्नं प्रवरं श्लाघ्यं द्रुतमानीयतामिति ॥१२९॥
मुक्ता कन्या स्वशिविरं श्रीशैलेन क्षपाक्षये । भानावभ्युदिते जातो विभीषणसमागमः ॥१३०॥

अभी आता है ॥११६॥ तू कुछ ही दिनोंमें लोकोत्तर तेजके धारक मेरे पतिके द्वारा अपने पतिको युद्धमें मरा हुआ देखेगी ॥११७॥ जो तू पापमें प्रीति रखनेवाले पतिकी अनुकूलताको प्राप्त हुई है सो इसके फलस्वरूप वैधव्यको प्राप्त होगी और पतिरहित होकर चिरकालतक रुदन करेगी ॥११८॥ इस प्रकार कठोर वचन कहनेपर जो अत्यन्त कोपको प्राप्त हो रही थी तथा जो काँपते हुए ओठको धारण कर रही थी। ऐसी मन्दोदरी परम क्षोभको प्राप्त हुई ॥११९॥ यद्यपि मन्दोदरी एक थी तो भी वह संभ्रमको प्राप्त तथा क्रोधसे कम्पित शरीरको धारण करनेवाली अपनी अठारह हजार सपत्नियोंके साथ सीताको वेगशाली करतलोंसे मारनेके लिए उद्यत हुई। वह उस समय अत्यन्त क्रूर अपशब्दोंसे उसका अत्यधिक तिरस्कार कर रही थी ॥१२०-१२१॥ उसी समय लक्ष्मीसे सुशोभित तथा वेगसे युक्त हनूमान् उठकर उन सबके बीचमें उस प्रकार खड़ा हो गया जिस प्रकार कि नदियोंके बीच कोई पर्वत आ खड़ा होता है ॥१२२॥ दुःखकी कारण, तथा सीताको मारनेके लिए उद्यत उन सब स्त्रियोंको हनूमान्ने उस प्रकार रोक दिया जिस प्रकार कि वैद्य वेदनाओंको रोक देता है ॥१२३॥ तदनन्तर जो पैरोंसे पृथिवीके प्रदेश ताडित कर रही थीं तथा जिन्होंने आभूषण धारण करनेका आदर छोड़ दिया था ऐसी दुष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाली वे सब स्त्रियाँ रावणके पास गईं ॥१२४॥

तदनन्तर साधु स्वभावके धारक हनूमान्ने बड़े आदरके साथ सीताको प्रणाम कर उत्तम वचनोंके द्वारा भोजन करनेकी प्रार्थना की ॥१२५॥ सो जिसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी थी। जिसका मनोरथ निर्मल था और जिसका मन देश कालका ज्ञाता था ऐसी सीताने आहार ग्रहण करना स्वीकृत कर लिया ॥१२६॥ प्रार्थना करते समय हनूमान्ने इस प्रकार समझाया था कि हे देवि ! यह समुद्र सहित पृथिवी राम देवके शासनमें है इसलिए यहाँका यह अन्न छोड़नेके योग्य नहीं है ॥१२७॥ इस प्रकार समझाये जाने पर दयाकी भूमि सीताने अन्न ग्रहण करनेकी इच्छाकी थी, सो ठीक ही है क्योंकि वह पतिव्रता सब प्रकारका आचार जाननेमें निपुण थी ॥१२८ तदनन्तर हनूमान्ने इरा नामकी कुलपालितासे कहा कि शीघ्र ही उत्तम तथा प्रशंसनीय अन्न लाओ ॥१२९॥ इस प्रकार कहने पर कन्या अपने शिविर अर्थात् डेरेमें गई और रात्रि समाप्त होने तथा सूर्योदय होने पर हनूमान्का विभीषणके साथ समागम हुआ ॥१३०॥

१. गतासि म० । २. स्पृशम् म० ।

आहारो वायुपुत्रेण तत्र भुक्तो मनोहरः । एवं कर्तव्ययोगेन मुहूर्तास्ते त्रयो गताः ॥१३१॥
मुहूर्तेऽथ चतुर्थे नु समानीतमिराश्रिया । आहारं मैथिलीभुक्तमिति जानन्ति कोविदाः ॥१३२॥
चन्दनादिभिरालिप्ते भूतले दर्पणप्रभे । पुष्पोपकारसम्पन्ने नलिनीपत्रशोभिनि ॥१३३॥
सद्गन्धं विपुलं स्वच्छं पथ्यं पेयादिपूर्वकम् । स्थाल्यादिभिर्महापात्रैः सौवर्णादिभिराहृतम् ॥१३४॥
[1]घृतसूपादिभिः काश्चित्पात्र्यो राजन्ति पूरिताः । कुन्दपुष्पसमच्छायैः [2]शालीनां काश्चिदोदनैः ॥१३५॥
षड्रसैरुपदंशैश्च काश्चिद्रोचनकारिभिः । व्यञ्जनैस्तरलैः काश्चित्पिण्डीबन्धोचितैस्तथा ॥१३६॥
पयसा संस्कृतैः काश्चिदन्याः परमदाधिकैः । लेह्यैः काश्चिन्महास्वादैरन्याः [3]पश्चान्निषेवितैः ॥१३७॥
एवं परममाहारमिरा परिजनान्विता । हनूमन्तं पुरस्कृत्य भ्रातृभावेन वत्सला ॥१३८॥
महाश्रद्धान्वितस्वान्ता प्रणिपत्य जिनेश्वरान् । समाप्य नियमं धीरा ध्यातातिथिसमागमा ॥१३९॥
निधाय हृदये राममभिरामं पतिव्रता । पवित्राङ्गा दिने भुङ्क्ते साधुलोकप्रपूजितम् ॥१४०॥
रविरश्मिकृतोद्योतं सुपवित्रं मनोहरम् । पुण्यवर्धनमारोग्यं दिवाभुक्तं प्रशस्यते ॥१४१॥
निवृत्तभोजनविधिः किञ्चिद्विश्रब्धतां गता । विज्ञापितेति भूयोऽपि सीता पवनसूनुना ॥१४२॥
आरोह देवि मे स्कन्धे पवित्रे गुणभूषणे । समुल्लङ्घ्य नदीनाथं नेष्यामि भवतीं क्षणात् ॥१४३॥
[4]पश्य तं विभवैर्युक्तं राघवं त्वत्परायणम् । भवद्योगसमानन्दं जनोऽनुभवतु प्रियं ॥१४४॥

हनूमान्‌ने विभीषणके घर ही मनोहर आहार ग्रहण किया। इस प्रकार कर्तव्य कार्य करते हुए तीन मुहूर्त निकल गये ॥१३१॥ तदनन्तर चतुर्थ मुहूर्तमे इरा, सीताके भोजनके योग्य आहार ले आई ॥१३२॥ वहाँकी भूमि चन्दनादिसे लीपकर दर्पणके समान स्वच्छ की गई, फूलोंके उपहारसे सजाई गई जिससे वह कमलिनी पत्रके समान सुशोभित हो उठी ॥१३३॥ स्वर्ण आदिसे बने हुए स्थाली आदि बड़े-बडे पात्रोमे सुगन्धित, अत्यधिक, स्वच्छ और हितकारी पेय आदि पदार्थ लाये गये ॥१३४॥ वहाँ कितनी ही थालियाँ थी, दाल आदिसे भरी हुई सुशोभित हो रहीं थीं, कितनी ही कुन्दके फूलके समान उज्ज्वल धानके भातसे युक्त थी ॥१३५॥ कितनी ही थालियाँ रुचि बढ़ानेवाले षट्रसके भोजनोसे परिपूर्ण थी, कितनी ही पतली तथा कितनी ही पिण्ड बँधनेके योग्य व्यञ्जनोसे युक्त थी ॥१३६॥ कितनी ही दूधसे निर्मित, कितनी ही दहीसे निर्मित पदार्थोंसे युक्त थीं, कितनी ही चाटनेके योग्य रबड़ी आदिसे, कितनी ही महास्वादिष्ट भोजनोसे तथा कितनी ही भोजनके बाद सेवन करने योग्य पदार्थोंसे परिपूर्ण थीं ॥१३७॥ इस प्रकार इरा अपने परिजनके साथ उत्तम आहार ले आई, सो हनूमान्‌को आगे कर जिसके भाईका स्नेह उमड़ रहा था, ऐसी सीताने हृदयमे महाश्रद्धा धारण कर जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार किया, 'जब तक पतिका समाचार नहीं मिलेगा तब तक आहार नही लूँगी' यह जो नियम लिया था उसको बड़ी धीरतासे समाप्त किया। अतिथियोंके समागमका विचार किया, स्नानादिकसे शरीरको पवित्र किया। तदनन्तर अभिराम (मनोहर) रामको हृदयमे धारणकर उस पतिव्रताने दिनके समय साधुजनोंके द्वारा प्रशंसित उत्तम आहार ग्रहण किया, सो ठीक ही है क्योंकि जो सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित है, अतिशय पवित्र है, मनोहर है, पुण्यको बढ़ानेवाला है, आरोग्य-दायक है और दिनमे ही ग्रहण किया जाता है ऐसा भोजन ही प्रशंसनीय माना गया है ॥ १३८-१४१॥

तदनन्तर भोजन करनेके बाद जब सीता कुछ विश्रामको प्राप्त हो चुकी तब हनूमान्‌ने जाकर उससे पुनः इस प्रकार निवेदन किया कि हे देवि ! हे पवित्रे ! हे गुणभूषणे ! मेरे कन्धे पर चढ़ो मै समुद्रको लाँघकर अभी क्षण भरमें आपको ले चलूँगा ॥१४२-१४३॥ तुम वैभवसे युक्त एवं तुम्हारे

१. घृतपूपादि म० । २. शालीनैः म० । ३. रम्यैः म० । ४. पश्यन्तं म० ।

ततोऽञ्जलिपुटं बद्ध्वा रुदती जनकात्मजा । जगादादरसंयुक्ता विचिन्तिततथास्थितिः ॥१४५॥
[1]अन्तरेण प्रभोराज्ञां गमनं मे न युज्यते । इत्यवस्था गता दास्ये तस्मै किमहमुत्तरम् ॥१४६॥
प्रत्येति नाधुना लोकः शुद्धिं मे मृत्युना विना । नाथ एव ततः कृत्यं मम ज्ञास्यति साम्प्रतम् ॥१४७॥
यावन्नोपद्रवः कश्चिज्जायते दशवक्त्रकात् । तावद्व्रज द्रुतं भ्रातर्नालम्बनमिह क्षणम् ॥१४८॥
त्वया मद्वचनाद् वाच्यः सम्यक् प्राणमहेश्वरः । अभिधानैरिमैर्मूर्ध्नि निधाय करकुड्मलम् ॥१४९॥
तस्मिन् देव मया सार्द्धं मुनयो व्योमचारिणः । वन्दिताः परमं भक्त्या त्वया स्तवनकारिणा ॥१५०॥
विमलाम्भसि पद्मिन्या नितरामुपशोभिते । सरसि क्रीडता स्वेच्छमस्माकमतिसुन्दरम् ॥१५१॥
आरण्यकस्तदा हस्ती समायातो भयङ्करः । ततो मया समाहूतस्त्वमुन्मग्नो[2] जलान्तरात् ॥१५२॥
[3]उद्दामाऽसौ महानागश्चारुक्रीडनकारिणा । समस्तं त्याजितो दर्पं भवता निश्चलीकृतः ॥१५३॥
आसीच्च नन्दनच्छाये वने पुष्पभरानते । शाखां पल्लवलोभेन नमयन्ती प्रयासिनी ॥१५४॥
भ्रमद्भिश्चञ्चलैर्भृङ्गैरभिभूता[4] ससम्भ्रमा । भुजाभ्यां भवताश्लिष्य जनिताकुलतोज्झिता ॥१५५॥
उद्यन्तमन्यदा भानुं माहेन्द्रीदिग्विभूषणम् । अहमम्भोजषण्डस्य त्वया सह तटे स्थिता ॥१५६॥
अशंसिषं ततः किञ्चिदीर्ष्यारसमुपेयुषा । बालेनोत्पलनालेन मधुरं ताडिता त्वया ॥१५७॥
अन्यदा रतिशैलस्य प्राग्भारस्य मया प्रिय । पृष्टस्त्वमिति विश्रब्ध्या कौतुकं परशोभया १५८॥
एतस्मिन् कुसुमैः पूर्णा विपुलाः स्निग्धताजुषः । किन्नामानो द्रुमा नाथ मनोहरणकोविदाः ॥१५९॥

ध्यानमें तत्पर रहनेवाले रामके दर्शन करो तथा प्रेमी जन—मित्रगण आप दोनोंके समागमसे उत्पन्न होनेवाले हर्षका अनुभव करें ॥१४४॥ तदनन्तर सब स्थितिका यथायोग्य विचार करनेवाली एवं आदरसे संयुक्त सीताने हाथ जोड़कर रोती हुई यह कहा कि स्वामीकी आज्ञाके बिना मेरा जाना योग्य नहीं है । इस अवस्थामें पड़ी हुई मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगी ॥१४५–१४६॥ इस समय लोग मृत्युके बिना मेरी शुद्धिका प्रत्यय नहीं करेंगे, इसलिए प्राणनाथ ही आकर मेरे कार्यको योग्य जानेंगे ॥१४७॥ हे भाई ! जब तक रावणकी ओरसे कोई उपद्रव नहीं होता है तब तक तू शीघ्र ही यहाँसे चला जा । यहाँ क्षणभर भी विलम्ब मत कर ॥१४८॥ तू हाथ जोड़ मस्तकसे लगा, इन परिचायक कथनोंके साथ-साथ मेरे वचनोंमें प्राणनाथसे अच्छी तरह कहना कि हे देव ! उस वनमें एक दिन स्तवन करते हुए आपने मेरे साथ बड़ी भक्तिसे आकाशगामी मुनियोंकी वन्दना की थी ॥१४९–१५०॥ एक बार निर्मल जलसे युक्त तथा कमलिनियोंसे सुशोभित सरोवरमें हमलोग इच्छानुसार सुन्दर क्रीड़ा कर रहे थे कि इतनेमें एक भयङ्कर जङ्गली हाथी वहाँ आ गया था, उस समय मैंने आपको पुकारा था सो आप जलके मध्यसे तत्काल ऊपर निकल आये थे ॥१५१–१५२॥ और सुन्दर क्रीड़ा करते हुए आपने उस उद्दण्ड महाहस्तीका सब गर्व छुड़ाकर उसे निश्चल कर दिया था ॥१५३॥ एक बार नन्दनवनके समान सुन्दर तथा फूलोंके भारसे झुके हुए वनमें, मैं नूतन पत्रोंके लोभसे प्रयत्नपूर्वक वृक्षकी एक शाखाको झुका रही थी । तब उड़ते हुए चञ्चल भ्रमरोंने धावा बोलकर मुझे आकुल कर दिया था, उस समय मुझ घबड़ायी हुईको आपने अपनी भुजाओंसे आलिङ्गन कर छुड़ाया था ॥१५४–१५५॥ एक बार मैं आपके साथ कमलवनके तटपर बैठी थी उसी समय पूर्व दिशाके आभूषणस्वरूप सूर्यको उदित होता देख मैंने उसकी प्रशंसा की थी तब आपने कुछ ईर्ष्यारसको प्राप्त हो मुझे नीलकमलकी एक छोटी-सी दंडीसे मधुर रीतिसे ताडित किया ॥१५६–१५७॥ एक बार रतिगिरिके शिखर पर अत्यधिक शोभाके कारण कौतुकको धारण करती हुई मैंने आपसे पूछा था कि हे प्रिय ! इधर फूलोंसे परिपूर्ण, विशाल, स्निग्धताको धारण करनेवाले एवं मनके हरण करनेमें निपुण ये कौनसे वृक्ष हैं ? ॥१५८–१५९॥ तब इस प्रकार

---

१. विना । २. साह्वतः म० । ३. उद्दामोऽसौ म० । ४. रतिभूता म० ।

ततस्त्वयेति पृष्टेन प्रसन्नमुखशोभिना । आख्यातमिति देव्येते यथा नन्दिद्रुमा इति ॥१६०॥
कर्णकुण्डलनद्याश्च स्थितास्तीरे वय यदा । तदा सन्निहितौ जातौ मध्याह्ने व्योमगौ मुनी ॥१६१॥
त्वया मया च भिक्षार्थं तयोरागतयोस्तत. । अभ्युत्थाय महाश्राद्ध रचित पूजन महत् ॥१६२॥
अन्न च परम ताभ्या दत्त विधिसमन्वितम् । पञ्च चातिशया जातास्तत्प्रभावेन सुन्दरा ॥१६३॥
पात्रदानमहोदान महादानमिति ध्वनि । अन्तरिक्षेऽमरैश्चक्रे साधु सम्यग्ध्वनिश्रित ॥१६४॥
अदृष्टतनुभिर्देवैर्दुन्दुभि. सध्वनि कृत. । पपात गगनाद्वृष्टि कौसुमी भृङ्गनादिता ॥१६५॥
सुखशीतो ववौ वायु सुगन्धिर्नीरजो मृदु । मणिरत्नसुवर्णाङ्गा धाराश्रममपूरयत् ॥१६६॥
चूडामणिमिम चोद्ध[1] दृढप्रत्ययकारणम् । दर्शयिष्यसि नाथाय तस्यात्यन्तमय प्रिय ॥१६७॥
जानामि नाथ ते भाव प्रसादिनमल मयि । तथापि यत्नत प्राणा. पाल्या. सङ्गमनाशया ॥१६८॥
प्रमादाद्भवतो जातो वियोगोऽय मया सह । साम्प्रत त्वयि यत्नस्थे सङ्गमो नौ[2] विसशय. ॥१६९॥
इत्युक्ते रुदती सीता समाश्वास्य प्रयत्नत. । यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा [3]निरैत्सीताप्रदेशतः ॥१७०॥
पाण्यङ्गुलीयक सीता तदाशक्तशरीरिका । मानसस्य कृताश्वासं मेने पत्युः समागमम् ॥१७१॥
अथोद्यानगता नार्यस्त्रस्तसारङ्गलोचना. । वायुनन्दनमालोक्य स्मितविस्मितसङ्गता. ॥१७२॥
परस्पर समालापमिति कर्तुं समुद्यता । अस्य पुष्पनगस्योर्द्ध्वं कोऽप्यहो नरपुङ्गवः ॥१७३॥
अवतीर्णः किमेष. स्याद्विग्रही कुसुमायुधः । देव कोऽपि तु शैलस्य शोभा द्रष्टु समागतः ॥१७४॥

पूछे जाने पर आपने प्रसन्नमुख मुद्रासे सुशोभित हुए कहा था कि हे देवि ! ये नन्दि वृक्ष हैं ॥१६०॥ एक बार हम सब कर्णकुण्डल नदीके तीर पर ठहरे हुए थे, उसी समय मध्याह्न कालमे दो आकाशगामी मुनि निकट आये थे ॥१६१॥ तब आपने और मैंने उठकर, भिक्षाके लिए आये हुए उन मुनियोकी बड़ी श्रद्धाके साथ विशाल पूजा की थी ॥१६२॥ तथा विधिपूर्वक उन्हें उत्तम आहार दिया था, उसके प्रभावसे वहाँ अत्यन्त सुन्दर पञ्च आश्चर्य हुए थे ॥१६३॥ आकाशमे देवोने यह मधुर शब्द किये कि अहो ! पात्रदान ही दान है, यही सबसे बड़ा दान है ॥१६४॥ जिनका शरीर दीख नहीं रहा था ऐसे देवोने दुन्दुभि बाजे बजाये, आकाशसे जिसपर भ्रमर शब्द कर रहे थे ऐसी पुष्पवृष्टि हुई ॥१६५॥ सुखकारी, शीतल, सुगन्धित एवं धूलि रहित कोमल वायु चली थी और मणि, रत्न तथा सुवर्णकी धाराने उस आश्रमको भर दिया था ॥१६६॥ हे भाई ! इसके बाद दृढ़ विश्वासका कारण यह उत्तम चूड़ामणि प्राणनाथको दिखाना, क्योकि यह उन्हें अत्यन्त प्रिय था ॥१६७॥ ऊपरसे यह सन्देश कहना कि हे नाथ ! आपका मुझपर अतिशय प्रसन्नतासे भरा जो भाव है उसे मै यद्यपि जानती हूँ तो भी पुनः समागमकी आशासे प्राण प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने योग्य हैं ॥१६८॥ प्रमादके कारण मेरे साथ आपका यह वियोग हुआ है परन्तु इस समय जब कि आप प्रयत्न कर रहे हैं तब हम दोनोका समागम निःसन्देह होगा ॥१६९॥ इतना कह कर सीता रोने लगी, तदनन्तर उसे प्रयत्नपूर्वक सान्त्वना देकर और 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर हनूमान्, सीताके उस स्थानसे बाहर निकल आया ॥१७०॥ उस समय जिसका शरीर अशक्त हो रहा था ऐसी सीताने अङ्गुलिको हाथमें पहिनकर ऐसा माना था मानो मनको आनन्द देनेवाला पतिका समागम ही प्राप्त हुआ हो ॥१७१॥

अथानन्तर उस उद्यानमें भयभीत मृगके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली जो स्त्रियाँ थीं वे हनूमान्को देख मन्द मुसकान और आश्चर्यसे युक्त हो परस्पर इस प्रकार वार्त्तालाप करने लगीं कि अहो ! इस फूलोके पर्वतके ऊपर यह कोई श्रेष्ठ पुरुष अवतीर्ण हुआ है सो क्या यह शरीरधारी कामदेव है ? अथवा पर्वतकी शोभा देखनेके लिए कोई देव आया है ? ॥१७२-१७४॥

१. चोर्ध्वं म०, ख० । २ आवयोः । ३. निरगच्छत् ।

तासामाकुलिका काचिन्निधाय शिरसि स्रजम् । उपवीणनमारेभे कर्तुं किन्नरनिस्वना ॥१७५॥
काचिदिन्दुमुखी वामे हस्तेऽवस्थाप्य दर्पणम् । दिदृक्षन्ती समालोक्य त बभूवान्यथामनाः ॥१७६॥
ईषत्काचिदभिज्ञाय वधूरिदमचिन्तयत् । अलब्धद्वारसन्मान. कुतो मारुतिरागत. ॥१७७॥
वरस्त्रीजनमुद्याने कृत्वा सम्भ्रान्तमानसम् । हारमाल्याम्बरधरो भास्वान् वह्निकुमारवत् ॥१७८॥
निसर्गकान्तया गत्या प्रदेशं किञ्चिदभ्यगात् । तथाविधां च तां वार्तामश्रृणोद्राक्षसाधिप ॥१७९॥
क्रोधसस्पृष्टचित्तेन निरपेक्षत्वमीयुषा । तावदाज्ञापिता· शूरा रावणेनोऽग्रकिङ्करा ॥१८०॥
विचारेण न व. कृत्य पुष्पोद्यानान्निरेति य· । मद्रोही कोऽप्ययं क्षिप्र नीयतामन्तमायुषः ॥१८१॥
अमी तत· समागत्य दध्युर्विस्मयमागता. । किमिन्द्रजिन्नरेश· स्याद्भास्कर श्रवणोऽथवा ॥१८२॥
पश्यामस्तावदित्युक्त्वा तैरित्युक्त समन्ततः । भो भो श्रृणुत नि शेषा उद्यानस्याभिरक्षकाः ॥१८३॥
कि तिष्ठत सुविश्रब्धाः किङ्करा· कृतिवा श्रिवा । किमिति श्रुतमस्माभि· कथ्यमानमिद बहि ॥१८४॥
कोऽप्युद्दामतयोद्यानं प्रविष्टो दुष्टखेचर । स क्षिप्र मार्यतामेष गृह्यतां दुर्विनीतक· ॥१८५॥
धावध्वमसकौ कोऽसौ सोऽयमेव यतः कुत· । कस्य कस्तादृशः क्वेति किङ्करध्वनिरुद्गत ॥१८६॥
तत कार्मुकिकान् दृष्ट्वा शाक्तिकान् गदिकांश्च तान् । खड्गिकान् कौन्तिकान्, वद्धसङ्घातानायतो बहून् १८७
किञ्चित् सम्भ्रान्तधीर्वातिर्मृगाधिपपराक्रम· । रत्नशाखामृगच्छायासमुद्दीपितपुष्कर· ॥१८८॥
अवरोहस्ततो देशात्तैरदृश्यत किङ्करै· । आकुलत्वविनिर्मुक्त· प्रलम्ब विभ्रदम्बरम् ॥१८९॥

उन स्त्रियोमे कामसे आकुल होकर कोइ स्त्री शिर पर माला रख किन्नरके समान मधुर स्वरसे वीणा बजाने लगी ॥१७५॥ कोई चन्द्रमुखी बॉये हाथमे दर्पण रख उसमे हनूमान्‌का प्रतिबिम्ब देखने की इच्छा करती हुई अन्यथा चित्त हो गई ॥१७६॥ कोई स्त्री कुछ-कुछ पहिचान कर यह विचार करने लगी कि जिसे द्वारपर सन्मान प्राप्त नहीं हुआ ऐसा यह हनुमान् यहॉ कहॉ आ गया? १७७॥ इस प्रकार बनमे स्थित उत्तम स्त्रियोको सम्भ्रान्त चित्त कर हार, माला तथा उत्तम वस्त्रोको धारण करनेवाला एवं अग्निकुमारके समान देदीप्यमान हनुमान्, अपनी स्वभावसुन्दर चालसे किसी स्थानकी ओर जा रहा था कि रावणने यह सब समाचार सुना ॥१७८-१७९॥ सुनते ही जिसका चित्त आगबबूला हो गया था तथा जो निरपेक्ष भावको प्राप्त हो चुका था—सब प्रकारका स्नेह भुला चुका था ऐसे रावणने उसी समय अपने शूरवीर प्रधान किङ्करोंको आज्ञा दी कि तुम लोगोको विचार करनेसे प्रयोजन नहीं है। पुष्पोद्यानसे जो पुरुष बाहर निकल रहा है वह कोई द्रोही है उसे शीघ्र ही आयुका अन्त कराया जाय—मारा जाय ॥१८०-१८१॥

तदनन्तर किङ्कर आकर आश्चर्यको प्राप्त हो इस प्रकार विचार करने लगे कि क्या यह इन्द्रको जीतनेवाला कोई राजा है, या सूर्य है अथवा श्रवण नक्षत्र है? ॥१८२॥ अथवा कुछ भी हो चलकर देखते हैं इस प्रकार कह कर उन्होने सब ओर आवाज लगायी कि हे उद्यानके समस्त रक्षको! सुनो, तुम लोग निश्चिन्त होकर क्यों बैठे हो? हमने उद्यानके बाहर चर्चा सुनी है कि कोई एक दुष्ट विद्याधर अपनी उद्दण्डतासे उद्यानमे प्रविष्ट हुआ है सो यह क्या बात है? उस दुर्विनीतको शीघ्र ही मारा जाय अथवा पकड़ा जाय ॥१८३-१८५॥ रावणके प्रधान किङ्करोकी बात सुनकर उद्यानके रक्षक किङ्करोंने 'दौड़ो, कौन है वह, यहीं कहीं होगा, वह किसका कौन है? उसके समान कौन कहाँ है?' इस प्रकारका हल्ला मचाया ॥१८६॥ उन किङ्करोंमें कोई धनुष लिए हुए थे, कोई शक्ति धारण कर रहे थे, कोई गदाके धारक थे, कोई तलवारोंसे युक्त थे, कोई भाले संभाले हुए थे, और कोई झुण्ड-के-झुण्ड बनाकर बहुसंख्यामें आ रहे थे। उन सबको देख हनूमान्‌के मनमें कुछ सम्भ्रम उत्पन्न हुआ परन्तु वह तो सिंहके समान पराक्रमी था उसने रत्नमयी बानर जैसी कान्तिसे आकाशको देदीप्यमान कर दिया ॥१८७-१८८॥ तदनन्तर आकुलता

१. अलब्धदार -म०, ख० ।

ततस्तमुद्यदादित्यमण्डलप्रतिमविग्रहम् । प्रदष्टाधरमालोक्य विशीर्णाः किङ्करा गणाः ॥१९०॥
तत किलापरै क्रूरैः प्रख्यातैः किङ्कराधिपैः । तत्किङ्करबलं गच्छदितश्चेतश्च धारितम् ॥१९१॥
शक्तितोमरचक्रासिगदाशार्ङ्गकपाणयः । सर्वतो वायुपुत्रं ते[1] मुखराः किङ्करास्तत ॥१९२॥
मुमुचुश्च घनं शस्त्रं ज्येष्ठवाता यथा बुसम्[2] । अदृष्टभास्करोद्योताः परं सङ्घातवर्तिनः ॥१९३॥
उत्पाट्य वायुपुत्रोऽपि निःशस्त्रो धीरपुङ्गवः । सघातं तुङ्गवृक्षाणां शिलानां वारमक्षिपत् ॥१९४॥
भीमभोगिमहाभोगभास्वद्भुजजवेरितैः । पादपादिभिराहिंसन् कालमेघ इवोन्नतः ॥१९५॥
अश्वत्थान् शालन्यग्रोधान्नन्दिचम्पककेसरान् । नीपाशोककदम्बांश्च पुन्नागानर्जुनान् धवान् ॥१९६॥
आम्रानाम्रातकाल्लोध्रां (स्तृणराजान्) स्थवीयसः[3] । विशालान् पनसाद्यांश्च चिक्षेप क्षेपवर्जितः ॥१९७॥
बभञ्ज त्वरितं कांश्चिदपरानुदमूलयत् । मुष्टिपादप्रहारेण पिपेषान्यान् महाबलः ॥१९८॥
आकूपारसमं[4] तेन सैन्यमेकेन तत्कृतम् । समाकुलं गतं क्वापि क्षणेन प्रियजीवितम् ॥१९९॥
सहायैर्मृगराजस्य कुर्वतो मृगशासनम् । कियद्भिरपरैः कृत्यं त्यक्त्वा सत्त्वं सहोद्भवम् ॥२००॥
पुष्पाद्रेरवतीर्णस्य ककुब्वलयरोधनम्[5] । भूयो युद्धमभूदुग्रं भ्रान्तविध्वस्तकिङ्करम् ॥२०१॥

से रहित एवं लटकते हुए लम्बे वस्त्रको धारण करनेवाला हनूमान् जब उद्यानके उस प्रदेशसे नीचे उतर रहा था तब किङ्करोंने उसे देखा ॥१८९॥ उस समय क्रोधके कारण हनूमानकी कान्ति उदित होते हुए सूर्यमण्डलके समान देदीप्यमान हो रही थी तथा वह अपना ओठ चबा रहा था। उसे देख किङ्करोंके झुण्ड भाग खड़े हुए ॥१९०॥ तदनन्तर जो किङ्करोंमे प्रधान क्रूर एवं प्रसिद्ध दूसरे किङ्कर थे उन्होंने इधर-उधर भागते हुए किङ्करोंके दलको इकट्ठा किया ॥१९१॥ तदनन्तर जिनके हाथमे शक्ति, तोमर, चक्र, खड्ग, गदा और धनुष थे ऐसे उन किङ्करोंने चिल्ला कर सब ओरसे हनूमान्‌को घेर लिया ॥१९२॥ वे किङ्कर इतनी अधिक भीड़ इकट्ठी कर विद्यमान थे कि उनके कारण सूर्यका प्रकाश भी अदृष्ट हो रहा था। तदनन्तर जिस प्रकार जेठ मासकी वायु भूसा उड़ाती है उसी प्रकार वे अत्यधिक शस्त्र छोड़ने लगे ॥१९३॥ धीरशिरोमणि पवन-पुत्र हनूमान् यद्यपि शस्त्र रहित था परन्तु तो भी उसने बड़े-बड़े वृक्षों और शिलाओंके समूह उखाड़-उखाडकर फेंके ॥१९४॥ भयंकर शेषनागके शरीरके समान सुशोभित भुजाओंके वेगसे फेंके हुए वृक्ष आदिसे प्रहार करता हुआ हनूमान् उस समय प्रलयकालके उन्नत मेघके समान जान पडता था ॥१९५॥ हनूमान् बिना किसी विलम्बके पीपल, सागौन, वट, नन्दी, चम्पक, बकुल, नीम, अशोक, कदम्ब, नागकेसर, कोहा, धवा, आम, मिलमाँ, लोध्र, खजूर तथा कटहल आदिके बड़े मोटे तथा ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंको उखाड़कर फेंक रहा था ॥१९६-१९७॥ उस महाबलवान्‌ने कितने ही लोगोंको शीघ्र ही खण्डित कर दिया, कितने ही योधाओंको उखाड़ डाला—पैर पकड़कर पछाड़ दिया और कितने ही किङ्करोंको लात तथा घूँसोंके प्रहारसे पीस डाला ॥१९८॥ उस अकेलेने ही समुद्रके समान भारी सेनाकी वह दशा की कि जिससे वह व्याकुल हो क्षण भरमे प्राण बचाकर कहीं भाग गई ॥१९९॥ गौतम स्वामी कहते है कि हे श्रेणिक! मृगोपर शासन करनेवाले मृगराज—सिंहको अन्य सहायकोंकी क्या आवश्यकता है? और जो स्वाभाविक तेजको छोड़ चुके है उन्हे दूसरे सहायकोंसे क्या लाभ है—निस्तेज मनुष्यका अन्य सहायक क्या भला कर सकते है? ॥२००॥

तदनन्तर पुष्पगिरिसे नीचे उतरे हुए हनूमान्‌का दिङ्मण्डलको रोकनेवाला तथा जिसमें

---

१. वायुपुत्रं ते म० । २. यथाम्बुदम् म० । ३. अतिस्थूलान् । ४. सागरसदृशम् । ५. चक्रुर्वलय-रोधनम् म० ।

सभावापीविमानानामुद्यानोत्तमसद्मनाम् । चूर्णितानां तदाघातैर्भूमय केवला स्थिताः ॥२०२॥
पादमार्गप्रदेशेषु ध्वस्तेषु वनवेश्मसु । महारथ्यापथा जाता शुष्कसागरसन्निभा ॥२०३॥
भग्नोत्तुङ्गापणश्रेणिः पातिताऽनेककिङ्कर । बभूव राजमार्गोऽपि महासंग्रामभूमम ॥२०४॥
पतद्भिस्तोरणैस्तुङ्गै कम्पितध्वजपङ्क्तिभि । बभूवाम्बरमुत्पातादिव भ्रश्यत्सुरायुधम् ॥२०५॥
जङ्घावेगा समुद्यन्ती रजोभिर्बहुवर्णकै । इन्द्रायुधसहस्राणि रचितानीव पुष्करे[1] ॥२०६॥
पादावष्टम्भभिन्नेषु भूभागेषु निमज्जताम् । बभूव गृहशैलानां पातालेष्विव निस्वन ॥२०७॥
दृष्ट्या कञ्चित्करेणान्य कञ्चित्पादेन किङ्करम् । उरसा कञ्चिदंसेन वातेनान्य जघान स ॥२०८॥
आलीयमानमात्राणां किङ्कराणां सहस्रश । पततामुत्करै रथ्या जाता पूरसमागता ॥२०९॥
हाहाहीकारगम्भीरः पौराणामुद्गतो ध्वनि । क्वचिच्च रत्नकूटानां भङ्गात्कणकणस्वन ॥२१०॥
वेगेनोत्पततस्तस्य समाकृष्टमहाध्वजा । कोपादिवोद्ययु' पश्चात्कृतघण्टादिनि स्वना' ॥२११॥
उन्मूलितमहालाना बभ्रमु परमा गजा । वायुमण्डलपर्णानामश्वास्तुल्यत्वमागता ॥२१२॥
अधस्तात् स्फुटिता वाप्य प्राप्ता पङ्कावशेषताम् । चक्रारूढेव नि शेषा जाता लङ्का समाकुला ॥२१३॥
लङ्काकमलिनीखण्ड ध्वस्तराक्षसमीनकम् । श्रीशैलवारणो यावद्विक्षोभ्य बहिराश्रित ॥२१४॥

निकटवर्ती किङ्कर मारे गये थे ऐसा भयंकर युद्ध पुन' हुआ ॥२०१॥ उस समय हनूमान्‌के प्रहारसे जो चूर-चूर किये गये थे ऐसे सभा, वापिका, विमान तथा बाग बगीचोंसे सुशोभित मकानोमे केवल भूमि ही शेष रह गई थी ॥२०२॥ उसके पैदल चलनेके मार्गोंमे जो बाग-बगीचे तथा महल थे उन सबको उसने नष्ट कर दिया था, जिससे वे लम्बे-चौड़े मार्ग सूखे समुद्रके समान हो गये थे ॥२०३॥ जहाँ अनेक ऊँची-ऊँची दुकानोकी पक्तियाँ तोड कर गिरा दी गईं थीं, तथा अनेक किंकर मारकर गिरा दिये गये थे ऐसा राजमार्ग भी महायुद्धकी भूमिके समान हो गया था ॥२०४॥ गिरते हुए ऊँचे-ऊँचे तोरणो और कॉपती हुई ध्वजाओकी पंक्तिसे उस समय आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो उत्पातके कारण उससे वज्र ही गिर रहा हो ॥२०५॥ जङ्घाओके वेगसे उड़ती हुईं रङ्ग विरङ्गी धूलियोसे ऐसा जान पडता था मानो आकाशमें हजारो इन्द्रधनुष ही बनाये गये हो ॥२०६॥ चरणोके प्रहारसे विदीर्ण हुई भूमिमे महलरूपी पर्वत नीचेको धँस रहे थे जिससे ऐसा भारी शब्द हो रहा था मानो वे महल रूपी पर्वत पातालमे ही धँसे जा रहे हो ॥२०७॥ वह किसी किङ्करको दृष्टिसे मार रहा था, किसीको हाथसे पीस रहा था, किसीको पैरसे पीट रहा था, किसीको वक्षःस्थलसे मार रहा था, किसीको कन्धेसे नष्ट कर रहा था और किसीको वायुसे ही उड़ा रहा था ॥२०८॥ आते ही साथ गिरनेवाले हजारो किंकरोके समूहसे वह लम्बा चौड़ा मार्ग ऐसा हो गया था मानो उसमे पूर ही आ गया हो ॥२०९॥ कहीं नागरिक जनोका हा हा ही आदिका गम्भीर शब्द उठ रहा था तो कहीं रत्नमयी शिखरोंके टूटनेसे कण-कण शब्द हो रहा था ॥२१०॥ जब हनूमान् ऊपरको छलांग भरता था तब उसके वेगसे बड़ी-बड़ी ध्वजाएँ खिंची चली जाती थीं जिससे वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो घण्टाका शब्द करती हुईं क्रोधसे उसके पीछे ही उड़ी जा रहीं हो ॥२११॥ बड़े-बड़े हाथी खम्भे उखाड़ कर इधर-उधर घूमने लगे और घोड़े वायु मण्डलसे उड़ते हुए पत्तोकी तुल्यताको प्राप्त हो गये ॥२१२॥ वापिकाएँ नीचेसे फूटकर बह गईं जिससे उनमें कीचड़ मात्र ही शेष रह गया तथा सम्पूर्ण लंका चक्र पर चढी हुईके समान व्याकुल हो उठी ॥२१३॥ जिसमे राक्षसरूपी मीन मारे गये थे ऐसे लंकारूपी कमलवनको क्षोभितकर ज्योंही हनूमानरूपी हाथी बाहर आया॥२१४॥

---

१. आकाशे ।

तावत्तोयदवाहेन सम सनह्य वेगत· । पश्चादिन्द्रजितो लग्नो द्विपस्यन्दनमध्यग ॥२१५॥
हनूमान्यावदेतेन सम योद्धु समुद्यत· । प्राप्त तावदित तस्य बल यन्मेघपृष्ठगम् ॥२१६॥
बाह्यायां भुवि लङ्काया महाप्रतिभय रणम् । जात हनूमत खेटै[1] लक्ष्मणस्येव दोषणम् ॥२१७॥
युक्त सुचतुरैरश्वै रथमारुह्य पावनि । समुद्धृत्य शर सैन्य राक्षसानाम धावत ॥२१८॥
अथेन्द्रजितवीरेण पाशैर्माहोरगैस्सित[2] । चिरमायोधितो नीत पुर किञ्चिद्विचिन्तयन् ॥२१९॥
ततो नगरलोकेन विश्रब्ध स निरीक्षित । कुर्वन् भञ्जनमासीद्यो विद्युद्दण्डवदीक्षित ॥२२०॥
प्रवेशितस्य चास्थान्या तस्य दोषान् दशानन । कथ्यमानान् शृणोति स्म तद्विद्भि पुरुषैनिजै ॥२२१॥
दूताहूत समायात· किष्किन्ध स्वपुरादयम् । महेन्द्रनगरध्वस चक्रे त च वश रिपो ॥२२२॥
साधूपसर्गमथने द्वीपे दधिमुखाह्वये । गन्धर्वकन्यकास्तिस्र पद्मस्याभ्यनुमोदिता ॥२२३॥
विध्वस वज्रशालस्य चक्रे वज्रमुखस्य च । कन्यामाभिलषन्नस्य बहिरस्थापयद् बलम् ॥२२४॥
भग्न पुष्पनगोद्यान तत्पाल्य[3] विह्वलीकृता । बहव· किङ्करा ध्वस्ता प्रपादि[4] च विनाशितम् ॥२२५॥
घटस्तनविमुक्तेन पुत्रस्नेहाश्चिरन्तरम् । पयसा पोषिता स्त्रीभिर्वृक्षका ध्वसमाहृता· ॥२२६॥
वृक्षैर्वियोजिता वल्यस्तरलायितपल्लवा । धरण्या पतिता भान्ति विधवा इव योषिता ॥२२७॥
फलपुष्पभरानम्रा विविधास्तरुजातयः । श्मशानपादपच्छाया एतेन ध्वमिताः स्थिता ॥२२८॥

त्योही हाथियोंके रथपर सवार इन्द्रजित मेघवाहनके साथ तैयार होकर शीघ्र ही उसके पीछे लग गया ॥२१५॥ हनूमान् जब तक इसके साथ युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ तब तक मेघवाहन के पीछे लगी सेना आ पहुँची ॥२१६॥ तदनन्तर लकाकी बाह्यभूमिमे हनूमान्का विद्याधरोंके साथ उस तरह महाभयङ्कर युद्ध हुआ जिस प्रकार कि लक्ष्मणका खरदूषणके साथ हुआ था ॥२१७॥ हनूमान् चार घोड़ोंसे जुते रथ पर सवार हो बाण खींचकर राक्षसोंकी सेनाकी ओर दौडा ॥२१८॥

अथानन्तर चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद जो वीर इन्द्रजितके द्वारा नागपाशसे बाँध लिया गया था ऐसा हनूमान् कुछ विचार करता हुआ नगरके भीतर ले जाया गया ॥२१९॥ जो पहले तोड-फोड़ करता हुआ विद्युद्दण्डके समान देखा गया था वही हनूमान् अब नगरवासियोंके द्वारा निश्चिन्ततापूर्वक देखा गया ॥२२०॥ तदनन्तर वह रावणकी सभामे ले जाया गया वहाँ रावणने अपने विज्ञ पुरुषोंके द्वारा कहे हुए उसके अपराध श्रवण किये ॥२२१॥ विज्ञ पुरुषोंने उसके विषयमे बताया कि यह दूतके द्वारा बुलाये जाने पर अपने नगरसे किष्किन्ध नगर गया। वहाँसे लंका आते समय इसने राजा महेन्द्रका नगर ध्वस्त किया तथा उसे शत्रुके आधीन किया ॥२२२॥ दधिमुखनामक द्वीपमे मुनियुगलका उपसर्ग दूर किया और गन्धर्वराजकी तीन कन्याएँ रामको वरनेके लिए उत्सुक थी सो उनका अनुमोदन किया ॥२२३॥ राजा वज्रमुखके वज्रकोटका विध्वस किया तथा उसकी कन्या लंकासुन्दरीको स्वीकृत कर उसके नगरके बाहर अपनी सेना रक्खी ॥२२४॥ पुष्पगिरिका उद्यान नष्ट किया, उसकी रक्षक स्त्रियोंको विह्वल किया, बहुतसे किंकर नष्ट किये और प्रपा–पानी पीने आदिके स्थान विनष्ट किये ॥२२५॥ स्त्रियोंने जिन्हें पुत्रके समान स्नेहसे घट रूपी स्तनोंसे छोडे हुए जलके द्वारा निरन्तर पुष्ट किया था वे छोटे-छोटे वृक्ष इसने नष्ट कर दिये है ॥२२६॥ जिनके पल्लव चञ्चल हो रहे है ऐसी लताएँ इसने वृक्षोंसे अलग कर पृथिवीपर गिरा दी हैं जिससे वे विधवा स्त्रियोंके समान जान पडती हैं ॥२२७॥ फल और फूलोंके भारसे झुकी हुई नाना वृक्षोंकी जातियाँ इसके द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दी गई है जिससे वे

१ महोरगसम्बन्धिभिः । २. बद्ध· स्मितः ख० । ३ तत्पाल्या विह्वलाः कृताः ब० । ४. प्रपा पानीयशालिका तत्प्रभृति ।

अपराधानिमान् श्रुत्वा रावणः कोपमागतः । अबन्धयत्तमाहूय विनाग लोहशृङ्खलैः ॥२२९॥
उपविष्टोऽर्कसङ्काशो दशास्य सिंहविष्टरे । पूजायोऽर्थ्य पुरा वातिमाक्रोशदिति निर्दयम् ॥२३०॥
उद्वृत्तोऽयमसौ पाप निरपेक्षस्त्रपोज्झित । अधुनैतस्य का छाया धिगेतेनेक्षितेन किम् ॥२३१॥
व्यापाद्यते[1] न किं दुष्ट कर्ता नानागसामयम् । कथं न गणितं पूर्वं मम दाक्षिण्यमुन्नतम् ॥२३२॥
ततस्तन्मण्डलप्रान्तस्थिता प्रवरविभ्रमा । महाभाग्या विलासिन्यो नवयौवनपूजिता ॥२३३॥
कोपस्मितसमायुक्ता निर्मीलितविलोचना । विधाय शिरस कम्पमेवमूचुरनादरात् ॥२३४॥
प्रसादाद्यस्य यातोऽसि प्रभुता क्षितिमण्डले । पृथिव्या विचरन् स्वेच्छं समस्तबलवर्जित ॥२३५॥
एतत्तत्स्वामिनः प्रीतेर्भवता दर्शितं फलम् । भूमिगोचरदूतत्वं यत्प्राप्तोऽस्यतिनिन्दितम् ॥२३६॥
सुकृतं दशवक्त्रस्य कथमाधाय पृष्ठत । वसुधाहिण्डनक्लिष्टौ भवता तौ पुरस्कृतौ ॥२३७॥
पवनस्य सुतो न त्वं जातोऽस्यन्येन केनचित् । अदृष्टमकुलीनस्य निवेदयति चेष्टितम् ॥२३८॥
चिह्नानि विटजातस्य सन्ति नाङ्गेषु कानिचित् । अनार्यमाचरन् किञ्चिज्जायते नीचगोचरः ॥२३९॥
मत्ताः केसरिणोऽरण्ये शृगालानाश्रयन्ति किम् । नहि नीचं समाश्रित्य जीवन्ति कुलजा नरा ॥२४०॥
सर्वस्वेनापि य पूज्यो यद्यप्यसकृदागत । सुचिरादागतो द्रोही त्वं निग्राह्यस्तु वर्तसे ॥२४१॥
इमैर्निगदितैः क्रोधात् प्रहस्योवाच मारुति. । को जानाति विना पुण्यैर्निग्राह्यः को विधेरिति ॥२४२॥

श्मशानके वृक्षोंके समान जान पड़ने लगी है ॥२२८॥ हनूमानके इन अपराधोंको सुनकर रावण क्रोधको प्राप्त हुआ तथा विशिष्ट प्रकारके नागपाशसे वेष्टित हुए उसे समीपमें बुलाकर लोहेकी साँकलोंसे बँधवा दिया ॥२२९॥

तदनन्तर सिंहासनपर बैठा, सूर्यके समान देदीप्यमान रावण, पहले जिसकी पूजा करता था ऐसे हनूमानके प्रति निर्दयताके साथ इस प्रकार कठोर वचन बकने लगा ॥२३०॥ कि यह दुराचारी है, पापी है, निरपेक्ष है, निर्लज्ज है, अब इसकी क्या शोभा है ? इसे धिक्कार है, इसके देखनेसे क्या लाभ है ? ॥२३१॥ नाना अपराधोंको करनेवाला यह दुष्ट क्यों नहीं मारा जाय ? अरे ! मैंने पहले इसके साथ जो अत्यन्त उदारताका व्यवहार किया इसने उसे कुछ भी नहीं गिना ॥२३२॥ तदनन्तर रावणके समीप ही उत्तम चेष्टाओंसे युक्त महाभाग्यशाली एवं नवयौवनसे सुशोभित जो विलासिनी स्त्रियाँ खड़ी थीं वे क्रोध तथा मन्द हास्यसे युक्त हो नेत्र बन्द करतीं तथा शिर हिलाती हुई अनादरसे इस प्रकार कहने लगीं कि हे हनूमान् ! तू जिसके प्रसादसे पृथिवीमण्डलपर प्रभुताको प्राप्त हुआ है तथा समस्त प्रकारके बलसे रहित होकर भी पृथिवीपर इच्छानुसार सर्वत्र भ्रमण करता है ॥२३३–२३५॥ उस स्वामीकी प्रसन्नताका तूने यह फल दिखाया है कि भूमिगोचरियोंकी अतिशय निन्दनीय दूतताको प्राप्त हुआ है ॥२३६॥ रावणके द्वारा किये हुए उपकारको पीछे कर तुमने पृथिवीपर परिभ्रमण करनेसे खेदको प्राप्त हुए राम लक्ष्मणको कैसे आगे किया ॥२३७॥ जान पड़ता है कि तू पवनञ्जयका पुत्र नहीं है, किसी अन्यके द्वारा उत्पन्न हुआ है, क्योंकि अकुलीन मनुष्यकी चेष्टा ही उसके अदृष्ट कार्यको सूचित कर देती है ॥२३८॥ जारसे उत्पन्न हुए मनुष्यके शरीरपर कोई चिह्न नहीं होते, किन्तु जब वह खोटा आचरण करता है तभी नीच जान पड़ता है ॥२३९॥ वनमें क्या मदोन्मत्त सिंह सियारोंकी सेवा करते हैं ? ठीक ही कहा है कि कुलीन मनुष्य नीचका आश्रय लेकर जीवित नहीं रहते ॥२४०॥ तू यद्यपि पहले अनेक बार आया फिर भी सर्वस्वके द्वारा पूज्य रहा परन्तु अबकी बार बहुत काल बाद आया और राजद्रोही बनकर आया अतः निग्रह करनेके योग्य है ॥२४१॥ इन वचनोंसे हनूमानको क्रोध आ गया जिससे वह हँस कर बोला कि कौन जानता है पुण्यके बिना विधाताका

१. व्यापादितेन म० ।

स्वयं दुर्मतिना सार्द्धमनेनासन्नमृत्युना । इतो दिनैः कतिपयैर्द्रक्ष्याम क्व प्रयास्यथ ॥२४३॥
सौमित्रिः सह पद्मेन बलोत्तुङ्गः समापतन् । न मेघ इव सरोद्धुं नगैः शक्यो भवेन्नृपैः ॥२४४॥
अतृप्तः परमाहारैः कामिकैरमृतोपमैः । याति कश्चिद्यथा नाशमेकेन विषबिन्दुना ॥२४५॥
अतृप्तः स्त्रीसहस्रौघैरिन्धनैरिव पावकः । परस्त्रीतृष्णया सोऽयं विनाशं क्षिप्रमेष्यति ॥२४६॥
या येन भाविता बुद्धिः शुभाशुभगता दृढम् । न सा शक्याऽन्यथाकर्त्तुं पुरन्दरसमैरपि ॥२४७॥
निरर्थकं प्रियशतैर्दुर्मतौ दीयते मतिः । नूनं विहितमस्यैतद्विहितेन हतो हतः ॥२४८॥
प्राप्ते विनाशकालेऽपि बुद्धिर्जन्तोर्विनश्यति । विधिना प्रेरितस्तेन कर्म्मपाकं विचेष्टते ॥२४९॥
मर्त्यधर्मा[1] यथा कश्चित्सुगन्धि मधुरं पयः । प्रमादी विषसम्मिश्रं पीत्वा ध्वंसं प्रपद्यते ॥२५०॥
तथाविधो दशास्य त्वं परस्त्रीसुखलोलुपः । वचनेन[2] विना क्षिप्रं विनाशं प्रतिपत्स्यते ॥२५१॥
गुरून् परिजनं वृद्धान् मित्राणि प्रियबान्धवान् । मात्रादीनपकर्ण्य त्वं[3] प्रवृत्तः पापवस्तुनि ॥२५२॥
कदाचारसमुद्रे त्वं मदनावर्तमध्यगः । प्राप्तो नरकपातालं कष्टं दुःखमवाप्स्यसि ॥२५३॥
त्वया दशास्य जातेन महारत्नश्रवो नृपात् । अन्वयोऽयमपुत्रेण रक्षसां क्षयमाहृतः ॥२५४॥
अनुपालितमर्यादाः क्षितौ पूजितचेष्टिताः । पुङ्गवा भवतो वश्यास्त्वं तु[4] तेषां पुलाकवत् ॥२५५॥
इत्युक्तः क्रोधसरक्तः खड्गमालोक्य रावणः । जगाद दुर्विनीतोऽयं सुदुर्वचननिर्भरः ॥२५६॥
त्यक्तमृत्युभयो विभ्रत्प्रगल्भत्वं ममाग्रतः । द्राक् खलीक्रियतां मध्ये नगरस्य दुरीहितः ॥२५७॥

निग्राह्य-दण्ड देने योग्य कौन है ॥२४२॥ जिसकी मृत्यु निकट है ऐसे इस दुर्बुद्धिके साथ स्वयं ही यहाँ कुछ दिनोमें देखेंगे कहाँ जाओगे ॥२४३॥ प्रचण्ड बलका धारी लक्ष्मण रामके साथ आ रहा है सो जिसप्रकार पर्वत मेघको नही रोक सकते उसी प्रकार राजा उसे नही रोक सकते ॥२४४॥ जिस प्रकार इच्छानुसार प्राप्त हुए अमृत तुल्य उत्तम आहारोसे तृप्त नहीं होने वाला कोई मनुष्य विषकी एक बूँदसे नाशको प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जो ईंधनोंसे अग्निके समान हजारों स्त्रियोके समूहसे तृप्त नहीं हुआ ऐसा यह दशानन परस्त्रीकी तृष्णासे शीघ्र ही नाशको प्राप्त होगा ॥२४५–२४६॥ जिसने जो शुभ-अशुभ बुद्धि प्राप्त की है उसे इन्द्रके समान पुरुष भी अन्यथा करनेके लिए समर्थ नहीं है ॥२४७॥ दुर्बुद्धि मनुष्यके लिए सैकडो प्रियवचनोंके द्वारा हितका उपदेश व्यर्थ ही दिया जाता है। जान पड़ता है कि इसकी यह होनहार निश्चित ही है अत वह अपनी होनहारसे ही नष्ट होता है ॥२४८॥ विनाशका अवसर प्राप्त होनेपर जीवकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। सो ठीक है, क्योंकि भवितव्यताके द्वारा प्रेरित हुआ यह जीव कर्मोदयके अनुसार चेष्टा करता है ॥२४९॥ जिस प्रकार कोई प्रमादी मनुष्य विषमिश्रित सुगन्धित मधुर दुग्ध पीकर विनाशको प्राप्त होता है उसी प्रकार हे रावण! तू परस्त्री सुखका लोभी हुआ बिना कुछ कहे ही शीघ्र ही विनाशको प्राप्त होगा ॥२५०–२५१॥ गुरु, परिजन, वृद्ध, मित्र, प्रियबन्धु तथा माता आदिको अनसुना कर तू पापकर्ममे प्रवृत्त हुआ है ॥२५२॥ तू दुराचार रूपी समुद्रमे कामरूपी भ्रमरके बीच फँसकर नीचे नरकमे जावेगा और वहाँ अतिशय दुःख प्राप्त करेगा॥२५३॥ हे दशानन! महाराजा रत्नश्रवासे उत्पन्न हुए तुझ अधम पुत्रने राक्षसोंका वंश नष्ट कर दिया ॥२५४॥ तुम्हारे वंशज पृथिवीपर मर्यादाका पालन करनेवाले प्रशस्त चेष्टाके धारक उत्तम पुरुष हुए परन्तु तू उन सबमें छिलकेके समान निःसार हुआ है ॥२५५॥

इस प्रकार कहनेपर रावण क्रोधसे लाल हो गया। वह कृपाणकी ओर देखकर बोला कि यह उद्दण्ड अत्यधिक दुर्वचनोंसे भरा है तथा मृत्युका भय छोड़कर मेरे सामने बड़प्पन धारण कर रहा है अतः नगरके बीच ले जाकर इस दुष्ट की शीघ्र ही दुर्दशा की जाय ॥२५६–२५७॥

---

१. सत्यधर्मो म० । २ वमनेन म० । ३. तपकर्मत्व म० । ४. नु म० ।

सशब्दैरायतै स्थूलैर्बद्धो रज्जुभिरायसै । ग्रीवाग्रा हस्तपादे च रेणुरूक्षितविग्रह ॥२५८॥
वेष्टित किङ्करै क्रूरैर्भ्राम्यतां च गृहे गृहे । हास्यमान खरैर्वाक्यै कृतमण्डलपूत्कृत. ॥२५९॥
इमक वनिता दृष्ट्वा नराश्च पुरवासिन । शोचन्ति कृतधिक्कारा विकृता कम्पितानना ॥२६०॥
क्षितिगोचरदूतोऽय सोऽयं दूत प्रपूजित । पश्यतैनमिति स्वान पुरे सर्वत्र घोष्यताम् ॥२६१॥
ततस्तैर्विविधाक्रोशै सम्प्राप्त कोपमुत्तमम् । अयासीद् बन्धन छित्वा मोहपाश यथा यति' ॥२६२॥
पादविन्यासमात्रेण भक्त्वा गोपुरमुन्नतम् । द्वाराणि च तथान्यानि खमुत्पत्य ययौ मुदा ॥२६३॥
शक्रप्रासादसङ्काश भवन रक्षसा विभो' । हनूमत्पादघातेन विस्तीर्णं स्तम्भसङ्कुलम् ॥२६४॥
पतता वेश्मना तेन यन्त्रितापि महानगै । धरणी कम्पमानीता पादवेगानुघातत. ॥२६५॥
भूमिसम्प्राप्तसौवर्णप्राकार रन्ध्रगह्वरम् । वज्रचूर्णितशैलाभ जात दाशमुख गृहम् ॥२६६॥
कपिमौलिभृतामीश श्रुत्वैवविधविक्रमम् । प्रमोद जानकी प्राप्ता विषाद च मुहुर्मुहु ॥२६७॥
वज्रोदरी ततोऽवोचत् कि वृथा देवि रोदिषि । सन्त्रोट्य शृङ्खल पश्य यात मारुतिमम्बरम् ॥२६८॥
निशम्य वचन तस्या विकसन्नेत्रपङ्कजा । गच्छन्त मारुति दृष्ट्वा निजसैन्यसमागतम् ॥२६९॥
अचिन्तयदय वार्ता मह्य नाथस्य मे ध्रुवम् । कथयिष्यति यस्यैष गच्छत प्रवरो जवः ॥२७०॥
पृष्ठतश्चास्य सानन्दा पुष्पाञ्जलिममुञ्चत । समाधानपरा भूत्वा श्रीरिवेशस्य तेजसाम् ॥२७१॥
उवाच च प्रहृा सर्वे भवन्तु सुखदास्तव । हतविघ्नश्चिरजीव भोगवान् वायुनन्दन ॥२७२॥

शब्द करनेवाली लम्बी मोटी लोहेकी साकलोसे इसे गरदन तथा हाथो और पैरोमे कसकर बॉधा जाय, धूलिसे इसकी शरीर धूसर किया जाय, दुष्ट किंकर इसे घेर कर कठोर वचनोसे इसकी हँसी करे तथा घर-घर घुमावे। इस दुर्दशासे यह रो उठेगा ॥२५८-२५९॥ इसे देख स्त्रियॉ तथा नगरके लोग धिक्कार देते तथा मुखको विकृत और कम्पित करते हुए इसके प्रति शोक प्रकट करेगे ॥२६०॥ इसके आगे-आगे नगरमे सर्वत्र यह घोषणा की जाय कि यह वही सम्मानको प्राप्त हुआ भूमिगोचरीका दूत है इसे सब लोग देखे ॥२६१॥

तदनन्तर उन विविध प्रकारके अपशब्दोसे परम क्रोधको प्राप्त हुआ हनूमान बन्धनको छेड़कर उस प्रकार चला गया जिस प्रकार कि यति मोहरूपी पाशको छेद कर चला जाता है ॥२६२॥ वह पैर रखने मात्रसे उन्नत गोपुर तथा अन्य दरवाजोको तोड़कर हर्ष पूर्वक आकाश मे जा उड़ा ॥२६३॥ रावणका जो भवन इन्द्रभवनके समान था वह हनूमानके पैरकी आघातसे इस प्रकार बिखर गया कि उसमें खाली खम्भे-ही-खम्भे शेष रह गये ॥२६४॥ यद्यपि वहॉकी पृथिवी बड़े-बड़े पर्वतोसे जकड़ी हुई थी तथापि चरणोके वेगके अनुघातसे गिरते हुए उस भवनके द्वारा हिल उठी ॥२६५॥ जिसका स्वर्णमय कोट भूमिमे मिल गया था तथा जिसमे अनेक गहरे गड्ढे हो गये थे ऐसा रावणका घर वज्रसे चूर-चूर हुए पर्वतके समान हो गया ॥२६६॥ मुकुटमें कपिका चिह्न धारण करने वाले वानरवंशियोके राजा हनूमानको इस प्रकारका पराक्रमी सुन सीता हर्षको प्राप्त हुई तथा बन्धनका समाचार सुन बार-बार विषादको प्राप्त हुई ॥२६७॥ तदनन्तर पासमें बैठी हुई वज्रोदरीने कहा कि हे देवि! व्यर्थ ही क्यों रुदन करती हो ? देखो, वह हनूमान बन्धन तोड़कर आकाशमे उड़ा जा रहा है ॥२६८॥ उसके उक्त वचन सुन तथा अपनी सेनाके साथ हनूमानको जाता देख सीताके नयन-कमल खिल उठे ॥२६९॥ वह विचार करने लगी कि जिसका जाते समय यह तीव्र वेग है ऐसा यह हनूमान अवश्य ही मेरे लिए मेरे नाथकी वार्ता कहेगा ॥२७०॥ इस प्रकार विचार कर सावधान चित्त की धारक सीताने हर्ष पूर्वक हनूमानके पीछे उस प्रकार पुष्पाञ्जलि छोड़ी जिस प्रकार कि लक्ष्मी तेजके स्वामीके पीछे छोड़ती है ॥२७१॥ साथ ही उसने यह कहा कि हे पवन

१. रायतैः म० । २ कृताधिकारा म० ।

मालिनीवृत्तम्

इति सुविहितवृत्ता पूर्वजन्मन्युदारा सकलभुवनरोधिव्याप्तकीर्तिप्रधाना. ।
अभिसरपरिमुक्ता कर्म तत्कर्तुमीशाः जनयति परम तद्विस्मय दुर्विचिन्त्यम् ॥२७३॥
भजत सुकृतसङ्ग तेन निमुच्य सर्वं विरसफलविधायि क्षुद्रकर्म प्रयत्नात् ।
भवत परमसौख्यास्वादलोभप्रसक्ता परिजितरविभासो जन्तव. कान्तलीला ॥२७४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनूमत्प्रत्याभिगमन नाम त्रिपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५३॥



पुत्र ! समस्त ग्रह तेरे लिए सुखदायक हो तथा तू विघ्नोको नष्ट कर भोग युक्त होता हुआ चिरकाल तक जीवित रह ॥२७२॥ गौतम स्वामी कहते है कि हे राजन् ! जिन्होने पूर्वजन्ममे उत्तम आचरण किया है, जो उदार है, तथा जिनकी कीर्तिका समूह समस्त संसारमे व्याप्त है ऐसे मनुष्य परिभ्रमणसे रहित हो वह कर्म करनेके लिए समर्थ होते हैं जो कि बहुत भारी अचिन्तनीय आश्चर्य उत्पन्न करता है ॥२७३॥ इसलिए नीरस फल देनेवाले समस्त क्षुद्र कर्मको प्रयत्न पूर्वक छोड कर एक पुण्यका ही समागम प्राप्त करो जिससे परम सुखके आस्वादके लोभी हो, पुरुष अपनी प्रभासे सूर्यकी प्रभाको जीतने वाला एवं मनोहर लीलाओका धारक होता है॥२७४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमे हनूमान्के लौटने आदिका वर्णन करनेवाला तिरपनवॉ पर्व समाप्त हुआ ॥५३॥

७, बोधिश्लाघ्या -म० ।

चतुःपञ्चाशत्तमं पर्व

अथाससाद कैष्किन्ध हनूमान् बलमग्रतः । विधाय [1]पुरिविध्वस्तध्वजछत्रादिचारुतम् ॥१॥
बहिर्निष्क्रान्तकैष्किन्धिजनसागरवीक्षित. । विवेश नगर धीरो निसर्गोदारविभ्रम ॥२॥
[2]विक्षिताङ्गान् महायोधान् दृष्ट्वा नगरयोषिताम् । गवाक्षार्पितवक्त्राणा सभ्रम परमोऽभवत् ॥३॥
प्राप्य च वासमात्मीय हितो भूत्वा पिता यथा । वातिरावासयत्[3] सैन्य यथायोग्य समन्तत ॥४॥
तत सुग्रीवराजेन सगत्य ज्ञापितक्रिय । जगाम पद्मनाभस्य पादमूल निवेदितुम् ॥५॥
प्रिया जीवति ते भद्रेत्येवमागत्य मारुतिः । वेदयिष्यति मे साधुरिति चिन्तामुपागतम् ॥६॥
क्षीणमत्यभिरामाङ्ग क्षीयमाण निरङ्कुशम् । वियोगवह्निना नाग दावेनैवाकुलीकृतम् ॥७॥
वर्तमान महाशोकपाताले द्विष्टविष्टपम् । पद्म वातिरुपासर्पन् मूर्धन्यस्तकराम्बुरुट् ॥८॥
प्रथम वातिना हर्षभ्रियमाणोरुचक्षुषा । वक्त्रेण जानकीवार्ता शिष्टावाचा[4] ततोऽखिला ॥९॥
अभिज्ञानादिक सर्वं निवेद्योक्त स सीतया । चूडामणि नरेन्द्राय समर्प्यागात् कृतार्थताम् ॥१०॥
चिन्तयेव हतच्छाय निषण्ण श्रान्तवत्करे[5] । शोकक्लान्त इवासीत्स वेणीबन्धमलीमसः ॥११॥

अथानन्तर—जिसकी ध्वजाओ और छत्रादिकी सुन्दरता नष्ट हो गई थी ऐसी सेना आगे कर हनूमान् किष्किन्धा नगरीको प्राप्त हुआ ॥१॥ तदनन्तर किष्किन्धा निवासी मनुष्योंकी सागरके समान अपार भीड़ने बाहर निकल कर जिसके दर्शन किये थे, जो धीर था तथा स्वभावसे ही उत्तम चेष्टाओंका धारक था ऐसे हनूमान्ने नगरमे प्रवेश किया ॥२॥ उस समय क्षत-विक्षत शरीरके धारक महायोधाओंको देखनेके लिए जिन्होंने झरोखोंमे मुख लगा रक्खे थे, ऐसी नगर-निवासिनी स्त्रियोंमे बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ ॥३॥ तत्पश्चात् अपने निवास स्थान पर आकर हनूमान्ने पिताकी तरह हितकारी हो सेनाको सब ओर यथायोग्य ठहराया ॥४॥ तदनन्तर राजा सुग्रीवके साथ मिलकर, लकामे जो कार्य हुआ था वह उसे बतलाया । तत्पश्चात् समाचार देनेके लिए रामके चरणमूलमे गया ॥५॥ उस समय श्रीराम इस प्रकारकी चिन्ता करते हुए बैठे थे कि सत्पुरुष हनूमान् आकर मुझसे कहेगा कि हे भद्र ! तुम्हारी प्रिया जीवित है ॥६॥ अत्यन्त सुन्दर शरीरके धारक राम क्षीण हो चुके थे तथा उत्तरोत्तर क्षीण होते जा रहे थे । वे वियोगरूपी अग्निसे उस तरह आकुलित हो रहे थे जिस तरह कि दावानलसे कोई हाथी आकुलित होता है ॥७॥ वे महा शोकरूपी पातालमें विद्यमान थे तथा समस्त ससारसे उन्हें द्वेष उत्पन्न हो रहा था । हनूमान् हस्तकमल जोड़कर तथा मस्तकसे लगाकर उनके पास गया ॥८॥ प्रथम तो हनूमान्ने, जिसके विशाल नेत्र, हर्षसे युक्त थे ऐसे मुखके द्वारा जानकीका समाचार कहा और उसके बाद उत्तम वचनोके द्वारा सब समाचार प्रकट किया ॥९॥ सीताने जो कुछ अभिज्ञान अर्थात् परिचय कारक वृत्तान्त कहे थे वे सब कह चुकनेके बाद उसने राजा रामचन्द्रके लिए चूडमणि दिया और इस तरह वह कृतकृत्यताको प्राप्त हुआ ॥१०॥ वह चूडामणि कान्ति रहित था, सो ऐसा जान पड़ता था मानो चिन्ताके कारण ही उसकी कान्ति जाती रही हो । वह रामके हाथमे इस प्रकार विद्यमान था मानो थककर ही बैठा हो और सीताकी चोटीमे बँधे रहनेसे मलिन हो गया था सो ऐसा जान पड़ता था मानो शोकसे ही दुःखी होकर मलिन हो

१ पुरविध्वस्तध्वज -क० । पुरि विस्रस्त ख० । २. वीक्षिताङ्गान् म० । ३ -राश्वासयन् म० । ४. शिष्टवाचा म० । ५. शान्तवक्त्रकः म० ।

पद्मस्याञ्जिलयातोऽसौ पतद्वाष्पो हतप्रभ । दृश्य दृष्टो नु पीतो नु वार्ता पृष्टानु सम्भ्रमान् ॥१२॥
आसीनमञ्जलावेन दौर्बल्यविरलाङ्गुलौ । गलत्किरणधारौघ शुशोच धरणीपति ॥१३॥
पूरिताञ्जलिमंशूनामालोकेन तमानने । चक्रे सोऽपि रुदित्वैव नरेश सलिलाञ्जलिम् ॥१४॥
प्रियायास्तदभिज्ञान यत्राप्यङ्गे नियोजितम् । तेन तस्यापि वैदेहीपरिष्वङ्ग इवाभवत् ॥१५॥
सर्वव्यापी समुद्भिन्नो रोमाञ्च कर्कशो घन । अङ्गेष्वसम्भवस्तस्य प्रमोद इव निर्झर ॥१६॥
अपृच्छच्च परिष्वज्य मारुति कृतसम्भ्रम । अपि सत्य प्रिया प्राणान् धारयत्यतिकोमला ॥१७॥
जगाद प्रणतो वाति नाथ जीवति नान्यथा । मया वार्त्ता समानीता सुखी भव इलापते ॥१८॥
किन्तु त्वद्विरहोदारदावमध्यविवर्तिनी । गुणौघनिम्नगा बाला नेत्राम्बुकृतदुर्दिना ॥१९॥
वेणीबन्धच्युतिच्छायमूर्द्धजात्यन्तदु खिता । मुहुर्निश्वसती दीन चिन्तासागरवर्तिनी ॥२०॥
तनूदरी स्वभावेन विशेषेण वियोगत । आराध्यमानिका स्त्रीभि क्रुद्धाभी रक्षसा विभो ॥२१॥
सतत चिन्तयन्ती त्वा त्यक्तसर्वतनुस्थिति । दु ख जीवति ते कान्ता कुरु देव यथोचितम् ॥२२॥
सामीरणिवच श्रुत्वा म्लानपद्मेक्षणश्चिरम् । चिन्तयाकुलित पद्मो बभूवात्यन्तदु खित ॥२३॥
दीर्घमुष्ण च निश्वस्य स्रस्तालसशरीरभृत् । निनिन्द जीवित स्वस्य जन्म चानेकधा भृशम् ॥२४॥

गया हो ॥११॥ वह प्रभाहीन चूडामणि रामकी अञ्जलिमे पहुँचकर ऐसा लगने लगा मानो अश्रु ही छोड रहा हो। रामने उसे बडी उत्सुकताके कारण नेत्रोंसे देखा था, या पिया था, या उससे कुशल समाचार पूछा था सो कहनेमे नही आता ॥१२॥ दुर्बलताके कारण जिसकी अगुलियॉ विरल हो गई थी ऐसी अञ्जलिमे विद्यमान तथा जिससे किरणरूपी धागाओंका समूह झर रहा था ऐसे उस चूडामणिके प्रति रामने शोक प्रकट किया ॥१३॥ तदनन्तर किरणोंके प्रकोशसे जिसने अञ्जलि भर दी थी ऐसे उस चूडामणिको रामने मस्तक पर धारण किया। उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो उस चूडामणिने स्वय रोकर ही जलकी अञ्जलि भर दी हो ॥१४॥ प्रियाके उस अभिज्ञानको रामने अपने जिस अङ्गपर धारण किया उसीने मानो सीताका आलिङ्गन प्राप्त कर लिया था ॥१५॥ उस समय उनके समस्त अङ्गोंमे जिसकी सभावना भी नहीं थी ऐसा सर्वव्यापी, कठोर तथा सघन रोमाञ्च निकल आया मानो हर्षका निर्झर ही फूट पड़ा हो ॥१६॥ रामने बड़े संभ्रमके साथ हनूमान्‌का आलिङ्गन कर उससे पूछा कि क्या सचमुच ही मेरी कोमलाङ्गी प्रिया प्राण धारण कर रही है—जीवित है ? ॥१७॥ इसके उत्तरमे हनूमान्‌ने नम्रीभूत होकर कहा कि हे नाथ! जीवित है। मै अन्यथा समाचार नहीं लाया हूँ, हे राजन्! सुखी होइए ॥१८॥ किन्तु इतना अवश्य है कि गुणोंके समूहकी नदी स्वरूप वह बाला तुम्हारे विरहरूपी दावानलके मध्यमे वर्तमान है, अश्रुओंके द्वारा दुर्दिन बना रही है—निरन्तर वर्षा करती रहती है ॥१९॥ वेणीबन्धनके छूट जानेसे उसके केश कान्तिहीन हो गये है, वह अत्यन्त दु खी है, बार-बार दीनतापूर्वक सासे भरती है और चिन्तारूपी सागरमे डूबी है ॥२०॥ वह कृशोदरी तो स्वभावसे ही थी पर अब आपके वियोगसे और भी अधिक कृशोदरी जान पड़ती है। रावणकी क्रोधभरी स्त्रियॉ उसकी निरन्तर आराधना करती रहती है ॥२१॥ वह शरीरकी सर्व चिन्ता छोड़ निरन्तर आपकी ही चिन्ता करती रहती है। इस तरह हे देव! आपकी प्रियवल्लभा दु'खमय जीवन व्यतीत कर रही है अत यथायोग्य प्रयत्न कीजिए ॥२२॥ हनूमान्‌के उक्त वचन सुन कर रामके नेत्रकमल म्लान हो गये। वे बहुत देर तक चिन्तासे आकुलित हो अत्यन्त दु'खी हो उठे ॥२३॥ शिथिल एवं अलसाये शरीरको धारण करनेवाले राम लम्बी तथा गरम सांस

१. जातोऽसौ म०। २. पृष्टानुसम्भ्रमात् म०। ३. रुदित्वा च० म०। ४ हे महीपते!। ५. च्युतच्छाय ख०।

ततस्तदिङ्गितं ज्ञात्वा सौमित्रिरिदमब्रवीत् । किं शोचसि महाबुद्धे कर्तव्ये दीयतां मनः ॥२५॥
लक्ष्यते दीर्घसूत्रत्वं किष्किन्धनगरप्रभोः । कृताह्वानश्च भूयोऽपि सीताभ्राता चिरायति ॥२६॥
[1]दशास्यस्य नगरीं श्वो गन्तास्मः विसंशयम् । नौभिरर्णवमुत्तीर्य बाहुभ्यामेव वा द्रुतम् ॥२७॥
अथोचे सिंहनादाख्यो मधुरो खेचरो महान् । अभिमानिसमं मैवं भाषिष्ठाः कोविदो भवान् ॥२८॥
भवतो या गतिः सैव जाताऽस्माकमिहाधुना । अतो निरूप्य कर्तव्यं सर्वेभ्यो हितमादरात् ॥२९॥
गत्वा पवनपुत्रेण सप्राकाराट्टि[3]गोपुरा । लङ्का विध्वंसिता तेन सोद्यानोपवनान्विता ॥३०॥
अधुना रावणे क्रुद्धे महाविद्याधराधिपे । सङ्घातमृत्युरस्माकं सम्प्राप्तोऽय विधेर्वशात् ॥३१॥
ऊचे चन्द्रमरीचिश्च परं वचनमूर्जितम् । किं त्वं हरेरिव प्राप्तः सन्त्रासं मृगवत्परम् ॥३२॥
बिभेति दशवक्त्राह्व[4]को वासौ किं प्रयोजनम् । अन्यायकारिणस्तस्य वर्तते मृत्युरग्रतः ॥३३॥
अस्माकं बहवः सन्ति खेचरेन्द्रा महारथाः । विद्याविभवसम्पन्नाः कृताश्चर्याः सहस्रशः ॥३४॥
ख्यातो घनगतिस्तीव्रो भूतनादो गजस्वनः । क्रूरः केलीकिलो भीमः कुण्डो गोरतिरङ्गदः[5] ॥३५॥
नलो नीलो तडिद्वक्त्रो मन्दरोऽशनिरर्णवः । चन्द्रज्योतिर्मृगेन्द्राह्वो वज्रदंष्ट्रो दिवाकरः ॥३६॥
उल्कालाङ्गूलदिव्यास्त्रप्रत्यूहोज्झितपौरुषः । हनूमान् सुमहाविद्यः प्रभामण्डलसुन्दरः ॥३७॥
महेन्द्रकेतुरत्युग्रसमीरणपराक्रमः । प्रसन्नकीर्तिरुद्वृत्तः सुतास्तस्य महाबलाः ॥३८॥

भरकर अपने जीवनकी अनेक प्रकारसे अत्यधिक निन्दा करने लगे ॥२४॥ तदनन्तर उनकी चेष्टा जानकर हनूमान्‌ने यह कहा कि हे महाबुद्धिमान ! शोक क्यों करते हो ? कर्तव्यमें मन दीजिए ॥२५॥ किष्किन्ध नगरके राजा सुग्रीवकी दीर्घसूत्रता जान पड़ती है और सीताका भाई भामण्डल बार-बार बुलाने पर भी देर कर रहा है ॥२६॥ इसलिए हम लोग नौकाओं अथवा भुजाओंसे ही शीघ्र समुद्रको तैर कर कल ही निःसन्देह नीच रावणकी नगरी लंकाको चलेंगे ॥२७॥

तदनन्तर सिंहनाद नामक महाबुद्धिमान् विद्याधरने कहा कि इस तरह अभिमानीके समान मत कहो । आप विद्वान् पुरुष हैं ॥२८॥ आपकी जो दशा लंकामें हुई है वही इस समय यहाँ हम लोगोंकी होगी इसलिए आदरपूर्वक सब कुछ निश्चयकर हितकारी कार्य करना चाहिए ॥२९॥ पवन पुत्र हनूमान्‌ने कोट, अट्टालिकाएँ तथा गोपुरोंसे सहित एवं बाग-बगीचोंसे सुशोभित लंकापुरीको नष्ट किया है ॥३०॥ इसलिए महाविद्याधरोंका अधिपति रावण इस समय क्रुद्ध हो रहा है और उसके क्रुद्ध होनेपर दैव वश हम सबको यह सामूहिक मृत्यु प्राप्त हुई है ॥३१॥

तदनन्तर चन्द्रमरीचि नामक विद्याधरने अत्यन्त ओजपूर्ण वचन कहे कि क्या तुम सिंहसे हरिणके समान अत्यन्त भयको प्राप्त हो रहे हो ? ॥३२॥ भयभीत तो रावणको होना चाहिए अथवा वह कौन है और उससे क्या प्रयोजन है ? उसने अन्याय किया है इसलिए मृत्यु उसके आगे नाच रही है ॥३३॥ हमारे पास ऐसे बहुत विद्याधर राजा हैं जो महावेग शाली हैं तथा जिन्होंने हजारों बार अपने चमत्कार दिखाये हैं ॥३४॥ उनके नाम हैं घनगति, तीव्र, भूतनाद, गजस्वन, क्रूर, केलीकिल, भीम, कुण्ड, गोरति, अङ्गद, नल, नील, तडिद्वक्त्र, मन्दर, अशनि, अर्णव, चन्द्रज्योति, मृगेन्द्र, वज्रदंष्ट्र, दिवाकर, उल्का और लाङ्गूल नामक दिव्य अस्त्रोंके समूहमें निर्बाध पौरुषको धारण करनेवाला हनूमान्, महाविद्याओंका स्वामी भामण्डल, तीक्ष्ण पवनके समान पराक्रमका धारक महेन्द्रकेतु, अद्भुत पराक्रमी प्रसन्नकीर्ति और उसके महाबलवान् पुत्र । इनके सिवाय किष्किन्धनगरके स्वामी राजा सुग्रीवके और भी अनेक

---

१. 'दशास्य नगरीं श्वो हि गन्तास्मेति विसंशयम्' म० । २. भाषिष्ट म० । ३. सप्राकाराद्रिगोपुरा म० । ४. वक्त्राख्यः ख० । ५. गोरविरगदः ज० ।

किष्किन्धस्वामिनोऽन्येऽपि सामन्ता परमौजस । विद्यन्ते[1]ऽक्षतकर्म्माणो निर्भृत्या शासनैषिण ॥३९॥
ततस्तद्वचन श्रुत्वा खेचराश्चक्षुरानतम्[2] । लक्ष्मीधराग्रज तेन निदधुर्विनयान्वितम् ॥४०॥
अथेक्षाञ्चक्रिरे तस्य वदनेऽव्यक्तसौम्यके । भ्रुकुटीजालक भीम मृत्योरिव लतागृहम् ॥४१॥
लङ्काया तेन विन्यस्ता दृष्टि शोणस्फुरत्विषम् । केतुरेखामिवोद्याताम् राक्षसक्षयशंसिनीम् ॥४२॥
तामेव च पुनर्न्यस्ता चिरमध्यस्थता गते । [3]दृढस्थाम्नि निजे चापे कृतान्तभ्रूलतोपमे ॥४३॥
कोपकम्पश्लथ चास्य केशभार स्फुरद्युतिम् । निधानमिव कालस्य निरोद्धु तमसा जगत् ॥४४॥
तथाविध च तद्वक्त्र ज्योतिर्वलयमध्यगम् । [4]जरठीभवदुत्पातप्रभाभास्करसन्निभम् ॥४५॥
गृहीतगमनक्ष्वेड[5] रक्षसा नाशनायतम् । दृष्ट्वा ते गमने सज्जा जाता सम्भ्रान्तमानसा ॥४६॥
राघवाकूतनुन्नास्ते सम्पूज्येन्दुश्रुतेगिराम् । चलिता व्योमगाश्चित्रहेतय सम्पदान्विता ॥४७॥
प्रयाणतूर्यसङ्घात नादपूरितगह्वरम् । [6]दापयित्वा रणोत्सुक्यौ प्रस्थितौ रघुनन्दनौ ॥४८॥
बहुले मार्गशीर्षस्य पञ्चम्यामुदिते रवौ । सोत्साहै शकुनैरेभिस्तेषा ज्ञेय प्रयाणकम् ॥४९॥
दक्षिणावर्त्तनिर्धूमज्वाला रम्यस्वन शिखी । परमालङ्कृता नारी सुरभिप्रेरकोऽनिलः ॥५०॥
निर्ग्रन्थसयतश्छत्र गम्भीर वाजिहेषितम् । घण्टानिस्वनित कान्त कलशो दधिपूरित ॥५१॥

महापराक्रमी सामन्त है जो कार्यको प्रारम्भकर बीचमे नहीं छोड़ते, आज्ञाकारी है और आदेशकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥३५–३९॥

तदनन्तर चन्द्रमरीचिके वचन सुनकर विद्याधरोने अपने नीचे नेत्र विनयपूर्वक रामके ऊपर लगाये अर्थात् उनकी ओर देखा ॥४०॥ तत्पश्चात् जिसका सौम्यभाव अव्यक्त था ऐसे रामके मुखपर उन्होने वह भयङ्कर भ्रकुटीका जाल देखा जो कि यमराजके लतागृह-निकुञ्जके समान जान पड़ता था ॥४१॥ उन्होंने देखा कि श्रीराम लङ्काकी ओर जो लाल-लाल दृष्टि लगाये हुए है, वह राक्षसोका क्षय सूचित करनेके लिए उदित केतुकी रेखाके समान जान पडती है ॥४२॥ तदनन्तर उन्होने देखा कि रामने वही दृष्टि अपने उस सुदृढ धनुष पर लगा रक्खी है जो चिरकालसे मध्यस्थताको प्राप्त हुआ है, तथा यमराजकी भृकुटीरूपी लताकी उपमा धारण करनेवाला है। ॥४३॥ उनका केशोके समूह क्रोधसे कम्पित तथा शिथिल होकर बिखर गया था और ऐसा जान पड़ता था मानो अन्धकारके द्वारा जगत्को व्याप्त करनेके लिए यमराजका खजाना ही खुल गया था ॥४४॥ तेजोमण्डलके बीचमे स्थित उनका उस प्रकारका मुख ऐसा जान पड़ता था मानो प्रलय कालका देदीप्यमान तरुण सूर्य ही हो ॥४५॥ इस तरह राक्षसोका नाश करनेके लिए जो गमन सम्बन्धी उतावली कर रहे थे ऐसे रामको देखकर उन सब विद्याधरोके मन क्षुभित हो उठे तथा सब शीघ्र ही प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हो गये ॥४६॥

अथानन्तर रामकी चेष्टाओसे प्रेरित हुए समस्त विद्याधर चन्द्रमरीचिकी वाणीका सन्मान कर आकाशमार्गसे चल पड़े। उस समय वे सब विद्याधर नानाप्रकारके शस्त्र धारण किये हुए थे और उत्तमोत्तम सम्पदाओसे सहित थे ॥४७॥ युद्धकी उत्कण्ठासे युक्त राम और लक्ष्मणने, ध्वनिके द्वारा गुफाओको पूर्ण करनेवाले प्रयाणकालिक बाजे बजवा कर प्रस्थान किया ॥४८॥ मार्गशीर्ष वदी पञ्चमीके दिन सूर्योदयके समय उन सबका प्रस्थान हुआ था और प्रस्थान कालमे होनेवाले निम्नाङ्कित शुभ शकुनोसे उनका उत्साह बढ़ रहा था ॥४९॥ उस समय उन्होने देखा कि 'निर्धूम अग्निकी ज्वाला दक्षिणावर्तसे प्रज्वलित हो रही है, समीप ही मयूर मनोहर शब्द कर रहा है, उत्तमोत्तम अलंकारोंसे युक्त स्त्री सामने खड़ी है, सुगन्धिको फैलानेवाली वायु बह रही है ॥५०॥ निर्ग्रन्थ मुनिराज सामनेसे आ रहे हैं, आकाशमें छत्र फिर रहा है, घोड़ोंकी गम्भीर

१. कृतकर्माणो ज०, क०। २. चक्षुरानल ज०। ३ दृष्ट्वा म०। ४. जठरीभव-म०। ५. गमने ज०। ६. सोत्साह च दापयित्वा म०।

उत्किरन्नितरा दृष्टो वामतो गोमय नवम् । वायसो विस्फुरत्पक्षो निर्मुक्तमधुरस्वर ॥५२॥
भेरीशङ्खरव सिद्धिर्जय नन्द व्रज द्रुतम् । निर्विघ्नमिति शब्दाश्च तेषा मङ्गलमुद्ययु ॥५३॥
चतुर्दिग्भ्य समायातै पूर्यमाणो नभश्चरै । सुग्रीवो गन्तुमुद्युक्त सितपक्षविधूपम ॥५४॥
नानायानविमानास्ते नानावाहनकेतना. । व्रजन्तो व्योम्नि वेगेन बभु खेचरपुङ्गवा ॥५५॥
किष्किन्धाधिपतिर्वाति शल्यो दुर्मर्षणो नल । नील काल सुषेणश्च कुमुदाद्यास्तथा नृपा ॥५६॥
एते ध्वजोपरिन्यस्तमहाभासुरवानरा. । ग्रसमाना इवाकाश प्रवृत्ता सुमहाबला ॥५७॥
रेजे विराधितस्यापि हारो निर्झरभासुर. । जाम्बवस्य महावृक्षो व्याघ्रो सिंहरवस्य च ॥५८॥
वारणो मेघकान्तस्य शेषाणामन्वयागता । ध्वजेषु चिह्नता याता भावारछत्रेषु चोज्ज्वला. ॥५९॥
तेषा बभूव तेजस्वी भूतनाद. पुरस्सर । लोकपालोपमस्तस्य स्थित पश्चान्मरुत्सुत ॥६०॥
वृता सामन्तचक्रेण यथास्व परमौजस. । लङ्का प्रति व्रजन्तस्ते रेजु सञ्जातसम्मदा ॥६१॥
सुकेशतनया पूर्व लङ्का माल्यादयो यथा । विमानशिखरारूढाश्चेलु. पद्मादयो नृपा ॥६२॥
पार्श्वस्थ पद्मनाभस्य विराधितनभश्चर । पृष्ठतो जाम्बवस्तस्थौ सचिवैरन्वितो निजै. ॥६३॥
वामे भुजे सुषेणश्च सुग्रीवो दक्षिणे स्थित । निमेषेण च सम्प्राप्ता वेलन्धरमहीधरम् ॥६४॥
वेलन्धरपुरस्वामी समुद्रो नाम तत्र च । नलस्य परम युद्धमातिथ्यं समुपानयन्[1] ॥६५॥

हिनहिनाहट फैल रही है, घण्टाका मधुर शब्द हो रहा है, दहीसे भरा कलश सामनेसे आ रहा है ॥५१॥ बायीं ओर नवीन गोबरको बार-बार बिखेरता तथा पङ्खोको फैलाता हुआ काक मधुर शब्द कर रहा है ॥५२॥ भेरी और शङ्खका शब्द हो रहा है, सिद्धि हो, जय हो, समृद्धिमान् होओ, तथा किसी विघ्न-बाधाके बिना ही शीघ्र प्रस्थान करो। इत्यादि मङ्गल शब्द हो रहे है ॥५३॥ इन मङ्गलरूप शुभशकुनोसे उन सबका उत्साह वृद्धिगत हो रहा था। चारो दिशाओंसे आये हुए विद्याधरोसे जिसकी सेना बढ रही थी और इसीलिए जो शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी उपमा धारण कर रहा था ऐसा सुग्रीव चलनेके लिए उद्यत हुआ ॥५४॥ जो नाना प्रकारके यान और विमानोसे सहित थे तथा जिनका वाहनो पर नाना प्रकारकी पताकाएँ फहरा रही थीं ऐसे वे सब विद्याधर राजा वेगसे आकाशमे जाते हुए अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥५५॥ किष्किन्ध-नगरके राजा सुग्रीव, हनूमान्, शल्य, दुर्मर्षण, नल, नील, काल, सुषेण तथा कुमुद आदि राजा आकाशमे उड़े जा रहे थे, सो जिनकी ध्वजाओंमे अत्यन्त देदीप्यमान वानरके चिह्न थे ऐसे ये महाबलवान् विद्याधर ऐसे जान पड़ते थे मानो आकाशको ग्रसनेके लिए ही उद्यत हुए हो ॥५६-५७॥ विराधितकी ध्वजामे निर्झरके समान हार, जाम्बवके ध्वजामें महावृक्ष, सिंहरवकी ध्वजामे व्याघ्र, मेघकान्तकी ध्वजामे हाथी तथा अन्य विद्याधरोकी ध्वजाओंमे वंश-परम्परासे चले आये अनेक चिह्न सुशोभित थे। ये सभी उज्ज्वल छात्रोके धारक थे ॥५८-५९॥ अत्यन्त तेजस्वी भूतनाद उनके आगे चल रहा था और लोकपालके समान हनूमान् उसके पीछे स्थित था ॥६०॥ यथायोग्य सामन्तोके समूहसे घिरे, परम तेजस्वी तथा हर्षसे भरे वे सब विद्याधर लङ्का जाते हुए अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥६१॥ जिस प्रकार पहले सुकेशाके पुत्र माल्य आदि ने लङ्काकी ओर प्रयाण किया था उसी प्रकार राम आदि राजाओंने विमानोके अग्रभागपर आरूढ हो लङ्काकी ओर प्रयाण किया ॥६२॥ विराधित विद्याधर रामकी बगलमे स्थित था और अपने मन्त्रियोंसे सहित जाम्बव उनके पीछे चल रहा था ॥६३॥ बायें हाथकी ओर सुषेण और दाहिने हाथकी ओर सुग्रीव स्थित था। इस प्रकार व्यवस्थासे चलते हुए वे सब निमेष मात्रमे वेलन्धर नामक पर्वतपर जा पहुँचे ॥६४॥ वेलन्धर नगरका स्वामी समुद्र नामका विद्याधर था

---

१. समुपानयन् म० ।

ततो नलेन सस्पर्द्धं जित्वा निहतसैनिकः । बद्धो बाहुबलाढ्येन समुद्रः खेचरः परः ॥६६॥
सम्पूज्य च पुनर्मुक्तः पद्मनाभस्य शासने । स्थापितोऽवस्थितास्ते पुरे तत्र यथोचितम् ॥६७॥
सत्यश्री कमला चैव गुणमाला तथापराः । रत्नचूला तथा कन्या समुद्रेण प्रमोदिना ॥६८॥
कल्पिता [1]पुरुशोभाढ्या योषिद्गुणविभूषिता । लक्ष्मीधरकुमाराय सुरस्त्रीसमविभ्रमाः ॥६९॥
तत्रैका रजनीं स्थित्वा सुवेलमचलं गताः । सुवेलनगरे तत्र सुवेलो नाम खेचरः ॥७०॥
जित्वा तमपि सङ्ग्रामे हेलामात्रेण खेचराः । चिक्रीडुर्मुदितास्तत्र त्रिदशा इव नन्दने ॥७१॥
तत्राक्षयवने रम्ये [2]सुखेनाक्षेपितक्षपाः । अन्येद्युरुद्यता गन्तुं लङ्कां तेन सुविभ्रमाः ॥७२॥
तुङ्गप्राकारयुक्तां तां हेमसद्मसमाकुलाम् । कैलासशिखराकारैः पुण्डरीकैर्विराजिताम् ॥७३॥
विचित्रैः कुट्टिमतलैरालोकेनावभासतीम् । पद्मोद्यानसमायुक्तां प्रपादिकृतिभूषणाम् ॥७४॥
चैत्यालयैरलं तुङ्गैर्नानावर्णसमुज्ज्वलैः । विभूषितां पवित्रां च महेन्द्रनगरीसमाम् ॥७५॥
लङ्कां दृष्ट्वा समासन्नां सर्वे खेचरपुङ्गवाः । हंसद्वीपकृतावासा बभूवुः परमोदयाः ॥७६॥
युद्धे हंसरथं तत्र विजित्य सुमहाबलम् । रम्ये हंसपुरे क्रीडां चक्रुरिच्छानुगामिनीम् ॥७७॥
मुहुः प्रेषितदूतोऽयमद्य श्वो वा विशंसयम् । भामण्डलः समायातीत्येवमाकाङ्क्षयास्थिताः ॥७८॥

मन्दाक्रान्ता

यं यं देशं विहितसुकृताः प्राणभाजः श्रयन्ते तस्मिंस्तस्मिन् विजितरिपवो भोगसङ्गं भजन्ते ।
नह्येतेषां [1]परजनमतं किञ्चिददापद्युतानाम् सर्वं तेषां भवति मनसि स्थापितं हस्तसक्तम् ॥७९॥

सो उसने परम युद्धके द्वारा नलका आतिथ्य किया ॥६५॥ तदनन्तर बाहुबलसे युक्त नलने स्पर्द्धाके साथ उसके सैनिक मार डाले और उसे बाँध लिया ॥६६॥ तदनन्तर रामका आज्ञाकारी होनेपर उसे सन्मानित कर छोड़ दिया तथा उसी नगरका राजा बना दिया। राम आदि सन्त लोग भी उसके नगरमें यथायोग्य ठहरे ॥६७॥ राजा समुद्रकी सत्यश्री, कमला, गुणमाला और रत्नचूला नामकी कन्याएँ थीं जो उत्तम शोभासे युक्त थीं, स्त्रियोंके गुणोंसे विभूषित थीं तथा देवाङ्गनाओंके समान जान पड़ती थीं। हर्षसे भरे राजा समुद्रने वे सब कन्याएँ लक्ष्मणके लिए समर्पित कीं ॥६८-६९॥ उस नगरमें एक रात्रि ठहरकर सब लोग सुवेलगिरिको चले गये। वहाँ सुवेल नगरमें सुवेल नामका विद्याधर राज्य करता था ॥७०॥ सो उसे भी युद्धमें अनायास जीतकर विद्याधरोंने हर्षित हो वहाँ उस प्रकार क्रीडा की जिस प्रकार कि देव नन्दन वनमें रहते हैं ॥७१॥ वहाँ अक्षय नामक मनोहर वनमें कुशलता पूर्वक रात्रि व्यतीत कर दूसरे दिन उत्तम शोभाको धारण करनेवाले विद्याधर लङ्का जानेके लिए उद्यत हुए ॥७२॥

तदनन्तर जो ऊँचे प्राकारसे युक्त थी, सुवर्णमय भवनोंसे व्याप्त थी, कैलासके शिखरके समान सफेद कमलोंसे सुशोभित थी, नाना प्रकारके फर्शों और प्रकाशसे देदीप्यमान थी, कमल वनोंसे युक्त थी, प्याऊ आदिकी रचनाओंसे अलंकृत थी, नाना रङ्गोंसे उज्ज्वल ऊँचे-ऊँचे जिन-मन्दिरोंसे अलंकृत तथा पवित्र थी और महेन्द्रकी नगरीके समान जान पड़ती थी ऐसी लङ्काको निकटवर्तिनी देख परम वैभवके धारक विद्याधर हंसद्वीपमें ठहर गये ॥७३-७६॥ वहाँके हंसपुर नामा नगरमें महाबलवान् राजा हंसरथको जीतकर सबने इच्छानुसार क्रीडा की ॥७७॥ जिसके पास बार-बार दूत भेजा गया है ऐसा भामण्डल आज या कल अवश्य आ जावेगा इस प्रकार प्रतीक्षा करते हुए सब वहाँ ठहरे थे ॥७८॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि पुण्यात्मा प्राणी जिस-जिस देशमें जाते हैं उसी-उसी देशमें वे शत्रुओंको जीतकर भोगोंका समागम प्राप्त करते हैं। उद्यमशील पुण्यात्मा जीवोंके लिए कोई भी

---

१. पुर-म० । २. सुखेपाक्षेपितक्षपाः म० ।

तस्माद् भोगं भुवनविकटं भोक्तुकामेन कृत्यः । श्लाघ्यो धर्मो जिनवरमुखादुद्गतः सर्वसारः ।
आस्तां तावत्त्रयपरिचितो भोगसङ्गोऽपि मोक्षम् । धर्मादस्माद्व्रजति रवितोऽप्युज्ज्वलं भव्यलोकः ॥८०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे लङ्काप्रस्थानं नाम चतुःपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५४॥



वस्तु परके हाथमें नहीं रहती । समस्त मनचाही वस्तुएँ उनके हाथमें आ जाती है ॥७६॥ इसलिए जो भव्य संसारमें उत्तम भोग भोगना चाहता है उसे जिनेन्द्रदेवके मुखारविन्दसे उदित सर्व-श्रेष्ठ प्रशंसनीय धर्मका पालन करना चाहिए । क्योंकि भोगोंका नश्वर संगम तो दूर रहा वह इस धर्मके प्रभावसे सूर्यसे भी अधिक उज्ज्वल मोक्षको प्राप्त कर लेता है ॥८०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें लङ्काके लिए प्रस्थानका वर्णन करनेवाला चौवनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५४॥